'कौल-कल्पतरु'

चण्डी

(वर्ष ३२-३३)

कौल-कल्पतरु 'चण्डी'

(वर्ष : ३२ + ३३)

सम्वत् २०३० + ३१ वि० : सन् १९७३-७४

मूल्य : ३५-०० रु०

काल-कल्पतरु

चण्डी

शाक्त-साधना पीठ, प्रयाग-६

मनोरंजन के साथ धर्म की शिक्षा

कहानी या उपन्यास पढ़कर लोग अपना अवकाश का समय बिताते हैं या अपने थके हुए मस्तिष्क को मनोरंजन द्वारा पुनः ताजा बनाते हैं। यदि कहीं कहानी या उपन्यास शिक्षाप्रद हुआ, तो एक पन्थ दो काज होते हैं। मनोरंजन के साथ-साथ शिक्षा भी मिलती है। शाक्त-सिद्धान्तों को शिक्षा देनेवाले रोचक कथा-साहित्य का हिन्दी में अभाव रहा है। इस अभाव को दूर करने में 'कौल-कल्पतरु' श्री शुक्ल जी कृत निम्नलिखित दो पुस्तकों ने अच्छा प्रयास किया है। आबाल-बृद्ध-वनिता सभी के ये पढ़ने योग्य हैं—

साधक का संवाद

एक साधक जब कहीं आता जाता है, तब स्वभावतः किन्हीं विज्ञ महात्मा या साधक से भेंट होने पर महत्वपूर्ण धार्मिक चर्चा छिड़ जाती है। इस चर्चा में धर्म की गूढ़ बातों का रहस्योद्घाटन बड़े सहज और सुबोध भाव से होता है, ऐसा अनुभव कितनों ही को होगा। इस अनुभव को दूसरों के लाभ के लिये लिख देने का महत्कार्य उदार साधक ही कर सकते हैं। श्री सत्यान्वेषी जी एक ऐसे ही साधक रहे हैं। आपने अपने उक्त प्रकार के वार्तालापों को लिखने की कृपा की और हमें उन्हें 'साधक का संवाद' रूप में प्रकाशित करने का सौभाग्य मिला। इन संवादों के शीर्षक ये हैं—

पञ्चशुद्धि, व्यापकता, ब्रह्म-भाव, अर्थ का अनर्थ, गोपन, कुल-धर्म, शाक्त-पूजा।

श्रीसत्यान्वेषीजी का शाक्त-साधकों से घनिष्ट सम्पर्क रहा है। उन्होंने अपने संवादों में जो तथ्यपूर्ण बातें अंकित की हैं, उनसे शाक्त-धर्म के जिज्ञासुओं को वे रहस्य की बातें सहज ही मालूम हो जाती हैं, जो वर्षों के सत्संग से भी जानी नहीं जा सकतीं। साथ ही उनका मनोरञ्जन भी काफी होता है।

मूल्य ४)५०

धर्ममार्ग पर

'साधक का संवाद' पढ़कर यह सहज ही अनुभव होता है कि कहानी की रोचक शैली में धर्म की गूढ़ बातों को यदि समझाया जाय, तो वे बड़ी सरलता से समझ में आ जाती हैं और उन्हें जानने-समझने में मन भी लगता है। इसी दृष्टि-कोण से 'धर्ममार्ग पर' नामक उपन्यास लिखा गया है। इस उपन्यास का नायक परिस्थितियों के चक्कर में पड़कर घर छोड़कर निकल पड़ता है और धर्म का मार्ग पकड़ता है। इस प्रसंग में जो अनेक घटनाएँ घटती हैं, उनका आभास उपन्यास के निम्न शीर्षकों से भले प्रकार मिल जाता है—

गृहत्याग, बाबा जी का उपदेश, बाबा जी से विछोह, मौसा-मौसी का मोह, स्वामी जी के दर्शन, तीर्थराज की ओर, विन्ध्यगिरि की यात्रा, श्रीभवानी पाठशाला, गुरुदेव का आदेश, पुनः गृह की ओर, धर्मकार्य का श्रीगणेश, चण्डिका जी में शतचण्डी, गुरु-पूर्णिमा, अन्तिम आदेश।

उपन्यास इतना रोचक है और साथ ही धर्म की बातों का इतना सच्चा दिग्दर्शक है कि एक साँस में सारी पुस्तक पढ़ जाने को मन आतुर हो उठता है।

मूल्य ४)

पं० देवीदत्त शुक्ल स्मारक
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
प्रयाग—६

'कौल-कल्पतरु' चण्डी

वर्ष ३२] वार्षिक विषय-सूची * चैत्र–फाल्गुन २०३० वि० [संख्या १-१२

अनुक्रमणिका

१ आवाहन : 'कुल-विद्या-वारिधि' पं० नर्मदेश्वरप्रसाद उपाध्याय, एम० ए०, एल-एल० बी० १
२ आश्रम-मर्यादा (सङ्कलित) ५५
३ अमेरिका में विश्व-तन्त्र-संघ : 'कौल-कल्पतरु' स्व० शुक्ल जी ८४
४ उद्बोधन : 'कुल-विद्या-वारिधि' प० नर्मदेश्वरप्रसाद उपाध्याय, एम० ए०, एल-एल० बी० ८३
५ काली-वन्दना : स्वामी विवेकानन्द ७६
६ काली की नित्याएँ (मन्त्र एवं ध्यान) : परम पूज्य "राष्ट्र-गुरु" श्री १००८ श्री स्वामी जी महाराज ११६
७ छत्रपति शिवाजी की उपास्या भवानी कौन थीं ? १८
८ ज्योतिष-विधान : पं० रामकुमार मिश्र, वैदिक आचार्य २०, ३६, १२२ १३५
९ जगदम्बा के द्वादश स्थान १३६
१० तन्त्र में अनुसन्धान : श्री 'कुल-भूषण', एम० ए० ६९,११२, १४५
११ दशभुजा-दुर्गा-ध्यानम् १२१
१२ धार्मिक जगत् की हलचल [१ विन्ध्याचल में वासन्तिक नवरात्र, २ गायत्री तपोभूमि का कृतित्व, ३ स्वर्गीय 'भाई' जी के द्वितीय पुण्य तिथि, ४ रूस में महात्मा बुद्ध, ५ प्रभुतासुर का मर्दन, ६ जल-सङ्कटहारी "वरुण-यज्ञ-महोत्सव, ७ 'श्री पीताम्बरा-पीठ' दतिया में श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य, ८ तुलसी मानस का कृतित्व, ९ श्री श्री सुन्दरी महालक्ष्मी देवी दुर्गा यज्ञ, १० जर्मनी में तान्त्रिक 'कला' का प्रदर्शन, ११ शाक्त-साधना परामनोविज्ञान का प्रेरणा-स्रोत, १२ नव चण्डी अम्बा-यज्ञ, १३ श्री हनुमान मन्दिर, १४ चैती मेला १९७४, १५ श्री दशभुजा दुर्गा मन्दिर] २०, ७७, १२०, १४९
१३ नवरात्र : श्री कालीचरण पन्त १०३
१४ पाप का प्रायश्चित्त (वामाक्षेपा की एक सत्य कथा) : श्री हरिहर भट्टाचार्य ६५
१५ पावन संस्मरण : श्री नरहरि पुरुषोत्तम शरण शर्मा १४०
१६ पुस्तक समालोचना १४७
१७ प्रश्नोत्तर : परम पूज्य 'राष्ट्रगुरु' श्री १००८ श्री स्वामी जी महाराज १०४
१८ मन्त्र-विज्ञान : श्री ऋतशील शर्मा [१ बीज-मन्त्र क्या हैं ? २ बीज-मन्त्रों की शक्ति, ३ बीज-मन्त्रों की साधना, ४ जप क्या है ?, ५ जप की सफलता, ६ जप का महत्व, ७ कुण्डलिनी-जागरण का अभिप्राय, ८ जप द्वारा कुण्डलिनी-जागरण, ९ चिद्शक्ति के विकास का महत्व, १० जप की आवश्यकता, ११ प्राण क्या है ?] १, १६, ३६, ८९
१९ मौसम और अध्यात्म : पं० रतनलाल जी दीक्षित, अवकाश-प्राप्त मिटियोरालाजिस्ट ६९
२० मन वहाँ चल : प्राचार्य श्री प्रेमशङ्कर सिंह, 'प्राञ्जल' एम० ए० ४३

२१ मन्त्र-योग : श्री कालीचरण पन्त ६४
२२ यन्त्र-विज्ञान : श्री ऋतशील शर्मा, बी० एस-सी० ४१, ८६
२३ रानीखेत की भूला देवी : श्रीमती रत्नप्रभा तिवारी १३२
२४ विद्या-रहस्य और साधना : पन्त श्री कालिकानन्द १००
२५ विशुद्ध चण्डी (श्री दुर्गा सप्तशती) : श्री कुलभूषण, एम० ए० १-८
२६ शरण-तुम्हारी : 'कुल-विद्या-वारिधि' पं० नर्मदेश्वरप्रसाद उपाध्याय, एम० ए०, एल-एल० बी० ३५
२७ शङ्कर-श्रुति-मार्ग : श्री कालिकानन्द ६७
२८ संस्मृता-संस्मृता : कापालिक श्री उद्बोधनानन्द नाथ ५७
२९ संस्मरण : पं० सुमित्रानन्दन पन्त १०५
३० स्तुति-प्रेरणा : स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती १४८
३१ साधना में गुरु की आवश्यकता : पं० रूपनाथ त्रिवेदी १३७
३२ सम्पादकीय [१ 'कौल-कल्पतरु' चण्डी, २ आर्य क्रियाओं की वैज्ञानिकता, ३ धर्म का व्यापार, ४ तीर्थराज प्रयाग में देवालय, ५ नवरात्र का महापर्व, ६ गुरु-पूर्णिमा, ७ तन्त्र का कलात्मक स्वरूप, ८ शाक्त धर्म की प्राचीनता, ९ हिन्दू धर्म का संरक्षक कौन ?, १० श्रीपीताम्बरापीठ में श्री शङ्कराचार्य, ११ चण्डी का त्रैमासिक प्रकाशन, १२ स्वर्गीय पन्त जी को श्रद्धाञ्जलि, १३ स्व० पन्त जी का कौल श्राद्ध, १४ शाक्त-साधना पीठ, १५ संगठन, १६ शोक-समाचार, १७ 'कौल-कल्पतरु' चण्डी का तैंतीसवाँ वर्ष] ३२, ७९, १२७, १५०
३३ श्रद्धाञ्जलि : पं० नवीनचन्द्र जोशी १२१
३४ श्रद्धाञ्जलि : 'कुलभूषण' श्री रमादत्त शुक्ल, एम० ए० १२४
३५ श्री नारद द्वारा नवरात्र व्रत का उपदेश (सङ्कलित) १०६
३६ श्रीमद्-देवी भागवत में शारदीय नवरात्र : श्री पुण्यशील शर्मा, बी० ए० १०८
३७ हिन्दी तन्त्रसार (६९ तारा-मन्त्र-विधान) : 'कुलभूषण' श्री रमादत्त शुक्ल, एम ए० १-१६

नया संस्करण प्रकाशित हो गया !

श्री काली नित्यार्चन

मूल्य ५) रु०

आद्या शक्ति कालिका के सम्बन्ध की हिन्दी में इस पहली और बेजोड़ पुस्तक का तीसरा नया संस्करण है। साधकों की सुविधा के विचार से इस बार अधिक बड़े अक्षरों में मन्त्र और श्लोकादि छापे गए हैं। साथ ही भगवती काली के पूजन-यन्त्र का रेखा-चित्र भी दिया गया है। इस प्रकार यह नया संस्करण सभी शाक्त-बन्धुओं के लिए उपयोगी है। आपने अभी तक न मँगाया हो, तो आज ही पत्र भेजकर मँगवा लें।

बी० पी० से न मँगानेवाले बन्धु मनीआर्डर द्वारा कुल छः रु० पचीस पैसे भेजने का कष्ट करें। मनीआर्डर प्राप्त होने पर रजिस्टर्ड डाक द्वारा पुस्तक सेवा में भेज दी जायेगी।

पता—कल्याण मन्दिर, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६

'कौल-कल्पतरु' चराडी

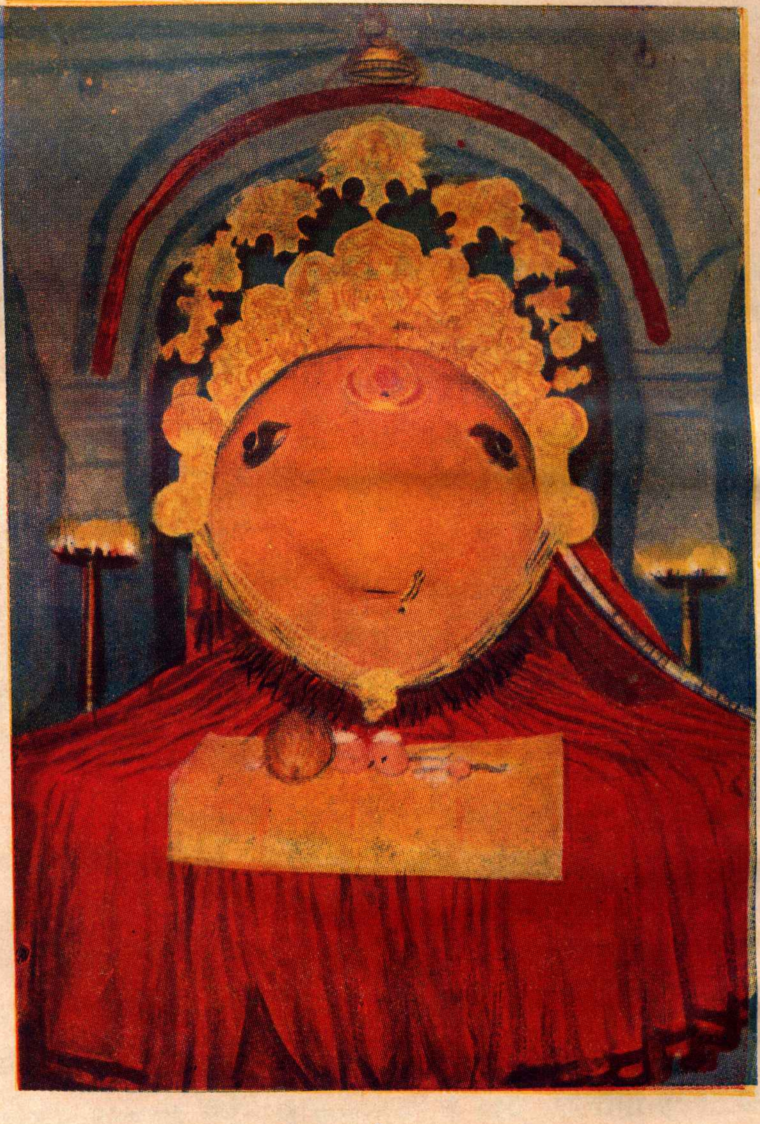

भगवती-बाला

'मनुष्य में अद्भुत परमाणु-शक्ति छिपी हुई है। उसे जाग्रत् कर, उसको उसकी वास्तविक शक्ति का परिचय कराने के लिये रहस्यमय क्रियाओं का सहारा लेना पड़ता है। ऐसी क्रियाओं के द्वारा वह 'सोऽहम्'–वह (शक्ति) मैं हूँ–इस महान् 'मन्त्र' को समझ लेता है।

इसे समझने के बाद वेदान्त का महान् मन्त्र 'सोऽहम्'–वह (शिव) मैं हूँ, भी ज्ञात हो जाता है। यदि अज्ञानी विद्वान् इनको जादू-टोने का मन्त्र समझें, तो क्या चारा है! ये मन्त्र उस ज्ञान के प्रतीक हैं, जिसकी थाह लगाना असम्भव है।'—

सर जॉन उडरफ (आॅर्थर एवेलन)

"कौल-कल्पतरु"

चण्डी

(मन्त्र-विज्ञान विशेषाङ्क)

चैत्र-वैशाख-जेष्ठ शुक्लाष्टमी २०३० वि०

वर्ष ३२] [संख्या १–२

अनुक्रमणिका

१ आवाहन : 'कुलविद्या-वारिधि' पं० नर्मदेश्वर उपाध्याय, १
२ मन्त्र-विज्ञान : श्री ऋतशील शर्मा १-१६
[बीज-मन्त्र क्या हैं ?, बीज-मन्त्रों की शक्ति, बीज-मन्त्रों की साधना, जप क्या है ?, जप की सफलता, जप का महत्व]
३ छत्रपति शिवाजी की उपास्या भवानी कौन थीं ? ... १८
४ ज्योतिष-विधान : श्री 'कुलभूषण', एम० ए० ... २०
५ धार्मिक जगत् की हलचल २४
६ सम्पादकीय ३२
७ विशुद्ध चण्डी (श्री दुर्गा सप्तशती) ... १–८

समाचार पत्र केन्द्रीय अधिनियम (नियम ८, फार्म ४,) १९५६

'कौल-कल्पतरु' चण्डी मासिक [हिन्दी] के स्वामित्व तथा तत्सम्बन्धी विवरण

१—प्रकाशन का स्थान	प्रयाग
२—प्रकाशन की अवधि	मासिक
३—मुद्रक का नाम	राजनारायण मिश्र
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	परावाणी प्रेस, प्रयाग—६
४—प्रकाशक का नाम	पुण्यशील शर्मा
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	शाक्त-साधना पीठ, प्रयाग—६
५—सम्पादक का नाम	पुण्यशील शर्मा
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	शाक्त-साधना पीठ, प्रयाग—६
६—उन व्यक्तियों के नाम और पते जो इस पत्रिका के मालिक या साझेदार हैं या जो उसकी पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझीदार हैं—	पुण्यशील शर्मा—शाक्त साधना पीठ, प्रयाग—६

मैं, पुण्यशील शर्मा, घोषित करता हूं कि ऊपर दिए गए विवरण मेरी पूरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सही हैं।

दिनाङ्क १ अप्रैल १९७३ पुण्यशील शर्मा (प्रकाशक)

श्रद्धांजलि

आज से ३१ वर्ष पूर्व 'कौल-कल्पतरु' पूज्य पण्डित देवीदत्त शुक्ल जी द्वारा 'चण्डी' के प्रकाशन का श्रीगणेश किया गया था ।

'चण्डी' के तीस-वर्षीय प्रकाशन-काल में गुप्तावतार योगिराज बाबा श्री मोतीलाल मेहता, दाता-नरेश भवानी सिंह महाराणा और डा० एम० एन० सूरती जैसे विभूतियों का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ । पूज्य स्वामी श्री अक्षोभ्यानन्द सरस्वती, 'कुल-मार्तण्ड' पण्डित योगीन्द्र-कृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री, 'कुल-सङ्ग-शेखर' पं० देवीप्रसाद घिल्डियाल, पूज्य श्री ॐ महाराज, 'कुल-ज्योति' पं० कन्हैयालाल ज्योतिषी, 'आम्नाय-धुरन्धर' आशुकवि पं० हरिशास्त्री दाधीच, 'कौलकल्पतरु' श्री श्यामानन्द नाथ, पूज्य स्वामी श्री आत्मानन्द जी, पूज्य श्री सी०वी० स्वामी शास्त्री, पूज्य श्री निरञ्जन महाराज आदि जैसे मर्मज्ञों का सक्रिय समर्थन बराबर मिलता रहा ।

आज ये महापुरुष इस नश्वर जगत् में नहीं हैं, किन्तु इन सबकी सत्प्रेरणा हमारा पथ-प्रदर्शन निरन्तर कर रही है ।

विगत वर्ष 'चण्डी' के दो और महान् सहयोगियों ने इस कर्मभूमि को छोड़ परम धाम को महाप्रयाण किया— अल्मोड़ा के 'कौल-शिरोमणि' पण्डित कालीचरण जी पन्त और 'गुप्तावतार' बाबा श्री के मण्डल के अन्यतम साधक पण्डित रमाशङ्कर पण्डया, एम० ए० । पन्तजी की अनूठी कृति "शाक्त-दर्शन" और पण्डया जी के "नवीन-दर्शन" तथा "चरणाङ्किता कुण्डलिनी" शीर्षक लेख-मालाओं को 'चण्डी' के पाठक कभी भूल नहीं सकते ।

"कौल-कल्पतरु" चण्डी के पुनः प्रकाशन के अवसर पर इन सभी तथा अन्य मणिपुर-वासी महान् व्यक्तियों की पुण्य स्मृति में हम यहाँ अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं ।

—सं०

SUBSCRIPTION FOR 'KAUL-KALPATRU' CHANDI

Subscription is annual but may begin with any month. Rates are as follows:

INDIA

Single copy : Rs 2.25 Annual subscription : Rs 12

OTHER COUNTRIES

	Annual subscription Sea Mail	Annual subscription Air Mail
Pakistan Ceylon Nepal	Rs. 24	Rs. 48
Malaysia, Thailand, Indonesia and Indo-China	Rs. 30	Rs. 66
Europe	Pound 1.80	Pound 5.50
Former European Possession and Middle East	Pound 1.80	Pound 4·50
U. S. A. Canda and S. America	Shilling 7.00	Shilling 18.00
Japan	Shilling 7.00	Shilling 14.50

EDITOR

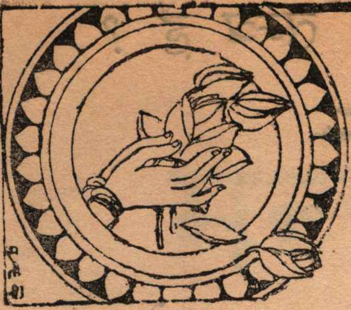

आवाहन

बहुत दिनन भे दैत्य विनासे,
आओ चामुण्डे ! पुनि आओ ॥१॥
महादैत्य उत्तर सों तर्जत,
बलि वंशज को है बल पायो ॥२॥

बाने दियो अस्त्र अति भीषण,
बम्ब चलायक यान सुभेज्यो ॥३॥
रक्तवीज अस्त्र तुव रसना सो,
छूट्यो काल पाय बहु जायो ॥४॥

वहै वसत हैं उत्तर पश्चिम
भारत को भीषण रिपु जानो ॥५॥
आओ मां ! भारत तुव टेरत,
निज त्रिनेत्र को तडित प्रसारो ॥६॥

भस्म होयँगो भक्षक वैरी
मां ! मां ! भारत भक्त उधारो ॥७॥
क्षय सम्वत् क्षय करै इनन को
भारत को दै सम्पति भारो ॥ ८॥

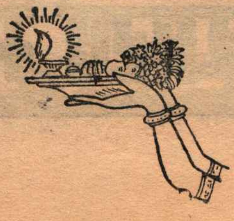

क्या रामचरित मानस तन्त्र है ?

लेखकः—

एक मानस भक्त

लगभग १५० पृष्ठ

मूल्य

६.०० रु०

प्रकाशक

कल्याण मन्दिर,

अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६

स्वर्गीय दाता-नरेश नामदार श्री भवानी सिंह जी महाराणा की प्रेरणा से यह अनूठा ग्रन्थ 'चण्डी' के लिए विशेष रूप से लिखा गया था । इसका प्रकाशन सम्वत् २००२ के फाल्गुन अङ्क से प्रारम्भ हुआ था । अब यह अलग से पुस्तक के रूप में उपलब्ध है । यह अत्यन्त रोचक शैली में, सरल बोल-चाल की भाषा में और ज्ञान-वर्द्धक तथ्यों से भरा हुआ ग्रन्थ है ।

गोस्वामी तुलसीदास स्वयं तान्त्रिक थे, यह बहुत कम लोग जानते हैं । जो जानते भी हैं, वे इस तथ्य को छिपाते हैं । इस पुस्तक को पढ़कर आप इस रहस्य को स्वयं समझ सकते हैं । साथ ही 'मानस' में स्पष्ट रूप से प्रतिपादित तान्त्रिक सिद्धान्तों को भी जान सकते हैं ।

कल्याण मन्दिर

मन्त्र-विज्ञान

पहला अध्याय

बीज-मन्त्र क्या हैं ?

"किसी भी वस्तु का बीज-मन्त्र उस वस्तु का शुद्ध शब्द-ज्ञान अथवा स्वाभाविक नाम है।" प्रत्येक वस्तु के मूल में एक शक्ति-व्यूह है। हमारा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक बृहत् अविच्छिन्न शक्ति-व्यूह (**An infinite system of stresses**) है। हमारे मूल में एक शक्ति-व्यूह है, तो तुम्हारे मूल में दूसरा शक्ति-व्यूह है।...मूल का यह शक्ति-व्यूह चञ्चलता के वशीभूत होकर जो शब्द-ज्ञान कराता है, उसी को हम बीज-मन्त्र कहते हैं। इन्हें हमारे महान् योगियों, तपस्वियों, ऋषियों ने सुना है—ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार आज के आधुनिक युग में वैज्ञानिक लोग उपकरणों द्वारा उन कुछ दिव्य शब्दों का श्रवण करते हैं, जिन्हें सुनने में हमारे सामान्य कान सर्वथा असमर्थ हैं।

द्रष्टव्य--(१) जल-कणों के मूल में एक शक्ति-व्यूह है। इस शक्ति-व्यूह ने जल-कणों में जो चञ्चलता उत्पन्न कर रखी है, चाहे वह स्थूलतर दानों की हो अथवा हाइड्रोजन-आक्सीजन अणुओं की हो अथवा सूक्ष्मतर इलेक्ट्रानों की हो, उसे सुनने में हमारे कान असमर्थ हैं। यही चाञ्चल्य, शब्द-ज्ञान जल-कणों का शुद्ध स्वाभाविक नाम अथवा बीज-मन्त्र है।...प्रत्येक द्रव्य, चाहे वह चेतन हो अथवा अचेतन, उसकी सृष्टि और स्थिति के मूल में एक शक्ति-व्यूह (Constituting forces) रहता है। इस शक्ति-व्यूह की अभिव्यक्ति जिस शब्द में होती है, वही पदार्थ का विशुद्ध स्वाभाविक शब्द-ज्ञान या बीज-मन्त्र है।

(२) अग्नि का बीज-मन्त्र 'रं' है। अग्नि के मूल में निश्चय ही एक शक्ति-व्यूह है। यही शक्ति-व्यूह हमारी आँखों को उत्तेजित कर हमें अग्नि का रूप दिखाता है, स्नायुओं को उत्तेजित कर ताप का अनुभव कराता है, परन्तु यह हमारे कानों को उत्तेजित कर साधारणतया कोई शब्द-ज्ञान नहीं कराता। फिर भी इसका एक शब्द है। हमारे ऋषियों के दिव्य कानों ने इस शब्द को 'रं' के रूप में सुना है।

अतएव द्रव्य और अर्थ के रहने पर ही जो शब्द रहता है एवं जिस शब्द के रहने पर ही उसका अर्थ निर्मित हो जाता है, विशुद्ध-रूप में उच्चारित होने पर वही शब्द उस द्रव्य का स्वाभाविक शब्द या बीज-मन्त्र है। स्वाभाविक शब्द अथवा बीज-मन्त्र की यही परीक्षा है।

बीज-मन्त्र की शक्ति

प्रश्न उठता है कि क्या बीज-मन्त्रों (शुद्ध स्वाभाविक शब्द-ज्ञान) में अर्थ गढ़ने की क्षमता है ?.. आज हमें यह भली भाँति ज्ञात हो चुका है कि शब्द में अर्थ गढ़ने की

शक्ति विद्यमान है। यह सिद्ध हो गया है कि पदार्थों की पैदावार में ध्वनि-तरङ्गों द्वारा वृद्धि की जा सकती है। वीणा पर ऋग्वेद की ऋचा का गायन करती हुई इटली की एक विश्वविख्यात गायिका ने रेत पर हंस का चित्र स्वतः बिना किसी यन्त्र के सहारे बना दिया था। चित्र-पट के पर्दे के समान केवल एक वस्तु के पर्दे पर तीव्र विद्युत् प्रकाश में भैरव राग अलाप कर केवल ध्वनि-तरंगों से भैरव की विकराल मूर्ति अंकित कर देनेवाला स्पेनिश गायक विश्व-विख्यात हो चुका है। रासायनिक, जैविक इत्यादि नाना क्षेत्रों में अद्भुत गठन और विनाश करने की जो क्षमता सूक्ष्म ध्वनि (ultrasonic waves) के शब्दों में है, उसका ज्ञान हमें हो चुका है। रोग-निराकरण से लेकर अघटन-घटन भी इसके द्वारा सम्भव है।

द्रष्टव्यः--(१) यह ज्ञात हो चुका है कि सूक्ष्म ध्वनि की तरङ्गें छोटे-मोटे जीवों के लिये हानिकारक हैं। ये चूहों, मछलियों, मेढकों आदि को लँगड़ा कर देती हैं। साथ ही ये जीवाणुनाशक भी हैं।....सूक्ष्म ध्वनि के कम्पन (Vibration, 'जोड़ों की पीड़ा' शान्त करने की ईश्वरीय प्रेरणा उत्पन्न करने की क्षमता रखते हैं। इसीलिए सोवियत डाक्टर नसों की पीड़ा तथा गठिया रोग-सम्बन्धी पीड़ा आदि को दूर करने इनका उपयोग कर रहे हैं। अमरीकी डाक्टरों के अनुसार 'शरीर के आन्तरिक यन्त्रों' को आघात पहुंचने पर या उनमें कोई व्यतिक्रम होने पर इनका उपयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है। 'केन्द्रीभूत रक्त-स्राव' पर भी आरोग्यकर प्रभाव करने की इनमें क्षमता है।

(२) 'लय-निद्रा' नाम के नये उपकरण के विकास का आधार यह विचार है कि एक व्यक्ति को जल्दी-से-जल्दी सुलाया जाय। रोगी व्यक्तियों को सुलाने के लिये ध्वनि-स्रोतों से प्रभाव डालने का प्रयत्न हो रहा है। वर्षा की बूंदों से निकलनेवाले टूटे हुए ध्वनि-संकेत थकान पैदा करते हैं और इससे पेशियों को शिथिल करने में सहायता मिलती है। फल-स्वरूप रोगी सो जाता है।... पेशी-शैथिल्य के लिये उक्त उपकरण मास्को के एक प्रतिष्ठान में बनने लगे हैं।

इन तथ्यों से ज्ञात होता है कि शब्दों में अपने छन्दस् (Harmony) के अनुरूप मूर्ति की सृष्टि करने की क्षमता है। शब्द-तरंगों में धूलि-कणों को हटा कर अपने छन्दस् के अनुरूप उन्हें सजा कर एक निर्दिष्ट आकार में परिवर्तित करने की शक्ति है। उपाणुओं (subatoms) को बिखेर कर कुछ ऐसे घने केन्द्रों की भी रचना वायुमण्डल में ये तरंगें कर सकती हैं, जिनका सहारा लेकर जलीय वाष्प-समूह जल-कणों में परिवर्तित हो सकते हैं अर्थात् वृष्टि हो सकती है आदि। अतः शब्दों में अर्थ गढ़ने की शक्ति नहीं है, ऐसा हम निश्चय-पूर्वक नहीं कह सकते। वस्तुतः यह हमारे लिए परीक्षण का विषय है।

बीज-मन्त्रों या स्वाभाविक शब्दों में अर्थ गढ़ने की क्षमता है। इस जगत् में अपने छन्दस् के अनुरूप सृष्टि व संहार करने की उनमें शक्ति है, तथ्यों से हमें इसी महान् सत्य का ज्ञान होता है।

बीज-मन्त्रों का मात्र एक दो बार उच्चारण करने से अर्थ निर्मित नहीं हो सकता। बीज-मन्त्रों की शक्ति सोई रहती है, जिसे हमें निरन्तर अभ्यास के द्वारा जगाना

होगा।..गुरु-मुख द्वारा प्राप्त मन्त्र हमारे कर्ण-दोषों के कारण विकृत और संकीर्ण होते हैं। अतएव उनकी अर्थ गढ़ने की शक्ति सोई हुई रहती है। जप आदि के द्वारा इस शक्ति को धीरे-धीरे जगाना पड़ता है।....हमारे श्रवण-सामर्थ्य में दो प्रकार की त्रुटियाँ हैं। प्रथमतः दो सीमा-रेखाओं* के बीच की ही ध्वनि को हम सुन सकते हैं। दूसरे जो शब्द हम सुनते हैं, वे अपने निज रूप में नहीं रहते। हम मिलावटी शब्दों को ही सुनते हैं। मिलावटी शब्दों में से मूल को खोजने की शक्ति हमारे श्रवण-सामर्थ्य के बाहर है।

इन दो कर्ण-दोषों को दूर किये बिना हम बीज-मन्त्रों की शक्ति को जगा नहीं सकते। बीजमन्त्रों की सृजन-संहार की शक्ति जाग्रत् करने के लिये कर्ण-दोषों को दूर करना होगा। बिना इसके हमारा श्रवण-सामर्थ्य निर्मल नहीं होगा और विशुद्ध शब्दों का श्रवण या उच्चारण करने में हम पूर्णतः असमर्थ रहेंगे।

दृष्टव्य—ऋषि बोले

जग की एकार्णवी दशा में, कल्प अन्त में जब भगवान् ।
बना शेष को शैया हरि थे, सोये योग-नींद धर ध्यान ॥
हरि के कर्ण-कीट से उपजे, मधु-कैटभ राक्षस दो घोर ।
और हुए उद्यत करने को, वध ब्रह्मा का अति रोर ॥
हरि के नाभि-कमल पर बैठे, ब्रह्मा उन असुरों को देख ।
और जनार्दन को लख सोते, भय से व्याकुल हुए विशेष ॥
चैतन्य-रूप हरि-निद्रा की, जो पालन-विनाश करती ।
हरि-नेत्रों में बसनेवाली, विश्वेशी जो जग रचती ॥
करने लगे वहां वे उसकी, बिनती लगा ध्यान में चित्त ।
जाग पड़ें हरि उनका था बस, उस क्षण केवल यही निमित्त॥

ब्रह्मा बोलेः—

तुम स्वाहा हो तुम्हीं स्वधा हो, वषट्कार स्वर-रूपा हो ।
हे नित्या ! तुम सुधा-स्वरूपा, तीनो मात्रा रूपा हो ॥
होता नहीं कभी उच्चारण, आधी मात्रा वह तुम हो ।
सन्ध्या, जननी, हो सावित्री, और परा देवी तुम हो ॥
यह सब तुम धारण करती, इस जग को उपजाती हो ।
देवि ! इसे फिर पालन करती, और अन्त में खाती हो ॥

---

* वे तरंगें, जिनकी आवृत्ति संख्या बीस साइकिल प्रति सेकेण्ड (20 Cycles per Second) से लेकर बीस हजार साइकिल प्रति सेकेण्ड (20,000 Cycles per Second) के बीच होती है, श्रवण-तरंगें (Audible Waves) कहलाती हैं। केवल यही तरंगें हमारे कानों को कार्य के लिए प्रेरित करती हैं।

सृष्टि-काल में सृष्टि-रूप तुम, पालन में स्थिति-रूपा हो ।
इस जग के प्रलय-काल में, जगन्मये हृति-रूपा हो ॥
विद्या महा महामाया हो, मेधा महा महा-स्मृति हो ।
देवी महा महा-मोहा हो, महासुरी हो संसृति हो ॥
त्रिगुण-प्रकाशक प्रकृति सभी की, काल-रात्रि तुम हो जननी ।
दारुण मोह-रात्रि तुम ही हो, महा-रात्रि हो भय-शमनी ॥
श्री ईश्वरी और ह्री-रूपा, तुम तो बुद्धि-स्वरूपा हो ।
लज्जा, पुष्टि, तुष्टि-रूपा हो, शान्ति, क्षान्ति तुम रूपा हो ॥
खड्ग, शूल औ गदाधारिणी, चक्र-धारिणी तुम देवी ।
बाण, भुशुण्डी, परिघ, चाप औ शङ्खधारिणी तुम देवी ॥
सौम्या तुम हो सौम्य-तरा हो, सौन्दर्यों में अति सुन्दर ।
परमेश्वरी परों-अपरों की, हो परमा तुम ही सुखकर ॥
सत या असत जहां जो कुछ है, उस सबका जो शक्तिनिचय ।
वह बस एक तुम्हीं हो देवी, कैसे तेरी करूँ विनय ॥
सृष्टा और जगत का पालक, जो उसका संहर्त्ता है ।
सो भी निद्रित तेरे द्वारा, विनय कौन कर सकता है ॥
तेरे द्वारा ग्रहण किया है, हरि हर मैंने दिव्य शरीर ।
बिनती करने को तब होगा, कौन समर्थ यहां मति धीर ॥
निज उदार महिमा के द्वारा, संस्तुत तुम हो हे देवी ।
मधु-कैटभ दोनों असुरों को, मोहित करिये हे देवी ॥
जगन्नाथ अच्युत अब जागें, इन असुरों के निधन निमित्त ।
हो विस्फुरित शक्ति अति उनकी, सत्वर होवें कार्य-प्रवृत्त ॥

ऋषि बोले —

ब्रह्मा के विनती करने पर, विष्णु जगाने को आहूत ।
मधु-कैटभ का वध करने को, हुई तामसी आविर्भूत ॥
आंख नाक मुख बाहु हृदय औ, वक्ष देह से शीघ्र निकल ।
निद्रा-देवी विधि के सम्मुख, खड़ी हो गई तब अविकल ॥
निद्रा से हो मुक्त जगत्पति, जाग पड़े तत्क्षण भगवान ।
एकार्णवी शेष-शैय्या से, उठे जनार्दन कृपा-निधान ॥
बली पराक्रमशाली मधु को, कैटभ को हरि ने उस काल ।

विधिको खा जाने को उद्यत, देखा क्रोधित अति विकराल ॥
उठकर श्री भगवान विष्णु ने, किया वहां उनसे भारी ।
पांच हजार वर्ष तक केवल, बाहु-युद्ध अति भयकारी ॥
माया के प्रभाव से मोहित, बल के मद से जो भरपूर ।
वर मांगो तुम हमसे बोले, केशव से दोनो वे शूर ॥

भगवान् बोलेः—

यदि तुम मुझसे तुष्ट हुए हो, बनो बध्य मेरे चित धार ।
यहां अन्य वर ठीक नहीं है, चुना इसे है सोच-विचार ॥

ऋषि बोलेः—

इस विधि धोखा खा जाने पर, देख भूमि सारी जल-मग्न ।
कमल-नयन हरि से वे दोनों, बोले होकर चिन्ता-लग्न ॥
जल से परिप्लुत न हो मेदिनी, ऐसा उत्तम स्थल पाकर ।
यही मांगना एक हमारा, करो वहां वध ले जाकर ॥

ऋषि बोले —

चक्र-गदा-धारी हरि ने तब, ऐसा ही होगा कह कर ।
काट चक्र से डाले उनके, सिर रख जंघा पर सत्वर ॥

कल्पान्त होने पर अर्थात् जीव के पार्थिव विषय-चिन्तन के अन्त हो जाने पर विष्णु अर्थात् जीवात्मा योग-निद्रा में अभिभूत अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों से निष्क्रिय हो जाता है ।....इस जीव की शय्या है शेषनाथ अर्थात् अचित् भाव की शेषावस्था और यदि शेष को अनन्त कहें तो असीम भाव के तात्पर्य का ही बोध होता है । वस्तुतः जगत् में ऐसा कुछ भी छोटा नहीं, जिसकी आधार-शक्ति का बोध असीम भाव से न समझ सकें । मात्र दो एक शक्तियों ने ही केवल हमको, तुमको सम्हाल कर नहीं रखा है, अपितु सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, अखिल जगत् को बनानेवाली सभी शक्तियों का हाथ हमारे, तुम्हारे अस्तित्व के पीछे है । पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण, वायुमण्डल का दबाव आदि शक्तियाँ ही हमारे अस्तित्व का आधार नहीं हैं, अपितु वे शक्तियाँ भी हमारे अस्तित्व को बनाये हुये हैं, जिनके कारण पृथ्वी का अस्तित्व सौर-जगत् में बना हुआ है । हमारे अस्तित्व के आधार की इन शक्तियों का परस्पर आकर्षण अत्यधिक जटिल है । जब मात्र दो एक शक्तियों के परस्पर-आकर्षण-सम्बन्धी 'लाप्लास' का सिद्धान्त अत्यधिक जटिल प्रतीत होता है, तब इन अनन्त शक्तियों के परस्पर आकर्षण-सम्बन्ध को किस प्रकार समझा जा सकता है !

...विष्णु के नाभि-कमल पर ब्रह्मा बैठे हैं । नाभि-कमल और ब्रह्मा से क्या बोध होता है, इसकी विवेचना आवश्यक है । नाभि-स्थान शब्दाभिव्यक्ति का आश्रय-

स्थान है। अतएव शब्द-ज्ञान का आविर्भाव प्रथमतः नाभि-स्थान से ही होता है। ब्रह्मा (शब्द-ब्रह्म) विष्णु (जीवात्मा) के नाभि-स्थान से आविर्भूत हो रहे हैं, इससे यही बोध होता है कि ब्रह्मा शब्द-ब्रह्म हैं। विशुद्ध शब्द ही, जो नाभि-स्थान में अभिव्यक्त होता है, ब्रह्मा का कलेवर है।

अतएव विष्णु (जीवात्मा) के नाभि-कमल पर बैठनेवाले ब्रह्मा (शब्द-ब्रह्म) मनः-प्रधान हैं। इन मन-रूपी ब्रह्मा से नाभि-प्रदेश में स्थित स्नायु-केन्द्र (मणिपुर चक्र) की शक्ति से विशेष विशेष भावों का ज्ञान उपलब्ध होता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ज्ञान केवल मस्तिष्क में नहीं होता है, अपितु विशिष्ट-विशिष्ट भावों के ज्ञान अन्य स्नायु-केन्द्रों (Plexus of Nurves) में भी होते हैं। हमारे ऋषियों के अनुसार प्रथम ज्ञान या आभास नाभि-जन्य मनःशक्ति (ब्रह्मा) को होता है। हमारी यह मनःशक्ति जितनी संवर्धित रहती है, उतना ही शुद्ध ज्ञान होता है।

....फिर हमारी धारणा जितनी विशुद्ध रहती है, उतना ही विशुद्ध प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। हमारी धारणा किस तरह ठीक हो; विष्णु (जीवात्मा) की वैष्णवी-शक्ति में सम्पूर्ण सृष्टि की सम्भावना, सूचना व प्रेरणा का विशुद्ध शब्द-ज्ञान (ब्रह्मा) हमें किस तरह हो, यही यहाँ विवेच्य विषय है—

सोये हुए विष्णु (जीवात्मा) के दोनों कानों से दो मैल-रूपी राक्षस मधु व कैटभ की उत्पत्ति होती है। बिना इन दोनों मल-रूपी राक्षसों (कर्ण-दोषों) का बध किए विष्णु (जीवात्मा) अपने अन्दर निहित वैष्णवी शक्ति की सृष्टि-सम्भावना, सूचना व प्रेरणा का आभास प्राप्त नहीं कर सकते। ब्रह्मा शब्द-ब्रह्म होने के लिये वाग्देवता का स्तव करते हैं।

उक्त दृष्टान्त से यही ज्ञात होता है कि बीजमन्त्रों की शक्ति सोई हुई है। उसे बिना जगाये अर्थ नहीं जुट सकता। बीज-मन्त्रों के विशुद्ध उच्चारण से ही वे अर्थ-सफलता से धन्य हो उठेंगे। अब तक हमें इसी महान् सत्य का बोध हुआ है।

बीज-मन्त्रों की साधना

..परन्तु क्या बीज-मन्त्रों के जप से हम विशुद्ध बीज-मन्त्र को पा सकते हैं?—हम जानते हैं कि हमारे इस गत्यात्मक जगत् में सभी कुछ अक्ष (**Axis**) का आश्रय लेकर होता है। जहाँ गति सीधी रेखा में होती है, वहाँ रेखा ही उस गति का अक्ष होती है। जहाँ आवर्तन (**Rotation**) होगा, वहाँ जिस रेखा के सापेक्ष आवर्तन हो रहा है, वही अक्ष होगा।....पृथ्वी भी एक विशेष अक्ष का सहारा लेकर भ्रमण-शील है। पेड़-पौधों की शाखाएँ मुख्य तने का आश्रय लेकर ही चारों ओर फैल रही हैं। छोटे से पत्ते में भी मुख्य शिरा का सहारा लेकर शिराएँ–प्रशिराएँ चारों ओर फैल रही हैं। हममें, तुममें भी स्नायु-जाल मेरु-दण्ड (**Spinal-Cord**) का सहारा लेकर चारों ओर फैल रहा है। यही नहीं, हमारा तुम्हारा सम्पूर्ण वंश एक ही पदार्थ (**Germ-plasm**) का सहारा लेकर आगे बढ़ रहा है, यद्यपि वह नित अपने स्वरूप को अविकृत और अविच्छन्न कर लेता है।....ठीक इसी प्रकार हमारे जगत् में विचित्र शब्द, विभिन्न प्रकार की भाषाएँ, विभिन्न जीवों की विभिन्न ध्वनियाँ बह रही हैं, किसी मुख्य अक्ष का सहारा ही लेकर। और यदि ऐसा है तो निश्चय ही जिस प्रकार फैली हुई लताओं को हटाकर मूल तने को खोजा जा

सकता है; शिराओं-प्रशिराओं को हटाते हुये मुख्य शिरा को खोजा जा सकता है; वंश के क्रम को देखते वंश-परम्परा का मूल खोजा जा सकता है, उसी प्रकार हम अपने जगत् में फैले हुये विभिन्न शब्दों—नाना जीवों की विभिन्न भाषाओं के मूल को भी ढूंढ़ सकते हैं; खोज सकते हैं, जिसका सहारा लेकर ही ये विभिन्न शब्द, विभिन्न जीवों की विभिन्न भाषाएँ आविर्भूत हुई हैं। इसके अतिरिक्त जटिल छन्दोगत गति (Complex harmonic motion) ध्वनि में से सरल छन्दोगत गति (Simple harmonic motion) ध्वनि को फूरियार (Fourier) की रीति ❀ द्वारा अलग करना हम अभी भूले नहीं हैं।

यही नहीं, जिस प्रकार हम चुम्बक के शक्ति-व्यूह (Field of lines of forces) की प्रतिकृति खींच सकते हैं, ठीक उसी प्रकार बीजमन्त्रों का आश्रय लेकर वस्तु-विशेष (जिसका बीजमन्त्र है) के शक्ति-व्यूह की प्रतिकृति को खींचा जा सकता है; पाया जा सकता है। अतएव 'बीज-मन्त्र' मात्र कल्पित पराकाष्ठा (Limit) नहीं है अपितु हमारे लिये यह अर्जन की वस्तु है।....

उपर्युक्त सभी तथ्यों से हमें इसी महान् सत्य का ज्ञान होता है कि शब्द जितना अस्वाभाविक होगा, उतना ही वह अशक्त—असमर्थ होता जायेगा। शब्द होगा, परन्तु अर्थ न होगा; आऊँगा और बक-बककर मर जाऊँगा, परन्तु अर्थ अपने भाग्य में बटोर न पाऊँगा। इस प्रकार के असमर्थ या अशक्त (Un-creative) शब्दों को लेकर जीवन-निर्वाह करना केवल झख-मारी है।

❀ फूरियार-सिद्धान्त (Fourier's Theorem) गणित-परक वह सिद्धान्त है, जिसके द्वारा कई भी जटिल छन्दोगत गति-ध्वनि कई सरल छन्दोंगत गति-ध्वनि के अवयवों में विभाजित की जा सकती है।

वस्तुत कई ध्वनि-तरंगें एक दूसरे के मूल गुणों को परिवर्तित किए बिना एक ही माध्यम में एक साथ बह सकती हैं। इस तथ्य को इस उदाहरण से सहज ही समझाया जा सकता है कि एक वाद्य-गीत जब किसी गायक-मण्डली में बजाया जाता है, तब विभिन्न प्रकार के वाद्य-उपकरणों से उत्पन्न होनेवाली विभिन्न प्रकार की ध्वनि-तरंगें एक दूसरे के मूल गुणों (Pitch, Intensity, Quality) को परिवर्तित किए बिना उक्त विशिष्ट वाद्य-गीत को प्रस्तुत करती हैं। अतएव विभिन्न प्रकार की ध्वनि-तरंगें एक ही माध्यम में एक दूसरे की अपेक्षा स्वतन्त्र रूप से बहती हैं। इसलिए माध्यम के किसी भी विन्दु पर परिणामी-स्थानान्तरण (Resultant Displacement) सभी ध्वनि-तरङ्गों के निज स्थानान्तरणों के योग के बराबर होता है।

दूसरा अध्याय

जप क्या है ?

जप-क्रिया ध्वनि (व्यक्त या अव्यक्त), संख्या और भाव से परिपूर्ण होती है। इन तीनों में से किसी एक के न होने पर जप-क्रिया सम्पूर्ण नहीं होती ।...जप-क्रिया के निर्वाहक क्रमशः वाक्, प्राण और मन हैं। ये तीनों भी तीन प्रकार से कार्यरत हैं —१ स्वानुगत, २ स्व-गत और ३ समष्टि-गत।

जप-क्रिया अथवा मन्त्र-शक्ति इस तथ्य पर निर्भर करती है कि कहाँ तक हमारा मन्त्र समर्थ है एवं उसमें सामञ्जस्य व समुच्चय किस श्रेणी तक है। समर्थ मन्त्र या जप में मन्त्र के प्रत्येक अक्षर की स्पन्दन या कम्पन-संख्या एवं विधि एक सुनिश्चित आकृति की होनी चाहिये। इसी से मन्त्र की स्वानुगत संख्या एवं रीति निर्धारित होती है। प्रत्येक अक्षर के स्पन्दन का मिलन (Compounding) भी आवश्यक है। उसके बिना अक्षरों का स्पन्दन या कम्पन प्रसरित होकर बिखर जायगा। अतएव अक्षरों की स्पन्दन-संख्या एवं रीति के अतिरिक्त मन्त्र-नाम की स्वगत-संख्या व रीति होती है। यही नहीं, १०८ या १००८ बार जपने पर समष्टि-गत स्पन्दन-संख्या एवं रीति भी उत्पन्न होती है और अगर यह समष्टि-गत स्पन्दन-संख्या रीति, आकृति और आयतन में एक निर्दिष्ट सीमा में उपनीत न हो, तो मन्त्र समर्थ नहीं होता। दूसरे शब्दों में जपकर्म सामर्थ्य-हीन रहेगा।

यदि उक्त स्पन्दनों का सम्बन्ध एक दूसरे से भग्नांश* रूप में होगा, तो मन्त्र-शक्ति की सामञ्जस्य-शक्ति अत्यधिक क्षीण होगी। दूसरे शब्दों में समष्टि-गत स्पन्द-संख्या एवं रीति आयतन तथा आकृति में एक निर्दिष्ट सीमा में नहीं होगी और ध्वनि-तरङ्गों का संघात असमर्थ रहेगा। ऐसी परिस्थिति में ध्वनि-तरङ्गों का समाहार होने पर समुच्चय या संग्रह भी सामर्थ्यवान नहीं होगा।

हम जानते हैं कि यदि ठीक एक ताल में क्रम-रूप से एक भी मृदु कम्पन उत्पन्न हो जाय, तो उसमें इतनी शक्ति होगी कि वह पहाड़ को भी उखाड़ सकता है। ठीक इसी प्रकार मन्त्र-शक्ति भी अमोघ तभी होती है, जब उक्त स्पन्दन एक ही ताल में हों। एक ही ताल अथवा सम-ताल होने पर ही अनुरणन उत्पन्न होता है। मन्त्र-शक्ति इसी अनुरणन-प्रभाव पर निर्भर करती है। जब तक अनुरणन न होगा, तब तक पूर्ण सामञ्जस्य की सृष्टि नहीं हो सकती। ऐसी परिस्थिति में ध्वनि-तरङ्गों का संघात सामञ्जस्य-युक्त न होकर सामञ्जस्य-हीन अर्थात् अशक्त होगा, क्योंकि इस परिस्थिति में ध्वनि-तरङ्गें वक्रीभाव, विषमता आदि के प्रभाव में आकर विभिन्न प्रकार के विरोधों की सृष्टि करेंगी, जिसके परिणाम-स्वरूप मूल स्पन्दन के प्रति-स्पन्दन विवादी आदि उत्पन्न होंगे अर्थात् मन्त्र-शक्ति क्षीण हो जायगी।

जप की सफलता

जप-क्रिया का साफल्य बहुत कुछ अपने अन्न-मयादि कोशों पर भी निर्भर करता है। दूसरे शब्दों में जप-क्रिया को सूक्ष्म में भी उपर्युक्त अनुरूपता-विरूपता के नियम में पड़ना ही पड़ता है। सूक्ष्म की यह अनुरूपता निम्नलिखित तीन तथ्यों पर निर्भर करती है—

(१) जब जप-कर्ता का यन्त्र या अन्नमयादि कोश जप-क्रिया से पूर्णतः मिला हुआ है (अर्थात् पूर्ण श्रद्धा है)

(२) जब जप-कर्ता का यन्त्र या अन्नमयादि कोश पूर्णतः विपरीत है (अर्थात् श्रद्धा-हीन है) ।

(३) जब जप-कर्ता का अन्नमयादि कोश आंशिक रूप में मिला है ।

प्रथम स्थिति में अनुरणन होगा । फलस्वरूप जप-क्रिया सफल होगी ।

दूसरी स्थिति में विषमता बहुलता में होगी । फलस्वरूप जप-कर्ता या साधक के संस्थान में जिन प्रतिस्पन्दनों, प्रतिकम्पनों का निर्माण होगा, वे अत्यधिक विरुद्ध हो सकते हैं ।

तीसरी स्थिति में यह सम्भव है कि जप-क्रिया जप-कर्ता या साधक के संस्थान के यन्त्रों के सूक्ष्म अवयवों के विन्यास (Configuration) को एवं क्रिया के छन्द को अपने भाव के अनुरूप धीरे-धीरे बदल ले । क्योंकि हमें यह ज्ञात है कि जड़ पदार्थों और जीव-पदार्थों के मौलिक परिवर्तन इसी प्रकार होते हैं । एटामिक-नम्बर, मालीकुलर-डिस्ट्रीब्यूशन, क्रोमोंशोम्स और जीन–इन सबका परिवर्तन बाह्य कारणों पर निर्भर होने के कारण इसी प्रकार होता है । जप-कर्ता के संस्थान के यन्त्र जिस अनुपात में जप-क्रिया के अनुरूप होते जाएँगे, उसी अनुपात में अनुरणन-प्रभाव अधिक होता जायेगा ।

उपर्युक्त अनुकूलता के कारण ही सूक्ष्म में जप-कर्ता के संस्थान में कुण्डलनी का जागरण और चक्रों का भेदन सम्भव होता है । दूसरे शब्दों में जप-क्रिया द्वारा बहिर्मुख अन्तर्मुख मन में परवर्तित हो जाता है । मनोविज्ञान के पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार भी मन दो प्रकार का होता है–१–गूढ़ मन, २––बाह्य मन । अन्तर्मुख मन की अगाध शक्तियों को पाश्चात्य विद्वान् भी स्वीकार करते हैं । सर विलियम हैमिल्टन के अनुसार–"अन्तर्मानस के कपाट खुलते ही समस्त ज्ञान-भण्डार के भी द्वार खुल जाते हैं ।"

अमरीका के प्रसिद्ध मनोविज्ञान-शास्त्री डा० हडसन के अनुसार––

बाह्य मन पञ्च-ज्ञानेन्द्रियों के अधीन होकर ज्ञान-लाभ प्राप्त करता है परन्तु गूढ़ मन ज्ञानेन्द्रियों की सहायता के बिना बहुत अधिक ज्ञान प्राप्त कर लेता है ।... 'अन्तर्मन गूढ़-मन अन्त.स्फूर्ति, गत स्मृति और सुषुप्ति के कार्यों का अधिष्ठान है । वह देहातीत रह सकता है सहस्रों कोसों दौड़कर वहाँ की बातें जान सकता है । उसमें परिचित ज्ञान (Telepathy) अतीत-अनागत ज्ञान और अपरोक्ष ज्ञान विद्यमान है । वह सोता नहीं । सभी शारीरिक शक्तियों पर उसका अधिकार होता है । हृदय की क्रिया, श्वसन-क्रिया, पाचन-क्रिया, रोग-क्रिया आदि शारीरिक क्रियाओं को वह रोक सकता है और तीव्र भी कर सकता है । ज्ञानेन्द्रियों की सब शक्तियाँ उसके अधीन होती हैं । "

जप-क्रिया के इसी रहस्य के कारण नोबुल-पुरस्कार प्राप्त डा० एलेक्सीजक चरेल ने अपने (Man-the unknown) ग्रन्थ में, मनोविज्ञान शास्त्रियों के मुकुट-मणि प्रो० जेम्स ने अपने ग्रन्थ (Varieties of Religious Experence) में और ब्रेटेंन ने अपने एक ग्रन्थ के (Influence of Prayer) शीर्ष-प्रकरणों में मन्त्रों के प्रभाव को स्वीकार किया है ।

जप का महत्व

पिछले अध्याय में हमने 'बीजमन्त्र क्या हैं ?' 'बीजमन्त्रों की शक्ति ?' 'बीजमन्त्रों की साधना' एवं 'जप क्या है ?' तथा 'जप की सफलता' आदि विषयों पर विचार किया है, परन्तु प्रश्न उठता है कि आज के आधुनिक युग में जप-क्रिया का क्या महत्व है ?

जप-विज्ञान के महत्व को समझने के लिये यह आवश्यक है कि हम लोग जप-क्रिया एवं आधुनिक वैज्ञानिक क्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन करें। साथ ही यह देखने का प्रयास करें कि कौन सी क्रिया मानव-समाज के लिए श्रेष्ठ व लाभदायक है।

जप और अणु विज्ञान

अणु-विज्ञानात्मक पदार्थ-विज्ञान ही आजकल विज्ञान के सम्पूर्ण अङ्गों की अन्तिम पहुँच है। आइये, सर्वप्रथम इसी अणु-विज्ञान का, जिसके द्वारा आज हम प्रकृति-विजेता बनने का स्वप्न देख रहे हैं, किञ्चित् सिंहावलोकन करें। फिर विचार करें कि हमारे जप-विज्ञान से इसका क्या सम्बन्ध है; जप-विज्ञान व आधुनिक विज्ञान की एक दूसरे के प्रति क्या पहुँच है।

पदार्थ के मूल की खोज करते हुये पदार्थ-वैज्ञानिक ने आश्चर्य के साथ देखा कि पदार्थ का सूक्ष्मतम अंश —'अणु' कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है; द्विजातीय परमाणुओं का एक संहार मात्र है। ये द्विजातीय परमाणु 'धनाणु' एवं 'ऋणाणुओं' के रूप में व्यक्त हुए। प्रत्येक पदार्थ के प्रत्येक अणु में एक धनाणु एवं एक निश्चित संख्या के ऋणाणुओं की संख्या की न्यूनाधिकता ही पदार्थ की भिन्नता का कारण है। सबसे बड़े आश्चर्य को बात यह देखने में आई कि ये परमाणु अनवरत रूप से गति-शील हैं। ऋणाणु अनवरत रूप से धनाणु की परिक्रमा कर रहे हैं——उसी प्रकार, जिस प्रकार सौर-मण्डल के ग्रह सूर्य की। ऋणाणुओं की गति का गणितागत अनुमान है कि वे धनाणु की परिक्रमा करते हुये अनेक सहस्र मील प्रति सेकेण्ड की गति से गति-शील हैं। ऋणाणुओं की इस गति में किञ्चित् मात्र विक्षेप सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के संहार की शक्ति रखता है।

उक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुये आधुनिक वैज्ञानिक अणु-केन्द्र (Atomic Nucleous) विखण्डन द्वारा शक्ति-दर्शन करते हुये न्यूट्रानों को अणु-केन्द्र में स्थिर कर उपटोन-निर्माण द्वारा अणुओं की ऋणाणु गति से लाभान्वित हो रहे हैं। आधुनिक वैज्ञानिक साधन-पद्धति किस प्रकार श्रम एवं अर्थ-साध्य है, इसका अनुमान प्रत्येक पाठक को है। केवल उसका संक्षिप्त सिंहावलोकन करने की दृष्टि मात्र से अणु प्रयोगों के एकमात्र आधार न्यूक्लियर-रिएक्टर (Nuclear Reactor) का थोड़ा सा परिचय दे देना यथेष्ट होगा।

सन् १९५० में न्यूयार्क के समीप उपटोन स्थान में स्थित 'ब्रुकहेवेन—नेशनल लेबोरेटरी' ने सर्वप्रथम इस शक्तिशाली यन्त्र का निर्माण किया। सन् १९४२ में निर्मित न्यूक्लियर रिएक्टर से कहीं अधिक शक्ति-उत्पादन की यह क्षमता रखता है। कई मञ्जिलों वाला ग्रेफाइट धातु से निर्मित यह विशालकाय यन्त्र हर घड़ी वायु द्वारा ठण्डा रखा जाता है।

इसे हम मुख्यतया पाँच भागों में विभाजित कर सकते हैं —

(१) शीशे का बना मॉडरेटर, (२) ईंधन (यूरेनियम), (३) नियन्त्रण-व्यवस्था, (४) सुरक्षा-व्यवस्था और (५) कुल यन्त्र को ठण्डा रखने की यान्त्रिक व्यवस्था।

मॉडरेटर में बहुत तङ्ग खड़ी-खड़ी दराजें और नालियाँ होती हैं, जिनमें होकर ताप को नियत अवस्था में रखनेवाली वायु गुजरती है। यन्त्र के इस उपकरण का मुख्यकार्य केवल प्रतिक्रिया की शृङ्खला के समय अणु से अलग हो जानेवाले न्यूट्रोनों की गति कम करना है। न्यूट्रोनों की गति केवल इतनी रखी जाती है कि जब वे अन्य अणु-केन्द्रों से टकरायें, तो केन्द्र का खण्डन हो जाय।

यूरेनियम एक प्रकार की धातु होती है। मूल धातु यूरेनियम २३५ की अपेक्षा कठोर होती है। शत-प्रतिशत मूल यूरेनियम में एक प्रतिशत से भी कम यूरेनियम २३५ पाया जाता है। यूरेनियम २३५ का तात्पर्य यह है कि उसके केन्द्र में न्यूट्रानों की संख्या कम होती है। इससे

केन्द्र में सक्रिय शक्ति कुछ निर्बल होती है। साथ ही यूरेनियम २३५ विखण्डनीय पदार्थ की श्रेणी में आता है। लगभग ४० हजार रु० प्रति पौंड मूल्यवाले यूरेनियम से यूरेनियम २३५ की उपलब्धि के लिए शोधन-कार्य एक जटिल वैज्ञानिक प्रक्रिया होती है। इस शोधन-कार्य के लिए यन्त्रालय में 'किट' धातु की बड़ी-बड़ी चादरें प्रयोग में लाई जाती हैं–जिनमें इतने छोटे छिद्र होते हैं कि उनमें होकर केवल इच्छित अणु-गुच्छ ही पार हो पाते हैं। इनके द्वारा शोधित यूरेनियम २३५ की छोटी-छोटी कणिकायें रिएक्टर की दीवारों में बने रिक्त स्थानों में प्रविष्ट कर दी जाती हैं। यन्त्र के चालू होने पर सेकेण्ड से भी कम समय में अरबों अणुओं का विखण्डन होता है। यूरेनियम २३५ के विखण्डन के समय ताप के रूप में अपार शक्ति की उत्पत्ति होती है।

रिएक्टर के चालू होने के समय अणु-विखण्डन-क्रिया पर पर्याप्त नियन्त्रण रखना एक महत्व-पूर्ण क्रिया है। इसी नियन्त्रण के कारण सम्पूर्ण यन्त्र अणुबम की तरह फट नही पाता। विभिन्न नियन्त्रक उपकरणों में 'बोरोन' तत्व-गुणों की छड़ें प्रधान कार्य करती हैं। ये सोख्ते की तरह न्यूट्रोनों को सोखने की क्षमता रखते हैं, जो केन्द्र-विखंडन में मुख्य उपकरण का कार्य करते हैं। जिस समय आपरेटर वैज्ञानिक को यह पता चलता है कि विखण्डन-कक्ष में न्यूट्रोनों का अधिक उत्पादन ताप को खतरनाक डिग्री तक बढ़ानेबाला है, उसी समय वह उस कक्ष में अन्य यान्त्रिक प्रक्रिया द्वारा 'बोरोन' तत्व की छड़ें प्रविष्ट कर देता है और वे छड़ें अतिरिक्त न्यूट्रोनों को सोखकर ताप-क्रम को कम कर देती हैं।

रिएक्टर के समीप काम करनेवाले कर्मचारियों को अणु-विकिरण से सुरक्षित रखने के लिए कंक्रीट की बनी हुई कई फुट मोटी चादरें यन्त्र को ढँके रखती हैं। अणु-विखण्डन के समय पैदा हुई किरणें चादरों को पुनः पार नहीं कर सकतीं।

रिएक्टर के चारों ओर षण्मुखी (घनाकार) सूक्ष्म-मार्ग वायु-सञ्चार के लिए बने होते हैं। यन्त्र में कार्य करनेवाले वैज्ञानिक जब यह देखते हैं कि बाहरी मौसम का ताप-क्रम रिएक्टर के अन्दर प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न कर रहा है, तब तुरन्त यन्त्र को बन्द कर देते हैं।

यह है आधुनिक अणु-विज्ञान के एकमात्र उपकरण 'न्यूक्लियर रिएक्टर' यन्त्र का सक्षिप्त परिचय।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कुछ ऐसे भी अणु-विस्फोट होते हैं, जिनका कोई मानवीय उपयोग नहीं है। वे मात्र संहारक हैं—जैसे कि उदजन (हाइड्रोजन)-बम।

जिस प्रकार आज के आधुनिक युग में अणु-विज्ञान का प्रयोग-कर्त्ता अणुओं के विस्फोट द्वारा लाभ प्राप्त करना चाहता है, ठीक उसी प्रकार जप-विज्ञान का साधक (प्रयोग-कर्त्ता) जप से लाभ प्राप्त कर कृतकृत्य होना चाहता है।

जप-विज्ञान में साधक को शक्ति-दर्शन के लिये किसी बाह्य उपकरण की आवश्यकता नहीं रहती। इसमें साधक का शरीर ही प्रयोग हेतु उसका उपकरण है। दूसरे शब्दों में इस विज्ञान में बाह्य प्रकृति के स्वभाव, नियम आदि को समझे-बूझे बिना जड़ अणुओं का केन्द्र-विखण्डन करना अनुचित है। जब सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड चेतन व जड़ कोशों (सेल्स) द्वारा ही निर्मित है, तब हमारा अपना शरीर भी तो अनन्त कोटि परमाणुओं का एक पुञ्ज है। और यदि ऐसा है, तो प्रकृति के व्यावहारिक ज्ञान के बिना बाह्य जड़ कोशों के अणुओं का 'केन्द्र-विखण्डन' करना कोई बुद्धिमानी की बात न होगी।

शक्तिवाद का इतिहास और शक्ति के रूप

जहाँ तक शक्तिवाद के इतिहास और शक्ति के प्रधान रूपों का विषय है, यह भली भाँति ज्ञात है कि आधुनिक विज्ञान के शक्ति-वाद का इतिहास अभी एक शताब्दी से कम पुराना है। इसके विपरीत भारतीय शक्तिवाद कहाँ कब प्रारम्भ हुआ, यह तो ठीक-ठीक ज्ञात नहीं है, परन्तु यह माना जा सकता है कि जब ब्रह्म-वादियों में यह

जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि—

किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता ।
जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठा ॥
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु ।
वर्तामहे ब्रह्म-विदो व्यवस्थाम् ॥

अर्थात् कारण ब्रह्म क्या है ? कहाँ से हमारा जन्म हुआ, किसके द्वारा हम जीवित हैं और प्रतिष्ठा कहाँ है ? विविध सुखों में रहते हुये हम ब्रह्म-विद् की व्यवस्था का निर्वाह किसकी प्रेरणा से करते हैं ?

और इस जिज्ञासा के उत्तर में काल, स्वभाव तथा अदृष्टादि अनेक कारणों के ज्ञात होने पर भी जब उन ब्रह्म-वादियों को सन्तोष नहीं हुआ, तभी से भारतीय शक्तिवाद का सूत्रपात हुआ होगा—

ते ध्यान-योगानुगता अपश्यन् ।
देवात्म-शक्ति स्वगुणैर्निगूढाम् ॥
यः कारणानि निखिलानि तानि ।
कालात्म-युक्तान्यधितिष्ठत्येकः ॥

अर्थात् उन ब्रह्म-वादियों ने ध्यान-योग के द्वारा उस दैवी आत्म-शक्ति को देखा, जो अपने ही गुणों के द्वारा गुप्त रहती है और जो काल तथा आत्मा से युक्त अखिल कारणों को एकी-भूत करती है ।

उक्त दैवी-शक्ति के प्रधान रूपों का जहाँ तक सम्बन्ध है, वहाँ दश महाविद्या, नव दुर्गा, अष्ट-मातृका, चतुःषष्टि-योगिनी आदि स्वरूपों की चर्चा करने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि ये शक्ति के वे सूक्ष्म रूप हैं, जिनकी कल्पना तक आज का विज्ञान नहीं कर पाया है । महाशक्ति के स्थूल रूप ही सृष्टि-सञ्चालन के कार्य को वहन करते हैं । इनकी ही कल्पना कहाँ तक हमारा पाश्चात्य शक्ति-विज्ञान कर पाया है, इसी को हमें देखना है ।

श्री दुर्गासप्तशती में (१) विष्णुमाया, (२) चेतना, (३) बुद्धि, (४) निद्रा, (५) क्षुधा, (६) छाया, (७) शक्ति, (८) तृष्णा, (९) क्षान्ति, (१०) जाति, (११) लज्जा, (१२) शान्ति, (१३) श्रद्धा, (१४) कान्ति, (१५) लक्ष्मी, (१६) वृत्ति, (१७) स्मृति, (१८) दया, (१९) तुष्टि, (२०) माता, (२१) भ्रान्ति और (२२) चिति—ये बाइस रूप विश्व-व्यापक शक्ति के बताए गए हैं । इनके अतिरिक्त सप्तशती यन्त्र में १६ वी संख्या पर 'धृति' और २१ वीं संख्या पर 'पुष्टि'—इन दो रूपों का और उल्लेख है । इस प्रकार कुल २४ रूप हो जाते हैं । ये रूप प्राणियों में उत्पन्न होनेवाली वृत्तियाँ मात्र नहीं हैं, वरन् क्रम से विष्णुमाया के स्थूलतर २४ स्वरूपों के प्रस्तावित नाम हैं । इस प्रकार स्थूलतम चौबीसवाँ रूप 'चिति' ठहरता है ।

चिद्-शक्ति क्या है ?

चिद्-शक्ति पर कुछ विचार करने से पूर्व यह उचित होगा कि हम अस्तित्व यानी जीव की विभिन्न अवस्थाओं पर विचार करें।...माण्डूक्योपनिषद् ने अस्तित्व याने जीव की चार अवस्थाएँ बताई हैं—१ जाग्रत्, २ स्वप्न, ३ सुषुप्ति और ४ तुरीय ।

१—जाग्रत् अवस्था

जाग्रत् स्थानो बहिष्प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशति मुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः ।'

अर्थात् जाग्रत् अवस्था बहिः–प्रज्ञ है । उसके सारे अनुभव बाहर की ओर होते हैं । उसके सात अङ्ग हैं–१ स्थूल, २ प्राण, ३ मन, ४ बुद्धि, ५ विज्ञान, ६ चित्त और ७ अहङ्कार । उसके १९ मुख ये हैं––पाँच ज्ञानेन्द्रिय + पाँच कर्मेन्द्रिय + पाँच तन्मात्राएँ =१५ और १६ मन, १७ बुद्धि, १८ चित्त तथा १९ अहङ्कार ।

पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ हैं–१ कान, २ त्वचा, ३ आँख, ४ जिह्वा और ५ नाक तथा पञ्च तन्मात्राएँ हैं– १ शब्द, २ स्पर्श, ३ रूप, ४ रस और ५ गन्ध । कान का विषय

जीवन-ज्योति

[चिद्-शक्ति = जीव का काल्पनिक चित्रण]

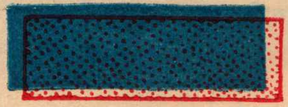
(१) भूमि

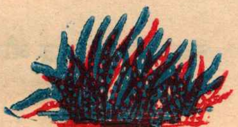
(२) घास

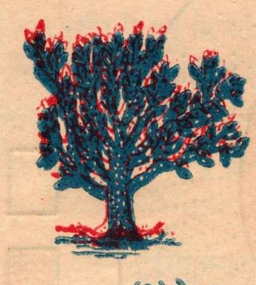
(३) पेड़

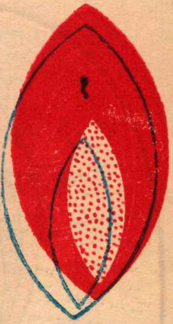
(४) कीट-जन्तु
पशु-पक्षी आदि

▦ स्थूल पदार्थ

अचेतन अवस्था में व्यापक रूप से
विद्यमान चिद्शक्ति=जीव

░

चेतन अवस्था-प्राप्त चिद्शक्ति=बीज

⬭ आहार, निद्रा, भय और मैथुन की
चेतना (इंस्टिंक्ट-Instinct)

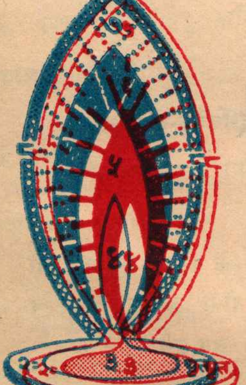

गहरा अष्ट-पाश

▦ कर्म-बीज, मैं-मेरा-
अभिमान

░ सद्सद्-विवेक-बुद्धि

░ काम, क्रोध, लोभ,
मोह, मद, मत्सर,
ईर्षा, द्वेष, असूया के

▨ तमावरण में से
चिद्शक्ति को बाहर
निकलती किरणें
(लाल)

(५) अनुन्नत मनुष्य जीव का काल्पनिक चित्र

▦ हलका अष्टपाश

░ अष्टसिद्धि-अणिमा,
महिमा आदि

▨ चिद्शक्ति की बाहर
निकलती किरणें लाल

░ सद्सद्-विवेक-बुद्धि

░ कर्म-बीज, मैं-मेरा-
अभिमान

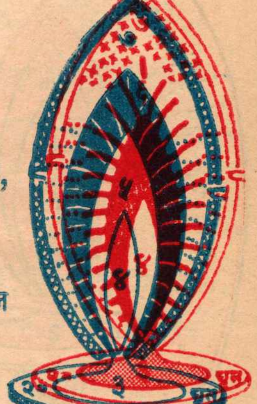

(६) आत्मा का काल्पनिक चित्र

नोटः—१ दिया=आधार=पृथ्वी या कोई ग्रह, (२) घृत=पंच-तत्त्व और स्थूल बाह्याकर्षण, (३) रुई की वत्ती=देह=पंच-ज्ञानेंद्रिय, पञ्च-कर्मेन्द्रिय और पञ्च-तन्मात्राएँ, । (४) अहङ्कार, (५) चिद्-शक्ति, (६) बुद्धि, (७) मन, (८) अष्ट-पाश

जीवन ज्योति

[चिद्-शक्ति = जीव का काल्पनिक चित्रण]

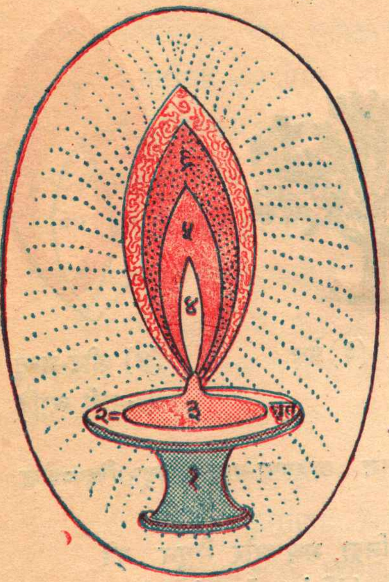

☐ सदसद्-विवेक-बुद्धि और अणिमादि अष्ट-सिद्धि

▨ काम-क्रोध का तमावरण। बुद्धि (लाल) अधिकतर चिद्-शक्ति में लय है।

(७) अव्यक्त का काल्पनिक चित्र

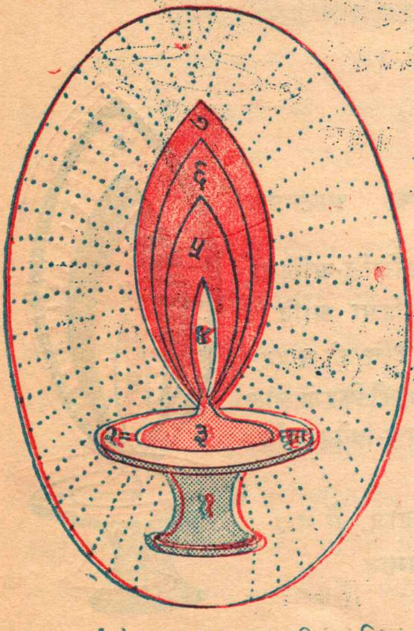

● मन में पूर्ण रूप से खिली हुई सदसद्-विवेक-बुद्धि और अष्ट-सिद्धि।

चिद्-शक्ति का प्रकाश बुद्धि पर पूर्णतया पड़ने के कारण मन पर भी पूर्ण रूप से पड़ता है। अतः मन और बुद्धि दोनों अपना व्यक्तित्व अलग-अलग रखते हुये भी चिद्-शक्ति (लाल) में लय हुये से हैं।

(८) पुरुष का काल्पनिक चित्र

नोटः—१ दिया=आधार=कोई भी ग्रह, (२) घृत=पञ्च-तत्व व स्थूल बाह्याकर्षण, (३) रुई की बत्ती=स्थूल या सूक्ष्म देह=दस इन्द्रियाँ व पञ्चतन्मात्राएँ, (४) अहङ्कार, (५) चिद्-शक्ति, (६) बुद्धि, (७) मन—द्रष्टा

अनन्त निली बिन्दियाँ अनन्त आकाश में मन का दूर तक फैलना प्रगट करती हैं।

है 'शब्द', त्वचा का 'स्पर्श', आँख का 'रूप', जिह्वा का 'रस' और नाक का विषय 'गन्ध' है। पञ्च कर्मेन्द्रियाँ हैं– १ हाथ, २ पैर, ३ गुदा, ४ लिङ्ग तथा ५ मुख।

प्रत्येक चिदस्तित्व अर्थात् जीव को जाग्रत् अवस्था में १९ मुखों द्वारा स्थूल का अनुभव होता है। जाग्रत् अवस्था का दैवत अग्नि है। अग्नि के बिना बाहर का कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा। अग्नि अर्थात् शरीर में गर्मी न हो तो मनुष्य ठण्डा हो जायेगा, मर जायगा। जाग्रत् अवस्था अस्तित्व यानी जीव का प्रथम चरण है।

२—स्वप्नावस्था

दूसरी स्वप्नावस्था के सम्बन्ध में वही उपनिषद् कहता है––

'स्वप्नास्थानोऽन्तःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशति मुख प्रविविक्त-युक् तैजसो द्वितीय पादः।'

अर्थात् स्वप्नावस्था के सब अनुभव शरीर के भीतर होते हैं। ये सारे अनुभव विचार में ही होते हैं। स्वप्नावस्था के भी सात अंग और १९ मुख हैं। इस अवस्था का दैवत विद्युत् है। शरीर के भीतर स्वप्न का दिखाना 'विद्युत्' के कारण है। यह अस्तित्व यानी जीव का दूसरा चरण है।

३—सुषुप्त अवस्था

तीसरी अवस्था सुषुप्ति है। सुषुप्ति के लिए वही उपनिषद् कहता है––

'यत्र सुप्ते न कञ्चन कामं कामयते
न कञ्चन स्वपनं पश्यति तत्सुषुप्तम् ॥,
सुषुप्त-स्थान एकीभूतः प्रज्ञानवत् एवानन्द-मयो
ह्यानन्द-भुक् चैनो मुखः प्राज्ञस्तृतीय पादः।'

सुषुप्ति याने प्रगाढ़ निद्रा। सुषुप्ति में सोया हुआ व्यक्ति किसी का भी अनुभव नहीं करता। जिस अवस्था में सोनेवाला किसी काम की कामना नहीं करता और कुछ स्वप्न भी नहीं देखता, उसी का नाम है सुषुप्ति। सुषुप्ति में अनुभव करनेवाला और अनुभव दोनों एक हो जाते हैं। यदि वे दोनों अलग हों, तो उनका भान हो सकता है लेकिन उनके एक हो जाने से उसको आनन्दमय याने आनन्द भोगनेवाली अवस्था कहा गया है।

जाग्रत् और स्वप्न में मन विषयों की ओर आकृष्ट रहता है। इनके विपरीत सुषुप्ति में मन का रुख चैतन्य की ओर होता है। इस अवस्था का दैवत है 'प्राज्ञ' अर्थात् विज्ञान। जहाँ दर्शन है, वहाँ अङ्ग होते हैं। इसमें न द्रष्टा है, न अङ्ग।

४—तुरीयावस्था

उपर्युक्त तीनों अवस्थाओं का अनुभव सबको होता है। इन तीनों के परे अर्थात् जिसमें ये तीनों अवस्थायें लय हो जाती हैं, ऐसी चौथी तुरीयावस्था आत्मा की मानी गई है। आत्मा के सम्बन्ध में उक्त उपनिषद् का कहना है––

'नान्तः-प्रज्ञं, न बहिः-प्रज्ञं, नोभयतो प्रज्ञं; न प्रज्ञान-घनं, न प्रज्ञं, नाप्रज्ञं; अदृश्यमव्यवहार्यमग्राह्य-मलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेशमेकात्म-प्रत्यय-सारं प्रपञ्चो-पशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते, स आत्मा स विज्ञेयः।'

अर्थात् आत्मा न अन्दर है, न बाहर, न दोनों के बीच है। न घनीभूत प्रकृष्ट ज्ञान है, वह जानी जाय, ऐसी भी नहीं है; न जानी जाय, ऐसी भी नहीं। उसको न देख सकते हैं और न पकड़ सकते हैं। उसका कोई लक्षण नहीं। न उसका चिन्तन हो सकता है और न उपदेश द्वारा उसे जान सकते हैं। वह सबका सार है, प्रपञ्च का उपशमन करनेवाली है। उसे अस्तित्व यानी जीव की चौथी अवस्था माना गया है।

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महानपरः॥
महतः परमव्यक्तं अव्यक्तात्पुरुषः परः।
पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः॥

अर्थात् इन्द्रियों की अपेक्षा उनके विषय सूक्ष्म हैं, विषयों से मन सूक्ष्म है, मन से बुद्धि सूक्ष्म है, बुद्धि से आत्मा सूक्ष्म है, आत्मा से अव्यक्त सूक्ष्म है और अव्यक्त से पुरुष सूक्ष्म अर्थात् पर है । पुरुष के पर कुछ नहीं है । वही अस्तित्व या जीव की पराकाष्ठा है—परम गति है ।

आत्मा क्या है, इसे अच्छी तरह समझने के लिये यह मानना आवश्यक है कि इस सारे विश्व में एक जीवन-शक्ति है, जिसको हम चिद्शक्ति के नाम से पहचानते हैं। यह जीवन-शक्ति प्रत्येक वस्तु में है—अणु, परमाणु और जीव मात्र में है ।

मानव शरीर में जो जीव विद्यमान है, जिससे देह जीवित रहता है, उसके साथ भी यह चिद्-शक्ति मन, बुद्धि और अहङ्कार के साथ मौजूद है । दूसरे शब्दों में जीव मन, बुद्धि, चिद्-शक्ति और अहङ्कार की चैतन्य-समष्टि का बना हुआ है । कठोपनिषद् में वर्णित आत्मा, अव्यक्त और पुरुष में भी यह चिद्-शक्ति विद्यमान है ।

जब बुद्धि अमुक प्रमाण में चिद्-शक्ति में लय हो जाती है, तभी उस शक्ति को आत्मा कह सकते हैं ।...... चिद्-शक्ति के अगल-बगल घेरे हुये षड्रिपुओं और ईषणात्रय के तमावरण को भेदकर बाहर निकलती हुई किरणें व्यक्ति के मन को बुद्धि-रूप से साह्यकर होती हैं । तमावरण जितना कम होगा, उतना ही चिद्-शक्ति की किरणें अधिक बाहर पड़ेंगी और बुद्धि अधिक खिलेगी । आवरण के बिलकुल हट जाने पर बुद्धि पूर्ण रूप से चिद्-शक्ति में लय हो जायेगी । दूसरे शब्दों में आवरण के दूर हो जाने पर चिद्-शक्ति पूर्ण रूप से बुद्धि का काम करेगी । बुद्धि लय हो जायेगी, इसका यह अर्थ नहीं कि बुद्धि समाप्त हो जायेगी, अपितु तमावरण के दूर होने से चिद्-शक्ति बुद्धि का अधिक काम करेगी । अतएव जिस-जिस स्थिति पर जिस मात्रा में बुद्धि लय होती है, उस स्थिति का वर्णन करते समय बुद्धि की भी गणना की जायेगी ।

कठोपनिषद् के अनुसार बुद्धि से आत्मा परे है, लेकिन जब तक मन को बुद्धि के परे की वस्तु आत्मा का अनुभव याने आत्म-दर्शन नहीं होता, तब तक मन, बुद्धि और अहङ्कार के साथ विद्यमान चिद्-शक्ति को आत्मा नहीं कह सकते । कारण माण्डूक्योपनिषद् के 'नान्तः प्रज्ञ' श्लोक में आत्मा को अस्तित्व की चौथी अवस्था माना गया है । अतएव साधक के चौथी अवस्था प्राप्त होने पर ही आत्मा की स्थिति माननी चाहिये । जब 'पुरुष'-पद की प्राप्ति के पहले पुरुष की स्थिति नहीं गिनी जाती, तब आत्मा की स्थिति भी आत्म-दर्शन होने के पहले नहीं गिनी जानी चाहिये । अतएव जिसके मन ने आत्मा का अनुभव नहीं किया, उसकी मन, बुद्धि और अहङ्कार के साथ सम्मिलित जीवन-शक्ति को आत्मा न कहकर चिद्-शक्ति ही कहना उचित है ।

चिद्-शक्ति और पशु-पक्षी

संसार के कीट, जन्तु, पशु-पक्षी आदि जिन जीवों में बुद्धि नहीं है, उनमें विद्यमान जीवन-शक्ति का नाम उपनिषद् ने नहीं बताया है । किन्तु यदि मनुष्य-जीव में कोई जीवन-शक्ति है, तो वह कीट, जन्तु आदि में भी होनी चाहिये । अतएव यदि कोई कहे कि कीट, जन्तु आदि में विद्यमान जीवन-शक्ति भी आत्मा है, तो यह तर्क किया जा सकता है कि कीट, जन्तु में जीवन-शक्ति के साथ मात्र आहार, निद्रा, भय और मैथुन की चेतना होती है । पशु-पक्षी में यह चेतना अधिक विकसित रहती है, लेकिन मानव-जैसी विकसित नहीं होती । उनके मन या बुद्धि होती नहीं, तो फिर आत्मा—जो बुद्धि के भी परे है, कहाँ से हो सकती है !

अतएव कीट-जन्तु, पशु-पक्षी इत्यादि में चेतना के साथ आत्मा न होकर मात्र चिद्-शक्ति है । पशु-पक्षी,

बैक्टीरिया जन्तुओं,कीट इत्यादि की जीवन-शक्ति चित्रसं० ४में देखिए । उसके अनुसार चेतन-अवस्था-प्राप्त चिद्-शक्ति और आहार, निद्रा, भय तथा मैथुन की चेतना बनी हुई है ? इस जीवन-शक्ति का भी नाम जीव रखना उचित है ।

चिद्-शक्ति और स्थूल पदार्थ-जीव

परमाणु, अणु, वायु, जल, मिट्टी, पत्थर, घास, पेड़ इत्यादि में भी चिद्-शक्ति है । विज्ञान के इस युग में यह शङ्का उठाना ही अनावश्यक है कि अणु-परमाणु में चिद्-शक्ति है भी या नहीं । अणु बम उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है । भूमि, वायु और जल में भी अचेतन अवस्था में चिद्-शक्ति मौजूद है । उनमें जीव पैदा होते हैं । इससे सिद्ध होता है कि उनमें जीवन-शक्ति विद्यमान है । चित्र १, २ और ३ से स्पष्ट है कि स्थूल वस्तु और घास, पेड़ में चिद्-शक्ति अचेतन अवस्था में व्यापक रूप से विद्यमान है । इस जीवन–चिद्-शक्ति का भी नाम 'जीव' रखना उचित होगा ।

चिद्-शक्ति और अनुन्नत मानव जीव

अनुन्नत मानव जीव वह है, जिसका मन अष्ट-पाशों में फँसा है और षड्-रिपुओं तथा ईषणा-त्रय-रूपी तमावरण से ढँका हुआ है । उसकी जीवन-शक्ति मन, बुद्धि, चिद् और अहङ्कार की बनी हुई है, उसका भी नाम 'जीव' रखना उचित होगा । (देखिये चित्र सं० ४) ।

चिद्-शक्ति और उन्नत मनुष्य का जीव—आत्मा

साधना द्वारा—जप अभ्यास द्वारा जब साधक के मन पर चढ़ा हुआ तम दूर हो जाता है, तब मनाणु का मात्र कुछ भाग विस्फुटित होता है और मन को चिदाभास होता है । यही आत्म-दर्शन है । यह स्थिति आत्मा की स्थिति है, जिसको कठोपनिषद् ने अव्यक्त कहा है ।

इस स्थिति में साधक का कर्म-भोग नहीं रहता । चिद्-शक्ति के चारों ओर लिपटा हुआ काम-क्रोधादि तमावरण अमुक मात्रा में दूर होता है और साधक की बुद्धि जाग्रत् सुषुप्ति की होती है । तम के दूर होने से बुद्धि तीव्र होती है और कुण्डलिनी जाग्रत् होती है । अष्ट-सिद्धि भी कुछ अंशों में सामने आती है । साधक अष्ट-पाशों से भी थोड़ी बहुत मुक्ति पा लेता है और वह साधारण ईश्वरता-प्राप्त कहा जा सकता है ।

इस स्थिति को पहुँचानेवाले व्यक्ति की मन, बुद्धि और अहङ्कार के साथ रहनेवाली चिद्-शक्ति माण्डूक्योपनिषद् के अनुसार तुरीय अवस्था आत्मा है, जिसको कठोपनिषद् ने अव्यक्त कहा है । अतएव इस जीवन-शक्ति का नाम 'आत्मा' रखना उचित होगा ।

चिद्-शक्ति और अव्यक्त

कठोपनिषद् ने अव्यक्त को आत्मा के परे बताया है । अव्यक्त अर्थात् जो व्यक्त नहीं है । यह स्थिति आत्मा और पुरुष के बीच की है । यह आत्मा से बहुत ही अधिक उन्नत है, लेकिन इसको पुरुष नहीं कह सकते । भगवान् श्रीकृष्ण आदि में अमोघ शक्ति थी, फिर भी उन्हें 'पुरुष-' पद प्राप्त नहीं हुआ था । उसे प्राप्त करने के लिए उनको पृथ्वी पर तप-साधना करने के लिये अवतार लेना पड़ा था । अव्यक्त में चिद्-शक्ति तो वही है, जो उन्नत जीव में है, लेकिन मनाणु के आधे भाग के विस्फुटित होने से मन ज्यादा शक्ति प्राप्त करता है । मन बाह्य पदार्थों का मात्र द्रष्टा ही रह जाता है । मन अष्ट-पाशों से मुक्त होता है । बुद्धि के अधिकतः चित्त में होने के कारण उतने ही प्रमाण में सत्य दृष्टिगत होता है । विश्व का विज्ञान उसके मस्तिष्क में आ जाता है । फिर भी काम क्रोधादि पर उसने पूर्ण विजय प्राप्त कर ली हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता । उसके कर्तव्य में मैं–पन नहीं रहती । इस स्थिति में पहुँचनेवाली जीवन-शक्ति को जो मन, बुद्धि, चिद्-शक्ति और अहङ्कार की बनी है—'अव्यक्त' के नाम से पहचानना उचित होगा । (देखिये चित्र सं०७)

चिद्-शक्ति और पुरुष

उपनिषद् ने पुरुष को अव्यक्त के परे बताया है। इसमें मनाणु का विस्फोट पूर्ण रूप से होता है चिद्-शक्ति का काश बुद्धि पर पूर्ण रूप से पड़ने के कारण मन पर भी पूर्ण रूप से पड़ता है। अतएव मन और बुद्धि दोनों अपना व्यक्तित्व अलग रखते हुये भी चिद् में लय हुये से प्रतीत होते हैं। अतएव मन और बुद्धि दोनों को सत्य ही सत्य दिखता है। पुरुष का मन विश्व में बहुत दूर तक फैला हुआ होता है। (देखिए चित्र सं० ८)

चिद्-शक्ति का जागरण और जप

चिद्-शक्ति का परिचय एवं महत्व ज्ञात हो जाने पर प्रश्न उठता है कि जप-साधना द्वारा किस प्रकार चिद्-शक्ति का विकास कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में किस प्रकार चिद्-शक्ति को बुद्धि का कार्य करने के लिये प्रेरित किया जा सकता है?

चिद्-शक्ति के विकास से सम्बन्धित कौन-कौन सी क्रियाएँ हैं, यह तो अनुभव-गम्य ही है, परन्तु कुण्डलिनी का जागरण चिद्-शक्ति के विकास का मुख्य कारण माना गया है। जिस परिमाण में कुण्डलिनी का जागरण होता है, उसी परिमाण में बुद्धि का चिद्-शक्ति में लय होता है।

कुण्डलिनी क्या है?

आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से 'कुण्डलिनी' क्या है, इस सम्बन्ध में जानने-समझने के अनेक प्रयास हुये हैं, परन्तु सबमें डा० वसन्त जी रेले का प्रयास सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। उनके मत में कुण्डलिनी आधुनिक स्वतन्त्र तन्त्रिका-तन्त्र (Autonomic Nervous System) के अनुसार 'वेगस' नामक स्नायु–Vagus Nerve है। यह स्नायु शरीर के हृदय, मस्तिष्क आदि लगभग सभी महत्वपूर्ण प्राण-धारक यन्त्रों को विभिन्न सम्वेदक स्नायु-जालों या षट्-चक्रों (Plexus of Sympathetic) द्वारा नियन्त्रित करती है एवं कार्य-हेतु उत्प्रेरित करने की क्षमता रखती है।

'वेगस'-स्नायु हमारे शरीर की कपाल-सम्बन्धी (Cranial) दसवीं स्नायु है और यह मस्तिष्क के पृष्ठ-भाग से सम्बन्धित रहती है। यह मस्तिष्क-स्थित जस्ते के रङ्ग के समान धूमिल गह्वर-क्षेत्र से कपाल-सम्बन्धी नवी व ग्यारहवीं स्नायु से निकलती है।

कपाल के मूल भाग में स्थित गले की बड़ी नस (Jugular) के छिद्र के समतल में यह 'वेगस' स्नायु उभरी हुई दिखाई देती है। इस उभरे हुये भाग को हम 'वेगस'-स्नायु की मूल नस-ग्रन्थि या ग्रीवा-ग्रन्थि (Jugular Ganglion) के रूप में पहचानते हैं। इसी नस-ग्रन्थि से 'वेगस' स्नायु की एक शाखा सिर में खून पहुँचानेवाली मुख्य धमनियों से सम्बन्धित रहती है, जिसे हम तालुका-चक्र के नाम से पहचानते हैं।

इस नस-ग्रन्थि से थोड़ा नीचे 'वेगस' स्नायु पुनः एक दूसरी नस-ग्रन्थि के रूप में दिखाई देती है ,जिसे 'वेगस' स्नायु के तने की नस-ग्रन्थि या मध्य ग्रन्थि (Ganglion Nodosum) के रूप में पहचानते हैं। इस नस-ग्रन्थि के बाद यह नीचे की ओर मेरुदण्ड की ऊर्ध्वाधर दिशा में (Vertically) गले व वक्ष से होती हुई अन्त में एक स्नायु-जाल के रूप में दिखाई देती है, जिसे मन्त्रशास्त्र में मणिपुर-चक्र (Solar Plexus) कहा है।

'वेगस' स्नायु अपने इस नीचे के मार्ग में अन्तिम स्नायु-जाल के पहले तीन शाखाओं में विभाजित हो जाती है, जिनका सम्बन्ध मेरुदण्ड के प्रारम्भिक सम्वेदक स्नायु-चक्रों से होता है। गर्दन में इसकी पहली शाखा का सम्बन्ध विशुद्ध-चक्र (Pharyngeal Plexus) से, गर्दन व पेट के बीच इसकी दूसरी शाखा का सम्बन्ध अनाहत-चक्र (Cardiex Plexus) से तथा पेट में इसकी तीसरी शाखा का सम्बन्ध मणिपुर-चक्र से रहता है।

—शेष अगले अङ्क में

बालापुर (महाराष्ट्र) के 'श्रीबाला-मन्दिर' की तीन छवियाँ

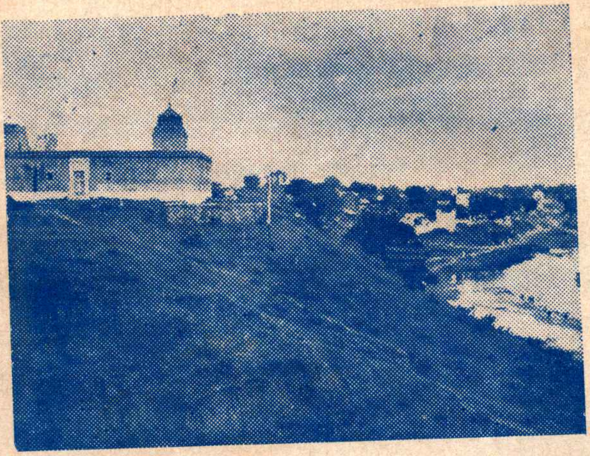

वायव्य कोण से मन्दिर का उत्तर-पश्चिमी भाग। उत्तरी द्वार सामने है। 'महेशा' नदी की उत्तर-वाहिनी धारा टेकरी (टीला) को क्रमशः ध्वस्त कर रही है। बाढ़ के समय इसके भय-प्रद रूप की सहज ही कल्पना की जा सकती है। टेलीफोन के खम्भे के पास प्राचीन 'बावली' है। मन्दिर की पिछली दीवाल से केवल ७-८ फीट से ही टेकरी की ढाल प्रारम्भ हो जाती है, जो चिन्तनीय है। मन्दिर के सामने की सड़क बाजार को जाती हुई दृष्टिगत हो रही है।

दक्षिण दिशा से 'श्री बाला-मन्दिर' का स्पष्ट दर्शन। दक्षिण द्वार सामने ही है और उत्तरी दीवाल से कुछ ही दूरी पर दर्शनीय दीप-माला स्थित है। इन दोनों के पृष्ठ-भाग में बालापुर के प्राचीन किले का एक भाग दिखाई दे रहा है।

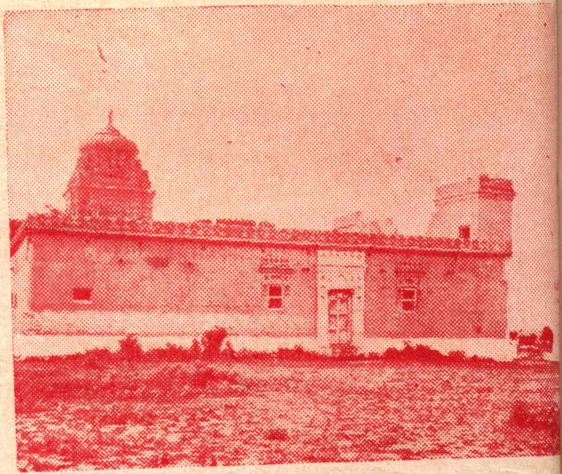

ईशान कोण से मन्दिर का उत्तरी तथा सम्मुख-भाग। उत्तरी द्वार, मुख्य प्रवेश-द्वार, दीप-माला, सड़क से मन्दिर तक पहुँचनेवाली सीढ़ियाँ प्रत्यक्ष है। दीपमाला के सामने एक प्राचीन महात्मा की मठी (कुटिया) है। मन्दिर के दक्षिण ओर जीर्ण धर्मशाला का भाग दिखाई देता है। 'मणिकर्णिका' की उत्तर-वाहिनी धारा सामने है। धारा के ऊपर पुल है, जिसके पास ही बालापुर का विश्राम-गृह (Rest house) स्थित है।

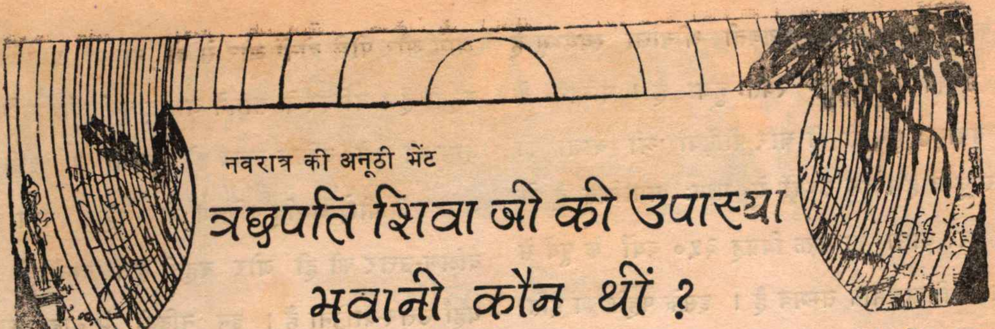

नवरात्र की अनूठी भेंट

छत्रपति शिवा जी की उपास्या भवानी कौन थीं ?

भारतीय गणतन्त्र के रजत जयन्ती वर्ष में आज वासन्तिक नवरात्र मनाने का सुअवसर हमें प्राप्त हो रहा है। इस शुभ अवसर पर एक ऐसा ही अनुसन्धानपूर्ण तथ्य इस लेख द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है, जिससे जगदम्बा की उपासना की परम्परा पर नये रूप से प्रकाश पड़ता है।

भारत के इतिहास में छत्रपति शिवाजी का स्थान कितना गौरवपूर्ण रहा है, यह किसी को बताने की आवश्यकता नहीं। उनके गुरुदेव श्री समर्थ रामदास के यशस्वी नाम से भी प्रायः सभी लोग परिचित हैं और उनकी उपास्या भगवती 'भवानी' को कौन नहीं जानता, किन्तु यह बहुत कम लोग जानते होंगे कि छत्रपति शिवाजी की उपास्या भवानी का वास्तविक स्वरूप क्या और कैसा था। यह वास्तव में अनुसन्धान-कर्ताओं के लिये अन्वेषण का एक महत्वपूर्ण विषय हो सकता है।

तन्त्रशास्त्र के ज्ञाता जो लोग हैं, वे यह भले प्रकार जानते हैं कि भवानी, भगवती, जगदम्बा आदि 'शक्ति' के सामान्य नाम हैं, जैसे भगवान्, परमेश्वर, जगत्पिता आदि सामान्य नाम 'विष्णु', 'शिव', 'गणपति' और 'सूर्य' के लिये प्रचलित हैं। सनातन धर्म के पंच देवताओं में से 'शक्ति' की उपासना का मुख्य पर्व नवरात्र है और शक्ति के मुख्य स्वरूप हैं दश महाविद्याएँ। काली, तारा, षोडशी आदि महाविद्याओं के सम्बन्ध में विज्ञ लोग जानते ही हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि छत्रपति शिवा जी की 'भवानी' का संबन्ध किस महाविद्या से है।

इस संबन्ध में महाराष्ट्र के अकोला जनपद में बालापुर नामक स्थान में स्थित 'श्री बाला देवी मन्दिर संस्थान' के व्यवस्थापक से प्राप्त सूचनाएं बड़ी उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। उनका मत है कि उक्त मन्दिर में श्रीबाला देवी का जो विग्रह स्थापित है, उसकी प्राण-प्रतिष्ठा के आयोजन में छत्रपति शिवाजी के गुरुदेव समर्थ श्रीरामदास ने सक्रिय भाग लिया था। इस तथ्य के प्रमाण में कहा जाता है कि श्री समर्थ रामदासजी का एक हस्तलिखित जीवन-चरित प्राप्त हुआ है, जिसमें यह स्पष्ट शब्दों में लिखा हुआ है कि श्री समर्थ रामदास जी भ्रमण करते हुए बालापुर आ पहुँचे और श्री भगवती बाला के सान्निध्य में उन्होंने तीन दिन निवास किया। इसके बाद वे अडगांव नामक स्थान को चल दिये।

उक्त हस्तलिखित जीवन-चरित के अतिरिक्त बालापुर में एक प्राचीन किला भी है, जो सन् १६२० ई० का बना हुआ है। भगवती श्रीबाला मन्दिर का अस्तित्व इस किले से पूर्व का है, इसके प्रमाण स्थानीय कचहरी में प्राप्य पत्रजातों में स्पष्टतया मिलते हैं। यही नहीं, ऐतिहासिक 'आइने अकबरी' से भी इसकी प्राचीनता की पुष्टि होती है। इसके सिवा बालापुर में आज भी अनेक वयोवृद्ध पुरुष विद्यमान हैं, जिनकी आयु १०५ वर्ष की है और

उनका कहना है कि उक्त भगवती श्रीबाला स्वयम्भू हैं अर्थात् उनका आविर्भाव स्वतः हुआ है। मन्दिर के वर्तमान वयोवृद्ध पुजारी की चार पीढ़ियाँ श्री बाला की सेवा कर चुकी हैं। इन तथ्यों से प्रायः प्रमाणित है कि भगवती श्री बाला का उक्त विग्रह ३५० वर्षों के पूर्व से बालापुर में विराजमान सम्भव है। इसके पहले का इतिहास अन्वेषणीय है।

प्राचीनता की दृष्टि से ही नहीं, भव्यता की दृष्टि से भी बालापुर का महत्व रहा है। निजाम-शाही के काल में यह उसका एक प्रमुख परगना था और इसकी जन-संख्या उस समय ९५ हजार अर्थात् लगभग एक लाख थी। ऐसे भव्य बालापुर की एक निवासिनी श्रीमती रुखमाबाई ज० विठोबा रंगारी ने भगवती श्री बाला जी के वर्तमान मन्दिर का निर्माण कराया था। मन्दिर की मनोरम प्राकृतिक पार्श्व-भूमि, उसकी प्राचीनता और निर्जन स्थान में उसकी अवस्थिति तथा समर्थ श्री रामदास जैसे महापुरुष की उपस्थिति से यह अनुमान करना अनुचित न होगा कि छत्रपति शिवाजी महाराज की उपास्या भवानी देवी मूलतः यही 'बाला' देवी रही हैं, जो तन्त्र-शास्त्र की प्रसिद्ध और सिद्धि-दायिनी दश महाविद्याओं में से भगवती षोडशी की मूल विद्या के रूप में प्रख्यात हैं। अस्तु।

अन्त में भगवती श्री बाला के उक्त मन्दिर की वर्तमान दशा का विवरण यहाँ देना आवश्यक प्रतीत होता है। यह मन्दिर किले के दक्षिण ओर ६०-७० फीट की दूरी पर एक विशाल टेकरी पर स्थित है। मन्दिर तक पहुँचने के लिये सड़क से दर्शकों को ४५ सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। ये सीढ़ियाँ पत्थरों से बनी हैं। मन्दिर के आगे और पीछे दोनों ओर से दो नदियाँ प्रवाहित होती रहती हैं। मन्दिर के सामने अर्थात् पूर्व ओर मणिकर्णिका नाम की नदी दक्षिण-उत्तर को बहती है। इसी प्रकार मन्दिर के पीछे अर्थात् पश्चिम ओर महेशा नाम की नदी दक्षिण-उत्तर की ही ओर बहती है। दोनों ही नदियाँ यहाँ उत्तर-वाहिनी हैं। इन नदियों में बाढ़ आते रहने के कारण मन्दिर की टेकरी का ह्रास होता जा रहा है। राष्ट्रीय शासन और धर्मप्राण धनिकों को इस ओर सचेष्ट होकर इस ऐतिहासिक मन्दिर की रक्षा करनी चाहिये।

वर्तमान मन्दिर की लम्बाई ५३ फीट और चौड़ाई ३८ फीट है और ४४ स्तम्भों पर यह स्थित है। ऊपर छोटा गोपुर है, सामने दीप-माला है। मन्दिर के किवाड़ों तथा लकड़ी की देहलियों पर कला-पूर्ण नक्काशी है। मुख्य प्रवेश-द्वार पूर्व में है। इसके सिवा दक्षिण और उत्तर की ओर भी एक एक द्वार बाहर निकलने के लिये है। कुल तीन द्वार हैं।

आजकल बालापुर की जन-संख्या केवल एक हजार है, जिसमें ४४ प्रतिशत हिन्दू हैं। भगवती श्री बाला मन्दिर के आस-पास २५० गज तक कोई बस्ती नहीं है। एकान्त में, किन्तु बालापुर के बिलकुल मध्य में यह मन्दिर स्थित है। मन्दिर के पास एक धर्मशाला भी थी, जो जीर्ण-शीर्ण हो जाने से अब अनुपयोगी है।

मन्दिर के भीतर भगवती श्री बाला का विग्रह बड़ा मनोहारी है। उसके दर्शन से न केवल प्रतापी छत्रपति शिवाजी के गुरुदेव समर्थ श्री रामदास की पुण्य स्मृति जाग्रत होती है, अपितु देश-व्यापी भगवती-भक्ति की पुरातन परम्परा की वास्तविक अनुभूति मिलती है, जिससे राष्ट्रीय ऐक्य भावना की पुष्टि होती है।

ज्योतिष-विधान

ज्योतिष का विधान महाकाल का विधान है। महाकाल के ही अधीन काल अर्थात् समय है। इसी समय-चक्र को विविध प्रकार के सम्वत्सरों के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न स्वरूपों में गठित किया गया है। आर्यावर्त में पूजा-पाठ में सर्वमान्य सम्वत्सर विक्रमीय संवत् है, जिसके २०३० वें वर्ष का श्रीगणेश चैत्र शुक्ल प्रतिपदा बुधवार तदनुसार ४ अप्रैल १९७३ से हुआ है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण की विशेषता यह है कि उसमें विचाराधीन विषय के प्रत्येक अङ्ग की पूर्ति करने के प्रति बराबर विशेष ध्यान रखा जाता है। तन्त्रोक्त साधना की वैज्ञानिकता इस तथ्य से स्पष्टतया प्रतिपादित होती है कि कोई भी साधना हो, उसका सूत्रपात होगा 'सङ्कल्प' से। 'सङ्कल्प' और कुछ नहीं, उक्त समय-चक्र या सम्वत्सर को साधक द्वारा ध्यान में रखे जाने की जागरूकता का द्योतक मात्र है। जानकार लोग जानते ही हैं कि 'सङ्कल्प में सम्वत्सर के नामोल्लेख-पूर्वक मास-तिथि आदि का स्मरण करते हुये अमुक कामना की पूर्ति के लिये अमुक साधना करने की प्रतिज्ञा की जाती है।

अतएव आत्मोन्नति के अभिलाषी व्यक्ति को 'ज्योतिष' का ज्ञान रखना आवश्यक है। कम-से-कम प्रारम्भिक बातें तो प्रत्येक व्यक्ति को अवश्य ही जाननी चाहिये।

उदाहरण के लिये सम्वत् २०३० विक्रमाब्द का नाम है 'क्षय।' यथा नाम तथा गुण के सिद्धान्त के अनुसार इस वर्ष सर्वतोमुखी 'क्षय' या 'नाश' की सम्भावना है। सन्तोष की बात यही है कि यह नाम मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी तक ही है, उसके बाद 'प्रभव' नाम परिवर्तन हो जायगा, किन्तु सङ्कल्प में 'क्षय' नाम का ही उल्लेख वर्ष भर किया जायगा।

उक्त 'क्षय' वर्ष के राजा हैं बुध और शुक्र हैं मन्त्री। फलत सभी देश अपनी सुरक्षा के लिये प्रयत्नशील रहेंगे। नाना प्रकार के करों (टैक्सों) से जनता पीड़ित होगी। कहीं कहीं अनावृष्टि से सूखा पड़ेगा। युद्ध-सामग्री संसार में अधिक तैयार होगी। वायुयान-रेल-दुर्घटनाएँ अधिक होंगी। भूकम्प तूफान आदि प्राकृतिक प्रकोपों से मानव समाज त्रस्त रहेगा।

जिस प्रकार एक व्यक्ति का जन्म-पत्र होता है और उसमें ग्रहों की जैसी स्थिति होती है उसी के अनुरूप उसे जीवन में सुख-दुःख, उन्नति-अवनति आदि का सामना करना पड़ता है, इसी प्रकार सम्वत्सर की भी जन्म-पत्रिका होती है। उसमें स्थित ग्रहों के अनुसार ही संसार का घटना-चक्र होता है। सम्वत्सर के जन्म-पत्र और व्यक्तिगत जन्मपत्र को ध्यान में रखकर भविष्य का विचार करनेवाला ज्योतिषी ही ठीक भविष्यवाणी करने में समर्थ होता है।

उक्त ग्रह निरन्तर गति-शील रहते हैं। अतः प्रतिमास ग्रहों की स्थिति बदलती रहती है। इसका स्पष्टीकरण प्रत्येक पञ्चाङ्ग में प्रति मास के पृष्ठ पर 'ग्रहास्पष्टाः' शीर्षक से दिया जाता है। उनसे अपने निजी जन्मपत्र के ग्रहों की स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर जीवन की अनेक समस्याओं का पूर्वानुमान किया जा सकता है।

'कौल-कल्पतरु' चण्डी के इस स्तम्भ में 'ज्योतिष-विधान' के इन उपयोगी तथ्यों का रहस्योद्घाटन व्यावहारिक रूप में पहले पहल किया जा रहा है। अगले अङ्क में सीखिए—पञ्चाङ्ग कैसे देखना चाहिये? पर्व का निर्णय कैसे करें? शुभ मुहूर्त की जानकारी कैसे हो? अपने जन्मपत्र को कैसे देखें-समझें? आदि आदि।

———

सप्तशती विशेषाङ्क

मूल्य तीस रुपए

आस्तिक हिन्दू समाज में दुर्गा सप्तशती का अधिक आदर तथा प्रचार है, यह सर्व-विदित है।...ऐसे महान्, अमोघ स्तवराज के सम्बन्ध में 'चण्डी' ने सम्वत् २०१३ में जो विशेषाङ्क प्रकाशित किया है, वह अपने आप में एक अनूठा विशेषाङ्क है। बिशेषाङ्क के मुख्य विषयों की झांकी इस प्रकार है—

- गुप्त सप्तशती
- सप्तशती की उपासना का प्रकार
- चण्डी (सप्तशती) नवार्ण
- सप्तशती में वेदान्त
- चण्डी (सप्तशती) रहस्य
- सप्तशती में प्रपत्तिवाद
- श्री सप्तशती
- सप्तशती गीता
- सप्तशती की कुछ विशेष बातें
- श्री दुर्गा सप्तशती और शाप मोचन
- सप्तशती में मोक्ष साधन
- नवार्ण मन्त्र में ॐ के संयोग का विमर्श
- सप्तशती साधना में यन्त्र का स्थान आदि आदि

बहुत कम प्रतियाँ शेष हैं। अपने लिए शीघ्र एक प्रति मँगा लें। पता—

व्यवस्थापक

प्रकाशक—कल्याणमन्दिर, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६

धार्मिक जगत की हलचल

१—विन्ध्याचल में वासन्तिक नवरात्र

सदा की भाँति विन्ध्यवासिनी-क्षेत्र विन्ध्याचल में वासन्तिक नवरात्र के पुण्य अवसर पर साधकों, भक्त दर्शकों और निष्ठावान् अनुष्ठान-कर्ताओं का मेला जुटने लगा है, जहाँ तीर्थ-यात्री लोग त्रिकोण-परिक्रमा-पूर्वक श्री जगदम्बा, काली-खोह, अष्टभुजा के दर्शन का लाभ उठा रहे हैं, वहीं भैरव-कुण्ड स्थित स्वर्गीय पूज्य श्री स्वामी अक्षोभ्यानन्द जी सरस्वती के आश्रम में साधकों का समागम देखने योग्य है। 'विन्ध्याचल के दुर्गोपासक-संघ' के प्रचार-मन्त्री पण्डित श्री सीताशरण शुक्ल के अनुसार नवरात्र की पंचमी (रविवार ८ अप्रैल १९७३) के अपराह्न २ बजे पण्डित श्री रामनरेश त्रिपाठी की अध्यक्षता में विद्वानों की एक गोष्ठी श्री दुर्गा सप्तशती के 'कीलक-स्तोत्र' के विचारार्थ आयोजित की गई है। क्या ही अच्छा हो, यदि इस पावन पर्व पर अपने व्यक्तिगत उत्कर्ष के साथ-साथ हम अपने समाज, देश और विश्व के अखिल मानव समाज के कल्याण को ध्यान में रखते हुये 'विज्ञान' तथा 'आधुनिकता' की चुनौती पर भी विचार करें।

'दुर्गोपासक संघ' और भैरव-कुण्ड के 'श्री अक्षोभ्यानन्द आश्रम' जैसी संस्थाएँ नवरात्र के पवित्र अवसर पर विन्ध्याचल में पधारनेवाली विभूतियों के सहयोग को सङ्घटित कर इस दिशा में बहुत कुछ कर सकती हैं। आशा है कि उनका ध्यान अपने इस महत् कर्तव्य के प्रति आकृष्ट होगा।

२—गायत्री तपोभूमि का कृतित्व

मथुरा (उत्तर प्रदेश) की 'गायत्री तपोभूमि' संस्था के सम्बन्ध में प्रायः सभी अध्यात्म-प्रेमी जानते हैं। उसके संस्थापक आचार्य पण्डित श्री राम शर्मा ने भगवती गायत्री के सम्बन्ध में सरल हिन्दी भाषा में और रोचक सुबोध शैली में प्रचुर साहित्य ही नहीं लिखकर प्रकाशित किया, अपितु वेदमाता गायत्री के विविध अनुष्ठानों और यज्ञादिकों का अनवरत रूप से आप आयोजन भी करते आ रहे हैं। यही नहीं, वर्णाश्रम-प्रथा का अनुसरण करते हुये आपने चतुर्थ आश्रम में प्रवेश कर उसका जो आदर्श उपस्थित किया है, वह वास्तव में विज्ञ जनों द्वारा विचारणीय ही नहीं, अनुकरणीय भी है।

आचार्य जी के बहुमुखी कृतित्व में से एक है आपकी प्रेरणा से प्रकाशित 'युग-निर्माण-योजना' नामक पाक्षिक पत्र। इस पत्र का दूसरे वर्ष का १८वाँ अङ्क हमारे सामने है। इस अङ्क से पता चलता है कि मध्य प्रदेश में इस योजना के अनुसार विशेष कार्य हुआ है क्योंकि म. प्र. के लगभग चालीस स्थानों में वसन्त शिवरात्रि आदि पर्वों के मनाने के समाचार प्रकाशित हुए हैं, जब कि उत्तर प्रदेश के केवल १६ स्थान, विहार के ६, गुजरात के ४, राजस्थान-महाराष्ट्र के २-२ और उड़ीसा-बंगाल-

हरियाणा के मात्र १-१ स्थान उल्लिखित हुये हैं। क्या ही अच्छा होता कि प्रदेशानुसार समाचारों का प्रकाशन किया जाता। इससे 'योजना' की प्रगति का मूल्याङ्कन और सरलता से हो सकता।

'युग-निर्माण-योजना' की विचारधारा का प्रचार कितने व्यवस्थित ढँग से किया जा रहा है, इसका अनुमान उन साधनों से लगाया जा सकता है, जिनका उपयोग प्रचार-कार्य में हो रहा है। उनकी तालिका इस प्रकार है–

१ यज्ञ-मंडप साज-सज्जा का सामान, २ लाउड स्पीकर, ३ टेप रिकार्डर, ४ पैम्फलेट, ५ पोस्टर, ६ विज्ञप्तियाँ, ७ चित्रावली, ८ साहित्य-प्रदर्शनी, ९ बोलते कहते चित्र, १० कैलेण्डर, ११ यज्ञ-शाला प्रदर्शनी, १२ कला-मंच द्वारा एकांकी नाटक, गीत, संगीत, रूपक प्रहसनादि, १३ सांस्कृतिक कार्यक्रम, १४ गोष्ठी, चर्चा-वार्ता, प्रश्नोत्तर-पद्धति से व्याख्या, प्रवचनादि, १५ लाल मशाल का अवतरण, १६ प्रभात-फेरी, १७ झोला पुस्तकालय, १८ कीर्तन-भजन-गुणगान, १९ बोलती दीवार अभियान, २० प्रचार ट्रैक्ट, २१ ज्ञान-यज्ञ के दान पात्र (ज्ञान-घट), २२ ' ॐ 'भूर्भुव स्व.' से अंकित १०० कलश वसन्ती रंग में यज्ञ-सम्मेलन के घोषणा पात्र, २३ यज्ञ की साक्षी में चूडाकर्म, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाहादि संस्कार, २४ मन्दिरों का जीर्णोद्धार, २५ अखंड गायत्री पुरश्चरण, २६ एक-कुण्डी, पंचकुण्डी, नवकुण्डी अनुष्ठान, २७ शिव-पूजन इत्यादि।

उक्त तालिका से स्पष्ट है कि कितने योजना-बद्ध ढंग से गायत्री तपोभूमि द्वारा युग-निर्माण-योजना को अग्रसर किया जा रहा है। न केवल प्राचीन पद्धति, अपितु आधुनिक प्रचार-साधनों के माध्यम से उसका प्रचार-कार्य हो रहा है। सिद्धान्त भी उसके बड़े ऊँचे हैं यथा––

···अपना भार स्वयं ही ढोना,
अपना ही सुखकर अवलम्बन
मुक्ति सहज उपलब्धि किन्तु है,
कितना कठिन मुक्ति का जीवन,

× × ×

...जो शक्ति का अभिमान करते हैं यहाँ,
वे भला अस्तित्व अपना हैं टिका पाते कहाँ ? ...

सचमुच ही 'गायत्री तपोभूमि' का धर्म-प्रचार का अभियान अन्य धर्म-प्रचारकों के लिए उत्तम आदर्श है और उसका अनुकरण कर वे अपने लक्ष्य की प्राप्ति में अधिकाधिक सफल हो सकते हैं।

३—स्वर्गीय 'भाई जी' की द्वितीय पुण्य तिथि

१ अप्रैल १९७१ को 'भाई जी' के नाम से विख्यात श्री हनुमानप्रसाद जी पोद्दार का निधन हुआ। आपने 'कल्याण' और गीता प्रेस के प्रकाशनों द्वारा मानव-समाज की जो अपूर्व सेवा की, वह अद्वितीय है। पिछले सप्ताह आपकी द्वितीय पुण्य तिथि सारे देश में सोत्साह मनाई गई।

'शाक्त-साधना-पीठ' के तत्वावधान में आयोजित एक गोष्ठी में कुलभूषण ने कहा कि—

...'कौल-कल्पतरु' स्व० पण्डित देवीदत्त शुक्ल बताया करते थे कि गीता प्रेस की स्थापना के पहले पोद्दार जी इण्डियन प्रेस भी पधारे थे और प्रेस की विविध व्यवस्थाओं का ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया था। बाद में जब पूज्य शुक्ल जी ने 'चण्डी' का प्रकाशन प्रारम्भ किया, तब पोद्दार जी ने उसका हृदय से स्वागत किया और जब तक वे जीवित रहे, 'कल्याण' बराबर 'चण्डी' के परिवर्तन में आता रहा। पोद्दार जी ने कल्याण मन्दिर के समस्त प्रकाशनों को भी मूल्य देकर मँगवाया था और उन्होंने 'कल्याण' के अनेक विशेषाङ्कों में तन्त्रोक्त साधना के

सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण करने में विशेष रुचि दिखाई थी।

सचमुच ही वे एक निर्मल विभूति थे और उनका कृतित्व चिर काल तक लोगों का मार्ग-दर्शन करता रहेगा, इसमें सन्देह नहीं। उनकी द्वितीय पुण्य तिथि के अवसर पर हम उनकी पुण्य स्मृति में अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।....'

४—रूस में महात्मा बुद्ध

रूस के विभिन्न अंचलों से दो हजार वर्ष पुरानी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जो महात्मा बुद्ध की मानी गई हैं। रूसी पुरातत्वज्ञों ने स्वीकार किया है कि इन मूर्तियों से कुषाण-काल के व्यापक भारतीय स्वरूप की एक झाँकी मिलती है। रूस के वर्तमान प्रदेश–उजबेकिस्तान, तजाकिस्तान और आज के अफगानिस्तान तथा पाकिस्तान कुषाण-राज्ज के ही अङ्ग थे।

उक्त तथ्य से स्पष्ट है कि कुषाण-काल अर्थात् ईसा के ४०० वर्ष से पूर्व का भारत और भी अधिक विशाल क्षेत्र में फैला हुआ था

५—प्रभुतासुर का मर्दन

प्रभुतासुर (नौकरशाही) के मर्दन का सङ्कल्प सत्ता कांग्रेस ने अभी कुछ ही समय पूर्व लिया है। इस सङ्कल्प से उसकी आसुरी प्रवृत्ति में किसी तरह की न्यूनता नहीं आई; अपितु वह और भी उद्धत हो उठा है। उसके असंख्य-मुखी अखिल-व्यापी विग्रह के एक अङ्ग का उपद्रवी स्वरूप इसी वासन्तिक नवरात्र के ठीक दूसरे ही दिन विन्ध्याचल की महिमामयी विन्ध्यवासिनी देवी के दिव्य नेत्रों के समक्ष किस निन्दनीय प्रकार से अपना नग्न नृत्य दिखा बैठा, इसका विवरण संक्षेप में दैनिक 'भारत' (७-४-७३) के शब्दों में इस प्रकार है—

"...विन्ध्याचल देवी के नवरात्र-मेले के सैकड़ों वर्षों के इतिहास में कल जैसी वीभत्स घटना कभी नहीं घटी, जब पुलिसवालों ने राज्य अधिकारियों के नियम के विरुद्ध हजारों दर्शनार्थियों को रोककर विन्ध्याचल मन्दिर के निकास-द्वार से प्रवेश कराने की बात को लेकर पण्डों को खदेड़-खदेड़ कर मारना आरम्भ किया। ...पी० ए० सी० के जवान मन्दिर की मर्यादा के विपरीत देवी के मन्दिर पर चढ़ गए और लाठी-डण्डा चलाने लगे।...न जाने कितनी महिलाएं दबीं, बे-पर्द हो गईं, बच्चे कुचल गए और न जाने कितने दर्शनार्थियों का अपने परिवारवालों से साथ छूट गया।... देवी का मन्दिर भी बन्द कर दिया गया। दर्शनार्थी भी अपने घरों को भागने लगे।...पण्डों के साथ बहु-संख्यक दर्शनार्थी पीड़ित हुए। भाग-दौड़ में गिरी महिलाओं पर भी प्रहार किया गया, जो चीखती-चिल्लाती भाग गईं। डण्डे के प्रहार से देवी के सिंगारियों—श्री भालचन्द पाण्डेय तथा बाबूलाल पाण्डे को भी चोटें आईं।...मन्दिर के ३-४ बिजली के राड तथा...बत्तियाँ चूर-चूर हो गईं।..."

इटावा जिला कांग्रेस कमेटी की सदस्या श्रीमती सरला त्रिपाठी उक्त काण्ड के समय उपस्थित थीं। आपके अनुसार—

"...यह घटना एकमात्र पुलिस ज्यादती से हुई।..."

परन्तु हमारे मत में यह सारी माया "प्रभुतासुर" की है, जो कभी किसी अधिकारी के मन पर अपना आधिपत्य जमा उसे एक निरंकुश "नौकरशाह" के रूप में बदल देता है, तो कभी किसी जन-वर्ग के मस्तक पर सवार होकर उसे "उग्र-पन्थी" बना देता है। देखें, केन्द्रस्थ लक्ष्मी (इन्दिरा) की प्रेरणा से प्रदेशस्थ विष्णु (कमलापति) की निद्रा दूर होकर कब तक इस "प्रभुतासुर" का मर्दन हो पाता है?

६—जल-सङ्कट-हारी "वरुण-यज्ञ-महोत्सव"

विगत अनेक वर्षों से भारत के अधिकांश प्रदेशों में वांछित वर्षा का अभाव रहा है और पिछले वर्ष तो अति ही हो गई। फलत जल के द्वारा विद्युत् का जो उत्पादन वैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा होता था, उसको गहरी क्षति पहुंची। प्रकृति के इस असहयोग के कारण असंख्य भारतीय गृहों को न केवल अन्धकार या अल्प प्रकाश में रहने को बाध्य होना पड़ा, अपितु पेय जल जैसी परमावश्यक सुविधा के सम्बन्ध में भी सङ्कटापन्न रहना पड़ा, क्योंकि विद्युत् के अभाव में जल-कल (वाटर वर्क्स) भला कैसे चलें! यही नहीं; बिजली के अभाव में कितने ही औद्योगिक कल-कारखानों को बन्द हो जाना पड़ा या उनकी गति धीमी पड़ गई। उससे जो अपार हानि हुई और आज भी हो रही है, उसका लेखा-जोखा प्रस्तुत करना कठिन है।

जल के अधिष्ठातृ देवता हैं वरुणदेव और उन्हीं की अनुकूलता से जल-दायक मेघों का आना सुनिश्चित होता है, अतः मेघों की उत्पत्ति के लिए वरुणदेव के प्रीत्यर्थ यज्ञानुष्ठान का विधान है। लिखा है—

अन्नाद् भवन्ति भूतानि, पर्जन्यादन्न-सम्भवः।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो, यज्ञः कर्म-समुद्भवः॥

उक्त वचन से प्रेरित होकर वृन्दावन के श्री गुरु राघवेन्द्र स्वामी जी ने 'वरुण-यज्ञ-महोत्सव' का सूत्रपात किया। विगत २५ फरवरी ७३ को उनके चार शिष्य तीर्थराज प्रयाग के माघ-मेले में आए और त्रिवेणी सङ्गम से गङ्गा-यमुना-सरस्वती का पवित्र जल घड़ों में भरकर पैदल ही ले गए हैं। ये चारों भक्तजन रीवा, जबलपुर, होशङ्गाबाद, हरदा, खण्डवा, बरहानपुर, भुसावल, जलगाँव, मालेगाँव और नासिक होते हुए बम्बई पहुंचेगे। इसी प्रकार जबलपुर से नर्मदा का, नासिक से गोदावरी का, सीतामणि (बीजापुर-मैसूर) से कृष्णा का और श्रीरङ्गपत्तनम् (मैसूर) से कावेरी का पवित्र जल पैदल ही लाया जा रहा है। पूज्य स्वामी जी के चार शिष्यों का एक अन्य दल २ मार्च ७३ को श्री रङ्गपत्तनम् से अपनी पद-यात्रा पर चल चुका है। यह दल चित्रदुर्ग, गडग, बदामी, बगलकोट, बीजापुर, शोलापुर, कुर्दूवादी और पूना होते हुए मुम्बई जा रहा है। इस प्रकार उक्त सात पवित्र नदियों के तीर्थ-जल से वृन्दावन के अधिष्ठातृ देवता का अभिषेक सम्पन्न होगा।

उक्त महोत्सव मङ्गलवार ८ मई से प्रारम्भ होकर २० मई—तेरह दिन की अवधि में मुम्बई के राघवेन्द्रनगर (ओशीवारा, जोगेश्वरी-पश्चिम) में सम्पन्न होगा।

जलाभाव के प्राकृतिक प्रकोप को शान्त करने के लिए किए जानेवाले उक्त अनुष्ठान की सफलता की कामना सारा धार्मिक जगत् तो कर ही रहा है; सामान्य जन भी आशान्वित हैं कि इस महोत्सव से भ० वरुणदेव प्रसन्न होंगे और उनकी दया से पर्याप्त वर्षा होकर जल का वर्तमान सङ्कट दूर होगा।

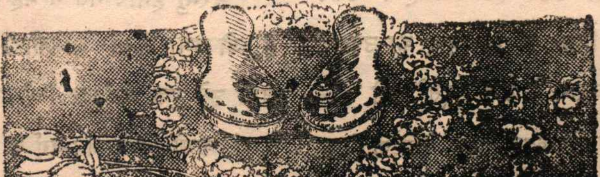

सम्पादकीय

१—'कौल-कल्पतरु' चण्डी

'कौल-कल्पतरु' पंडित देवीदत्त शुक्ल ने आज से बत्तीस वर्ष पूर्व सम्वत् १९९९ में 'चण्डी' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ कर हिन्दी में शक्ति-साहित्य के प्रकाशन के अभूतपूर्व आयोजन का श्रीगणेश किया था। आज वे हमारे बीच में नहीं हैं, किन्तु 'चण्डी' की तीस वर्ष की फाइलों में निहित उनका कर्तृत्व हमारे मार्ग-दर्शन के लिए आज भी सुरक्षित है। उनकी द्वितीय पुण्यतिथि ज्येष्ठ कृष्ण एकादशी २०३० को है, जो पृथकतः विचरणीय है।

'कौल-कल्पतरु' शुक्लजी के उक्त महत्कार्य के अनन्य सहयोगी न्यायमूर्ति पण्डित शिवनाथ काटजू की छत्र-छाया श्री जगदम्बा की कृपा से हमें निरन्तर प्राप्त है। मासिक 'चण्डी' का प्रकाशन गत वर्ष जब स्थगित हुआ, तब आपने बड़ा खेद प्रकट किया और हमें उत्साहित करने की कृपा की कि उसका पुनः प्रकाशन होना चाहिये। इसी प्रकार मिथिला के नरहन (दरभंगा) निवासी श्री आद्यानन्द जी, जो प्रारम्भ से ही 'चण्डी' के निःस्पृह प्रचारक-सहायक रहे हैं, अपने उत्प्रेरक पत्रों से हमें बराबर प्रेरित करते रहे कि 'चण्डी' द्वारा शाक्तोपयोगी साहित्य प्रस्तुत होते रहना चाहिए। मिथिला के ही सहर्षा-निवासी आचार्य पण्डित कमलाकान्त जी मिश्र तथा उनकी अध्यक्षता में स्थापित "अद्वैत-शक्ति-साधना-सत्सङ्ग" के मन्त्रि-प्रवर श्री अमरेन्द्र लाल दास और उनके सहयोगी वयो-वृद्ध श्री राजेन्द्रलाल दास विशारद आदि ने सक्रिय रूप से हमें आश्वस्त किया कि 'चण्डी' के प्रकाशन में वे पूर्ण सहायता प्रदान करेंगे। हरिद्वार से परम पूज्य श्री दिव्यानन्द जी सरस्वती ने और उनके निर्देशन में संचालित होनेवाली जोधपुर की कायस्थ-धर्म-प्रचारक मण्डली ने भी हमें बराबर उत्साहित किया है। मथुरा के आचार्य-प्रवर पण्डित लक्ष्मणदत्त शास्त्री चतुर्वेद तथा पण्डित चन्द्रशेखर जी शास्त्री ने समय-समय पर हमें उद्बोधित किया है। इन सभी महानुभावों के हम विशेषतया आभारी हैं और हमें विश्वास है कि श्री जगदम्बा के अन्य भक्तजनों को भी 'चण्डी' के पुनः प्रकाशन से प्रसन्नता ही होगी।

कौल-कल्पतरु शुक्ल जी की पुण्य स्मृति में कौल-कल्पतरु 'चण्डी' का यह प्रकाशन नवीन रूप-रंग में प्रस्तुत हो रहा है। इसकी विशेषतायें क्रमशः पाठक-बन्धु स्वयं हृदयङ्गम करेंगे। हमारा प्रयास यही है कि कौल-कल्पतरु 'चण्डी' के माध्यम से मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र और शाक्त-साधना का व्यावहारिक उपयोगी ज्ञान पाठक बन्धुओं को प्राप्त हो और उनकी सहायता से वे भौतिक अभिवृद्धि के साथ-साथ पारलौकिक निःश्रेयस की उपलब्धि करने में कृतकार्य हो सकें। श्री जगदम्बा से प्रार्थना है कि उनकी कृपा से हम अपने उद्देश्य में सफल हों।

२—आर्ष विद्याओं की वैज्ञानिकता

भारत की आर्ष विद्याओं का अपना विशेष महत्व रहा है। इन्हीं विद्याओं के कारण भारत को 'जगद्गुरु' की पदवी प्राप्त हुई और आज भी इन्हीं के प्रभाव से उसकी धाक सारे विश्व में जमी हुई है। इन विद्याओं में मन्त्र-तन्त्र यन्त्र विद्याओं के साथ-साथ ज्योतिर्विद्या और आयुर्वेद का महत्व अग्रगण्य है। इन विद्याओं के द्वारा रामायण और महाभारत-काल के भारतीयों ने वे भौतिक चमत्कार कर दिखाए, जिनका आधार लेकर आज के पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने पुनः अभूतपूर्व चामत्कारिक आविष्कार प्रस्तुत करने में अनुपम सफलता प्राप्त की है।

काल चक्र के प्रभाव से भारतीय समाज को राजनैतिक दासता में रहना पड़ा। विदेशी शासकों ने भारत की उक्त विद्याओं को समूल नष्ट करने में कुछ उठा नहीं रखा और यहाँ के जन मानस के मनोबल को तो उन्होंने प्रायः नष्ट ही कर डाला।

उदाहरण के लिए उल्लेखनीय है कि सिकन्दर के आक्रमण के समय यूनानी लोग लूट में भारतीय साहित्य भी उठा ले गए और कुतुबुद्दीन ऐबक के काल में जब मिथिला पर आक्रमण हुआ, तब एक लाख ब्राह्मण मौत के घाट उतारे गए तथा प्राचीन पुस्तकालय अग्नि की ज्वालाओं में भस्म कर दिए गए। इसी प्रकार अंग्रेजों के शासन-काल में मेकाले जैसे विद्वानों ने भ्रामक शिक्षा द्वारा भारतीय मस्तिष्क को पराभूत करने का विकट प्रयास किया। यही नहीं कुछ निष्पक्ष विद्वानों को छोड़कर प्रायः सभी पाश्चात्य विद्वानों ने—क्या जर्मन और क्या अमरीकी आदि सभी ने भारत की आर्ष विद्याओं की प्राचीनता तथा अमोघता को मिथ्या या बेबिलोनिया और यूनान का अनुकरण मात्र सिद्ध करनेवाले साहित्य की ही निरन्तर रचना की। इस सबका स्वभावतः भारत की आधुनिक पीढ़ी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

आज यह एक कटु सत्य है कि भारत का अधिकांश नवयुवक-वर्ग अपनी उक्त गौरवमयी विद्याओं के प्रति इतना

मूल्य रु० १५-००

साधना-रहस्य

लेखक—'कुलमार्तण्ड' राजगुरु स्वर्गीय पण्डित योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति जी शास्त्री

दीक्षा, क्रमदीक्षा, गुरुमण्डल, श्री गुरुक्रम, गुरुमहिमा, दीक्षा के भेद, मन्त्र-रहस्य, पूजा के लिये आसन व पुष्प, जपमाला, माला संस्कार विधि, माला प्रार्थना व विसर्जन, मन्त्रों के भेद, मन्त्रों की षट्चक्र शुद्धि, दूषित मन्त्र का उपाय, मन्त्र-संस्कार, मन्त्र शक्ति व देवता, षोडशपात्र, तत्वों का रहस्य व शुद्धि, शाक्त धर्म, शाक्त दर्शन, समयाचार अथवा समय-मत, हादि मत व कादि मत, पूर्णाभिषेक-विधान, कौल-श्राद्ध और अन्त्येष्टि, आम्नायों का रहस्य, सिद्धि के लक्षण आदि जैसे महत्वपूर्ण विषयों की सरल भाषा और सुबोध शैली में विस्तृत जानकारी के लिये उपर्युक्त ग्रन्थ को शीघ्र मँगाइये।

प्रकाशक—कल्याण मन्दिर, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६

अधिक विश्वास खो बैठा है कि उसे उनके वास्तविक महत्व को समझाने के लिए विदेशी सिद्धान्तों और विदेशी शब्दावलियों का सहारा लेना अनिवार्य-सा हो गया है। कुशल इतनी ही है कि विदेशी समस्त अन्वेषणों के मूल में भारत की उक्त विद्याओं का ही अस्तित्व दिन-पर-दिन स्वतः प्रतिपादित होता जा रहा है। फलतः इन विद्याओं के प्रति भारतीय युवकों का ध्यान पुनः आकृष्ट हो रहा है और इनके प्रति उनकी आस्था जाग्रत् होने लगी है।

आज का आधुनिक भारतीय समाज मन्त्र, तन्त्र, यन्त्रादि आर्ष विद्याओं को वैज्ञानिक व्याख्या बड़ी चाव से पढ़ता और मनन करता है। यह एक शुभ लक्षण है। आवश्यकता इस बात की है कि हमारे विद्वान् लेखक विदेशी प्रभाव को क्रमश दूर कर भारतीय मौलिकता को पुनः उद्‌बुद्ध करने का प्रयास करें। 'चण्डी' में विगत तीन दशकों में ऐसे अनेक लेख प्रकाशित हुए और प्रस्तुत अङ्क से भौतिक विज्ञान के द्वारा आर्ष विद्याओं के प्रतिपादक साहित्य की एक अभिनव लेख-माला पुनः प्रकाशित की जा रही है। आशा है कि इससे भारत का आधुनिक समाज अपनी विद्याओं के महत्व को अधिक गम्भीरता के साथ हृदयङ्गम कर सकेगा और विदेशी प्रभाव से मुक्त होकर इन विद्याओं को पुनः व्यवहार में लाकर इनसे लाभ उठाने को तत्पर हो सकेगा। यदि ऐसा हुआ, तो हम समझेंगे कि उक्त लेखमाला का प्रकाशन वास्तव में सार्थक हुआ।

३—धर्म का व्यापार

धर्म के नाम पर कुटिल राजनीतिज्ञों द्वारा द्वेष-विद्वेष का खेल खेलने का परिणाम अन्त में यह हुआ कि 'धर्म-विहीन' और 'धर्म-निरपेक्ष' जैसी शासन-प्रणालियाँ अस्तित्व में आईं। इतिहास इस तथ्य का साक्षी है।

आज का जीवन मुख्यतया अर्थ-प्रधान है। अतएव यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि अर्थ-लोलुप व्यक्तियों का ध्यान धर्म के प्रति आकृष्ट हो और वे उसका व्यापार कर अपनी धन-पिपासा के बुझाने के लिए यत्न-शील हों। अर्थ-लोलुपों की इस प्रवृत्ति का परिणाम क्या होता है, यह अभी भविष्य के गर्भ में है, किन्तु इस सम्बन्ध में कुछ प्रतिक्रियायें ध्यान देने योग्य हैं।

दैनिक 'भारत', प्रयाग के मार्गशीर्ष शुक्ल ६ तदनुसार ११ दिसम्बर १९७२ के 'रामझरोखा'—स्तम्भ के अन्तर्गत एक कविता छपी है। उसका मुख्यांश इस सन्दर्भ में यहाँ उद्धृत किया जाता है। कविता का शीर्षक है—

'मानस' का व्यापार चल रहा

...तुलसी बाबा की कुटिया में
जब देखो तब रहा अँधेरा।
जन्मे नए भक्त कलयुग में
लगा रहे हैं उसका फेरा!

* * *

तुलसी 'मानस' पारस मणि बन
देखो सोना बरसाता है।
जिसे देख लो गठरी बाँधे
भागा आज चला जाता है!
चारों ओर मची है हलचल
सब कहते हैं तुलसी तुलसी।
मानस मानस कहने से ही
पनपीं आशायें हैं झुलसी!

* * *

मानस का व्यापार चल रहा....
जिसको देखो धन के खातिर
दुनिया को है आज छल रहा।
'मानस' की दूकान लग रही

घूम रहे 'मानस'—व्यापारी !
तिलक फाटका लगा भक्त बन
अर्थ कमाते हैं व्यभिचारी !!

* * *

'मानस' के ये नाम बेंचकर
चाह रहे हैं नाम कमाना !
अनुदानों को तितर-बितर कर
काम कर रहे हैं मनमाना !!
'मानस' में भी राजनीति की
कुत्सित घातें हैं घुस आईं !
चतुश्शती वे लोग मनाते
जिनकी दूषित है परछाईं !!

× × ×

शती मनाना आज लाभकर
चलो कहीं दूकान सजाओ !
थोड़े से खर्चे में ही तुम
घर में धन अम्बार लगाओ !!

चारो ओर बरसता सोना
कहो गरीबी फिर है कैसी ?
तुलसी बाबा ने दे दी है
'मानस' सी जब वटिका ऐसी !...

कवि ने बड़ी सचाई के साथ धर्म के कुत्सित व्यापार का सजीव चित्र सबके सामने प्रस्तुत कर दिया है। धर्म के तत्व को जो लोग थोड़ा भी जानते-समझते हैं, वे तो 'धन' या 'नाम' के लोभी उक्त व्यभिचारी 'मानस'-व्यापारियों के

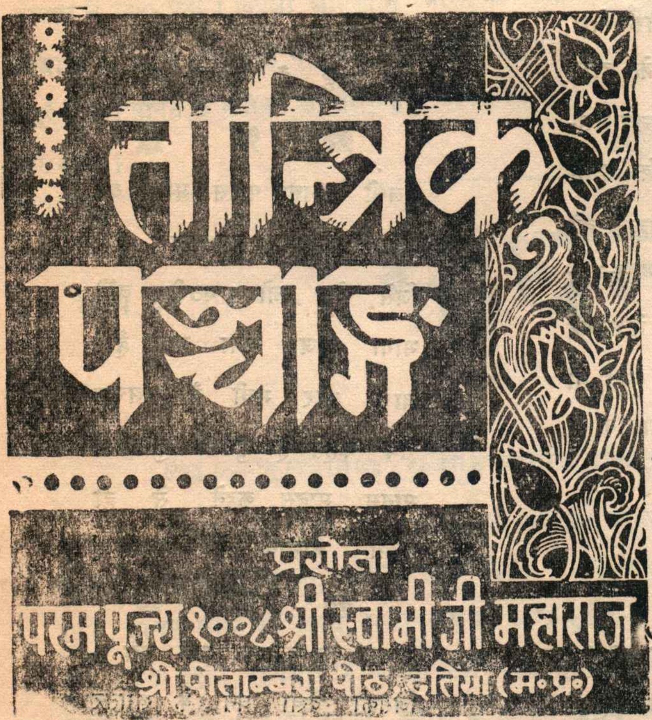
तान्त्रिक
पञ्चाङ्ग
प्रणेता
परम पूज्य १००८ श्री स्वामी जी महाराज
श्री पीताम्बरा पीठ, दतिया (म॰प्र॰)

नवीन पञ्चाङ्ग मार्गशीर्ष कृष्ण १३ सं० २००३
(२१ नवम्बर १६७३) तक की अवधि का
षोडशाङ्ग-सहित

मूल्य ३-००

('चण्डी' के ग्राहकों को केवल दो रुपये में)

श्रीपीताम्बरा पीठ प्रकाशन

सौन्दर्यलहरी (डिमडिम भाष्य व गोपालसुन्दरी टीका) २-२५, पञ्चोपनिषद् २-२५, शिवसूत्र भक्ति-सूत्रं च ०-५०, प्रत्यभिज्ञाहृदय, तत्व-संदोह, परा प्रवेशिका १-५०, ईश्वर-गीता १-५०, पुरश्चरण पद्धति १-५०, घेरण्ड संहिता २-००, नारदीय शिक्षा १-५०, श्री बगलामुखी रहस्यम् ४-५०, वैदिक उपदेश दो भाग ३-२५, नीलकण्ठ स्तोत्र ०-२५ ।

प्रकाशक—कल्याण मन्दिर, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६

माया-जाल में फंसने से बच जाते हैं, किन्तु अबोध या पर-वश जन-समाज की दशा देखने ही योग्य होती है।

इस सम्बन्ध में आवश्यकता इस बात की है कि धर्म के द्वारा जनता के नैतिक मनोबल को पुष्ट करने में जो चरित्र-वान् व्यक्ति निःस्पृह भाव से लगे हुए हैं, उनके कार्यों का मूल्याङ्कन किया जाय। तुलसी बाबा की कुटिया में कवि के अनुसार, भले ही अंधेरा रहा हो, वह तत्कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उपेक्षणीय भी हो सकता है, किन्तु वर्तमान युग के 'तुलसियों' की 'कुटियों' में यदि अँधेरा है, तो इसके दायित्व से हमारे ये पारखी कवि अपने को मुक्त नहीं कर सकते। कवि, लेखक या सम्पादक आदि का आज यह पुनीत कर्तव्य है कि वे कुत्सित व्यापार का भण्डा-फोड़ करने के साथ-साथ सद्-व्यापार की गतिविधियों को भी प्रचारित करें। अन्यथा उनका एकाङ्गी दृष्टिकोण नकारात्मक मात्र रह जायगा और इससे किसी का भी हित न होगा। तब किसी का यह कहना भी यथार्थ बन जायगा कि साहित्य भी 'आज व्यापार बन गया!'

४—तीर्थराज प्रयाग में नए देवालय

उत्तर प्रदेश की प्रयाग नगरी पतित-पावनी गङ्गा-यमुना-सरस्वती के पवित्र त्रिवेणी सङ्गम और पुरातन अक्षयवट के कारण 'तीर्थराज' की पदवी से सुशोभित रही है। उसे यह पदवी इस कारण न्यायोचित भी ठहरती है कि उक्त सङ्गम-क्षेत्र में प्रतिवर्ष माघ-मास में पूरे एक महीने तक कल्पवास का जो भव्य आयोजन होता है, वह अपने ढंग का ऐसा अनूठा धार्मिक महोत्सव बन गया है कि उसका जैसा आयोजन संसार में कदाचित् ही कहीं देखने को मिले। स्वाधीनता के पिछले पचीस वर्षों में शासन-द्वारा भी उक्त माघ मेले को प्रशंसनीय ढँग से विकसित और व्यवस्थित करने का प्रयास किया गया है। फलतः उक्त मेले के अवलोकनार्थ माघ मास में देश-विदेश के यात्रियों की भीड़ प्रयाग में उमड़ पड़ती है। यह सच है कि उक्त त्रिवेणी सङ्गम और माघ मेले के आयोजन से प्रयाग के 'तीर्थराज' होने की वैसी पुष्टि नहीं होती क्योंकि ये दोनों ही बहुत कुछ सूक्ष्म भावना-गम्य हैं और सर्व-साधारण लोग इसके महत्त्व को उतना हृदयङ्गम नहीं कर सकते।

प्रसन्नता की बात है कि धर्म-प्रेमी उक्त यात्रियों के मन-स्तोष के लिए इधर कुछ नए देवालय भी प्रयाग में बन गए हैं, जिससे इस नगरी की 'तीर्थराज' की उपाधि बाह्य रूप में भी कुछ चरितार्थ होने लगी है। उदाहरण के लिए नगर के मध्य भाग में राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन पार्क के पास का भव्य "हनुमत निकेतन," जिसके मुख द्वार के शीर्ष स्थान पर ब्रह्मचर्य के प्रतीक भीष्म पितामह की विशाल प्रतिमा रथ-सारथी सहित देखते ही बनती है। निकेतन के भीतर भगवती दुर्गा, श्री हनुमान और भगवान् श्री सीता-राम-लक्ष्मण की मूर्तियाँ दर्शनीय हैं। दूसरा नवीन मन्दिर चण्डी-कार्यालय के समीप जवाहरलाल नेहरू मार्ग पर "गीता निकेतन" नाम से अभी दो मास पूर्व बनकर तैयार हुआ है। इसमें भी भगवती श्री दुर्गा और श्री हनुमान की प्रतिमाएँ हैं तथा साथ में श्री राधा-कृष्ण की सुन्दर मूर्तियाँ हैं। इन नए देवालयों के अतिरिक्त ऐतिहासिक आनन्द-भवन के सामने भरद्वाज आश्रम, अलोपीबाग के श्री ललिता-पीठ (अलोपी देवी मन्दिर) तथा रामबाग के श्री हनुमान-मन्दिर का जीर्णोद्धार हो जाने से वे अधिकाधिक दर्शनीय हो गए हैं। सङ्गम के निकट बाँध पर अनेकानेक नए देवालय अलग बनकर तैयार हो रहे हैं। प्रतीत होता है कि वह दिन अब दूर नहीं, जब तीर्थराज प्रयाग में उसके नामानुरूप भव्य देवालयों की भरमार हो जायगी।

क्या ही अच्छा होता कि शक्ति के उपासक भक्त-जन भी तीर्थराज प्रयाग में एक शाक्तोपयोगी दश महा-विद्यात्मक देवालय के निर्माण के लिए अग्रसर होते। इससे सारे देश का ही नहीं, विश्व का कल्याण ही होगा।

५—नवरात्र का महापर्व

एक-भक्तेन नक्तेन स्व-शक्त्या याचितेन वा ।
पूजनीया जनैर्देवी स्थाने स्थाने पुरे पुरे ॥
गृहे गृहे शक्ति पूज्या ग्रामे ग्रामे वने वने ।
स्नातैः प्रमुदितैर्हृष्टैर्ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्नृपैः ।
वैश्यैः शूद्रैर्भक्ति-युतैः म्लेच्छैरन्यैश्च मानवैः ॥

——भविष्योत्तरे

शास्त्र का यह वचन आज कितना चरितार्थ है, इसका यहाँ प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है। इस विशाल भारत में ऐसा कौन हिन्दू घर होगा, जहाँ इस नवरात्र के पुण्य-प्रद अवसर पर जगदम्बा का आवाहन न किया गया हो और माता का पूजा का यह क्रम जहाँ सदियों से इस पवित्र देश में जारी है, वहाँ उसका वर्तमान व्यापक रूप देखते हुए निश्चय के साथ कहना पड़ता है कि जगदम्बा की यह लोक-हितकारिणी अर्चना इसी प्रकार व्यापक रूप में भविष्य में भी होती रहेगी। वस्तुतः मा की पूजा ऐसी ही हृदय-ग्राही वस्तु है।

शाक्त-दर्शन

लेखक—'कौल-शिरोमणि' स्वर्गीय पण्डित कालीचरण जी पन्त

हिन्दी में शाक्त-साहित्य का अभाव रहा है। उसमें भी 'शाक्त-दर्शन' पर तो किसी ने लेखनी उठाने का साहस ही नहीं किया। कुछ विद्वानों ने प्रयास भी किया, तो शाक्त-साधना का क्रियात्मक अनुभव न होने से वैसी सफलता प्राप्त नहीं कर सके। उनकी कृतियों से सच्चे जिज्ञासुओं को सन्तोषलाभ नहीं हो सका।

प्रस्तुत पुस्तक क्रिया-सिद्ध और अनुभवी विद्वान् द्वारा लिखी होने के कारण 'शाक्त-दर्शन' पर एक ठोस शोध-प्रबन्ध के समान है, जिसका महत्व उसके प्रत्येक शब्द और प्रत्येक वाक्य से प्रतिपादित होता है।

रजिस्ट्री डाकव्यय सहित मूल्य चार रुपए मनीआर्डर से भेजकर पुस्तक प्राप्त करें और लाभ उठावें।

प्रकाशक

कल्याण मन्दिर

❀ सम्पादकीय

फिर मा की इस पूजा में किसी प्रकार का भेद भाव नहीं है। सभी लोगों—स्त्री-पुरुष, आबाल-वृद्ध—चारों वर्णों के ही लोगों को नहीं, म्लेच्छों तक को मा की आराधना का अधिकार है। महिमामयी जगज्जननी की यह पूजा ऐसी ही गौरवास्पद है। नहीं-नहीं, पीड़ित और सङ्कट-ग्रस्त को यह जननी ही तो गले लगा कर सब प्रकार की शान्ति प्रदान करती है। इसी से इस अवसर की—नवरात्र की पूजा-अर्चा की यह महिमा है। कौन दुःखी मानव माता की गोद में जा बैठने की इच्छा नहीं करता ?

नवरात्र के मा के दिन धर्म-भीरु हिन्दुओं के लिए सान्त्वना का सन्देश देते हैं। इन दिनों प्रत्येक जन यही कहता है कि 'आओ, मा की आराधना करें। इसी से हमारे सङ्कट दूर होंगे और हमारा लोक-परलोक बनेगा।'

पढ़े-लिखे लोग व्रत-पूर्वक चण्डी-पाठ करते हैं; समर्थ लोग वही कार्य पण्डितों से करवाते हैं। इनसे इतर लोग व्रत करते हैं और पास-पड़ोस के देवी-मन्दिर में जाकर पूजा-अर्चा करते हैं। इस तरह इन दिनों सभी लोग यथाशक्ति जगज्जननी का अर्चन कर अपने को कृतार्थ करते हैं। यह कैसी पूत भावना है; यह कैसा पावन पर्व है, इसका अनुभव धर्म-भीरु को छोड़कर और कौन कर सकता है ?

* * *

नवरात्र का यह महा-पर्व साल में दो बार आता है। एक वर्ष के आरम्भ में चैत्र के शुक्ल पक्ष में और दूसरा छः महीने बाद आश्विन के शुक्ल पक्ष में। इन दोनों ही अवसरों पर सभी लोग—ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक जगदम्बा की पुकार लगाते हैं।

लोग समझते हैं कि इन दोनों नवरात्रों के पुनीत काल में जगदम्बा की जो भी पुकार करता है, उसकी अवश्य सुनवाई होती है। वे ऐसा समझते ही नहीं, उनका ऐसा ही दृढ़ विश्वास है और यह विश्वास आज का नहीं, परम्परागत है—यही नहीं, सप्रमाण कह सकते हैं कि सृष्टि के आरम्भ से ही यह पुकार प्रचार में है। तब यदि लोगों का ऐसा दृढ़ विश्वास हो जाय, तो इसमें आश्चर्य क्या है !

लोग यह भी जानते और मानते हैं कि नवरात्र के इस पुण्य अवसर पर घट-स्थापन-पूर्वक चण्डी-स्तोत्र का नौ दिन तक पाठ किया जाय; कुमारिकाओं को भोजन कराया जाय और अन्त के दिन हवन किया जाय, तो कर्ता की सभी मनोकामनाएँ पूरी हो जाती हैं।

जगदम्बा की यह पूजा-प्रणाली सबको मालूम तो है ही, कितने ही प्रति नवरात्र में उसी क्रम से मा का पूजन-आराधन करते हैं और उसको करके अपने को कृतार्थ मानते हैं। जो लोग उतने विधान से नहीं करते हैं, वे नवरात्र के अन्तिम तीन दिन ही पूजा-पाठ करके अपने को सन्तुष्ट करते हैं और जो लोग यह सब स्वयं नहीं कर सकते हैं, वे पढ़े-लिखे ब्राह्मणों को प्रतिनिधि बनाकर उनके द्वारा भुवनेश्वरी को प्रसन्न करने का प्रयत्न करते हैं।

नवरात्र के दिनों हिन्दुओं के यहाँ, चाहे वे किसी भी देवता के उपासक हों, जगदम्बा का किसी न किसी रूप में आराधन अवश्य ही होगा। इसमें त्रुटि नहीं होने दी जायगी। ऐसा क्यों होता है ? इसलिये कि लोगों का विश्वास है कि माँ उनके दुःखों और कष्टों को नहीं देख सकेगी और वह अपने वात्सल्य-भाव के कारण उन पर अवश्य दया करेगी और उसके द्रवित होते ही उनके सारे-के-सारे कष्टों के विनष्ट होने में जरा भी देर न लगेगी।

निस्सन्देह यह स्वार्थ-भावना है, परन्तु यह

स्वाभाविक है कि पुत्र माँ से अपने स्वार्थों की सिद्धि किया ही करता है। अतएव यह समुचित है। यही कारण है कि वर्ष के इन दोनों अवसरों पर सभी लोग पुत्र-भाव में पगकर अपने-अपने ढंग से माँ की पुकार करते हैं और माँ भी उनकी पुकारों को वात्सल्य-भाव से सुनती है और उनके अभीष्टों को पूर्ण करती है।

* * *

मन्त्रसिद्धि का उपाय

मूल्य २-००रु०

इस अपूर्व पुस्तक में इस बात का रहस्य स्पष्ट शब्दों में प्रकट कर दिया गया है कि मन्त्रों का क्या महत्व है और आज कल लोग उनसे लाभ क्यों नहीं उठा पाते।...हम गुरु-मुख से जो मन्त्र पाते हैं, वह हमारे निज बीज-मन्त्र के अनुरूप या अनुकूल होना चाहिए, विरोध होने पर हमारा भीतरी शक्ति-व्यूह (Causal stress) अशक्त हो जायगा; जिस प्रकार गाने में गले का स्वर और यन्त्र के स्वर में प्रतिकूलता (Disharmony, Discord) होने पर विपरीत स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं, ठीक उसी प्रकार।....कौन देवता अपने कुल का है, अपनी राशि में पड़ता है, अपने ही गुण का है, ऋणी है या धनी—इन सब बातों का विचार करके ही मन्त्र ग्रहण करना चाहिये। इस पुस्तक में मन्त्र-ग्रहण करने से पहले 'कुलाकुल चक्र', 'राशि चक्र', 'अकडम चक्र', 'अकथह चक्र' और 'ऋणी-धनी चक्र' के द्वारा मन्त्र-विचार की संक्षिप्त प्रक्रिया बहुत सुन्दर ढङ्ग से दी गई है।

साथ ही मन्त्रों द्वारा लौकिक तथा पारलौकिक कल्याण की सिद्धि करने का उपाय भी इसमें बताया गया है। मुख्य विषय इस प्रकार है—

मन्त्र क्या हैं, मन्त्र-विचार, मन्त्र-संस्कार, दीक्षा-विधि, देवता, माला-संस्कार, पुरश्चरण, मन्त्र-संग्रह आदि।

स्पष्ट है कि हिन्दी में यह एक अनूठी पुस्तक है और प्रत्येक व्यक्ति के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

॥ प्रकाशक ॥
कल्याण मन्दिर, प्रयाग

विशुद्ध चण्डी (श्री दुर्गा सप्तशती)

विषय-प्रवेश

[१]

'कौल-कल्पतरु' पण्डित देवीदत्त शुक्ल की प्रस्तावना

आज से ३२ वर्ष पूर्व 'चण्डी' पत्रिका का प्रकाशन जब प्रारम्भ हुआ, तब उसके पहले अङ्क में जो पहला प्रमुख लेख छपा है, उसका शीर्षक है 'चण्डी की महिमा।' इस शीर्षक में जो 'चण्डी'—शब्द आया है, उसका आशय श्री दुर्गा सप्तशती से ही है। इस महत्व-पूर्ण लेख के लेखक-रूप में 'कौल-कल्पतरु' मणिपुरवासी पण्डित देवीदत्त जी शुक्ल का शुभ नाम दृष्टिगत होता है। परम पूज्य श्री शुक्ल जी ने अपने इस लेख के अन्त में लिखा है कि—

'...चण्डी के इस प्रकार के महत्व का एक परिणाम यह हुआ है कि उसमें अनेक पाठान्तर हो गये हैं। ऐसे पाठ-भेदों की संख्या ३१३ है। इसके सिवा २९ श्लोक और ७ अर्द्ध श्लोक आज भी ज्ञात हैं, जो सप्तशती के मूल पाठ से निकल गए हैं। इसी तरह मन्त्रों में भेद है। कात्यायनी, चिदम्बर एवं सामान्य प्रचलित मन्त्र-क्रम में बहुत बड़ा भेद पाया जाता है। और यह सब कुछ ऐसा है, जो चण्डी जैसी वेद-तुल्य पुस्तक में न होता, तो क्या ही अच्छा होता। अस्तु, इस सम्बन्ध में एक ऐसा प्रयत्न तो अवश्य ही हो जाना चाहिए कि खूब परिश्रम करके चण्डी का एक सु-सम्पादित 'संस्करण' निकाला जाय।...'

वैशाख १९९९ की 'चण्डी' के दूसरे अङ्क में भी कौल-कल्पतरु पूज्य शुक्ल जी द्वारा लिखित पूर्वोक्त शीर्षक का ही एक अन्य लेख प्रारम्भ में ही प्रकाशित हुआ है। इसमें भी आपने स्पष्ट लिखा है कि—

'...दुःख इतना ही है कि ऐसे महत्वपूर्ण धर्म-ग्रन्थ का एक भी प्रामाणिक संस्करण अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। इसका कारण यही है कि जितने संस्करण अब तक छपे हैं, उनके तैयार करनेवाले उन्हीं को प्रामाणिक मानते हैं। अब आवश्यकता इस बात की है कि उन सब संस्करणों को लेकर तथा प्राचीन हस्त-लिखित प्रतियों को इकट्ठा कर उन सबके आधार पर एक नया संस्करण तैयार किया जाय।....'

'सोलन में दुर्गा-भवन' शीर्षक से वैशाख १९९९ में ही प्रकाशित एक अन्य सम्पादकीय टिप्पणी भी द्रष्टव्य है। उक्त टिप्पणी इस प्रकार है—

'...'चण्डी' के पाठक यह बात जानकर अतीव प्रसन्न होंगे कि सोलन में 'श्री दुर्गा-भवन' की स्थापना की गई है। सोलन-नरेश श्रीमान् राजा दुर्गासिंह जी स्वयं दुर्गा के परम भक्त हैं, अतएव वहाँ 'श्री दुर्गा-भवन' का स्थापित होना सर्वथा स्वाभाविक है।

यह सत्कार्य वहाँ के 'स्वाध्याय-सदन' नामक संस्था के द्वारा सम्पन्न कराया जायगा। इसके मुखपत्र 'श्री स्वाध्याय' में छपा है कि 'श्री दुर्गा भगवती के सम्बन्ध में जितना भी वाङ्मय होगा, उन सबका संग्रह किया जायगा।....दुर्गा सप्तशती की सात-आठ टीकायें तथा छः-सात प्रकार की भिन्न-भिन्न रूपों में मुद्रित पुस्तकें इ

सगृहीत हो चुकी हैं।.. जिन लोगों को सप्तशती के सम्बन्ध में जो भी कुछ विशेष ज्ञान हो, वह लेख-बद्ध कर भेजने की कृपा करें।'

काम बड़े महत्व का है। क्या ही अच्छा होता, 'स्वाध्याय-सदन' के विद्वान् सञ्चालक इस महत्वपूर्ण कार्य के साथ-साथ 'सप्तशती' का एक प्रामाणिक सस्करण भी प्रकाशित करने का आयोजन करते।...'

ज्येष्ठ १९९९ के अङ्क में श्रीनेमधर शर्मा के कल्पित नाम से प्रातःस्मरणीय श्री शुक्ल जी ने 'चण्डी के अधिक श्लोक' शीर्षक से एक लेख लिखकर प्रकाशित किया। इस लेख के प्रारम्भ में ही आपने लिखा है कि —

'...इस बात को सचमुच बड़ी आवश्यकता है कि चण्डी का एक प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित हो। आज चण्डी-पाठ करने से वास्तविक फल मिलता हुआ उतना नहीं दिखाई देता है। इसके जो कारण हैं, उनमें एक कारण यह भी है कि चण्डी का आज कोई प्रामाणिक संस्करण नहीं मिल रहा है। इधर छापेखानों ने तरह-तरह के जो संस्करण प्रकाशित किए हैं, उनसे चण्डी के मूल पाठ में बहुत गोल-माल किया गया है। क्या ही अच्छा होता कि चण्डी का एक प्रामाणिक संस्करण निकाला जाता।...'

श्रावणाङ्क १९९९ में श्री नेमधर शर्मा के नाम से पुनः कौल-कल्पतरु श्री शुक्ल जी का एक महत्वपूर्ण लेख इसी सन्दर्भ में दृष्टिगत होता है। लेख का शीर्षक है—'सप्तशती में पाठ-भेद।' इस लेख के महत्व को प्रतिपादित करते हुए आपके द्वारा लिखित प्रथम सम्पादकीय टिप्पणी —'चण्डी' का प्रामाणिक संस्करण,' जो इस अङ्क में प्रकाशित हुई है, वह यहाँ शब्दशः उद्धृत करने योग्य है—

'...चण्डी के प्रामाणिक संस्करण की कितनी बड़ी आवश्यकता है, यह बात इस अङ्क में प्रकाशित श्रीयुत नेमधर शर्मा के लेख से भले प्रकार सिद्ध हो जाती है। उस लेख में शर्मा जी ने उपलब्ध पाठ-भेदों का अच्छा सङ्कलन किया है। इन पाठ-भेदों को देखते हुए यह बात नितान्त आवश्यक जान पड़ती है कि चण्डी के भिन्न-भिन्न संस्करणों की एक संशोधक की दृष्टि से छान-बीन की जाय। ऐसा होने से चण्डी का एक प्रामाणिक संस्करण अपने आप उपलब्ध हो जायेगा, जो चण्डी-भक्तों के लिए वास्तव में बड़े कल्याण की बात होगी।

सोलन के राजा साहब के 'दुर्गा-भवन' में चण्डी के भिन्न-भिन्न संस्करणों का संग्रह किया भी जा रहा है। यदि उक्त भवन के सञ्चालक इस महत्वपूर्ण कार्य का दायित्व अपने ऊपर ले लें, तो उनका 'दुर्गा-भवन' सार्थक ही न हो जायगा, किन्तु उसके द्वारा एक अति महत्व का कार्य सम्पन्न हो जायगा। उक्त भवन की चर्चा करते हुए हम 'चण्डी' के इसी स्तम्भ में उसके सञ्चालकों का ध्यान इस महत्व के कार्य की ओर आकृष्ट भी कर चुके हैं। खेद की बात है कि अभी तक हमें उनकी ओर से इस सम्बन्ध में कोई समुचित सूचना नहीं मिली है। सोलन के राजा साहब जगदम्बा के परम भक्त हैं। हमें विश्वास है कि श्रीमान् का ध्यान यदि इस महत् कार्य की ओर आकृष्ट किया जायगा, तो भवन के सञ्चालकों को उनका आदेश ही नहीं मिल जायगा, किन्तु समुचित प्रोत्साहन भी मिलेगा। आशा है, उक्त 'दुर्गा-भवन' के सञ्चालक इस महत्वपूर्ण कार्य को अपने हाथों में लेने में अब अधिक विलम्ब न करेंगे, क्योंकि यह कार्य बहुत ही आवश्यक है—चण्डी का एक प्रामाणिक संस्करण अवश्य हीं तैयार हो जाना चाहिए।...'

आषाढ़ २००२ की 'चण्डी' के 'चिट्ठी पत्री' स्तम्भ में मोढ खडकी, पोरबन्दर, काठियावाड़ के श्री गोवर्धन कडवा मेहता का एक पत्र 'सप्तशती का पाठ-क्रम और उसका शुद्ध संस्करण' शीर्षक से प्रकाशित हुआ, जिसका सारांश निम्न प्रकार है—

'.. सप्तशती पाठ-क्रम तन्त्रों में कुछेक फेर-फार से दिया गया है। यथा—अङ्ग-हीनो यथा देही सर्व-कर्मसु न क्षमः, अङ्ग-षट्क-विहीनस्तु तथा सप्तशती-स्तुतिः।

कवचार्गला, कीलक और पश्चात् के रहस्य-त्रय लिए बिना सप्तशती का पाठ करना निष्फल है, परन्तु प्रश्न यह है कि एक पाठ करना हो तो पाठ क्रम से करे, पर यदि किसी को तीन पाठ करना हो, तो क्या कवचार्गला, कीलक और रहस्य-त्रय तीन बार लेना चाहिये ?

दूसरी बात यह है कि 'चण्डी' के कितने ही अङ्कों में श्री जरिबन्धन लाल और मान्यवर पण्डित नेमधर शर्मा जी ने पाठ-भेद या क्षेपक आदि सप्तशती के संशोधन निकाल कर सप्तशती का शुद्ध संस्करण होना चाहिये, ऐसा जोर-शोर से खूब शोर मचाया था और संशोधन के लिये विद्वद्वर्यों की एक समिति बनाने की बात भी चल रही थी। ...शुद्ध सप्तशती का संस्करण जरूरी है, यह कौन न मानेगा ? ...

इस पत्र को उद्दिष्ट कर कौल-कल्पतरु शुक्ल जी ने एक सम्पादकीय टिप्पणी श्रावण २००२ की 'चण्डी' में लिखकर प्रकाशित की। यथा--

'चण्डी' का शुद्ध संस्करण

एक सज्जन ने चिट्ठी-पत्री में लिखा है कि 'चण्डी' का एक शुद्ध संस्करण निकालना चाहिये। हम उनके इस मत से सहमत हैं, परन्तु इस बात से नहीं कि जो संस्करण प्रचलित हैं, वे सभी अशुद्ध हैं।

'चण्डी' के भिन्न-भिन्न संस्करण देखने से मालूम होता है कि उनमें पाठान्तर, श्लोकान्तर और मन्त्रान्तर हैं। ऐसी दशा में कोई भी व्यक्ति यह स्थिति देखकर शङ्का कर सकता है कि कौन संस्करण ठीक माना जाय। 'चण्डी' के विशेषज्ञ सभी संस्करणों को स्वीकार करते हैं। परन्तु साधारण लोग शङ्काशील बने रहते हैं। ऐसी दशा में यह आवश्यक जान पड़ता है कि कुछ विद्वान् एकत्र होकर कोई एक संस्करण सर्वसाधारण के लिये निर्द्धारित कर दें और यह भी स्पष्ट कर दें कि पाठान्तरों और मन्त्रान्तरों का क्या रहस्य है।

हमने इस संबन्ध में विद्वानों का ध्यान कई बार आकृष्ट किया परन्तु अभी तक हमें अपने प्रयत्न में सफलता नहीं मिली है। तथापि हम इस सम्बन्ध में उदासीन नहीं हैं और बराबर यत्नवान् हैं। हमें विश्वास है कि एक न एक दिन हम 'चण्डी' का लोक-प्रिय संस्करण प्रकाशित करने में सफल-मनोरथ होंगे। तब तक पाठकों को धैर्य रखना चाहिये। यह काम बड़े भारी उत्तरदायित्व का है। साथ ही वर्षों के परिश्रम के बाद ही इसमें सफलता प्राप्त हो सकती है।

[२]

पण्डित चन्द्रशेखर चतुर्वेदी; मथुरा की विवेचना

वासन्तिक नवरात्र २०२९ को प्रकाशित 'दुर्गा-पाठ पर मौलिक विचार' नामक पुस्तिका में सप्तशती के प्रचलित विधान के संबन्ध में अनूठी विवेचना की गई है। उसका सारांश यहाँ उद्धृत किया जाता है—

ऋषिराज श्री मार्कण्डेय जी द्वारा प्रणीत मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत त्रयोदशाध्यायों में समुल्लिखित देवी-माहात्म्य के मध्य प्रथमाध्याय के रूप में कथित मधु-कैटभ-बध चरित, द्वितीयाध्याय से चतुर्थाध्याय पर्यन्त ३ अध्यायों में वर्णित महिषासुर-बध-चरित एवं पञ्चमाध्याय से त्रयोदशाध्याय पर्यन्त ९ अध्यायों में प्रतिपादित शुम्भ आदि दैत्य-बध-चरित को मध्य काल के भारतीय विशिष्ट विद्वानों ने दैनिक उपासना में उपयोगी मानकर इसे स्वतन्त्र रूप में पृथक् करते हुये इसके--

प्रारम्भिक मधु-कैटभ-बध चरित को प्रथम महाकाली चरित, द्वितीय महिषासुर-बध चरित को मध्यम महालक्ष्मी चरित एवं अन्तिम शुम्भादि-दैत्य-बध चरित को उत्तम महा-सरस्वती चरित के नाम से अभिहित करते हुए त्रिगुणात्मिका भगवती श्री चण्डिका देवी के चरित-त्रयों को दुर्गा सप्तशती के नाम से महाकाली, महालक्ष्मी

और महा-सरस्वती-चरित के रूप में परिवर्तित कर दिया है। एवं—

इन चरित-त्रयों के आदि और अन्त में नवार्ण मन्त्र की अष्टोत्तर शत (१०८) आवृत्ति किया जाना अनिवार्य कर इसके प्रारम्भिक (ऐं- ह्रीं-क्लीं) तीनों बीजों की क्रम से तीनों चरितों के प्रारम्भ में योजना करते हुए इनके ध्यानादि का विधान भी निर्धारित कर दिया है।

इस प्रकार प्रथम महाकाली-चरित के प्रारम्भ में प्रथम वाणी बीज (ऐं) सहित महाकाली का ध्यान किया जाना, जिसके मध्य मधु और कैटभ दोनों दैत्यों का वध करने के हेतु ब्रह्मा के द्वारा महाकाली की स्तुति किये जाने का वर्णन पाया जाता है। एवं—

मध्यम महालक्ष्मी-चरित के प्रारम्भ में मायाबीज (ह्रीं) सहित महालक्ष्मी का ध्यान किया जाना; जिसके मध्य सरोज-स्थिता महालक्ष्मी के द्वारा महिषासुर-वध किये जाने का उपाख्यान वर्णन किया गया है। तथा—

उत्तम महासरस्वती-चरित के प्रारम्भ में काली-बीज (क्लीं) सहित महासरस्वती का ध्यान किया जाना, जिसके मध्य गौरी की देह से समुत्पन्न होकर शुम्भादि दैत्यों का विनाश करनेवाली भगवती सरस्वती देवी का ध्यान किया गया है। किन्तु—

प्रस्तुत चरितोपाख्यानों के मध्य न तो प्रथम महाकाली-चरित के अन्तर्गत कहीं महाकाली के नाम का उल्लेख ही प्राप्त होता है और न ब्रह्मा के द्वारा महाकाली की स्तुति किये जाने का वर्णन ही उपलब्ध होता है। तथापि इसके पाठ का सङ्कल्प महाकाली-चरित के नाम से ही किया जाता है।

इसी प्रकार मध्यम महालक्ष्मी-चरित के उपाख्यान में भी न तो कहीं महालक्ष्मी के नाम का ही उल्लेख प्राप्त होता है, न महालक्ष्मी का कोई चरितोपाख्यान ही वर्णित पाया जाता है और न महालक्ष्मी के कर-कलित-करवाल की विकराल धार के घोर प्रहार से महिषासुर का निधन होना ही प्रमाणित होता है। तथापि इसके पाठ का सङ्कल्प महालक्ष्मी-चरित के नाम से ही किया जाता है।

तदनुसार ही उत्तम महासरस्वती-चरित के मध्य भी न तो कहीं सरस्वती का गौरी की देह से उत्पन्न होना ही प्रमाणित होता है और न महासरस्वती का नामोल्लेख या सरस्वती के पवित्र कर-कमलों से किसी दैत्य का विनाश किया जाना ही प्रमाणित होता है। तथापि इसके पाठ का सङ्कल्प महासरस्वती-चरित के नाम से किये जाने की प्रथा प्रचलित पाई जा रही है। अतः—

चरित-त्रयों के मध्य प्रतिपादित विपर्यय का निराकरण करते समय विद्वत्समुदाय के अवलोकनार्थ यहां पर प्रत्येक चरित के मध्य वर्णित कथानक का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाता है—

१—महाकाली चरित

प्रस्तुत चरित के मध्य, जिस समय कल्प के अन्त को सृष्टि से मिलानेवाली योगनिद्रा की गोद में भगवान् जनार्दन के शेष-शैया पर शयन करते हुए सृष्टि के प्रारम्भ का समय उपस्थित हुआ, उस समय उनके नाभि-कमल मे ब्रह्मा और कर्ण-मल से मधु तथा कैटभ नाम के दो दैत्य उत्पन्न हुये।

जिस समय वह दैत्य-युगल कमलासन पर समासीन ब्रह्मा को मार-कर उनका कमलासन अपहरण करने की इच्छा मे उनके साथ युद्ध करने के लिए समुद्यत हुआ, उस समय ब्रह्मा ने उन्हें युद्धोद्यत और भगवान् जनार्दन को योगनिद्रा में निद्रित देख उन्हें प्रबुद्ध करने के हेतु भगवती योगनिद्रा की स्तुति की।

ब्रह्मा की स्तुति से प्रसन्न हो भगवती योगनिद्रा भगवान् जनार्दन के देह से विनिर्गत होती हुई ब्रह्मा को दर्शन दे अन्तर्हित हो गईं और भगवान् जनार्दन जागृत हो युद्धोद्यत उन दैत्यों के साथ युद्ध करने लगे।

जिस समय भगवान् जनार्दन को दैत्यों के साथ युद्ध करते हुए ५ हजार वर्ष व्यतीत हो गये, उस समय दैत्यों ने भगवान् जनार्दन से वर मांगने के लिए कहा।

भगवान् केशव ने दैत्यों से कहा कि 'यदि तुम प्रसन्न होकर हमें वर प्रदान करना चाहते हो, तो हम यही वर मांगते हैं कि तुम दोनों भाई हमारे हाथों से मरना स्वीकार कर लो।'

इस प्रकार भगवान् जनार्दन के द्वारा वञ्चित होते हुए भी वर प्रदान स्वीकार करते हुए दैत्यों ने कहा कि 'अच्छा ! जहाँ जल-विहीन पृथ्वी हो, वहाँ तुम हमें मार सकते हो।'

भगवान् जनार्दन ने 'तथास्तु' कहते हुये अपने शरीर के जघन भाग को, जिसे शास्त्रीय प्रमाणानुसार पृथ्वी-तल माना गया है, विस्तृत करते हुये उस पर अपने सुदर्शन चक्र से उनके शिर काट डाले।

इस प्रकार प्रथम महाकाली-चरित के मध्य भगवती महाकाली का कोई उपाख्यान उपलब्ध न होते हुये भी प्रस्तुत मधु-कैटभ-वध चरित का महाकाली-चरित के नाम से संकल्पपूर्वक पाठ किया जाना सर्वथा अप्रामाणिक होने के कारण अमान्य हो जाता है।

२—मध्यम महालक्ष्मी चरित

प्रस्तुत चरित के मध्य जिस समय दैत्यराज महिषासुर से निराकृत होने पर देववृन्द ने ब्रह्मा के नेतृत्व में शिव-सहित भगवान् विष्णु के समक्ष जाकर अपनी वर्तमान परिस्थिति का वर्णन करते हुये रक्षा करने के हेतु प्रार्थना की, उस समय उन दोनों की भ्रू-कुटियाँ कुटिल हो गईं और ब्रह्मा सहित तीनों के देह से एक विशिष्ट तेज उत्पन्न हुआ, जिसके प्रकट होते ही आगन्तुक इन्द्रादि समस्त देवताओं के शरीरों से एक अद्भुत तेज विनि:सृत हो उसी तेज में समाविष्ट होता हुआ नारी-रूप धारण-पूर्वक ,भगवती शिवा के रूप में परिणत हो गया।

इस प्रकार देवताओं के तेज से समुत्पन्न होकर 'शिवा'-नाम-धारणी भगवती चण्डिका देवी ने जिस समय देवताओं द्वारा प्रदत्त आभूषणादि धारण करते हुये समस्त आयुधों से विभूषित हो सिंह पर विराजमान होकर अट्टहास करना प्रारम्भ किया, उस समय समस्त भू-मण्डल कम्पायमान हो उठा।

इस भयङ्कर अट्टहास को सुनते ही 'अरे ! वह क्या ?' कहता हुआ दैत्यराज महिषासुर अपनी समस्त सेना सहित उसी शब्द की ओर दौड़ पड़ा।

वहाँ पहुँचते ही दैत्यराज महिषासुर की सेना का भगवती चण्डिका देवी के साथ युद्ध होने लगा।

जिस समय युद्ध करते हुए दैत्य-सेना भगवती जगदम्बा पर चारों ओर से अस्त्र-शस्त्रों की बौछार करने लगी, उस समय भगवती चण्डिका देवी ने अपने शस्त्रास्त्रों की घोर वर्षा करते हुए उनके समस्त हथियारों को सहज ही काट कर फेंक दिया।

इस प्रकार भगवती चण्डिका देवी के साथ युद्ध करते हुए जिस समय दैत्यराज की समस्त सेना विनष्ट हो गई, उस समय दैत्यराज ने रणांगण में आकर भगवती चण्डिका देवी के साथ स्वयं युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया।

स्वरूप बदल-बदल कर अनेक रूपों से युद्ध करते हुए महिषासुर ने जिस समय पुन: अपना महिषरूप धारण कर पूर्व की भाँति संसार को विक्षोभित करना प्रारम्भ कर दिया, उस समय भगवती चण्डिका देवी को क्रोध उत्पन्न हुआ और वह बार-बार मधुपान करती हुई हँसने लगी।

जिस समय मदोन्मत्त हो दैत्यराज महिषासुर गर्जना करता हुआ अपनी सींगों से पर्वतों को उखाड़-उखाड़ कर भगवती चण्डिका देवी पर प्रहार करने लगा, उस समय 'ठहर तो जा।' कहते हुए भगवती चण्डिका देवी उछलकर उस पर चढ़ गईं और उसे अपने पैरों से दबाते हुए देवी ने उसकी गर्दन में अपना त्रिशूल बेध दिया।

भगवती चण्डिका देवी के पद–भार से आक्रान्त होने पर महिषासुर जिस समय अपना महिष–रूप त्याग करते हुए दैत्य–रूप में मुख से कटि–पर्यन्त ही विनि:सृत हो पाया था कि उसी समय भगवती चण्डिका देवी ने उसे निज कर–कलित करवाल की विकराल धार के घोर प्रहार से सर्वदा के लिए रणाङ्गण–शायी बना दिया।

इस प्रकार भगवती चण्डिका देवी के कर-कलित करवाल के घोर प्रहार से दैत्यराज महिषासुर का निधन हो जाने पर जिस समय प्रमुदित हो समस्त देवताओं ने भगवती चण्डिका देवी की स्तुति की, उस समय इनकी स्तुति से प्रसन्न हो जगदम्बा ने देव–वृन्द से वर माँगने के लिए कहा।

जगदम्बा की ऐसी अपार अनुकम्पा पूर्ण सरल वाणी सुन देव–वृन्द ने निवेदन किया कि 'हे भगवती! आपने हमारे प्रबल शत्रु महिषासुर का विनाशकर हमें समस्त कष्टों से मुक्त कर दिया। इसी से हमारे समस्त अभीष्ट सिद्ध हो चुके हैं। तथापि–यदि आप हमें अन्य वर प्रदान करने की कृपा करती हैं, तो हमारी यही प्रार्थना है कि जिस समय हम आपका हृदय से स्मरण करें, उस समय हमारी विपत्तियाँ विनाश करने की कृपा की जाये।'

इस प्रकार दैत्यराज महिषासुर का निधन किये जाने के अनन्तर देवताओं की प्रार्थना के अनुरूप वर प्रदान करती हुई भगवती भद्रकाली 'तथास्तु' कहती हुई अन्तर्हित हो गईं।

तत्पश्चात् ऋषिराज श्री मार्कण्डेय जी ने इसी 'शिवा' नाम–धारिणी भगवती चण्डिका देवी का गौरी के देह से पुनः समुद्भूत होकर शुम्भादि दैत्यों का विनाश किया जाना स्पष्ट रूप में प्रमाणित कर दिया है।

इस प्रकार प्रस्तुत चरित के मध्य 'शिवा'–नाम-धारिणी भगवती चण्डिका देवी के खड्ग से दैत्यराज महिषासुर का निधन होना प्रमाणित होते हुए भी इसका 'महालक्ष्मी-चरित' के नाम से ध्यानावाहनादि सहित सङ्कल्पपूर्वक पाठ किया जाना कहाँ तक उचित है? इसका निर्णय किया जाना भारतीय तान्त्रिक महानुभावों का कर्तव्य है।

३—उत्तम महासरस्वती चरित

प्रस्तुत चरित के मध्य जिस समय शुम्भादि दैत्यों से तिरस्कृत हो देवगण पूर्व-प्राप्त वरदान का स्मरण करते हुए हिमालय पर्वत पर वर-प्रदायिनी शिवा-नाम-धारिणी भगवती चण्डिका देवी की स्तुति कर रहे थे, उसी समय गंगा-स्नान करने के हेतु जाते हुए भगवती पार्वती जी ने उनसे प्रश्न किया कि 'तुम सब यहाँ किसकी स्तुति कर रहे हो?' उसी समय भगवती गौरी के देह से समुत्पन्न हो जगदम्बा शिवा ने उत्तर दिया कि 'ये सब शुम्भासुर से तिरस्कृत हो मेरी स्तुति कर रहे हैं।'

इस प्रकार गौरी की देह से समुत्पन्न हो वह अपूर्व सुन्दरी भगवती शिवा वहीं (हिमाचल पर्वत पर) विहार करने लगी। उनकी सुन्दरता को देख दैत्यराज शुंभ-निशुंभ के सेवक चण्ड-मुण्ड नाम के दैत्यों ने जाकर अपने स्वामी से उसके अपूर्व सौन्दर्य की महिमा का वर्णन करते हुए कहा कि 'हे महाराज! एक अत्यन्त सुन्दरी रमणी अपने दिव्य तेज से दशों दिशाओं को आलोकित करती हुई हिमाचल पर्वत पर विहार कर रही है। हे असुरेश्वर! इस प्रकार की दिव्य तेजमयी परम-सुन्दरी ललना अद्यावधि कहीं देखने में नहीं आई। वह कौन है? इसका अनुसन्धान कराते हुए आप उसे अवश्य ग्रहण कीजिये।'

भगवती चण्डिका देवी के अपार सौंदर्य की महिमा श्रवण करते ही दैत्यराज शुम्भासुर ने उसे बुलाकर लाने के लिए सुग्रीव नाम के दैत्य को भेजा, जिसे भगवती जगदम्बा ने अपनी प्रतिज्ञा का वर्णन सुनाते हुए वापस लौटा दिया।

भगवती शिवा की प्रतिज्ञा का श्रवण करते ही दैत्यराज शुम्भासुर ने अत्यन्त क्रुद्ध हो अपने सेनापति धूम्रलोचन

को आज्ञा दी कि 'हे धूम्रलोचन ! तुम सेना-सहित जाकर उसे जबर्दस्ती पकड़कर ले आओ ।'

आज्ञा प्राप्त होते ही धूम्रलोचन ने जाकर भगवती चण्डिका देवी से दैत्यराज शुम्भासुर के निकट चलने के लिये प्रार्थना करते हुये कहा कि 'यदि आप प्रेमपूर्वक नहीं चलेंगी, तो मैं जबर्दस्ती पकड़कर ले जाऊँगा ।' जब देवी ने चलने से इन्कार कर दिया, तब देवी को पकड़ने के लिये धूम्रलोचन आगे बढ़ा, जिसे भगवती चण्डिका ने अपनी हुंकार मात्र से भस्म कर दिया ।

इस प्रकार धूम्रलोचन के भस्म होते ही उसकी सेना ने जगदम्बा के साथ युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया, जिसमें शनैः शनैः शुम्भासुर के चण्ड-मुण्ड, रक्तबीज आदि प्रमुख सेनानियों के निहत होने पर दैत्यराज शुम्भ-निशुम्भ को सेना-सहित स्वयं रणाङ्गण में आना पड़ा ।

जिस समय युद्ध करते हुए दैत्यराज निशुम्भासुर गदा घुमाते हुए भगवती चण्डिका देवी पर प्रहार करने के लिए समुद्यत हुआ, उसी समय भगवती चण्डिका देवी ने अपने त्रिशूल से उसकी गदा को विदीर्ण करते हुए भस्म कर दिया ।

जिस समय दैत्यराज शुम्भासुर और भगवती चण्डिका देवी दोनों परस्पर वाण-वर्षा करते हुए एक दूसरे के वाणों को विनष्ट करने लगे, उस समय भगवती चण्डिका देवी ने क्रोध में आकर दैत्यराज शुम्भासुर को अपने त्रिशूल के भयंकर आघात से बेध दिया, जिससे वह मूर्छित हो तत्काल गिर गया ।

शुम्भासुर के मूर्छित होकर गिर जाने पर दैत्यराज निशुम्भासुर अपनी गदा लेकर सेना-सहित भगवती चण्डिका देवी को मारने के लिए दौड़ा ।

हाथ में गदा लिए हुए निशुम्भासुर को अपनी ओर दौड़कर आते देख भगवती चण्डिका देवी ने क्रोध में आकर उसके वक्षःस्थल को अपने भयंकर त्रिशूल से बेध दिया, जिसका आघात लगते ही उसके हृदय से एक अत्यन्त बली महापुरुष उत्पन्न हुआ । भगवती चण्डिका देवी ने तत्काल अपने खड्ग के प्रहार से शिरच्छेदन करते हुए उसको सर्वदा के लिये समर-शायी बना दिया ।

इस प्रकार निशुम्भासुर का निधन होने के अनन्तर दैत्यराज शुम्भ और भगवती चण्डिका देवी का परस्पर युद्ध होने लगा ।

युद्ध करते हुये भगवती चण्डिका देवी ने जिस समय खड्ग और ढाल लिये हुये शुम्भासुर को अपनी ओर उछलकर आते हुए देखा, उस समय देवी ने अपने तीक्ष्ण वाणों से उसके खड्ग और ढाल दोनों ही विनष्ट कर दिये ।

परस्पर युद्ध करते हुये जिस समय दैत्यराज शुम्भासुर भगवती चण्डिका देवी को उछलकर आकाश में ले उड़ा, उस समय आकाश में भी भगवती चण्डिका देवी उसके साथ युद्ध करती रहीं ।

दैत्यराज शुम्भासुर और भगवती चण्डिका देवी का आकाश में हुआ यह बाहु-युद्ध मुनिजन एवं सिद्ध-समुदाय के लिये परम विस्मय-कारक हो गया । बाहुयुद्ध करते हुए भगवती चण्डिका देवी ने जिस समय दैत्यराज शुम्भासुर को उठाकर आकाश से पृथ्वीतल पर पटक दिया और वह उठकर भगवती चण्डिका देवी को मारने के लिये पुनः आगे बढ़ा, उस समय भगवती चण्डिका देवी ने उसके वक्षः स्थल पर अपने त्रिशूल का ऐसा भयंकर आघात किया कि वह सर्वदा के लिये रणाङ्गणशायी बन गया ।

इस प्रकार प्रस्तुत चरितोपाख्यान के मध्य महिषासुर-मर्दिनी 'शिवा'-नाम-धारिणी भगवती चण्डिका देवी का पुनः गौरी के देह से समुद्भूत होकर शुम्भादि दैत्यों का विनाश किया जाना प्रत्यक्ष वर्णित पाया जाता है । तथापि इसका 'महासरस्वती-चरित' के नाम से संकल्प-पूर्वक पाठ

किया जाना सर्वथा अप्रामाणिक होने के कारण विचारणीय बन जाता है ।

अन्तिम निवेदन

कहना अनुचित प्रतीत नहीं होता कि प्रस्तुत दुर्गा-पाठ के मध्य वर्णित उपाख्यान और इसके पाठ का प्रचलित विधान दोनों में परस्पर विरोध प्राप्त होना सिद्ध करता है कि मध्यकाल के विशिष्ट विद्वानों ने भावुकतावश नवार्ण मन्त्र को विशुद्ध चण्डी-पाठ के साथ इतना अधिक सम्बद्ध कर दिया है कि जिसे कभी कोई विद्वान् अस्वीकार करने में समर्थ नहीं हो पाया और सबने ही इसे अपूर्व श्रद्धा-सहित स्वीकार कर लिया है ।

यही कारण है कि आज इसके मध्य न तो 'महाकाली-चरित' में वर्णित उपाख्यान के अन्तर्गत कहीं महाकाली का कोई चरित प्राप्त होता है; न मध्यम 'महालक्ष्मी-चरित' के मध्य कहीं लक्ष्मी के खड्ग से महिषासुर का निधन होना ही प्रमाणित होता है और न महासरस्वती की गौरी की देह से उत्पत्ति या सरस्वती के पवित्र कर-कमलों से किस दैत्य का विनाश किया जाना ही प्रतिपादित होता है ; तथापि–

सत्वैक-गुणाश्रया भगवती सरस्वती के कर-कमलों से शुम्भासुर का निधन होना प्रमाणित किया जा रहा है । यह अत्यन्त आश्चर्य का विषय है ।

इस प्रकार चण्डी-पाठ का प्रचलित विधान सर्वथा असङ्गत एवं अप्रामाणिक होते हुए भी आज भारत की पवित्र भूमि पर किस प्रमाण का आधार लेकर सैकड़ों नही, सहस्रों विद्वान् नित्य-प्रति महाकाली, महालक्ष्मी और महा-सरस्वती-चरित के नाम से सङ्कल्प करते हुए पाठ किया करते हैं ? इसका निर्णय प्रदान करने की कृपा की जाये ।

कहना अनुचित प्रतीत नहीं होता कि मध्यकाल के भावुक विद्वानों की अपार अनुकम्पा से प्रस्तुत दुर्गा सप्तशती के चरित-त्रयों पर न्यूनाधिकता ने इतना अधिक साम्राज्य स्थापित कर लिया है कि उसके फलस्वरूप आज भारत की पवित्र भूमि पर दुर्गा सप्तशती के उपलब्ध पाठ का भगवती श्री दुर्गा देवी के दिव्य स्वरूप में दर्शन प्राप्त होना सर्वथा असम्भव हो गया है ।

[३]

आचार्य श्री चरण तीर्थ महाराज श्री की प्रेरणा

गोण्डल (सौराष्ट्र) के श्रीभुवनेश्वरी-पीठ के संस्थापक आचार्यश्री द्वारा संशोधित "दुर्गा सप्तशती—चण्डी-पाठः" का प्रकाशन चार वर्ष पूर्व चैत्र २०२६ में हुआ । इसकी 'क्षमापना' के अन्तर्गत पीठ के अधिकारी ने लिखा है कि—

'' दुर्गा सप्तशती (चण्डी-पाठ) भारतवर्ष में साक्षात् देवी के स्वरूप-वत् पूज्य और तत्काल फल-दायक स्वीकृत है । ऐसे महत्व के तान्त्रिक ग्रन्थ का किसी विद्वान् या संस्था ने प्राचीन पोथियों और हस्त-लिखित मार्कण्डेय पुराण की प्रतियों के आधार पर संशोधन नहीं किया, यह आश्चर्य है । हमारा यह पहिला प्रयत्न है...मार्कण्डेय पुराण की हस्त-लिखित प्रतियाँ प्राप्त कर हमने जो पाठ-भेद और श्लोकाधिक देखे, उन्हें प्रकाशित करने की उत्कण्ठा से हमने इसे त्वरित प्रकट करने का निर्णय किया । इस कारण और प्रेस-मैनों के कारण बहुत अशुद्धियाँ रह गई हैं, इस बात का हमें बड़ा दुःख है ।...'

इस संशोधित कितु अशुद्ध दुर्गा सप्तशती (चण्डी-पाठः) की प्रस्तावना राजवैद्य शिवकुमार जी व्यास आयुर्वेद-चूडामणि ने लिखी है । उसके महत्वपूर्ण अंश को परिष्कृत कर यहाँ सादर उद्धृत किया जाता है—

'...पूर्व काल में जब मुद्रण कला नहीं थी, तब विविध शास्त्रों के ग्रन्थ हाथ से लिखे जाते थे ।

'कौल-कल्पतरु' चण्डी

वर्ष ३२] आषाढ़-भाद्रपद-आश्विन शुक्लाष्टमी २०३० वि० [संख्या ४-६

अनुक्रमणिका

१. शरण तुम्हारो ..: 'कुल-विद्या-वारिधि' पं० नर्मदेश्वर उपाध्याय, एम०ए०, एल-एल० बी० ३५

२. मन्त्र-विज्ञान : श्री ऋतशील शर्मा, बी० एस-सी० ... ... ३६

३. ज्योतिष-विधान : पण्डित रामकुमार मिश्र, वैदिक आचार्य ३९

४. यन्त्र-विज्ञान : श्री ऋतशील शर्मा, बी० एस-सी० ४१

५. मौसम और अध्यात्म : पं० रतनलाल जी दीक्षित, अवकाश-प्राप्त मिटियोरॉलॉजिस्ट ४९

६. आश्रम-मर्यादा (सङ्कलित) ५५

७. संस्मृता संस्मृता ..: कापालिक श्री उद्बोधनानन्द नाथ ... ५७

८. मन वहाँ चल ..: प्राचार्य श्री प्रेमशङ्कर सिंह, "प्राञ्जल", एम० ए० ६३

९. पाप का प्रायश्चित्त (वामा क्षेपा की एक सत्य कथा) : श्री हरिहर भट्टाचार्य ६५

१०. तन्त्र में अनुसन्धान : श्री 'कुलभूषण', एम० ए०

१—कुलार्णव तन्त्र ६९

११. काली-वन्दना : स्वामी विवेकानन्द ७६

१२. धार्मिक जगत् की हलचल [१ 'श्री पीताम्बरा पीठ', दतिया में श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य, २ 'तुलसी-मानस प्रकाशन' का कृतित्व] ७७

१३. सम्पादकीय [१ गुरु-पूर्णिमा, २ तन्त्र का कलात्मक स्वरूप, ३ शाक्तधर्म की प्राचीनता, ४ हिन्दूधर्म का संरक्षक कौन ?] ७९

मुख पृष्ठ का परिचय

मुख-पृष्ठ पर दिये गये रेखा-चित्र में 'दैवत गोलस्थ राशि-नक्षत्र' को स्पष्ट किया गया है। इस मानचित्र में २७ नक्षत्रों को दिखाया गया है। प्रत्येक नक्षत्र का देवता भी उसी के सामने लिखा है। इस सम्बन्ध में अधिक जानकारी हेतु कृपया 'यन्त्र-विज्ञान' नामक लेख को देखने का कष्ट करें।

'कौल-कल्पतरु' स्व० शुक्ल जी की द्वितीय पुण्य-तिथि

'कौल-कल्पतरु' मणिपुर-वासी पण्डित देवीदत्त शुक्ल ने अपने सारे जीवन शाक्तधर्म का प्रकट रूप से प्रचार-प्रसार किया और यह महत्कार्यं आपने बहुत ही नि:स्पृह भाव से सम्पन्न किया। विगत ज्येष्ठ कृष्ण एकादशी संवत् २०३० के दिन आपकी द्वितीय पुण्यतिथि अत्यन्त सादगी के साथ चुपचाप मनाई गई। अत्यधिक सन्तोष की बात यह रही कि जिस "चण्डी" पत्रिका का श्री गणेश आपने बत्तीस वर्ष पूर्व किया था और जो आपके जीवन के अन्त तक लगातार ३० वर्ष तक प्रकाशित होती रही, उसका "कौल-कल्पतरु" चण्डी के नाम से अनायास ही पुन आविर्भाव हो गया और उसका नवीन रूप आधुनिक युग के इतने अनुरूप रहा कि सभी अध्यात्म-प्रेमी महानुभाव उसके प्रथमाङ्क को देखकर प्रफुल्लित हो उठे। हमें विश्वास है कि पूज्य श्री शुक्ल जी की निष्काम धर्मसेवा से अनुप्राणित यह पत्रिका दिन-प्रतिदिन समुन्नत ही होती जायगी और यही उनकी पुण्य स्मृति में सबसे उपयुक्त श्रद्धांजलि होगी।

'कौल-कल्पतरु' स्व० शुक्ल जी

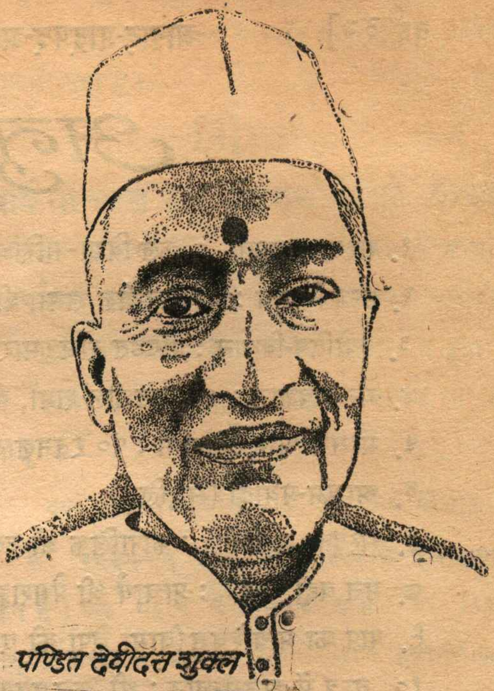

पण्डित देवीदत्त शुक्ल

श्रद्धांजलि

स्व० राजेन्द्रप्रसाद लाल दास विशारद

सहर्षा के स्व० राजेन्द्र प्रसाद लाल दास विशारद "चंडी" के पुराने सुलेखकों में थे। 'मानस में शक्ति-तत्व', 'मानस में मांसाहार' जैसे आपके खोजपूर्ण लेखों ने तत्कालीन वैष्णव जगत् में खलबली मचा दी थी। आपने सहर्षा में "अद्वैत शक्ति-साधना-सत्सङ्ग" नामक संस्था के सङ्गठन में योगदान कर शाक्तधर्म के प्रचार के लिये बड़े महत्व का कार्य किया था। पिछले दिनों आपका देहावसान हो जाने से अध्यात्म-जगत् को बड़ी हानि पहुंची है। हम यहाँ दिवङ्गत आत्मा के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

स्व० आद्याप्रसाद नारायण सिंह

"चण्डी" के प्रकाशन के आदि से ही जिन बन्धुवर ने प्राण-पण से इस बात का प्रयास किया था कि "चण्डी" के लिये एक 'जीवन-कोष' स्थापित हो जाय, जिससे वह निरन्तर सुचारु रूप से चिर काल तक प्रकाशित होती रहे, हमारे उन्हीं परम हितैषी श्री आद्याप्रसाद नारायण सिंह जी का ३० जून ७३ को नरहन (दरभंगा) में निधन हो गया। उनके ही निरन्तर उद्बोधन से "चण्डी" का पुनः प्रकाशन और "दुर्गा-सप्तशती" के विशुद्ध संस्करण के लिए नए सिरे से उद्योग का श्री गणेश हुआ। कौल-सेवा-मिशन के उन नि:स्पृह त्यागी संस्थापक का पूर्ण परिचय थोड़े में देनसाम्भव नहीं। हम यहाँ उनके प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

शरण तुम्हारी

[राग-सिंध भैरवी]

जग जननी अम्बा गुन गाऊँ ।

विश्व विमोहिनि, विश्व विधाइनि तव चरनन बलि जाऊँ ।
जय जय महिष शम्भुमर्दिन को द्रवित हृदय मन ध्याऊँ ।
प्रगटत जग उद्धार करन हित, ऐसो दयशीला कहँ पाऊँ ।
जप तप हीन मेरो तन माता, कैसे तोहिं रिझाऊँ ।
एक आश तव दया अतुल की शत शत सीस नवाऊँ ।
तू दयार्द चित्ता कहलाती, तव दया वारि किमि पाऊँ ।
असुरनि मारि उन मुक्ति दियो तुम, क्षमा रूपिणी ध्याऊँ ।
तीन ताप सें तापित तन मेरो शरण तुम्हारी आऊँ ।

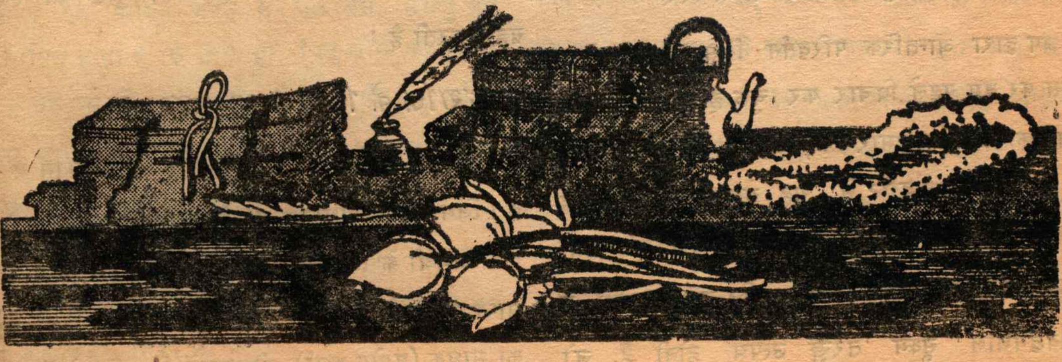

मन्त्र-विज्ञान (गताङ्क पृष्ठ १६ का शेष)

कुण्डलिनी के जागरण का अभिप्राय

कुण्डलिनी के जागरण का अभिप्राय है कुण्डलिनी का क्रिया-शील या उत्तेजित होना। कुण्डलिनी के क्रिया-शील या उत्तेजित होने पर बाहरी और भीतरी दोनों तन्तु उत्तेजित हो जाते हैं, जिससे इन दोनों तन्तुओं द्वारा सञ्चालित शारीरिक यन्त्र (organs) की कार्य-विधि अत्यधिक तेज हो जाती है।

जब साधक कुण्डलिनी को इच्छानुसार जाग्रत् करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है, तभी वह दोनों तन्तुओं द्वारा सञ्चालित शारीरिक यंत्रों को भी अपने इच्छानुसार कम या ज्यादा कार्य करने के लिए प्रेरित कर सकता है। बाहरी तन्तु के द्वारा वह उससे सम्बन्धित यंत्रों—हृदय, फेफड़े आदि की क्रिया-प्रणाली को अपने इच्छानुसार कम व ज्यादा कर सकता है। इसी प्रकार भीतरी तन्तु के द्वारा वह उससे सम्बन्धित आमाशय, आँतों आदि की क्रियाओं को अपने वश में कर लेता है। साथ ही पेट-सम्बन्धी आन्तरिक यन्त्रों की खून की नलियों का प्रसारण भी, पेट के खोखले भाग की पाचक माँस-ग्रन्थि की क्षारण-क्रिया (Secretion) के धीरे-धीरे बढ़ जाने के कारण साधक के वशीभूत हो जाता है।

जप द्वारा कुण्डलिनी का जागरण

जप द्वारा आन्तरिक परिवर्तन किस प्रकार होता है, इस पर हम पहले विचार कर चुके हैं। वस्तुतः यह आन्तरिक परिवर्तन हमारे लिए प्रयोग का विषय है। फिर भी सैद्धान्तिक दृष्टि से यह समझा जा सकता है कि जब कोई बीजमन्त्र या मन्त्र उच्चारित किया जाता है, तब स्वानुगत, स्वगत और समष्टि-गत स्पन्दनों से अतिवर्द्धनशील सूक्ष्म तरङ्गें उत्पन्न होती हैं, जो सम्पूर्ण सृष्टि में चारों ओर फैल जाती हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि हमारी सृष्टि का प्रत्येक पदार्थ—छोटे-से-छोटा अणु या बड़े-से-बड़ा ग्रह सभी कम्पन-शील हैं। चाहे वह दृश्य हो या अदृश्य। यदि ऐसा है, तो हमारे शरीर के कोशों के अणु भी लगातार गति-शील होंगे। दूसरे शब्दों में हमारे शरीर में स्थित स्नायु-जालों (चक्रों) में कम्पन की एक निश्चित आवर्त-संख्या उपस्थित होगी और यदि इसी आवर्त-संख्या की तरङ्गें बीजमन्त्रों या मन्त्रों द्वारा उपनीत होंगी, तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि अणुरणन-क्रिया द्वारा उक्त स्नायु-चक्र उत्तेजित या क्रिया-शील हो उठें।

सूक्ष्म ध्वनि का जैविक, रासायनिक प्रभाव भी हम देख चुके हैं। सारांश यह कि जप द्वारा कुण्डलिनी का जागरण एवं चक्रों का नियन्त्रण सम्भव है। यह वस्तुतः हमारे लिये प्रयोग का विषय है।

कुण्डलिनी का जागरण एवं चिद्-शक्ति

कुण्डलिनी के जाग्रत् हो जाने पर तथा अपनी इच्छानुसार उसे सक्रिय अथवा निष्क्रिय करने की शक्ति प्राप्त हो जाने पर ही चिद्-शक्ति का जागरण सम्भव होता है, क्योंकि जब साधक कुण्डलिनी को स्थिर या निष्क्रिय कर लेता है, तब कुण्डलिनी बाहरी वा भीतरी तन्तुओं के आवेगों-सम्वेगों से मुक्ति पा जाती है, और तभी चिद्-शक्ति, जो ब्रह्मरन्ध्र में रहती है, बुद्धि का स्थान ग्रहण करती है।

चिद्‌शक्ति के विकास का महत्व

जप का विशेष महत्व चिद्-शक्ति के विकास में ही है। जिस प्रकार आधुनिक युग में अणु-विज्ञान का प्रयोग-कर्ता अणुओं के विस्फोट द्वारा प्राप्त अणु-शक्ति से लाभ प्राप्त करना चाहता है, ठीक उसी प्रकार जप-विज्ञान का साधक (प्रयोग-कर्ता) बीजमन्त्रों के विस्फोटों द्वारा विकसित चिद्-शक्ति से कृत-कृत्य होना चाहता है।

चिद्-शक्ति का विकास होना ही जीव की मुक्ति है। चिद्-शक्ति के विकास के द्वारा ही जीव देवत्व को प्राप्त करता है। चिद्-शक्ति के विकास के बिना मनुष्य पशु के समान ही है। उसका जीवन-यापन एक पशु जैसा ही होता है, जिसकी खाने-पीने, सोने की सिमटी हुई आवश्यकताएँ हैं। .....विश्व का मूल चेतना अथवा चिद्-शक्ति ही है—यही मन्त्रशास्त्र का प्रमुख सिद्धान्त है।

आधुनिक विज्ञान् चेतना (Consciousness) को आदि मानकर विश्व को यांत्रिक (Mechanical) या रासायनिक (Chemical) संयोग से उत्पन्न मानता आया है। इसी लिए आधुनिक विज्ञान सत्य पदार्थों से अभी तक अज्ञात रहा है, परन्तु यह सौभाग्य की बात है कि सत्य की खोज करते हुये आधुनिक वैज्ञानिकों को अब इस चिद्-शक्ति का आभास होने लगा है।

"अचिन्त्य की धारणा से ही, जो सत्य विज्ञान की शक्ति है, प्रगाढ़ सुन्दरता का हृदयग्राही अनुभव होता है"—डा० आइंस्टीन के इस कथन के आधार पर लिनकान बारनेट ने कहा है कि––"दुनिया समझती है कि डा० आइंस्टीन अनीश्वरवादी (एथीस्ट) हैं, पर नहीं, वे महाचिति को विश्व का मूल समझते हैं।"

यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि डा० आइंस्टीन अपने इस विश्वास को वैज्ञानिक प्रणाली से सिद्ध करने के पूर्व ही इस पार्थिव जगत् से चल बसे, परन्तु अब ऐसा भासित होता है कि शीघ्र ही चिद्-शक्ति का महत्व स्पष्ट होनेवाला है। हजारों पश्चिम-वासी अब बुद्धिवादिता, यान्त्रिकता को तिलाञ्जलि देकर रहस्यात्मकता, संज्ञा-शून्यता की ओर बढ़ रहे हैं।

मनोवैज्ञानिक अब्राहम मास्लो विज्ञान का प्रतिवाद करते हुये कहते हैं कि—'रहस्य, अस्पष्टता, अतर्क, विसङ्गति और अतीन्द्रियता भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। वह भी ज्ञान है।"

परा मनोविज्ञान, आत्मा के आवागमन, अतिरिक्त ऐन्द्रिय अनुभूति–(ई० एस० पी०-एक्स्ट्रा सेंसरी पर्सेप्शन) आदि विषयों पर भी अब विज्ञान विश्वास करने लगा है। पिछले दिनों बारह सौ वैज्ञानिकों से इस सम्बन्ध में प्रश्न किये गये थे, जिनमें सत्तर प्रतिशत वैज्ञानिक ई० एस० पी० और टेलीपैथी के पक्ष में निकले। इन सबसे चिद्-शक्ति के महत्व की ही पुष्टि होती है।

यही नहीं, आधुनिक वैज्ञानिक अब यह विश्वास करने लगे हैं कि सच्चे सत्य की खोज के लिये हमें प्रयोगशालाओं से बाहर आना होगा; अपनी चेतना का विकास करना होगा। उन्हें विश्वास होने लगा है कि प्रयोग-शाला में चूहों, खरगोशों पर प्रयोग करने की अपेक्षा चेतना का विकास अधिक लाभकारी एवं उपयुक्त होगा। चेतना के विकास से बहुत से प्रश्न अपने आप सुलझ सकते हैं, जो आज तक विज्ञान आदि के लिये एक पहेली बने हुये हैं।

आधुनिक विज्ञान के भ्रम को दूर करते हुये हार्वर्ड के ऑवेन जिंजरिच ने एक वक्तव्य दिया है कि—"हो सकता है, हमें शीघ्र ही विज्ञान की परिधि में रहस्यवाद को भी सम्मिलित करना पड़े।" यह रहस्यवाद और कुछ भी नहीं, चिद्-शक्ति का ही खेल है, जो आधुनिक बैज्ञानिकों के लिए रहस्य का विषय है। जर्मनी ने तो इस ओर प्रयास भी प्रारम्भ कर दिये हैं। म्यूनिख में एक संस्थान है, जिसके वैज्ञानिक कार्ल फ्रेड्रिक वीजेकर पूर्व के चेतनावाद को पश्चिम के विज्ञान से मिलाने की जी तोड़ कोशिश कर रहे हैं। वे एक भारतीय योगी गोपीकृष्ण की प्रेरणा से अन्तरिक्ष के रहस्योद्घाटन के लिये कुण्डलिनी की जागृति को अनिवार्य मान रहे हैं।

उनके अनुसार यह मनुष्य के लिये सबसे बड़ी खोज है, जो अधिकाधिक महत्वपूर्ण होती जायगी।

सर जान इक्लेस के अनुसार--

'But let us be quite clear that for each of us the primary reality is our consciousness— every thing else is derivative and of second order reality.'

अर्थात् हममें से प्रत्येक के लिये हमारी चेतना मूल वास्तविकता है, इसके अतिरिक्त अन्य सभी बातें गौण हैं।

'अतिरिक्त ऐन्द्रिय अनुभूति और आधुनिक विज्ञान' विषयक वार्ता में अमेरिका के येल विश्वविद्यालय के भौतिक शास्त्र के एक प्रोफेसर हेनरी कहते हैं कि--

'The body is in immediate contact with the mind with that area of consciousness within which all experience arise. These are physical effects which by now are reasonably well understood and which some how link the object with the layer around consciousness called the body. The study of the inter-actions between the object and the body falls under the principles of physics. Now the miracle in all this, at the present time, does not reside within this field of inter-action between the object and the body, the miracle occurs when any thing that takes place in the body emerges into consciousness, we don't know how that happen at all.'

अर्थात् शरीर और मन 'चिद्-शक्ति' के ही सम्पर्क से विविध अनुभूतियों को प्राप्त करता है।

इसी प्रकार चिद्-शक्ति के महत्व को स्पष्ट करते हुये मास्को (रूस) के जर्नलिस्ट Pyotr Demianovich Ouspensky कहते हैं--

"I advise you to think chiefly about ... .. how to approach, how to start to understand what consciousness is. We can find examples of consciousness in our lives. A moment of consciousness produces very strong memory so that if we can find moments of clear and very vivid memory in the past, we can know that this is the result of being conscious."

अर्थात् हमें चिद्-शक्ति पर इस रूप में विचार करना चाहिये कि यदि हमारी स्मरण शक्ति बहुत तीव्र है--प्राचीन बातें हमें याद हैं, तो यह चेतना का ही फल है।

यही नहीं, चेतना-शून्य यान्त्रिकता एवं जीवन की एक-रसता से उकताकर पाश्चात्य समाज की एक पूरी-की-पूरी पीढ़ी भयङ्कर नशीले द्रव्यों के प्रभाव में आ चुकी है। मानवीय चेतना और अनुभूतियों के क्षेत्र में एक नई सृष्टि की रचना करनेवाली एल० एस० डी०--२५ नामक दवा पूरे राष्ट्र का नशा बन चुकी है। प्रयोगशाला में इस दवा का नाम है--लाइसर्जिक एसिड डायथेलामाइड।

उक्त दवा का प्रयोग वहाँ के वैज्ञानिक मानव की 'चेतना-शक्तियों का विस्तार' करने के लिये करते हैं। गिन्सबर्ग जैसे बुद्धि-जीवी इसमे 'मानव-मन के आन्तरिक विस्तार' के शोध करने का प्रयास करते हैं--उनके लिये चरस, गाँजा, भाँग, कोकीन, हेरोइन, मारिजुआना आदि नशों के समान ही बौद्धिक शक्तियों के विस्तार का यह भी एक माध्यम है।

[क्रमशः]

ज्योतिष विधान

'पञ्चाङ्ग' या 'पत्रा' कैसे देखें ?

'पञ्चाङ्ग' अथवा 'पत्रा' की उपयोगिता प्रत्येक आस्तिक हिन्दू को ज्ञात है। इसी से केवल कर्मकाण्डी पण्डितों के ही यहाँ नहीं, प्रायः सभी धार्मिक हिन्दुओं के घर में कोई-न-कोई पञ्चाङ्ग अवश्य रहता है। पञ्चाङ्ग की सहायता से वे प्रतिदिन की तिथियों को तो जान ही लेते हैं, समय-समय पर पड़नेवाले विशेष 'पर्वों' और 'व्रतों' का भी ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। यही नहीं, घर से बाहर जाने के लिये कौन दिन अच्छा रहेगा और कौन सा समय यात्रा पर प्रस्थान करने के लिए शुभ होगा, इसकी भी जानकारी उन्हें सहज ही हो जाती है।

ऐसे महत्वपूर्ण 'पञ्चाङ्ग' को देखने की विधि यहाँ लिखी जाती है। इसके लिए हम काशी (वाराणसी) के प्रसिद्ध हृषीकेश पञ्चाङ्ग को❀ पाठकों के सामने रखते हैं। काशी से प्रकाशित होनेवाले अन्य अनेक पञ्चाङ्ग हैं, जिनकी विशेषताओं पर हम फिर कभी प्रकाश डालेंगे। अभी तो पञ्चाङ्ग कैसे देखा जाता है, इसकी विधि लिखी जाती है। यह विधि सामान्यतः सभी पञ्चाङ्गों पर लागू होती है।

सबसे पहले पञ्चाङ्ग के मुख-पृष्ठ को देखें। पृष्ठ के बीच में ही मोटे अक्षरों में पंक्ति है—**श्री सम्वत् २०३० शकः १८९५ क्षय नामाब्दः**। अर्थात् धार्मिक जगत् में प्रचलित वर्तमान विक्रमीय सम्वत् २०३० है, जिसका नाम 'क्षय' है। दूसरा सम्वत्सर, जिसे भारत सरकार की मान्यता प्राप्त है, शक सम्वत् है, इसका १८९५वाँ वर्ष चल रहा है। यहीं अन्य सन् सम्वतों का भी उल्लेख है। यथा—ईसवीय सन् १९७३-७४, फसली १३८०-८१, बङ्ग सम्वत् १३७९-८०, फारसी १३९३-९४।

यहाँ पाठकों का ध्यान उक्त पंक्ति के ऊपर तीन पंक्तियाँ छोड़कर छपी निम्न पंक्ति के प्रति आकृष्ट किया जाता है—

मार्गशीर्ष कृष्ण ११ भौमे २२।४० इष्टतः प्रभवनामाब्दः प्रवृत्तः

अर्थात् मार्गशीर्ष कृष्ण एकादशी मङ्गलवार से "प्रभव" नाम के सम्वत् का प्रारम्भ होगा, किन्तु यहाँ यह स्मरणीय है कि सङ्कल्पादि में "क्षय" नाम का ही उल्लेख वर्ष के अन्त तक होता रहेगा।

मुख पृष्ठ के मध्य में ही वर्ष के मन्त्रिमण्डल का उल्लेख रहता है। यथा—इस क्षय सम्वत्सर का विवरण निम्न प्रकार है—

राजा–बुध, मन्त्री–शुक्र, शस्येश (कृषि-मन्त्री)–चन्द्र, दुर्गेश (रक्षा-मन्त्री)–गुरु, धनेश (अर्थ–मन्त्री)–चन्द्र, रसेश–बुध, धान्येश (खाद्य-मन्त्री)–शनि, नीरसेश–चन्द्र, फलेश–गुरु, मेघेश–गुरु।

इसी मन्त्रिमण्डल से अनुमान लगाया जा सकता है कि यह वर्ष कैसा रहेगा। पृष्ठ ३ पर वर्ष-फल दिया है।

अब 'पञ्चाङ्ग' के भीतर पृष्ठ २० को देखिये। भाद्रपद कृष्ण पक्ष तदनुसार १५ से २८ अगस्त १९७३ का विवरण इसमें दिया है।

सबसे ऊपर मोटे अक्षरों में विक्रमीय-शक संवत् के साथ लिखा है—**'याम्यायनं सौम्य गोलः वर्षर्तुः'** अर्थात् भूमण्डल उत्तरायण में है और वर्षा ऋतु है। उल्लेखनीय है कि दक्षिणायन कार्तिक शुक्ल पक्ष में प्रारम्भ होता है और ऋतुएँ कुल छः हैं—१ वसन्त (चैत्र-

---

❀ इस पञ्चाङ्ग का मूल्य है रु० १.५०। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, बम्बई आदि में इसे मान्यता प्राप्त है। सम्पादक हैं पं० हृषीकेशोपाध्याय ज्योतिषाचार्य। कल्याण मन्दिर, प्रयाग-६ से इसे प्राप्त कर सकते हैं।

वैशाख), २ ग्रीष्म (ज्येष्ठ-आषाढ़), ३ वर्षा (श्रावण–भाद्रपद), ४ शरद् (आश्विन-कार्तिक), ५ हेमन्त (मार्गशीर्ष–पौष) और ६ शिशिर (माघ-फाल्गुन)।

उक्त पंक्ति के नीचे बहुत से स्कम्भ (खाने या कालम) बने हैं। इनको क्रमशः बाईं ओर से समझने का प्रयास करिये। यथा—

दि०मा०=दिन-मान अर्थात् दिन कितना है।

घ० प०=घटी पल। दिन को घटी और पल में बाँटा गया है। ६० पल की एक घटी होती है और ६० घटी का एक दिन होता है।

इस प्रकार भाद्रपद कृष्ण प्रतिपदा तदनुसार १५ अगस्त को ३२ घटी १८ पल का दिन-मान है। दिन-मान के बाद २५ स्कम्भ दिखाई देते हैं, जिनमें से १७ स्कम्भों में तो अङ्क लिखे हैं औ ८ स्कम्भों में शब्द हैं। यदि शुक्ल-पक्ष है तो पहले स्कम्भ में १से१५ और कृष्ण-पक्ष है तो १ से ३० तक के अङ्क दिये गये हैं। ये अङ्क दोनों पक्षों की १५-१५ तिथियों के सूचक हैं।

यथा–

१ प्रतिपदा (परीवा), २ द्वितीया (दूज या द्वीज)
३ तृतीया (तीज) , ४ चतुर्थी (चौथ)
५ पञ्चमी , ६ षष्ठी (छठ)
७ सप्तमी (सत्तमी), ८ अष्टमी
९ नवमी (नौमी) , १० दशमी (दसमी)
११ एकादशी (ग्यारस) १२ द्वादशी (बारस)
१३ त्रयोदशी (तेरस), १४ चतुर्दशी (चौदस)
१५ पूर्णिमा (पूनम), ३० अमावास्या अमावस (मौम)

तिथियों के बाद सप्ताह (हफ्ते) के सातों दिन (वार) के नाम संक्षेप में दिये गये हैं। यथाः र.––रविवार (इतवार), चं.–चन्द्रवार (सोमवार), मं. (मङ्गलवार) बु.–बुधवार (बुद्ध), गु.–गुरुवार (वृहस्पति-बेफ्फै), शु.–शुक्रवार (सूकवार), श.–शनिवार (शनिश्चर)।

दिनों के नाम के बाद दो स्कम्भों में जो अङ्क दिये हैं, उनसे उस दिन की तिथि का 'मान' मालूम होता है अर्थात् यह ज्ञान होता है कि तिथि कितने समय तक अस्तित्व में रहेगी। यथा बुधवार को प्रतिपदा ५ दण्ड २४ पल तक है। इसके तुरन्त बाद के स्कम्भ से तिथि का काल ज्ञात होता है अर्थात् दिन में उसका अस्तित्व है या रात में। इस प्रकार दि.=दिन, प्रा.=प्रातः, रा.=रात्रि और सा०= सायं।

इसके बाद ६ठे-७वें स्कम्भों से भी तिथि का 'समय' घण्टा-मिनट में ज्ञात होता है। यथा—भाद्र कृष्ण प्रतिपदा बुधवार को प्रातः ७ बजकर ४० मिनट तक रहेगी। उसके बाद द्वितीया लग जायगी।

कभी-कभी एक हो दिन में दो तिथियों का संक्रमण हो जाता है। यथा––१९ अगस्त १९७३ रविवार के दिन पञ्चमी तिथि का 'समय' दिया है $\genfrac{}{}{0pt}{}{5}{4}\ \genfrac{}{}{0pt}{}{57}{23}$ अर्थात् प्रातः ५ बजकर ५७ मिनट तक ही है। उसके बाद षष्ठी तिथि का प्रारम्भ हो जाता है, जो सायं ४ बजकर २३ मिनट पर समाप्त हो जाती है और सप्तमी तिथि का प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार षष्ठी तिथि की हानि दृष्टिगत होती है।

आठवें स्कम्भ में नक्षत्रों के नाम संक्षेप में दिये हैं। कुल नक्षत्र २७ हैं—१ कृत्तिका, रोहिणी, ३ मृगशिरा, ४ आर्द्रा, ५ पुनर्वसु, ६ पुष्य, ७ आश्लेषा, ८ मघा, ९ पूर्वा फाल्गुनी, १० उत्तरा फाल्गुनी, ११ हस्त, १२ चित्रा, १३ स्वाती, १४ विशाखा, १५ अनुराधा, १६ ज्येष्ठा, १७ मूल, १८ पूर्वाषाढ़, १९ उत्तराषाढ़, २० श्रवण, २१ धनिष्ठा, २२ शतभिषा, २३ पूर्व भाद्रपद, २४ उत्तर भाद्रपद, २५ रेवती, २६ अश्विनी, २७ भरणी। इन्हीं का संक्षेप किया गया है। यथा—

शत=शतभिषा, पू. भा.=पूर्वभाद्रपद, उ. भा.= उत्तर भाद्रपद, अश्वि=अश्विनी, कृत्ति=कृत्तिका, रोहि= रोहिणी, मृग=मृगशिरा, पुन=पुनर्वसु, पू. फा.=पूर्वा फाल्गुनी, ьउ. फा.=उत्तरा फाल्गुनी, विशा=विशाखा, अनु=अनुराधा, धनि=धनिष्ठा, इत्यादि।

नक्षत्रों के नाम देने के बाद क्रमशः पाँच स्कम्भों में नक्षत्रों का 'मान' और 'काल' देकर घण्टा-मिनट में उनका 'समय' बताया गया है। ठीक उसी प्रकार जैसे कि तिथियों के सम्बन्ध में वर्णित है।

चौदहवें स्कम्भ से 'योग' ज्ञात होते हैं। इनकी भी कुल संख्या २७ है। यथा— [क्रमशः]

यन्त्र-विज्ञान

पहला अध्याय

यन्त्र क्या हैं ?

अध्यात्म-मार्ग के साधनों में 'यन्त्र' का महत्वपूर्ण स्थान है। 'यन्त्र' से हमारा क्या तात्पर्य है, यही यहाँ विवेच्य विषय है।

भाषा-शास्त्र के अनुसार **'यन्त्रणाद् यन्त्रम्'** अर्थात् यन्त्रण अथवा सङ्कोचन करने के कारण ही यन्त्र को 'यन्त्र' कहा जाता है। सांसारिक विषयानुरागी जीव की चित वृत्तियाँ—आंशिक रूप से ही सही—यन्त्राधिष्ठात्री देवता की ओर केन्द्रित हुआ करती हैं, जिससे उस यन्त्र-धारी का चित्त बाह्य विषयों की ओर संकुचित होता रहता है। यन्त्रों की यही प्रमुख विशेषता है।

इसी प्रकार 'यन्त्रम्' शब्द का यम् 'यमन्' या नियन्त्रण के अर्थ में भी लिया जा सकता है। कोई भी प्रस्तावित शक्ति-क्षेत्र जिसके द्वारा नियन्त्रित होकर एक निर्दिष्ट आकृति अथवा रूप ग्रहण करता है, वही यन्त्र है। यह नियन्त्रण विभिन्न उद्देश्यों, भावों से सम्पन्न हो सकता है और इसीलिए यन्त्र भी विभिन्न प्रकार के हैं।

सभी देशों में, सभ्य-असभ्य सभी प्रकार की मानव जातियों में प्रारम्भ से ही इन यन्त्रों का प्रचलन रहा है। इन्हें मात्र जादू-टोना कहकर व्यर्थ नहीं सिद्ध किया जा सकता है, और अब तो जादू-टोना भी गम्भीर रूप से विवेचनीय विषय प्रतीत होने लगे हैं। आदिम पर्वत, गुहा आदि में 'यन्त्र' थे। मिस्र–बेबिलोन–मोहन-जोदड़ो में भी 'यन्त्र थे। वैदिक यज्ञ में तांत्रिक अनुष्ठानों में भी 'यन्त्र' थे और आज तो सम्पूर्ण आधुनिक सभ्यता ही 'यन्त्र'-मय हो गई है। अतएव इनके रहस्य को यों ही व्यर्थ नहीं कहा जा सकता।

'यन्त्र' देखने में मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं—१ आकृति-रूप, २ क्रिया-रूप और ३ शक्ति-रूप। आकृति-रूपी यन्त्रों से किसी विषय-विशेष की आकृति का बोध होता है; क्रिया-रूपी यन्त्रों से किसी विशेष क्रिया का ज्ञान होता है और शक्ति-रूपी यन्त्रों से किसी विशेष शक्ति-क्षेत्र की प्रतिकृति का स्पष्ट ज्ञान होता है।

आकृति-रूपी यन्त्रों में सर्प-यन्त्र (जिसमें सर्प अपनी पूँछ को अपने मुँह में लिये रहता है) बहुत अधिक प्रचलित है। प्राचीन स्थलों में इस यन्त्र के स्पष्ट प्रमाण पाये गये हैं।........हमारी इस सृष्टि में प्रत्येक जीव–प्रत्येक पदार्थ एक-न-एक चेहरा लेकर ही अवतरित हुआ है। इन चेहरों के फल-स्वरूप हममें से कोई भी अपने वास्तविक स्वाभाविक रूप को पहचानता नहीं है। ऐसा क्यों है—इस सम्बन्ध में बहुत कुछ विचार हुआ है और होगा। अन्त में निष्कर्ष-रूप में हम यही पाते हैं कि यह सब "उसी की लीला" है। इस लीला का न तो आदि है, न मध्य और न ही अन्त है। उक्त सर्प-यन्त्र की आकृति से इसी रहस्य का बोध होता है।

क्रिया-रूपी यन्त्रों में 'स्वस्तिक', 'धर्म-चक्र' और 'पद्म' बहुत प्रचलित हैं। इन यन्त्रों से हमें किसी विशेष क्रिया का ही बोध होता है––इस तथ्य का रहस्योद्घाटन उक्त यन्त्रों पर विचार करने से हो जाता है! आइये, इन यन्त्रों पर विशेष रूप से विचार किया जाय।

'स्वस्तिक' का मूल शब्द 'स्वस्ति' है और 'स्वस्ति' का अर्थ है मङ्गल, कल्याण, सुख इत्यादि । वेदों में ऐसे अनेक मन्त्र हैं, जो स्वस्ति-वाचक हैं । वैदिक कर्मकाण्ड में प्रत्येक शुभ कार्य के पूर्व 'स्वस्ति-वाचन' नामक विधि सम्पन्न की जाती है । स्वस्ति-कारक कार्य ही 'स्वस्तिक' कहलाता है । प्राचीन युग में हमारे ऋषि-मुनियों ने एक स्वस्ति-कारक यन्त्र निश्चित कर लिया था, जिसके द्वारा सूक्ष्म रूप से वे स्वस्ति-कारक क्रियाएँ सम्पन्न करते थे । यह यन्त्र ही 'स्वस्तिक' कहलाता है । उस समय 'स्वस्तिक' का क्या रूप था, इस सम्बन्ध में ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता, परन्तु आज इसका सर्व-मान्य रूप इस प्रकार है—

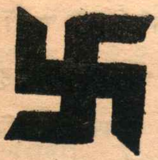

चित्र सं० १

पहले भी इसका रूप इसी प्रकार था, यह कहना ठीक नहीं है । सम्भवतः सर्व-प्रथम इसका रूप निम्न प्रकार था—

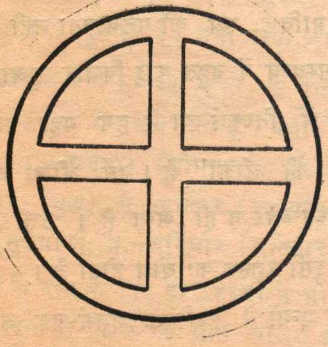

चित्र सं० २

ऋग्वेद में भी ऐसी अनेक श्रुतियाँ हैं, जिनमें देवताओं से स्वस्ति (मङ्गल, कल्याण) के लिए प्रार्थना की गई है । यथा—

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः
स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः
स्वस्ति द्यावा पृथिवी सुचेतुना ।
स्वस्तये वायुमुपब्रवामहै
सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्व-गणं स्वस्तये
स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ।
विश्वेदेवानो अद्या स्वस्तये
वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।
देवा अनन्त्वृभवः स्वस्तये
स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥

इत्यादि

(मं० ५, सं० ५१)

निम्नलिखित एक मन्त्र विशेष रूप से विचारणीय है—

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् ।
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावा पृथ्वी-मरुतः
स्वस्तये ॥

(ऋग्वेद—मं० १०, सू० ६३।९)

इस मन्त्र के 'अग्निं, मित्रं, वरुणं, भगं'—ये चार नाम विशेषतः विचारणीय हैं । इनके रहस्य को समझने के लिये 'दैवत-गोलस्थ राशि-नक्षत्र' के चित्र को देखिये—

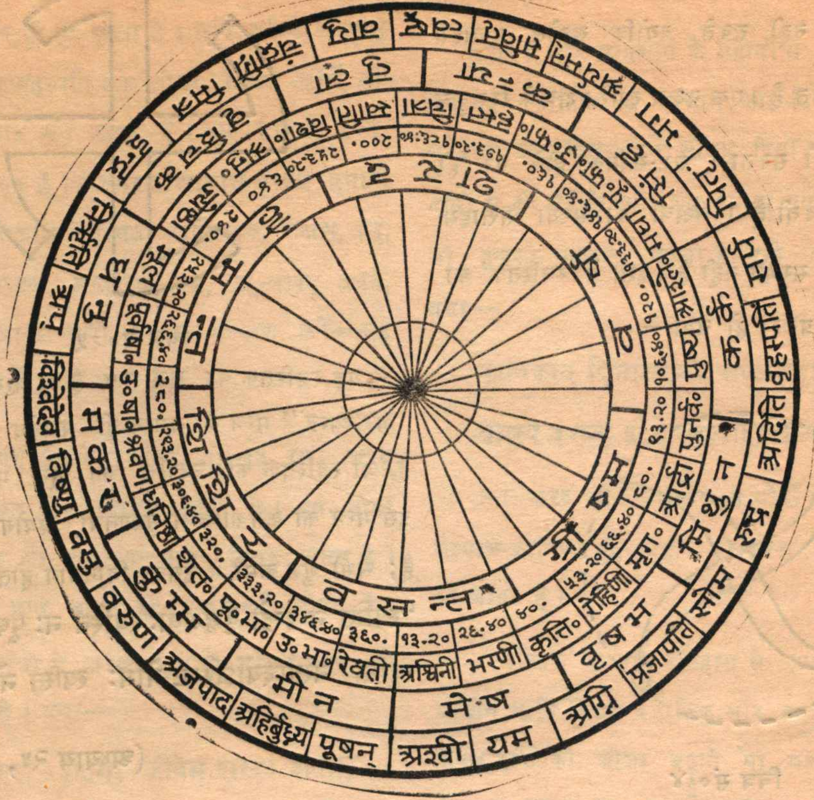
अजपाद
अहिर्बुध्न्य
पूषन्
अश्वी
यम
अग्नि
प्रजापति
सोम
रुद्र
अदिति
बृहस्पति
सर्प
पितृ
भग
अर्यमा
सविता
त्वष्टा
वायु
इन्द्राग्नी
मित्र
इन्द्र
निर्ऋति
आपः
विश्वेदेव
विष्णु
वसु
वरुण
मीन
मेष
वृषभ
मिथुन
कर्क
सिंह
कन्या
तुला
वृश्चिक
धनु
मकर
कुम्भ
रेवती
अश्विनी
भरणी
कृत्ति०
रोहिणी
मृग०
आर्द्रा
पुनर्व०
पुष्य
आश्लेषा
मघा
पू०फा०
उ०फा०
हस्त
चित्रा
स्वाति
विशाखा
अनुराधा
ज्येष्ठा
मूल
पू०षा०
उ०षा०
श्रवण
धनिष्ठा
शत०
पू०भा०
उ०भा०
वसन्त
ग्रीष्म
वर्षा
शरद
हेमन्त
शिशिर

चित्र सं ३

इस चित्र में २७ नक्षत्रों—१ रेवती, २ अश्विनी, ३ भरणी, ४ कृत्तिका, ५ रोहिणी, ६ मृगशिरा, ७ आर्द्रा, ८ पुनर्वसु, ९ पुष्य, १० आश्लेषा, ११ मघा, १२ पूर्व-फाल्गुनी, १३ उत्तर फाल्गुनी, १४ हस्त, १५ चित्रा, १६ स्वाति, १७ विशाखा, १८ अनुराधा, १९ ज्येष्ठा, २० मूल, २१ पूर्व फाल्गुनी, २२ उत्तर फाल्गुनी, २३ श्रवण, २४ धनिष्ठा, २५ शतभिष, २६ पूर्व भाद्रपद, २७ उत्तर भाद्रपद को देखें। प्रत्येक नक्षत्र के स मने उसके अधिष्ठातृ देवता का नाम है। यथा—रेवती नक्षत्र का देवता है पूषन्, अश्विनी का अश्वी, भरणो का यम, कृत्तिका का अग्नि, रोहिणी का प्रजापति आदि।

ऋग्वेद के उक्त मन्त्र में वर्णित अग्नि, मित्र, वरुण और भग नामक चारों देवों को उक्त चित्र में देखिये। स्पष्ट है कि कृत्तिका नक्षत्र का देवता 'अग्नि' है; अनुराधा का 'मित्र', शतभिष का 'वरुण' और पूर्व फाल्गुनी का देवता है 'भग'। यदि 'अग्नि' से 'मित्र' तक और 'वरुण' से 'भग' तक सीधी रेखायें खींची जायें, तो चित्र सं० २ का 'स्वस्तिक' बन जायेगा।

इस प्रकार 'स्वस्तिक' की उत्पत्ति वेद-मन्त्र से है। 'स्वस्तिक' का यही वैदिक रहस्य है। वैदिक युग का यह यन्त्र ऋषि-मुनियों की मात्र कोरी कल्पना या व्यर्थ रेखाङ्कन अथवा केवल चित्र-कला नहीं है। आकाश-मण्डल में स्थित समस्त ग्रह, नक्षत्र और राशियों से कल्याण की कामना की क्रिया उक्त यन्त्र में व्यक्त की गई है। समस्त नभोमण्डल संसार पर कल्याण, मङ्गल और सुख की वर्षा करे, यही 'स्वस्तिक' का मूल तात्पर्य है।

'अग्नि' से 'मित्र' तक और 'वरुण' से 'भग' तक

सीधी रेखाएँ खींचने पर समान रूप के कोण नही बनेंगे। बन भी नहीं सकते, क्योंकि खगोल सत्ताइस नक्षत्रों में विभाजित है। एक नक्षत्र दूसरे नक्षत्र के बिलकुल सीध में हो ही नहीं सकता। सम-संख्यक होने पर ही रेखायें सीधी हो सकती हैं। नक्षत्रों की संख्या सत्ताइस विषम होने से यह सम्भव नहीं है। इसी से 'स्वस्तिक' का रूप बदल कर इस प्रकार हो गया—

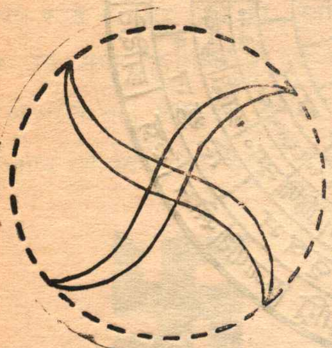

चित्र सं० ४

यह रूप किस काल में प्रचलित रहा; यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। तथापि यह तो निश्चित है कि स्वस्तिक का उक्त परिवर्तित रूप आज से पाँच हजार वर्ष पहले का है। क्रमशः परिवर्तन हुआ और रेखाओं के अन्तिम छोरों का नुकीलापन दूर होकर उनकी स्थूलता एक जैसी हो गई। पहले के स्वस्तिक की रेखाएँ घुमावदार बनाई जाती थीं, जिन्हें चित्रकला के जानकार ही ठीक-ठीक बना सकते थे। एक दूसरी को काटती हुई सीधी रेखाएँ बनाकर और उनके छोरों को मोड़कर स्वस्तिक बनाने से सामान्य लोगों के लिये भी इसे बनाना सरल हो गया। अब स्वस्तिक का रूप इस प्रकार था——

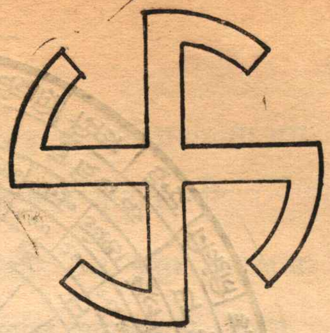

चित्र सं० ५

यह स्वस्तिक का शुद्ध रूप है। ऋग्वेद के पूर्वोक्त "भरेष्विन्द्रं" मन्त्र के समान ही यजुर्वेद का एक मन्त्र है, जो स्वस्तिक की उत्पत्ति का मूल माना जाता है। इस मन्त्र का कर्मकाण्ड में मुख्यतया प्रयोग किया जाता है; सभी शुभ कर्मों में इसका विनियोग होता है। यथा——

"स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽरिष्ट-नेमिः स्वस्ति नो वृहस्पति-
र्दधातु॥"
(अध्याय २५, मं० १९)

अर्थात्–अपार ज्ञान और यश तथा वैभव से युक्त इन्द्र हमें कल्याण प्रदान करें। सर्वज्ञ पूषा हमें मङ्गल प्रदान करें। सर्व-व्यापी शक्तिशाली परमेश्वर विष्णु हमें क्षेम प्रदान करें और वेद-वाणी के पाठ-कर्ता वृहस्पति हमें मंगल प्रदान करें।

यजुर्वेद के उक्त मन्त्र में 'स्वस्ति' शब्द का चार बार प्रयोग हुआ है और वृद्धश्रवा इन्द्र, विश्ववेदा पूषन्, तार्क्ष्य अरिष्टनेमि तथा वृहस्पति–इन चार देवताओं से मंगल देने की प्रार्थना की गई है।

अब चित्र सं० ३ को देखें। स्पष्ट है कि हस्त नक्षत्र के अधिष्ठातृ देवता सवितृ अर्थात् इन्द्र हैं और उसके नीचे रेवती नक्षत्र के देवता पूषन् हैं। श्रवण के देवता विष्णु हैं और पुष्य के देवता वृहस्पति हैं।

शुभ नक्षत्रों के साथ उनके शुभ देवताओं का ज्ञान उक्त मन्त्र से सहज ही हो जाता है । यदि सवितृ से पूषन् तक और विष्णु से वृहस्पति तक सीधी रेखाएँ खींचें, तो स्वस्तिक का आकार बन जाता है । इस सम्पूर्ण दैवत-चक्र का भावार्थ यह है कि समस्त आकाश-मण्डल हमारा कल्याण करे । आकाश में स्थित राशि-चक्र, नक्षत्र, ग्रह, उप-ग्रह, तारक-मण्डल, अन्तरिक्ष, मेघ, द्यु-लोक, पवन, विद्युत्, वृष्टि आदि सभी हमारा कल्याण करें—यह प्रार्थना उक्त यन्त्र से व्यक्त होती है ।

सवितृ से पूषन् तक रेखा खींचें, तो वह रेखा शरद् ऋतु से वसन्त ऋतु तक विस्तृत होती है । इन दोनों ऋतुओं में मनुष्य का स्वास्थ्य प्रायः बिगड़ जाता है । विशेषतया शरद् ऋतु बहुत ही सङ्कट-पूर्ण होती है । वेदों के अनेक मन्त्रों में शरद् ऋतु से रक्षित रहने की कामना की गई है । यथा—

पश्येम शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतम्,
शृणुयाम शरदः शतम्, प्रब्रवाम शरदः शतम् ।
इत्यादि ।

अर्थात् हम सौ शरद् ऋतुओं को देखें, सौ शरद् ऋतुओं तक जीवित रहें, सौ शरद् ऋतुओं तक सुनते रहें, सौ शरद् ऋतुओं तक बोलते रहें ।

आयुर्वेद के अनुसार भी शरद् ऋतु में ही अधिक रोग होते हैं । वैद्यों में प्रसिद्ध है कि—

"वैद्यानां शारदी माता, पिता च कुसमाकरः ।"

अर्थात् वैद्यों के लिए शरद् ऋतु माता के समान और कुसुमाकर अर्थात् वसन्त ऋतु पिता के समान है । भाव यह है कि इन दोनों ऋतुओं में लोग अधिक बीमार होते हैं, जिससे वैद्यों की आय बढ़ती है । इसी भाव को पुष्ट करनेवाली दूसरी उक्ति यह है--

'कार्तिकौ वैद्य-मातरौ ।'

कार्तिक और मार्गशीर्ष के महीनों में शरद् ऋतु होती है । अतः कार्तिक के अन्तिम आठ दिन और मार्गशीर्ष के प्रथम आठ दिन--इन सोलह दिनों की तुलना यम के दाँतों से की गई है और यह बताया गया है कि इन दिनों जो हलका भोजन करता है, वही जीवित रहता है । यथा--

कातिकस्य दिनान्यष्टौ अष्टाग्रहायणस्य च ।
यमस्य दशना ह्येते लघ्वाहारी स जीवति ॥

अतः शरद् और वसन्त—ये दोनों ऋतुएँ हमारे लिये कल्याण-कारिणी हों, यही 'स्वस्तिक' के द्वारा कामना की जाती है ।

'स्वस्तिक' के उक्त इतिहास से स्पष्ट है कि हमारे प्राचीन ऋषि कितने वैज्ञानिक और गम्भीर विचारक थे । केवल द्वार की शोभा बढ़ाने या मकानों को सजाने के लिए उन्होंने 'स्वस्तिक' यन्त्र की रचना नहीं की है और न ही यह एक कोरी परम्परा अथवा अर्थ-हीन रेखा-चित्र ही है; अपितु इससे ऋषियों की रहस्यमयी एवं चामत्कारिक प्रतिभा का परिचय मिलना है । स्वस्तिक का वैज्ञानिक तात्पर्य यही है कि यह सारे ब्रह्माण्ड के बहुमुखी कल्याण की भावना को व्यक्त करता है । यही कारण है कि इतने दीर्घकाल के बाद भी--'स्वस्तिक' का वास्तविक रहस्य न जानते हुये भी सनातन-धर्मावलम्बी राष्ट्र इस चिह्न को निरन्तर सुख-शान्तिदायक और कल्याणकारी मानता रहा है ।

'स्वस्तिक' के महत्व को इसी से समझा जा सकता है कि इसे विश्व के प्राय सभी देशों ने अपनाया है । संसार के विविध मानव समाजों के प्राचीन पवित्र तीर्थों, देवालयों तथा पवित्र स्थानों में इसे किसी-न-किसी रूप

में अंकित देखा जाता है। प्राचीन ऐतिहासिक ध्वंसावशेषों और पुरातत्व की बस्तुओं—शिलालेखों आदि में 'स्वस्तिक' के दर्शन बहुधा मिला करते हैं। देव-देवियों की मूर्तियों के सिंहासनों पर, हवन आदि की पूजनीय वेदिकाओं में और पीठिकाओं पर 'स्वस्तिक-यन्त्र' खुदे हुए मिलते हैं। विक्रम सम्वत् के प्रवर्तक महाराज विक्रमादित्य की पताका लाल रंग के 'स्वस्तिक' से ही सुशोभित रहती थी।

जिस प्रकार भारत की पुण्य भूमि से विविध धार्मिक सिद्धान्तों का संक्रमण विश्व के अन्य देशों को हुआ, जिनके चिह्न जावा, सुमात्रा, बोर्नियो के पूर्वी द्वीप-समूहों से लेकर पश्चिम के दक्षिणी अमेरिका तक आज भी मिलते हैं, ठीक उसी प्रकार 'स्वस्तिक' का प्रभाव संसार में फैला हुआ दृष्टिगत होता है। यथा——

चीन और ब्रह्म-देश के निवासी भी 'स्वस्तिक' को महत्व देते आये हैं। उनके धर्म-ग्रन्थों, चित्रों, निवास-स्थानों तथा पहनने के वस्त्रों पर भी इसे अङ्कित किया जाता है। यही नहीं, वे अपने शरीर के अङ्गों में भी बड़े चाव के साथ 'स्वस्तिक' का चिह्न उत्कीर्ण करवाते हैं। इसी प्रकार जापानी भी हजारों वर्ष से इसे अपनाये हुये हैं। कोरिया में भी 'स्वस्तिक' को यही आदर प्राप्त है। इधर योरप में 'स्वस्तिक' का उतना प्रचार नहीं है, किन्तु किसी समय वहाँ इसे बड़ी मान्यता प्राप्त थी। जर्मनी के प्रख्यात नाजी डिक्टेटर हर हिटलर ने तो अपने ध्वज में 'स्वस्तिक' को ही अंकित कराया था।

पुरातत्व की खोज में प्राचीन स्थानों की खुदाई के फल-स्वरूप भूमि के अन्दर से प्राप्त अति प्राचीन काल की वस्तुओं पर भी 'स्वस्तिक' के चिह्न मिले हैं, जिससे स्पष्ट है कि उस पुरातन युग में भी 'स्वस्तिक' पूजनीय था। उदाहरण के लिए ट्रॉय नगर के ध्वंसावशेषों से ऐसी अनेक वस्तुएँ मिट्टी और धातु की मिली हैं, जो 'स्वस्तिक' से सुशोभित हैं। उक्त वस्तुएँ कम-से-कम पाँच हजार वर्ष पूर्व की मानी गई हैं। इसी प्रकार काकेशस के पास कोबन स्थान में लगभग ढाई हजार वर्ष पुराना एक आभूषण प्राप्त हुआ है, जिस पर 'स्वस्तिक' के तीन चिह्न अंकित हैं। उत्तरी अमेरिका में ईसा की ४थी शताब्दी की कुछ वस्तुएँ मिली हैं, जिन पर 'स्वस्तिक' का यन्त्र उत्कीर्ण है। प्रसिद्ध अंग्रेज इतिहासकार श्री एच० जी० वेल्स ने 'इतिहास की रूप-रेखा' नामक अपनी पुस्तक में लिखा है कि 'स्वस्तिक' का प्रचलन पाषाण-युग से है, ऐसा पता चलता है।' एक अन्य विद्वान् सर रे लंकेस्टर का भी यही अभिमत है।

स्वस्तिक की दिशा-द्योतक रेखाओं के अन्त से जो छोटी-छोटी रेखाएँ खींची जाती हैं, उन्हें लोग कभी-कभी भ्रमवश उल्टी दिशा में खींच देते हैं। वस्तुतः पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है। अतः 'स्वस्तिक' की उक्त छोटी रेखाओं को भी पश्चिम से पूर्व की ओर खींचना चाहिए अर्थात् 'स्वस्तिक' के अङ्कन करनेवाले व्यक्ति को अपनी बाईं ओर से दाईं ओर को उक्त शिरो-रेखाओं को खींचना चाहिये। पृथ्वी, आकाश आदि सभी गोलाकार हैं, अतएव 'स्वस्तिक' की भुजाओं को भी गोलाकार ही बनाना चाहिये। देखिये चित्र स० ५। स्वस्तिक का यही शुद्ध स्वरूप है, जो वैज्ञानिक दृष्टि से भी उपयुक्त है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 'स्वस्तिक' यन्त्र की उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम की सीधी रेखाएँ तो दिशा-द्योतक हैं और उसकी शिरो रेखाएँ (भुजाएँ) ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य और वायव्य इन उप-दिशाओं की सूचक हैं। इन आठों से अष्ट-दिग्पालों की व्यञ्जना होती है।

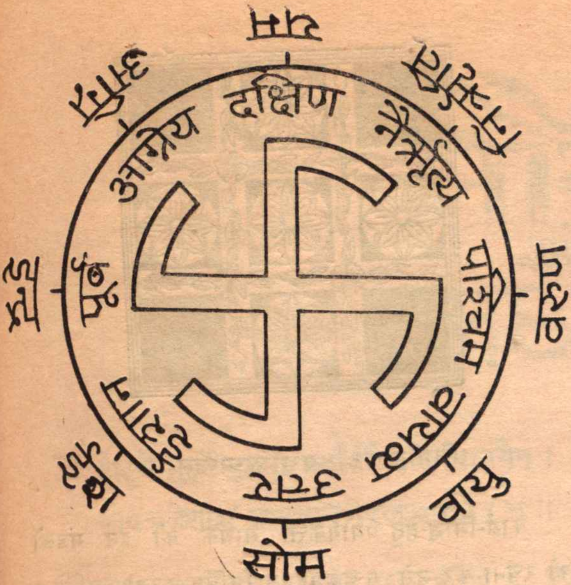

चित्र स० ६

'स्वस्तिक' के इस चित्र से यह ज्ञात होता है कि उसकी भुजाओं की उत्पत्ति किस प्रकार हुई है। आकाश में स्थित चार दिग्पाल देवता हमें सुख, आनन्द, ऐश्वर्य, और मङ्गलकारी हों, इसी भावना का प्रतीक यह 'स्वस्तिक' है। 'स्वस्तिक' की रचना विज्ञान-सम्मत है। यह भूगोल और नभोमण्डल के तत्वों पर आधारित है।

'स्वस्तिक' के समान ही अन्य बहुत से आकृति-रूपी एवम् क्रिया-रूपी 'यन्त्र' पाये जाते हैं। जैसे—शङ्ख, चक्र गदा, कमल आदि। इनमें से प्रत्येक यन्त्र से या तो किसी विशेष भाव का बोध होता है अथवा किन्ही विशेष क्रियाओं का सूक्ष्म-रूप से सम्पादन होता है।

शक्ति-रूपी यन्त्र प्रायः शक्ति-साधना में प्रयुक्त होते हैं। शक्ति-साधना में 'यन्त्र' का महत्वपूर्ण स्थान है। देवता के 'ध्यान' और 'मन्त्र' तथा 'यन्त्र' इन तीनों तत्वों के एकीकरण के बिना शक्ति-साधना सफल नहीं होती। भगवान् शिव की उक्ति है कि—

> देवं च यन्त्र-रूपं च मन्त्र-व्याप्तिमजानताम्।
> कृतार्चनादिकं सर्वं व्यर्थं भवति शाम्भवि॥

अर्थात्—देवता और यन्त्र का स्वरूप एवं सर्वव्यापिका मन्त्र-शक्ति को न जाननेवाले साधकों के द्वारा किये गए सभी पूजनादि साधन व्यर्थ हो जाते हैं।

शक्ति-रूपी यन्त्र भी दो प्रकार के होते हैं—पूजा-यन्त्र और कार्य-सिद्धि-यन्त्र। पूजा-यन्त्रों में प्रायः मध्य में विन्दु होता है, उसके बाद त्रिकोण या षट्कोण और उस पर कमलदल होते हैं तथा सबसे अन्त में भूपुर आदि होते हैं। कार्य-सिद्धि के यन्त्रों में इनकी कोई आवश्यकता नहीं रहती। रक्षा यन्त्रों में अवश्य ही विन्दु, त्रिकोण आदि देखे जाते हैं, परन्तु सभी कार्य-सिद्धि-यन्त्रों के लिए ये आवश्यक नहीं हैं, क्योंकि जहाँ पूजा-यन्त्रों में ब्रह्माण्ड-सृजन की मूलभूत दार्शनिक भित्ति-रेखा चित्रित रहती है, वहाँ कार्य-सिद्धि—यन्त्रों में उसकी कोई विशेष उपयोगिता नहीं मानी जाती।

पूजा-यन्त्रों की वैज्ञानिकता पर हम आगे विचार करेंगे। यहाँ हम सर्वप्रथम कार्य-सिद्धि-यन्त्रों के सम्बन्ध में कुछ विचार करना आवश्यक समझते हैं।

कार्य-सिद्धि-यन्त्र भी दो प्रकार के होते हैं। कुछ में यदि विशेष रङ्गों का प्रयोग होता है, तो कुछ में विशेष बीजाक्षरों का विन्यास होता है। पहले वाले कार्य-सिद्धि-यन्त्रों में सर्वतोभद्रादि मण्डल बहुत प्रसिद्ध हैं। सर्वतोभद्र-मण्डल के कुछ प्रकारों के रेखाचित्र इस प्रकार हैं—

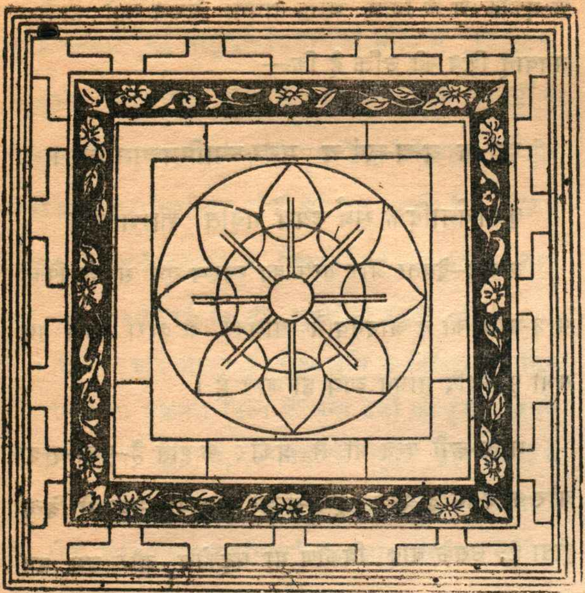

चित्र सं० ८–सर्वतोभद्रमण्डल

स्वल्प सर्वतोभद्र-मण्डल, नव-नाभ-मण्डल, पञ्चाब्ज-मण्डल के रेखाचित्र निम्न प्रकार हैं--

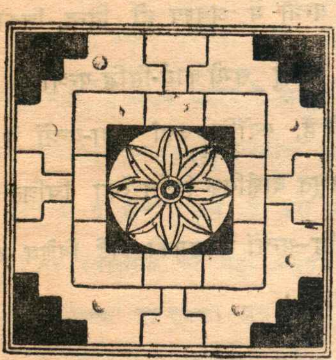

चित्र सं० ९–स्वल्प सर्वतोभद्र-मण्डल

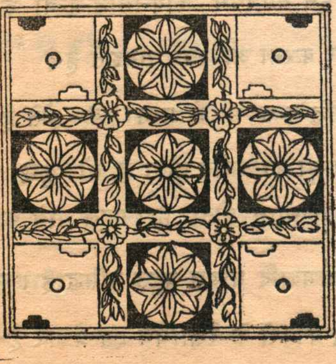

चित्र सं०१०–नव-नाभ मण्डल

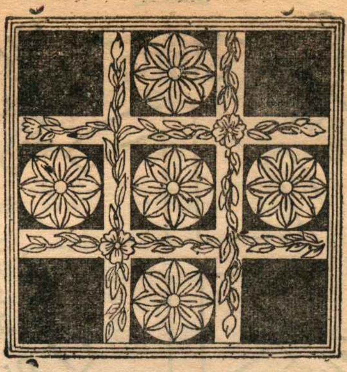

चित्र सं० ११–पञ्चाब्ज-मण्डल

कार्य-सिद्धि-हेतु प्रयोगकर्त्ता साधक को इन मंडलों की रचना कर उसे पञ्चवर्णों से चित्रित करना चाहिये। पञ्चवर्ण इस प्रकार हैं-- १ हरिद्रा-चूर्ण–पीत-वर्ण, २ तण्डुल-चूर्ण–श्वेतवर्ण, ३ कुसुम्भ चूर्ण–रक्तवर्ण, ४ शस्य-हीन धान्य दग्ध कर उसका चूर्ण–कृष्णवर्ण, ५ बिल्व-पत्र-चूर्ण–श्यामवर्ण।

श्वेत वर्ण द्वारा एक अंगुलि ऊँची सकल सीमा-रेखा चित्रित कर पीत वर्ण द्वारा कर्णिका, रक्त वर्ण द्वारा केशर और श्वेत-वर्ण द्वारा सभी पत्र रञ्जित कर श्याम-वर्ण द्वारा समस्त सन्धि-स्थानों को चित्रित करना चाहिये। प्रकारान्तर यह है कि कर्णिका पीतवर्ण, केशर पीत रक्तवर्ण, पत्र रक्त-वर्ण, सन्धि कृष्ण वर्ण, पीठगर्भ श्वेत या कृष्ण-वर्ण, पीठ-पद रक्त-वर्ण और पीठ-गात्र शुक्लवर्ण चित्रित कर वीथियों में पत्र-पुष्पों-सहित कल्पलता को सर्ववर्णों द्वारा रञ्जित करना चाहिये। सभी द्वार श्वेत वर्ण. शोभा रक्तवर्ण, उपशोभा पीतवर्ण और चारों कोण कृष्णवर्ण बनाने चाहिये; मंडल के बाहर श्वेत, रक्तवर्ण की तीन रेखायें चित्रित करनी चाहिये।

मौसम और अध्यात्म

रतनलाल दीक्षित

[ऋषि-कल्प पूज्य श्री दीक्षित जी अपनी इस वृद्धावस्था में कितनी खोज-पूर्ण विज्ञान-सम्मत उपदेशात्मक चर्चा सहज ही कर सकते हैं, उसका प्रमाण इस विषय का आपका यह पहला लेख है । इस लेख से भारत के अनूठे और अद्वितीय मौसम पर उद्बोधक प्रकाश पड़ता है ।—सं०]

ब्राह्मे मुहूर्ते बुद्धेत धर्मार्थौ चाति-चिन्तयेत् ।
काय-क्लेशांश्च तन्मूलान् वेद-तत्वार्थमेव च ॥

इस श्लोक में ब्राह्म-मुहूर्त का महत्व वर्णित है, परन्तु प्रश्न यह है कि दिवस के अन्य भागों की तुलना में ब्राह्म-मुहूर्त को ही अध्यात्म-चिन्तन के लिये सर्वोपरि महत्व क्यों दिया गया ? इसका एक प्रत्यक्ष कारण यह है कि दिन का सबसे अधिक सुन्दर, सुखद, शान्त और अनुकूल मौसम उसी समय होता है । यह हम जानते ही हैं । वैसे अध्यात्म-चिन्तन हर समय, हर मौसम में, हर देश में और हर अवस्था में शुभ-फल-दायक है । परन्तु स्पष्ट है कि ११५ डिग्री तापमान में अथवा मौसम की अन्य प्रतिकूल दशाओं में हमारा शरीर, मन तथा बुद्धि इस काम में उतना सहयोग नहीं दे सकेंगे, जितना कि ब्राह्म मुहूर्त में । अध्यात्म जैसे गूढ़ विषय का चिन्तन और परिस्थितियों से कुश्ती एक साथ कठिन तो होगी ही । अतः मौसम और अध्यात्म-साधना का घनिष्ठ सम्बन्ध है ।

हमारे धार्मिक ग्रन्थों में गोस्वामी तुलसीदास जी का रामचरित-मानस सबसे अधिक लोकप्रिय होने के कारण घर-घर पढ़ा जाता है । अतः इस सम्बन्ध में इसी ग्रन्थ से उदाहरण लेने से बात सबके हृदय में सरलता से बैठ सकती है । वैसे वेद,श्रीमद्भागवत इत्यादि सभी धार्मिक तथा आध्यात्मिक ग्रन्थों में कहीं-न-कहीं मौसम तथा अध्यात्म का सम्बन्ध प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में दिया हुआ मिलता है ।

गोस्वामी जी ने किष्किन्धा काण्ड में वर्षा तथा शरद् ऋतु का वर्णन करते हुये मौसम का प्रसङ्ग बहुत सोच-समझ

कर और जान-बूझ कर उठाया है। इस वर्णन में प्रत्येक चौपाई दिखलाती है कि मौसम, जो विविध रूपों में निरन्तर हमारे सामने आता रहता है, अपनी विविधता के बहाने साधकों के लिये कैसे-कैसे नीति-सम्बन्धी, ज्ञान-सम्बन्धी, विज्ञान-सम्बन्धी, वैराग्य-सम्बन्धी और अध्यात्म-सम्बन्धी अमूल्य रत्न प्रत्यक्षत: बिखेरता रहता है। इन चौपाइयों को पढ़ तो सब जाते हैं, पर इनके गूढ़ अर्थों पर मनन कम लोग कर पाते हैं कि मौसम के भिन्न-भिन्न रूपों में कितना रहस्य भरा है।

तो आइये, विचार करें कि इन सब रूपों में मौसम निरन्तर हमारे सामने आकर हमें क्या प्रेरणा देता है। मौसम का प्रत्येक रूप जो हमारे सामने आता है, वह परम सत्य का एक प्रत्यक्ष उदाहरण लाकर ऐसा खड़ा कर देता है कि एकदम समझ में आ जाय। प्रत्यक्ष होने के कारण वह हमा मन तथा बुद्धि पर सीधा प्रभाव डालता हुआ हमें इस प्रकार बराबर सन्मार्ग पर ढकेल देता है जैसे कि एक अनुभवी गुरु के मुख से निकला हुआ वाक्य। तब अध्यात्म की जटिल-से-जटिल गाँठें जिज्ञासु के लिये सरलता से सुलझ जाती हैं और परम सत्य के दर्शन पाकर उसका चित्त आनन्द-विभोर हो उठता है। देखिये :—

भूमि परत भा डाबर पानी।
जिमि जीवहिं माया लपटानी॥
समिट समिट जल भरे तलावा।
जिमि सद्‌गुण सज्जन पहिं आवा॥
सरिता जल जलनिधि महँ जाई।
होहि अचल जिमि हरि पाई॥
नव पल्लव भये विटप अनेका।
साधक मन जस मिले विवेका॥
ऊसर बरसइ त्रण नहिं जामा।
जिमि हरिजन हिय उपज न कामा॥
जँह तहँ रहे पथिक थकि नाना।
इन्द्रिय गण जिमि उपजे ज्ञाना॥
उदित अगस्त पन्थ जल सोखा।
जिमि लोभहिं सोखै संतोखा॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा।
संत हृदय जिमि गत मद मोहा॥
रस रस सूख सरित सर पानी।
ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी॥
सुखी मीन जेहि नीर अगाधा।
जिमि हरि शरण न एकहु बाधा॥
फूले कमल सोह सर कैसे?
निर्गुण ब्रह्म सगुण भये जैसे॥

आजकल वैज्ञानिक साधनों द्वारा यह नाप लिया गय है कि यद्यपि बादल छ: किलोमीटर या इससे भी अधिक ऊँचाई तक पाये जाते हैं, पर बरसते वही हैं, जो भूमि के निकट हों। इस तथ्य को गोस्वामी जी ने बिना यन्त्रों के, केवल अपनी दिव्य दृष्टि से, आज से बहुत पहले जान लिया था। क्योंकि वे लिख गये हैं —

बरसहिं जलधि भूमि नियराये।
यथा नवहिं बुध विद्या पाये॥

अस्तु। रामचरित-मानस के उदाहरण इतने में समाप्त कर अब हम कुछ अन्य दृष्टिकोणों से मौसम के प्रभावों का अध्ययन करेंगे। ऊपरी दृष्टि से देखने से तो यही प्रतीत होगा कि मौसम का हमारी गति-विधि पर कोई विशेष प्रभाव नहीं है, क्योंकि सर्दी, गर्मी, बरसात सबमें हम उसी प्रकार खाते-पीते हैं, उठते-बैठते हैं, काम पर जाते हैं, शादी-विवाह करते हैं, यानी मौसम के कारण हमारा कोई काम रुकता नहीं। जरा गहराई से देखने पर पता चलेगा कि सर्दियों में हम गर्म कपड़े तो पहनते ही हैं, गर्मियों में पंखा तो झलते ही हैं। बरसात में छाता बरसाती तो लेते ही हैं। जो पैदावार एक मौसम में हमें प्राप्त होती है, वह दूसरे में नहीं

मिलती। सावन की बहार कुछ और ही होती है, होली की कुछ और ही। इन दोनों अवसरों पर हमारे मन और चित्त की दशा में कितना अन्तर पड़ता है। फिर कैसे कह सकते हैं कि मौसम हमारी गतिविधियों को प्रभावित नहीं करता ?

हम जितनी गहराई से देखेंगे, उतना ही हमें पता चलेगा कि हमारे जीवन का प्रत्येक क्षेत्र मौसम से प्रभावित है। अन्न की उपज का तो सब दारोमदार मौसम पर है ही, और अन्न बिना जीवन ही कहाँ ! फिर भला अध्यात्म-साधना कैसे होगी ? स्वास्थ्य, व्यवसाय, रहन-सहन, यातायात, कल-कारखाने से लेकर मनोरंजन के साधन तक जितने भी जीवन-यापन के क्षेत्र हैं, सबके सब मौसम से किसी-न-किसी रूप में प्रभावित हैं। क्यों और कैसे, इसका विवेचन करने के लिये एक लेख नहीं, एक पूरा ग्रन्थ लिखना पड़ेगा।

संक्षेप में यहाँ इतना ही कह सकते हैं कि हमारे काले-गोरे होने या लम्बे-नाटे होने में भी अन्ततोगत्वा मौसम का हाथ है। और यह तो सभी जानते हैं कि कुछ विशेष रोग किसी विशेष मौसम में ही अधिक होते हैं, पर अमेरिका में वैज्ञानिकों ने यहाँ तक सिद्ध कर दिया है कि चोरी-डकैती हत्या, बलात्कार इत्यादि अपराधों की संख्या भी कुछ अंशों में मौसम की दशा से सम्बन्धित है। अमेरिका ही क्यों, यहाँ भारत में भी हम अपराधों और मौसम के आँकड़ों की तुलना करके यह बात दिखला सकते हैं। अतः यह भी सिद्ध होता है कि हमारी चित्त की वृत्तियों को मौसम किसी गुप्त क्रिया द्वारा प्रभावित अवश्य करता है। फिर मौसम यदि अध्यात्म-चिन्तन में सहायक या बाधक हो, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

कौतूहल तो उत्पन्न होगा ही कि भला मौसम जैसी वस्तु चोरी-डकैती की भावनाओं को कैसे घटा-बढ़ा सकती है, पर यह समस्या इस लेख का विषय नहीं है। कौतूहल शान्त करने को केवल इतना स्मरण करा देना पर्याप्त होगा कि एक जरा से बादल के टुकड़े ने महाभारत-युद्ध की दिशा बदल दी थी। यदि वह टुकड़ा उस सन्ध्या के समय सूर्यास्त से कुछ क्षण पूर्व एक अत्यन्त नाटकीय ढंग से सूर्य को ढंक कर सूर्यास्त का भ्रम न करा देता, तो तैयार की हुई चिता में अर्जुन का कूद कर भस्म हो जाना निश्चित था और अर्जुन के बिना पाण्डवों की विजय शायद न हो पाती।

अब काम का प्रश्न यह उठता है कि वह मौसम कौन सा है, जो अध्यात्म-चिन्तन के लिये सबसे अनुकूल बैठता है। इसका सीधा उत्तर यह है कि वह मौसम हमारे भारतवर्ष का ही मौसम हो सकता है, और कहीं का नहीं, क्योंकि अध्यात्म-चेतना यहीं उत्पन्न हुई, पनपी और पूर्णता को प्राप्त हुई। विश्व के और किसी भी कोने में ऐसा नहीं हो पाया। यदि हुआ भी, तो केवल क-ख-ग तक ही सीमित रह गया। यद्यपि अन्यान्य स्थानों पर अन्यान्य प्रकार की प्रगतियाँ हुईं और खूब हुईं, पर अध्यात्म का वृक्ष यहीं पूरी तरह फला-फूला। इसका यह अर्थ नहीं कि मौसम ही अध्या-

---

—आपके लिये—

यदि आप 'कौल-कल्पतरु' चण्डी के पाँच वार्षिक ग्राहक एक साथ बनाने में सफल होते हैं तो 'कौल-कल्पतरु' चण्डी आपको एक वर्ष तक निःशुल्क भेजी जायेगी।

व्यवस्थापक

त्म का प्राण है। वह तो जड़ प्रकृति का एक रूप मात्र है, जो अध्यात्म-विटप के अंकुरित और विकसित होने में सहायक या बाधक बन सकता है।

यों कहिये कि समस्त भूमण्डल का रुपये में बारह आने भर भाग सागरों से ढंका हुआ है और भूमि केवल चार आने भर है। इस चार आने भर भूमि का भी आधा भाग रेगिस्तान, दुर्गम जंगल, ऊंचे पहाड़, बरफ के मैदान इत्यादि से घिरा हुआ है, जहाँ अन्न की उपज नही हो सकती। अब दो आने भर भाग बचा। इसका भी आधा ऐसा है कि उसमें लस्टम-पस्टम कुछ थोड़ा सा अन्न उपजाया जा सकता है। शेष एक आने भर भाग जो बचा, उसी में मौसम ऐसा है कि दो-दो या तीन-तीन फसलें प्रति वर्ष दे देता है। इसी रुपये में एक आने भर सर्व-सौभाग्यशाली भाग में भारत स्थित है। अब यह मान लेने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिये कि भारत पर मौसम जितना विशेष प्रकार से दयालु है, उतना संसार में और कहीं भी नहीं।

यद्यपि यहाँ भी कभी-कभी मौसम विकट रूप ले लेता है, जैसे बाढ़, सूखा, तूफान इत्यादि, पर वे सब क्षणिक होते हैं यानी आते हैं और निकल जाते हैं। उनके निकल जाने के बाद मौसम पुनः अपने सामान्य रूप में स्थित हो जाता है। यहाँ ऐसा नहीं होता कि वर्ष में आठ महीने भूमि निरंतर बर्फ से ढंकी रहे, पेड़ों पर एक भी पत्ता न दीखे, डालें ऐसे काली-काली दीखें, जैसे आग से झुलस गई हों। किन्तु यह दशा योरप के शीतकाल में देखी जा सकती है। यहाँ तो जो सबसे कष्ट का मौसम होता है, यानी वैशाख-ज्येष्ठ, उसकी कठिन गर्मी में भी वृक्ष पल्लवित रहते हैं। उन पर कोयल बोलती है, और अमलतास, गुलमोहर के सुन्दर फूल खिलते हैं। ककड़ी-खरबूजे की बहार रहती है। क्लिष्ट होते हुये भी यह अपना अलग सौन्दर्य रखती है, जैसा कवि ने लिखा है :—

कैसे नीके लागत हैं, बासर ऋतु ग्रीषम के,
जीवन को सन्ध्या प्यारी, सुख उमड़त है ॥
सरिता सरोवर कुण्ड, माहिं केल करिबे तें,
तरिबे तें देह दूनौ आनँद लहत है ॥
घनी घनी छाया में, वन की पवन लागै,
झुकि झुकि आवै नींद, कल ना गहत है ॥

फिर भला यहाँ का मौसम सर्वश्रेष्ठ होने से, प्राणी की उच्चतम भावनाओं में, क्रिया-कलापों में, आत्म-साक्षात्कार में यानी परम पुरुषार्थ में सहायक क्यों न माना जाय ? यही मौसम हमारे वर्ष को छः छोटी-छोटी ऋतुओं में विभाजित कर देता है, जिससे हम कभी किसी ऋतु-विशेष से ऊब नहीं सकते हैं। ऊबने से पहले ही वह ऋतु समाप्त हो जाती है और एक नई ऋतु नई बहार लेकर आ जाती है। ऐसा और जगह नहीं होता है। वहाँ तो जन्म से मृत्यु तक विकट परिस्थितियों से संघर्ष करते करते यह भी पता नहीं चलता कि कब पैदा हुये, कब जवान हुये, कब बूढ़े हुये, कब मरे। फिर भला वहाँ अध्यात्म जैसी वस्तु के लिये फुरसत और सुविधा कहाँ ? परिणाम यह कि वहाँ मनुष्य कीड़े-मकोड़ों की भाँति जन्मता, जीता और मरता है, मिथ्या तड़क-भड़क कर ली, तो क्या हुआ ?

मौसम के बिना अध्यात्म तो क्या, जीवन ही नहीं। न केवल मनुष्य, मौसम के बिना एक घास की पत्ती भी नहीं रह सकती। यदि मौसम का अर्थ केवल जलवायु से लिया जाय, तो पृथ्वी के अतिरिक्त जहाँ तक भी हमारी विशाल-से-विशाल दूरबीनें देख सकती हैं, कहीं भी जलवायु की उपस्थिति के कोई प्रमाण अभी तक नहीं मिले। अतः पृथ्वी के अलावा और कहीं किसी भी प्रकार के जीवित प्राणी का अस्तित्व भी दिखाई नहीं दिया। इसीलिये जब अमरीकी अन्तरिक्ष-यात्री पृथ्वी को छोड़ कर अन्तरिक्ष-यात्रा पर गये, तो उन्हें यहाँ का मौसम अपने अन्तरिक्ष-यान में बन्द

करके ले जाना पड़ा, तब जाकर वे जीवित रहे। यहां तक कि चन्द्रमा पर उतरते समय भी पृथ्वी का मौसम उनके 'स्पेस सूटों' में बन्द था। तो जीवन के लिये मौसम का यह महत्व है। अब हम यदि इस प्रकार के अनुकूल मौसम की उत्पत्ति की कथा को उठायें, तो आश्चर्य से आँखें फटी-की फटी रह जायंगी कि ओहो! इतना विज्ञान! इतना गणित! इतनी बुद्धि! इतनी कला! इतना विचार! इतना परिश्रम! आखिर यह सब किसने किया? वह कैसा विचित्र दिमाग है! धन्य है!

मान लीजिये, जीव के रहने के लिये विधाता ने एक पृथ्वी बना डाली, पर वह अभी अन्तरिक्ष में स्थित है और अन्तरिक्ष तो बर्फ से भी करोड़ों गुना ठण्डा है। फिर भला जीव का इस पर निर्वाह कैसे होगा? इसलिये कुछ गर्मी पैदा करने के लिये एक भट्ठी की जरूरत पड़ी। कोई भी साधारण भट्ठी कुछ समय तक जल कर बुझ जायगी। भट्ठी ऐसी हो जो कभी न बुझे। अतः इसे सूर्य का रूप दिया गया और बहुत सोच-समझ कर इसमें ईंधन के रूप में परमाणु शक्ति का उपयोग किया गया, क्योंकि केवल यही एक ऐसी शक्ति है, जो इस भट्ठी को चिर काल तक दहकती रखने में सक्षम हो सकती है। किन्तु सूर्य के बनते ही वह अपनी गुरुत्वाकर्षण शक्ति द्वारा पृथ्वी को अपनी ओर खींच लेगा और पृथ्वी सूर्य पर गिर कर भस्म हो जायगी। इसका क्या इलाज?

पृथ्वी को सूर्य पर गिरने से रोकने के लिये यह उपाय किया गया कि उसे सूर्य के इर्द-गिर्द घुमा दिया गया। इससे गुरुत्वाकर्षण के विपरीत शक्ति पैदा हुई और पृथ्वी सूर्य पर गिरने से बच गई। यह तो हुआ, परन्तु इस शक्ति की मात्रा विज्ञान के नियमानुसार इस बात पर निर्भर है कि पृथ्वी सूर्य से किस दूरी पर और कितने वेग से घूमे। यदि वह सूर्य के अधिक निकट घूमेगी, तो जीव के निवास के लिये अत्यधिक गरम हो जायगी, और यदि अधिक दूर घूमेगी, तो अत्यधिक ठंडी हो जायगी। ठीक दूरी और वेग निश्चित करने के लिये कठिन गणित के सूत्रों का उपयोग आवश्यक था। पर वह भी किया गया, बिना कागज-पेन्सिल के।

अब जाकर पृथ्वी पर जीव के रहने योग्य उपयुक्त तापमान प्राप्त हुआ। किन्तु गणित से अभी छुटकारा नहीं मिला। अब यह गणना करनी थी कि पृथ्वी का भार कितना रक्खा जाय कि वह जितने वायुमण्डल की आवश्यकता है, उतना अपनी ओर खींचे रहे। कम भार होने से सारी हवा उड़ कर अन्तरिक्ष में विलीन हो जाती। जैसे चन्द्रमा हल्का है, तो वहां पर कोई वायुमण्डल नहीं है और वायु के विना जीव कैसे पलता? इसका हिसाब भी लगाया गया और नाप-तौल कर बिलकुल ठीक भार पृथ्वी को दिया। धन्य है, इतनी बड़ी पृथ्वी को कैसे तोला!

खैर, पृथ्वी बन गई, और उस पर जीवों को बसाने के लिये सब प्रबन्ध कर दिया गया। अब प्रश्न यह उठा कि इसके किस भाग में पुण्यभूमि भारत को स्थापित किया जाय, जहां मौसम की स्थिति सबसे उत्तम रहे। अधिक उत्तर या अधिक दक्षिण में रखने से यह बर्फ से ढँक जाता। ठीक भूमध्य रेखा पर रखना भी ठीक नहीं था, क्योंकि वहां अत्यधिक वर्षा के कारण इतने घने जङ्गल हैं कि दिन में

पाठकों से निवेदन

'कौल-कल्पतरु' चण्डी का वार्षिक शुल्क केवल बारह रु० है। आप किसी भी मास से इस पत्रिका के वार्षिक ग्राहक बन सकते हैं। यदि कोई अङ्क आपको प्राप्त न हो तो आप अपने नगर के सुपरिन्टेन्डेन्ट पोस्ट आफिसेज को शिकायती पत्र दें तथा उसकी एक प्रति हमको भेजें तो हम आपको दूसरी प्रति शीघ्र भेज देंगे।……पत्र लिखते समय ग्राहक-संख्या व पूरा पता साफ-साफ शब्दों में लिखना चाहिये। पत्रोत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट आवश्यक है।

व्यवस्थापक

भी सूर्य का प्रकाश नहीं पहुंचता और बिना पेड़ों और लताओं को काटे जरा सी दूर चलना भी असम्भव है। ऐसे स्थान पर भारत को रखने से यहां कीड़े-मकोड़े और मच्छर-डांस इत्यादि ही रह सकते थे, मानव नहीं। अतः भारत को उत्तरी ध्रुव से नीचे और भूमध्य रेखा से ऊपर रख दिया। पर यहां भी एक कठिनाई यह पड़ी कि यहां से कर्क रेखा गुजरती है और दुनिया के बड़े-बड़े मरु-स्थल इसी रेखा पर पड़ते हैं।

अब क्या किया जाय ? भारत को मरुभूमि तो बनाना नहीं था। इसका भी उपाय निकाला गया। भारत के तट से लेकर दक्षिणी ध्रुव तक एक विशाल महासागर लहरा दिया गया। इस महासागर का जल सूर्य के ताप से भाप बनकर ऊपर उठता रहता है, और फिर मेघों के रूप में भारत के ऊपर आकर इसकी भूमि को वर्षा द्वारा सींचता रहता है। इस प्रकार यह भूमि मरु-स्थल होने से बच गई। अब आवश्यकता केवल इतनी रह गई कि इस अमृत-वर्षा के करनेवाले मेघों को भारत तक ही सीमित रक्खा जाय और आगे न जाने दिया जाय, नहीं तो महासागर से जो जल यहाँ के लिये आता है, वह चीन इत्यादि देशों में पहुंच जायगा और भारत प्यासा रह जायगा। तो मेघों को आगे जाने से रोकने के लिए हिमालय पर्वत की एक ऊँची दीवार खड़ी कर दी गई, जिससे बरसनेवाले सब-के-सब बादल इधर ही रुक जाते हैं। इस प्रकार यहां विश्व के सर्वोत्तम मौसम का निर्माण हुआ और यहां की भूमि वर्ष में दो-दो और तीन-तीन फसलें देने में सक्षम होकर प्रचुर मात्रा में धन-धान्य से सम्पन्न हुई।

इतिहास साक्षी है कि दुनिया भर के भूखे-नंगे समय-समय पर अपनी-अपनी जन्म-भूमियों से भाग कर यहां आये, चाहे आक्रामक के रूप में ही। पर यहां के मौसम ने उन सबको शरण दी, रोटी दी, सुख-सुविधायें दीं। परिणाम-स्वरूप वे सब यहीं की जन-संख्या में घुल-मिलकर यहीं बस गये और लौट कर घर जाने का नाम न लिया। (आज भी वही मौसम और उसमें वही प्रचुरता है, जो सदा से थी। पर जो नाना प्रकार के अभाव अब देखने में आ रहे हैं, वे स्वयं हमारे बनाये हैं। भगवान् ने अभाव भारत के लिये बनाये ही नहीं।)

स्पष्ट है, यदि सृष्टि-कर्ता ने भारत का मौसम बनाने में इतने हिसाब-किताब, इतने विज्ञान, इतनी बुद्धि और इतने परिश्रम का प्रयोग किया है, जितना कि ऊपर बताया गया है, तो वह इसलिये नहीं हो सकता कि यहां जन्म लेकर मनुष्य पशुओं की भांति केवल खाये-पिये और मर जाये, क्योंकि वह चेतन है, जड़ नहीं। यह सब उच्चतम अभिप्रायों से प्रेरित होकर ही किया होगा, ताकि इस मौसम में पला मानव नश्वर भौतिकता से ऊपर उठ कर, अध्यात्म - चिन्तन की ऊंचाइयों को पार करता हुआ, अपने परम लक्ष्य यानी पूर्णता का अनुभव कर सके।

"ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥"

अन्त में यही कहना है कि यह सब कोरा बुद्धि-विलास ही नहीं है, क्योंकि यह मौसम हमें प्रातः स्मरणीय अध्यात्म-वादी तत्व-दर्शी ज्ञान-विज्ञान के भंडार ऋषि-मुनियों की जो एक अनन्त श्रृंखला दे चुका है, जैसे अंगिरा, कपिल, गौतम, शाण्डिल्य, भरद्वाज, वशिष्ठ, विश्वामित्र, पतंजलि, याज्ञवल्क्य, नारद, अगस्त्य, यमदग्नि, कश्यप, अत्रि, पराशर, लोमस, व्यास, श्रृंगी, इत्यादि इत्यादि, वह हमारे कथन की पूर्णरूपेण पुष्टि करती है। तो और क्या प्रमाण चाहिए ? और कौन सा देश है, जो इस श्रेणी के इतने सारे मर्मज्ञ महापुरुषों के नाम गिना सकता है ?

अतः यह हमारा परम सौभाग्य है कि हमें भारत-भूमि पर जन्म मिला। काश, हम भी इस सौभाग्य से लाभ उठा कर अध्यात्म द्वारा अपने परम लक्ष्य को प्राप्त करते ! अब भी बीच में ही लटके रहने से क्या लाभ ?

मानव अगर न बन सके,
तो मानव जनम से क्या हुआ !
समझा न राज़ ज़िन्दगी,
तो ज़िन्दा रहे से क्या हुआ ॥

मानव जनम से पा गये,
भगवान को भी अनेक जन ।
दुनियां भी जिसको न मिली,
वो मानव हुआ तो क्या हुआ !

आश्रम-मर्यादा

जात-मात्रो गृहस्थः स्यात् संस्कारादाश्रमी भवेत् ।
गार्हस्थ्यं प्रथमं कुर्यात् यथा-विधि महेश्वरि ॥

मानव जन्म से ही गृहस्थ होता है। संस्कार से आश्रमी बनता है। हे महेश्वरि ! गृहस्थाश्रम का पलान यथाविधि पहले करना चाहिये

तत्व-ज्ञाने समुत्पन्ने वैराग्यं जायते यदि ।
तदा सर्वं परित्यज्य संन्यासाश्रममाश्रयेद् ॥

तत्व ज्ञान होने पर जब वैराग्य की भावना उत्पन्न हो, तब सब कुछ छोड़कर सन्यास आश्रम का सहार लेना चाहिये ।

विद्यामुपार्जयेत् बाल्ये धनं दारांश्च यौवने ।
प्रौढ़े धर्माणि कर्माणि चतुर्थे प्रव्रजेत् सुधीः ॥

बालावस्था में विद्या पढ़े, युवावस्था में धन और स्त्री को प्राप्त करे, प्रौढ़ावस्था में धर्म-कर्म करे तथा चौथी द्धावस्था में परिभ्रमण करे ।

मातरं पितरं वृद्धं भार्यां चैव पति-व्रताम् ।
शिशुं च तनयं हित्वा नावधूताश्रमं व्रजेत् ॥

बूढ़े माता-पिता और पतिव्रता पत्नी तथा बालक पुत्र को छोड़कर अवधूताश्रम को नहीं ग्रहण करना चाहिये ।

मातृ-पितॄन् शिशून् दारान् स्वजनान् बान्धवानपि ।
य प्रव्रजति हित्वैतान् स महा-पातकी भवेत् ॥

माता-पिता, बच्चों, स्त्रियों, स्व-जनों और भाई-बन्धुओं का त्याग कर जो परिभ्रमण करता है, वह महन् पाप का भागी होता है ।

(महा-निर्वाण तन्त्र)

दुर्लभ तन्त्र साहित्य

'गुप्तावतार दुर्लभ तन्त्रमाला' के अन्तर्गत अब तक निम्न तन्त्र प्रकाशित हो चुके हैं। ये बहुत ही कम संख्या में छपे हैं। फलतः पहला संस्करण समाप्त होने हो वाला है। दूसरा संस्करण पता नहीं कब छपे। अतः तन्त्र-साहित्य के प्रेमियों को इनका मूल्य मनिआर्डर से भेजकर इन्हें तुरन्त मंगा लेना चाहिये। म० आ० से मूल्य भेजनेवाले बन्धुओं से डाक-व्यय नहीं लिया जाता। शर्त यह है कि म० आ० पांच रुपये से कम का न हो।

महाचीनाचार सार तन्त्र	रु २-५०	निरुत्तर तन्त्र	रु २-५
गुप्तसाधन तन्त्र	२-५०	तोडल तन्त्र	१-५०
कुलार्णव तन्त्र	३-५०	मन्त्रकोष	२-००
काली तन्त्र (भाषा टीका)	३-००	कामधेनु तन्त्र	२-००
श्रीभुवनेश्वरी रहस्य	३-००	निर्वाण तन्त्र	२-००
सांख्यायन मन्त्र	३-००	नील तन्त्र	२-००
परातन्त्र	२-५०	परशुराम तन्त्र	१-००

पाँच रुपये से कम मूल्य की पुस्तकें मँगानेवाले बन्धु कृपया पुस्तक के मूल्य के साथ रजिस्ट्री डाकव्यय हेतु एक रुपया और भेजें।

जो पुस्तकें चाहिए, उनके नाम म० आ० के कूपन पर लिख दें।

श्री महामहोपाध्याय-भगवत्पूज्यपाद-श्रीगोविन्दाचार्य-शिष्य

श्री भगवच्छङ्कराचार्य-शिष्य श्रीविष्णुशर्माचार्य-शिष्य श्रीप्रगल्भाचार्य-शिष्य

श्रीविद्यारण्य यति-विरचितम्

श्री श्रीविद्यार्णव तन्त्रम्

जैसा कि नाम से ही प्रकट है, यह एक विशाल ग्रन्थ है। 'चण्डी' पत्रिका के आकार में दो खंडों में इसे प्रकाशित किया जा रहा है। प्रथम खण्ड का पूर्वार्द्ध छप गया है, जिसमें दश श्वासों के अन्तर्गत १८४ पृष्ठों में लगभग ८०० विषयों का वर्णन हुआ है, छः पृष्ठों में सूची है। प्रथम खण्ड का उत्तरार्द्ध भी मासिक खण्डों में छप रहा है और यह लगभग २२० पृष्ठों में समाप्त होगा। प्रथम खण्ड के इन दोनों प्रकाशित भागों का मूल्य १७) ५० है। अतः कृपया १८)५० मनिआर्डर से भेजें।

मनिआर्डर मिलते ही प्रथम खण्ड का पूर्वार्द्ध सेवा में भेज दिया जायगा।

१८) ५० भेजकर दुर्लभ तन्त्रग्रन्थ प्राप्त करें और धार्मिक साहित्य के प्रकाशन में सहायक बनने का पुण्य और यश लाभ अलग पाएँ। म० आ० कृपया निम्न पते पर भेजें—

कल्याण मन्दिर, अलोपीबाग प्रयाग—६

"संस्मृता संस्मृता........

"कौल-कल्पतरु चण्डी" के पुनर्जागरण के लिये हमारी समस्त शुभ कामनाएँ लीजिए। पुनर्जागरणाङ्क देखकर चित्त अत्यन्त आह्लादित हो उठा। आशा है, माई क्षय-सम्वत्सर में सभी प्रतिकूल परिस्थितियों का क्षय करके अनुकूलता व्याप्त करेगी।

कृपा-मयी करुणा-मयी की लीला अपरम्पार है। उसका रहस्य तो समय आने पर ही प्रकट होता है। इस समय विश्व की विचित्र स्थिति हो गई है, परन्तु भारत की स्थिति क्या है और क्या होने जा रही है—सत्ता-लोलुपता, भ्रष्टाचार, पाखण्डवाद इत्यादि शब्द हलके हो जाते हैं, जब हम उनका प्रयोग अपनी भावाभिव्यञ्जना के लिये करते हैं। अभी तो कीमतें आसमान छूती जाती थीं; अब गेहूँ बिना फाके चल रहे हैं! उस पर से क्या हो जायगा, माई जानें।

जून ७३ मास से पुनः चतुर्ग्रही तथा पञ्च-ग्रही योग आ रहे हैं, जिनका फल शास्त्रकार यों कहते हैं—

एक-राशौ यदायान्तौ चत्वारो पञ्चमे ग्रहाः ।
प्लावन्ति महीं कृष्णां रक्तेन जलेन वा ॥

यही योग १९७१ में पाकिस्तान से युद्ध करा चुका और सम्पूर्ण स्थिति को देखते हुए यह लेख जब तक आपके हाथों पहुँचेगा, तब तक क्या स्थिति होगी, आप सम्भवतः स्वयं देख रहे होंगे।

अस्तु, हमें क्या! हमें तो बस उसी का सहारा ठहरा और फिर उसका आश्वासन—

संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः।

अजी, जो कुछ हो रहा है, उसी की इच्छा से हो रहा है। कोई क्या हम आप करनेवाले थोड़े ही हैं! हमें अच्छा लगा, तो ठीक; बुरा लगा, तो माई को टेरेंगे ही और वह आएगी ही सब ठीक करने को। माई थोड़े ही वोटिंग और एलेक्शन के चक्करों में पड़ती है, जो कि उसे अपने समर्थकों और विरोधी दलों को दोष देना पड़े।

* * *

एक प्रयोग देखा--आजकल के दरिद्रता के युग में पुनः स्वर्ण युग लानेवाला प्रयोग! ऐसा प्रयोग, जो पुनः भारत को सोने की चिड़िया कहला दे। बशर्ते कि करनेवाला हो। कहिये, भर गया न मुँह में पानी! यह न समझियेगा कि 'भारत को छोड़ो, कम-से-कम हमीं करके कोट्याधीश बन जाँय'! अरे भैया, लूट लिये जाओगे। सभी को सुखी बनाओ। उसी में कल्याण है। स्वार्थ से नहीं, परार्थ से बनेगा।

अच्छा, तो आइए काम की बात पर। "चण्डी" के 'श्री कमला-विशेषाङ्क' (सम्वत् १९१८–वर्ष २०) में धन-प्राप्ति के अच्छे उत्तम अनेक प्रयोग छप ही चुके हैं। श्री

क्त के भी प्रयोग छपे हैं। यह भी प्रयोग श्री सूक्त का मन्त्र चुन कर सप्तशती का सम्पुटित पाठ करे वा कराये।
ही है। साधक को चाहिये कि अपनी वासना के अनुरूप यम-नियमादि कठिन हैं, इसलिए आगे लिखेंगे। अभी तो
मात्र श्री सूक्त की किस ऋचा से सप्तशती का सम्पुट-पाठ करने का क्या फल है, इसी को लिखते हैं—

श्री सूक्त की ऋचा, जिससे सप्तशती के प्रति श्लोक का सम्पुट-पाठ करना है।	दशांश हवन की सामग्री	विशेष क्रिया	फल
१ "हिरण्य-वर्णां०"	त्रि-मधु-प्लुत चम्पक पुष्प	९ सुवासिनी ९ कुमारी पूजन	सुवर्ण-वृद्धि
२ "तां म आवह०"	तिल आज्य		सुवर्ण-रजत वृद्धि
३ "आदित्य-वर्णे०"	"	विल्ववृक्ष के नीचे सोना, २१ दिनों तक विल्वमूल में पाठ करना उसके बाद ९ सुवासिनी का पूजन कर उन्हें भोजन कराये	दरिद्रता-नाश, महा धन-धान्य-समृद्धि
४ "उपैतु मां०"	जपा जाति पुष्प त्रि-मधु से प्लुत		यश-वृद्धि
५ "क्षुत्पिपासा०"	श्वेत तिल, सरोज, विल्व पत्र, घृत		महादारिद्र्य से पीड़ित भी सुखं को प्राप्त करे; सम्पत्ति की वृद्धि हो
६ "गन्ध-द्वारां०"	कमल,मालूर-पत्र, सफेद तिल, मधु-सर्पिषा युक्त		क्षौमाम्बर, पट्टाम्बर वृद्धि
७ "कर्दमेन प्रजा०"	नारिकेल, चूत-फल, द्राक्षा त्रि-मधु युक्त		सर्व-सम्पत्ति-वृद्धि
८ "आपः सृजन्ति०"	जौ, चावल, घी त्रिमधु-युक्त		धान्य-वृद्धि
९ "आर्द्रां पुष्करिणीं०"	त्रि-मधु-युक्त पुआ		पुत्र, जन-बन्धु-समृद्धि
१० "आर्द्रां यष्करिणीं०"	दध्ना		देश, ग्राम, पृथ्वी-लाभ
११ "यः शुचि०"	गो-क्षीर		समृद्धि

❀ "संस्मृता संस्मृता...

यम-नियम का पालन इनमें अति आवश्यक है। जैसे मलिनता परित्याग, सर्वथा शुद्ध रहना, केले का छेदन न करना, लवण-आमलक-परित्याग, तीनों सन्ध्याओं में विल्व को प्रणाम करना, बेल की दातुन न करना, मीठा खाना इत्यादि नियम "चण्डी"--कमला-विशेषाङ्क में छप ही चुके हैं।

प्रयोग करने के पूर्व अपने नामाक्षर से मित्र वर्ण ऋचा का प्रयोग, जन्माङ्ग में स्थित ग्रहों के विचारपूर्वक भाग्येश, लाभेश, आयेश की दशा-अन्तर में उपयुक्त प्रयोग विशेष फल-कारी होगा। स्वस्ति-वाचन इत्यादि आवश्यक है ही।

सम्पुट के साथ पाठ हो, तो अति उत्तम। अन्यथा सप्तशती के प्रत्येक श्लोक के ही साथ ऋचा का एक पाठ भी हो सकता है। अच्छा होगा, यदि एक-एक ऋचा से २१ दिनों तक सम्पुटित पाठ किया जाय और फल देखते चलें। जो अनुकूल हो, उसका पुरश्चरण शतार्ध वा शत-चण्डी तक ले चलें।

दरिद्र एक दिन में बादशाह बनने से रहा। धीरे-धीरे कष्ट मिटते हैं। फिर भोग-योनि तो है ही। यहाँ भोगने के ही लिए आना पड़ा है। प्रयोग वही आपके लिये होगा, जो सटीक काम करे और जो हमारा अनुभूत हो।

कुछ पाठकों को आश्चर्य होगा कि "कास्मोस्मितां" इत्यादि वाली पाँच ऋचाएँ क्यों छोड़ दी गई हैं। कारण कि उनका अनुभव या तो प्रतिकूल हुआ है या उदासीन। फिर अपनी परम्परा में प्राप्य नहीं था और स्वतः प्रयोग करने पर प्रतिकूलता ही रही। अतः नहीं लिखा।

प्रयोगों से तो पोथियाँ भरी पड़ी हैं, परन्तु जो समय पर काम दे, वही प्रयोग होता है। बाकी के लिये क्या कहें, कुछ ग्रन्थियाँ जान-बूझकर छोड़ दी गई हैं, जिसे विज्ञ पाठक स्वयं समझ लेंगे। यतः मन्त्र-शास्त्र को एकदम स्पष्ट रूप से लिख देना निषिद्ध है।

*   *   *

"बड़ा काम किया ग्रन्थियाँ छोड़कर", शागिर्द बोला "अरे, तुम्हें स्वयं नहीं पता है। खुद उलझन में पड़े हो तो चले हो ग्रन्थि और शास्त्र-निषेध की बात करने। जिसको चराना हो, उसे चराओ। अजी, हम तो तुम्हारी पोल बखूबी से जानते हैं।"

"चुप रह, बद-तमीज कहीं के," उस्ताद बोले, "लाख बार कहा है कि अपनी जबान सँभालो। शर्म नहीं आती, अपने गुरु के लिए ऐसे अपमान-सूचक शब्दों का प्रयोग करते हुये। तुम क्या जानों शास्त्र का मर्म! अभी मैं अपने हस्त-लिखित ग्रन्थों का भण्डार खोल दूँ, तो चकित रह जाओगे। अभी तक तुम्हारा पशुत्व नहीं गया। जानते हो, शास्त्र क्या कहता है कि जहाँ महा-पूर्णाभिषिक्त का निवास होता है, वहाँ........."

"अरे, चुप भी रहो उस्ताद," शागिर्द बोला, "अपना महा-महा-पूर्णाभिषेक अपनी पाकेट में रखो। मैं तो तुमको, तुम्हारे गुरु और परम गुरु सभी को देख चुका हूँ। एक भी तो लक्षण अभिषिक्त के नहीं मिलते, पूर्णाभिषिक्त के तो दूर रहे। अरे, क्या हम तुम्हें जानते नहीं! जब लगा तुम्हारा खण्डन छपने, तो बौखला उठे थे और साल भर जब "चण्डी" का प्रकाशन बन्द रहा, तो शिष्य-समूह में घोषणा करते चलते थे कि 'देख लो, मेरे अपमान का प्रतिकार—प्रकाशन बन्द हो गया।' अब कौन सा मुँह लेकर लेख लिखने बैठे हो! तुम्हारे समान बेहया तो दूसरा देखा नहीं।"

"शट अप," उस्ताद गरजे, "निकल जा यहाँ से।"

"मैं क्यों निकलूँ", शागिर्द बोला, "और एक हिप्पियों की बटालियन को अभी तुम्हारा चेला बनवाने के लिये

जो बड़ी मुश्किल से फुसला कर लाया हूँ, उन्हें कौन सँभालेगा ? समझ लो, क्विण्टल-के-क्विण्टल बोरों में भर कर गाँजा और बोतल लाये हैं।"

"अरे, क्या कहा प्यारे बेटे," उस्ताद बोले, "यही तुमने पहले क्यों नहीं बता दिया। भले ही बेटा, मुझमें, मेरे गुरु—परम गुरु में एक भी सुलक्षण अभिषिक्तों के न हों, परन्तु तुममें तो महा-पूर्ण-साम्राज्याभिषेक के समस्त लक्षण विद्यमान हैं। अब जल्दी से उन हिप्पियों का प्रबन्ध कर और हाँ, गाँजा व बोतलें तो मेरे ही कमरे में रखवा दे। जा बेटा, जा। ऐसे कार्यों में तनिक भी विलम्ब न होना चाहिये। बड़ा ही लायक है तू।"

* * *

उक्त प्रयोगों के समान मास पर्यन्त बिल्व-वृक्ष के नीचे तीनों सन्ध्याओं में सप्तशती का तीन पाठ प्रतिदिन करके मासान्त में बिल्व-फल, बिल्व-पत्र त्रि मधु से हवन करना अत्यन्त लक्ष्मी-प्रद, सौभाग्य-वर्द्धक माना गया है और अनेकों द्वारा आजमाया भी हुआ है। ये प्रयोग श्रम-साध्य तो अवश्य हैं, परन्तु उसी के कई गुने अनुपात में फल-दायक भी हैं। सप्तशती-पाठ प्रत्येक अवस्था में लाभ-प्रद ही होगा, ऐसा गुरु-जन मानते आये हैं और यह लोग भी अनुभव द्वारा देखते ही रहते हैं।

'कौल-कल्पतरु' चण्डी

सन् १९४२ से प्रकाशित

आपके पढ़ने योग्य सरल हिन्दी भाषा में भारतीय आर्ष-विज्ञान की एकमात्र सचित्र मासिक पत्रिका
सपादक : पुण्यशील शर्मा
'चण्डी' कार्यालय, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६ (२११००६)
वार्षिक शुल्क १२ रु०

सभी व्यक्तियों के लिए उपयोगी स्तम्भ

- भारतीय आर्ष-विज्ञान पर गवेषणात्मक लेख
- तन्त्र में अनुसन्धान
- ज्यौतिष विधान
- आयुर्वेद विधान
- धार्मिक जगत् की हलचल
- पाठकों के पत्र

आदि आदि

अपने शहर के समाचार पत्र-विक्रेताओं से 'कौल-कल्पतरु' चण्डी की आज ही मांग कीजिए।

शुद्ध सप्तशती के विषय में जो प्रयास छपा है, निस्सन्देह स्तुत्य है। मार्कण्डेय पुराण में मात्र १३ अध्याय हैं और प्रथम, मध्यम, उत्तम चरित्र वा उनकी अधिष्ठातृ महाकाली, महालक्ष्मी, महा-सरस्वती वा उनके वाक्, माया, काम बीज—विनियोग इत्यादि का प्रश्न ही नहीं उठता। फिर महाकाली-चरित के लिये वाक्-बीज, जो सरस्वती का है, महालक्ष्मी-चरित के लिये माया-बीज, जो भुवनेश्वरी का है और महा सरस्वती-चरित में काम-बीज का जोड़ा जाना तर्क-सम्मत न होकर विरोधाभास उत्पन्न करता है। रहस्य-त्रय कालिका पुराण के हैं। शर्मा जी के विचार एकदम ठीक हैं कि मुख्य पाठ के बाद ये सब अन्य बातें बाद की जोड़ी हुई हैं।

आज-कल तो छः अङ्ग पाठ के जो माने गए हैं, उनके अलावा भी बहुत जोड़ दिया गया है। यथा—— कवच, कीलक, अर्गला, देवी-सूक्त, रात्रि-सूक्त (वैदिक तथा तांत्रिक), नवार्ण जप, रहस्य-त्रय, कुञ्जिका स्तोत्र आदि आदि। और इसमें भी क्रम-भेद, सम्प्रदाय-भेद अनेक हैं। सबसे छोटा एक तरह से मैथिल क्रम है, जो अर्गला, कीलक, कवच, शापोद्धार, रात्रि एवं देवी-सूक्त (मात्र तांत्रिक) एवं नवार्ण जप का मुख्य पाठ के साथ आवश्यक समावेश करते हैं। प्रमाण-रूप में चिदम्बर-संहिता का वचन उद्धृत करते हैं कि——

अर्गला कीलकादौ तवस्तु कवचं पठेत्।
पठेत् सप्तशतीं पश्चात् क्रम एव शिवोदित ॥

अन्य सम्प्रदायों में बढ़ता ही चला गया है और वास्तव में एक साधारण व्यक्ति के लिये समस्या बन जाती है कि वह इतना लम्बा पाठ कैसे करे और जो किया भी जा रहा है, वह ठीक है या नह! इत्यादि शङ्काएँ स्वाभाविक हैं।

उदाहरण के लिये शापोद्धार के ही मन्त्रों को लीजिये। रुद्रयामलोक्त शापोद्धार का स्तोत्र, वशिष्ठ-विश्वामित्र अन्याय ऋषियों द्वारा शाप का निवारण, उत्कीलन मन्त्र, मृत-सञ्जीवनी इत्यादि ७-७, १०-१० बार जपने में ही कम समय नहीं लगता।

देव्यथर्वशीर्ष में नवार्ण मन्त्र की उत्पत्ति मान कर——

सा चण्डी नव-कोटि-शक्ति-सहिता पातु मां विश्वेश्वरी

नव-कोटि-शक्ति-प्रतीकात्मक वा नव-दुर्गा-प्रतीकात्मक एक शक्ति भगवती चण्डिका वा चामुण्डा वा चण्डी की आराधना के लिये 'नवार्ण' का प्रयोग हुआ।

योग-रत्नावली आदि ग्रन्थों ने सूक्तों का महत्व दर्शाया। वह भी वैदिक हो या तांत्रिक आदि अनेक भेदों का जन्म हुआ। यदि हम आप एक भी अङ्ग छोड़ना चाहें, तो हल्ला करने और प्रमाण देनेवालों की कमी नहीं है।

एक अन्य भी बात है और वह है अनुभव की कि किस तरह का पाठ करके किसको कितनी सफलता मिली तो भैया, हमने अङ्ग-युक्त पाठ करनेवालों को भी देखा, मात्र तेरह अध्याय पाठ करनेवाले भी मिले; मात्र रात्रि-सूक्त, देवी-सूक्त, चतुर्थ अध्याय, एकादश अध्याय अर्थात् स्तुति मात्र करनेवाले भी मिले——सिर्फ मध्यम चरित का पाठ भी देखा, मात्र चतुर्थ अध्याय का प्रयोग करते देखा। कामनानुसार एक ही श्लोक को बिना विधान के टेरते देखा और सभी को सफलता पाते देखा।

यह माई की असीम अनुकम्पा, कर्ता की श्रद्धा भक्ति है। और हम क्या कह सकते हैं! परन्तु उपर्युक्त बात से हमारी शङ्का का पूर्ण समाधान नहीं होता। इसमें कोई शक नहीं कि हमें सम्पूर्ण मनोयोग से शुद्ध सप्तशती और अङ्गों का अन्वेषण करना ही होगा। हम मात्र प्रयत्न ही कर सकते हैं और आगामी अङ्कों में अपने विविध

विचार, यदि हो सका तो प्रमाण के साथ, आपके समक्ष प्रस्तुत करने की चेष्टा करेंगे। इसी से सम्यक् रूप से पाठ भेदों पर मनन तथा विचार-विमर्श सम्भव हो सकेगा।

'शॉर्ट कट के चक्कर में पड़ना हमें उचित प्रतीत नही होता, पर इसका यह भी अर्थ नहीं कि पाठ इतना लम्बा हो कि एक साधारण व्यक्ति के बूते के बाहर हो। इस सन्दर्भ में महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह जी की एक बात स्मरण हो आई कि पाठ-कर्ताओं के साथ-साथ यदि कोई अशिक्षित ब्राह्मण आ जाता था, तो उससे कह दिया जाता था कि वह बैठकर "दुर्गा दुर्गा" नाम हीं का जप करे और इस नाम-जप की भी उसे वही दक्षिणा मिलती थी, जो पाठ-कर्ताओं को सम्पूर्ण अङ्ग-युक्त सम्पुट-पाठ की दी जाती थी। कहा भी है कि 'मैं (शङ्कर जी) अपने पाँच मुखों से यही 'दुर्गा'–नाम जपता हूँ।' यथा–

दुर्गा नाम जपो यस्य किं तस्य कथयामि ते।
अहं पञ्चाननः कान्ते! तज्जपादेव सुव्रते ॥१॥
धनी पुत्री तथा ज्ञानी चिरञ्जीवी भवेद् भुवि।
प्रत्यहं यो जपेद् भक्त्या शतमष्टोत्तरं शुचिः ॥२॥
अष्टोत्तर-सहस्रं तु यो जपेद् भक्ति-संयुतः।
प्रत्यहं परमेशानि! तस्य पुण्य-फलं शृणु ॥३॥
धनार्थी धनमाप्नोति ज्ञानार्थी ज्ञानमेव च।
रोगार्तो मुच्यते रोगात् बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥४॥
भीतो भयात् प्रमुच्येत पापान्मुच्येत पातकी।
पुत्रार्थी लभते पुत्रं देवि! सत्यं सत्यं न संशयः ॥५॥
अयुतं यो जपेद् भक्त्या प्रत्यहं परमेश्वरि।
निग्रहानुग्रहे शक्तः स भवेत् कल्प-पादपः ॥६॥
तस्य क्रोधे वसेन्मृत्यु प्रसादे परिपूर्णता।
एव सत्यं विजानीहि समर्थः सर्व-कर्मसु ॥७॥
मासि मासि च यो लक्षं जपं कुर्याद् वरानने!
न तस्य ग्रह-पीडा स्याद् कदाचिदपि शङ्करि ॥८॥
न चैश्वर्यं क्षयं याति न च सर्प-भयं भवेत्।
नाग्नि-चौर-भयं वापि न चारण्ये जले भयम् ॥९॥
पर्वतारोहणे नापि सिंहं व्याघ्र-भयं तथा।
भूत-प्रेत-पिशाचानां भयं नापि भवेत् क्वचित् ॥१०॥
न च वैरि-भयं कान्ते! नापि दुष्ट-भयं भवेत्।
पर-लोके भवेत् स्वर्गी सत्यं वै वीर-वन्दिते ॥११॥
चन्द्र-सूर्य-समो भूत्वा वसेत् कल्पायुतं दिवि।
वाजपेय-सहस्रस्य यत्फलं स्यात् वरानने ॥१२॥
तत्फलं समवाप्नोति दुर्गा-नाम-जपात् प्रिये।
न दुर्गा-नाम-सदृशं नामास्ति जगती-तले ॥१३॥
तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन स्मर्तव्यं साधकोत्तमैः।
यस्य स्मरण-मात्रेण पलायन्ते महापदः ॥१४॥

अर्थ उपर्युक्त का स्पष्ट ही है। माई ने कृपा-पूर्वक कितनी सरलता से सभी के लिये अपने नाम-स्मरण-पूर्वक सर्वार्थ परार्थ-साधन सुलभ कर दिया है। यह उसकी दया ही तो है। अनेकानेक मात्र नाम-स्मरण करनेवाले को सब कुछ पाते देखा है और यह निष्ठा ही से होता है।

❀ ❀ ❀

'अजी, बस भी करो उस्ताद!' शागिर्द बोला, 'अब इतने का खंडन होने दो, तब मण्डन में अपना लेख लिखना। तुम तो टेप रिकार्ड की तरह शुरू हो जाते हो, तो बन्द होने का नाम ही नहीं लेते! अब चलो, जरा हिप्पियों से निबटो—कुछ माल-टाल हो जाय, कुछ काम की बातें हो जायँ, तो सब अच्छा लगता है।"

"हाँ, हाँ! ठीक याद दिलाया बेटा! उस्ताद बोले, 'इनकी बातें तो भूल ही गया था। अच्छा अब सही'

* * *

खैर, इस अङ्क के लिए इतना ही सही। आगामी में जो कुछ प्रेरणा-दात्री माई लिखवायेगी, आपकी सेवा

❀ "संस्मृता संस्मृता……

में यह औघड़ प्रस्तुत करेगा, पर भूलियेगा नहीं। यह शास्त्र करके—आजमा करके देखने का है! बिना रगड़े सिद्धि नहीं मिलेगी और कुछ भी हाथ नहीं आने का। जब कमर कस के तैयार हो जाइयेगा, प्रकृति स्वयं अपने रहस्य को अनावृत करेगी। आपको वह सभी देगी, जिसकी लालसा है—वह सभी दिखाएगी, जिसकी पिपासा है; वह सभी समझायेगी। जिसकी आकांक्षा है और क्या कहें, हमें आता ही क्या है, परन्तु लाचारी जो ठहरी—

तथापि त्वद्-भक्तिर्मुखरयति चास्माकमसिते!
तदेतत् क्षन्तव्यो न खलु पशु-रोषः समुचितः ॥

मन वहाँ चल....

"मन वहां चल, जहां मृग-छाला हो।
सुरसरि गंगा बहती हो, हिमालय का
निरभ्र-शुभ्र अंचल हो,
उज्ज्वल-धवल पहाड़ियों में, मैया का मन्दिर हो।
मन वहां चल—जहां मृग-छाला हो।
भव-दुख, भव आतप, त्रिताप जहां न हो,
राम-नाम की धुन हो—नाद-ध्वनि हो,
मन वहां चल, जहां मृग-छाला हो।
भगवती मैय्या का राज्य—बाग-बगीचा हो,
सुरम्य गङ्गा-तीर में दस विद्या का मन्दिर हो,
धैर्य, तप, संयम, शुचि, नम्रता, साधना का
अहर्निश पहरा हो।
मन वहां चल, जहां मृग-छाला हो।"

* * *

विज्ञापकों को अनुपम अवसर

'कौल-कल्पतरु' चण्डी में वर्गीकृत विज्ञापन छापने की व्यवस्था की गई है। कम खर्च में अपनी वस्तु का विज्ञापन छपाकर लाभ उठाइए।

विज्ञापन-शुल्क—प्रत्येक वर्ग ५½ × ५½ सेमी० के लिए मात्र दस रुपये प्रति अंक कृपया धनादेश से भेजिये।

महाकाल-संहिता

(कामकला खण्ड)

मूल्य तीस रु०

प्रकाशक

गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ,

प्राप्ति-स्थान

कल्याण मन्दिर, प्रयाग—६

साधना रहस्य

मूल्य पन्द्रह रु० मात्र

लेखक—'कुल मार्तण्ड' पं०

योगीन्द्र कृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्र

प्रकाशक

कल्याण मन्दिर, प्रयाग—६

शाक्त-धर्म विशेषाङ्क

मूल्य तीस रु०

प्रकाशक

चण्डी कार्यालय, प्रयाग—६

वर्गों में

विज्ञापन

देकर

लाभ

उठावें

कालिका पुराण

मूल्य पैंतीस रु०

मन्त्र और मातृकाओं का रहस्य

मूल्य अठारह रु० मात्र

जप-रहस्य

मूल्य पन्द्रह रु० मात्र

कल्याण मन्दिर प्रयाग—६

काली तन्त्र

(हिन्दी भाषा टीका)

मूल्य तीन रु०

प्रकाशक

कल्याण मन्दिर, प्रयाग—६

आगामी प्रकाशन

१ फेत्कारिणी तन्त्र

२ सप्तशती के प्रयोग

३ श्री आरासुरी-अम्बिका जी

प्रकाशक

कल्याण मन्दिर, प्रयाग—६

तारा-पीठ के सिद्ध महापुरुष श्री वामाचरण (बाबा वामा क्षेपा) की एक सत्य कथा

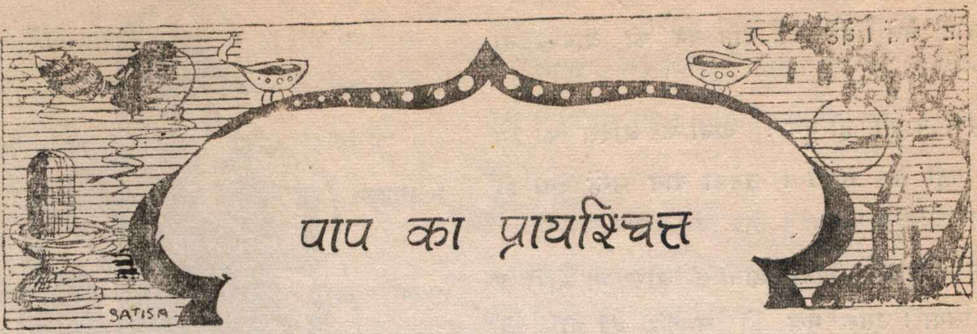

पाप का प्रायश्चित्त

वीरभूमि के महाश्मशान-वासी वामा क्षेपा के एक भक्त के सन्तानें तो अनेक हुईं, किन्तु जीवित एक भी नहीं बची। अन्त में कोई उपाय न देखकर वह बाबा की शरण में आया। बोला—"बाबा! किसी-न-किसी तरह मेरे लिये एक सन्तान जीवित बचा दें।"

भक्तवत्सल बाबा को दया आ गई। बोले—"अच्छा-अच्छा! किन्तु बच्चे को मुझे दान में देना होगा। जन्म के छः महीने के अन्दर तुम पति-पत्नी आकर बच्चे को दे जाना। क्यों?"

"यह तो हमारा परम सौभाग्य होगा कि हमारे बच्चे को आप दान में लें; उसे अपना दास बनाएँ।"

प्रसन्न-मुख भक्त घर को लौटा। अपनी पत्नी से कहा कि, "बाबा की दया मिल गई। हमारा बच्चा इस बार बचेगा और बाबा का दास बनेगा।"

मृत-वत्सा स्त्री पुलकित हो उठी। उसकी सूनी गोद बाबा की दया से हरी-भरी हो जायगी। बाबा को स्मरण कर वह उन्हें बारम्बार प्रणाम करने लगी।

भक्त पति ने आगे बताया, "किन्तु बाबा ने एक शर्त रखी है। बच्चे को उन्हें दान में दे देना होगा—छः महीने के अन्दर।"

"अरे, इसमें किन्तु-परन्तु की क्या बात? बाबा तो ठहरे ब्रह्मचारी! बच्चे को लेकर क्या करेंगे! तुम देखना, वे उसे ठीक कर वापस कर देंगे। इससे हमारा बच्चा जीवित तो बचेगा।"

"और यदि बच्चे को नहीं भी वापस किया, तो वह तारापुर में बाबा की सेवा में रहेगा। रहेगा तो हमारा ही बच्चा।"

❀ ❀ ❀

आज वही भक्त आया है। साथ में पत्नी है, जिसकी गोद में उनका दुलारा लगभग छः मास का बेटा है। निकट भविष्य में क्या होनेवाला है, इसका उन्हें तनिक भी पता नहीं है। पुत्र के बच जाने और उसके लाड़-प्यार के आनन्द में लगभग छः मास का अल्प काल पलक मारते बीत गया। इस बीच उनके मन में चिन्ता का लेश मात्र भी कभी नहीं रहा, किन्तु आज वे चिन्तित हो उठे हैं। बाबा क्या सचमुच ही उनके बेटे को ले लेंगे!

पिता अपने मन को स्थिर रखने की चेष्टा कर रहा था किन्तु मा के धैर्य का बाँध टूटने लगा। वह सोचने लगी कि "कहीं बाबा ने बेटे को न लौटाया—तो उसके बिना कैसे रहेगी! फिर इस श्मशान-भूमि में, जहाँ कितने ही प्रकार के साँपादि विषैले जीव-जन्तु और भूत-प्रेतादि की विपत्ति सदा मँडराती है, उनका एकमात्र लाड़ला सुरक्षित कैसे रहेगा!! नहीं, नहीं—बेटे का दान देना उसके लिए संभव नहीं। जब छः महीने वह बच गया, तब आगे उसके लिए कोई भय नहीं। बाबा को देने की

अब क्या आवश्यकता ?"

खुलकर उसने अपने पति से कहा कि, "चलो, हम लोग लौट चलें। बेटे का दान देने की आवश्यकता नहीं।"

"क्या कहती हो तुम ! बाबा के आदेश को हम अमान्य नहीं कर सकते। उनका दान उन्हें देना ही होगा।"

माँ ने बेटे को अपनी छाती से और भी जोरों से चिपका लिया। उसके मुख को चूमकर वह और भी विकल हो उठी। उसकी आँखों से आँसुओं की धार बह चली। रुँधे हुये गले से वह बोली, "तुम क्या एकदम निष्ठुर हो जाओगे ? बच्चे को मैं एक क्षण के लिये भी अपनी गोद से विलग नहीं कर सकती। चलो, यह देश छोड़कर अपने घर लौट चलें। बाबा निश्चय ही इतने दिनों की बात भूल गये होंगे।"

परन्तु भक्त पति अचल, अटल रहा। वह समझ रहा था, उसकी पत्नी बाबा को क्या जाने। बाबा क्या इतने सहज हैं ! उसने दृढ़तापूर्वक कहा कि, "बाबा का दान बाबा को देना ही होगा। उसके बाद वे चाहे जो करें।"

बाबा के पास पहुँचकर प्रणाम कर दोनों एक ओर खड़े हो गए। स्मित-मुख से आशीर्वाद जताते हुये बाबा ने भक्त से कहा, "क्यों रे, बच्चे को ले आया है ? अच्छा, एक काम कर बाबा ! माँ की गोद से उसको ले ले और श्मशान के बीच में अकेले लिटाकर वापस आ जा। कोई पास में न रहे। जैसा कहता हूँ, वैसा ही कर।"

बेचारी मा का सारा शरीर सिहर उठा। श्मशान के बीच में रखा जायगा दूध-पीता बच्चा ! उसके दुलारे को सियार, साँप आदि काट खाएँगे। ना-ना ना, उसके रहते उसके बच्चे को कौन श्मशान में लिटा सकता है !

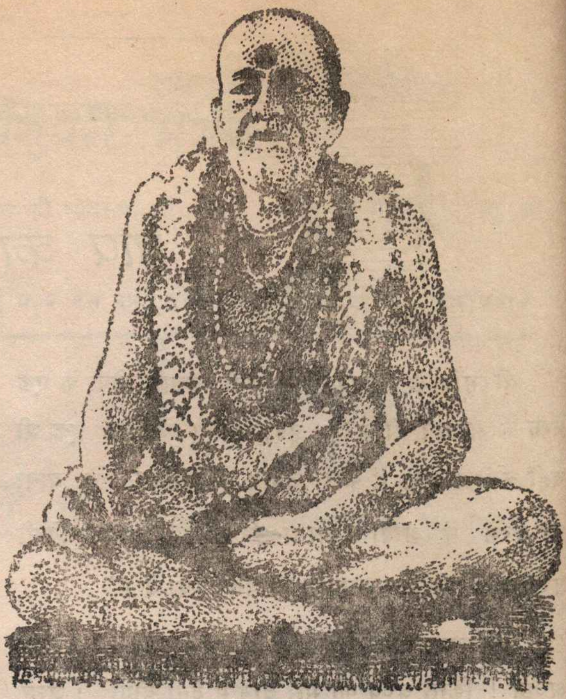

तारा-पीठ के सिद्ध महापुरुष वामा क्षेपा

बाबा फिर बोले, "क्यों रे, काठ की तरह क्या खड़ा है ? मेरा बच्चा मुझको दे। इस समय जो कहता हूँ, वही कर। क्या मेरा कहा नहीं करेगा ?"

बाबा की बात से मा बेचारी और भी दुखी हो उठी। भयङ्कर वीभत्स श्मशान उसकी आँखों के आगे घूमने लगा, जहाँ दिन में भी जाते लोग सिहरते हैं। चारों ओर भूखी शिवाएँ मांस के लालच में घूम रही हैं; गिद्धों की आँखें लाशों पर जमी हुई हैं और कुत्ते-कुतियों के समूह भयानक शब्द करते हुये हड्डियाँ चबा रहे हैं। अचानक ही उसके मुख से चीख निकल पड़ी—"ना, ना, मैं अपने बेटे को नहीं दूँगी—नहीं दूँगी।"

मा की चीख से बाबा मानों और भी कठोर हो उठे। रूखे स्वर में फिर बोले—"शीघ्र हमारा बच्चा हमको दे। यदि भलाई चाहता है, तो देर मत कर।"

भक्त पिता अब तक चुपचाप जड़वत् खड़ा था।

बाबा की उक्त बात सुनकर वह और स्थिर न रह सका। लपक कर उसने मां की गोद से बच्चे को ले लिया और दूसरे ही क्षण उसे उसने बाबा के चरणों में डाल दिया।

दुःखी मां मूर्छित होकर गिर पड़ी। बाबा ने एक अन्य भक्त को आदेश किया कि "बच्चे को श्मशान में लिटा आओ।"

कुछ ही क्षणों के बाद माता को होश आया। बाबा की आज्ञा से पति-पत्नी दोनों को मां के मन्दिर में जाना था। बाबा बोले, "मेरे आदेश के बिना मन्दिर छोड़कर कहीं मत जाना।"

धीरे-धीरे दिन बीता; सन्ध्या आई, शङ्ख और घण्टे की ध्वनि से मन्दिर गूंज उठा। माँ की आरती पूर्ण हुई। इतना समय बीत गया, सन्तान अकेली कहाँ पड़ी है! बाबा का कोई आदेश भी नहीं आया! स्नेहमयी माता बच्चे के शोक में कभी मन्दिर के अन्दर, तो कभी मन्दिर के बाहर आती जाती है।

"अब तक क्या वह बचा होगा? निश्चय ही क्या शिवाओं और कुत्तों ने उसके चिथड़े न कर डाले होंगे.... " मन में इस प्रकार की दुश्चिन्ताओं के आते-आते वह विकल होकर श्मशान की ओर भाग चली—थके-हारे पति के रोके भी वह नहीं रुकी, किन्तु मन्दिर के बाहर पगडण्डी पर आते ही उसने देखा–भैरव-वाहन की तीक्ष्ण आँखें उसे घूर रही हैं। भय से उसके कदम जहाँ-के-तहाँ रुक गये। उसकी मनोव्यथा कण्ठ से फूट पड़ी–"मेरा लाल! मेरा लाड़ला दुलारा बच्चा कहाँ · "

उसकी चीख के ऊपर से मेघ-गर्जना के समान बाबा की वाणी गूंज उठी, "कौन जाता है––ओ बेटी, खबरदार!"

बाबा के पैरों पर बेचारी माँ गिर पड़ी, "बाबा आपके पैर पड़ती हूँ। हमारे बच्चे को लौटा दीजिये।"

बाबा ने इस बार अभय-दान दिया, "जा मा, तू कोई चिन्ता न कर। तेरी गोद ही में बच्चा वापस दूंगा।"

बच्चा वापस मिलेगा, सुनते ही माँ आनन्दित हो उठी। चुपचाप वह मन्दिर में पति के पास वापस चली गई।

तीन-चार घण्टे और बीते। काली अँधियारी रात–श्मशान में जलती चिताओं की धूः–धूः की भयानक ध्वनि! कहीं किसी का हृदय-विदारक करुण विलाप, तो कहीं किसी की मर्मान्तिक चीख! सन्तान के प्रति पिता की ममता–माता के स्नेह की गहराई को भला कौन समझ सकता है! फिर जो आजन्म-ब्रह्मचारी रहा हो, माया-मुक्त संन्यासी हो, वह किस प्रकार सन्तान के प्रति पिता माता के इस बन्धन को अनुभव करेगा कि यह बन्धन कितना दृढ़ होता है, जीव को किसी प्रकार यह अन्धा बना देता है, मोह में डाल देता है! किन्तु उस तमसाच्छन्न श्मशान में नादेश्वर क्षेपा बाबा अकेले बैठे मन सानन्द में विभोर गाते जा रहे थे—

ये तालु के रानीर नाम गो · तारा सुन्दरी,
ओ किल मोक्तार आछे कत कुबेर नाम भाण्डारी।
श्मशान भूमि आलो करे बुकेर छेले कोले निये
स्नेहमयी शिलामयी प्राणमयी शङ्करी तारा सुन्दरी॥
पागल वामा मा तोर नामे भासिये दिल नाय।
शुधू तारा-तारा-तारा बोले रानीर नाम इ गाय॥
आमरा मा तोर खास तालुके बसत करि मनेर सुखे।
मा तोर चरण चिह्न बुके एके
किनवो मा तोर जमिदारी॥

गीत समाप्त होने पर बाबा मन-ही-मन "श्री दुर्गा श्री दुर्गा" नाम-जप करने लगे।

सत में ही अवस्थिति है जिनकी, वही हैं सती।
जो समर्थवती हैं, वही हैं भगवती।
जीव की दुर्गति नाश करती हैं—अतः दुर्गा कहते हैं।

काल के भय को दूर कर जीव की रक्षा करती हैं—
वही काली हैं ।
त्रि-ताप का नाश करती हैं —अतः तारा कहते हैं ।
विश्व-भुवन की जो ईश्वरी हैं, वही भुवनेश्वरी हैं ।
षोडश-कलात्मक "श्री" प्रदान करती हैं,
अत षोडशी कहते हैं ।
कान्ति और शान्ति देती हैं, वही कमला हैं ।
मद का जो नाश करती हैं, वही हैं मातङ्गी ।
विश्व को अपने वश में रखती हैं, वही हैं बगला ।
मोह का नाश करती हैं, अतः धूमावती कहते हैं ।
माया छिन्न कर जीव को मुक्त करती हैं,
वही हैं छिन्नमस्ता ।
भव का जो कारण हैं, वही है भैरवी ।
विद्या और सुबुद्धि का जो दान करती हैं,
वही हैं सरस्वती ।
जगत् को धारण करती हैं, अतः जगद्धात्री कहते हैं ।
विश्व-प्रेम से विगलित होती हैं, वही वैष्णवी हैं ।
विश्व को श्री से मण्डित करती हैं,
अतः लक्ष्मी कहते हैं ।
परमात्मा को जीव-भाव से जो सम्बद्ध करती हैं,
वही हैं परमा ।
मोह-माया से उद्धार करती हैं,
अतः महामाया कहते हैं ।

"रात तो काफी बीत गई । अब बच्चे को ले आओ," बोले बाबा एक भक्त की ओर देखकर । वह गया और अक्षत-शरीर कोमल शिशु को अपनी गोद में उठा लाया । इतने समय तक बाबा का कालू कुत्ता शिशु पर पहरा दे रहा था । जब तक शिशु श्मशान में रहा, उसकी सजग दृष्टि बराबर उस पर जमी रही; कोई विपत्ति उसके पास आने नहीं पायी ।

बच्चा आनन्द से हाथ-पैर उछालता वहाँ पड़ा रहा । उसे भूख-प्यास किसी ने नहीं सताया । एक बार भी वह रोया नहीं ।

बाबा ने बच्चे को गोद में ले लिया और स्नेह-कातरा माँ के पास जा पहुँचे । बोले—

"यही तो है तेरा बच्चा, बेटी ! ले इसे, अब "तारा-तारा" नाम जपते अपने घर वापस जा ।"

पिता-माता दोनों ही ने बाबा के चरणों पर गिर कर सभक्ति प्रणाम किया और वहाँ से विदा हुये ।

* * *

मार्ग में चलते-चलते स्त्री ने जिज्ञासा की, "अच्छा, यह तो बताओ ? बाबा ने इतना कष्ट क्यों दिया ? बच्चे को श्मशान में न रखवाते, तो क्या बिगड़ जाता ?"

स्वामी ने मुस्कुराकर उत्तर दिया, "यह सब मैं क्या जानूं । केवल इतना भर समझता हूँ कि आज बाबा की कृपा से हमारे पापों का प्रायश्चित्त हो गया ।"

तन्त्र में अनुसन्धान

तन्त्र-विद्या के सम्बन्ध में अनुसन्धान कोई नई बात नहीं है। कलकत्ता हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश सर जॉन वुडरफ ने दरभङ्गा नरेश महाराजाधिराज स्व० रमेश्वर सिंह की कृपा से काशी-वासी पण्डित शिवचन्द्र भट्टाचार्य से शाक्त-धर्म की दीक्षा ही नहीं प्राप्त की, अपितु कलकत्ते में "आगम-अनुसंधान समिति" नाम की एक संस्था भी स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। इस समिति के द्वारा "तान्त्रिक टेक्स्ट्स" नामक एक ग्रन्थ-माला का प्रकाशन भी प्रारम्भ किया गया और महानिर्वाण तन्त्र, तन्त्रराज तन्त्र, शारदातिलक तन्त्र, प्रपञ्चसार तन्त्र, तारा-भक्ति-सुधार्णव, कौलावली-निर्णय, षट्-चक्र-निरूपण, कर्पूरादि-स्तोत्र, कौलोपनिषद्, जैसे दुर्लभ तन्त्र-ग्रन्थों को सुसम्पादित कर प्रकाशित किया गया। प्रत्येक ग्रन्थ के प्राक्कथन को अंग्रेजी भाषा में दिया गया, जिससे तन्त्र के सिद्धान्तों को आधुनिक ढंग से जानने का कदाचित् पहले-पहल लोगों को अवसर मिला। यही नहीं, आर्थर एवेलॉन के नाम से उक्त न्यायाधीश महोदय ने महानिर्वाण तन्त्र का अंग्रेजी-रूपान्तर Great Liberation, वर्णमाला का Garland of letters, षट-चक्र-निरूपण का Serpent Power, तन्त्र-तत्व का principles of Tantras नामक स्वतंत्र ग्रन्थ-रूप में प्रकाशित कराकर और भी महत्व का कार्य किया। इनके सिवा Creation according to Tantra, Shakti and Shakta, Power as creation इत्यादि अनेक अंग्रेजी पुस्तकों की भी उन्होंने रचना की। खेद है कि इन महापुरुष का चित्र और जीवन-चरित सुलभ नहीं है।

इसी प्रकार भारत के एक निःस्पृह स्वनाम-धन्य आचार्य महीधर से शिक्षा प्राप्त कर विदेशियों के एक समूह ने "विश्व-तन्त्र-संघ" नामक एक अन्ताराष्ट्रीय संस्था की स्थापना की, जिसने अत्यन्त गोपनीय रूप से तन्त्र-विद्या के सम्बन्ध में अनुसन्धान-कार्य किए हैं। उसके एक अप्राप्य प्रकाशन Tantrik Order in America के आधार पर शाक्त-सम्मेलन के संस्थापक और "चण्डी" के सञ्चालक न्यायमूर्ति पण्डित शिवनाथ काटजू ने यह रहस्योद्घाटन वर्षों पूर्व "चण्डी" में लेख लिखकर किया कि अमेरिका में बर्नार्ड नाम के एक महानुभाव द्वारा तान्त्रिक विद्या सम्बन्धी अनुसन्धान बहुत ही व्यापक रूप में किया जा रहा है। करोड़ों रुपये की लागत से वहाँ विस्तृत भू-भाग में विशाल भवनादि बनाए गए हैं और जो तन्त्र-साहित्य भारत में भी उपलब्ध नहीं है, वह मूल संस्कृत में ही नहीं—अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं में अनूदित होकर वहाँ साधकों के लिए उपलब्ध है। इस तन्त्र-सङ्घ द्वारा भी विलक्षण तान्त्रिक साहित्य का प्रकाशन किया गया, किन्तु उसे गुप्त रखा गया।

और अब तो "तन्त्र" के सम्बन्ध में विश्व भर

("विश्व-तन्त्र-सङ्घ" के उन्नायक स्व० पियरे बर्नार्ड)

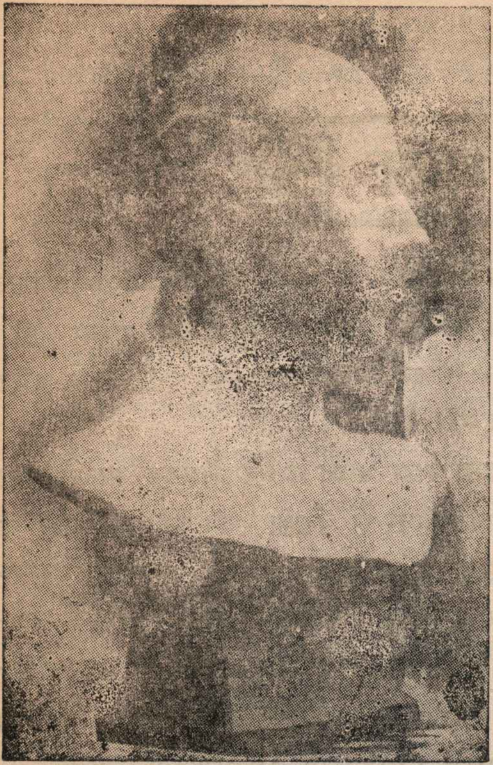

में भारी जिज्ञासा दिन-प्रतिदिन जाग्रत होती जा रही है। 'कौल-कल्पतरु' स्व० पण्डित देवीदत्त जी शुक्ल जब अपने जीवन के अन्तिम चरण में थे अर्थात् आज से लगभग तीन वर्ष पूर्व, हमें अचानक एक पत्र योरप के स्वीडन देश से मिला। लेखक महोदय श्री गुन्नार एण्डर्सन ने अपने पहले पत्र (दिनांक २९ सितम्बर, १९७०) में लिखा कि—

………It is now several years ago that I started my work on the Kularnava Tantra as a licentiate thesis (this is a Swedish University degree betwen M. A. and Ph. D.)………

अर्थात् अनेक वर्ष पूर्व मैंने कुलार्णव तन्त्र पर अनुसन्धान कार्य करना प्रारम्भ किया (यह कार्य स्वीडेन के विश्वविद्यालय के एम० ए० और पी-एच० डी० की मध्य-स्तरीय उपाधि को दिलानेवाला है)।

पूज्य स्व० शुक्ल जी इस पत्र से बहुत ही आनन्दित हुये थे और उनकी प्रेरणा तथा आशीर्वाद से "चण्डी" के अनुरूप ही एक अंग्रेजी पत्रिका "KAUL-YUG" के प्रकाशन का विचार ही नहीं किया गया, अपितु उसके प्रथमाङ्क का छपना भ प्रारम्भ कर दिया गया, किन्तु अचानक ही उनका निधन हो जाने से तथा उसके बाद घोर आर्थिक सङ्कट के कारण उसका प्रकाशन स्थगित करने को बाध्य होना पड़ा।

श्री एण्डर्सन ने "कुलार्णव तन्त्र" को अपने अनुसन्धान का लक्ष्य बनाया तो अवश्य, किन्तु उसकी गुत्थियों को सुलझाने के लिये उन्हें एक मार्ग-दर्शक की आवश्यकता थी और इसी आवश्यकता के फलस्वरूप हमारा उनका पत्राचार प्रारम्भ हुआ। उसी पत्राचार से प्रेरित होकर यह लेख-माला प्रकाशित की जा रही है। आशा है कि इस लेख-माला के द्वारा भारतीय पाठक यह हृदयङ्गम कर सकेंगे कि उनकी अमोघ और गोपनीय तन्त्रविद्या के सम्बन्ध में विदेशी पाश्चात्य विद्वान् कितनी गहरी रुचि ले रहे हैं और किस प्रकार वे उसके रहस्य-भेदन के लिए निरन्तर सचेष्ट हैं। साथ ही उनकी विचार-पद्धति से परिचित होकर वे अपने ज्ञान और अनुभव में भी विस्तार कर सकेंगे। यदि ऐसा हुआ, तो हम इस लेखमाला को सार्थक समझेंगे।

श्री गुन्नार एण्डर्सन के पत्र आंग्ल भाषा में हैं। अनेक महत्वपूर्ण अंशों का भावात्मक अनुवाद इस लेख-माला में दिया गया है। आशा है कि विज्ञ पाठक

महानुभाव इन अंशों में उठाये गये प्रश्नों के सम्बन्ध में अपने विचार सूचित करने की कृपा करेंगे ।

* * *

कुलार्णव तन्त्र

"कुलार्णव तन्त्र" का तान्त्रिक साहित्य में अपना अनूठा स्थान है । यह एक मौलिक ग्रन्थ तो है ही, साथ ही इसमें सूत्र-रूप में कुल-साधना के मूल सिद्धान्त बड़ी खूबी के साथ संग्रहीत हैं । अनुसन्धान की आधुनिक पद्धति यह है कि जिस ग्रन्थ पर अनुसन्धान करना है; उसकी समस्त प्राचीन-अर्वाचीन हस्तलिपियों या मुद्रित प्रतिलिपियों को एकत्र किया जाय; उनके पाठ को मिलाया जाय और उनकी प्रामाणिकता निर्धारित करने का प्रयास किया जाय । पाठ-भेदों और विवादास्पद शब्दों की विवेचना कर उनके वास्तविक अर्थ को स्पष्ट करना अगला कार्य है । इसी पद्धति के अनुसार स्वीडन के श्री एण्डर्सन ने भी कार्य करना आरम्भ किया और उन्होंने "कुलार्णव तन्त्र" के निम्न संस्करणों को एकत्र किया——

१ श्री एम०पी० पण्डित, मद्रास द्वारा सम्पादित एवं अंग्रेजी में अनूदित

२ पण्डित भद्रशील शर्मा, एम० ए०, द्वारा सम्पादित एवं हिन्दी में रूपान्तरित

३ आँर्थर एवेलन द्वारा सम्पादित एवं अंग्रेजी प्राक्कथन-युक्त

४ योरप के विविध पुस्तकालयों में संग्रहीत पाँच हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ

५ भारत से प्राप्त तथा प्राप्त होनेवाली अनेक हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ

"कुलार्णव तन्त्र" के अब तक प्रकाशित सभी संस्करणों को अध्ययन करने के बाद श्री गुन्नार एण्डर्सन जिस निष्कर्ष पर पहुँचे, वह ध्यान से पढ़ने योग्य है । वे लिखते हैं कि——

"…Now, I Can't but think that all these editions are unsatisfactory, and that a new and better edition is needed…

अर्थात् मेरे विचार से ये सभी संस्करण असन्तोष जनक हैं और एक नवीन तथा अधिक उत्तम संस्करण की आवश्यकता है ।

"कुलार्णव तन्त्र" का यह संस्करण किस प्रकार का होना चाहिये——किस दृष्टि-कोण से उसका सम्पादन होना चाहिये, इस सम्बन्ध में भी श्री एण्डर्सन के उक्त पत्र से महत्वपूर्ण प्रेरणा मिलती है । पत्र का तत्सम्बन्धी अंश निम्न प्रकार है—

.... From many reasons subjective as well as objective, I think it is about time the work on the Tantra was continued ..Nothing has happened since Avalon । woodroffe .. that has penetrated to the west and been integrated in the science or History of Religion. There are, of course, the interpretation of a Heinrich zimmer, but that is not really what is needed.

.. The work of woodroffe, including his translation of the Mahanirvan Tantra is a priori suspect, because of his pronounced, and more often than not jrustified contempt for and negligence of the academical approach ..... the academical methods of the west might be used ... there must be annotated translations,... ..."

अर्थात् विषय और उद्देश्य की दृष्टि से ऐसे अनेक कारण हैं कि मेरे विचार से यह वह समय है, जब तन्त्र पर अनुसन्धान-कार्य होना ही चाहिये। एवेलन या वुडरफ के समय से अब तक कुछ भी ऐसा कार्य नहीं हुआ है, जिससे पश्चिमी देश प्रभावित हुये हों और जो धर्म के इतिहास या विज्ञान में समाविष्ट हुआ हो। अवश्य ही हेनरिक जिमर द्वारा तन्त्र का कुछ अर्थ समझाया गया है; किन्तु उससे आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती। वुडरफ का कार्य भी, जिसमें महानिर्वाण तन्त्र का उनका अनुवाद सम्मिलित है, स्पष्ट रूप से सन्दिग्ध है क्योंकि गवेषणात्मक दृष्टिकोण की उपेक्षा ही नहीं, निन्दा तक वे खुलकर करते हैं, जो प्रायः उचित नहीं प्रतीत होती।...पश्चिम की गवेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया जा सकता है ''चिह्नित अनुवादों का होना आवश्यक है। ''

तन्त्र के आधुनिक सम्पादक-प्रकाशकों का ध्यान उक्त विचारों के प्रति अवश्य आकृष्ट होना चाहिये।

''कुलार्णव तन्त्र'' के प्रथम उल्लास के सम्बन्ध में श्री गुन्नार एण्डर्सन ने अपने उक्त पत्र लिखा है कि यह बहुत कुछ गरुड़ पुराण सारोद्धार के १६ वें स्कन्ध से मिलता जुलता है। इस तथ्य के प्रति आज तक तन्त्र के किसी भी विद्वान् का ध्यान नहीं गया। हमने इस सम्बन्ध में जब दोनों ग्रन्थों को मिलाकर देखा, तो बात सच पाई। वस्तुतः पुराणों और तन्त्रों में बहुत कुछ सादृश्य है। तुलनात्मक अध्ययन करने से बहुत से समान प्रसङ्ग मिलेंगे। ''कुलार्णव तन्त्र'' के पहिले उल्लास में 'जीव'-विषयक चर्चा है और उसी का विवेचन गरुड़ पुराण के १६ वें स्कन्ध में किया गया है। दोनों की तुलना करने से जीव-सम्बन्धी विज्ञान का अनूठा स्पष्टीकरण प्रस्तुत हो सकता है, इसमें सन्देह नहीं।

श्री एण्डर्सन ने अनेक प्रश्न उठाये हैं, जिन्हें यहाँ देना उचित प्रतीत होता है। इन प्रश्नों से यह विदित होता है कि उनका अनुसन्धान किस दृष्टिकोण से प्रभावित है। पहले पत्र के प्रश्न निम्न प्रकार हैं—

(१) शारदातिलक तन्त्र (१,३१) की राघव भट्ट की टीका में कुछ ऐसे श्लोक उद्धृत हैं, जो कुलार्णव तन्त्र (१,७) में मिलते हैं, किन्तु टीका में उन्हें ''अध्यात्म-विवेक'' नामक ग्रन्थ से लिया बताया है। यह 'अध्यात्म-विवेक' क्या है?

(२) पी० सी० बागची ने अपने कौल-ज्ञान-निर्णय और मत्स्येन्द्रनाथ मत की कुछ छोटी कृतियाँ (कलकत्ता सस्कृत सीरीज ।।।), पृ. ४२।३ में प्रायः उन्हीं श्लोकों को ''सङ्गीत-रत्नाकर'' से उद्धृत किया है। क्या यह ग्रन्थ प्राप्य है?

४ जनवरी १९७१ के अपने दूसरे पत्र में श्री गुन्नार एण्डर्सन ने अपने प्रश्नों को अधिक व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया है। यथा—

१—कुलार्णव (३,४३) में 'सङ्केत' से क्या तात्पर्य है? कोषों में दिए सामान्य अर्थ—

agreement, compact, stipulation, appointment, preconcerted sign or signal or gesture etc.—यहाँ भाव को स्पष्ट नहीं करते।

तथापि ८,१४ में अवश्य '**preconcerted sign etc.**' का भाव प्रतीत होता है, किन्तु इस सन्दर्भ में मैं इसका अनुवाद "**password**" करना चाहूँगा?

२—कुलार्णव (२,१३८) को मैं बिलकुल ही नहीं समझ पाता, विशेष कर प्रथम अर्ध-श्लोक को। मेरी पाण्डुलिपियों में से एक में इस श्लोक के द्वितीय अर्ध-श्लोक के लिये एक पाठ-भेद है—(यह पाठ-भेद पाण्डुलिपि में पार्श्वाङ्कित है—पता नहीं, संशोधन-रूप में है या टिप्पणी-रूप में)—कुलज्ञोऽपि-वित् ऊर्ध्व-वित् स्याच्चेज्जन-

स्तत्त्वार्थ-वित् तु सः ।'

३--१५,१६ में 'भूत-लिपि' क्या है ?

४–'सम्पुट' से क्या आशय है ? पूर्व-गत और अन्त-गत ?

५–'साध्य नाम' (१६,१८) क्या है ?

६–कुलार्णव (१५, ६५) में ६० 'मन्त्र-दोषों' का उल्लेख है। इनमें से कुछ को शारदातिलक तन्त्र २,६४ में स्पष्ट किया गया है। क्या आप कोई ऐसा ग्रन्थ बताएँगे, जिसमें शेष मन्त्र-दोषों को स्पष्ट किया गया हो ?

जो शारदातिलक में नहीं मिलते, उनमें से कुछ की व्याख्या तन्त्रराज में गई है किन्तु यह व्याख्या उतनी स्पष्ट-बोध-गम्य नहीं है। यथा–'गर्विता' की व्याख्या है 'साधकानभिमुक' इत्यादि।

कुलार्णव के जिन 'मन्त्र-दोषों' का शारदातिलक में उल्लेख नहीं हुआ है, वे निम्न प्रकार हैं। इनमें से कुछ के पर्यायवाची शारदातिलक में दिये हैं। उन्हें कोष्ठक में लिखा गया है —इन दोनों पाठों के बीच समानान्तरता की सम्भावना भी है--१ अलस, २ अरिक, ३ अचेतन, ४ अन्ध (नेत्र-हीन, शारदा २,६५), ५ भ्रमित, ६ भयङ्कर, ७ दुरासद, ८ ध्वस्त (प्रध्वस्त, शारदा २,६६), ९ गर्वित, १० जड़, ११ क्रूर (अति-क्रूर, शारदा २,६९), १२ क्षुधित (क्षुधातुर, शारदा २,६८), १३ किङ्कर (केकर, शा २,६८), १४ खण्डित, १५ क्रुद्ध (अति-क्रुद्ध, शा २,६९), १६ कूटाक्षर (कूट, शा २,६७), १७ लज्जित, १८ मोहित, १९ मत्त, २० निर्वीर्य (हृत-वीर्य, शा २,६६), २१ निकृन्तन, २२ निन्दित, २३ निर्जित, २४ निःसत्व (सत्व-हीन, शा २,६८), २५ नीच, २६ निर्जीव (निर्बीज, शा २,६७), २७ फल-हीन, २८ पल (चपल?), २९ रंक्लिष्ट, ३० रिपु, ३१ सुप्त (सुषुप्त, शा २,६६), ३२ स्तब्ध, ३३ शठ, ३४ उदासीन, ३५ बद्ध, ३६ मुग्ध, ३७ बाल (बालक, शा २,६६), ३८ युवक (युवा-शारदा २,६७)

उक्त पत्र के तुरन्त बाद ही श्री एण्डर्सन का तीसरा पत्र हमें मिला, जो ८ जनवरी १९७१ का लिखा था। इसमें भी प्रश्नों की तालिका है, जिसका हिन्दी रूपान्तर निम्न प्रकार है —

१ एवेलॉन/वुडरफ की कृतियों के सम्बन्ध में आपका और आज के अन्य शाक्तों का क्या मत है ? क्या आप उन्हें तन्त्र के सत्यों की निर्दशिका मानते हैं ?

२ कुलार्णव, तांत्रिक टेक्स्ट्स (भाग ५) की भूमिका में एवेलॉन लिखते हैं कि "प्रस्तुत ग्रन्थ का एक अंग्रेजी अनुवाद हमारे सामने है…।" इस अनुवाद का क्या हुआ ? जहाँ तक मुझे पता चला है, इसका प्रकाशन अभी तक नहीं हुआ है।

३ कुलार्णव (१२,९) में 'पादुका-मन्त्र' क्या है ? 'ॐ श्री पादुकायै नम' ?

कहीं-कहीं यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि 'मन्त्र' से आशय है या गुरु की चप्पल या खड़ाऊँ से। यथा–१२,१० में।

१३,८१ और १६,३५ में भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है।

४ काली-विलास-तन्त्र (तांत्रिक टेक्स्ट्स, भाग VI पृष्ठ ७) के नवें अध्याय के प्राक्कथन में एवेलॉन कहते हैं कि—

" सङ्केत (अर्थात् देवता)…"

मातृका-भेद-तन्त्र ११,४४ (कलकत्ता संस्कृत सीरीज नं. VII कलकत्ता १९३३) में इसका अर्थ "Technicality" जैसा प्रतीत होता है (देखिए, प्राक्कथन पृष्ठ २१)

एवेलॉन के Great Liberation में महानिर्वाण तन्त्र १३,५३ के 'संकेत-विधिना' का अनुवाद है--

"according to these rules."

शारदातिलक तन्त्र १,१ और २,,१२४ (तांत्रिक-टेक्स्ट्स, भाग XVI) में भी "संकेत" शब्द का प्रयोग हुआ है किन्तु दुर्भाग्यवश मैं उन अनुच्छेदों को समझ नहीं पाता।

तन्त्रराज तन्त्र ३,२ (तांत्रिक टेक्स्ट्स, भाग VIII) की टीका में "संकेतैः" की व्याख्या की गई है—"सामयिकैर्नामभिः।"

कुलार्णव (गणेश एण्ड कं०, मद्रास १९६५) के अपने आंशिक और प्रायः शब्दान्तर द्वारा अर्थ-प्रकाशक अंग्रेजी अनुवाद में श्री एम० पी० पण्डित ने ३,४३ के "संकेत" का अर्थ "Principle" किया है। अंग्रेजी का यह शब्द सामान्यतः "तत्त्व" के लिये व्यवहृत होता है। प्रतीत होता है कि उक्त संदर्भ में २४,३६ इत्यादि अङ्कों का उल्लेख होने के कारण श्री पण्डित ने इस श्लोक का तात्पर्य सांख्य के २४ तत्वों से सम्बंधित माना है। मेरी समझ में नहीं आता कि "संकेत" का ऐसा अर्थ किस प्रकार हो सकता है, किन्तु फिर २४ इत्यादि अङ्कों से क्या आशय है ?

५ कुलार्णव ३, ४५ में 'चैतानि' शब्द क्या है ? यदि इसे 'च एतानि' पढ़ना है, तो यह किनके प्रसङ्ग में है ?

इस श्लोक के द्वितीय अर्धश्लोक (जो शिव से तादात्म्य स्थापित कर लेता है, उसे किसी कर्म की आवश्यकता नहीं रह जाती) से यह अनुमान किया जा सकता है कि पूर्व श्लोकों में आए "संकेत" शब्द का सम्बन्ध कर्मकाण्ड से है। क्या "संकेत" का अर्थ "पूजा-नियमावली"—Set of ritual rules हो सकता है ? कदाचित् नहीं, किन्तु चक्र-संकेत, पूजा-संकेत, गुरु-संकेत जैसे समासों का अर्थ मैंने यही समझा है कि 'चक्र इत्यादि से सम्बन्धित पारिभाषिक या कर्मकाण्ड के नियम' या 'चक्र इत्यादि के सम्बन्ध में प्रयोग किए जानेवाले पारम्परिक नाम या क्रियायें।" निश्चय ही यह बोध-गम्य है कि निम्नतर आम्नायों में पूजा-परक क्रियायें हैं किन्तु सर्वोच्च आम्नाय में, जब सत्य का साक्षात्कार हो जाता है और कुछ करने को शेष नहीं रहता, तब किसी क्रिया की आवश्यकता नहीं रहती। किन्तु "संकेत" और "चैतानि" शब्दों का अर्थ निश्चित न कर पाने से मैं इन श्लोकों को समझने में अपने को सर्वथा असमर्थ पाता हूँ।

६ श्री पण्डित के अनुसार "श्री प्रासाद-परा मन्त्र" है—हंस।

किन्तु A. Padoux, Recherches Sur la Symbolique et l'energie de la parol dans certaines texts tantriques, Paris 1963, P. 304, n. I में यह "सौः" बीज-मन्त्र बताया गया है।

आपके हिन्दी-अनुवाद के अनुसार "परा-प्रासाद-मन्त्र" "स्हौं" बीज है और प्रासाद-परा-मन्त्र है बीज—ह्सौं।

मेरा अनुमान है कि कुलार्णव ७,१९ में मन्त्राक्षरों को गिनने से यह निश्चय किया जा सकता है कि "हंस" क्या तनिक भी सम्भव है। आपका अर्थ ही ठीक है, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है, किन्तु क्या आप कुछ शास्त्रीय प्रमाण दे सकेंगे ?

७ कुलार्णव २,११२ (पेयं मद्यं) के सम्बन्ध में मैं केवल यही कह सकता हूँ कि द्वितीय अर्द्धश्लोक मेरी समझ में बिलकुल ही नहीं आता।

८ "कुल-दीप" क्या है ? ७, ३३ में वर्णित दीपक ?

७,३५ (अन्तस्तेजो बहिस्तेज) से भी मैं उलझन में हूँ। आपने हिन्दी में इसका अनुवाद किया है किन्तु कोष से हिन्दी समझने का प्रयास बेकार है। इससे मैं अब भी शङ्का में हूँ। मैंने इसका तात्पर्य यह समझा है कि "(दीपक के) भौतिक प्रकाश से (आत्मा के) आन्तरिक

प्रकाश का तादात्म्य स्थापित करना··· ।" अन्यथा मैं इसके सिर-पैर को नहीं समझ सकता ।

नित्या षोडशिकार्णव (आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, नं० ५६) की अपनी व्याख्या में भास्कर राय ने इस श्लोक की टीका की है ।

९ कुलार्णव के प्रथम उल्लास और गरुड़ पुराण सारोद्धार (The Sacred Books of the Hindus, Vol IX, Allahabad 1911) के १६ वें अध्याय के पारस्परिक साम्य के सम्बन्ध में आपका क्या दृष्टिकोण है ?

१० "अष्टक" और "मिथुन," जिनका उल्लेख १०,८४ में हुआ है, क्या हैं ?

११ "उल्लास" (अध्याय ८) क्या हैं ? तारा-भक्ति-सुधार्णव के प्राक्कथन के पृष्ठ १४ (तांत्रिक टेक्स्ट्स, भाग XXI) पर इन्हें "intoxicating moods" अर्थात् नशे की दशाएँ बताया गया है। ऐसी दशा में १०,८८ के "प्रौढ़ान्तोल्लास-पर्यन्तम्···" का या १०,४४ के "प्रौढ़ान्तोल्लास-सहिताम्........ का क्या यह अर्थ है कि इस पूजा में भाग लेनेवालों को नशे की एक निश्चित सीमा तक "मद्य"–पान करना है ?

१२ "अष्टाङ्ग-पूजा" (३,११५) क्या है ?

१३ कुलार्णव के एक श्लोक (२,३८) में कहा गया है कि यदि कोई किसी ऐसे शिष्य को "कुलाचार" का रहस्य बताता है, जो पहले से "समयाचार" से परिचित नहीं है, तो वे गुरु-शिष्य दोनों नर्क को जाते हैं ।"

यह "समयाचार" क्या केवल एक सामान्य पारम्परिक धार्मिक व्यवहार है अथवा यह कुछ उस प्रकार की बात है, जो एवेलॉन के The Serpent Power, पृष्ठ २४६ में बताई गई है ? गायकवाड़ की ओरियण्टल सीरीज के शक्ति-सङ्गम तंत्र, भाग I का पृष्ठ VII भी द्रष्टव्य है ।

१४ "तत्त्व-त्रय" (७,६६) क्या हैं ? मत्स्य, मांस और मुद्रा ? और क्या पूर्वापर श्लोकों के "स-द्वितीय, द्वितीयेन, त्रयेण" इत्यादि का क्रमशः यह आशय है कि "मांस के सहित, अन्न के सहित" ? (तारा-भक्ति-सुधार्णव पृष्ठ १३)

१५ निस्संदेह ७;७९ में "तत्त्व-त्रय" का आशय आत्म-तत्त्व, विद्या-तत्त्व और शिव-तत्त्व से है। कदाचित् यही अभिप्राय उपर्युक्त संदर्भों का भी है?

Great Liberation के पृष्ठ १५० पर एवेलॉन ने लिखा है कि कुलार्णव (७,७२) में कथित पूजा की व्याख्या तर्कालङ्कार द्वारा महानिर्वाण तंत्र की उनकी टीका में की गई है। यह टीका, एवेलॉन के प्राक्कथन, पृष्ठ IX के अनुसार श्री गोपाल भक्त, कलकत्ता द्वारा १८८८ में प्रकाशित कुलार्णव तंत्र में तथा बाद में पण्डित ज्ञानेन्द्रनाथ तन्त्ररत्न द्वारा प्रकाशित एक अन्य संस्करण में छापी गई है। क्या इनमें से कोई संस्करण भारत में अब भी उपलब्ध है ?

१६ कुलार्णव में प्रायः "मूलमन्त्र" का उल्लेख मिलता है । यह क्या है ? क्या "स्ह्ौम् ह्सौम् ?"

उक्त प्रश्नावलियों से स्पष्ट है कि हमारे बिदेशी बन्धु कितनी तन्मयता के साथ तन्त्र के अनुसन्धान-कार्य में लगे हुये हैं ! कितने परिश्रम के साथ और कितनी सत्यता के साथ उन्होंने शोध की है ! क्या यह भारतीयों के लिये हर्ष का विषय नहीं है कि उन्होंने अपनी जिस गौरवमयी तन्त्र-विद्या की नितान्त उपेक्षा कर रखी है, उसे विदेशी विश्व-विद्यालयों में उसके उपयुक्त महत्व प्रदान किया जा रहा है ! यह सच है कि इधर हमारे देश के भी कुछ विश्व-विद्यालयों का ध्यान "तन्त्र" के प्रति आकृष्ट हुआ है, किन्तु विदेशियों के व्यवस्थित, साधन-सम्पन्न अनुसन्धान-कार्य की तुलना में यहाँ का कार्य वास्तव में अभी तक हास्यास्पद ही रहा है ।

इस लेख-माला से यदि यहाँ के तथा-कथित आधुनिक तान्त्रिक विद्वानों का मिथ्या दम्भ तनिक भी दूर हो सका, तो सचमुच ही यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जायगी।

"कौल-कल्पतरु" खण्डी के पाठकों ने यदि ध्यान से कुलार्णव तन्त्र सम्बन्धो उक्त सभी प्रश्नों को पढ़ा होगा, तो उन्होंने अनुभव किया होगा कि प्रश्नकर्त्ता श्री गुन्नार एण्ड-सँन ने अनेक प्रश्नों के सही समाधान स्वयं ही प्रस्तुत कर दिये हैं। यह बात दूसरी है कि कौल-साधना का व्यावहारिक ज्ञान न होने के कारण उन्हें उन समाधानों की यथार्थता प विश्वास नहीं हो सका है। जिन प्रश्नों का समाधान होना शेष है, उन्हें हम अगले अङ्क में प्रस्तुत करेंगे।

विज्ञ पाठकों से हमारा विनम्र निवेदन है कि वे भ इन प्रश्नों का उत्तर लिखकर हमें भेजने का प्रयास करें। जिनके उत्तर सन्तोषजनक होंगे, उनके शुभ नाम "कौल-कल्पतरु" खण्डी में सधन्यवाद प्रकाशित किये जायँगे।

[क्रमशः]

श्री काली वन्दना

मृत्युरूपा मा आमार आय।
करालि! कराल तोर नाम, मृत्यु तोर निःश्वासे श्वासे;
तोर भीम चरण निक्षेप प्रतिपदे ब्रह्माण्ड विनाशे।
कालि! तुइ प्रलयरूपिणी, आय मागो, आय मोर पाशे।
साहसे ये दुःख दैन्य चाय, मृत्युरे ये बाँधे बाहु पाशे!
काल-नृत्य करे उपभोग, मृत्यु-रूपा तारि काछे आसे।

स्वामी विवेकानन्द रचित यह काली-वन्दना अपने ढंग की एक उत्कृष्ट रचना है।

कराल की उपासना! मृत्यु की अर्चना! और सब मिथ्या है। समस्त संघर्ष व्यर्थ है। यही अग्रिम पाठ है किन्तु यह कायर का मृत्यु-प्रेम नहीं है, न निर्बलों का प्रेम है, और न यह आत्म-घात है। यह तो उस वीर द्वारा किया गया स्वागत है, जिसने प्रत्येक वस्तु को गहराई से जान लिया है और जो यह 'जानता है' कि कोई अन्य मार्ग नहीं है।

जगदम्बा के जिस प्रलयङ्कर रूप का इसमें 'काली'— नाम से चित्रण हुआ है, उसी का श्री मद्-भगवद् गीता में 'काल' नाम से वर्णन हुआ है। यथा—

कालोऽस्मि लोक-क्षयकृत्प्रवृद्धो।
लोकान् समाहर्त्तुमिह प्रवृत्तः॥

गीता, ११-३२।

अर्थात् मैं ही लोक-क्षयकारी काल हूँ। लोकों का संहार करने में यहां प्रवृत्त हूँ।

'श्री पीताम्बरा-पीठ' दतिया (मध्य प्रदेश) में
काञ्ची कामकोटि-पीठ के जगद्गुरु श्री १००८ श्री शङ्कराचार्य जी महाराज

'श्री पीताम्बरा पीठ', दतिया के प्रवेश-द्वार पर कामकोटि-पीठ के जगद्गुरु श्री १००८ श्री शङ्कराचार्य श्री स्वामी जयेन्द्र सरस्वती जी महाराज का पूर्ण कुम्भ से स्वागत। स्वागत-कर्त्ता हैं परम पूज्य 'राष्ट्र-गुरु' श्री १००८ श्री स्वामी जी महाराज के अनन्य भक्त मेजर श्री बी० एन० ठुस्सू।

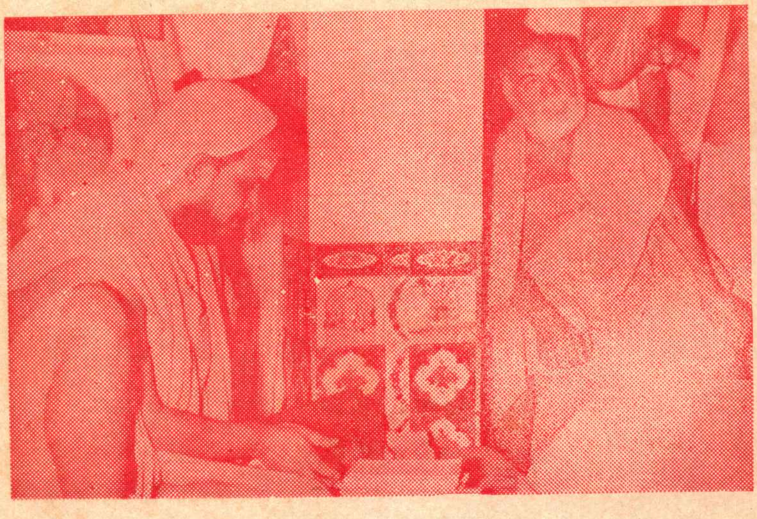

परम पूज्य 'राष्ट्रगुरु' श्री १००८ श्री स्वामी जी महाराज से वार्ता करते हुए कामकोटि-पीठ के जगद्गुरु श्री १००८ श्री शङ्कराचार्य श्री स्वामी जयेन्द्र सरस्वती जी महाराज।

धार्मिक जगत की हलचल

१— 'श्री पीताम्बरा पीठ' दतिया में श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य

काञ्ची कामकोटि पीठ के जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य स्वामी जयेन्द्र सरस्वती पिछले दिनों दतिया के 'श्री पीताम्बरा-पीठ' में पधारे और 'राष्ट्रगुरु' परम पूज्य श्री १००८ स्वामी जी महाराज से आपका साक्षात्कार हुआ। दो विभूतियों का यह अभूतपूर्व मिलन वस्तुतः सारे हिन्दू-राष्ट्र के लिए कल्याणकारी सिद्ध होगा, इसमें सन्देह नहीं।

२—'तुलसी-मानस-प्रकाशन' का कृतित्व

हिन्दू धर्माचार्यों पर प्रायः यह आरोप किया जाता है कि वे ईसाई मिशनरियों के समान सामाजिक सेवा-कार्य में रुचि नहीं लेते, किन्तु इधर ऐसे अनेक उदाहरण सामने आये हैं, जिनसे उक्त आरोप सर्वथा निराधार प्रमाणित होता है। बात यह है कि हिन्दुओं की परम्परा चुपचाप निःस्पृह भाव से सेवा करने की रही है। उन्होंने 'यश' तक को शूकरी-विष्ठा जैसा हेय माना है! अतः हिन्दू 'मिशनरियों' को कोई कैसे पहचान सकता है? गहराई से विचार करें, तो ईसाई मिशनरियों ने हिन्दू धर्म के प्राचीन प्रचारकों का ही अनुकरण किया है, अस्तु।

पिछले अङ्क में हम मथुरा के गायत्री-तपोभूमि के कर्तृत्व पर प्रकाश डाल चुके हैं। अब 'तुलसी-मानस-प्रकाशन' के सम्बन्ध में देखिये। नाम से पता चलता है कि यह एक प्रकाशन-संस्था है, जो तुलसीदास और राम-चरित-मानस से सम्बन्धित साहित्य का प्रचार-प्रसार करती होगी। किन्तु आपको जानकर आश्चर्य होगा कि इसके ३५ प्रकाशनों में से एक का भी सम्बन्ध गोस्वामी जी या उनके मानस से नहीं है! कुछ प्रकाशनों के नाम ये हैं—ससार का सार, विज्ञान से ज्ञान, आध्यात्मिक पिक्टोरियल (हिन्दी वा अंग्रेजी), मुमुक्षु (उपन्यास), मन की शांति (पद्य), आराम सुख शान्ति और आनन्द, अविरोध निरोध और स्व-बोध, घर-घर की समस्या, आँखों देखी! इन नामों से क्या कहीं गोसाईंपन की झलक भी मिलती है?

उक्त संस्था के सञ्चालक हैं श्री हरिकिशनदास अग्रवाल और कदाचित् आपके गुरु थे स्वनाम-धन्य ब्रह्मलीन वेदान्त-केसरी श्री १०८ निर्मल स्वामी जी महाराज। मानना पड़ेगा कि योग्य गुरु को योग्य शिष्य प्राप्त हुआ, जो गुरुदेव के तिरोभाव के बाद और भी प्रखर रूप से उनके उपदिष्ट मार्ग पर चलते हुये समाज के बौद्धिक और भौतिक उत्कर्ष के महत्कार्य में जी-जान से जुटा दृष्टिगत होता है।

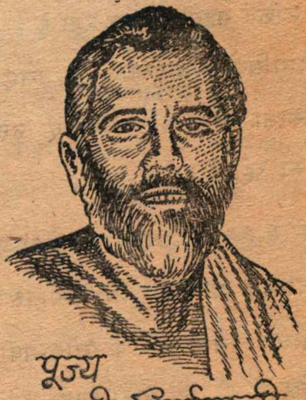

पूज्य
स्वामी निर्मलजी

श्री अग्रवाल के वास्तविक कर्तृत्व का ज्ञान होता है उनके द्वारा प्रकाशित 'मनन' नामक मासिक पत्रिका से।

उसके नियमित पाठकों को मालूम है कि विशुद्ध आध्यात्मिक ज्ञान को वैज्ञानिक शैली में प्रचारित करने में वे कितने कुशल हैं। निस्सन्देह, बड़े ही सुरुचिपूर्ण और आकर्षक ढंग से उसका प्रकाशन पिछले पन्द्रह वर्षों से नियमित रूप से हो रहा है। पत्रिका में छपे समाचारों से ही ज्ञात होता है कि इस सब प्रकाशन-कार्य के पीछे एक प्राणवन्त समाज-सेवा की योजना भी है।

पिछले दिनों "साधना शिविर" नाम का लगभग ३०० पृष्ठों का एक ग्रन्थ हमें मिला, जिसके पढ़ने से अनेक नई बातें मालूम हुईं। यथा—

१ लोनावाला (बम्बई) में 'तुलसी-साधना-कुटीर' है।

२ उक्त 'कुटीर' में पिछले नौ वर्षों से 'ज्ञान-साधना-शिविर' का प्रति वर्ष आयोजन हो रहा है।

३ 'शिविर' का आयोजन 'लाला तुलसीराम अग्रवाल चैरिटेबुल ट्रस्ट' द्वारा किया जाता है।

४ उक्त महत् कार्य को अनेक संन्यासी महात्माओं का सक्रिय सहयोग प्राप्त रहा है।

५ आदिवासियों के समुत्थान के लिए उन्हें शिक्षा, चिकित्सा आदि की सुविधाएँ उक्त 'ट्रस्ट' द्वारा दी जा रही हैं।

इन बातों से यह भी अनुमान होता है कि 'तुलसी मानस' से कदाचित् गोस्वामी जी के मानस का आशय न होकर लाला तुलसीराम के लोक-सेवी मानस का आशय है। कुछ भी हो, यह सारा कार्य बड़े महत्व का है और इससे समाज का कितना हित-साधन हुआ है और हो रहा है, इसका अनुमान विचार-शील लोग सहज ही कर सकते हैं।

'साधना-शिविर' नामक उक्त ग्रन्थ में नवें 'ज्ञान-साधना-शिविर' में महात्माओं द्वारा किये गये प्रवचनों के सारांश सङ्कलित हैं। सर्वश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती, शरणानन्द जी, योगेश्वरानन्द जी, काशिकानन्द जी, गगनगढ़ जी और ब्रह्मानन्द जी जैसे महात्माओं के साथ-साथ ब्रह्मचारी श्री विश्वनाथ जी, श्री नित्यानन्द जी और श्री हरिविशनदास जी अग्रवाल के भी प्रवचनों को इसमें प्रकाशित किया गया है।

गोरखपुरी गीता प्रेस ने भी हिन्दू-धर्म का गौरव बढ़ाने में स्तुत्य कार्य किया है और उसके सञ्चालक श्री हनुमानप्रसाद जी पोद्दार के देहान्त के बाद संदेह होता था कि उनका स्थान अब कौन लेगा किन्तु श्री अग्रवाल के कृतित्व को देखते हुये प्रतीत होता है कि जो कार्य श्री पोद्दार जी भी नहीं कर सके, वह इनके द्वारा सम्पन्न होनेवाला है। इस सम्बन्ध में हम यहाँ श्री अग्रवाल के प्रवचन का एक महत्वपूर्ण अंश उद्धृत करते हैं—

'..ईसाई मिशनरी अपना धर्म-प्रचार बड़े ही सङ्गठित तरीके से, आर्गेनाइज्ड ढंग से करती है। वे गरीब आदिवासियों को घर बनाने के लिए सीमेंट की बोरिएँ की बोरिएँ मुफ्त बांट देती हैं और अनाज वैगन के वैगन मँगाकर बाँट देते हैं। लोनावला में एक बार दो व्यक्ति आये... इजाजत ली.. क्रिश्चियन धर्म की...व्याख्या करते हुये कहा कि 'ईसा मसीह की भविष्य-वाणी के अनुसार एक दिन यह सारा संसार खत्म हो जायगा...सिर्फ ईसा को माननेवाले ही बच सकेंगे।'.. इस तरह की डरावनी बातें करके वे लोगों को बतला देते हैं कि... तुम्हारे रक्षक ...बस जीसस क्राइस्ट ही हैं।...इस प्रकार क्रिश्चियन धर्म बड़ा आर्गेनाइज्ड धर्म है और हमारा धर्म डिस-आर्गेनाइज्ड धर्म है।...'

इसमें सन्देह नही कि 'तुलसी-मानस-प्रकाशन' और 'ज्ञान-साधना-शिविर' के कार्य बड़े महत्वपूर्ण हैं। क्या ही अच्छा होता कि हिन्दू-धर्म की इन संस्थाओं में परस्पर सहयोग की भावना होती। तब हिन्दूधर्म भी सहज ही एक 'आर्गेनाइज्ड' धर्म बन जाता।

सम्पादकीय

१—गुरु पूर्णिमा

आषाढ़ की पूर्णिमा को आध्यात्मिक जगत् में "गुरु-पूर्णिमा" के रूप में मानने की परम्परा दीर्घ काल से चली आ रही है। इस अनूठे पर्व में गुरु-भक्त शिष्य अपने अपने गुरुओं के समीप जाकर उनके श्री चरणों में अपने भाव-पुष्प अर्पित करते हैं और उनके आशीर्वाद प्राप्त कर अपने को कृतार्थ मानते हैं। बहुत से ऐसे भी शिष्य होते हैं, जो परिस्थितियोंवश अपने गुरुदेव के पास नहीं पहुंच पाते, अथवा जिनके गुरुदेव अपने भौतिक देह का त्याग कर परम धाम को पहुंच चुके हैं। ऐसे शिष्य अपने घर के पूजा-कक्ष में अथवा घर के बाहर किसी एकान्त पवित्र स्थल पर पहुंच कर ध्यानस्थ हो श्री गुरु-पादुका को अपनी श्रद्धाञ्जलियां अर्पित करते हैं।

गुरु भी अनेक प्रकार के दृष्टिगत होते हैं। कोई संन्यासी-साधु वेषधारी हैं, तो कोई गृहस्थ हैं। कोई भव्य विशाल आश्रम या भवन में बड़े आडम्बर के साथ रहते हैं, तो कोई बड़ी सादगी के साथ गुप्त रूप से जीवन बिताते हैं। किसी के द्वार पर शिष्यों की भीड़ दिखाई देती है, तो किसी के समीप दो ही तीन शिष्य बैठे दृष्टिगत होते हैं। इन सभी गुरुओं के प्रति प्रायः शिष्यों की एक ही भावना रहती है—

> गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
> गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

इस भावना का स्पष्ट अर्थ यही है कि गुरुदेव कैसे भी हों, किसी भी रूप या वेष-वाले हों, शिष्य के लिये वस्तुतः वे परब्रह्म के प्रतीक हैं।

गुरु-पूजन के रूप में शिष्य को चेतन परब्रह्म के पूजन का अवसर मिलता है। वर्ष भर तो शिष्य प्रतिमा, चित्र, यन्त्र, मूर्ति आदि जड़ विग्रहों के माध्यम से परब्रह्म के साक्षात्कार का अभ्यास करता है, किन्तु आषाढ़ की पूर्णिमा को केवल एक बार उसे अपने गुरुदेव के चेतन विग्रह के द्वारा विशिष्ट अनुभूति प्राप्त करने का सौभाग्य मिलता है। भावुक और श्रद्धालु शिष्य जब आन्तरिक निष्ठा के फलस्वरूप इन दोनों प्रकार के विग्रहों के तादात्म्य को अनुभव कर लेते हैं, तब "गुरुतत्व" का रहस्य वे सहज ही हृदङ्गम कर लेते हैं। तब उन्हें यह समझाना नहीं पड़ता, कि "गुरुरेकः।" विविध प्रकार के गुरुदेवों में उन्हें अपने ही गुरुदेव के सहज ही दर्शन प्राप्त होने लगते हैं। ठीक उसी प्रकार, जैसे एक सच्चे भक्त के लिये देवता की मूर्ति चाहे छोटी हो या बड़ी; प्रसिद्ध हो, या अज्ञात; भीड़ लगती हो, या सूने एकान्त में पड़ी हो—उन्हें उस मूर्ति में अपने उसी इष्ट-देव के दर्शनों की अनुभूति होती है, जिसके प्रति उसका मन अहर्निश जप-परायण रहा है।

हमारी यह हार्दिक कामना है कि श्री जगदम्बा की दया से गुरु-पूर्णिमा के उक्त अनूठे महत्व को सभी आस्तिक बन्धु हृदय-ङ्गम करें और अपने अभीष्ट साधना-मार्ग पर अग्रसर होने में सफलता प्राप्त करें।

२—तन्त्र का कलात्मक स्वरूप

तन्त्रशास्त्र में भारत के आध्यात्मिक विज्ञान के रहस्य भरे पड़े हैं। रहस्य की बातों को उनमें विविध प्रकार के

संकेतों द्वारा स्पष्ट किया गया है। अनेक प्रकार के कूट शब्दों का ही उसमें प्रयोग नहीं हुआ है, अपितु रेखाचित्रों तथा अन्य कलात्मक चित्रों का भी सहारा लिया गया है। इस तथ्य की ओर कला-प्रेमी महानुभावों का ध्यान बहुत पहले से रहा है। पुरी के जगन्नाथ मन्दिर और अजन्ता-एल्लोरा की प्राचीन गुफाओं के भित्ति-चित्र अपने तांत्रिक स्वरूपों के लिये प्रसिद्ध ही हैं। इनके अतिरिक्त न मालूम कितने ऐसे स्थल अब भी देश में पड़े हैं, जहाँ लोग अभी तक पहुंच नहीं पाये हैं।

हर्ष का विषय है कि इधर नए सिरे से कला-प्रेमियों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। योरप के पश्चिम जर्मनी में भारतीय तन्त्रकला की प्रदर्शनी पिछले दिनों आयोजित की गई। कदाचित् शीघ्र ही भारत की राजधानी नई दिल्ली में भी तन्त्रकला का एक संग्रहालय स्थापित हो जायगा। इस सम्बन्ध में लगभग बीस लाख रुपये एकत्र किये जा रहे हैं। यह संग्रहालय तन्त्र और योग के सम्बन्ध पर अनुसन्धान करने का केन्द्र भी बनेगा।

क्या ही अच्छा होता कि भारतीय धनी-मानी लोग विदेशियों से शिक्षा लेते और भारत की तन्त्रविद्या के पुनरुद्धार के महत्कार्य में योगदान कर पुण्य और यश के भागी बनते!

३—शाक्त-धर्म की प्राचीनता

औरङ्गाबाद के पुरातत्व-विद् श्री एस० आर० राव के नवीनतम मत के अनुसार भारत की प्रागैतिहासिक सिन्धु सभ्यता का स्वरूप सार्वदेशिक था और उसके जनक सनातन धर्म के कर्मकाण्ड की लोक-प्रसिद्ध परम्पराओं का पालन करते थे। उदाहरण के लिए वे अग्नि की पूजा करते थे और पशुओं की बलि दिया करते थे योगाभ्यास में भी उनकी रुचि थी। उनकी भाषा वैदिक भाषा के ही समान थी। इन तथ्यों से सनातन धर्म के एक विशिष्ट अङ्ग शाक्त-धर्म की साधना-पद्धति की अति प्राचीनता की पुष्टि एक बार फिर आधुनिक दृष्टिकोण से हुई है, यह जानकर शाक्त-समाज को निश्चय ही सन्तोष होगा।

श्री राव का उक्त मत गुजरात के एक बन्दरगाही नगर लोथाल के ताजे पुरातत्वीय सर्वेक्षण पर आधारित है। इस सर्वेक्षण से अंग्रेज तथा विदेशी विद्वानों के इस भ्रामक मत का भी खण्डन हुआ है कि आर्यों के आक्रमण के फलस्वरूप सिन्धु सभ्यता का विनाश हुआ। लोथाल के सर्वेक्षण से प्रमाणित हुआ है कि इस सभ्यता का विनाश बाढ़ जैसी प्राकृतिक विपत्तियों के कारण हुआ। हमारा विश्वास है कि एक दिन सर्वसम्मति से यह तथ्य स्वीकार किया जायगा कि आर्यों का मूल स्थान वस्तुतः भारत ही रहा है और यहीं से वे अन्यत्र गए और विविध देशों में अपनी सभ्यता का विकास किया। साथ ही शाक्त धर्म की प्राचीनता को हृदयङ्गम कर यह तथ्य भी सर्व-मान्य होगा कि सभी धर्मों के मूल में शाक्तों के ही सिद्धान्त आधार-भूत रूप से विद्यमान हैं।

४—हिन्दूधर्म का संरक्षक कौन ?

उस दिन साक्षात् शिव-स्वरूप एक दिव्य महात्मा के दर्शनों का सौभाग्य मिला। अपने अमृत-समान प्रवचनों के बीच में उन्होंने एक ऐसी बात कही, जिसे सुनकर कोई भी धर्म-प्रेमी मर्माहत हो उठेगा। उन्होंने कहा कि—

“ ····धर्म की रक्षा के लिए इस देश के वीतराग महात्माओं ने सदा योग-दान किया है, किन्तु उनका यह महत्कार्य सदैव अपने को पीछे रखकर ही सम्पन्न हुआ है। उदाहरण के लिये समर्थ श्री रामदास को शिवाजी जैसे वीर पुरुष मिले और उन्होंने उनमें वह शक्ति भर दी कि मुगल साम्राज्य की जड़ों को उन्होंने उखाड़ कर रख दिया। इसी प्रकार परमहंस श्री रामकृष्ण जी को विवेकानन्द जैसा व्यक्तित्व प्राप्त हुआ और उनके माध्यम से उन्होंने हिन्दूधर्म की विजय पताका अमेरिका जैसे सर्वोन्नत देश में फहरा दी। ····आज हिन्दू-धर्म पुनः बड़े कठिन समय का सामना कर रहा है, किन्तु वैसा कोई देश-भक्त पुरुष दिखाई नहीं देता, जिसमें शक्तिपात कर धर्म के संरक्षण का कार्य कराया जाय।······”

बात सोलहो आने सच है। आज महात्माओं के दर्शनार्थ देश-भक्ति या धर्म-संरक्षण का सङ्कल्प लेकर भला कौन जाता है? सभी क्षुद्र स्वार्थ-वश ही जाते हैं। वास्तव में यह एक बहुत ही लज्जास्पद स्थिति है। श्री जगदम्बा ही इससे देश का उद्धार कर सकती हैं।

'कौल-कल्पतरु' चण्डी

वर्ष ३२] आश्विन-मार्गशीर्ष शुक्लाष्टमी २०३० वि० [संख्या ७-९

अनुक्रमणिका

१. उद्बोधन : 'कुल-विद्या-वारिधि' पं० नर्मदेश्वर उपाध्याय, एम० ए०, एल-एल० बी० ८३
२. अमेरिका में विश्व-तन्त्र-संघ : 'कौल-कल्पतरु' स्व० शुक्ल जी ८४
३. यन्त्र-विज्ञान : श्री ऋतशील शर्मा, बी० एस-सी० ८६
४. मन्त्र-विज्ञान : श्री ऋतशील शर्मा, बी० एस-सी० ८९
५. मन्त्र-योग : श्री कालीचरण पन्त (२००२) ९४
६. शङ्कर-श्रुति-माग : श्री कालिकानन्द (आषाढ़ १९९९) ९७
७. विद्या-रहस्य और साधना : पन्त श्री कालिकानन्द (मार्गशीर्ष १९९९) १००
८. नवरात्र : श्री कालीचरण पन्त (भाद्रपद २००१) १०३
९. प्रश्नोत्तर : परम पूज्य 'राष्ट्रगुरु' श्री १००८ श्री स्वामी जी महाराज १०४
१०. संस्मरण : पण्डित सुमित्रानन्दन पन्त १०५
११. श्री नारद द्वारा नवरात्र-व्रत का उपदेश १०६
१२. Shakti-Upasana-Shri M.P. Pandit १०७
१३. श्रीमद्-देवीभागवत में शारदीय नवरात्र : श्री पुण्यशील शर्मा, बी० ए० १०८
१४. तन्त्र में अनुसन्धान : श्री गुन्नार एण्डर्सन की जिज्ञासाओं का समाधान ११२
१५. काली की नित्याएँ (मन्त्र एवं ध्यान)—परम पूज्य "राष्ट्र-गुरु" श्री १००८ श्री स्वामी जी महाराज ११६
१६. धार्मिक जगत् की हलचल [१ श्री श्री सुन्दरी महालक्ष्मी देवी दुर्गा यज्ञ, २ जर्मनी में तान्त्रिक "कला" का प्रदर्शन, ३ शाक्त-साधना-परामनोविज्ञान का प्रेरणा-स्रोत, ४ नव चण्डी अम्बा-यज्ञ] १२०
१७. श्रद्धाञ्जलि : पण्डित नवीनचन्द्र जोशी १२१
१८. ज्योतिष-विधान : पण्डित रामकुमार मिश्र, वैदिक आचार्य १२२
१९. श्रद्धाञ्जलि-'कुलभूषण' श्री रमादत्त शुक्ल, एम० ए० १२४
२०. सम्पादकीय [१ 'श्री पीताम्बरा पीठ' में जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य, २ 'चण्डी' का त्रैमासिक प्रकाशन, ३ स्वर्गीय पन्त जी को श्रद्धाञ्जलि, ४ स्व० पन्त जी का कौल श्राद्ध] १२७

विशेष आकर्षण

वृहत् तन्त्रसार का हिन्दी रूपान्तर 'हिन्दी-तन्त्रसार'

भारत में प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद समय-समय पर ऐसी विभूतियाँ आविर्भूत होती रही हैं, जिन्होंने अपने व्यक्तिगत भौतिक उत्कर्ष की उपेक्षा करते हुये निःस्पृह भाव से तन्त्र-साहित्य के उद्धार के महत् कार्य में अपना सारा जीवन उत्सर्ग कर दिया। ऐसी ही एक विभूति थे 'कौल-कल्पतरु' स्वर्गीय पं० देवीदत्त शुक्ल (भूतपूर्व सम्पादक 'सरस्वती') जिन्होने हिन्दी भाषा में तन्त्र-साहित्य का सर्वथा अभाव देखकर उसकी पूर्ति करने का बोड़ा आज से लगभग चालीस वर्षों पूर्व उठाया था। उन्हीं के पुरुषार्थ का एक उदाहरण प्रसिद्ध 'वृहत् तन्त्रसार' का हिन्दी-रूपान्तर 'हिन्दी तन्त्रसार' है। तान्त्रिक विषयों के सम्बन्ध में यह संग्रह-ग्रन्थ वास्तव में 'गागर-में-सागर' की उक्ति चरितार्थ करता है।''''आपको यह विदित ही होगा कि उक्त ग्रन्थ के लगभग ३५० पृष्ठ (५ भागों में) 'कल्याण-मन्दिर' द्वारा पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित किये जा चुके हैं। परन्तु अभी तक यह पूर्ण रूप से प्रकाशित नहीं हो सका है। अब ५ भागों के आगे का विषय 'कौल-कल्पतरु' चण्डी के अगले अङ्कों में प्रकाशित किया जा रहा है। साथ ही अलग से पुस्तक के रूप में 'कल्याण-मन्दिर' द्वारा प्रकाशित होगा। यदि अभी तक आपके पास पहले के प्रकाशित ५ भाग (मूल्य दस रुपए) न हों, तो आज ही 'कल्याण-मन्दिर' से मंगा लें। आगे का भाग पुस्तक के रूप में यदि चाहते हों, तो उसके लिए 'कल्याण-मन्दिर' को अग्रिम पाँच रु० भेजकर अपनी प्रति कृपया सुरक्षित करा लेवें।

शाक्तोपयोगी प्रकाशन

कालिका पुराण	३५)	कर्मठ गुरु	८)
शारदातिलकम्	२०)	साधुदर्शन तथा सत्प्रसङ्ग	१०)
मन्त्र और मातृकाओं का रहस्य	१८)	महाकाल-संहिता	३०)
त्रिपुरा-रहस्य	१३)	शाक्त प्रमोद	३०)
शाक्त-दर्शन	२०)	कुण्डलिनी योग-तत्व	१)
गायत्री तन्त्रम्	३)	चिद्विलास	१)
TRIPURA RAHASYA	20)	श्रीकृष्ण प्रसङ्ग	१०)
प्रत्यभिज्ञा हृदयम्	१२)	लेख-संग्रह	४)
साधना-रहस्य	१५)	माधव ग्रन्थावली (मुन्शी माधवराम कृत शक्ति-भक्ति-प्रकाश, करुणा बत्तीसी तथा करुणाष्टक का सटीक-आलोचनात्मक अध्ययन)	५)
क्या रामचरितमानस तन्त्र है ?	६)		
तांत्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि	७)५०		

उद्बोधन

उठो उठो आलस को त्यागो,
जगदम्बा आई है।
क्षय सम्वत् तोहिं उबारयो;
प्रभव विभव लाई है ॥१॥

प्रेमाञ्जलि सों करौ सपर्य्या,
चरनन सीस नवाओ।
लाड़ चाव माता को देखौ,
मन मांगा वर पाओ ॥२॥

जो आरत ह्वै भक्ति आरती,
लै उनके ढिग जावै।
कोऊ को कुपूत नहिं मानै,
सबको गोद बिठावै ॥३॥

वेद पुरान उन दया बखानत,
तोहिं ज्ञान नहिं होवै।
आपत मै मां मां कहि रोवत,
माता दौरि उठावै ॥४॥

ऐसी दया-शील माता को,
क्यों नहिं नित प्रति ध्यावै ?
दुख-दारिद अरु पाप-ताप को,
छिन मै तोर नसावै ॥५॥

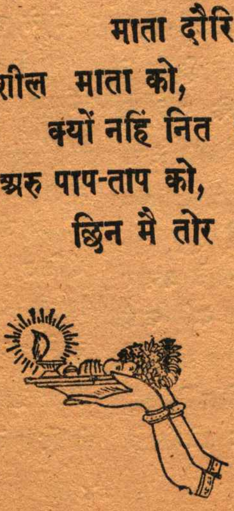

'कौल-कल्पतरु' स्व० शुक्ल जी के लेखों के आधार पर—

अमेरिका में 'विश्व-तन्त्र-संघ'

अमेरिका में 'विश्व-तन्त्र-संघ' के कार्य-कलापों का रहस्योद्घाटन पहले-पहल शाक्त-सम्मेलन के अध्यक्ष न्यायमूर्ति पण्डित शिवनाथ जी काटजू द्वारा लगभग बीस वर्ष पूर्व किया गया। आपके पहले न तो भारतीय धर्माचार्यों में से किसी एक का और न पाश्चात्य देशों के ही धर्माचार्यों में से किसी एक का ध्यान उक्त महत्वपूर्ण रहस्य की ओर गया था। अतएव इसके उद्घाटन का सारा श्रेय आपको ही प्राप्त है। आपके उक्त रहस्योद्घाटन का विवरण सम्वत् २०२१ की "चण्डी" के कार्तिक अङ्क में प्रकाशित 'अमेरिका में तन्त्र' शीर्षक आपके लेख में पहली बार छपा था, जिसे पढ़कर तत्कालीन अध्यात्म-प्रेमियों में अच्छी-खासी उत्सुकता जाग्रत् हुई थी। 'कौल-कल्पतरु' स्व० पण्डित देवीदत्त शुक्ल की प्रतिक्रिया जिन शब्दों में व्यक्त हुई, उन्हें यहाँ उद्धृत करना उचित होगा। पूज्य शुक्ल जी ने 'चण्डी' के उसी अङ्क में सम्पादकीय टिपप्णी के रूप में लिखा कि—

"……'चण्डी' के इस अंक में 'अमेरिका मेंतंत्र' शीर्षक एक खोज-पूर्ण लेख छपा है। इस लेख के लेखक 'चण्डी' के सुपरिचित, शाक्त-सम्मेलन के अध्यक्ष पण्डित शिवनाथ काटजू हैं। हमारा 'चण्डी' के पाठकों से अनुरोध है कि वे इस लेख को ध्यान के साथ पढ़ें। उन्हें इसके पढ़ने से ज्ञात होगा कि उनकी तंत्रोपासना, जिसे वे और उनके आचार्य लोग युग-युगान्त से सुरक्षित रूप से गुप्त रखते चले आ रहे हैं, अब अमेरिका भी पहुंच गई है। पहुंच ही नहीं गई है किन्तु उसका वहाँ सुव्यवस्थित रूप से प्रचार हो रहा है और उसका यह प्रचार वहाँ आज से नहीं कोई पचास-साठ वर्ष से हो रहा है।

अमेरिका के इन तांत्रिक साधकों ने, जैसा कि इस लेख से प्रकट होता है, मूल-ग्रन्थों का उनके अंग्रेजी के अनुवाद सहित वहाँ अच्छा संग्रह भी कर लिया है। संग्रह ही नहीं, उनके पठन-पाठन का समुचित प्रबन्ध भी है। तांत्रिक साधना की तो व्यवस्था है ही।

इस लेख से विदित होता है कि उनके प्रचार का यह विराट् आयोजन वहाँ भी इतनी गुप्त रीति से कार्य-रूप में परिणत किया जा रहा है, जैसा कि हमारे यहाँ है। अन्तर इतना ही है कि हमारे यहाँ की अपेक्षा वहाँ वह अधिक सजीव प्रतीत हो रहा है। इसका कारण यह है कि पाश्चात्य लोग जो कार्य करते हैं, वह अधिक व्यवस्थित रूप से करते हैं। इधर हम लोग व्यवस्था से कोई सम्बन्ध नहीं रखते हैं। त्रुटियों को दूर करना तो अलग रहा, उन्हें ज्यों-की-त्यों बनाये रखने में ही परम्परा का आदर करना मानते हैं!

इस समय हमारे देश में शाक्त-धर्म किस दयनीय दशा को प्राप्त हो गया है, इसकी ओर आचार्य लोग ध्यान तक नहीं देते। तन्त्र-ग्रन्थों के देखने से विदित होता है कि पहले ऐसी बात नहीं थी। केवल शक्तिसंगम को ही उठाकर देखिये, उसमें भारतवर्ष प्रायः ५२ प्रदेशों में विभक्त किया गया है और सिर्फ इसलिए कि तांत्रिक साधना का सुव्यवस्थित प्रचार हो। पहले संगठन के प्रति कुलाचार्यों का ऐसा ही भाव था, परन्तु आज हम संगठन क्या, विघटन के ही ऊपर अधिक ध्यान देते हैं। उदाहरण के लिये काशी को ही लीजिये। इस पवित्र पुरी में कम-से-कम ५-६ हजार दीक्षित कौल साधक होंगे, परन्तु वहाँ का संगठन ऐसा है कि वे सबके सब बहुसंख्यक टुकड़ियों में बँटे हुए हैं। और उनमें आत्मीयता का इतना अभाव है कि एक टुकड़ी दूसरी टुकड़ी को जानती तक नहीं और यदि जानती है, तो निंदा के रूप में। धर्म का यह कैसा पराभव है!

जिस शाक्त धर्म ने इस पवित्र भूमि में धर्म का झंडा सदैव ऊँचा रखा है, वहीं आज 'गोपनीयता' के बुरे जाल में फंसकर नगण्यता की स्थिति में पहुंच गया है। इस दयनीय अवस्था पर हमारे धर्माचार्यों को विचार करना चाहिए; श्रीमान् काटजू साहब के उक्त लेख से शिक्षा ग्रहण कर अपने कर्तव्य का बोध करना चाहिये।

माननीय काटजू साहब के उक्त लेख के महत्व को लोग और अच्छी तरह हृदयङ्गम कर सकें, इस उद्देश्य से पूज्य शुक्लजी ने उसी वर्ष (सम्वत् २०२१) माघ की 'चण्डी' में "विश्व-तन्त्र-सङ्घ" शीर्षक से एक लेख लिखा। उसमें उन्होंने श्रीमान् काटजू साहब द्वारा उद्घाटित रहस्य की कथा का सारांश देते हुये लिखा कि—

.. कोई सन् १८६३ की बात है। आर्मेनियन ईसाइयों के एक परिवार ने अपने पुत्र को महीधर नाम के किसी भारतीय कौलाचार्य के हाथों इस उद्देश्य से सौंप दिया कि वे उसे शिक्षित कर पूर्ण सिद्ध महात्मा बना दें। उस लड़के के माता-पिता स्वयं भारतीय संस्कृत-साहित्य के पण्डित थे। कदाचित् महीधर का उस परिवार से घनिष्ठ सम्बन्ध था। सम्भव है कि वे लोग महीधर के शिष्य रहे हों। तभी तो उन्होंने अपने सात वर्षीय बालक को उन्हें अर्पित किया होगा।

महीधर ने उस लड़के की शिक्षा-दीक्षा की सारी जिम्मेदारी प्रसन्नता के साथ अपने ऊपर ले ली। वह लड़का बीस-पचीस वर्ष तक उनकी देख-रेख में रहा। जब वह पूर्ण विद्वान् तथा साधना-सिद्ध हो गया, तब उसने वह काम किया, जो आज भी दुनियाँ का एक रहस्य बना हुआ है। बहुत सम्भव है, इसकी प्रेरणा उस लड़के को उसके गुरुदेव से मिली हो और यह सम्भावना ही नहीं है किन्तु सत्य है, क्योंकि उसके कार्य-कलाप से भविष्य में उसके गुरुदेव महीधर का बराबर सम्पर्क बना रहा। उस लड़के का आदरणीय नाम हमाती था।

हिमाती गुरुदेव का आदेश लेकर अमेरिका के संयुक्त राज्य में गया। वहाँ उसने अपने कार्य का श्रीगणेश प्रारम्भ किया। इसी सिलसिले में उसको पियरे बर्नार्ड नामक एक लड़के से भेंट हो गई। उसने इस लड़के को दीक्षा देकर संस्कृत की शिक्षा देनी प्रारम्भ की। आवश्यक संस्कृत का ज्ञान प्राप्त हो जाने पर हिमाती ने उसे भारतवर्ष भेज दिया। यहाँ आकर वह नदिया, शान्तीपुर, बनारस में संस्कृत का अध्ययन करता रहा। उसने भारतवर्ष में कोई १ वर्ष तक संस्कृत का गहन अध्ययन ही नहीं किया, किन्तु वह यौगिक साधनाओं आदि का भी अभ्यास करता रहा। यहाँ उसका अपने परम गुरु महीधर से भी सम्पर्क अवश्य रहा होगा।

पूर्ण शिक्षा प्राप्त कर चुकने पर वह यथा समय अमेरिका लौट गया। यह कदाचित् सन् १८९० या ८५ के आस-पास की बात होगी। अमेरिका पहुंचने पर उसके गुरु हिमाती ने अमेरिका में तान्त्रिक विद्या के प्रचार के लिए जो केन्द्रीय सभा सङ्गठित की थी, उसके प्रधान अध्यक्ष का पद इसे दिया गया। कदाचित् इसी समय उसके गुरुदेव ने 'विश्व-तन्त्रसङ्घ' की स्थापना की होगी। उसके विधानानुसार संसार के सभी देश सात भागों में विभक्त किये गये थे और सातों भागों के अपने-अपने केन्द्र के अध्यक्ष थे। इन सबके ऊपर एक प्रधान सभा थी, जिसका केन्द्र भारतवर्ष था। इस प्रकार यह संस्था सारे विश्व में अपने ढंग से तन्त्र-साधना का प्रचार करने लगी।

कौन जानता है कि वे सभी केन्द्र आज भी सक्रिय नहीं हैं और पूर्ववत् ही सञ्चालित नहीं किये जा रहे हैं? परन्तु उन सातों भागों के केन्द्र कहाँ कहाँ हैं, उनके अध्यक्ष कौन-कौन महानुभाव हैं और उनकी प्रधान सभा का भारत में कहाँ कार्यालय है तथा सभी केन्द्रों के अध्यक्ष भारतवर्ष में आकर उक्त प्रधान सभा के वार्षिक अधिवेशन में कब कहाँ भाग लेते हैं—ये सब बातें आज भी रहस्य के गर्भ में निहित हैं।

इन सब बातों का पता काटजू साहब को 'तांत्रिक आर्डर इन अमेरिका' नामक पत्रिका के सन् १९०६ के अङ्कों का अध्ययन करने से लगा है। इसके अतिरिक्त उन्हें बर्नार्ड का एक निजी पत्र भी मिला है, जिससे उनकी खोजों को और भी अधिक पुष्टता प्राप्त हो गई है। काटजू साहब के लेख से विदित होता है कि बर्नार्ड ने अमेरिका के केन्द्र के अध्यक्ष-पद को स्वीकार करके वहाँ कोई ६ साधना-केन्द्रों की स्थापना की तथा इन सब स्थानों में संस्कृत के महत्वपूर्ण धार्मिक ग्रन्थों के पढ़ाये जाने की समुचित व्यवस्था

(शेष पृष्ठ ८८ पर)

यन्त्र-विज्ञान

(गताङ्क पृष्ठ ४८ का शेष)

कार्य-सिद्धि-हेतु प्रयोग-कर्त्ता साधक को उक्त सर्वतोभद्रादि मण्डल किस प्रकार साह्यभूत होते हैं, यह समझने के लिए उक्त मण्डलों के विविध रङ्गों एवं उनकी आकृतियों का रहस्य जानना आवश्यक है। उक्त यन्त्रों में विभिन्न रङ्गों और आकृतियों का अपना विशिष्ट स्थान है एवम् इनका कार्य-सिद्धि की पृष्ठभूमि पर निश्चय ही कुछ-न-कुछ प्रभाव पड़ता है। इन रङ्गों और आकृतियों का प्रभाव कार्य-सिद्धि की पृष्ठ-भूमि पर किस प्रकार पड़ता है, यही यहाँ विवेच्य विषय है। तत्पश्चात् पूजा-यन्त्रों पर विस्तार से विचार किया जायेगा।

प्रत्येक पदार्थ के चारों ओर एक विशेष प्रकार का तेजोमण्डल व्याप्त रहता है। विभिन्न धर्मों में अपने दिव्य-पुरुषों और देवताओं का वर्णन करते समय इस तेजोमण्डल को उनके-दिव्य चरित के प्रतीक के रूप में स्वीकार किया गया है। इस तेजोमण्डल की वैज्ञानिक पुष्टि भी हो चुकी है। नोबुल-पुरस्कार-प्राप्त प्रसिद्ध आणविक वैज्ञानिक डा० हैराल्ड सी० उरे के नेतृत्व में कुछ प्रयोग किये गये हैं, जिनसे यह ज्ञात हुआ है कि—

'...पृथ्वी पर जीवन-शक्ति सर्वप्रथम वायुमण्डलीय विद्युत् के रूप में प्रकट हुई। इसका प्रमाण यह है कि पृथ्वी के सभी प्राणियों का अपना-अपना विद्युत् क्षेत्र होता है...।'

इस तेजोमण्डल की उपस्थिति के स्पष्ट ज्ञान लिये अति सम्वेदन-शील मायक्रो-बोल्ट-मीटर जैसे यन्त्रों का भी निर्माण हो चुका है। इनकी सहायता से अब यह प्रमाणित हो गया है कि प्रत्येक जीव में विद्युत्-क्षेत्र विद्यमान है। कुछ वैज्ञानिकों ने तो इन तेजोमण्डलों का छाया-चित्र खींचने का भी दावा किया है।

उक्त तेजोमंडल, जिसको अंग्रेजी भाषा में 'ओरा' व संस्कृत भाषा में 'अथर्वा' के नाम से पहचानते हैं, सप्राण या चैतन्य देह के चारों ओर अत्यन्त किया-शील-रूप में विद्यमान रहता है। सम्पूर्ण पदार्थों के चारों ओर स्थित अथर्वा एक रङ्ग का ही नहीं होता, अपितु भिन्न-भिन्न पदार्थों के चारों ओर विभिन्न वर्णों का 'अथर्वा' होत है। जड़ पदार्थों के चारों ओर स्थित 'अथर्वा' लगभग उसी रङ्ग का होता है, जिस रङ्ग का पदार्थ होता है, परन्तु चैतन्य प्राणी का 'अथर्वा' उस प्राणी के चरित्र, स्वभाव एवं विचारों से प्रभावित रहता है। किस-किस प्रकार के बिचार, स्वभाव, चरित्र के फलस्वरूप किस-किस रङ्ग का 'अथर्वा' होता है, इन सब तथ्यों पर भी प्रयोगों द्वारा पर्याप्त प्रकाश पड़ चुका है।

यहां यह उल्लेखनीय है कि प्रकृति द्वारा सर्वोत्कृष्ट प्राणी मनुष्य को यह स्वतन्त्रता प्राप्त है कि वह अमुकामुक कर्म के अभ्यास द्वारा अपने वांच्छित रङ्गवाले 'अथर्वा' को प्राप्त

कर ले। माइक्रो-वोल्ट-मीटर द्वारा यह भी अब ज्ञात हो चुका है कि उक्त विद्युत्-क्षेत्र की शक्ति व चुम्बकीयता में बाह्य व आन्तरिक घटनाओं के द्वारा परिवर्तन हो सकता है। इस तथ्य के स्पष्ट ज्ञान के कारण भारतीय ऋषि सहस्रों वर्ष पूर्व ही उन तर्क-सम्मत पद्धतियों को जन-साधारण के निमित्त सुलभ कर सके, जिनके द्वारा कोई भी प्रयत्न-शील व्यक्ति अपनी इच्छानुसार अपने 'अथर्वा' का निर्माण कर सकता है।

अथर्वा के वर्ण के अनुकूल ही व्यक्ति के चरित्र, स्वभाव एवं विचारों का निर्माण होता है। दूसरे शब्दों में मस्तिष्क एवं 'अथर्वा' का इस प्रकार सम्बन्ध है कि अथर्वा के वर्ण पर मस्तिष्क का विकसित व जड़ी-भूत होना निर्भर करता है और मस्तिष्क के विकास व जड़त्व के अनुकूल ही 'अथर्वा' का रङ्ग निश्चित होता है। इसीलिए बहुत से वैज्ञानिक मात्र 'अथर्वा' के परीक्षण द्वारा व्यक्ति के स्वभाव, चरित्र, विचार आदि को ज्ञात करने का दावा करते हैं।

यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि भारतीय महर्षियों ने 'अथर्वा' के वर्ण-परिवर्तन में बाह्य जड़-पदार्थों का उपयोग केवल सहायक के रूप में किया है क्योंकि जब जड़ पदार्थों के 'अथर्वा' द्वारा चैतन्य-प्राणियों के अथर्वा का वर्ण-परिवर्तन किया जायेगा, तब वह जड़ता या उससे उत्पन्न विकृति निश्चित रूप में उक्त चैतन्य प्राणियों के 'अथर्वा'-विशेष को प्रभावित करेगी। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति अपने चारों ओर लाल रङ्ग को—लाल रङ्ग के मकान, लाल वस्त्र, लाल रङ्ग के पर्दे, लाल रोशनी आदि को प्रधानता देता है, तो उसके चारो ओर स्थित उक्त लाल रङ्ग की वस्तुओं के लाल रंग का अथर्वा व्यक्ति-विशेष के निजी 'अथर्वा' के रङ्ग को प्रभावित करेगा। इससे स्पष्ट है कि 'अथर्वा' के रङ्ग-परिवर्तन की इस प्रक्रिया में जड़त्व का कितना गहरा प्रभाव पड़ता है। पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने प्रयोगों द्वारा इस तथ्य को प्रमाणित भी किया है। लाल वर्ण का अत्यधिक उपयोग मानसिक-विकृति का कारण सिद्ध हुआ है।

इसीलिए हमारे पूज्य महर्षियों ने बाह्य जड़-पदार्थों के 'अथर्वा' का उपयोग केवल सहायक के रूप में करते हुए 'अथर्वा-वर्ण परिवर्तन' के लिए 'ध्यान-तत्त्व' आदि जैसे सूक्ष्म तत्वों का स्पष्टीकरण किया है। उन्होंने ऐसे असंख्यी ध्यानों की रचना की है, जिनके द्वारा किसी वर्ण-विशेष क विशेषताओं से सम्पन्न आकृति-विशेष का सतत ध्यान किया जाता है और उसके फलस्वरूप उक्त विशेषताओं से युक्त 'अथर्वा' से साधक के अपने 'अथर्वा' का घनिष्ठतम सम्बन्ध हो जाता है।

सर्वतोभद्रादि मण्डल उक्त असंख्य ध्यानों के कुछ नमूने हैं। कार्य-सिद्धि की उचित पृष्ठ-भूमि तैयार करने में ये किस प्रकार सूक्ष्म रूप से साधक के लिए उचित मानसिक-स्थिति पैदा करने में सहायक होते हैं, यह ऊपों के तथ्यों से सहज ही बोध-गम्य है।

दूसरे प्रकार के 'कार्य-सिद्धि-यन्त्र' भी, जिनमें रङ्ग की प्रधानता न होकर बीजाक्षरों की प्रधानता रहती है, उचित मानसिक स्थिति पैदा करने में सहायक होते हैं। ऐसे 'कार्य–सिद्धि-यन्त्रों' में 'कूर्म चक्र' बहुत प्रसिद्ध है। देखिये रेखाचित्र सं० १२

जिस स्थान में पुरुष दीप्यमान होता है, उसे दीप-स्थान कहते हैं और दीप-स्थान का आश्रय लेकर जो भी कार्य किया जाता है, वह फल-प्रद होता है। इसके लिए मनोनीत स्थान में 'कूर्म-चक्र' की रचना करके जप-पूजा आदि की जाती है। 'कूर्म'-चक्र' के जिस कोष्ठ में उक्त स्थान (ग्राम, नगर आदि) के नाम का पहला अक्षर हो, उसे कूर्म का मुख समझना चाहिये। मुख के दोनों ओर के कोष्ठ उसके हाथ, हाथ के नीचेवाले दो कोष्ठ उसकी कुक्षियाँ, कुक्षियों के नीचेवाले दो कोष्ठ उसके पैर और शेष कोष्ठ उसकी पूंछ जानना चाहिये। इसी प्रकार मध्य-

वर्ती नौ कोष्ठों का भी विभाजन किया जाता है। पूजा-मण्डप के जिस भाग में कूर्म का मुख होता है, वहाँ बैठकर जप-पूजादि कार्य करने से मन्त्र फल-प्रद सिद्ध होते हैं। हाथ वाले भाग में कार्य करने से साधक अल्प-जीवी, कुक्षि में उदासीन, पैर में दुःखी और पूँछ में करने से बन्धन तथा उच्चाटनादि से पीड़ित होते हैं।

ऐसे 'कार्य-सिद्धि-यन्त्रों' में 'मातृकायन्त्र' भी बहुत प्रसिद्ध ह। मन्त्र-सिद्धि के लिये मन्त्र-ग्रहण करने के पूर्व कुछ-मन्त्र-संस्कार करना आवश्यक होता है। 'जनन-संस्कार' पहला संस्कार है। इसके लिये 'मातृका-यन्त्र' की रचना करनी होती है। बिना 'जनन-संस्कार' के मन्त्र-ग्रहण करने से अभीष्ट फल की प्राप्ति सम्भव नहीं है। 'मातृका-यन्त्र' दो प्रकार के हैं। रेखाचित्र इस प्रकार हैं—(कृपया अगले अङ्क में देखें) क्रमशः

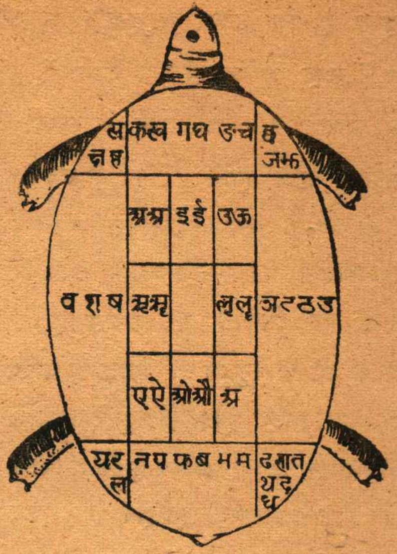

(चित्र सं० १२–कूर्म चक्र')

(पृष्ठ ८५ का शेषांश)

ही नहीं की, किन्तु अपने सभी धार्मिक केन्द्रों के सदस्यों को योग तथा तान्त्रिक साधना की शिक्षा देने की भी समुचित व्यवस्था की।

अमेरिका के इस केन्द्र के पुस्तकालयों तथा उसके साधना-केन्द्रों का जो विवरण काटजू साहब ने लिखा है, उसी से प्रकट होता है कि उक्त तन्त्र-सङ्घ की अमेरिका की शाखा अपने कार्य-कलाप में कितना अधिक व्यवस्थित है। उससे अनुमान किया जा सकता है कि संसार के शेष छः भागों में भी वहाँ-वहाँ के केन्द्र अपने-अपने यहाँ सुव्यवस्थित रूप से प्रचार-कार्य करते होंगे।

इसी विवरण से यह भी अनुमान लगाना उचित ही होगा कि भारत में स्थित उक्त सङ्घ की प्रधान सभा भी अपना कार्य-कलाप तद्वत् ही सुगठित रूप से करती होगी। परन्तु इन सबके कर्तृत्व का पता किसी को नहीं है। इससे बड़ी रहस्य की बात और कौन हो सकती है!

महीधर नहीं हैं, उनके शिष्य हिमाती हैं या नहीं—इसका पता नहीं। हिमाती के शिष्य बर्नार्ड गत ८ अक्टूबर सन् १९५५ को दिवङ्गत हो गए। इन सबके क्रिया-कलाप का पिछले सत्तर वर्ष का इतिहास गोपनीयता की गुहा में छिपा हुआ है। साधना के क्षेत्र में यह सचमुच बड़े विस्मय और आश्चर्य की बात है।

इसमें संदेह नहीं कि महीधर हमारी पुण्य-भूमि भारतवर्ष के वर्तमान समय के महर्षि थे। यह उन्हीं की महाप्रेरणा का फल है कि विश्व में तन्त्र-धर्म का सुव्यवस्थित प्रचार हो गया और यह शास्त्रीय वचन कि 'कलौ चण्डी-महेश्वरौ' तथा 'तन्त्र-धर्म युगधर्म है'—यह लोकोक्ति सत्य रूप में प्रतिष्ठित हो गई।

मन्त्र-विज्ञान (गताङ्क पृष्ठ ३८ का शेष)

एल० एस० डी० आज एक पूरी संस्कृति या उप-संस्कृति का नाम बन चुकी है। इसके सहारे पाश्चात्य युवक आत्म-चेतना की विस्तृत शक्तियों के द्वारा मङ्गल ग्रह-वासियों से सम्पर्क स्थापित करने का प्रायः दावा किया करते हैं। इस संस्कृति के सूत्रधार हैं—हार्वर्ड विश्वविद्यालय के भूतपूर्व मनोवैज्ञानिक विद्वान् डा० टिमोथी लियरी। उनके शब्दों में एल० एस० डी० मानव-मस्तिष्क को दिया जानेवाला एक 'विटामिन' है। इसे नशीला द्रव्य न कहकर 'चेतना का उद्धारक' (साइकेडेलिक) कहते हैं। उनका कहना है कि अमेरिकी समाज और अमेरिकी सरकार के विविध विभागों के अधिकारी उनकी जान के दुश्मन बन बैठे हैं, क्योंकि उन्होंने मानवीय चेतना का विस्तार कर परम्परा और प्रतिष्ठित समाज-व्यवस्था को चुनौती दी है।

न्यूयार्क काउण्टी की मेडिकल सोसायटी के अध्यक्ष डाक्टर डोनल्ड लियरी के अनुसार एल० एस० डी० जैसे 'साइकेडेलिक्स' दिव्य सत्ता से सम्पर्क स्थापित करने, मानवीय चेतना का विकास करने और मानव में मानव के प्रति अधिक गहरा स्नेह-सम्बन्ध स्थापित करने के महत्वपूर्ण साधन हैं।

चिद्-शक्ति-विकास से सम्बन्धित उक्त विवरण देने का हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि एल० एस० डी० द्वारा चिद्-शक्ति का विकास विना किसी हानि के सम्भव है। हमारा तो मात्र अभिप्राय यह स्पष्ट करना है कि अब पाश्चात्य समाज भी विज्ञान, सत्य की खोज में आगे बढ़ता हुआ अति-यान्त्रिकता से उकताकर चेतना-विकास के लिये अग्रसर होने का प्रयास कर रहा है। चिद्-शक्ति के विकास के महत्वों से वह अवगत हो चुका है। भले ही इस समय उसका प्रयास हानिकारक ढँग से हो रहा हो।

जप की आवश्यकता

जप की आवश्यकता के सम्बन्ध में हम ऊपर प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप में यत्र-तत्र विचार कर चुके हैं। यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि चिद्-शक्ति-विकास के लिए जप एक महत्वपूर्ण साधन है। आज मनुष्य ने अपने बुद्धि-कौशल से एक ओर तो नवीन कल-कारखानों, उद्योगों द्वारा राष्ट्र की सम्पन्नता व सुख-सुविधा में वृद्धि की है, वहीं दूसरी ओर उसने अपना जीवन-स्तर अत्यन्त निम्न कोटि का बना लिया है। हमारी आवश्यकताएँ सिमटकर मात्र खाने-पीने-सोने तक ही सीमित हो गई हैं। एक ओर सुविधाओं में वृद्धि हुई है, तो दूसरी ओर कृत्रिम जीवन के साधनों से उत्पन्न विविध प्रकार के प्रदूषणों से हमारी पृथ्वी ही दूषित हो चुकी है। हमारा जीवन दिन-प्रतिदिन सिमटता जा रहा है। अत्यधिक यान्त्रिकता और कृत्रिमता के कारण हमारी चेतना प्रायः सुप्त हो गई है; जब कि चेतना ही मानव-जीव का सबसे विशिष्ट गुण है।

जप द्वारा चेतना का विकास किस प्रकार होता है, इस सम्बन्ध में पहले विचार कर चुके हैं। अब विस्तृत रूप में जप के विभिन्न सहायक तत्वों एवं साधनों के सम्बन्ध में यहाँ पुनः विचार करना उचित होगा। मानवीय चेतना के विकास के लिए जप एक परमोपयोगी तत्व या साधन है। इसी मूल तथ्य को ध्यान में रखते हुये हम अगले अध्यायों में जप के सहायक तत्वों व साधनों पर विस्तृत रूप से विचार करेंगे।

तीसरा अध्याय

प्राणायाम (प्राण या प्राण-शक्ति की उपासना)

प्राण क्या है ?

सृष्टि की सभी दृश्य वा अदृश्य घटनाएँ 'प्राण' (Cosmic Impulse) की प्रवर्तक-शक्तियों के द्वारा वशीभूत होकर ही घटित होती हैं । साधारणतः 'प्राण' को हम साधारण वायु समझते हैं, कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार यह वायु एक विशेष प्रकार की वायु–'आक्सीजन' (ओषजन) है । परन्तु इनकी यह धारणा वस्तुतः निर्मूल है क्योंकि हमारे शास्त्रों में इसका कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता है । चरक संहिता में प्राण के स्थानों एवं कर्मों के सम्बन्ध में इस प्रकार बताया गया है—

> स्थानं प्राणस्य मूर्धोरः कर्ण-जिह्वास्य-नासिकाः ।
> ष्ठीवनं क्षवथूद्गारौ श्वासाहारादि कर्म च ॥
> (च० चि०, अ० २८।६)

अर्थात् 'प्राण' के स्थान हैं–१ शिर का ऊर्ध्व भाग, २ वक्षःस्थल (उर), ३ कर्ण, ४ जिह्वा, ५ मुख, ६ नासिका ।

स्पष्ट है कि 'प्राण' को ओषजन (आक्सीजन) नहीं माना जा सकता, क्योंकि मूर्वा (ग्रेनियम) में आक्सीजन का प्रवेश सम्भव नहीं है । वक्षःस्थल में आक्सीजन व नाइट्रोजन दोनों १ : ४ अनुपात में पाये जाते हैं । कानों में हाथ, पैर आदि अन्य अङ्गों की भाँति साधारण वायु का ही स्पर्श होता है । जिह्वा, मुख एवं नासा-छिद्र भी मात्र आक्सीजन के ही स्थान नहीं हैं, अपितु उनमें सभी प्रकार की साधारण वायु का प्रवेश सम्भव है ।

इसी प्रकार अन्य प्रमाण भी हैं, जिनसे इस तथ्य का रहस्योद्घाटन सहज ही हो जाता है कि 'प्राण' केवल आक्सीजन अर्थात् विशेष वायु ही नहीं है । 'अष्टाङ्ग-हृदय' आयुर्वेद का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है । इसमें प्राण' के सम्बन्ध में निम्न उक्ति मिलती है—

> ……………………प्राणस्य मूर्द्धगः ।
> उरः कण्ठ-चरो बुद्धि-हृदयेन्द्रिय-चित्त-धृक् ॥
> ष्ठीवन-क्षवथूद्गार-निःश्वासन-प्रवेश-कृत ॥
> ('अष्टाङ्ग-हृदय' सू० अ० १२।४)

इस उक्ति में 'अष्टाङ्ग-हृदय' के प्रणेता महर्षि वाग्भट्ट ने चरक की ही भाँति 'प्राण' के स्थानों का विवरण दिया है, परन्तु 'अष्टाङ्ग-हृदय' में चरक की अपेक्षा 'प्राण' के कर्मों को अधिक स्पष्ट किया गया है । चरक के अनुसार 'प्राण' के कर्म पाँच प्रकार के हैं—१ ष्ठीवन-थूकना, २ क्षवथु–छींक, ३ उद्गार–डकार, ४ श्वास और ५ आहार । स्पष्ट है कि इन कर्मों से केवल आक्सीजन का हीं सम्बन्ध नहीं है । महर्षि वाग्भट्ट ने प्राण के आहार-कर्म को अधिक स्पष्ट करते हुए उसे अन्न-प्रवेश-कृत् कहा है । किन्तु अन्न-प्रवेश-कृत् में न तो केवल आक्सीजन का कोई कार्य होता है और न ही साधारण वायु का । महर्षि वाग्भट्ट पुनः कहते हैं कि प्राण 'बुद्धि-हृदयेन्द्रिय-चित्त-धृक्' है । अर्थात् 'प्राण' बुद्धि, हृदय, इन्द्रियों और चित्त को धारण करनेवाला है । स्पष्ट है कि न तो आक्सीजन बुद्धि, हृदय अथवा चित्तादि को धारण करती है और न ही साधारण वायु ।

इसी प्रकार अन्य बहुत से प्रमाण हमारे सम्मुख हैं, जिनसे यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि 'प्राण' न तो आक्सीजन है और न ही साधारण वायु।

श्रुतियों में भी 'प्राण' को वायु कहा है। यथा–"वात: प्राण"—बृहदारण्यक १।१।

परन्तु प्रश्न उठता है कि यहाँ 'वायु' शब्द से क्या अभिप्राय है। वस्तुत: हमारे यहाँ आकाश, वायु, अग्नि, जल और भूमि–ये पाँचों तत्व गति-शक्ति के ही विभिन्न पाँच रूप माने गये हैं। पाठक यहाँ प्रश्न कर सकते हैं कि यदि पञ्च-तत्व गति-शक्ति के ही पाँच रूप हैं, तो गति-शक्ति को ही हमारी सृष्टि का मूल होना चाहिये क्योंकि पञ्च-तत्वों से ही सृष्टि का निर्माण हुआ है। इस सम्बन्ध में हम यहाँ एक उद्धरण देकर मूल विषय की ओर बढ़ना चाहेंगे।

लन्दन से एक पुस्तक प्रकाशित हुई है। पुस्तक का नाम है—'ऐज़ एबव सो बिलो: ए स्टडी इन कास्मिक ोग्रेशन' (**As Above So Below: A Study in Cosmic Progression**)। इस पुस्तक के लेखक हैं श्री वॉरेन केण्टन (**Warren Kenton**) इस पुस्तक की विशेषता यह है कि यह पुस्तक अमेरिकी राकेटों द्वारा अन्तरिक्ष से लिये गये चित्रों की यात्रा है। अर्थात् आधुनिकतम चित्रों द्वारा इसमें सृष्टि केन्द्र रहस्य को समझाने का प्रयास किया गया है। पुस्तक के प्रारम्भ के एक पूरे पृष्ठ को काले रंग में रंगकर उसकी काली छाया द्वारा सृष्टि के अनन्त, निस्तब्ध, मूक, अनुच्चारित शून्य को व्यक्त किया गया है। तत्पश्चात् माउण्ट् विलसन व पालोमर वेधशालाओं से खींचे गये फोटोग्राफ द्वारा आकाश-गंगा के गुच्छों की छवि दिखाई गई है। आकाश-गङ्गा के सम्बन्ध में श्री वॉरेन केण्टन ने जो टिप्पणी दी है, वह मननीय है। यथा—

> **'It is from the subtlest vibrations that the universe manifests itself. Within the emptiness prime matter emerges, to form vast fields of rarified gases. These gases in turn gather into thin clouds, and then into clusters that draw away from each other in a huge pulse of expanding space.'**

अर्थात् अव्यक्त सूक्ष्मातिसूक्ष्म कम्पनों से यह ब्रह्माण्ड प्रकट या व्यक्त होता है। शून्य के भीतर मूल पदार्थ की उत्पत्ति होती है। इन्हीं पदार्थों से अभूतपूर्व वाष्प-क्षेत्र बनते हैं। ये वाष्प-क्षेत्र परस्पर मिलकर पतले-पतले मेघों में परिणत हो जाते हैं और तब मेघों के ये समूह एक दूसरे से अलग होकर विस्तृत शून्याकाश में प्रकाश-गुच्छों के रूप में दृष्टि-गत होते हैं।

स्पष्ट है कि मूल में सर्वप्रथम गति-तत्व ही होता है। आकाश दिक्-शक्ति है, जिसकी विशेषता है तत्वों को अपने-अपने निर्दिष्ट स्थानों पर स्थिर करना। वायु वहन-शक्ति है, जो राग द्वारा एक पदार्थ को दूसरे पदार्थ से मिलाती है अर्थात् उसमें आकर्षण-शक्ति है। इसके अतिरिक्त द्वेष आदि द्वारा धक्के मारकर एक को दूसरे से विलग कर देनेवाली विकर्षण शक्ति भी वायु की है। अग्नि तैजस्-शक्ति है, जो स्फूर्ति-रूप में कार्य करती है। अप् (जल) आप्यायिनी अर्थात् रस से "तर" करनेवाली शक्ति है और पृथ्वी घनीभूत करनेवाली धारिका-शक्ति है। इसको 'धरित्री' भी कहते हैं।

प्राण-शक्ति विभिन्न वायु-रूपों में ब्रह्माण्ड व पिण्डाण्ड सभी का कार्य करती है। इसी पञ्च-क्रियात्मक प्राणवायु के नाम क्रमश: प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान हैं।

यह प्राण-वायु जब व्यष्टि अथवा समष्टि शरीर को श्वास से पूर्ण करता है; तब वह राग-स्वरूप 'प्राण' कहलाता है और जब विकर्षण शक्ति द्वारा वह अवांच्छनीय पदार्थों को निःश्वास-रूप से बाहर फेंक देता है, तब वह द्वेष-स्वरूप 'अपान' वायु कहलाता है। इसी प्रकार जब वह भीतर लिए गये पदार्थों को अपने में मिला लेता है, तब उसे 'समान' वायु कहते हैं। समान रूप से ग्रहण किये गए पदार्थों का युक्त वितरण वा उन्हें तत्-तत् स्थानों में पहुँचानेवाले रूप में वह 'व्यान' कहलाता है और नाद को वैखरी-रूप देने से अर्थात् वाक्-शक्ति को ठोस रूप देने के कारण उसे 'उदान' वायु कहते हैं।

इन पाँच रूपों के अतिरिक्त प्राण के पाँच और रूप हैं–१ नाग, २ कूर्म, ३ कृकर, ४ देवदत्त और ५ धनञ्जय। इनके अतिरिक्त ३९ रूप और हैं। कुल मिलाकर इस महाशक्ति के ४९ रूप हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उक्त पाँच प्राणों के अपने-अपने विशेष स्थान हैं। यथा—

१—'उदान' वायु का स्थान कण्ठ के विशुद्ध चक्र में है। अतः यह कण्ठ-नली (**Larynx**) के ऊपर के भाग को मुख्यतः सञ्चालित करता है। यह प्राण हमें हमारी विशेष अनुभूतियों की ओर सचेत किये रहता है। विशुद्ध चक्र में १६ स्वरों का उच्चारण होता है। वायु के सोलह रूप (गति) यहीं होते हैं, जिन्हें वृत्ति कहते हैं। मानस-वायु अर्थात् मन की गत्यात्मिका क्रिया-शक्ति की धारा ही 'वृत्ति' कहलाती है। यहाँ पर वायु की गति हाथी के समान गम्भीर होती है।

२—'प्राण' का स्थान हृदय का अनाहत चक्र है। यह कण्ठ-नली एवं हृदय के बीच के क्षेत्र को सञ्चालित करता है। यहाँ 'क' से लेकर 'ठ' तक १२ व्यञ्जनों का उच्चारण होता है। यह आशा आदि बारह वृत्तियों का उत्पत्ति-स्थान है। यही पर बाह्य पदार्थों का ग्रहण होत है। यहाँ वायु की गति मृग के समान द्रुत रहती है।

३–'समान' वायु का स्थान नाभि का मणिपुर चक्र है। यहाँ 'ड' से लेकर 'फ' तक १० व्यञ्जनों का उच्चारण होता है। लज्जा आदि १० वृत्तियाँ यहीं उत्पन्न होतीं हैं। यह वायु पाचन-शक्ति का सञ्चालन करता है। यहीं पर पुष्टि-कर भोजन के रासायनिक परिवर्तन की क्रिया सम्पादित होती है। दूसरे शब्दों में यकृत और पाचक-रस देनेवाली उदर की ग्रन्थियों की संगोपन-क्रिया क सञ्चालन मुख्यतः यही वायु करता है। हृदय में खून के प्रवाह को भी यह प्रभावित करता है। यहाँ वायु की गति मेष की गति के समान है।

४–'अपान' वायु का स्थान स्वाधिष्ठान चक्र वा लिङ्ग-मूल है। यहाँ प्रश्रय आदि ६ वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। इस वायु द्वारा अवांच्छनीय पदार्थों का निष्कासन होता है। यह मुख्यतः मूत्राशय, जननेन्द्रिय और अँतड़ियों की स्वतन्त्र-क्रियाओं को संचालित करता है। यहाँ वायु की गति मकर की गति के समान है।

५–'व्यान' वायु का स्थान मूलाधार चक्र वा गुदा (मेढ्रान्तराल) है। यहाँ परमानन्द, सहजानन्द आदि चार वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। यह वितरण का स्थान है। यह वायु सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है।

अगले पृष्ठ पर छपे चित्र सं० ९ से मानव शरीर में व्याप्त पञ्च-प्राणों के प्रभाव-क्षेत्र स्पष्टतया ज्ञात होते हैं।

उक्त पाँचों वायु के ४८ रूप हुये और ४९ वें वायु का स्थान मानस वा आज्ञा-चक्र (भ्रूमध्य) है। यहीं आध्यात्मिक वृत्ति उत्पन्न होती है, परन्तु यह तभी सम्भव है, जब यहाँ कुल ४८ वायु आकर केन्द्रीभूत हो जायँ। तभी वास्तविक एकाग्रता होती है।

इस प्रकार ४९ वायु-रूपी प्राण हैं। वस्तुतः ये ४९ वायु "प्राणस्य प्राण" प्राणों के प्राण के क्रियात्मक रूप हैं।

चित्र सं० (९)—मानव शरीर में पञ्च-प्राणों की व्यापकता

१ ब्रह्म-चक्र
२-३ ब्रह्म-रन्ध्र
४ ध्वनिज नलिका का मुख
५ सुषुम्ना
६ मेरु-दण्ड
७ चित्रा
८ अन्तरीप
९ कन्द
१० शरीर का मध्य-स्थान
११ सूक्ष्म आकाश
१२ मस्तिष्क का अन्तराकाश
१३ आज्ञा-चक्र
१४ हाकिनी शक्ति
१५ कण्ठ-नली का ऊर्ध्वभाग
१६ हन्वस्थि
१७ विशुद्ध-चक्र
१८ ग्रीवा स्नायु
१९ काकिनी शक्ति
२० अनाहत चक्र
२१ वेगस स्नायु
२२ मांस-पट
२३ मणिपुर चक्र
२४ स्वाधिष्ठान-चक्र
२५ वस्ति-सम्बन्धी स्नायु
२६ मूलाधार-चक्र
२७ वस्ति मूल
२८ गुदा
२९ योनि मण्डल

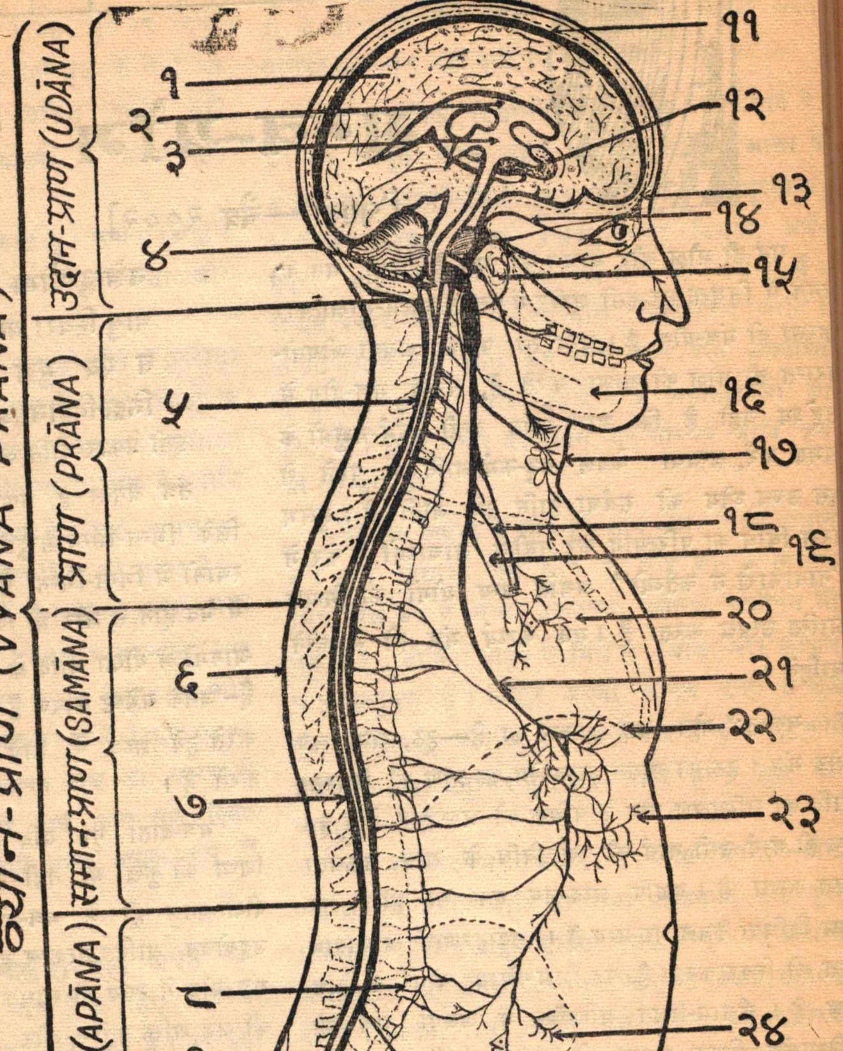
व्यान-प्राण (VYĀNA-PRĀNA)
उदान-प्राण (UDĀNA)
प्राण (PRĀNA)
समान-प्राण (SAMĀNA)
अपान-प्राण (APĀNA)
1
2
3
४
५
६
७
८
९
१०
११
१२
१३
१४
१५
१६
१७
१८
१९
२०
२१
२२
२३
२४
२५
२६
२७
२८
२९

'कौल-कल्पतरु' चण्डो ❋

मन्त्र-योग

['चण्डी'—चैत्र २००२]

मन ही मोक्ष और बन्धन का मूल है। इसी मन क नन में नियुक्त कर इसी शरीर में प्रत्यक्ष आत्म-साक्षात्कार करना ही मंत्र-योग है। अन्य तो परोक्ष अथवा जीवनोरान्त ही मोक्ष की आशा करते हैं, परन्तु मंत्र-योग में उद्देश्य यही है कि आत्म-दर्शन इन्हीं चर्म-चक्षुओं के समक्ष करें, अन्यथा केवल षट्-कर्म आदि में पड़ने से इस उच्च ध्येय की सर्वथा हानि हो जाती है। सुलभ रल विधि का परित्याग कर नवीन आचार्य्यों के फेर में 'नानाचारो न कर्तव्यो" अर्थात् अन्य योगों का मिश्रण त्रान्ति उत्पन्न करता है। सब कार्य्य मंत्र ही से होने चाहिये।

मुख्यतः योग चार प्रकार का है—हठ, राज, लय और मंत्र। हठ का आसन, राजयोग का प्राण की स्थिरता आदि का सम्मिश्रण योग के पथिक को भ्रष्ट कर देता है। क ही मार्ग उसी मार्ग की पूर्ण विधि के साथ सफलता प्त करता है। यद्यपि शब्द-जप एक सा ही है, पर मन्न विधियाँ केवल गुरु-गम्य हैं। उदाहरणार्थं प्राणायाम वत्त को स्थिर करता है, पर भिन्न-भिन्न योगों में विधि मन्न है। कैलास-स्थित मणिपीठ में अजपा मंत्र को न्तिपूर्वक स्थित करना ही मंत्र-योग में चित्त की थरता, प्राण का निरोध कर देता है एवं चित्त स्वयं खेचर है। अगर मन को उससे पृथक् कर भ्रमर-गुदा जड़ीभून पहली विधि-द्वारा कर दें, तो सहज ही यह चरी प्राप्त हो सकती है। हठयोग के सदृश्य जिह्वा का हन-छेदन करना मंत्र-योग वाले को जरूरी नहीं, उल्टे ङ्ग-भङ्ग-दोष ठीक नहीं है। मंत्र-शास्त्र निम्नलिखित क्षण देते हैं—

"यस्य मनश्चित्त-वशं स्वयिन्द्रियं
स्थिरा स्वदृष्टिर्जगदीश्वरी-पदे
नखेन्दु-शोभा च विनावलोकनम्
वायु स्थिरा यस्य विना निरोधनम्
त एव मुद्रा विचरन्ति खेचरीम्
निद्रा-विहीना प्रतियान्ति निद्राम् ॥

इसी प्रकार योनि आदि मुद्रायें भिन्न-भिन्न हैं।

तंत्र अनन्त हैं, फिर भिन्न-भिन्न द्वीपों—लोकों के लिये भिन्न-भिन्न सङ्कलित किये गये हैं एवं भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न प्रधान हैं। आम्नाय, सम्प्रदायों में भेद होने से और भी अन्तर आ जाता है। इसीलिये आगमों में दीक्षा आदि के भिन्न-भिन्न विधान वर्णित हुये हैं—जिनके यथेष्ट कारण हैं। सद्गुरु इन सबका सामञ्जस्य करते हुये शिष्य के लिये यथोक्त विधान का निश्चय करते हैं।

मंत्र-दाता गुरु यदि सिद्ध है, तो कुछ बात नहीं, शिष्य को कुछ भी नहीं करना पड़ता। उसके श्री गुरु दीक्षा-काल ही में मंत्र-योग के फल-स्वरूप शक्ति का उद्बोधन आदि तत्काल ही कर देते हैं। प्रबुद्ध शक्ति—मंत्र-योग में स्वयं ही साधक की माँ है। यह अन्य योगों की जड़ शक्ति नहीं—और यह अगर कुछ शेष भी रह गया, तो स्वयं पूर्ण कर साधक को जीवन-मुक्त अवस्था में स्थित कर देती है। यदि गुरु सिद्ध नहीं, तो शिष्य के लिये अविरल परिश्रम अनिवार्य्य हो जाता है। श्री सद्गुरु अजपा-युक्त मणि-पीठ पर विराजते हैं। सर्वत्र मन्त्र ही कार्य्यात्मक है और पादुका-मन्त्र ही गुरु-रूप है। इसके छन्द, न्यास, ध्यान, जप, कवच, स्तोत्र आदि और पुरश्चरण सर्व-प्रथम करने चाहिये।

श्री गुरु-प्राप्ति के उपरान्त विषय देवता का है और मन्त्र-योग में देवता का जप ही प्रधान अंग है। जप उपासना-युक्त फलदायक है। उपासना अच्छी तरह न

समझने से सर्व-साधारण के ख्याल से केवल बाह्य चाटु-कारिता ही प्रतीत होती है।

मन्त्र-ग्रहण के समय देश, काल, दीक्षा-संस्कार, विधान, चक्र-शोधन, वास्तु-याग, कुण्ड आदि का ठीक करना गुरु की योग्यता पर ही अवलम्बित है। जहाँ गुरु पर शिष्य की पूर्ण भक्ति के लिये जोर है—वहाँ गुरु के लिये भी शास्त्र से बाहर मन-मानी करना उचित नहीं। यही आदि-गुरु ने अपने आज्ञा-रूपी शास्त्रों में निर्देश किया है।

अर्थों के अनर्थ से आज यह गति है। चक्र अनेक हैं। राशि-चक्र, ब्रह्म-चक्र, आदि। ये भी भिन्न देवता और सम्प्रदाय-भेद से भिन्न हो जाते हैं '

उपर्युक्त विधियों से प्राप्त शुद्ध मन्त्र ही योग में सफलता देगा। अशुद्ध मन्त्र हानियों का मूल है और किसी के मत से योगारम्भ से पूर्व श्री गुरु-दत्त सम्प्रदायानुमोदित गणेश के बीज का ही पुरश्चरण करना उचित है क्योंकि गणेश ही द्वार-देवताओं में प्रधान हैं। इसी गणेश-पुरश्चरण के स्थान में हठयोग में गणेश-क्रिया की जाती है।

मन्त्र-योग में प्रधानता जप की है। देवता, गुरु, मन्त्र और आत्मा का ही योग है। गुरु-स्थान हंस-पीठ और 'आत्मानं गुरु-पादयो' एवं मन्त्र का स्थान विशुद्ध-चक्र और देवता का वाण-लिङ्ग के अग्र अष्टार में है। इन सबका योग आज्ञा-चक्र में करके स्व-कल्पोक्त तेज का धारण ही धारणा-योग है। इसी प्रकाश को दीर्घ काल तक स्थित करना––केवल भाव से ही नहीं, वरन् प्रत्यक्ष रूप से ध्यान की सिद्धि है।

"शनैः शनैः महाकाल-कैलाश-दर्शनं भवेत्"–– इत्यादि वाक्य क्या केवल लिखे मात्र हैं? नहीं, अक्षरशः सत्य हैं। जप ही इन सब सिद्धियों का मूल है। पर इसी जप के लिये अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है। सर्व-प्रथम स्थान और समय के नियम का ज्ञान होना जरूरी है।

साधन के आरम्भ ही में "मन्त्राणां दश-संस्कारा"—जीवन-जनन आदि करने उचित हैं। फिर मन्त्र-चैतन्य भी आवश्यक है, जिसकी अनेक विधियाँ हैं, जो पृथक् विद्याओं में पृथक् प्रकार से निर्देश की गई हैं। मन्त्र, ध्यान एवं अवयव-ज्ञान आवश्यकीय हैं। मन्त्र-शोधन, पञ्च-शुद्धि के अन्तर्गत यंत्रादि, अधिकारियों के लिये पल्लवादि तथ चैतन्य यंत्रादि अधिकरियों के लिये भिन्न-भिन्न व्यवस्थाएँ हैं। प्रत्येक देवता-विषय में उसके भिन्न-भिन्न मन्त्राचमन, भूत-शुद्धि आदि हैं, जो केवल देवता-विशेष चक्रों में मूलमंत्र ही के द्वारा करनी चाहिये। सर्वसाधारण विधि उच्च साधकों को लाभ नहीं देती।

अनन्तर प्रत्येक विद्या-विषय में अङ्ग-मन्त्र प्रधान हैं, जो जप के पूर्व करने बहुत जरूरी हैं। जैसे आद्या में अङ्ग-मन्त्र निम्नलिखित आवश्यकीय हैं––लघुश्यामा, आदिनाथ, बटुक, उन्मत्त, पञ्चदश-नित्या, विजया, अर्धेश्वरी आदि। इसी प्रकार क्रम-मन्त्र भी जरूरी हैं। ये इस प्रकार चलते हैं––स्पर्श-मणि, चिन्तामणि आदि। ये भी कम-से-कम तीन क्रम-न्यास आदि युक्त क्रमदीक्षा से प्रारम्भ होते हैं और सर्वश्रेष्ठ ५ महाविद्याओं का होता है। इसके अन्दर षडाम्नाय, षट्-शाम्भव आदि क्रम भी आ जाते हैं।

उपर्युक्त विषयों के साथ ही शाप का विषय प्रधान है। सभी विद्याओं पर शाप है और शाप के निमित्त भिन्न-भिन्न जप है तथा उत्कीलन, कीलक, संजीवन भी जरूरी हैं। दीपिनी दीपन से भिन्न है आद्या और श्रीकुल में पृथक्-पृथक् हैं। जिह्वा अथवा कारण इन्हीं से शुद्ध होना उचित है, क्योंकि इस मन्त्र-योग में कोई भी कार्य अमन्त्रिक होना अनुचित है। जप आदि ही से शुद्ध कर व्यवहृत होते हैं।

जप की प्रारम्भिक अवस्था में बाह्य उपचार–पान, सुगन्ध, धूप, कारण आदि भी तथा मण्डपादि रम्य दृश्य एवं पूर्ण निरुपाधि-रहित शून्यता तथा सम्मुख स्व-कल्पोक्त शक्ति और प्रिय नैवेद्य किञ्चित्-मात्र तृप्ति देकर सहायता देते हैं। आसन, माला आदि इन सबका अर्थ साधारणतया चित्त में शान्ति, तृप्ति तथा एकान्त-शून्यता, जो हिम-पात में अनुभव होती है, लाना है, जिसके लिये पीठ-शक्तियों का पूजन होता है, परन्तु इतना ही नहीं, रसायन शास्त्र के प्रयोगों की तरह ये कुछ नूतन बात ही उत्पन्न करते हैं और यथाकाल में यह स्थिति उत्पन्न करते हैं कि प्रगाढ़ नींद में सोये हुये को भी अत्यन्त (हलकी) सुख की निद्रा तक में मन्त्र की झङ्कार से खाली नहीं रखते। इनमें से मुख्य-मुख्य विषय निम्न प्रकार हैं—

१ श्रीगुरु-वन्दना, कवच, जप, स्तुति, आज्ञा ।

२ भूत-शुद्धि, तत्व-शुद्धि, अन्तर्याग, तर्पण, कवच, मूल से प्राणायाम ।

३ मन्त्र के शिव का जप ।

४ कुल्लुका, शाप, उत्कीलन, संजीवन ।

५ मन्त्र-शिखा, मन्त्र-चैतन्य, अवयव-ध्यान, मन्त्रार्थ, मन्त्र-शोधन ।

६ सेतु, महासेतु, निर्वाण, दीपिनी, मूल-पद्म में काम-वीज तथा मूर्ध्नि में काकिनी-वीज ।

७ मन्त्र-ध्यान, मन्त्र-संकेत ।

८ झिल्लरा, मुख-शोधन ।

९ भूतलिपि-युक्त जप ७ मूल-पुटित ।

१० अमृत-योग, षट्-चक्र में डाकिन्यादि-पुटित मूल ।

११ मुख-शुद्धि, चौर-मन्त्र (प्रति द्वार २० बार)।

१२ योनि-मुद्रा, जिह्वा-शोधन, प्राण-योग ।

१३ प्रमदा, अङ्ग-मन्त्र, क्रम-मन्त्र ।

१४ मूल जप,

१५ अन्त में कवच, हृदय, स्तोत्र, शतनाम, सहस्रनाम का पाठ

जप तीन प्रकार का है—वाचक, उपांशु और मानस । इनमें मानस ही श्रेष्ठ है । पर जब तक मन्त्र ठीक-ठीक शरीर में न बैठ जाय, तब तक मानस न जपे । इस मानस के चार भेद हैं --बैखरी, मध्यमा, पश्यन्ति और परा । न्तर रेचक-युक्त दीर्घ प्रणव से इनका शीघ्र बोध होता है, पर यह सब शक्ति की चैतन्यता की उत्तरोत्तर अवस्था है ।

इस प्रकार जब चार स्व-कल्पोक्त जप अर्थात् अपनी अपनी विद्या की निर्धारित संख्या के पुरश्चरण हो जायँ, जैसे आद्या में वर्ण-लक्ष-द्वय का (पर यदि आद्या का केवल बीज मात्र हो, तो उसकी संख्या कोटि है, इसलिये दो कोटि हुआ)। यथा—'साधना-रहिते देवि! वर्ण-लक्ष-द्वयं जपेत् ।' जप-संख्या भिन्न विद्याओं में भिन्न है । जैसे श्रीबाला में कोटचर्द्ध आदि ।

यदि इससे भी कुछ ठीक न हो, तो "उपायास्तत्र कर्तव्या सप्त शंकर-भाजिता ।" ये भी धूनन, शोषण आदि हैं । मूल देवता के पुरश्चरण के साथ ही कुल्लुका, कवच, हृदय, स्तोत्र, शतनाम, सहस्रनाम आदि हैं, जो क्रमशः प्राण, दुर्ग, अंगस्त्राण, सह-चर, अंग-रक्षक, सेना के नाम से पुकारे गये हैं । इनका भी पुरश्चरण होता है तथा क्रम-मन्त्रों का भी करना जरूरी है । होम, तर्पण, मार्जन, अभिषेक, प्रदक्षिणा आदि के भी पुरश्चरण होते हैं । इनसे सभी प्रकार के पूर्व-जन्म-जनित संस्कार, कर्म तथा मल-रूपी पाप-राशि का नाश होता है । इस मल के हटते ही आत्म-रूप का दर्शन, सरोवर के निर्मल होते ही तल में स्थित शिला की भाँति, शीघ्र होता है ।

यम-नियम आचार के अन्तर्गत आ जाते हैं । जिस विद्या में जो आचार होता है, वही उस विद्या में प्रधान रूप से यम-नियम-विषयक कार्यक्रम का निर्णय करता है । आचार भी नीलाचार आदि शास्त्रों में दिये हैं, पर इनका रहस्य गुरु-गम्य है । आसन का उपयुक्त होना साधना में प्रधान चीज है । जैसे--

मृतासनं विना देवि यो जपेत् घोर-दक्षिणाम् ।
स पच्यते नरके घोरे यावत् चन्द्र-दिवाकरौ ॥

विहित आसन ही लेकर साधना आरम्भ करना उचित है । देखा जाता है कि जब मनुष्य को इनके ज्वलन्त अनुभव होते हैं, तब साधन का सूत्र-पात होता है । हठ-योग के पद्मासन आदि मन्त्रशास्त्र में दूसरा अर्थ रखते हैं और कोमलादिक ही शक्ति के उत्थान में सहायता देते हैं ।

सर्वत्र जहाँ देखो, आजकल के गुरु 'सिद्धियों से दूर रहो' का उपदेश देते हैं ! सिद्धियाँ क्या किसी ने बिखेर रक्खी हैं कि उठा लो ? नहीं, ये तो पथ के 'मील-पत्थर' हैं । इनसे पता लगता है कि मनुष्य किस भूमिका का अधिकारी बन गया ।

"यदि क्रुद्धो योगी, चलयति समस्तं त्रिभुवनं"—आदि वाक्य साधक की स्थिति कहाँ पर है, इसको बताते हैं । स्थान-विशेष, महामाला, विशेष आसन एवं शक्ति—साधक को अल्पकाल में ही सुचारु रूप से सम्पन्न करते हैं ।

मृतासने जपेन्मन्त्री महाविद्यामनुत्तमाम् ।
अचिरात्तस्य सिद्धि स्यात् नात्र कार्य्या विचारणा ॥

शक्ति का उत्थान इन आसनों पर विशेष अवलम्बित है, पर ये अधिकारी के विषय हैं । यदि भाग्य-वशात् त्रि-दण्ड भी सहज कुम्भक हो, तो नाड़ी-क्षालन आदि क्रिया-सिद्ध होकर सहज कुम्भक एकदम सिद्ध हो जाता है । तीव्र, मध्य, मन्द आदि तीव्राति-तीव्र भेद से मनुष्य

साधन-समर में प्रवृत्त होते हैं और इसी प्रकार साधन-भेद से उन्मनी आदि अवस्था को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार पूरा जप ही (लय अवस्था में) जब पूर्ण बाह्य तथा अन्तर-अवस्था को भेद देता है, तब आत्म-साक्षात्कार की अवस्था स्वतः प्राप्त हो जाती है। यथा—

योगिनः सहजावस्था स्वयमेव जायते।

* * *

शंकर-श्रुति-मार्ग

['चण्डी'—आषाढ़ १९९६]

भारत धर्म-प्रधान देश रहा है। प्राचीन सनातन धर्म अनेकानेक युगों से अनेक सम्प्रदायों, विविध धर्मों तथा आचार्य गणों के विभिन्न मत-मतान्तरों से—विशेष कर हठ-योग और नाथ-सम्प्रदाय के क्रिया-कलापों से बहुत कुछ प्रभावित हुआ और जल-स्रोत-सा इधर-उधर बहता भी रहा। ये अर्वाचीन छायायें, प्रति-छायायें सनातन धर्म के वक्ष पर ऐसी अङ्कित होती गईं कि मूल धर्म-तत्व के प्रति भी जनता पूर्ण शङ्का और घृणा की पक्षपात-पूर्ण दृष्टि से "वीभत्स", 'जघन्य" आदि विशेषण व्यवहृत करने लगी।

यदि पक्षपात एक किनारे कर दिया जाय, तो श्री शङ्कर-श्रुति का अनुशीलन अत्यन्त मधुरिमा-मय मूल-तत्व प्रकाशित करता है, जिससे सर्वत्र एक ही सिद्धान्त, एक ही योग, एक ही अटल नियम और एकता-पूर्ण महत्व दृष्टि-गोचर होता है। इस शङ्कर-उपदिष्ट मार्ग में उपर्युक्त प्रभावों से नवीनाचार्यों द्वारा अनेक नई-नई योजनाएँ, कूटार्थ आदि भी प्रवेश पा गये हैं। मूल धर्म केवल मधुर, सरल और सुन्दर है।

इस आदिनाथ-कथित श्रुति के इस विराट् महा-शास्त्र के मूलतः चार ही महा-वाक्य आधार-भूत हैं (ये वेदान्त के महा-वाक्यों से भिन्न हैं), जिन पर समग्र कर्म-काण्ड, क्रिया-कलाप और यागादि निर्भर हैं। पर भिन्न-भिन्न भूमिकाओं में प्रविष्ट साधक उनकी उतनी ही सूक्ष्म विवेचना, उतना ही गहन मनन कर सकते हैं, जितनी शक्ति-पात की मात्रा ने उनमें योग्यता उत्पन्न कर दी है अथवा भाव की उत्पत्ति की है। इसीलिये शास्त्र भी श्री गुरु को 'भाव' का उपदेश देने से वर्जित करता है।

यह एक नियम, जिसका चरम उद्देश्य विदेह-मुक्ति है, शङ्कर-आगम में पूर्णतया सर्वतो-रूपेण ओत-प्रोत दिखता है। आगम कहता है—

सर्वेभ्यश्चोत्तमा वेदाः वेदेभ्यो वैष्णवं महत्।
वैष्णवादुत्तमं शैवं शैवाद्दाक्षण्यमुत्तामम् ॥
दाक्षाण्यदुत्तामं वामं वामात् सिद्धान्तमुत्तामम्।
सिद्धान्तादुत्तमो कौलो कौलात् परतरो नहि ॥

केवल साधारण-सा श्लोक है, पर रचना तो आदिनाथ की ही है—सर्वधर्मात् उतमं धर्म कुल-धर्म शिवोदितम्।

क्रम-पूर्वक आलोचना करने से घटित होता है कि 'मूलाधार'-कमल वेद-रूपी चार पत्रों से युक्त वेदाधिष्ठातृ श्री ब्रह्मा—गुरु का स्थान है। समस्त वेद केवल सूक्ष्म रूप में वाक्-बीजान्तर्गत हैं। उसी मूल त्रिकोण में शक्ति चिर निद्रा में निद्रित है। इसलिये वेद केवल बहिर्वृत्ति है, क्योंकि इसका सम्बन्ध वैखरी से है। बिना अन्तर्मुख हुये न वेद सूक्ष्म रूप वाग्भव में लय होंगे और न शक्ति का उत्थान होगा। उपनिषद् कहता है—ज्ञानं मोक्षैक-कारणम्।

यह ब्रह्मा—गुरु की कृपा से सम्भव है।

दूसरा कमल 'स्वाधिष्ठान' है, जिसमें श्री गुरु रासेश्वरी राधा (राकिणी) से युक्त श्रुति की समस्त ऋचा-रूपिणी गोपियों से रास में विराज रहे हैं ("देख्यो कहूँ वह कुञ्ज कुटीरन बैठो पलोटत राधिका पायन")।

साधक कवि प्रसादी सङ्गीत में गाता है—"न करो मन द्वेषा द्वेषी।" द्वेष किससे? क्या वैष्णवों से, जो समस्त श्रुति को परमानन्द-विहार में एकाकार कर प्रेमा-भक्ति के रूप में आनन्द-वर्षा कर रहे हैं, जिसमें साधक सहज ही अष्ट-पाश ❀ मुक्त गोपी-प्रेम का आश्रय ग्रहण करता है और जो अन्तर्तम देश में शक्ति को उद्‌घोषित करने का आधार-भूत है। "व्यक्ताधिष्ठान-सत्वैक-मूर्ति" सर्व-व्यापक शक्ति के प्रकटार्थ आश्रय-भूत आधार को खोजती है। इस चक्र वा अवस्था में आधार कृष्ण हैं। बिना गुरु की कृपा के इससे ऊपर गति नहीं है।

कल मुरली-रव बाजित कूजित,
लज्जित कोकिल मञ्जु-मते।
मधु मधुर मधुर मधु-कैटभ भञ्जनि,
कैटभ-मज्जनि रास-रते॥

जब श्री राधा व गोपियाँ रासोन्मत्त प्रेमा-भक्ति से चूर हो अवस्था में रत रहकर परितृप्त अवस्था प्राप्त करती हैं और समस्त गात्र शिथिलता को प्राप्त होते हैं तब इस परमोल्लास तथा लक्ष्य की विश्रान्ति ज्ञानाग्नि-रूप 'मणिपुर'-चक्र में गौरी-शङ्कर के रूप में होती है।

"योगो मोक्षः"—मणिपुर में, जब बाह्य इन्द्रियाँ थक जाती हैं, तब चित्त अन्तर-तम प्रदेश में प्रवेश करता है। उस समय ज्ञान-शक्ति प्रबल होती है। यही स्थान शिव-शक्ति-युक्त मणिपुर है। श्री राधा की लूट हुई; लूटनेवाले तीन बने। श्री चरणों का महावर लूट कर ब्रह्मा ने अपना सारा शरीर ही लाल कर लिया; विष्णु ने श्री-चरण की नीलिमा-युक्त आभा से अपनी देह को सत्व-गुण-सम्पन्न किया और शेष बची नखों की चन्द्र-ज्योत्स्ना तथा बचे स्वयं श्री चरणारविन्द, सो श्री शङ्कर ने—जो "दस्युता-पतये" हैं, ज्योत्स्ना-रूपी प्रसाद तो सर्वाङ्ग में मला और श्री-चरणों को अपने हृदय में सदैव के लिए स्थापित कर लिया। वाह रे लोभी!

पर केवल मणिपुर से ही इति-श्री नहीं हुई। 'अनाहत'—विक्षेपादि व आणवादि मल, जीवन-दोष पुरुष-प्रधान वा शक्ति-प्रधान, दक्षिण वा वाम हैं, द्वैत-अद्वैत आदि विकार उत्पन्न करते हैं। अनाहतस्थ अविनश्वर इसी पुरुष-प्रधान तत्व-ज्ञान से ही विष्णु-ग्रन्थि-भेद कराते हैं।

'विशुद्ध'—पर जब पुरुष-प्रधान या दक्षिण-मार्ग श्रेष्ठत्व की ओर गति-शील होता है, तब शक्ति-प्रधान वा वाम-(श्रेष्ठ) मार्ग का आश्रयीभूत होना पड़ता है। यही पूर्णतया पाप-विहीन वा शुद्ध अवस्था प्रदान करता है। यहाँ के अधीश्वर अर्द्ध-नारीश्वर-रूप में विराज रहे हैं।

'आज्ञा'—अन्तर्वृत्ति होने पर प्रेमा-भक्ति हुई थी, जिसकी विश्रान्ति ज्ञानाग्नि में हुई, जिससे शिव-प्रधान या शक्ति-प्रधान का झगड़ा उठा। परन्तु जब इस भेद-बुद्धि का विनाश होता है, तब उस भूमिका में पदार्पण होता है, जिससे यही सिद्धान्त प्रतिपादित होता है कि—

"शिव-शक्ति-विभागेन जायते सृष्टि-कल्पना।"

शास्त्र में मां कहती है—

केचित् द्वैतमिच्छन्ति केचित् इच्छन्ति चापरे।
मम तत्वं विजानन्तो द्वैताद्वैत-विवर्जितः॥

यही सिद्धान्त कार्मण मल को निवृत्ति करता है।

सहस्रार वा कौल-तत्व—उपनिषद् का वाक्य—"गुरुरेकः।"

श्री गुरु केवल आदिनाथ हैं, जो दीक्षा-काल में जीवत्व-दोष, मल-त्रय वा परमात्मा के आत्मा हो जाने के दोष को मिटाने को मानव गुरु में आविर्भूत होते हैं और इस सातवीं भूमिका में पूर्ण एकत्व को प्राप्त करा देते हैं। इस स्थान में, जहाँ से फिर आवागमन नहीं होता, पूर्ण निर्वाण को प्राप्ति होती है। यही कौलावस्था है और इससे परे कुछ भी नहीं है।

मुक्ति संहार में है। चतुरस्र-रूपी वेद से विन्दु में लय होना ही मुक्ति है। यही सात चक्र श्री-चक्र का बोध कराते हैं। प्रारम्भ के पाँच चक्रों के अधिप जब निश्चल होते हैं, तब उनकी संज्ञा पञ्च-महाप्रेत होती है। उनके ऊपर "आज्ञा-चक्र" में स्थित शिव ही कामेश्वर हैं और सहस्रार में विन्दु-रूप गुरु-तत्व ही "श्री" हैं।

"मन्त्रात्मकस्य देवस्य देवता गुरु-रूपिणी।"

उक्त सप्त कलाएँ ही 'प्रणव' को बनाती हैं—

"तस्या वाचको प्रणवः।"

अर्थात् षट्-शिवा वअनुच्चार्य "विन्दु" मिलकर

❀ अष्ट-पाश—

लज्जा घृणा भयं शङ्का जुगुप्सा चैव पंचमी।
कुलं शीलं तथा जातिरष्टौ पाशाः प्रकीर्तिताः॥

❀ शङ्कर-श्रुत-मार्ग

सृष्टि-क्रम में प्रणव एवं यन्त्रादि को बनाते हैं।

"तस्य सप्तधा प्रान्त-भूमि प्रज्ञा"

परन्तु इस अवस्था को प्राप्त साधक को शास्त्र आज्ञा करता है कि किसी भूमिका को निम्न न देखना और निन्दा सहकर भी भाव का उपदेश मत करना। यथा—

"अन्यायो न्यायः न प्रणयेत्कमपि।"

"लोकान्न निन्द्यात्।"

"कौल-प्रतिष्ठा न कुर्यात्।"

यह तो केवल साधारण-सी व्याख्या है। यही एक नियम सर्वतोरूपेण सप्तशती के चरित-त्रय में दश महाविद्या वा अन्तर्याग, बहिर्याग आदि में सर्वत्र लागू है पर आचार्यों के मिश्रण से कुछ-का-कुछ बनाकर इस सरल धर्म में हठ-योग आदि मिला दिया गया है। इस धर्म का 'हठ' दूसरा है, जो केवल वीर-साधना है। प्रार्थना है—

तव पदमेव पर पदस्मिन्,
शील-युतो मम किन्तु शिवे॥

दुर्लभ तन्त्र साहित्य (संस्कृत) में

'गुप्तावतार दुर्लभ तन्त्रमाला' के अन्तर्गत अब तक निम्न तन्त्र प्रकाशित हो चुके हैं। ये बहुत ही कम संख्या मे छपे हैं। फलतः पहला संस्करण समाप्त हो ने वाला है। दूसरा संस्करण पता नहीं कब छपे। अतः तन्त्र-साहित्य के प्रेमियों को इनका मूल्य मनिआर्डर से भेजकर इन्हें तुरन्त मंगा लेना चाहिये। म० आ० से मूल्य भेजनेवाले बन्धुओं से डाक व्यय नहीं लिया जाता। शर्त यह है कि म० आ० पांच रुपये से कम का न हो।

महा-चीना-चार सार तन्त्र	रु २-५०	निरुत्तर तन्त्र	रु २-५०
गुप्त-साधन तन्त्र	२-५०	तोडल तन्त्र	१-५०
कुलार्णव तन्त्र	३-५०	मन्त्र-कोष	२-००
काली-तन्त्र (भाषा टीका)	३-००	कामधेनु तन्त्र	२-००
श्रीभुवनेश्वरी-रहस्य	३-००	निर्वाण तन्त्र	२-००
सांख्यायन तन्त्र	३-००	नील तन्त्र	२-००
परा-तन्त्र	२-५०	परशुराम तन्त्र	१-००

पाँच रुपये से कम मूल्य की पुस्तकें मँगानेवाले बन्धु कृपया पुस्तक के मूल्य के साथ रजिस्ट्री डाकव्यय हेतु एक रुपया और भेजें।

जो पुस्तकें चाहिए, उनके नाम म० आ० के कूपन पर लिख दें।

विद्या-रहस्य और साधना

जगत् के उच्चाति-उच्च अन्वेषण का भव्य प्रासाद केवल प्रकाश और विमर्श तक सीमित है। आदिनाथ का कथन है--"अतः परं न जानामि।" सच्चिदानन्दमयी का स्थान "वाचातीता परा कला" नीरव और निविड़ अन्धकार से परे है--"सार्वान्ते कालिका स्मृता।"

अनेक धर्मों ने सृष्टि की उत्पत्ति की भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ की हैं। अस्तु, सृष्टि की कल्पना पर विचार प्रकट न करके केवल मात्र उसका शास्त्र-वर्णित विधान जान लेना ही पर्याप्त होगा। अनुच्चार्य विन्दु से विसर्ग की उत्पत्ति, विसर्ग से शक्ति-शृङ्गाट तथा वृत्त और भू-बिम्ब की उत्तरोत्तर विकाशावस्था ही संक्षेप में सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति का चरम रहस्य है। विशेष अनुसन्धान से प्रतीत होगा कि यही रहस्य ३६ तत्वों तथा यन्त्रादि व मूर्तियों का आधार-भूत विषय है।

इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि इस मनोनीत विषय में प्रविष्ट साधक कम-से-कम मन्त्र-योग के विषय से भले प्रकार परिचित हो जाय। मन्त्र-योग के अङ्ग प्राणायाम और प्रत्याहारादि नहीं हैं, न इनसे उच्च समाधि प्राप्त होने की आशा है--

"आशिका-बन्धनं नास्ति नासिका-बन्धनं नहि।
न पद्मासन-गतो योगी न नासाग्र-निरीक्षणः॥"

जब तक स्वयं ही समाधि प्राप्त नहीं होती अथवा सहज कुम्भक (स्वभाव-गत) सिद्ध नहीं होता है, तब तक बाहर का यत्न--शारीरिक जोर केवल शरीर की क्षति करता है--

"उत्पन्न-शक्ति-बोधस्य व्यक्त-निश्शेष-कर्मणो।
योगिनः सहजावस्था स्वयमेव प्रजायते॥"

इसी सहज जप पर कबीर साहब भी जोर देते हैं, पर लक्षणों के उचित अनुशीलन के बाद साधक को प्रतीत होगा कि इस सहज साधन से मानों उसके "पिण्डाण्ड" में वीणा की झङ्कार-निखिल तारों की संवेदना-युक्त नीरव मधुरिमा-मय संगीत-लहरी चिदाकाश की ओर लय हो रही है। साधक! यही विश्व का राग है; इसी की ध्वनि का सूचक होने से हिन्दू-घरों में शङ्ख का आदर है। महार्णव की लहरें इसी काम-कला की गूँज को समस्त ब्रह्माण्ड में विकरित कर रही हैं। माँ का स्वरूप-निदर्शन केवल "आनन्द" शब्द के अन्तर्गत है--

"आनन्दं ब्रह्मणो रूपं।"

शुभ्र वर्ण शून्य-तम छाया ही मां के अवस्थान का स्थान है--

"महा-मध्यं च चक्रस्य महानन्दात्मकं पुनः।
अनुक्त-विमर्शैक-सारं समन्वियं भजेत्॥"

इसी पराति-परा कला का छाया-प्रदर्शन ही इसको विन्दु-रूप में प्रतिष्ठित करता है--

"वैन्दवे परमा काले सच्चिदानन्द-लक्षणे।
निष्प्रपञ्चे निराभाशे निर्विकल्पे निरामये॥"

केवल छाया-प्रदर्शन मात्र ही से भेद-शिव-तत्व और शक्ति-तत्व स्फुरित हुए हैं। उनके संयोग की ध्वनि से वेदादि बीज तथा उससे समस्त मातृकाओं की उत्पत्ति हुई है--

"स्थूल-सूक्ष्म-विभेदेन त्रैलोक्योत्पत्ति-मातृका।"

प्रथम तो मातृका से वामा, ज्येष्ठा और रौद्री से युक्त त्रिकोण की उत्पत्ति हुई। व्यञ्जनों की ध्वनि से शेष ३४ तत्वों तथा अपनी अधिकतर विकासावस्था में मातृका-वृत्त की उत्पत्ति हुई। अधिकाधिक विकासावस्था में अष्ट, षोडश आदि पत्र-स्थित शक्ति-योगनियाँ इन्हीं तत्वों से आविर्भूत सृष्टि-कलोपयोगी काम-क्रोधादि (अष्ट-दल) एवं निद्रा, क्षुधा, तन्द्रादि (षोडश-दल) की अधिष्ठात्री शक्तियाँ हुईं। अन्त में जब वृत्त पूर्ण बहिर्वृत्ति को प्राप्त होता है,

तब चतुर्द्वार-युक्त चतुरस्र में परिणत होता है, जिसकी प्रत्येक भुजा द्वादश-मातृका-युक्त है। इसीलिए अन्तर्वृत्ति में ही मोक्ष है। विशुद्ध मां को प्राप्त करने के लिए संहार-क्रम का ही अवलम्बन करना पड़ता है।

पूर्व-कथित छाया का निदर्शन ही अरूपा, आनन्द-मयी दो रेखा-रूप से लक्षित करता है—

“किमस्मादि-रेखा मूर्ध्नि ध्यायितव्या।”

साधक! आद्या मां का रूप अत्यन्त कराल होने पर भी परिपूर्ण प्रेम व आनन्द से ललकते हुये घट के सदृश है। यह मां स्वयं ही पुत्र को ऐसे स्थान तक में त्याग नहीं सकती है, जहाँ से उसके बन्धु-बान्धव भी उसे छोड़कर चले जा रहे हैं। पागल मां स्नेह-वश इसी स्थान में पुत्र के मलीन शव की प्रतीक्षा में है।

सौन्दर्य के उपासकों से पूछा जाय कि सौन्दर्य है क्या? एक लेखक लिखता है कि ‘यह ‘मैं’ का सौन्दर्य ही है, जो महा कुरूप ‘नाऽहम्’ को भी सुन्दर और आकर्षक बना देता है। प्रत्येक सौंदर्य-परक धर्म का अन्त व्यभिचार में होता है। डिसराइली सौन्दर्य का दृष्टि-कोण सौन्दर्योपासक पर निर्भर है। जॉन ऑक्स नेहेरिस मृत्यु को मधुर कृपा-युक्त माता मानने हैं, जिसका मुख दया और सौन्दर्य से उद्भासित हो रहा है। स्वर्गीय टैगोर युवती नहीं, वृद्धा के सौन्दर्य-चित्रण में पदावली लिखते हैं, जिसका भाव है नारी-सौन्दर्य की अयथार्थता पर एक चलतू उपदेश। लङ्का-काण्ड में गोस्वामी जी रक्त-रञ्जित श्री राम की देह के अतुलनीय सौन्दर्य के प्रकाशन में सफल हुये हैं।

इसी प्रकार घोर कालानल में प्राण-उन्मादिनी, उतावली में मुक्त-केशी, विवस्त्रा मां श्मशान में, जहाँ कि देह की सम्बन्धिनी मां तक ने परित्याग कर दिया था, उस मृत्यु से नवीन और विषाद-पूर्ण पुत्र-शव को ग्रहण करती है। सौन्दर्य केवल भाव पर अवलम्बित है। क्या यह मां का चरम सौन्दर्य नहीं है?

शून्याति-शून्य तम-प्रदेश (श्मशान) में स्थित शुभ्र-तम महा-शून्य छाया से चिदानन्द में मग्न—यही मां की बिन्दु-रूप में कल्पना है। यह अनुच्चार्य बिन्दु सम-भाव से सर्वत्र चैतन्यता प्रदान करता हुआ स्वयं निर्विकल्प और निहित तत्व है। इसकी आनन्दोल्लास की अवस्था स्व-अंश से श्रीविद्या व पञ्चाशत मातृकाओं की सृष्टि हुई, जिनसे अग्नि-अर्क-सोमात्मक काम-कला-त्रिकोण की रचना हुई। गहन विषय की ओर आगे न बढ़ इन महाविद्याओं के केवल स्वरूप-ध्यान की ही विवेचना करने से विषय स्पष्ट हो जायगा।

श्री विद्या

अरूप पदार्थ अपनी इच्छा-शक्ति की परितृप्ति के लिये सृष्टि का नियमन करने को ‘श्रीविद्या’-रूप में आविर्भूत हुआ है। रागात्मिका, रक्त-कमलासीना, रक्ताम्बरा ‘श्रीविद्या’ ही समग्र सृष्टि का त्रिपुरेश्वरी के रूप में सञ्चालन कर रही है।

साधक! पाश ही समस्त जीवों को बद्ध करता है। पञ्च-बाण और इक्षु-धनु से पार पानेवाला कौन है?

“बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।”

इस महांकुश से कौन आगे बढ़ सकता है? सांसारिक जीवन राग-मोह से व्याप्त है। उसी का द्योतक है रक्त-वर्ण और रक्त-कमल। इनसे नियन्त्रित किया हुआ पञ्च-प्रेत-मय प्रपञ्च है। किसकी सामर्थ्य है कि इतने दृढ़ शासन से बाहर जा सके? भक्त की बात दूसरी है।

यही समस्त अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों की परा भट्टारिका ‘श्री विद्या’ भुवन-रूप में प्रकट होकर सृष्टि का शासन करती है। पञ्च-तत्वों के नियन्त्रणार्थ पीताम्बरा-रूप महालक्ष्मी के रूप में सौख्य आदि प्रदान किया, ग्रहण किया और विश्व के मङ्गलार्थ धूमावती के रूप में आधि-व्याधि से पीड़ित किया। मातङ्गी-रूप में अवशेष को ग्रहण किया और विश्व के रक्षार्थ भैरवी-रूप धारण किया। क्योंकि अन्त में मुक्ति संहार में है, संहार-मूर्ति छिन्न-मस्ता का रूप धारण कर इडा-पिङ्गला-युक्त सुषुम्ना को रक्त-धार में प्रकट किया, जो अन्तर्वृत्ति का सूचक है।

साधक ! समस्त विश्व प्रपञ्चेश्वरी 'श्री विद्या' से चला और इस समस्त विश्व में विकाशावस्था का मूल मातृका ही है, जिससे यह अनन्त कोटि सृष्टि असंख्य प्रकार की दिखाई देती है। भेद-बुद्धि का इतना दौर-दौरा है कि एक दूसरा जैसा नहीं मिलता। इस सब भेद की जड़ में यही ५० वर्ण हैं

जब श्रीविद्या सृष्टि-कार्य में अत्यन्त शिथिल होती हैं, तब उनकी रक्त-रञ्जित आभा पवित्र सर्व-व्यापी नीलिमा में परिवर्तित हो जाती है। पञ्च-तत्वों के अधिपों को मार उनके कपालों का मुकुट बन जाता है। पाश को काटने के लिए हाथ में छुरी आ जाती है। स्नेह-वत्सला मां कातर सन्तान की रक्षा के लिए अपने हाथों में पुष्प-धनु को बाणों-सहित खप्पर में धधकती हुई ज्ञानाग्नि में जलाकर उसके रक्षार्थ खड्ग धारण करती हैं। राग-रञ्जित-रक्त-कमल मुकुलित नील वर्ण का हो गया है। भेद मूला मातृका छिन्न-शिर (मुण्ड)-माल बन गई है। पुत्र-प्राणा मां स्तन खोले पुत्र को उच्च स्वर से पुकार रही है।

इतनी करुणामयी मां—"स्मृतापि एक-वारा सदा-मुक्ति हेतुः"—क्या सौन्दर्य की चरम भूत नहीं ? साधक के दृष्टि-कोण में यही अन्तर है। वह पूजा के अन्त में अन्य सम्प्रदायों की तरह पापी-का-पापी ही नहीं रहता।

"दुर्गा दुर्गा बोले तो गेल पापी सब।"

यही ब्रह्म-मयी द्वितीया है, जो सृष्टि के पूर्व आद्या-रूप में आनन्द-मयी थी।

समस्त उच्च साधनाओं का ध्येय केवल अन्तः-करण-चतुष्टय का लय करके स्वरूप में स्थित होना है। यह शाक्त-साधना में अति सुगम है, जहाँ उस परात्ति-परा भट्टारिका निखिल ब्रह्माण्ड-जननी से माता और अबोध पुत्र का सम्बन्ध है। शिशु को स्वयं कुछ करना-धरना नहीं। वह तो पूर्णतया मां पर अवलम्बित है। उसे ज्ञान से कुछ काम नहीं।

ज्ञान ही अहङ्कार की जड़ है। सबसे विचित्र तो यह है कि जैसे जल-स्रोत नीचे को ही बहता है, उसी प्रकार केवल मां ही बच्चे को प्यार करती है। बच्चे को तो केवल अबोध शिशु ही बनना है, जिसमें मुख्यता है सरलता और सहज साधना की। बच्चे का तुतलाना ही मां को प्रसन्न करता है, न कि धुरन्धर आचार्य का स्तवन।

विधि-निषेध के झगड़े से परे शिष्य का मुख्य साधन अश्रु-पात ही है—

"श्रद्धयाऽश्रद्धया वापि यः कश्चिद् मानवः स्मरेत्।
दुर्गं च दुर्गतिं जित्वा स याति परमां गतिम्॥"

जिससे वह जगज्जननी का मणि-द्वीप स्थित सिद्धासन कँपा देता है। मां दयामयी शिशु-वत्सला जल्दी में दिग्वस्त्रा ही भागकर आती है। इस परम स्वरूप को देखने का अधिकारी केवल पूर्ण वृत्ति का साधक ही है, अन्य नहीं। ज्ञानियों के लिये तो मां ने अपने को वस्त्रों में रुद्ध कर लिया है।

शैशव भेद-बुद्धि-शून्य अवस्था है—सर्वत्र समता का प्रत्यक्ष उदाहरण है—"सदसद् वाखिलात्मके।" शिशु केवल मां को ही सब कुछ समझता है। जिस विराग-प्राप्ति के लिये मुनि कठिन तप करते हैं, वह श्मशान और शव आदि के दर्शन ही से करस्थ है। वहाँ काम-क्रोध आदि के हटाने का प्रयास नहीं करना पड़ता। मां के सम्मुख होते ही भय-त्रय नष्ट हो दर्शन का अधिकारी बन जाता है। शिशु मां की महिमा से डरता नहीं। एकमात्र उसी पर निर्भर रहता है। उसके दोष मां की दृष्टि में क्षम्य ही नहीं, वरन् आदरणीय हैं। इस प्रकार अधिकार-सम्पन्न साधकधृष्टता-पूर्वक पूछता है—

"संसार यखिल न छिन,
मुण्ड-माल को थाइ पेलि ?"

नवरात्र

'नवरात्रि' से ९ रात्रियों का प्रयोजन कदापि नहीं है। नव-शक्तियों से युक्त होने से 'नवरात्रि' कही जाती है—

"नव-शक्तिभिः संयुक्तं नवरात्रं तदुच्यते ।"

(शक्ति-संगम, २ खण्ड, १३ पटल, श्लोक २)

उग्रचण्डा आदि नव शक्तियाँ हैं।

मुख्यतः 'नवरात्र' दो हैं—

(१) चैत्र मास में अथवा 'वासन्तीय' और–

(२) आश्विन मास में वा 'शारदीय'।

महाकाल-संहिता युग के अनुसार ४ नवरात्रों का उल्लेख करती है। यथा—

(१) सत्य युग में चैत्र शुक्ल

(२) त्रेता में आषाढ़ शुक्ल

(३) द्वापर में माघ शुक्ल

(४) कलि में आश्विन शुक्ल

चैत्र की 'शयन' तथा आश्विन की 'बोधन'–नवरात्र कही गई है। आश्विन वा शारदीय 'नवरात्र' प्रधान प्रकार से सर्व-मान्य है। इसमें जैसे कि चण्डिका से सभी की मूल विद्या का इंगित है, उसी प्रकार 'सरस्वती' शब्द सभी का बोधक है। जैसे–

अनिरुद्ध-सरस्वती=आद्या

नील-सरस्वती=द्वितीया

श्री-सरस्वती=श्री विद्या

सम्वत्-सरस्वती=भुवना

चण्डिका आदि भी इसी प्रकार सबकी द्योतक है। यथा—

चण्डिका=आद्या

उग्र-चण्डिका=द्वितीया

प्रचण्ड-चण्डिका=छिन्ना

इस प्रकार पूर्वाचार्यों ने इन शब्दों को पशु-सङ्कट में नियोजित किया था। इसलिये पञ्चांग-कार 'स्वरस्वती'-शब्द का उपयोग करते हैं।

उपासना-काण्ड में तिथि प्रधान है और वह देवतांग मानी गई है। नक्षत्र पौराणिक धर्म है और उपासना में गौण माना गया है। शक्ति-सङ्गम, महाकाल-संहिता आदि इसी मत को मानते हैं तथा पुरश्चर्यार्णव और निर्णय-सिन्धु में इसके प्रचुर प्रमाण-युक्त श्लोक हैं।

उपासना-काण्ड में ज्योतिष का अपना महत्व-पूर्ण स्थान है, पर तिथि को प्रधानता दी गई है, नक्षत्र का विषय गौण है। सम्प्रदाय-त्रय से यद्यपि पारण अलग-अलग है, पर नवमी को पारण आवश्यक है। इस नवमी को केवल शुद्ध नवमी—सूर्योदय में होना जरूरी है। उपर्युक्त आशय के तन्त्रों के अनेक उद्धरण सुलभ हैं।

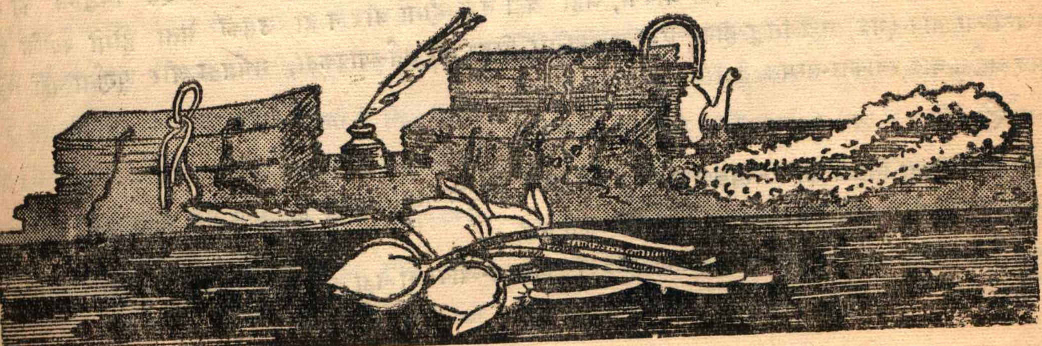

प्रश्नोत्तर

[परम पूज्य 'राष्ट्रगुरु श्री १००८ श्री स्वामी जी महाराज अपने प्रवचनों में प्रायः प्रतिदिन जिज्ञासुओं के महत्वपूर्ण प्रश्नों का समाधान अति सरल शैली में करने की कृपा किया करते हैं। एक बन्धु ने ऐसे ही दो प्रश्नों के उत्तर लिख भेजने की कृपा की है। क्या ही अच्छा हो कि अन्य बन्धु भी पूज्यश्री के मुख से प्राप्त उपदेशों को परोपकाराय लिख भेजने का पुण्य कार्य करें। हम उसे सधन्यवाद प्रकाशित करेंगे। –सं०]

प्रश्न संख्या १:—क्या ब्रह्म और प्रकृति अनादि हैं या एक ही वस्तु के दो नाम ?

उत्तर :—

प्रकृति नाम स्वभाव का है। किसी मनुष्य की प्रकृति उससे अलग नहीं हो सकती। इसी प्रकार प्रकृति ब्रह्म का स्वभाव है और वह उससे अलग नहीं है। ब्रह्म और प्रकृति में कोई भेद नहीं है, एक रूप के ही दो नाम दिये गये हैं। भेद केवल अविद्या के कारण दिखाई दे रहा है। अविद्या माया का एक रूप है। पाँच तत्वों के ऊपर परमेश्वर का माया-तत्व है और इस माया के कारण यह सब कुछ अलग-अलग दिखायी दे रहा है। पाँच तत्व कार्य हैं और माया तत्व कारण रूप है। कार्य और कारण अलग-अलग नहीं हो सकते, यह भेद इसी प्रकार का है।

जैसे :—

स्वर्ण और स्वर्णाभूषण में भेद, अंधकार में सर्प और रस्सी का भेद आदि।

जब ज्ञान का प्रकाश होने पर अविद्या-रूपी अंधकार नष्ट हो जाता है, तब भेद नष्ट हो जाता है और ब्रह्म तथा प्रकृति में कोई भेद नहीं दीखता, केवल एक ही तत्व ब्रह्म रह जाता है।

प्रश्न संख्या २:—कुछ विद्वानों का मत है कि न अद्वैत-वाद है, न द्वैत-वाद है किन्तु त्रैत-वाद है। क्या यह सिद्धान्त उचित है ?

उत्तर:—

त्रैत-वाद सिद्धान्त के माननेवालों का मत है कि संसार में तीन अलग-अलग तत्व—ब्रह्म, जीव और माया देखे जाते हैं और तीनों का अलग-अलग अस्तित्व है किन्तु यह विचार उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि यदि इस सिद्धान्त को माना जाता है, तो भेद मानने पर एक स्थान ऐसा आयेगा, जहाँ ब्रह्म नहीं होगा और न ही उसकी सत्ता होगी क्योंकि इसके बिना अन्योन्या भाव (भेद) नहीं सिद्ध होगा, ऐसा न होने पर ईश्वर की सर्व-व्यापकता, सर्वज्ञता और पूर्णता नहीं रहेगी, इसलिए अद्वैत-वाद स्वीकार-सम्मत है।

जैसे :—

मिट्टी का घड़ा मिट्टी का ही स्वरूप है। तब तो उसमें मिट्टी-तत्व व्यापक है। यदि घड़ा अलग वस्तु (मिट्टी से अलग) है, तो घड़े में मिट्टी की व्यापकता नहीं हो सकती।

इसी प्रकार यदि तीनों तत्व अलग-अलग होंगे तो ईश्वर की सर्व-व्यापकता नहीं होगी। इसलिए अद्वैत-वाद का सिद्धान्त पूर्ण है।

-: संस्मरण :-

[श्रद्धेय कविवर पण्डित सुमित्रानन्दन जी पन्त ने 'कौल-कल्पतरु' श्री शुक्ल जी के शाक्त-धर्म-प्रचार के महत् कार्य में अन्तरङ्ग सहयोगी एवं 'चण्डी' के सुलेखक स्वर्गीय पण्डित कालीचरण जी पन्त के सम्बन्ध में प्रस्तुत संस्मरण लिखने की कृपा की है, जिससे उनके साधना-परायण परिवार का महत्वपूर्ण परिचय मिलता है। आशा है कि पाठक बन्धु इसे ध्यान से पढ़कर आवश्यक उद्‌बोधन प्राप्त करेंगे।—सं०]

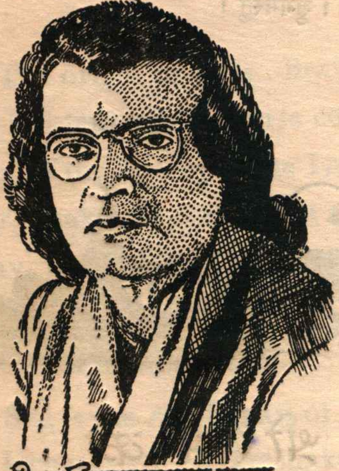

श्री सुमित्रानन्दन पन्त

स्वर्गीय श्री कालीचरण पंत मेरे मौसेरे भाई लगते थे। वे बाहर से बड़े सूखे और कठोर जान पड़ते थे पर भीतर बड़ा कोमल सहृदय हृदय रखते थे। छुटपन से ही उनके समवयस्क उनसे डरते थे और एक प्रकार से उनसे दबते थे। उनके स्व० पिता श्रीजयकृष्ण पंत शक्ति के उपासक थे। कालीचरण के बड़े भाई मायाराम पंत शक्ति-साधना में सिद्ध माने जाते थे। वे श्मशान में जाकर शव-साधना की क्रिया करते थे, ऐसा मैंने सुना है। स्वभाव के बड़े उदार तथा परोपकारी थे किन्तु अत्यधिक मद्य-सेवन के कारण उनकी मृत्यु युवावस्था ही में हो गयी। कालीचरण के मझले भाई श्री भोलादत्त पंत भी एक छोटे-मोटे शाक्त ही थे। वे गृहस्थ-जीवन को अधिक महत्व देते थे।

अपने पिता तथा परिवार के वातावरण से संस्कार ग्रहण कर सबसे छोटे भाई कालीचरण ने शक्ति-उपासना ही का मार्ग अपनाया। उनकी लगन तथा निष्ठा देखकर अल्मोड़ा के राजा साहब श्री आनन्द सिंह जी ने उन्हें इस मार्ग में दीक्षित कर उनके विकास में बड़ी सहायता की। फलतः वे अपने मार्ग प्रचण्ड साधक माने जाते थे और लोगों के कथनानुसार उन्हें अनेक सिद्धियाँ भी प्राप्त थीं। उनके पास शाक्त-दर्शन, पूजन, विधि-विधान आदि संबंधी पुस्तकों का अच्छा संग्रह था, जिनमें कुछ दुर्लभ ग्रंथ भी बताये जाते हैं।

कालीचरण पंत अपनी साधना तथा मार्ग-संबंधी बातों को अत्यन्त गोपनीय रखते थे। बाहर से देखने पर कोई नहीं कह सकता था कि वे एक उच्च कोटि के साधक हैं। कभी देवी-देवता-संबंधी चर्चा छिड़ती, तो वे मर्म-भरी मुसकान कर बातों की दिशा मोड़ देते थे।

कालीचरण जीवन बीमा कंपनी के उच्च अधिकारियों में एक थे। वे अपने व्यवसाय में भी सफल माने जाते थे। मेरा परिचय उनसे बहुत पीछे हुआ। वे मुझसे कभी खुलकर बातें नहीं करते थे, कभी उनके मार्ग के बारे में पूछने पर टालमटोल करते रहते थे। मुझ पर स्नेह रखते थे, इसलिए उनका दुराव उनके पथ का एक लक्षण मान कर मैं हँस देता था। पर मेरे भांजे बद्रीदत्त पांडे से उनकी खूब घुटती थी। उसे वे कुछ चमत्कार की बातें बतलाते रहते थे।

निःसंदेह कालीचरण भक्ति-प्राण स्वभाव के विनम्र व्यक्ति थे। उनका अन्तर्व्यक्तित्व छिपा हुआ था। उसके बारे

में कह सकना कठिन है। आयु के अन्तिम वर्षों में वे थोड़ा बहुत खुल गए थे। किन्तु पते की बात पूछने पर कहते थे—"मैं तो सिपाही हूं; मुझे कुछ भी बताने का अधिकार नहीं।"

सुनता हूँ, मृत्यु के समय उन्हें प्रकाश-स्वरूपिणी भगवती के दर्शन हुए थे और उन्हीं के आकर्षण में लीन होकर उन्होंने अपनी ऐहिक लीला का संवरण किया। मृत्यु के समय उन्होंने अपनी पत्नी को बुलाकर पूछा—"तुम्हें भगवती का दिव्य स्वरूप दिखायी पड़ता है?" उनके 'नहीं' कहने पर उन्होंने कहा "वह सामने तो खड़ी हैं, मुझे बुला रही हैं, मैं अब जाता हूँ"—यही उनके अंतिम शब्द थे।

कालीचरण की आकस्मिक मृत्यु का समाचार सुन मन को धक्का लगा था। वे कुछ ही महीने पहले प्रयाग आए थे और अभी काफी स्वस्थ थे। प्रयाग से लौटने के बाद उन्हें अलबत्ता नेत्र-रोग ने कष्ट दिया था, ऐसा उन्हीं के पत्र से ज्ञात हुआ था, पर गर्मी में मेरे अल्मोड़ा जाने तक उनका प्रायः दो सप्ताह पूर्व देहांत हो चुका था। वे अपने सौजन्य की स्मृति मन में छोड़ गए हैं। भगवान् उनकी आत्मा को शांति प्रदान करें। शुभमस्तु।

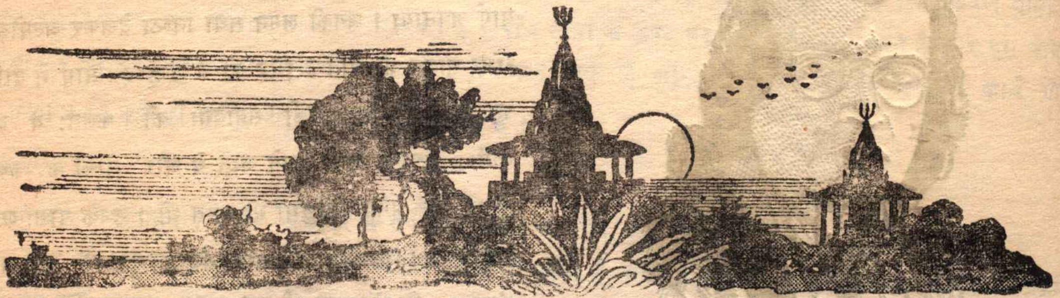

नारद द्वारा भगवान् श्रीराम को

आश्विन मास में नवरात्र-व्रत का उपदेश

"हे राघव! रावण के विनाश का उपाय बताता हूं। इसके लिए आप श्रद्धापूर्वक आश्विन मास में नवरात्र-व्रत करिये। हे राम! नवरात्र में उपवास, भगवती का पूजन तथा विधिवत् जप-होम करने से सब कामनाएँ पूरी होती हैं। देवी को पवित्र पशुओं की बलि अर्पण कर जप का दशांश हवन करके आप शक्ति-सम्पन्न हो जायेंगे। सबसे पहले भगवान् विष्णु ने यह व्रत किया था फिर शंकर जी ने और ब्रह्मा जी ने किया। उनके बाद इन्द्र ने इस व्रत का पालन किया। महर्षि विश्वामित्र ने यह व्रत किया था। भृगु, वशिष्ठ तथा कश्यप भी इसे कर चुके हैं। जब देव-गुरु बृहस्पति की भार्या को चन्द्रमा ने हर लिया था, तब उन्होंने भी नवरात्र-व्रत किया था। अतएव हे राजेन्द्र! रावण का बध करने के लिए आप भी यह व्रत करिये। वृत्रासुर का बध करने के लिये इन्द्र ने और त्रिपुरासुर के नाशार्थ भगवान शङ्कर ने इस उत्तम व्रत को किया था। मधु दैत्य के बध के लिये भगवान् विष्णु ने सुमेरु पर्वत के शिखर पर इस व्रत का पालन किया था। अतएव हे महामते! आप भी पूर्ण तत्परता के साथ यही व्रत कीजिए।"

[दे० भा०—तृतीय स्कन्ध—अध्याय ३०]

SHAKTI-UPASANA

The origin of all is Brahman, the infinite, the ineffable. Out of this supreme Existent this universe comes to be. The power that brings this finite world out of the bosom of the Infinite is Brahman's own puissance, Brahman as power, Shakti. It is called in the Veda, 'MAYA' with which the One becomes the Many. Maya is not a power of illusion or falsehood, but a power of formation. Out of the Real the great Maya-Shakti forms the innumerable reals that constitute this manifestation.

She is the Adi Shakti of which all other Shaktis are projections. Jnanashakti, Icchashakti, Kriyashakti, which in their combined workings uphold this universe, are self-castings of this Primal Shakti whom we adore as the Divine Mother.

She is the Chit Shakti who makes all life possible. In worshipping Her, we worship the Source and Sustainer of our existence. If we lose sight of Her, we become ineffective and wander like blind men in a dark room. By Japa, by worship, by meditation, by yoga, by whatever means we must establish Her presence in our waking consciousness. Then only will we be able to make full use of our life and all that the Divine has given to us.

This is so not only individually. Even as a nation, India needs to awake to the Shakti that ensouls her and build her life in the mould that is demanded by her Spirit. The first step in this direction is to look upon all forces, all energies as the expressions of Bharata Shakti at different levels of life, in different spheres of development, and devote ourselves to their fullest growth in the image of the Mother of us all.

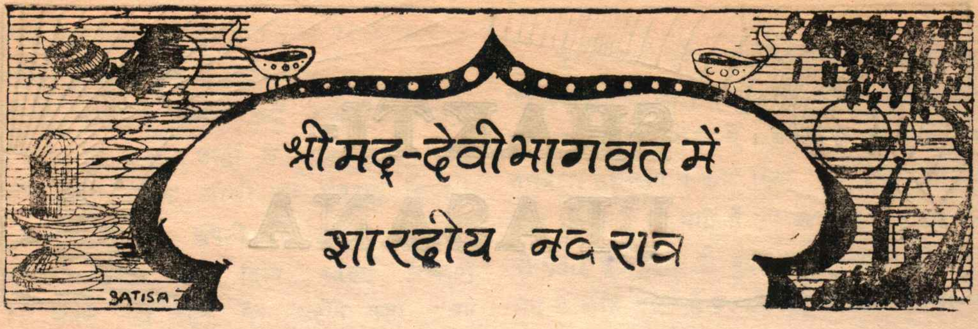

श्रीमद्-देवीभागवत में शारदीय नवरात्र

शरत् काल अर्थात् आश्विन के नवरात्र में विशेषतया भगवती श्री जगदम्बा चण्डिका देवी का व्रत करना चाहिये । इसी प्रकार वसन्त ऋतु के नवरात्र में भी यह व्रत विधेय है । ये दोनों ही ऋतुएँ 'यम-दंष्ट्रा' कही गई हैं क्योंकि इनमें विविध प्रकार के रोगादि उत्पन्न होते हैं और प्राणियों का व्यापक रूप से नाश होता है । अतएव आत्म-कल्याण की इच्छा करनेवाले व्यक्तियों को प्रयत्नपूर्वक नवरात्र का व्रत विधिपूर्वक करना चाहिए । इस व्रत का प्रारम्भ शुक्ल प्रतिपदा से होता है । इसलिए इसकी तैयारी अमावास्या के दिन ही बुद्धिमान लोगों कर लेनी चाहिये ।

अमावास्या के दिन

व्रत से सम्बन्धित सभी वस्तुओं को पहले एकत्र करे । भोजन केवल एक बार करे और हविष्य पदार्थों को ही ग्रहण करे । अपने घर में या घर के निकट किसी समतल और पवित्र स्थान में सोलह हाथ लम्बा-चौड़ा मण्डप बनाये । इस मण्डप को सुन्दर स्तम्भों और पताकाओं से सजाए । सारे स्थान को श्वेत मिट्टी गोबर से लिपवाए ।

उक्त मण्डप के मध्य में एक सुन्दर, चौकोर और टिकाऊ वेदी बनाए । यह वेदी चार हाथ लम्बी-चौड़ी और एक हाथ ऊँची होनी चाहिये । इस वेदी या पीठ के ऊपर चाँदनी तनवाए और चारों ओर रंग-बिरंगे तोरण बनाकर तथा बन्दनवार लटकाकर उसे शोभा-युक्त करे ।

रात्रि के समय ऐसे विद्वान् ब्राह्मणों को सादर बुलाए, जो श्री जगदम्बा की उपासना के तत्व को जानते हों और जो सदाचारी, संयमी तथा वेद-वेदांगों के ज्ञाता हों ।

प्रातःकाल नदी, नद, तड़ाग, बावली, कुँए पर जाकर अथवा घर में ही विधि-वत् स्नान करे । फिर नित्य-कर्म समाप्त कर ब्राह्मणों का अनुष्ठान करने के लिये वरण करे । मधुपर्क और अर्घ्य-पाद्य से उनका पूजन कर उन्हें यथाशक्ति वस्त्र तथा आभूषण भेंटकर सन्तुष्ट करे । इस कार्य में कंजूसी न करे क्योंकि सब प्रकार से सन्तुष्ट ब्राह्मणों के द्वारा किये गये पूजनादि कर्म ही फलदायक होते हैं ।

श्रीमद्-देवी भागवत् और चण्डी-माहात्म्य (श्री दुर्गा सप्तशती) का पाठ करने के लिये यथा सामर्थ्य नौ, पाँच, तीन अथवा एक ब्राह्मण की नियुक्ति करे । श्रीमद् देवीभागवत का पारायण करने के महत्कार्य में किसी शान्त स्वभाववाले ब्राह्मण को नियुक्त करना चाहिए ।

सबसे पहले वैदिक मन्त्रों से स्वस्त्ययन अर्थात् मंगल-पाठ कराए । तदनन्तर पूर्वोक्त वेदी के ऊपर एक सिंहासन स्थापित करे । सिंहासन में एक नवीन रेशमी वस्त्र बिछाए । इस वस्त्र के ऊपर शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म से युक्त चार भुजाओं वाली अथवा विविध आयुधों से युक्त अठारह भुजाओं वाली सनातनी भगवती की प्रतिमा को प्रतिष्ठित करे । देवी की यह प्रतिमा यथाशक्ति रत्न-जटित आभूषणों मोतियों के हार तथा सुन्दर वस्त्रों से शोभायमान होनी चाहिये । प्रतिमा की आकृति सौम्य और

शुभ लक्षणों से युक्त हो, इसका विशेष ध्यान रखना चाहिये ।

यदि प्रतिमा के प्रतिष्ठा करना सम्भव न हो, तो उसके स्थान पर नवार्ण मन्त्र से युक्त श्री दुर्गा-यन्त्र की स्थापना करे ।

वेदी के दाहनी ओर एक कलश स्थापित करे । इस कलश को वैदिक मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर उत्तम तीर्थ-जल से परिपूर्ण करे और जल में सुवर्ण तथा रत्न छोड़ दे । कलश को पञ्च-पल्लवों से शोभायमान करे । पूजा में लगनेवाली सभी सामग्रियों को वेदी के चारों ओर सजा कर रख ले । मङ्गलाचार के लिये गायन-वादन की व्यवस्था कर ले ।

प्रतिपदा से पूजनारम्भ

हस्ति-नक्षत्र से युक्त नन्दा (प्रतिपदा) तिथि में विधिवत् पूजा प्रारम्भ करना शुभ होता है । इस पूजा से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है । सम्भव हो तो इस दिन उपवास रखे अथवा केवल एक बार रात्रि मे हविष्य का भोजन करे ।

पूजन प्रारम्भ करने के पहले देवी से प्रार्थना करे । यथा–

करिष्यामि व्रतं मातर्नवरात्रमुत्तमम् ।
साहाय्यं कुरु मे देवि जगदम्ब ममाखिलम् ॥

अर्थात् हे मातः ! मैं नवरात्र के उत्तम व्रत को करूँगा । हे देवि, हे जगदम्ब ! मेरी पूर्ण सहायता करिए !

इसके बाद विधि-पूर्वक मन्त्रों का उच्चारण करते हुये जगदम्बा का पूजन करे । पूजन में चन्दन-अगर-कपूर; मन्दार-करंज-अशोक-चम्पा-कनैल-मालती-ब्राह्मी आदि के सुगन्धित पुष्प और विल्वपत्र; धूप तथा दीप का सविधि प्रयोग करे । नारियल-नीबू अनार-केला-नारंगी-कटहल-बिल्व फलों के साथ अन्न प्रदान करे । मांसाहारी लोगों को पशु-बलि करनी चाहिये ।

होम के लिए त्रिकोणाकार कुण्ड अथवा स्थण्डिल की रचना करे, जिसका प्रमाण (नाप) शुभदायक रखे ।

प्रातः, मध्याह्न और सायं—तीनों काल पूजन करे और गीत-वाद्य-नृत्य द्वारा अधिक-से-अधिक उत्सव मनाये । प्रतिदिन भूमि पर ही शयन करे ।

प्रतिदिन कुमारी-पूजन करे । चाहे तो केवल एक कुमारी का नित्य पूजन करे या प्रति-दिन एक-एक कर कुमारी की संख्या बढ़ाता जाय अर्थात् पहले दिन एक कुमारी का, दूसरे दिन दो कुमारियों का, तीसरे दिन तीन का—इसी प्रकार नवें दिन नौ कुमारियों की पूजा करे । अथवा प्रतिदिन नौ कुमारियों का पूजन करे। जैसी श्रद्धा और शक्ति हो, वैसा करे किन्तु कंजूसी न करे ।

ब्राह्मणों को ब्राह्मण जाति की कन्या का कुमारी-रूप में पूजन करना चाहिये । क्षत्रिय को ब्राह्मण-क्षत्रिय दोनों जातियों की कन्या का, वैश्य को ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य तीनों जातियों का और शूद्र को चारों जातियों की कन्या का 'कुमारी'-रूप में पूजन करने का अधिकार है। विविध धन्धों में लगे हुये लोगों को अपनी ही जाति की कन्या का पूजन करना चाहिये ।

ब्राह्मण-कन्या के पूजन से सब कार्यों की सिद्धि, क्षत्रिय-कन्या के पूजन से विजय-प्राप्ति, वैश्य-कन्या के पूजन से धन-लाभ और शूद्र-कन्या के पूजन से वंश-वृद्धि होती है ।

कुमारियों के नाम और उनकी पूजा से प्राप्त होनेवाले फल का विवरण निम्न प्रकार है—

एक	वर्ष की कन्या	"कुमारिका"	दुःख-दारिद्र्य का नाश, शत्रु-संहार और धन-आयु-बल की वृद्धि
तीन	" "	"त्रिमूर्ति"	धर्म-अर्थ-काम की पूर्ति, धन-धान्य की प्राप्ति और पुत्र-पौत्रादि की वृद्धि
चार	" "	"कल्याणी"	विद्या (ज्ञान), विजय, राज्य-सुखादि सभी कामनाओं की पूर्ति

पाँच	वर्ष की कन्या	"रोहिणी"	रोग-नाश
छः	" "	"कालिका"	शत्रु-नाश
सात	" "	"चण्डिका"	धन और ऐश्वर्य की प्राप्ति
आठ	" "	"शाम्भवी"	मोह-दुःख-दारिद्रय का नाश तथा संग्राम में विजय-प्राप्ति
नौ	" "	"दुर्गा"	शत्रु-नाश, साधना में सिद्धि और परलोक में सुख की प्राप्ति
दस	" "	"सुभद्रा"	सभी कामनाओं की पूर्ति

दस बर्ष से अधिक आयुवती कन्याओं का पूजन कुमारी-रूप में नहीं करना चाहिये। ऊपर लिखे नामों से ह
विधि-वत् कुमारियों का पूजन करे। पूजन के मन्त्र क्रमशः निम्न प्रकार हैं—

मन्त्रों के पूर्व में 'श्रीरस्तु' अथवा 'श्री' या किसी अन्य बीज-मन्त्र से युक्त मन्त्र का उच्चारण करे।

कुमारिका...कुमारस्य च तत्वानि या सृजत्यपि लीलया।
काद्बीनापि च देवांस्तां कुमारीं पूजयाम्यहम् ॥

जो कुमार कार्तिकेय के तत्वों को और ब्रह्मा आदि देवताओं को अपनी लीला से रचती हैं, उन भगवती 'कुमारी' का मैं पूजन करता हूँ।

त्रिमूर्ति·· सत्वादिभिस्त्रिमूर्तिर्या तैर्हि नाना-स्वरूपिणी।
त्रिकाल-व्यापिनी शक्तिस्त्रिमूर्ति पूजयाम्यहम् ॥

सत्व आदि व गुणों के द्वारा जो तीन मूर्तिवाली हैं और उन्हीं (गुणों) के द्वारा जो विविध स्वरूपवाली हैं, तीनों कालों में व्याप्त रहनेवाली शक्ति हैं, उन भगवती 'त्रिमूर्ति' का मैं पूजन करता हूँ।

कल्याणी ..कल्याण-कारिणी नित्यं भक्तानां पूजिताऽनिशम्।
पूजयामि च तां भक्त्या कल्याणी सर्व-कामदाम् ॥

अहर्निश पूजा किए जाने पर जो अपने भक्तों का नित्य कल्याण करनेवाली हैं, उन सब कामनाओं को देनेवाली भगवती 'कल्याणी' का मैं भक्ति-पूर्वक पूजन करता हूँ।

रोहिणी रोहयन्ती च बीजानि प्राग्-जन्म-सञ्चितानि वै।
या देवी सर्व-भूतानां रोहिणीं पूजयाम्यहम् ॥

समस्त प्राणियों के पूर्व जन्मों के सञ्चित कर्म-बीजों को जो उगाती हैं, उन भगवती 'रोहिणी' का मैं पूजन करता हूँ।

कालिका काली कालयते सर्वं ब्रह्माण्डं स-चराचरम्।
कल्पान्त-समये या तां कालिकां पूजयाम्यहम् ॥

कल्प के अन्तिम समय में चर-अचर के सहित सम्पू
विश्व का जो लय करती हैं, उन भगवती 'कालिका'
का मैं पूजन करता हूँ।

चण्डिका·· चण्डिकां चण्ड-रूपां च चण्ड-मुण्ड-विनाशिनीम्।
तां चण्ड-पाप-हरणीं चण्डिकां पूजयाम्यहम् ॥

प्रचण्ड रूपवाली और चण्ड मुण्ड का विनाश करनेवाली और महा पापों को दूर करनेवाली भगवती 'चण्डिका' का मैं पूजन करता हूँ।

शाम्भवी अकारणात् समुत्पत्तिर्यन्मयैः परि-कीर्तिता।
यस्यास्तां सुखदां देवीं शाम्भवीं पूजयाम्यहम् ॥

वेदों द्वारा जिनकी उत्पत्ति बिना किसी कारण अर्थात्
स्वतः बताई गई है, उन सुख देनेवाली भगवती 'शाम्भवी'
का मैं पूजन करता हूँ।

दुर्गा दुर्गात् त्रायति भक्तं या सदा दुर्गति-नाशिनी।
दुर्गेया सर्व-देवानां तां दुर्गां पूजयाम्यहम् ॥

दुर्दशा को नष्ट करनेवाली जो अपने भक्त को विपत्ति
से सदा बचाती हैं और जो समस्त देवताओं के लिये भी
कठिनाई से जानने योग्य हैं, उन भगवती 'दुर्गा' का पूज
करता हूँ।

सुभद्रा सुभद्राणि च भक्तानां कुरुते पूजिता सदा।
अभद्र-नाशिनीं देवीं पूजयाम्यहम् ॥

। किये जाने पर जो अपने भक्तों का सदा कल्या

❀ श्री मद्-देवी भागवत में शारदीय नवरा

करती हैं, अमङ्गल का नाश करनेवाली उन भगवती 'सुभद्रा' का मैं पूजन करता हूँ।

उक्त मन्त्रों का उच्चारण कर वस्त्र, आभूषण, पुष्पमालाओं और सुगन्ध आदि से कन्याओं का सदा भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये।

नवरात्र के नवों दिन पूजन करने में यदि असमर्थ हो तो केवल अष्टमी के दिन विशेष रूप से भगवती का पूजन करे क्योंकि दक्ष-यज्ञ को ध्वस्त करनेवाली भद्रकाली का आविर्भाव करोड़ों योगिनियों के सहित 'अष्टमी' को ही हुआ था। अतः अष्टमी को विशेष पूजन का अत्यधिक महत्व है।

अष्टमी के दिन खीर तथा मांस से हवन कर ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये तथा फल-फूल का उपहार अर्पित कर श्री जगदम्बा को प्रसन्न करना चाहिये।

जो लोग पूरे नवरात्र भर उपवास पूर्वक व्रत करने में असमर्थ हों, उन्हें केवल तीन दिन--सप्तमी, अष्टमी और नवमी को उपवास सहित व्रतानुष्ठान करना चाहिये। इससे उन्हें पूर्ण फल की प्राप्ति होगी। पूजन, हवन, कुमारी-पूजा औरब्राह्मण-भोजन इन्हीं कर्मों से नवरात्र का व्रत सम्पन्न होता है।

श्री महामहोपाध्याय-भगवत्पूज्यपाद-श्रीगोविन्दाचार्य-शिष्य

श्री भगवच्छङ्कराचार्य-शिष्य श्रीविष्णुशर्माचार्य-शिष्य श्रीप्रगल्भाचार्य-शिष्य

श्रीविद्यारण्य यति-विरचितम्

श्री श्रीविद्यार्णव तन्त्रम्

जैसा कि नाम से ही प्रकट है, यह एक विशाल ग्रन्थ है। 'चण्डी' पत्रिका के आकार में दो खंडों में इसे प्रकाशित किया जा रहा है। प्रथम खण्ड का पूर्वार्द्ध छप गया है, जिसमें दश श्वासों के अन्तर्गत १८४ पृष्ठों में लगभग ८०० विषयों का वर्णन हुआ है, छः पृष्ठों में सूची है। प्रथम खण्ड का उत्तरार्द्ध भी मासिक खण्डों में छप रहा है और यह लगभग २२० पृष्ठों में समाप्त होगा। प्रथम खण्ड के इन दोनों प्रकाशित भागों का मूल्य १७) ५० है। अतः कृपया १८)५० मनिआर्डर से भेजें।

मनिआर्डर मिलते ही प्रथम खण्ड का पूर्वार्द्ध सेवा में भेज दिया जायगा।

१८) ५० भेजकर दुर्लभ तन्त्रग्रन्थ प्राप्त करें और धार्मिक साहित्य के प्रकाशन में सहायक बनने का पुण्य और यश लाभ अलग पाएँ। म० आ० कृपया निम्न पते पर भेजें—

कल्याण मन्दिर, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६

तन्त्र में अनुसन्धान

[गुजरात से 'शिव-शक्ति-योगी' परम पूज्य श्री कृष्ण ब्रह्मचारी जी ने 'कौल-कल्पतरु' चण्डी के गताङ्क के इसी स्तम्भ में प्रकाशित स्वीडन के श्री गुन्नार एण्डर्सन की जिज्ञासाओं के सम्बन्ध अपने विचार लिख भेजने की कृपा की है। उन्हें यहाँ सादर प्रकाशित किया जाता है।—सं०]

तान्त्रिक शब्दों के सम्बन्ध में मैं पहले यह कहे देता हूँ कि तान्त्रिक मन्त्रों को लोग वैदिक अपभ्रंश मानते हैं, लेकिन ऐसी बात नहीं है--तान्त्रिक मन्त्र प्राकृतिक शब्द हैं—

The Natural Sound which is heard in meditation having with power.

तांत्रिक मूल ध्वनि से ही बाद में वैदिक शब्द बने। इसीलिए श्री एण्डर्सन ने जो पूछा है, उसके उत्तर में निम्न उत्तर विचारणीय हैं—

१-(पृष्ठ ७२) "संकेत" से क्या तात्पर्य है ? तो यहाँ हम पाते हैं--सं + केत। अब "सं" क्या, यह जानना है-तो इसके लिये हमें उपलब्ध है-सरस्वती-रहस्योपनिषद् में-

यां विदित्वाऽखिलं बन्धं निर्मथ्याखिल-वर्त्मना।
योगी याति परं स्थानं सा मां पातु सरस्वती ॥
"सं" उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः॥

अर्थात् जिसको जानकर समस्त बन्धन से मुक्त होकर योगी सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त करता है, वे सरस्वती मेरी रक्षा करें--वे, जो "सं" ध्वनि के साथ प्रकट होती हैं। आपको कोई तो देखकर भी नहीं समझ पाता; कोई सुनकर भी नहीं समझ पाता, लेकिन किसी के लिए इस तरह हो जाती हो, जैसे अपने सुन्दर वस्त्रों को खोल कर कोई सुन्दरी अपने पति की गोद में नग्न होकर आलिंगन में आ जाय।

अतः उन्होंने जो पूछा है कि "सर्वोच्च आम्नाय में जब सत्य का साक्षात्कार हो जाता है और कुछ करने को शेष नहीं रहता; किसी क्रिया की आवश्यकता नहीं रहती, तब संकेत शब्द का क्या तात्पर्य है ?"—इस प्रश्न का समाधान ऊपर के उद्धरण के अनुसार अब इस प्रकार स्पष्ट होता है—

संकेत—सं + केत—सं + कृत—सं + कृत्य—अनावरित कृत्य—नग्न सम्भोग (Naked Enjoyment—LIBERATED ENJOYMENT)—मुक्त भोग

२-इसी प्रकार "चैतानि" शब्द (पृष्ठ ७४) का भी अर्थ स्पष्ट है, जो निम्न प्रकार है—

चैतानि--चिति चैतन्य (Unfoldment of full-blown absolute supreme Power.)

इसीलिये "संकेत" एव "चैतानि" शब्द सर्वोच्च आम्नाय में व्यवहृत किए गए हैं।

३—परा प्रासाद मन्त्र है- "हं सः ॐ" तथा
वीज है-"हं सः ॐ"
मूल तान्त्रिक ध्वनि इस प्रकार है—
सः ॐ—सः औं—सहौं—स्हौं।

इसी तरह–हं सः ॐ–ह स औं–ह्सौं

अब कोई यह कहे कि "स्हौं" या "ह्सौं" अपभ्रंश हैं 'सः ॐ' तथा "हं सः ॐ" के, सो बात नहीं है, बल्कि ये शुद्ध हैं क्योंकि ये बीज हैं और बीज में गति Speed है और गति में शक्ति है--Speed is maintained in speed alone. Any Shakti appears with its vibrations, accelerations, Tune & Speed only & due to vibrations appears Sound that is seed & seed is speed. कभी कभी 'साधक की अपरिपक्व अवस्था में' शक्ति जब अपने रूप को प्रकट नहीं करती है, तो वह 'बीज-मन्त्राक्षर' रूप में दिखाई देती है और सम्पूर्ण वेद उसी अपरिपक्व अवस्था में हैं जबकि शक्ति के बदले उसके मन्त्र ही सम्मुख आते रहे। बीजाक्षरों के सम्बन्ध में बहवृचोपनिषद् में है कि--

"ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः। यस्तन्नः वेद किमृचा करिष्यति। य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥"

अर्थात् मन्त्र-बीज-अक्षर चिदाकाश में हैं, जिनमें सभी देवता (शक्ति) वास करते हैं। जिसने इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं किया, उसने वेद पढ़कर क्या किया! जिसने उसे जाना, वह वैसा ही हो गया; शक्ति-स्वरूप हो गया।

अब स्पष्ट है कि वेदों में भी तन्त्र की यानी अनुभूति की ही स्तुति है। अब मैं पुनः "परा प्रासाद मन्त्र" के वैदिक (यानी "Slow-not in speed.) शब्द "हं सः ॐ" की व्याख्या करूंगा--

इस मन्त्र का बीज है–"सः ॐ"।

"सः" शब्द का अर्थ लोग "पुरुष-वाच्य" लगाते हैं, जबकि वास्तविकता इसकी उभय-लिङ्गी है। "सः" शब्द का व्यवहार "तत्" के निर्देश में हुआ है क्योंकि "ॐ" को 'सः" यानी मात्र पुरुष के रूप में ही निर्देश नहीं किया जा सकता। "ॐ" उभय-लिंगी शिव-शक्त्यात्मक है।

छान्दोग्योपनिषद् में वर्णित है कि--

"तदेतन्मिथुनमोमित्येतस्मिन्नक्षरे संसृज्यते यदा वै मिथुनौ समागच्छत आपयतो वै तावन्योऽन्यस्य कामम्।"

अर्थात् वह "ॐ" मिथुन है, ऐसा कहा गया है क्योंकि उभय-लिङ्ग के एक दूसरे की कामना को पूरा करने के लिये मिथुन ही है, जिसे "ॐ" अक्षर के रूप में कहा गया है।

तो स्पष्ट है कि "ॐ" मिथुन-बीज है; उभय-लिङ्ग संयोग है और मिथुन-स्वरूपता की उपलब्धि ही परा प्रासाद है। "हं" यानीं साधक की मिथुन-स्वरूपता की उपलब्धि के लिए ही "हं सः ॐ" है।

तैत्तिरीयोपनिषद् में आया है कि–

रसो वै सः ॥ रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति ॥ को ह्येवान्यात्कः प्राण्यान् ॥ यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् ॥

अर्थात्–वह परम सत्ता, जिसे मिथुन-स्वरूप "ॐ" कहा गया है, वह रस ही है। उस रस को प्राप्त कर ही कोई आनन्दित होता है। कौन यहाँ जीवित रह सकता, यदि चिदाकाश-स्वरूप आनन्द न होता?

यहाँ—"कौन यहाँ जीवित रह सकता"–प्रश्न के द्वारा उसकी शक्ति-स्वरूपता को दिखाया जा रहा है। अतः "आकाश" शब्द का प्रयोग चिदाकाश के लिए है और उसी चिदाकाश-स्वरूपता को उपलब्ध करने हेतु "हं" आकाश बीज है, जो महान् ब्रह्मानन्द का हेतु है। यहाँ स्पष्ट कर देता हूँ कि "ब्रह्म" यदि "शब्द" है, तो उसका अर्थ है "शक्ति"—क्योंकि आगे कहा जा चुका है कि वह नीरस नहीं है।

४--'कुल-दीप' का तात्पर्य प्रज्ञाचक्षु से है। 'दीप' शब्द यहाँ अग्नि (शक्ति), प्रकाश एवं ज्ञान के लिए प्रयुक्त है।

५–अन्तस्तेजो बहिस्तेज—When 'Mantra' or the 'basic word' is repeated again & again i.e. the constant practice of the seed reveals the manifold colours (तेज) and forms lay hidden in the seed and the real form is evinced; there will be no difference in closed or opened eyes-Vision of coloured & brilliant light will be the same, in day time or in dark night it does not matter.

६ प्रौढ़ान्तोल्लास-सहिताम् तथा प्रौढ़ान्तोल्लास पर्यन्तम् के सम्बन्ध में मैं इतना ही कहूँगा कि—

प्रौढ़ शब्द का भावार्थ होता है OLDNESS or maintenance of GRAVITY—& this is unnatural-प्रकृति का निखार पूर्णरूप से यौवन में होता है। प्राकृतिकता यौवन में है और उल्लास उसी में सम्भव है तथा जहाँ प्रकृति (Nature) है, वहीं शक्ति है।

अस्तु, प्रौढ़ता का भाव खत्म होकर (अन्त होकर) उल्लास यानी यौवन का भाव जब तक न आये, तब तक मद्य-पान करने हेतु ही–"प्रौढ़ान्तोल्लास-सहिताम्" तथा "पर्यन्तम्" शब्द का व्यवहार किया गया है। जहां प्रौढ़ता खत्म हो जाय तथा ताजे खिले हुए पुष्प की तरह खिल उठें—तब तक ही मद्य का सेवन करें–अधिक नहीं।

७—"अष्टक" "मिथुन" तथा अष्टाङ्ग-पूजा—वैदिक शास्त्रों में जैसे "अष्टाङ्ग ब्रह्मचर्य" का उल्लेख किया गया है—ठीक उसके विपरीत तान्त्रिक आचरण "अष्टाङ्ग-मिथुन" है, जिसे 'अष्टाङ्ग-पूजा' कहा गया है। "मिथुन" को "पूजा" इसीलिए कहा गया है कि "मिथुन" से ही "ब्रह्मचर्य" सम्भव है और "ब्रह्म" का अर्थ है "शक्ति" (पहले कह चुका हूँ)। मिथुन के सम्बन्ध में सामवेद के छान्दोग्योपनिषद् के द्वितीय अध्याय के द्वादश खण्ड की सामोपासना में वर्णित है कि—

"उपमन्त्रयते स हिंकारो, ज्ञपयते स प्रस्तावः स्त्रिया सह शेते स उद्गीथः, प्रति-स्त्रीं सह शेते स प्रतिहारः, कालं गच्छति तन्निधनं, पारं गच्छति तन्निधनमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतम् ॥१॥ स य एवमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतं वेद मिथुनीभवति मिथुनान्मिथुनात् प्रजायते सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान् प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्या न कांचन परिहरेत्तद् व्रतम् ॥२॥"

अर्थात् जिस स्त्री के साथ मिथुन करना है, उसे पहले अभिमन्त्रित किया जाय यानी उसके अन्दर शक्ति का भाव जागृत किया जाय (यह हिंकार है)। मिथुन के लिये उससे निवेदन और उसके सम्बन्ध में ज्ञान देकर उन्हें मिथुन-प्रिया बनाना (यह प्रस्ताव है)। फिर उस स्त्री के साथ सन्नद्ध मुद्रा में शयन—यह उद्गीथ (रस ॐ) है। अन्य स्त्रियों के साथ भी इस तरह शयन-यह प्रतिहार है। इस सामतन्त्र उपासना के द्वारा साधक का काल चला जाता है। यह काल का निधन है तथा साधक की स्थिति विश्वोत्तीर्ण मुक्ति की हो जाती है। साधक इस प्रकार की पूजा से संसार-सागर के पार चला जाता है। यह उसके संसार-रूपी तथा अज्ञान, अशक्ति एवं निरानन्द, नीरसता का निधन है। यह मिथुन वामदेव्य सामोपासना है—(जिस पूजा का वर्णन इस प्रकार वेदोपनिषद् में है, उसकी लोग 'वाममार्ग' तथा 'वामाचार' कह कर तान्त्रिक उपासना की निन्दा करते हैं)। जो इस मिथुन सामोपासना को जान लेता है, वही ठीक मिथुनी होता है तथा इस प्रकार की मिथुन-पूजा से ही वह अमिथुन यानी ब्रह्मचारी हो जाता है—सम्पूर्ण आयु को प्राप्त करता है और जब तक जीवित रहता है, महान् प्रजा और पशुओं से सम्पन्न रहता है, उसकी महान् कीर्ति होती है। जिस

स्त्री के साथ मिथुन किया जाय, उसके शरीर के अथवा मिथुन के समय उतारे गये स्वर्ण (आभूषण) का अपहरण न करे, यह व्रत है ।

८--श्री एण्डर्सन ने जो "समयाचार" के सम्बन्ध में पूछा है कि कुलार्णव के एक श्लोक में वर्णित है कि "यदि कोई किसी ऐसे शिष्य को 'कुलाचार' का रहस्य बताता है, जो पहले से 'समयाचार' से परिचित नहीं है, तो वे गुरु-शिष्य दोनों नर्क को जाते हैं ।"

इस सम्बन्ध में मेरे दृष्टिकोण में समयाचार इस प्रकार है—

समयाचार=सम आचार (किन्तु साधारणतया लोग "समय+आचार"--ऐसा अर्थ लेते हैं, जो गलत है क्योंकि कालात्मक दृष्टिकोण में "समय" शब्द संस्कृत में नहीं है)।

हाँ, तो "सम+आचार"--का अर्थ है "समता का भाव" वीर–भाव = शिवोऽहम् की स्थिति । पुरुषत्व और प्रकृतित्व (यानी स्त्रीत्व, नारीत्व या शक्तित्व) दोनों अर्द्धाङ्ग हैं; दोनों सम् यानी बराबर हैं–दोनों के मिलन को संयोग--सम्+योग कहा जाता है-(इसी 'सं' या 'सम्' को लक्ष्य कर योगी 'समाधि' शब्द को पराकाष्ठा मानते हैं)। अतः जब तक सम+आचार प्राप्त न हो; जब तक पुरुषत्व यानी शिवत्व का भाव प्राप्त न हो--जब तक 'जो शिव हैं, सो मैं हूँ' ऐसा अभेद-भाव नहीं है, तब तक जीव-भाव या पशु-भाव कहा गया है ।

यानी तब तक ऐसे शिष्यों को शक्ति की--नारी की—प्रकृति की–'मां' कह कर उपासना करानी चाहिये । उसे कुलाचार-यानी शिव-शक्ति का सम्भोग-आचरण--मिथुन नहीं कराना चाहिए क्योंकि कुलाचार यानी वीराचार में जिस शक्ति को पहले मां कह रहे थे, उसी शक्ति को 'मिथुन-प्रिये' कह कर शिव-भाव में आकर उन सर्व-सम्भोग-भवना से सम्भोग किया जाता है ।

जो जीवत्व को त्याग सके, पशुत्व को खो सके, बालत्व-पन खत्म करके 'मां' कहना छोड़ सके, वही "वीर" है–उसी भाव को 'वीर' भाव कहा गया है । यह अकाट्य सत्य है क्योंकि साधना में शक्ति-नारी-स्त्री या प्रकृति एक ही है । जिस शक्ति से पहले अज्ञान दशा में 'मां' कह कर प्रार्थना की जाती है, उसी से बाद में स्वकीया शक्ति कह कर भोग किया जाता है ।

यह प्रज्ञाचक्षु यानी तीसरे नेत्र के खुलने यानी ज्ञान होने के बाद की बातें हैं । तन्त्र-ग्रन्थों में इसीलिए "ज्ञानी" शब्द आया है । जैसे–'कालिका-हृदय-ज्ञानी लता-साधना-तत्परः' (ज्ञानी वीर को कहा जाता है) । 'कालिका-हृदय' 'यानी' शक्ति के रहस्य का ज्ञान जिसे हो गया–(रहस्य मैंने बताया) वह ज्ञानी तब लता-साधन-तत्पर होता है यानी मिथुन साधना-रत होता है यानी कुलाचार में आता है । पुनश्च तत् 'परः' यानी उसके भी परे 'दिव्य-भाव' में चला जाता है ।

यही साधना का रहस्य है–यहाँ सांसारिकता खत्म हो जाती है ।

* * *

काली की नित्याएँ

[मन्त्र एवं ध्यान-सहित]

१ काली नित्या

मन्त्र—ॐ ह्रीं कालि कालि महाकालि कौमारि मह्यं देहि स्वाहा ।

ध्यान—श्याम-वर्णा महा-भीमा घोर-रावा करालिनी ।
मुण्डमाला-विभूषाढ्या दक्षे खड्गे प्रविभ्रती ।
तर्जनीं धारयन् वामे नृत्यन्ती प्रेत-भूमिषु ॥

२ कपालिनी

मन्त्र—ॐ ह्रीं क्रीं कपालिनि महाकपाल-प्रिय-मानसे कपाल-सिद्धिं मे देहि हूं फट् स्वाहा ।

ध्यान—ध्यायेदञ्जन-पुञ्जाभामापीन-स्तन-युग्मकां ॥
चन्द्र-वक्त्रां च बिम्बौष्ठीं मुक्त-केशीं दिगम्बरां ॥
चतुर्मुण्डोपरि-गतां शङ्ख-कङ्कण-भूषिताम् ।
खड्ग-त्रिशूल-वरदाभयान् हस्त-चतुष्टये ॥

३ कुल्ला

मन्त्र—ॐ क्रीं कुल्लायै नमः

ध्यान—चतुर्भुजां त्रिनयनां मुकुटाटोप-मण्डिताम् ।
शवासन-गतां कुल्लां दश-मुण्डोपरि-स्थिताम् ।
वराभयौ करे वामे पुस्त-स्रग् दक्षिणे करे ॥

४ कुरुकुल्ला

मन्त्र—क्रीं ॐ कुरुकुल्ले क्रीं ह्रीं मम सर्व-जन-वशमानय क्रीं कुरुकुल्ले ह्रीं स्वाहा ।

ध्यान—ततो ध्यायेन्महाविद्यां कुरुकुल्लां कुलेश्वरीम् ।
शवोपरि-समासीनां मुण्ड-माला-विभूषिताम् ॥
कपाल-कर्तृका-हस्तां खड्ग-खेटक-धारिणीम् ।
अञ्जनाद्रि-निभां दिव्यां मुक्त-केशीं चतुर्भुजां ॥

५ विरोधिनी

मन्त्र—ॐ क्रीं ह्रीं क्लीं हूँ विरोधिनी शत्रूनुच्चाटय विरोधय शत्रु-क्षयरङ्की हूँ फट् ।

ध्यान—चतुर्भुजां त्रिनयनां शव-पद्मोपरि-स्थिताम् ।
त्रिशिखं नाग पाशं च घण्टां च डमरुं तथा ।
सम्बिभ्रतीं महादेवीं क्रमाद् भुज-चतुष्टये ॥

६ विप्रचित्ता

मन्त्र—ॐ श्रीं क्लीं चामुण्डे विप्रचित्ते दुष्ट-घातिनि शत्रून्नाशय एतद्दिनावधि-प्रिये सिद्धिं मे देहि हूँ फट् स्वाहा ।

ध्यान—चतुर्भुजां त्रिनयनां पीनोन्नत-पयोधराम् ।
दिगम्बरां मुक्त-केशीं ललज्जिह्वां भयानकाम् ॥
भीम-दंष्ट्रां करालास्यां सृक्किणी-रक्त-वाहिनीम् ।
खड्ग-मुण्ड-कपाल-त्रिशूल-हस्तां महोदरीम् ॥

७ उग्रा

मन्त्र—ॐ स्त्रीं हूँ ह्रीं हूं फट् ।

ध्यान—ततो ध्यायेत् परामुग्रां प्रत्यालीढ-पद-स्थिताम् ।
चतुर्भुजां त्रिनयनां मुण्डमाला-विभूषिताम् ।
श्याम-वर्णां मुक्त-केशीं खड्गेन्दीवर-धारिणीम् ।
कपाल-कर्तृका-हस्तां वर-दान-परायणाम् ॥

८ उग्रप्रभा

मन्त्र—ॐ हूं हूं उग्र-प्रभे देवि काली-महादेवि स्व दर्शय हूं फट् स्वाहा ।

ध्यान—चतुर्भुजां त्रिनयनां शव-पद्मोपरि-स्थिताम् ।
सुप्रसन्न-मुखाम्भोजां शव-मांस-प्रभोजनीम् ।
शवानां कर-संघातैः कृत-काञ्चीं हसन्मुखीम

खड्ग-मुण्ड-धरां वामे दक्षे खर्पर-कर्तृके ॥

९ दीक्षा

मन्त्र—ॐ क्रीं हूं दीक्षायै सर्व-मन्त्र-फलदायै हूं फट् स्वाहा ।

ध्यान-चतुर्भुजां त्रिनयनां मुण्ड-माला-विभूषिताम् ।
शव-पद्मे समासीनां पीनोन्नत-पयोधराम् ।
शवास्थि-कृत-केयूर-शङ्ख-कङ्कण-भूषिताम् ।
खड्ग-मुण्ड-धरां वामे सव्येऽभय-वर-प्रदाम् ॥

१० नीला

मन्त्र—हूं हूं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हसबलमरी नीलपताके हूं फट् ।

ध्यान-भयङ्कराकृति-धरां मुण्ड-माला-विभूषिताम् ।
रक्त-चञ्चल-नेत्राब्जां ललज्जिह्वां च भीषणाम् ।
शवोपरि-समासीनां नरमांसास्थि-भूषणाम ।
ध्यायेन्नीलां ज्ञान-दात्रीं सर्व-सिद्धि-प्रदायिनीम् ॥

११ घना

मन्त्र—ॐ क्लीं ॐ घनालये धनालये ह्रीं हूं फट् ।

ध्यान-चतुर्भुजां त्रिनयनां कृष्ण-वर्णां च भीषणाम् ।
सद्यः-कृत्त-बाहूनां दधानां क्षुद्र-घण्टिकाम् ॥
हस्तेषु खेटकं खड्गं पाशं मुद्गरं तथा ।
धारयन्तीं घनां ध्यायेत् रक्तप्लाविताधराम् ॥

१२ बलाका

मन्त्र—ॐ क्रीं ह्रीं बलाका-कालि अत्यद्भुत-पराक्रमे अभीष्ट-सिद्धिं मे देहि हूं फट् स्वाहा ।

ध्यान-नित्यां बलाकां ध्याये त्रिनेत्रां श्मशान-वासिनीं ।
भीमाकृतिं श्याम-वर्णां दधानां हस्त-किंकिणीम् ।
विकीर्ण-केशैः राजन्तीं धारयन्तीं च बाहुषु ।
खड्गं मुण्डं दक्षे वामे चषकं मुद्रां-तर्जनीम् ॥

१३ मात्रा

मन्त्र—ॐ क्रीं ह्रीं हूं ऐं १० महामात्रे सिद्धिं मे देहि सत्वरं हूं फट् स्वाहा ।

ध्यान-शव-वक्षसि भ्राजन्तीं भीषणाकार-धारिणीम् ।
त्रिनेत्रैः शोभितां दिव्यां चतुर्भिर्बाहुभिस्तथा ॥
कपालं कर्त्रिकां चैव तीक्ष्णं खड्गं शिरस्तथा ।
धारयन्तीं भजे मात्रां भक्ताभीष्ट-प्रदायिनीम् ॥

१४ मुद्रा

मन्त्र—ॐ क्रीं ह्रीं हूँ प्रीं फ्रें मुद्राम्बा मुद्रा-सिद्धिं मे देहि भो जगन्मुद्रा-स्वरूपिणी हूं फट् स्वाहा ।

ध्यान-ध्यायामि मुद्रा नित्यां वै मुण्ड-माला-विभूषितां
रुधिरेणाधरौष्ठं च प्लावयन्तीं भयङ्करीम् ॥
चतुर्भुजैः कपालं वै छुरिकां खड्ग-खेटके ।
दधानां जयदां देवीं जनानामभय-प्रदाम् ॥

१५ मिता

मन्त्र—ॐ क्रीं हूँ ह्रीं ऐं मिते पारमिते पराक्रमाय ॐ क्रीं हूं ह्रीं ऐं सोऽहं हूं फट् स्वाहा ।

ध्यान-भीमां विकीर्ण-केशां च ध्यायेन्नित्यां मितां शुभां ।
कृष्णां वर्णां रक्त-वस्त्रां शवासीनां भयानकाम् ॥
मुण्ड-माला-धरां दिव्यां धारयन्तीं चतुर्भुजैः ।
चन्द्र-हासं मस्तकं च वरं चैवाभयं तथा ॥

सूचना—काली की १६ वीं महा-नित्या का मन्त्र व ध्यान अप्राप्त है ।

लाभदायक योजना

एकमात्र

'कौल-कल्पतरु' चण्डी के ग्राहक बन्धुओं के लिये !....

लगभग सोलह वर्ष पूर्व 'चण्डी' मासिक द्वारा दो अनूठे विशेषाङ्क—'सप्तशती-विशेषाङ्क' व 'शाक्त धर्म विशेषाङ्क' क्रमशः सम्वत् २०१३ व २०१४ वि० में प्रकाशित हुये थे।··· इन दोनों विशेषाङ्कों का मूल्य तीस रु० प्रति विशेषाङ्क है। आपको यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता होगी कि अति उपयोगी इन दोनों विशेषाङ्कों के मूल्य में 'चण्डी' के ग्राहकों के लिये ५०% की छूट दी गई है। परन्तु यह विशेष छूट एकमात्र उन ग्राहकों को सुलभ होगी, जो दोनों विशेषाङ्क एक साथ मंगायेंगे। यह छूट मात्र ३१ दिसम्बर १९७३ तक ही रहेगी। इच्छुक सज्जन कुल बत्तीस रु० (सह रजिस्ट्री व्यय) मनीआर्डर द्वारा निम्न पते पर भेजकर दोनों विशेषाङ्क प्राप्त कर सकते हैं। मनीआर्डर प्राप्त होते ही दोनों विशेषाङ्क रजिस्टर्ड डाक द्वारा भेज दिये जाएँगे। हमें विश्वास है कि 'कौल-कल्पतरु चण्डी' के ग्राहक बन्धु हमारी इस योजना से अवश्य लाभान्वित होंगे।

'सप्तशती-विशेषाङ्क' व 'शाक्त-धर्म-विशेषाङ्क' के प्रमुख विषयों की झाँकी इस प्रकार है—

—: सप्तशती विशेषांक :—

भगवती श्री दुर्गा की आरती—पूज्य-चरण गुप्तावतार बाबा श्री मोतीलाल जी महाराज
गुप्त सप्तशती
सप्तशती की उपासना का प्रकार—आचार्य परमानन्दन शास्त्री
चण्डी (सप्तशती) नवार्ण मन्त्र—पण्डित-प्रवर श्री हरिशास्त्री दाधीच
सप्तशती में वेदान्त—पं० श्रीकान्त बिहारी मिश्र
चण्डी (सप्तशती) रहस्य—'धर्मरञ्जन' डा० निमाईचन्द्र घोष
सार्ध नव-चण्डी प्रयोग—परम पूज्य श्री १००८ श्री स्वामी जी महाराज, दतिया
सप्तशती वा सप्तसती—'कौलानन्दनाथ' श्री प्रभातकुमार बनर्जी
चण्डी (सप्तशती) में द्वैत-अद्वैत का समन्वय—'कुलभास्कर' पं० गोविन्द शास्त्री दुगवेकर
सप्तशती में प्रपत्तिवाद—पं० रघुवीर मिश्र
श्री सप्तशती—श्री कृपानाथ सिंह
सप्तशती गीता—'कौल-कल्पतरु' श्री श्यामानन्दजी
सप्तशती में आध्यात्मिक साधना—श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती
सप्तशती का देवता—'विद्या-मार्तण्ड' श्री सी० वी० स्वामी शास्त्री
श्री दुर्गा सप्तशती—'कुल-सङ्घशेखर' श्री देवीप्रसाद घिल्डियाल
सप्तशती की कुछ विशेष बातें (धारावाहिक निबन्ध)—'कुलभूषण' श्री रमादत्त शुक्ल
बाबा श्री की मन्त्रात्मक सप्तशती—पं० श्री कन्हैयालाल र० दवे
सप्तशती का मनन—श्री पुण्यशील शर्मा
मा दुर्गा की कृपा—श्री राजेन्द्रलाल दास
श्री दुर्गा सप्तशती और शाप-मोचन (धारावाहिक निबन्ध)—पं० श्रीकान्त बिहारी मिश्र
महापूजा-विमर्श—'विद्या मार्तण्ड' श्री स्वामीशास्त्री
मूल सप्तशती—प्रेषक पं० लक्ष्मणदत्त शास्त्री
श्री बाला-गर्भित महाविद्या—श्री कन्हैयालाल र० दवे
श्री सप्तशती का प्रभाव—'विद्या-मार्तण्ड' श्री

सी० वी० स्वामी शास्त्री

दुर्गा सप्तशती पाठ की महिमा—श्री राजेन्द्रलाल दास विशारद

नवार्ण में ॐ के संयोग का विमर्श—-पंडित प्रवर श्री हरिशास्त्री दाधीच

बाला त्रिपुरसुन्दरी का संग्राम-कौतुक—'कुल-भास्कर' पं० गोविन्द शास्त्री दुगवेकर

नवरात्रि-विधान—महन्त श्री १०८ स्वामी अद्वाभ्यानन्द जी सरस्वती

सप्तशती-साधना-यन्त्र में सरस्वती का स्थान—आचार्य श्री परमानन्दन शास्त्री

सशती—'कुल-मजगुरु पं० योगीन्द्रकृष्णदौर्गादत्ति शास्त्री

चण्डी - राजगुरु पं० श्री हरिदत्त शास्त्री

शक्ति की परम्परा में 'भगवती दुर्गा'—पं -मातृदत्त त्रिवेदी

शक्ति-योग दर्शन—स्वामी शिवानन्दजी महाराज

शक्ति-चालीसा—श्री रामअधीन श्रीवास्तव

सप्तशती में पाठ-भेद—श्री नेमधर शर्मा

श्री छिन्नमस्ता महाविद्या—परम पूज्य १००८ श्री स्वामी जी महाराज

श्री वल्लभेशोपनिषत्—डा० आर० बी० दवे

-:शाक्त-धर्म विशेषांक:-

विश्वेश्वरी महाशक्ति और उसके दस भाव—श्री हरकिशन ल० झवेरी

अष्टोत्तर शाक्त-तीर्थ

शाक्त-सिद्धान्त—'विद्यामार्तण्ड' श्री सी० वी० स्वामी शास्त्री

कुल-धर्मः सनातनः—'विश्व-विजयी कुल-शिरोमणि' लेफ्टिनेण्ट जनरल श्री धन शम्शेर जङ्ग बहादुर राणा

शाक्तों का मातृ-स्नेह—-पं० श्री ललन पांडेय

शक्ति—पं० ज्वालाप्रसाद तिवारी

शाक्त-धर्म (धारावाहिक निबन्ध)—-पं० श्री कान्त-विहारी मिश्र

शाक्त-दर्शन की परिचायिका 'दुर्गा सप्तशती' का आध्यात्मिक रहस्य—-प्रथम साधन-सोपान—-'कौल-कल्पतरु' श्री श्यामानन्द नाथ

शाक्त धर्म में बलिदान का महत्व-श्री राजेन्द्रलाल दास, विशारद

कवच का चमत्कार—-'धर्म-रञ्जन' डा० निमाईचन्द्र घोष

माँ का स्वरूप-'कुलभास्कर' पं० गोविन्द शास्त्री दुगवेकर

कुण्डलिनी-मुख—श्री कन्हैयालाल र० दवे

त्रिशती की व्याख्या—'कुल-मार्तण्ड राजगुरु' पं० योगीन्द्र कृष्ण दौर्गादत्ति जी शास्त्री

ललाट पर सिन्दूर का भाव—श्री राजेन्द्रलाल दास, विशारद

शाक्त-धर्म के सम्बन्ध में—-'चन्द्रशेखरावधूत' श्री माधवानन्द नाथ

शाक्तों को मातृ-स्नेह से लाभ-पं० श्री ललनपांडेय

शाक्त पथ—पं० कालीचरण पन्त

श्री कुण्डलिनी शक्ति—पं० श्रीकान्त बिहारी मिश्र

शक्तियोग दर्शन—स्वामी शिवानन्द जी महाराज

द्वितीय साधन-सोपान (शाक्त दर्शन की परिचायिका 'दुर्गा सप्तशती' का आध्यात्मिक रहस्य—धारावाहिक निबन्ध)—-श्री श्यामानन्द नाथ

काली—-ठा० मोहन सिंह जी

तन्त्रों का गोपनीय तत्व—-कुँवर श्री जयसिंह जी

दैवी शक्ति की पहचान—-पं० श्री ललन पांडेय

सनातनी दीक्षा का क्रम—'विश्व विजयी कुल-शिरोमणि' लेफ्टिनेण्ट जनरल श्री धनशम्शेर जङ्ग बहादुर राणा

आदि आदि

कृपया शीघ्रता करें, क्योंकि इन विशेषाङ्कों की मात्र कुछ प्रतियाँ ही शेष हैं।

पता—-चण्डी कार्यालय अलोपी बाग; मार्ग प्रयाग—६

धार्मिक जगत की हलचल

१ श्री श्री सुन्दरी महालक्ष्मी देवी दुर्गा यज्ञ

गुजरात की भक्ति-निष्ठ जनता द्वारा शारदीय नवरात्र में उक्त यज्ञ का सङ्कल्प लेकर अनुष्ठान किया जा रहा है। इस सम्बन्ध में 'शिव-शक्ति-योगी' पूज्यश्री कृष्ण ब्रह्मचारीजी द्वारा प्रचारित एक विज्ञप्ति से ज्ञात होता है कि धर्म-प्राण गुजराती बन्धुओं ने उक्त यज्ञ नौ बार करने का निश्चय किया है। पहला यज्ञ अहमदाबाद अथवा किसी जिला नगर में होनेवाला है। यह यज्ञ "नव-कुण्डात्मक" होगा। इस सम्बंध में पूर्ण विवरण अगले अङ्क में प्रकाशित किया जायेगा।

२ जर्मनी में तान्त्रिक "कला" का प्रदर्शन

पिछले कुछ वर्षों में योरप, अमेरिका आदि विदेशी राष्ट्रों की जनता में 'तन्त्र-विद्या' की ओर विशेष रुचि जागृत हुई है। तन्त्र-शास्त्र में प्रतिपादित अध्यात्म-तत्व के सम्बंध में वहाँ व्यापक रूप से अनुसन्धान तो हो ही रहा है, साथ ही सर्व-साधारण जनता को उसका सामान्य ज्ञान कराने के उद्देश्य से "तन्त्र" के 'कलात्मक पक्ष' को भी महत्व दिया जा रहा है। उदाहरण के लिए भारतीय कलाकार श्री अजीत मुकर्जी द्वारा प्रस्तुत तान्त्रिक चित्रों का प्रकाशन विदेशी प्रकाशकों ने इधर बड़े उत्साह से किया है। इन चित्रों की पहली प्रदर्शनी ग्रेट ब्रिटेन की आर्ट्स काउंसिल द्वारा हेवर्ड गैलरी में लन्दन में आयोजित की गई। ब्रिटिश दूरदर्शक (टेलीविजन) एवं आकाशवाणी (रेडियो) ने इस सम्बंध में विशेष कार्यक्रम प्रस्तुत किए। इसके बाद अभी हाल में पश्चिम जर्मनी की राजधानी पश्चिमी बर्लिन में वैदेशिक संम्बंध संस्थान (इंस्टीच्यूट आफ फारेन रिलेशंस) द्वारा दूसरी प्रदर्शनी आयोजित हुई है। ही प्रदर्शनी योरप के ज्यूरिच और वियना जैसे प्रमुख नग में भी तन्त्र के महत्व को प्रदर्शित करने के लिए स्वीकार की गई। श्री मुकर्जी की इन्हीं कलाकृतियो को दिल्ली के "तन्त्र म्यूजियम" का मूलाधार बनाया गया है।

३ शाक्त-साधना—परा मनोविज्ञान का प्रेरणा-स्रोत

अन्तर्राष्ट्रीय परा मनोविज्ञान संस्थान के तत्वावधान मे आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में भारत का प्रतिनिधित्व करते हुए ख्याति-लब्ध मनोवैज्ञानिक तथा मनोविज्ञानशाला उत्तर प्रदेश के निदेशक डाक्टर जमुनाप्रसाद ने शाक्त-साधना की पृष्ठ-भूमि में परा मनोविज्ञान के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि—

"शाक्त-साधना परा मनोविज्ञान की प्रेरणा-भूमि है। अति प्राचीन शाक्त-साधना में परा मनोवैज्ञानिक तत्वों का विलक्षण समायोजन है। इस साधना के तांत्रिक रहस्यों में परा मनोविज्ञान का स्वरूप और महत्व स्पष्ट रूप से परिलक्षित है।"

अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में भाग लेने के बाद वापस आने प डाक्टर प्रसाद ने बताया है कि—

"इलाहाबाद स्थित परा मनोविज्ञान संस्थान शाक्त-ध तथा उसमें व्याप्त तांत्रिक और परा मनोवैज्ञानिक रहस्यों प शोध-कार्य करेगा। शाक्त-साधना को वैज्ञानिक आधार देने लिए इसका व्यापक अध्ययन आवश्यक है, जिसके लिए शाक्त धर्म के साधकों और विद्वानों का सहयोग अपेक्षित है।"

स्मरणीय है कि उक्त अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी विगत २ अगस्त को आरम्भ हुई थी और ३० अगस्त तक चली थी इस गोष्ठी में परा मनोविज्ञान और मानव विज्ञान के प्रख्या विद्वानों और विचारकों ने परा मनोविज्ञान तथा मानव-विज्ञा के सापेक्ष्य संबंध और महत्व पर प्रकाश डाला।

४—नवचण्डी अम्बा-यज्ञ

कौल-साधक श्री वसन्तकुमार आचार्य, अध्यक्ष मध्य भारत शाक्त-सम्मेलन द्वारा शारदीय नवरात्र के पुण्य पर्व पर अपने गुरु-तुल्य श्री टी० भीमाचारी जी एवम् वैद्यराज पं० चन्द्रशेखर जी शास्त्री के मार्ग-दर्शन में माँ भगवती चामुण्डा की सप्तशती के सम्पुटित पाठ एवं नित्य-रात्रि श्री सूक्त, नवार्ण, बटुक, हनुमान जी व अन्य देवताओं की नौ दिन तक हवनात्मक आराधना की गई।

उप-साधक के रूप में श्री सत्यनारायण जी शर्मा, एम० ए०, मैजिशियन, मंत्री आल इण्डिया मैजिक सर्कल शाखा, इन्दौर एवं डा० श्री गुणवन्त राय शाह, लेक्चरार श्री रविशंकर शुक्ल, होमियो-पैथी कालेज, इन्दौर का पूर्ण सहयोग मिला।

नवमी की रात्रि में रात भर हवनादि होकर प्रातः विजयोत्सव-पर्व के साथ मां की आरती एवं प्रसाद-वितरण किया गया। कार्य-क्रम में माँ के सेवकों की उपस्थिति काफी अच्छी रही।

इस सारे कार्य-क्रम में प्रकाशचन्द्र जी शास्त्री, एडवोकेट, सदस्य मध्य भारत शाक्त सम्मेलन एवं श्री गोविन्दराव जी वारे का सहयोग सराहनीय रहा।

* * *

श्रद्धांजलि

मैं लगभग ५ वर्ष पूर्व ही पूज्यपाद कौल-सम्राट् श्री पन्त जी के सान्निध्य में अनायास ही आया। तब से प्रतिदिन पूज्यवर श्री पन्त जी का स्नेह मेरे प्रति बढ़ता ही गया। अपने पुत्रों से अधिक विश्वास मेरे प्रति उनका था। उन्होंने मुझसे कहा था कि शीघ्र ही वे 'वीर-भूमि' में 'वीरासन' पर आसीन होकर याम मात्र में ही श्री कुण्डलिनी-जागरण कर देंगे। एक बार साधन जुट भी गया था परन्तु उनकी अस्वस्थता से सम्पन्न नहीं हो सका।

पूज्यपाद श्री पन्त जी के प्रयास से ही मुझ पर प्रथम कृपा स्वामी नीलधारा, चण्डी-मन्दिर (कौल-धाम) के द्वारा हुई थी। तत्पश्चात् व्यञ्जरी मुझे कानपुर से प्राप्त हुई। जब पूज्य पन्त जी थें, प्रति पल हर दुःख में उनकी कृपा रहती थी। मैं उनके गुण-गान अनेक जन्मों में भी नहीं कर सकता।

लगभग प्रतिदिन प्रसङ्गवश सभी पूज्य शाक्त जनों की ही चर्चा वे अपने श्रीमुख से किया करते थे। 'चण्डी' के प्रवर्तक पूज्यवर 'कौल-कल्पतरु' स्व० पण्डित देवीदत्त जी शुक्ल की प्रशंसा उन्हीं के मुख से सुनी थी और उनके मणिपुरवासी होने पर जो संस्मरण पन्त जी ने लिखाया, वह मेरी ही लेखनी से लिखा गया था। मुझे उस लेख की आरंभिक पंक्ति अभी भी याद है—'……स्मृति-पटल के पूर्व-पृष्ठों का सिंहावलोकन करने से……'

उक्त लेख में वैष्णव ग्रन्थ वाल्मीकि रामायण से उद्धरण देकर उन्होंने कितनी कुशलतापूर्वक सिद्ध किया था कि वैदिक काल में किस प्रकार शुद्धि-कारण का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ करता था।

पूज्य पन्त जी के शिवलोक-गमन के बाद अल्मोड़ा में मन नहीं लगा। उनके जाने से अल्मोड़ा मानों श्री-हीन हो गया। जब भी अल्मोड़ा जाता हूँ, पन्त जी की साधना-स्थली पर शिर नवाता हूँ। उनका पूजा-कक्ष तो जागृत पीठ ही है। अक्टूबर ७३ मास की २२ तारीख को उनका वार्षिक श्राद्ध हुआ।

इन टूटे-फूटे शब्द-पुष्पों से मैं उनकी पुण्य स्मृति में अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

ज्योतिष विधान

(गताङ्क पृष्ठ २९ का शेष)

चौदहवें स्कम्भ में उल्लिखित २७ योगों मे से ९ योग अशुभ हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—

१ वैधृति, २ व्य० पा०=व्यतीपात, ३ परिघ योग का पूर्वार्ध, ४ वज्र योग के आरम्भ की तीन घड़ियाँ, ५ गण्ड योग की छः घड़ियाँ, ६ अति= अतिगण्ड की नौ घड़ियाँ, ७ व्याघा=व्याघात की नौ घड़ियाँ, ८ शूल योग की पाँच घड़ियाँ और ९ विष्कुम्भ।

उक्त ९ योगों के अशुभ काल में कोई शुभ कार्य न करे। शेष १८ योग उत्तम हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१ सिद्धि, २ वरीयान, ३ शिव, ४ सिद्धि, ५ साध्य, ६ शुभ, ७ शुक्ल, ८ ब्रह्म, ९ ऐन्द्र, १० प्रीति, ११ आयु= आयुष्मान, १२ सौभा=सौभाग्य, १३ शोभन, १४ सुकर्मा, १५ धृति, १६ वृद्धि, १७ ध्रुव, १८ हर्षण।

ये सत्ताइस योग दोनों पक्षों की तिथियों में वितरित रहते हैं।

१५ वें १६ वें स्कम्भों में उक्त योगों का 'मान' देकर १७ वें स्कम्भ में योगों का काल बताया गया है और १८ वें १९ वें स्कम्भों में उनका 'समय' घण्टा-मिनट में बताया गया है।

२० वें और २१ वें स्कम्भ से 'करण' का ज्ञान होता है। 'करण' ११ प्रकार के हैं, जिनमें से प्रथम ६ 'करण' शुभ हैं। यथा—

१ बव, २ बा०=बालव, ३ कौ.=कौलव, ४ तै.= तैतिल, ५ ग.=गर, ६ व.=वणिज।

शेष ५ करण अशुभ हैं। यथा—

१ भ.=भद्रा (विष्टि), २ श.=शकुनि, ३ च.=चतुष्पद, ४ ना.=नाग, ५ कि=किस्तुघ्न।

२१, २२ और २४, २५ वें स्कम्भों से उक्त करणों का 'मान' ज्ञात होता है।

इस प्रकार पञ्चाङ्ग के २५ स्कम्भों का संक्षिप्त परिचय पाठक सहज ही हृदयङ्गम कर सकते हैं। 'योगों' और करणों के विचार-सम्बन्ध में विशेष नियम आगे बता जायँगे।

अब पञ्चाङ्ग के आगे के स्कम्भों में पुनः शीर्षक छ दृष्टिगत होते हैं। पहला शीर्षक है 'योगः।' ये वार-नक्ष योग हैं। इनके अन्तर्गत आनन्दादि २८ योगों का उल्लेख मिलता है। यथा—

१ आनन्द, २ का. द.=काल दण्ड, ३ धूम्र, ४ धाता, ५ सौम्य (सुधाकर), ६ ध्वांक्ष, ७ ध्वज (केतु), ८ श्रीव.=

श्रीवत्स, ९ वज्र, १० मुद्गर, ११ छत्र, १२ मित्र, १३ मानस, १४ पद्म, १५ लुम्बक (लुम्ब), १६ उत्पात, १७ मृत्यु, १८ काण, १९ सिद्धि, २० शुभ, २१ अमृत, २२ मुसल, २३ गद (अन्तक), २४ मातङ्ग (कुञ्जर), २५ राक्षस, २६ चर, २७ स्थिर (सुस्थिर) और २८ प्र० मा० (प्रवर्द्धमान)।

इन 'योगों' से सम्बंधित दिवस का शुभाशुभ सहज ही ज्ञात हो जाता है। उक्त योगों के नाम से ही प्रकट है कि कौन योग शुभ है और कौन अशुभ। फिर भी पाठकों की सुविधा के लिए १३ अशुभ योगों के नाम नीचे दिए जाते हैं--

१ काल-दण्ड, २ धूम्र, ३ ध्वांक्ष, ४ वज्र, ५ मुद्गर, ६ लुम्बक, ७ उत्पात, ८ मृत्यु, ९ काण, १० मुसल, ११ गद, १२ राक्षस, १३ चर।

'योगः' शीर्षक के बाद क्रमशः चार प्रचलित सन्-सम्वत् की तिथियाँ दी गई हैं। यथा—अं०=अंग्रेजी अर्थात् ईस्वी सन्, फ०=फसली सन्, सायण और सौ.=सौर सम्वत्।

तारीखों के बाद चं०=चन्द्रमा की रा=राशि का प्र०=प्रवर्तन घटी-पल में बताया है। इसके आगे के चार स्कम्भों में क्रमशः सूर्योदय और सूर्यास्त का समय घण्टा-मिनट में सूचित किया गया है।

तदनन्तर 'औ. स्प. पू.' के अन्तर्गत काशी (वाराणसी) में सूर्योदय काल के अनुसार सूर्य का स्पष्ट दिया गया है। उसी के बाद 'क्रान्तिः' शीर्षक के अन्तर्गत सूर्य की क्रान्ति उ०=उत्तर, द०=दक्षिण के सङ्केत से बताई गई है।

अन्तिम स्कम्भ है 'रेल अं' का। इसके अन्तर्गत धन (+) या ऋण (—) चिन्हों को ध्यान में रखकर भारतीय स्टैण्डर्ड टाइम को सूर्य घड़ी के मान में परिणत किया जा सकता है। 'रेल अं' यदि धन (+) है, तो स्टैण्डर्ड टाइम में उसे घटाने से और यदि ऋण (—) है, तो उसे जोड़ देने से उसका घटी-पल—काशी का स्पष्ट मान निकल आएगा।

स्कम्भों की समाप्ति के बाद ऊपर के कोष्ठ में पहले तो मास और पक्ष का उल्लेख है। फिर भारतीय सायण शक सम्वत् तदनुसार अंग्रेजी सन् की पन्द्रह दिनों की अवधि का संकेत रहता है। इस स्कम्भ के नीचे प्रतिदिन के सामने उस दिन की विशेष बातें संस्कृत में दी जाती हैं। यथा—

सबसे पहले भ०=भद्रा, फिर चन्द्रमा किस राशि में हैं इसका निर्देश है। सूर्य का नक्षत्र और व्रतोपवास का उल्लेख कर विशेष योग यदि कोई है, तो उसे बताया जाता है। इन विशेष योगों के नाम निम्न प्रकार हैं--

१ सर्वार्थ-सिद्धि, २ अमृत-सिद्धि, ३ यम-घण्ट, ४ द्विपुष्कर, ५ त्रिपुष्कर, ६ रवि योग, ७ यायी-जय और स्थायी सन्धिकर योग।

यहाँ निम्न शब्द-संकेतों को ध्यान में रखना चाहिए—

दि०=दिन, रा०=रात्रि उ०=उपरान्त, या०=यावत्, या० दि०=यावत् दिवस (सारे दिन) (क्रमशः)

* * *

श्रद्धांजलि

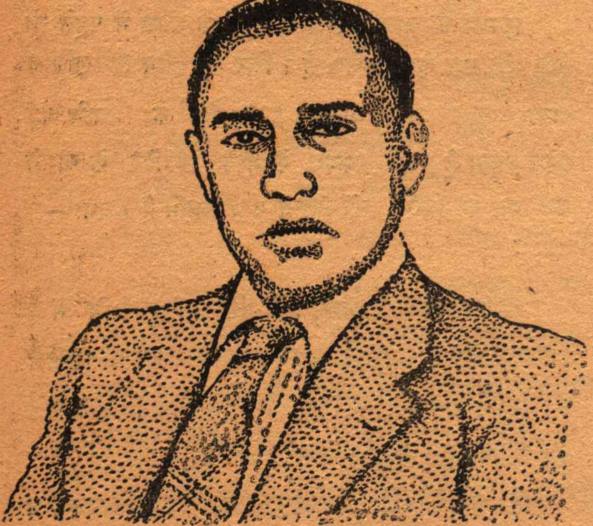

पण्डित कालीचरण पन्त

अल्मोड़ा के स्वर्गीय पण्डित कालीचरण जी पन्त वास्तव में "कौल-शिरोमणि" थे । स्वर्गीय महाराज आनन्दसिंह जी से आपको वीर-मार्ग की साधना का क्रियात्मक प्रशिक्षण मिला था । फलतः आप उस सम्बन्ध में पूर्ण निष्णात थे । 'कौल-कल्पतरु' स्वर्गीय पण्डित देवीदत्त शुक्ल जी से आपका सम्पर्क उस समय अचानक ही हो गया था, जब आप प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्ययन कर रहे थे । इस सम्पर्क का रोचक वर्णन आपने स्वयं अपने 'पूज्यवर सुकुल जी' शीर्षक संस्मरणात्मक लेख में किया है । देखिए "चण्डी", वर्ष ३०, पृष्ठ ५८-६१ ।

"गोपनीयता" के सिद्धान्त के आप कट्टर अनुयायी थे । वार्तालाप में प्रायः आप वीर-मार्ग का उपहास-सा करते पाये जाते थे; मस्तक पर भस्म-विन्दु आदि आप कभी धारण नहीं करते थे और आंग्ल वेश-भूषा में अधिकतर लोगों को आपके दर्शन मिलते थे । अतएव आपके साधक-स्वरूप का ज्ञान उन्हीं व्यक्तियों को हो पाता था, जो आपके निकट सम्पर्क में पहुँच पाते थे । यही नहीं, निकट सम्पर्क के लोगों को भी आपकी वास्तविक योग्यता का भान कठिनाई से ही हो पाता था, क्योंकि साधना की रहस्यात्मक बातों को आप सदैव "गोपनीयता" के आवरण में छिपाये रहते थे । मन्त्र-बीजों का उच्चारण आप कभी नहीं करते थे और यदि कोई कभी आपके समक्ष 'क्रीं', 'श्रीं', 'ह्रीं', आदि का उच्चारण कर देता था, तो आप तुरन्त ही अपने दोनों कानों में उँगली डाल लेते थे तथा उच्चारण करने को मना करते थे । जिन कतिपय व्यक्तियों को आपके अर्चन के देखने का अवसर मिलता था, वे प्रयत्न करने भी आपके पूजा-क्रम तथा आपके द्वारा बनाई जानेवाली मुद्राओं को समझ नहीं पाते थे; इतनी सावधानी के साथ आप "गोपनीयता" के नियम का पालन करते थे ।

"कौल-कल्पतरु" पूज्य श्री शुक्ल जी के सम्पर्क के फल-स्वरूप आपके "गोपनीयता" के भाव में क्रमशः कमी आती गई । "चण्डी" का प्रकाशन सम्वत् १९९६ विक्रमी में प्रारम्भ होने पर आपने पहले तो उसमें 'कालिकानन्द' के कल्पित नाम से लेख लिखा, किन्तु बाद में आपने अपने वास्तविक नाम को छापने की अनुमति दे दी । यही नहीं, शाक्त-धर्म के प्रचार की "चण्डी" की भावना ने आपको इतना आकृष्ट किया कि आपने प्रति नवरात्र में अनेक इच्छुक व्यक्तियों को अपने खर्च से शाक्त-धर्म की दीक्षा दिलाने का नियम बना लिया । आप स्वयं तो दीक्षा देते नहीं थे, किन्तु बाहर से शाक्त आचार्यों को अल्मोड़

बुलाकर उनसे दीक्षा दिलाते थे। उदाहरण के लिए हमें स्मरण है; एक बार आपने मिथिला के प्रसिद्ध कौलाचार्य श्री श्यामानन्द नाथ को बड़े आदर के साथ अल्मोड़ा बुलाया था; उन्हें अपने पास से आने-जाने का द्वितीय श्रेणी का रेलवे किराया और पर्याप्त दक्षिणा प्रदान की थी। प्रायः स्वयं दीक्षा इसलिए नहीं देते थे, क्योंकि आप का कहना था कि आपके गुरुदेव ने उसके लिए आपको अनुमति नहीं दी थी, किन्तु जहां तक हम समझ पाए, आप वस्तुतः अपनी स्वाभाविक निःस्पृहता की भावना के वशीभूत होकर दीक्षा देने के कार्य से विरत रहे। अन्यथा नव-दीक्षित व्यक्तियों के दीक्षा-दाता गुरुदेव तो अपने दूरस्थ स्थानों को पधार जाते थे; उनके मार्ग-दर्शन का कार्य व्यवहारतः आपको ही करना पड़ता था।

इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि इधर जीवन के-अन्तिम वर्षों में आप और भी अधिक शाक्त-धर्म के प्रचार कार्य में तत्पर हो गए थे और आग्रह करके 'कौल-कल्पतरु' पूज्यश्री शुक्ल जी से आपने अनेक व्यक्तियों को दीक्षा-लाभ कराया। एक उद्‌भट व्यक्ति की दीक्षा के लिए तो आपको घोर परिश्रम करना पड़ा। अल्मोड़ा में अपने घर में अनिवार्य आवश्यकताएँ होने पर भी लोकोपकार की भावना से आप दूरस्थ नगरों में न केवल हफ्तों टिके रहे, अपितु दिन-रात परिश्रम कर उक्त महानुभाव को साधना का पूरा क्रम स्वयं सिखाया—अपने प्रत्यक्ष निर्देशन में पुरश्चरण तक सम्पन्न कराया!

अल्मोड़ा में तथा पर्वतीय क्षेत्रों में आप इतने गुप्त नहीं थे। इसके विपरीत आपके संबंध में प्रसिद्ध था कि आप विकट तान्त्रिक हैं किन्तु इस प्रसिद्धि के फलस्वरूप आपकी "गोपनीयता" में कोई व्याघात नहीं पहुँचा क्योंकि वहाँ के लोग आपकी तान्त्रिकता से आतङ्कित ही रहे और कदाचित् कोई भी आपकी साधना-प्रवणता का लाभ वहाँ नहीं उठा पाया। वैसे आप अधिकारी व्यक्तियों को साधना-मार्ग में दीक्षित कराने और उन्हें मार्ग-दर्शन करने-कराने में बहुत ही उदार थे।

आपकी उदारता का एक प्रमाण आपकी वह विज्ञप्ति है, जो आपने 'चण्डी' में शाक्त-सेमिनार के सम्बन्ध में छपवाई थी। आपने शाक्त-धर्म के जिज्ञासु साधकों का आवाहन अल्मोड़ा में किया था और वहाँ उनके ठहरने, खाने-पीने का भार स्वयं वहन करने का आश्वासन दिया था तथा उनकी साधना-सम्बंधी जिज्ञासाओं का समाधान करने का उत्तरदायित्व स्वीकार किया था। साधकों को केवल अपने निवास-स्थान से अल्मोड़ा तक आने-जाने का व्यय वहन करना था। किन्तु यह शाक्तों का अति दुर्भाग्य ही माना जायेगा कि उन्होंने उक्त अभूतपूर्व आवाहन की ओर ध्यान तक नहीं दिया!

पूज्य श्री पन्त जी हरद्वार के 'कौल-धाम' के प्रमुख एवं सक्रिय ट्रस्टी भी थे। यह 'कौल-धाम' वीर साधकों के लिए परम तीर्थ के समान है। पहले पहल पन्त जी द्वारा ही इस तीर्थ का स्पष्ट परिचय उनके द्वारा लिखित 'कौल-धाम' शीर्षक लेख (देखिए 'चण्डी' वैशाख २०२१ पृष्ठ ३६) से प्रकाश में आया। उसी वर्ष भाद्रपद के अङ्क में पुनः 'कौल-धाम' के महत्व को हृदयङ्गम कराने के लिए उन्हीं के द्वारा लिखित एक टिप्पणी भी सम्पादकीय स्तम्भ में 'कौल-धर्म का परिचय' शीर्षक से प्रकाशित की गई।

कौल-सिद्धान्तों के अनुधावन में आपकी दृढ़ता निरन्तर अनुकरणीय बनी रही। इस सम्बंध में एक प्रसंग का यहाँ उल्लेख करना उचित ही होगा। तीर्थराज प्रयाग के संगम क्षेत्र में 'शाक्त-सम्मेलन' का आयोजन यहाँ के प्रसिद्ध तीर्थ-पुरोहित श्री पण्डित नारायणप्रसाद शर्मा द्वारा किया गया। माघ-मेले के मैदान में विशाल तम्बू कनात आदि स्थापित हो गए। भव्य नाम-पट्ट (साइन बोर्ड) और उद्‌घोषकों (लाउड स्पीकर) तथा विद्युत्-प्रकाश की आकर्षक व्यवस्था की गई। 'तांत्रिक-प्रदर्शनी' और 'शाक्त धर्म पर प्रवचन'—आकर्षण के विशेष विषय थे, इस सबके साथ ही 'शतचण्डी यज्ञ' के विराट् आयोजन का भी प्रयास था। इस सबको आशीर्वाद प्राप्त था एक वीतराग सिद्ध संन्यासी महात्मा का। साथ ही अनेक महन्तों और तीर्थ-पुरोहितों तथा पण्डितों का हार्दिक सहयोग अलग सुलभ था। प्रतीत होता था कि 'शाक्त-सम्मेलन' वास्तव में अस्तित्व में आकर सक्रिय हो उठा है। किन्तु पूज्य श्री पन्त जी को जब यह ज्ञात हुआ कि 'शतचण्डी-यज्ञ' में छाग-बलि का प्रावधान नहीं है, तो आपने समस्त आयोजन से अपने को विलग कर लिया। आपको समझाने-बुझाने, मनाने के सभी उपाय

निष्फल गए। आपने दृढ़तापूर्वक कहा कि–'छाग-बलि से रहित शतचण्डी का परिणाम कभी कल्याणकारी नहीं हो सकता और कम-से कम मैं इस अशास्त्रीय आयोजन में भाग नहीं ले सकता' और सचमुच ही पूज्य श्री पन्त जी का यह कथन सत्य प्रमाणित हुआ। उक्त सारा आयोजन जैसे-तैसे ही चला और 'शाक्त-सम्मेलन' पुनः निष्क्रियता के अन्धकार में लुप्त हो गया।

पूज्य श्री पन्त जी कौल-सत्संग में विशेष रुचि रखते थे। कितने ही कौल महात्माओं, साधकों की जीवन-कथा से आप अन्तरंग रूप से परिचित थे। हमारे अनुरोध से आपने इन कथाओं को लिपि-बद्ध करना प्रारम्भ किया और ऐसे अनेक जीवन-चरित प्रकाश में आए, जिनसे जिज्ञासु साधकों को प्रोत्साहन मिल सकता है। खेद है कि परिस्थितियों-वश यह लेख-प्रकाशन का कार्य पूर्ण रूप से नहीं हो सका।

पटना की प्रख्यात पूज्या श्री १००८ श्री माई जी उधर प्रति वर्ष प्रयाग पधारा करती थीं। एक-दो-बार ऐसा संयोग हुआ कि पूज्य श्री पन्त जी भी यहाँ उपस्थित थे। आपने तुरन्त ही जाकर पूज्या श्री माई के दर्शन किये। पूज्या श्री माई जी आपको देखकर अति प्रसन्न हुईं। आपने अपने श्री मुख से अनेक बार यह प्रतिपादित किया कि 'पन्त जी वास्तव में एक उच्च कोटि के साधक हैं और इनकी कुण्डलिनी जाग्रत है।'

काशी में सम्वत् २०२२ में तत्कालीन राज्यपाल श्री विश्वनाथ दास की प्रेरणा से जब 'तांत्रिक सम्मेलन' का अभूतपूर्व आयोजन किया गया, तब उसकी दर्शन-गोष्ठी में भाग लेने के लिए पूज्य श्री पन्त जी को सादर आमन्त्रित किया गया था और आपने उसके लिए शाक्त दर्शन पर जो सूत्रात्मक निबन्ध अल्प समय में ही प्रस्तुत किया, उसे सुनकर सम्मेलन में उपस्थित दिग्गज दार्शनिक भी मुग्ध हो उठे थे। बाद में उस निबन्ध को आपने कल्याण मन्दिर को प्रकाशनार्थ अर्पित कर दिया। आपकी उक्त अनूठी कृति आपकी विद्वत्ता की आज भी कीर्ति-पताका फहरा रही है। 'तांत्रिक सम्मेलन' के सूत्रधार महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ जी कविराज से भी आपका उसी समय पहले पहल साक्षात्कार हुआ था और आपकी कौल-धर्म की मर्मज्ञता से वे अत्यधिक प्रभावित हुये थे।

तन्त्र-दर्शन में तो आप पारङ्गत थे ही, तांत्रिक कर्मकाण्ड में भी आप सिद्धहस्त थे। प्रयाग में आप अपनी सहज दयालुतावश एक संकट-ग्रस्त न्यायाधीश के प्रति दयार्द्र हो उठे और उनके कल्याणार्थ एक अनुष्ठान का सङ्कल्प कर बैठे। उस समय हमें उनके क्रिया-कौशल को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। देखते-ही-देखते केवल एक अर्घे और तश्तरी के सहारे आपने हवन-वेदी पर एक कलापूर्ण जटिल यन्त्र की रचना कर डाली और उस यन्त्र के विविध कोष्ठ-प्रकोष्ठों को चित्र-विचित्र रङ्गों से भरकर हम लोगों को आश्चर्य में डाल दिया। केवल कुछ ही घण्टों के उस अनुष्ठान के फलस्वरूप कालान्तर में उक्त न्यायाधीश महोदय की अभीष्ट-सिद्धि भी हो गई।

पूज्य श्री पन्त जी ऐसे ही साधना-सिद्ध, परोपकारी, निःस्पृह, धर्मप्राण कौल साधक थे। आपके तपोपूत जीवन का पूर्ण वर्णन वस्तुतः गम्भीर अनुसन्धान का विषय है। हमारा जैसा अल्पज्ञ इस कार्य में सर्वथा असमर्थ है। यहाँ टूटे-फूटे शब्दों में जो बाल-प्रयास आपकी विशेषताओं को व्यक्त करने के लिए किया गया है, उससे आपके दिव्य स्वरूप की एक झाँकी भी प्रस्तुत नहीं होती। फिर भी एक अल्पज्ञ भक्त की हार्दिक श्रद्धाञ्जलि के रूप में यदि पाठक बन्धुओं ने इस पर किञ्चित् भी विचार किया और कुछ भी प्रेरणा प्राप्त की, तो लेखक अपने को कृतार्थ मानेगा। नमो नमः 'कौल-शिरोमणि-श्रीकाली चरण-पादुकाभ्यां।

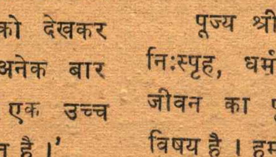

१—'श्रीपीताम्बरा पीठ' में जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य

गताङ्क के 'धार्मिक जगत् की हलचल' स्तम्भ में उक्त शीर्षक से एक समाचार छपा है। साथ ही तत्सम्बन्धी दो चित्र भी प्रकाशित हुए हैं, जिनमें से प्रथम चित्र में कामकोटि-पीठ के जगद्गुरु का पूर्ण कुम्भ से 'स्वागत' का पूर्ण विवरण 'श्री पीताम्बरा पीठ परिषद्' से हमें अब प्राप्त हुआ है, जो निम्न प्रकार है—

जगद्गुरु श्री १००८ श्री शङ्कराचार्य श्री स्वामी जयेन्द्र सरस्वती जी महाराज दतिया (म० प्र०) के सर्किट हाउस में ठहरे थे। आपको वहाँ से लाने के लिए 'श्री पीताम्बरा पीठ' की ओर से श्री वृजनन्दन जी शास्त्री एवं श्री ललिताप्रसाद जी शास्त्री तथा श्री विष्णुकान्त जी गए और आपके आगमन पर 'पीठ' के शास्त्रि-वर्ग ने आपका स्वागत किया। स्वागत-भाषण संस्कृत में श्री वृजनन्दन जी शास्त्री ने पढ़ा था।

इस प्रकार श्री जगद्गुरु जी का स्वागत यथोचित रूप से 'श्री पीताम्बरा-पीठ' में पीठ के प्रतिनिधि शास्त्रियों द्वारा सम्पन्न हुआ था। आशा है कि पाठक इस विवरण से उक्त समाचार को सही रूप में हृदयंगम कर सकेंगे।

२—'चण्डी' का त्रैमासिक प्रकाशन

'कौल-कल्पतरु' चण्डी का प्रकाशन इस वर्ष त्रैमासिक-रूप में प्रारम्भ किया गया। यह उसका तीसरा त्रैमासिक अङ्क है। शाक्त-साहित्य के प्रेमियों ने 'चण्डी' का स्वागत सोत्साह किया है और उनका आग्रह है कि इसे पूर्ववत् मासिक-रूप में ही प्रकाशित किया जाय। हम भी उनसे सहमत हैं किन्तु जबतक ग्राहकों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि नहीं होती है, तब तक दिन-प्रतिदिन वर्द्धमान मँहगाई के इस युग में वैसा करना सम्भव नहीं प्रतीत होता।

यह सच है कि दो-तीन बन्धुओं ने 'चण्डी' के ग्राहकों की संख्या बढ़ाने में विशेष प्रयास किया है, किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि सभी प्रेमी पाठक ऐसा प्रयत्न करें कि उनके परिचय के अधिक-से-अधिक लोग अपने विषय की इस एकमात्र अनूठी पत्रिका के ग्राहक बनें और इससे लाभ उठावें। जैसे ही ग्राहकों की संख्या एक सहस्र तक पहुंचेगी, वैसे ही "कौल-कल्पतरु" चण्डी का प्रकाशन मासिक-रूप में होने लगेगा। आशा है कि जो बन्धु 'चण्डी' को प्रति मास प्राप्त करना चाहते हैं, वे अपने पत्रिका की उक्त आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए कृपया अधिकाधिक सचेष्ट होने का कष्ट करेंगे।

३—स्वर्गीय पन्त जी को श्रद्धाञ्जलि

'कौल-शिरोमणि' स्वर्गीय पण्डित कालीचरण पन्त जी की पुण्य स्मृति में 'कौल-कल्पतरु' चण्डी का एक 'श्रद्धाञ्जलि-विशेषाङ्क' ही हम प्रकाशित करना चाहते थे। इस सम्बन्ध में हमें अनेक उपयोगी लेख भी प्राप्त हो गए और स्वर्गीय पन्त जी का एक दुर्लभ चित्र भी मिल गया किन्तु अचानक ही कागज आदि के मूल्य में अत्यधिक वृद्धि हो जाने के कारण उस सबका उपयोग करने में हम असमर्थ रहे, इसका हमें दुःख है। जिन महानुभावों के लेखादि प्रकाशित नहीं हुए हैं, वे परिस्थिति को समझ कर कृपया हमें क्षमा करेंगे। सम्भव हुआ, तो उनका प्रकाशन अगले अङ्क में किया जायेगा।

४—स्व० पन्त जी का कौल श्राद्ध

शारदीय नवरात्र की समाप्ति के तुरन्त बाद ही पूज्य श्री पण्डित पूर्णानन्द जी मैठाणी के सत्प्रयास से 'कौल-शिरोमणि' स्व० पण्डित कालीचरण जी पन्त का "कौल-श्राद्ध" विन्ध्याचल के पवित्र धाम में भैरव-कुण्ड के आचार्य-प्रवर पूज्य श्री यमुनाप्रसाद जी ब्रह्मचारी की छत्र-छाया में विधिवत् सम्पन्न हुआ

इस महत्कार्य में विन्ध्याचल-धाम के साधक-प्रवर श्री वटुकनाथ जी ने तथा तीर्थराज प्रयाग 'कुलभूषण' पं० रमादत्त शुक्ल, एम० ए० ने अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया। 'कुलमार्तण्ड राजगुर स्व० पं० योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति जी शास्त्री के ग्रन्थ 'साधना-रहस्य' (मूल्य १५.००) में प्रकाशित 'कौल-श्राद्ध' शीर्षक लेख एवं 'कौल-श्राद्ध-विधि' नामक एक हस्तलिखित पद्धति के अनुसार उक्त संस्कार किया गया।

प्रकाशित हो गया!

परम पूज्य 'राष्ट्रगुरु' श्री १००८ श्री स्वामी जी महाराज
द्वारा उद्घाटित एवम् षोडशाङ्गों से युक्त

तांत्रिक पंचांग

[श्री-कुल एवम् काली-कुल उभय-विध साधकों के लिए उपयोगी]

ढं बुद्धि तत्व पञ्चदश वर्षे

अधिक मार्गशीर्ष शुक्ल १५ संवत् २०३० से ज्येष्ठ शुक्ल १३ संवत् २०३२
तदनुसार
१० दिसम्बर १९७३ से ८ जुलाई १९७५ तक

* * *

मूल्य—४-००

पं० देवीदत्त शुक्ल स्मारक
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
प्रयाग—६

'कौल-कल्पतरु' चण्डी

वर्ष ३२] आश्विन-मार्गशीर्ष शुक्लाष्टमी २०३० वि० [संख्या ७-९

अनुक्रमणिका

१. उद्बोधन : 'कुल-विद्या-वारिधि' पं० नर्मदेश्वर उपाध्याय, एम० ए०, एल-एल० बी० ८३
२. अमेरिका में विश्व-तन्त्र-संघ : 'कौल-कल्पतरु' स्व० शुक्ल जी ८४
३. यन्त्र-विज्ञान : श्री ऋतशील शर्मा, बी० एस-सी० ८६
४. मन्त्र-विज्ञान : श्री ऋतशील शर्मा, बी० एस-सी० ८९
५. मन्त्र-योग : श्री कालोचरण पन्त (२००२) ९४
६. शङ्कर-श्रुति-माग : श्री कालिकानन्द (आषाढ़ १९९९) ९७
७. विद्या-रहस्य और साधना : पन्त श्री कालिकानन्द (मार्गशीर्ष १९९९) १००
८. नवरात्र : श्री कालीचरण पन्त (भाद्रपद २००१) १०३
९. प्रश्नोत्तर : परम पूज्य 'राष्ट्रगुरु' श्री १००८ श्री स्वामो जी महाराज १०४
१०. संस्मरण : पण्डित सुमित्रानन्दन पन्त १०५
११. श्री नारद द्वारा नवरात्र-व्रत का उपदेश १०६
१२. Shakti-Upasana-Shri M.P. Pandit १०७
१३. श्रीमद्-देवीभागवत में शारदीय नवरात्र : श्री पुण्यशील शर्मा, बी० ए० १०८
१४. तन्त्र में अनुसन्धान : श्री गुन्नार एण्डर्सन की जिज्ञासाओं का समाधान ११२
१५. काली की नित्याएँ (मन्त्र एवं ध्यान)—परम पूज्य "राष्ट्र-गुरु" श्री १००८ श्री स्वामी जी महाराज ११६
१६. धार्मिक जगत् की हलचल [१ श्री श्री सुन्दरी महालक्ष्मी देवी दुर्गा यज्ञ, २ जर्मनी में तान्त्रिक "कला" का प्रदर्शन, ३ शाक्त-साधना-परामनोविज्ञान का प्रेरणा-स्रोत, ४ नव चण्डी अम्बा-यज्ञ] १२०
१७. श्रद्धाञ्जलि : पण्डित नवीनचन्द्र जोशो १२१
१८. ज्योतिष-विधान : पण्डित रामकुमार मिश्र, वैदिक आचार्य १२२
१९. श्रद्धाञ्जलि-'कुलभूषण' श्री रमादत्त शुक्ल, एम० ए० १२४
२०. सम्पादकीय [१ 'श्री पीताम्बरा पीठ' में जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य, २ 'चण्डी' का त्रैमासिक प्रकाशन, ३ स्वर्गीय पन्त जी को श्रद्धाञ्जलि, ४ स्व० पन्त जी का कौल श्राद्ध] १२७

विशेष आकर्षण

वृहत् तन्त्रसार का हिन्दी रूपान्तर 'हिन्दी-तन्त्रसार'

भारत में प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद समय-समय पर ऐसी विभूतियाँ आविर्भूत होती रही हैं, जिन्होंने अपने व्यक्तिगत भौतिक उत्कर्ष की उपेक्षा करते हुये निःस्पृह भाव से तन्त्र-साहित्य के उद्धार के महत् कार्य में अपना सारा जीवन उत्सर्ग कर दिया। ऐसी ही एक विभूति थे 'कौल-कल्पतरु' स्वर्गीय पं० देवीदत्त शुक्ल (भूतपूर्व सम्पादक 'सरस्वती') जिन्होंने हिन्दी भाषा में तन्त्र-साहित्य का सर्वथा अभाव देखकर उसकी पूर्ति करने का बीड़ा आज से लगभग चालीस वर्ष पूर्व उठाया था। उन्हीं के पुरुषार्थ का एक उदाहरण प्रसिद्ध 'वृहत् तन्त्रसार' का हिन्दी-रूपान्तर 'हिन्दी तन्त्रसार' है। तान्त्रिक विषयों के सम्बन्ध में यह संग्रह-ग्रन्थ वास्तव में 'गागर-में-सागर' की उक्ति चरितार्थ करता है।''''आपको यह विदित ही होगा कि उक्त ग्रन्थ के लगभग ३५० पृष्ठ (५ भागों में) 'कल्याण-मन्दिर' द्वारा पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित किये जा चुके हैं। परन्तु अभी तक यह पूर्ण रूप से प्रकाशित नहीं हो सका है। अब ५ भागों के आगे का विषय 'कौल-कल्पतरु' चण्डी के अगले अङ्कों में प्रकाशित किया जा रहा है। साथ ही अलग से पुस्तक के रूप में 'कल्याण-मन्दिर' द्वारा प्रकाशित होगा। यदि अभी तक आपके पास पहले के प्रकाशित ५ भाग (मूल्य दस रुपए) न हों, तो आज ही 'कल्याण-मन्दिर' से मंगा लें। आगे का भाग पुस्तक के रूप में यदि चाहते हों, तो उसके लिए 'कल्याण-मन्दिर' को अग्रिम पाँच रु० भेजकर अपनी प्रति कृपया सुरक्षित करा लेवें।

शाक्तोपयोगी प्रकाशन

कालिका पुराण	३५)
शारदातिलकम्	२०)
मन्त्र और मातृकाओं का रहस्य	१८)
त्रिपुरा-रहस्य	१३)
शाक्त-दर्शन	२०)
गायत्री तन्त्रम्	३)
TRIPURA RAHASYA	20)
प्रत्यभिज्ञा हृदयम्	१२)
साधना-रहस्य	१५)
क्या रामचरितमानस तन्त्र है ?	६)
तांत्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि	७)५०
कर्मठ गुरु	८)
साधुदर्शन तथा सत्प्रसङ्ग	१०)
महाकाल-संहिता	३०)
शाक्त प्रमोद	३०)
कुण्डलिनी योग-तत्व	१)
चिद्विलास	१)
श्रीकृष्ण प्रसङ्ग	१०)
लेख-संग्रह	४)
माधव ग्रन्थावली (मुन्शी माधवराम कृत शक्ति-भक्ति-प्रकाश, करुणा बत्तीसी तथा करुणाष्टक का सटीक आलोचनात्मक अध्ययन)	५)

उद्बोधन

उठो उठो आलस को त्यागो,
जगदम्बा आई है।
क्षय सम्वत् तोहिं उबारयो;
प्रभव विभव लाई है ॥१॥
प्रेमाञ्जलि सों करौ सपर्य्या,
चरनन सीस नवाओ।
लाड़ चाव माता को देखौ.
मन मांगा वर पाओ ॥२॥
जो आरत ह्वै भक्ति आरती,
लै उनके ढिग जावै।
कोऊ को कुपूत नहिं मानै,
सबको गोद बिठावै ॥३॥
वेद पुरान उन दया बखानत,
तोहिं ज्ञान नहिं होवै।
आपत मै मां मां कहि रोवत,
माता दौरि उठावै ॥४॥
ऐसी दया-शील माता को,
क्यों नहिं नित प्रति ध्यावै ?
दुख-दारिद अरु पाप-ताप को,
छिन मै तोर नसावै ॥५॥

'कौल-कल्पतरु' स्व० शुक्ल जी के लेखों के आधार पर—

अमेरिका में 'विश्व-तन्त्र-संघ'

अमेरिका में 'विश्व-तन्त्र-संघ' के कार्य-कलापों का रहस्योद्घाटन पहले-पहल शाक्त-सम्मेलन के अध्यक्ष न्याय-मूर्ति पण्डित शिवनाथ जी काटजू द्वारा लगभग बीस वर्ष पूर्व किया गया। आपके पहले न तो भारतीय धर्माचार्यों में से किसी एक का और न पाश्चात्य देशों के ही धर्माचार्यों में से किसी एक का ध्यान उक्त महत्वपूर्ण रहस्य की ओर गया था। अतएव इसके उद्घाटन का सारा श्रेय आपको ही प्राप्त है। आपके उक्त रहस्योद्घाटन का विवरण सम्वत् २०२१ की "चण्डी" के कार्तिक अङ्क में प्रकाशित 'अमेरिका में तन्त्र' शीर्षक आपके लेख में पहली बार छपा था, जिसे पढ़कर तत्कालीन अध्यात्म-प्रेमियों में अच्छी-खासी उत्सुकता जाग्रत् हुई थी। 'कौल-कल्पतरु' स्व० पण्डित देवीदत्त शुक्ल की प्रतिक्रिया जिन शब्दों में व्यक्त हुई, उन्हें यहाँ उद्धृत करना उचित होगा। पूज्य शुक्ल जी ने 'चण्डी' के उसी अङ्क में सम्पादकीय टिपप्णी के रूप में लिखा कि—

"...'चण्डी' के इस अंक में 'अमेरिका मेंतंत्र' शीर्षक एक खोज-पूर्ण लेख छपा है। इस लेख के लेखक 'चण्डी' के सुपरिचित, शाक्त-सम्मेलन के अध्यक्ष पण्डित शिवनाथ काटजू हैं। हमारा 'चण्डी' के पाठकों से अनुरोध है कि वे इस लेख को ध्यान के साथ पढ़ें। उन्हें इसके पढ़ने से ज्ञात होगा कि उनकी तंत्रोपासना, जिसे वे और उनके आचार्य लोग युग-युगान्त से सुरक्षित रूप से गुप्त रखते चले आ रहे हैं, अब अमेरिका भी पहुंच गई है। पहुंच ही नहीं गई है किन्तु उसका वहाँ सुव्यवस्थित रूप से प्रचार हो रहा है और उसका यह प्रचार वहाँ आज से नहीं कोई पचास-साठ वर्ष से हो रहा है।

अमेरिका के इन तांत्रिक साधकों ने, जैसा कि इस लेख से प्रकट होता है, मूल-ग्रन्थों का उनके अंग्रेजी के अनुवाद सहित वहाँ अच्छा संग्रह भी कर लिया है। संग्रह ही नहीं, उनके पठन-पाठन का समुचित प्रबन्ध भी है। तांत्रिक साधना की तो व्यवस्था है ही।

इस लेख से विदित होता है कि उनके प्रचार का यह विराट् आयोजन वहाँ भी इतनी गुप्त रीति से कार्य-रूप में परिणत किया जा रहा है, जैसा कि हमारे यहाँ है। अन्तर इतना ही है कि हमारे यहाँ की अपेक्षा वहाँ वह अधिक सजीव प्रतीत हो रहा है। इसका कारण यह है कि पाश्चात्य लोग जो कार्य करते हैं, वह अधिक व्यवस्थित रूप से करते हैं। इधर हम लोग व्यवस्था से कोई सम्बन्ध नहीं रखते हैं। त्रुटियों को दूर करना तो अलग रहा, उन्हें ज्यों-की-त्यों बनाये रखने में ही परम्परा का आदर करना मानते हैं!

इस समय हमारे देश में शाक्त-धर्म किस दयनीय दशा को प्राप्त हो गया है, इसकी ओर आचार्य लोग ध्यान तक नहीं देते। तन्त्र-ग्रन्थों के देखने से विदित होता है कि पहले ऐसी बात नहीं थी। केवल शक्तिसंगम को ही उठाकर देखिये, उसमें भारतवर्ष प्रायः ५२ प्रदेशों में विभक्त किया गया है और सिर्फ इसलिए कि तांत्रिक साधना का सुव्यवस्थित प्रचार हो। पहले संगठन के प्रति कुलाचार्यों का ऐसा ही भाव था, परन्तु आज हम संगठन क्या, विघटन के ही ऊपर अधिक ध्यान देते हैं। उदाहरण के लिये काशी को ही लीजिये। इस पवित्र पुरी में कम-से-कम ५-६ हजार दीक्षित कौल साधक होंगे, परन्तु वहाँ का संगठन ऐसा है कि वे सबके सब बहुसंख्यक टुकड़ियों में बँटे हुए हैं। और उनमें आत्मीयता का इतना अभाव है कि एक टुकड़ी दूसरी टुकड़ी को जानती तक नहीं और यदि जानती है, तो निंदा के रूप में। धर्म का यह कैसा पराभव है!

जिस शाक्त धर्म ने इस पवित्र भूमि में धर्म का झंडा सदैव ऊँचा रखा है, वही आज 'गोपनीयता' के बुरे जाल में सकर नगण्यता की स्थिति में पहुंच गया है। इस दयनीय अवस्था पर हमारे धर्माचार्यों को विचार करना चाहिए; श्रीमान् काटजू साहब के उक्त लेख से शिक्षा ग्रहण कर अपने कर्तव्य का बोध करना चाहिये।

माननीय काटजू साहब के उक्त लेख के महत्व को लोग और अच्छी तरह हृदयङ्गम कर सकें, इस उद्देश्य से पूज्य शुक्लजी ने उसी वर्ष (सम्वत् २०२१) माघ की 'चण्डी' में "विश्व-तन्त्र-सङ्घ" शीर्षक से एक लेख लिखा। उसमें उन्होंने श्रीमान् काटजू साहब द्वारा उद्घाटित रहस्य की कथा का सारांश देते हुये लिखा कि—

.. कोई सन् १८६३ की बात है। आर्मेनियन ईसाइयों के एक परिवार ने अपने पुत्र को महीधर नाम के किसी भारतीय कौलाचार्य के हाथों इस उद्देश्य से सौंप दिया कि वे उसे शिक्षित कर पूर्ण सिद्ध महात्मा बना दें। उस लड़के के माता-पिता स्वयं भारतीय संस्कृत-साहित्य के पण्डित थे। कदाचित् महीधर का उस परिवार से घनिष्ठ सम्बन्ध था। सम्भव है कि वे लोग महीधर के शिष्य रहे हों। तभी तो उन्होंने अपने सात वर्षीय बालक को उन्हें अर्पित किया होगा।

महीधर ने उस लड़के की शिक्षा-दीक्षा को सारी जिम्मेदारी प्रसन्नता के साथ अपने ऊपर ले ली। वह लड़का बीस-पचीस वर्ष तक उनकी देख-रेख में रहा। जब वह पूर्ण विद्वान् तथा साधना-सिद्ध हो गया, तब उसने वह काम किया, जो आज भी दुनियाँ का एक रहस्य बना हुआ है। बहुत सम्भव है, इसकी प्रेरणा उस लड़के को उसके गुरुदेव से मिली हो और यह सम्भावना ही नहीं है किन्तु सत्य है, क्योंकि उसके कार्य-कलाप से भविष्य में उसके गुरुदेव महीधर का बराबर सम्पर्क बना रहा। उस लड़के का आदरणीय नाम हमाती था।

हिमाती गुरुदेव का आदेश लेकर अमेरिका के संयुक्त राज्य में गया। वहाँ उसने अपने कार्य का श्रीगणेश प्रारम्भ किया। इसी सिलसिले में उसकी पियरे बर्नार्ड नामक एक लड़के से भेंट हो गई। उसने इस लड़के को दीक्षा देकर संस्कृत की शिक्षा देनी प्रारम्भ की। आवश्यक संस्कृत का ज्ञान प्राप्त हो जाने पर हिमाती ने उसे भारतवर्ष भेज दिया। यहाँ आकर वह नदिया, शान्तीपुर, बनारस में संस्कृत का अध्ययन करता रहा। उसने भारतवर्ष में कोई १ वर्ष तक संस्कृत का गहन अध्ययन ही नहीं किया, किन्तु वह यौगिक साधनाओं आदि का भी अभ्यास करता रहा। यहाँ उसका अपने परम गुरु महीधर से भी सम्पर्क अवश्य रहा होगा।

पूर्ण शिक्षा प्राप्त कर चुकने पर वह यथा समय अमेरिका लौट गया। यह कदाचित् सन् १८९० या ८५ के आस-पास की बात होगी। अमेरिका पहुंचने पर उसके गुरु हिमाती ने अमेरिका में तान्त्रिक विद्या के प्रचार के लिए जो केन्द्रीय सभा सङ्गठित की थी, उसके प्रधान अध्यक्ष का पद इसे दिया गया। कदाचित् इसी समय उसके गुरुदेव ने 'विश्व-तन्त्रसङ्घ' की स्थापना की होगी। उसके विधानानुसार संसार के सभी देश सात भागों में विभक्त किये गये थे और सातों भागों के अपने-अपने केन्द्र के अध्यक्ष थे। इन सबके ऊपर एक प्रधान सभा थी, जिसका केन्द्र भारतवर्ष था। इस प्रकार यह संस्था सारे विश्व में अपने ढंग से तन्त्र-साधना का प्रचार करने लगी।

कौन जानता है कि वे सभी केन्द्र आज भी सक्रिय नहीं हैं और पूर्ववत् ही सञ्चालित नहीं किये जा रहे हैं? परन्तु उन सातों भागों के केन्द्र कहाँ कहाँ हैं, उनके अध्यक्ष कौन-कौन महानुभाव हैं और उनकी प्रधान सभा का भारत में कहाँ कार्यालय है तथा सभी केन्द्रों के अध्यक्ष भारतवर्ष में आकर उक्त प्रधान सभा के वार्षिक अधिवेशन में कब कहाँ भाग लेते हैं—ये सब बातें आज भी रहस्य के गर्भ में निहित हैं।

इन सब बातों का पता काटजू साहब को 'तांत्रिक आर्डर इन अमेरिका' नामक पत्रिका के सन् १९०६ के अङ्कों का अध्ययन करने से लगा है। इसके अतिरिक्त उन्हें बर्नार्ड का एक निजी पत्र भी मिला है, जिससे उनकी खोजों को और भी अधिक पुष्टता प्राप्त हो गई है। काटजू साहब के लेख से विदित होता है कि बर्नार्ड ने अमेरिका के केन्द्र के अध्यक्ष-पद को स्वीकार करके वहाँ कोई ६ साधना-केन्द्रों की स्थापना की तथा इन सब स्थानों में संस्कृत के महत्वपूर्ण धार्मिक ग्रन्थों के पढ़ाये जाने की समुचित व्यवस्था

(शेष पृष्ठ ८८ पर)

यन्त्र-विज्ञान

(गताङ्क पृष्ठ ४८ का शेष)

कार्य-सिद्धि-हेतु प्रयोग-कर्त्ता साधक को उक्त सर्वतोभद्रादि मण्डल किस प्रकार साह्यभूत होते हैं, यह समझने के लिए उक्त मण्डलों के विविध रङ्गों एवं उनकी आकृतियों का रहस्य जानना आवश्यक है। उक्त यन्त्रों में विभिन्न रङ्गों और आकृतियों का अपना विशिष्ट स्थान है एवम् इनका कार्य-सिद्धि की पृष्ठभूमि पर निश्चय ही कुछ-न-कुछ प्रभाव पड़ता है। इन रङ्गों और आकृतियों का प्रभाव कार्य-सिद्धि की पृष्ठ-भूमि पर किस प्रकार पड़ता है, यही यहाँ विवेच्य विषय है। तत्पश्चात् पूजा-यन्त्रों पर विस्तार से विचार किया जायेगा।

प्रत्येक पदार्थ के चारों ओर एक विशेष प्रकार का तेजोमण्डल व्याप्त रहता है। विभिन्न धर्मों में अपने दिव्य-पुरुषों और देवताओं का वर्णन करते समय इस तेजोमण्डल को उनके-दिव्य चरित के प्रतीक के रूप में स्वीकार किया गया है। इस तेजोमण्डल की वैज्ञानिक पुष्टि भी हो चुकी है। नोबुल-पुरस्कार-प्राप्त प्रसिद्ध आणविक वैज्ञानिक डा० हैराल्ड सी० उरे के नेतृत्व में कुछ प्रयोग किये गये हैं, जिनसे यह ज्ञात हुआ है कि—

'...पृथ्वी पर जीवन-शक्ति सर्वप्रथम वायुमण्डलीय विद्युत् के रूप में प्रकट हुई। इसका प्रमाण यह है कि पृथ्वी के सभी प्राणियों का अपना-अपना विद्युत् क्षेत्र होता है....।'

इस तेजोमण्डल की उपस्थिति के स्पष्ट ज्ञान लिये अति सम्वेदन-शील मायक्रो-वोल्ट-मीटर जैसे यन्त्रों का भी निर्माण हो चुका है। इनकी सहायता से अब यह प्रमाणित हो गया है कि प्रत्येक जीव में विद्युत्-क्षेत्र विद्यमान है। कुछ वैज्ञानिकों ने तो इन तेजोमण्डलों का छाया-चित्र खींचने का भी दावा किया है।

उक्त तेजोमंडल, जिसको अंग्रेजी भाषा में 'ओरा' व संस्कृत भाषा में 'अथर्वा' के नाम से पहचानते हैं, सप्राण या चैतन्य देह के चारों ओर अत्यन्त क्रिया-शील-रूप में विद्यमान रहता है। सम्पूर्ण पदार्थों के चारों ओर स्थित अथर्वा एक रङ्ग का ही नहीं होता, अपितु भिन्न-भिन्न पदार्थों के चारों ओर विभिन्न वर्णों का 'अथर्वा' होत है। जड़ पदार्थों के चारों ओर स्थित 'अथर्वा' लगभग उसी रङ्ग का होता है, जिस रङ्ग का पदार्थ होता है, परन्तु चैतन्य प्राणी का 'अथर्वा' उस प्राणी के चरित्र, स्वभाव एवं विचारों से प्रभावित रहता है। किस-किस प्रकार के विचार, स्वभाव, चरित्र के फलस्वरूप किस-किस रङ्ग का 'अथर्वा' होता है, इन सब तथ्यों पर भी प्रयोगों द्वारा पर्याप्त प्रकाश पड़ चुका है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रकृति द्वारा सर्वोत्कृष्ट प्राणी मनुष्य को यह स्वतन्त्रता प्राप्त है कि वह अमुकामुक कर्म के अभ्यास द्वारा अपने वांच्छित रङ्गवाले 'अथर्वा' को प्राप्त

र ले। माइक्रो-वोल्ट-मीटर द्वारा यह भी अब ात हो चुका है कि उक्त विद्युत्-क्षेत्र की शक्ति व म्बकीयता में बाह्य व आन्तरिक घटनाओं के द्वारा रिवर्तन हो सकता है। इस तथ्य के स्पष्ट ज्ञान के ारण भारतीय ऋषि सहस्रों वर्ष पूर्व ही उन तर्क-सम्मत द्धतियों को जन-साधारण के निमित्त सुलभ कर सके, जिनके द्वारा कोई भी प्रयत्न-शील व्यक्ति अपनी इच्छानुसार पने 'अथर्वा' का निर्माण कर सकता है।

अथर्वा के वर्ण के अनुकूल ही व्यक्ति के चरित्र, स्वभाव एवं विचारों का निर्माण होता है। दूसरे शब्दों में मस्तिष्क एवं 'अथर्वा' का इस प्रकार सम्बन्ध है कि अथर्वा के वर्ण पर मस्तिष्क का विकसित व जड़ी-भूत होना निर्भर करता है और मस्तिष्क के विकास व जड़त्व के अनुकूल ही 'अथर्वा' का रङ्ग निश्चित होता है। इसीलिए बहुत से वैज्ञानिक मात्र 'अथर्वा' के परीक्षण द्वारा व्यक्ति के स्वभाव, चरित्र, विचार आदि को ज्ञात करने का दावा करते हैं।

यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि भारतीय महर्षियों ने 'अथर्वा' के वर्ण-परिवर्तन में बाह्य जड़-पदार्थों का उपयोग केवल सहायक के रूप में किया है क्योंकि जब जड़ पदार्थों के 'अथर्वा' द्वारा चैतन्य-प्राणियों के अथर्वा का वर्ण-परिवर्तन किया जायेगा, तब वह जड़ता या उससे उत्पन्न विकृति निश्चित रूप में उक्त चैतन्य प्राणियों के 'अथर्वा'-विशेष को प्रभावित करेगी। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति अपने चारों ओर लाल रङ्ग को—लाल रङ्ग के मकान, लाल वस्त्र, लाल रङ्ग के पर्दे, लाल रोशनी आदि को प्रधानता देता है, तो उसके चारों ओर स्थित उक्त लाल रङ्ग की वस्तुओं के लाल रंग का अथर्वा व्यक्ति-विशेष के निजी 'अथर्वा' के रङ्ग को प्रभावित करेगा। इससे स्पष्ट है कि 'अथर्वा' के रङ्ग-परिवर्तन की इस प्रक्रिया में जड़त्व का कितना गहरा प्रभाव पड़ता है। पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने प्रयोगों द्वारा इस तथ्य को प्रमाणित भी किया है। लाल वर्ण का अत्यधिक उपयोग मानसिक-विकृति का कारण सिद्ध हुआ है।

इसीलिए हमारे पूज्य महर्षियों ने बाह्य जड़-पदार्थों के 'अथर्वा' का उपयोग केवल सहायक के रूप में करते हुए 'अथर्वा-वर्ण परिवर्तन' के लिए 'ध्यान-तत्व' आदि जैसे सूक्ष्म तत्वों का स्पष्टीकरण किया है। उन्होंने ऐसे असंख्यी ध्यानों की रचना की है, जिनके द्वारा किसी वर्ण-विशेष क विशेषताओं से सम्पन्न आकृति-विशेष का सतत ध्यान किया जाता है और उसके फलस्वरूप उक्त विशेषताओं से युक्त 'अथर्वा' से साधक के अपने 'अथर्वा' का घनिष्ठतम सम्बन्ध हो जाता है।

सर्वतोभद्रादि मण्डल उक्त असंख्य ध्यानों के कुछ नमूने हैं। कार्य-सिद्धि की उचित पृष्ठ-भूमि तैयार करने में ये किस प्रकार सूक्ष्म रूप से साधक के लिए उचित मानसिक-स्थिति पैदा करने में सहायक होते हैं, यह ऊपों के तथ्यों से सहज ही बोध-गम्य है।

दूसरे प्रकार के 'कार्य-सिद्धि-यन्त्र' भी, जिनमें रङ्ग की प्रधानता न होकर बीजाक्षरों की प्रधानता रहती है, उचित मानसिक स्थिति पैदा करने में सहायक होते हैं। ऐसे 'कार्य-सिद्धि-यन्त्रों' में 'कूर्म चक्र' बहुत प्रसिद्ध है। देखिये रेखाचित्र सं० १२

जिस स्थान में पुरुष दीप्यमान् होता है, उसे दीप-स्थान कहते हैं और दीप-स्थान का आश्रय लेकर जो भी कार्य किया जाता है, वह फल-प्रद होता है। इसके लिए मनोनीत स्थान में 'कूर्म-चक्र' की रचना करके जप-पूजा आदि की जाती है। 'कूर्म-चक्र' के जिस कोष्ठ में उक्त स्थान (ग्राम, नगर आदि) के नाम का पहला अक्षर हो, उसे कूर्म का मुख समझना चाहिये। मुख के दोनों ओर के कोष्ठ उसके हाथ, हाथ के नीचेवाले दो कोष्ठ उसकी कुक्षियाँ, कुक्षियों के नीचेवाले दो कोष्ठ उसके पैर और शेष कोष्ठ उसकी पूंछ जानना चाहिये। इसी प्रकार मध्य-

वर्ती नौ कोष्ठों का भी विभाजन किया जाता है। पूजा-मण्डप के जिस भाग में कूर्म का मुख होता है, वहाँ बैठकर जप-पूजादि कार्य करने से मन्त्र फल-प्रद सिद्ध होते हैं। हाथ वाले भाग में कार्य करने से साधक अल्प-जीवी, कुक्षि में उदासीन, पैर में दुःखी और पूंछ में करने से बन्धन तथा उच्चाटनादि से पीड़ित होते हैं।

ऐसे 'कार्य-सिद्धि-यन्त्रों' में 'मातृकायन्त्र' भी बहुत प्रसिद्ध ह। मन्त्र-सिद्धि के लिये मन्त्र-ग्रहण करने के पूर्व कुछ-मन्त्र-संस्कार करना आवश्यक होता है। 'जनन-संस्कार' पहला संस्कार है। इसके लिये 'मातृका-यन्त्र' की रचना करनी होती है। बिना 'जनन-संस्कार' के मन्त्र-ग्रहण करने से अभीष्ट फल की प्राप्ति सम्भव नहीं है। 'मातृका-यन्त्र' दो प्रकार के हैं। रेखाचित्र इस प्रकार हैं—(कृपया अगले अङ्क में देखें) क्रमशः

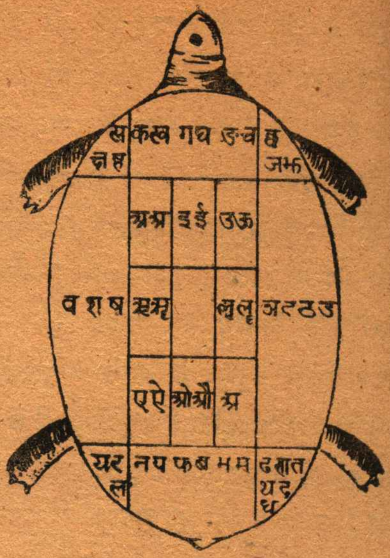

(चित्र सं० १२—कूर्म चक्र')

(पृष्ठ ८५ का शेषांश)

ही नहीं की, किन्तु अपने सभी धार्मिक केन्द्रों के सदस्यों को योग तथा तान्त्रिक साधना की शिक्षा देने की भी समुचित व्यवस्था की।

अमेरिका के इस केन्द्र के पुस्तकालयों तथा उसके साधना-केन्द्रों का जो विवरण काटजू साहब ने लिखा है, उसी से प्रकट होता है कि उक्त तन्त्र-सङ्घ की अमेरिका की शाखा अपने कार्य-कलाप में कितना अधिक व्यवस्थित है। उससे अनुमान किया जा सकता है कि संसार के शेष छः भागों में भी वहाँ-वहाँ के केन्द्र अपने-अपने यहाँ सुव्यवस्थित रूप से प्रचार-कार्य करते होंगे।

इसी विवरण से यह भी अनुमान लगाना उचित ही होगा कि भारत में स्थित उक्त सङ्घ की प्रधान सभा भी अपना कार्य-कलाप तद्वत् ही सुगठित रूप से करती होगी। परन्तु इन सबके कर्तृत्व का पता किसी को नहीं है। इससे बड़ी रहस्य की बात और कौन हो सकती है!

महीधर नहीं हैं, उनके शिष्य हिमाती हैं या नहीं—इसका पता नहीं। हिमाती के शिष्य बर्नार्ड गत ८ अक्टूबर सन् १९५५ को दिवङ्गत हो गए। इन सबके क्रिया-कलाप का पिछले सत्तर वर्ष का इतिहास गोपनीयता की गुहा में छिपा हुआ है। साधना के क्षेत्र में यह सचमुच बड़े विस्मय और आश्चर्य की बात है।

इसमें संदेह नहीं कि महीधर हमारी पुण्य-भूमि भारतव के वर्तमान समय के महर्षि थे। यह उन्हीं की महाप्रेरणा का फल है कि विश्व में तन्त्र-धर्म का सुव्यवस्थित प्रचार हो गया और यह शास्त्रीय वचन कि 'कलौ चण्डी-महेश्वरौ' तथा 'तन्त्र-धर्म युगधर्म है'—यह लोकोक्ति सत्य रूप में प्रतिष्ठित हो गई।

मन्त्र-विज्ञान (गताङ्क पृष्ठ २८ का शेष)

एल० एस० डी० आज एक पूरी संस्कृति या संस्कृति का नाम बन चुकी है। इसके सहारे पाश्चात्य वक आत्म-चेतना की विस्तृत शक्तियों के द्वारा मङ्गल ह-वासियों से सम्पर्क स्थापित करने का प्रायः दावा किया करते हैं। इस संस्कृति के सूत्रधार हैं—हार्वर्ड विश्वबिद्यालय के भूतपूर्व मनोवैज्ञानिक विद्वान् डा० टिमोथी लियरी। उनके शब्दों में एल० एस० डी० ानव-मस्तिष्क को दिया जानेवाला एक 'विटामिन' है। से नशीला द्रव्य न कहकर 'चेतना का उद्धारक' (साइके-डेलिक) कहते हैं। उनका कहना है कि अमेरिकी समाज ोर अमेरिकी सरकार के विविध विभागों के अधिकारी नकी जान के दुश्मन बन बैठे हैं, क्योंकि उन्होंने मानवीय ेतना का विस्तार कर परम्परा और प्रतिष्ठित समाज-यवस्था को चुनौती दी है।

न्यूयार्क काउण्टी की मेडिकल सोसायटी के अध्यक्ष क्टर डोनल्ड लियरी के अनुसार एल० एस० डी० जैसे ाइकेडेलिक्स' दिव्य सत्ता से सम्पर्क स्थापित करने, ानवीय चेतना का विकास करने और मानव में मानव के ति अधिक गहरा स्नेह-सम्बन्ध स्थापित करने के महत्व-र्ण साधन हैं।

चिद्-शक्ति-विकास से सम्बन्धित उक्त विवरण देने ा हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि एल० एस० डी० द्वारा िद्-शक्ति का विकास बिना किसी हानि के सम्भव है। मारा तो मात्र अभिप्राय यह स्पष्ट करना है कि अब श्चात्य समाज भी विज्ञान, सत्य की खोज में आगे बढ़ता था अति-यान्त्रिकता से उकताकर चेतना-विकास के िये अग्रसर होने का प्रयास कर रहा है। चिद्-शक्ति के विकास के महत्वों से वह अवगत हो चुका है। भले ही इस समय उसका प्रयास हानिकारक ढँग से हो रहा हो।

जप की आवश्यकता

जप की आवश्यकता के सम्बन्ध में हम ऊपर प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप में यत्र-तत्र विचार कर चुके हैं। यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि चिद्-शक्ति-विकास के लिए जप एक महत्वपूर्ण साधन है। आज मनुष्य ने अपने बुद्धि-कौशल से एक ओर तो नवीन कल-कारखानों, उद्योगों द्वारा राष्ट्र की सम्पन्नता व सुख-सुविधा में वृद्धि की है, वहीं दूसरी ओर उसने अपना जीवन-स्तर अत्यन्त निम्न कोटि का बना लिया है। हमारी आवश्यकताएँ सिमटकर मात्र खाने-पीने-सोने तक ही सीमित हो गई हैं। एक ओर सुविधाओं में वृद्धि हुई है, तो दूसरी ओर कृत्रिम जीवन के साधनों से उत्पन्न विविध प्रकार के प्रदूषणों से हमारी पृथ्वी ही दूषित हो चुकी है। हमारा जीवन दिन-प्रति-दिन सिमटता जा रहा है। अत्यधिक यान्त्रिकता और कृत्रिमता के कारण हमारी चेतना प्रायः सुप्त हो गई है; जब कि चेतना ही मानव-जीव का सबसे विशिष्ट गुण है।

जप द्वारा चेतना का विकास किस प्रकार होता है, इस सम्बन्ध में पहले विचार कर चुके हैं। अब विस्तृत रूप में जप के विभिन्न सहायक तत्वों एवं साधनों के सम्बन्ध में यहाँ पुनः विचार करना उचित होगा। मानवीय चेतना के विकास के लिए जप एक परमोपयोगी तत्व या साधन है। इसी मूल तथ्य को ध्यान में रखते हुये हम अगले अध्यायों में जप के सहायक तत्वों व साधनों पर विस्तृत रूप से विचार करेंगे।

तीसरा अध्याय

प्राणायाम (प्राण या प्राण-शक्ति की उपासना)

प्राण क्या है ?

सृष्टि की सभी दृश्य वा अदृश्य घटनाएँ 'प्राण' (Cosmic Impulse) की प्रवर्तक-शक्तियों के द्वारा वशीभूत होकर ही घटित होती हैं। साधारणतः 'प्राण' को हम साधारण वायु समझते हैं, कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार यह वायु एक विशेष प्रकार की वायु—'आक्सीजन' (ओषजन) है। परन्तु इनकी यह धारणा वस्तुतः निर्मूल है क्योंकि हमारे शास्त्रों में इसका कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता है। चरक संहिता में प्राण के स्थानों एवं कर्मों के सम्बन्ध में इस प्रकार बताया गया है—

> स्थानं प्राणस्य मूर्धोरः कर्ण-जिह्वास्य-नासिकाः ।
> ष्ठीवनं क्षवथूद्गारौ श्वासाहारादि कर्म च ॥
>
> (च० चि०, अ० २८।६)

अर्थात् 'प्राण' के स्थान हैं–१ शिर का ऊर्ध्व भाग, २ वक्षःस्थल (उर), ३ कर्ण, ४ जिह्वा, ५ मुख, ६ नासिका।

स्पष्ट है कि 'प्राण' को ओषजन (आक्सीजन) नहीं माना जा सकता, क्योंकि मूर्धा (क्रेनियम) में आक्सीजन का प्रवेश सम्भव नहीं है। वक्षःस्थल में आक्सीजन व नाइट्रोजन दोनों १ : ४ अनुपात में पाये जाते हैं। कानों में हाथ, पैर आदि अन्य अङ्गों की भाँति साधारण वायु का ही स्पर्श होता है। जिह्वा, मुख एवं नासा-छिद्र भी मात्र आक्सीजन के ही स्थान नहीं हैं, अपितु उनमें सभी प्रकार की साधारण वायु का प्रवेश सम्भव है।

इसी प्रकार अन्य प्रमाण भी हैं, जिनसे इस तथ्य का रहस्योद्घाटन सहज ही हो जाता है कि 'प्राण' के आक्सीजन अर्थात् विशेष वायु ही नहीं है। 'अष्टा हृदय' आयुर्वेद का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें प्राण सम्बन्ध में निम्न उक्ति मिलती है—

> ....प्राणास्य मूर्द्धगः।
> उरः कण्ठ-चरो बुद्धि-हृदयेन्द्रिय-चित्त-धृक् ॥
> ष्ठीवन-क्षवथूद्गार-निःश्वासन-प्रवेश-कृत ॥
>
> ('अष्टाङ्ग-हृदय' सू० अ० १२।४)

इस उक्ति में 'अष्टाङ्ग-हृदय' के प्रणेता महर्षि वा भट्ट ने चरक की ही भाँति 'प्राण' के स्थानों का विव दिया है, परन्तु 'अष्टाङ्ग-हृदय' में चरक की अपेक्षा 'प्रा के कर्मों को अधिक स्पष्ट किया गया है। चरक अनुसार 'प्राण' के कर्म पाँच प्रकार के हैं—१ ष्ठीव थूकना, २ क्षवथु—छींक, ३ उद्गार—डकार, ४ श्व और ५ आहार। स्पष्ट है कि इन कर्मों से केवल आक् जन का ही सम्बन्ध नहीं है। महर्षि वाग्भट्ट ने प्राण आहार-कर्म को अधिक स्पष्ट करते हुए उसे अन्न-प्रवे कृत् कहा है। किन्तु अन्न-प्रवेश-कृत् में न तो के आक्सीजन का कोई कार्य होता है और न ही साधा वायु का। महर्षि वाग्भट्ट पुनः कहते हैं कि प्राण 'बु हृदयेन्द्रिय-चित्त-धृक्' है। अर्थात् 'प्राण' बुद्धि, हृ इन्द्रियों और चित्त को धारण करनेवाला है। स्पष्ट कि न तो आक्सीजन बुद्धि, हृदय अथवा चित्तादि धारण करती है और न ही साधारण वायु।

इसी प्रकार अन्य बहुत से प्रमाण हमारे सम्मुख हैं, जिनसे यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि 'प्राण' न तो आक्सीजन है और न ही साधारण वायु।

श्रुतियों में भी 'प्राण' को वायु कहा है। यथा–"वातः प्राण"—बृहदारण्यक १।१।

परन्तु प्रश्न उठता है कि यहाँ 'वायु' शब्द से क्या अभिप्राय है। वस्तुतः हमारे यहाँ आकाश, वायु, अग्नि, जल और भूमि–ये पाँचों तत्व गति-शक्ति के ही विभि। पाँच रूप माने गये हैं। पाठक यहाँ प्रश्न कर सकते हैं कि यदि पञ्च-तत्व गति-शक्ति के ही पाँच रूप हैं, तो गति-शक्ति को ही हमारी सृष्टि का मूल होना चाहिये क्योंकि ञ्च-तत्वों से ही सृष्टि का निर्माण हुआ है। इस सम्बन्ध में हम यहाँ एक उद्धरण देकर मूल विषय की ओर बढ़ना चाहेंगे।

लन्दन से एक पुस्तक प्रकाशित हुई है। पुस्तक का नाम है—'ऐज़ एबव सो बिलोः ए स्टडी इन कास्मिक ग्रेशन' (**As Above So Below: A Study in Cosmic Progression**)। इस पुस्तक के लेखक हैं श्री वॉरेन केण्टन (**Warren Kenton**) इस पुस्तक की विशेषता यह है कि यह पुस्तक अमेरिकी राकेटों द्वारा अन्तरिक्ष से लिये गये चित्रों की यात्रा है। अर्थात् आधुनिकतम चित्रों द्वारा इसमें सृष्टि केन्द्र रहस्य को समझाने का प्रयास किया गया है। पुस्तक के प्रारम्भ के एक पूरे पृष्ठ को काले रंग में रंगकर उसकी काली छाया द्वारा सृष्टि के अनन्त, निस्तब्ध, मूक, अनुच्चारित शून्य को व्यक्त किया गया है। तत्पश्चात् माउण्ट विलसन व पालोमर वेधशालाओं से खींचे गये फोटोग्राफ द्वारा आकाश-गंगा के गुच्छों की छवि दिखाई गई है। आकाश-गङ्गा के सम्बन्ध में श्री वॉरेन केण्टन ने जो टिप्पणी दी है, वह मननीय है। यथा—

> **'It is from the subtlest vibrations that the universe manifests itself. Within the emptiness prime matter emerges, to form vast fields of rarified gases. These gases in turn gather into thin clouds, and then into clusters that draw away from each other in a huge pulse of expanding space.'**

अर्थात् अव्यक्त सूक्ष्माति-सूक्ष्म कम्पनों से यह ब्रह्माण्ड प्रकट या व्यक्त होता है। शून्य के भीतर मूल पदार्थ की उत्पत्ति होती है। इन्हीं पदार्थों से अभूतपूर्व वाष्प-क्षेत्र बनते हैं। ये वाष्प-क्षेत्र परस्पर मिलकर पतले-पतले मेघों में परिणत हो जाते हैं और तब मेघों के ये समूह एक दूसरे से अलग होकर विस्तृत शून्याकाश में प्रकाश-गुच्छों के रूप में दृष्टि-गत होते हैं।

स्पष्ट है कि मूल में सर्वप्रथम गति-तत्व ही होता है। आकाश दिक्-शक्ति है, जिसकी विशेषता है तत्वों को अपने-अपने निर्दिष्ट स्थानों पर स्थिर करना। वायु वहन-शक्ति है, जो राग द्वारा एक पदार्थ को दूसरे पदार्थ से मिलाती है अर्थात् उसमें आकर्षण-शक्ति है। इसके अतिरिक्त द्वेष आदि द्वारा धक्के मारकर एक को दूसरे से विलग कर देनेवाली विकर्षण शक्ति भी वायु की है। अग्नि तैजस्-शक्ति है, जो स्फूर्ति-रूप में कार्य करती है। अप् (जल) आप्यायिनी अर्थात् रस से "तर" करनेवाली शक्ति है और पृथ्वी घनीभूत करनेवाली धारिका-शक्ति है। इसको 'धरित्री' भी कहते हैं।

प्राण-शक्ति विभिन्न वायु-रूपों में ब्रह्माण्ड व पिण्डाण्ड सभी का कार्य करती है। इसी पञ्च-क्रियात्मक प्राणवायु के नाम क्रमशः प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान हैं।

यह प्राण-वायु जब व्यष्टि अथवा समष्टि शरीर को श्वास से पूर्ण करता है; तब वह राग-स्वरूप 'प्राण' कहलाता है और जब विकर्षण शक्ति द्वारा वह अवांच्छनीय पदार्थों को निःश्वास-रूप से बाहर फेंक देता है, तब वह द्वेष-स्वरूप 'अपान' वायु कहलाता है। इसी प्रकार जब वह भीतर लिए गये पदार्थों को अपने में मिला लेता है, तब उसे 'समान' वायु कहते हैं। समान रूप से ग्रहण किये गए पदार्थों का युक्त वितरण वा उन्हें तत्-तत् स्थानों में पहुँचानेवाले रूप में वह 'व्यान' कहलाता है और नाद को वैखरी-रूप देने से अर्थात् वाक्-शक्ति को ठोस रूप देने के कारण उसे 'उदान' वायु कहते हैं।

इन पाँच रूपों के अतिरिक्त प्राण के पाँच और रूप हैं—१ नाग, २ कूर्म, ३ कृकर, ४ देवदत्त और ५ धनञ्जय। इनके अतिरिक्त ३९ रूप और हैं। कुल मिलाकर इस महाशक्ति के ४९ रूप हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उक्त पाँच प्राणों के अपने-अपने विशेष स्थान हैं। यथा—

१—'उदान' वायु का स्थान कण्ठ के विशुद्ध चक्र में है। अतः यह कण्ठ-नली (**Larynx**) के ऊपर के भाग को मुख्यतः सञ्चालित करता है। यह प्राण हमें हमारी विशेष अनुभूतियों की ओर सचेत किये रहता है। विशुद्ध चक्र में १६ स्वरों का उच्चारण होता है। वायु के सोलह रूप (गति) यहीं होते हैं, जिन्हें वृत्ति कहते हैं। मानस-वायु अर्थात् मन की गत्यात्मिका क्रिया-शक्ति की धारा ही 'वृत्ति' कहलाती है। यहाँ पर वायु की गति हाथी के समान गम्भीर होती है।

२—'प्राण' का स्थान हृदय का अनाहत चक्र है। यह कण्ठ-नली एवं हृदय के बीच के क्षेत्र को सञ्चालित करता है। यहाँ 'क' से लेकर 'ठ' तक १२ व्यञ्जनों का उच्चारण होता है। यह आशा आदि बारह वृत्तियों का उत्पत्ति-स्थान है। यही पर बाह्य पदार्थों का ग्रहण है। यहाँ वायु की गति मृग के समान द्रुत रहती है।

३—'समान' वायु का स्थान नाभि का मणिपुर है। यहाँ 'ड' से लेकर 'फ' तक १० व्यञ्जनों का उ रण होता है। लज्जा आदि १० वृत्तियाँ यहीं उ होतीं हैं। यह वायु पाचन-शक्ति का सञ्चालन करता यहीं पर पुष्टि-कर भोजन के रासायनिक परिवर्तन क्रिया सम्पादित होती है। दूसरे शब्दों में यकृत पाचक-रस देनेवाली उदर की ग्रन्थियों की संगोपन-क्रिया सञ्चालन मुख्यतः यही वायु करता है। हृदय में खून प्रवाह को भी यह प्रभावित करता है। यहाँ वायु की ग मेष की गति के समान है।

४—'अपान' वायु का स्थान स्वाधिष्ठान चक्र वा लि मूल है। यहाँ प्रश्रय आदि ६ वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। वायु द्वारा अवांच्छनीय पदार्थों का निष्कासन होता है यह मुख्यतः मूत्राशय, जननेन्द्रिय और अँतड़ियों स्वतन्त्र-क्रियाओं को संचालित करता है। यहाँ वायु गति मकर की गति के समान है।

५—'व्यान' वायु का स्थान मूलाधार चक्र वा गु (मेढ्रान्तराल) है। यहाँ परमानन्द, सहजानन्द आदि चा वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। यह वितरण का स्थान है यह वायु सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है।

अगले पृष्ठ पर छपे चित्र सं० ९ से मानव शरीर व्याप्त पञ्च-प्राणों के प्रभाव-क्षेत्र स्पष्टतया ज्ञात होते हैं

उक्त पाँचों वायु के ४८ रूप हुये और ४९ वें वा का स्थान मानस वा आज्ञा-चक्र (भ्रूमध्य) है। यहीं आध्यात्मिक वृत्ति उत्पन्न होती है, परन्तु यह तभी सम्भव है, जब यहाँ कुल ४८ वायु आकर केन्द्रीभूत हो जायें। तभी वास्तविक एकाग्रता होती है।

इस प्रकार ४९ वायु-रूपी प्राण हैं। वस्तुतः ये ४९ वायु "प्राणस्य प्राण" प्राणों के प्राण के क्रियात्मक रूप हैं।

चित्र सं० (९)—मानव शरीर में पञ्च-प्राणों की व्यापकता

१ ब्रह्म-चक्र
२-३ ब्रह्म-रन्ध्र
४ ध्वनिज नलिका का मुख
५ सुषुम्ना
६ मेरु-दण्ड
७ चित्रा
८ अन्तरीप
९ कन्द
१० शरीर का मध्य-स्थान
११ सूक्ष्म आकाश
१२ मस्तिष्क का अन्तराकाश
१३ आज्ञा-चक्र
१४ हाकिनी शक्ति
१५ कण्ठ-नली का ऊर्ध्वभाग
१६ हन्वस्थि
१७ विशुद्ध-चक्र
१८ ग्रीवा स्नायु
१९ काकिनी शक्ति
२० अनाहत चक्र
२१ वेगस स्नायु
२२ मांस-पट
२३ मणिपुर चक्र
२४ स्वाधिष्ठान-चक्र
२५ वस्ति-सम्बन्धी स्नायु
२६ मूलाधार-चक्र
२७ वस्ति मूल
२८ गुदा
२९ योनि मण्डल

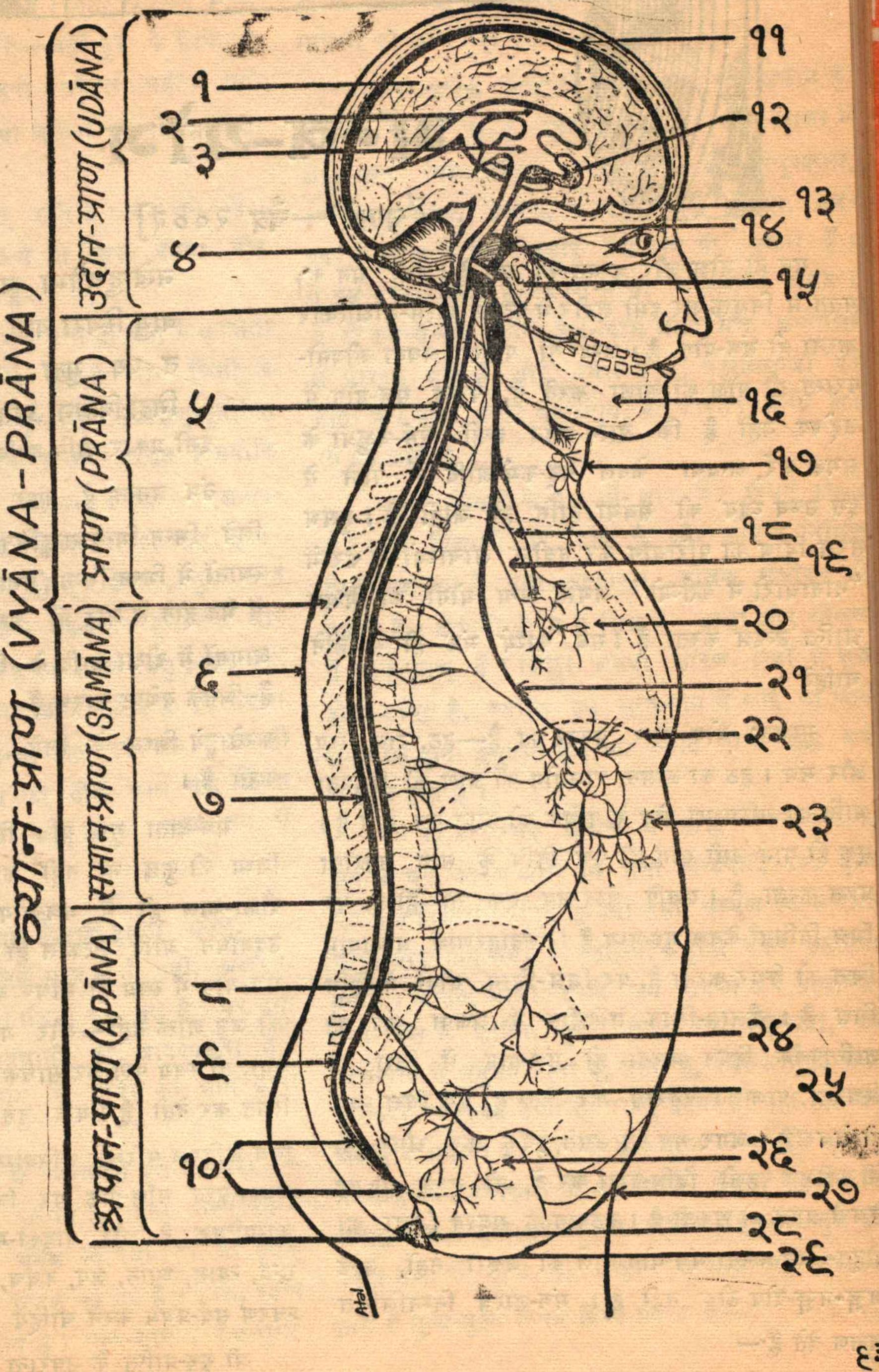
व्यान-प्राण (VYĀNA-PRĀNA)
उदान-प्राण (UDĀNA)
प्राण (PRĀNA)
समान-प्राण (SAMĀNA)
अपान-प्राण (APĀNA)
१
२
३
४
५
६
७
८
९
१०
११
१२
१३
१४
१५
१६
१७
१८
१९
२०
२१
२२
२३
२४
२५
२६
२७
२८
२९

मन्त्र-योग

['चण्डी'—चैत्र २००२]

मन ही मोक्ष और बन्धन का मूल है। इसी मन को मनन में नियुक्त कर इसी शरीर में प्रत्यक्ष आत्म-साक्षात्कार करना ही मंत्र-योग है। अन्य तो परोक्ष अथवा जीवनोपरान्त ही मोक्ष की आशा करते हैं, परन्तु मंत्र-योग में उद्देश्य यही है कि आत्म-दर्शन इन्हीं चर्म-चक्षुओं के समक्ष करें, अन्यथा केवल षट्-कर्म आदि में पड़ने से इस उच्च ध्येय की सर्वथा हानि हो जाती है। सुलभ सरल विधि का परित्याग कर नवीन आचार्य्यों के फेर में "नानाचारो न कर्तव्यो" अर्थात् अन्य योगों का मिश्रण भ्रान्ति उत्पन्न करता है। सब कार्य्य मंत्र ही से होने चाहिये।

मुख्यतः योग चार प्रकार का है—हठ, राज, लय और मंत्र। हठ का आसन, राजयोग का प्राण की स्थिरता आदि का सम्मिश्रण योग के पथिक को भ्रष्ट कर देता है। एक ही मार्ग उसी मार्ग की पूर्ण विधि के साथ सफलता प्राप्त करता है। यद्यपि शब्द-जप एक सा ही है, पर भिन्न विधियाँ केवल गुरु-गम्य हैं। उदाहरणार्थ प्राणायाम चित्त को स्थिर करता है, पर भिन्न-भिन्न योगों में विधि भिन्न है। कैलास-स्थित मणिपीठ में अजपा मंत्र को शान्तिपूर्वक स्थित करना ही मंत्र-योग में चित्त की स्थिरता, प्राण का निरोध कर देता है एवं चित्त स्वयं ही खेचर है। अगर मन को उससे पृथक् कर भ्रमर-गुदा में जड़ीभून पहली विधि-द्वारा कर दें, तो सहज ही यह खेचरी प्राप्त हो सकती है। हठयोग के सदृश्य जिह्वा का दोहन-छेदन करना मंत्र-योग वाले को जरूरी नहीं, उल्टे अङ्ग-भङ्ग-दोष ठीक नहीं है। मंत्र-शास्त्र निम्नलिखित लक्षण देते हैं:—

"यस्य मनश्चित्त-वशं स्वयिन्द्रियं
स्थिरा स्वदृष्टिर्जगदीश्वरी-पदे
नखेन्दु-शोभा च विनावलोकनम्
वायु स्थिरा यस्य विना निरोधनम्
त एव मुद्रा विचरन्ति खेचरीम्
निद्रा-विहीना प्रतियान्ति निद्राम् ॥

इसी प्रकार योनि आदि मुद्रायें भिन्न-भिन्न हैं।

तंत्र अनन्त हैं, फिर भिन्न-भिन्न द्वीपों—लोकों के लिये भिन्न-भिन्न सङ्कलित किये गये हैं एवं भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न प्रधान हैं। आम्नाय, सम्प्रदायों में भेद होने से और भी अन्तर आ जाता है। इसीलिये आगमों में दीक्षा आदि के भिन्न-भिन्न विधान वर्णित हुये हैं—जिनके यथेष्ट कारण हैं। सद्गुरु इन सबका सामञ्जस्य करते हुये शिष्य के लिये यथोक्त विधान का निश्चय करते हैं।

मंत्र-दाता गुरु यदि सिद्ध है, तो कुछ बात नहीं, शिष्य को कुछ भी नहीं करना पड़ता। उसके श्री गुरु दीक्षा-काल ही में मंत्र-योग के फल-स्वरूप शक्ति का उद्बोधन आदि तत्काल ही कर देते हैं। प्रबुद्ध शक्ति—मंत्र-योग में स्वयं ही साधक की माँ है। यह अन्य योगों की जड़ शक्ति नहीं—और यह अगर कुछ शेष भी रह गया, तो स्वयं पूर्ण कर साधक को जीवन-मुक्त अवस्था में स्थित कर देती है। यदि गुरु सिद्ध नहीं, तो शिष्य के लिये अविरल परिश्रम अनिवार्य्य हो जाता है। श्री सद्गुरु अजपा-युक्त मणि-पीठ पर विराजते हैं। सर्वत्र मन्त्र ही कार्य्यात्मक है और पादुका-मन्त्र ही गुरु-रूप है। इसके छन्द, न्यास, ध्यान, जप, कवच, स्तोत्र आदि और पुरश्चरण सर्व-प्रथम करने चाहिये।

श्री गुरु-प्राप्ति के उपरान्त विषय देवता का है और मन्त्र-योग में देवता का जप ही प्रधान अंग है। जप उपासना-युक्त फलदायक है। उपासना अच्छी तरह न

समझने से सर्व-साधारण के ख्याल से केवल बाह्य चाटुकारिता ही प्रतीत होती है।

मन्त्र-ग्रहण के समय देश, काल, दीक्षा-संस्कार, विधान, चक्र-शोधन, वास्तु-याग, कुण्ड आदि का ठीक करना गुरु की योग्यता पर ही अवलम्बित है। जहाँ गुरु पर शिष्य की पूर्ण भक्ति के लिये जोर है—वहाँ गुरु के लिये भी शास्त्र से बाहर मन-मानी करना उचित नहीं। यही आदि-गुरु ने अपने आज्ञा-रूपी शास्त्रों में निर्देश किया है।

अर्थों के अनर्थ से आज यह गति है। चक्र अनेक हैं। राशि-चक्र, ब्रह्म-चक्र, आदि। ये भी भिन्न देवता और सम्प्रदाय-भेद से भिन्न हो जाते हैं।

उपर्युक्त विधियों से प्राप्त शुद्ध मन्त्र ही योग में सफलता देगा। अशुद्ध मन्त्र हानियों का मूल है और किसी के मत से योगारम्भ से पूर्व श्री गुरु-दत्त सम्प्रदायानुमोदित गणेश के बीज का ही पुरश्चरण करना उचित है क्योंकि गणेश ही द्वार-देवताओं में प्रधान हैं। इसी गणेश-पुरश्चरण के स्थान में हठयोग में गणेश-क्रिया की जाती है।

मन्त्र-योग में प्रधानता जप की है। देवता, गुरु, मन्त्र और आत्मा का ही योग है। गुरु-स्थान हंस-पीठ और 'आत्मानं गुरु-पादयो' एवं मन्त्र का स्थान विशुद्ध-चक्र और देवता का वाण-लिङ्ग के अग्र अष्टार में है। इन सबका योग आज्ञा-चक्र में करके स्व-कल्पोक्त तेज का धारण ही धारणा-योग है। इसी प्रकाश को दीर्घ काल तक स्थित करना——केवल भाव से ही नहीं, वरन् प्रत्यक्ष रूप से ध्यान की सिद्धि है।

"शनैः शनैः महाकाल-कैलाश-दर्शनं भवेत्"—— इत्यादि वाक्य क्या केवल लिखे मात्र हैं? नहीं, अक्षरशः सत्य हैं। जप ही इन सब सिद्धियों का मूल है। पर इसी जप के लिये अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है। सर्व-प्रथम स्थान और समय के नियम का ज्ञान होना जरूरी है।

साधन के आरम्भ ही में "मन्त्राणां दश-संस्कारा"— जीवन-जनन आदि करने उचित हैं। फिर मन्त्र-चैतन्य भी आवश्यक है, जिसकी अनेक विधियाँ हैं, जो पृथक् विद्याओं में पृथक् प्रकार से निर्देश की गई हैं। मन्त्र, ध्यान एवं अवयव-ज्ञान आवश्यकीय हैं। मन्त्र-शोधन, पञ्च-शुद्धि के अन्तर्गत यंत्रादि, अधिकारियों के लिये पल्लवादि तथ चैतन्य यंत्रादि अधिकरियों के लिये भिन्न-भिन्न व्यवस्थाएँ हैं। प्रत्येक देवता-विषय में उसके भिन्न-भिन्न मन्त्राचमन, भूत-शुद्धि आदि हैं, जो केवल देवता-विशेष चक्रों में मूलमंत्र ही के द्वारा करनी चाहिये। सर्वसाधारण विधि उच्च साधकों को लाभ नहीं देती।

अनन्तर प्रत्येक विद्या-विषय में अङ्ग-मन्त्र प्रधान हैं, जो जप के पूर्व करने बहुत जरूरी हैं। जैसे आद्या में अङ्ग-मन्त्र निम्नलिखित आवश्यकीय हैं——लघुश्यामा, आदिनाथ, बटुक, उन्मत्त, पञ्चदश-नित्या, विजया, अर्धेश्वरी आदि। इसी प्रकार क्रम-मन्त्र भी जरूरी हैं। ये इस प्रकार चलते हैं——स्पर्श-मणि, चिन्तामणि आदि। ये भी कम-से-कम तीन क्रम-न्यास आदि युक्त क्रमदीक्षा से प्रारम्भ होते हैं और सर्वश्रेष्ठ ५ महाविद्याओं का होता है। इसके अन्दर षडाम्नाय, षट्-शाम्भव आदि क्रम भी आ जाते हैं।

उपर्युक्त विषयों के साथ ही शाप का विषय प्रधान है। सभी विद्याओं पर शाप है और शाप के निमित्त भिन्न-भिन्न जप है तथा उत्कीलन, कीलक, संजीवन भी जरूरी हैं। दीपिनी दीपन से भिन्न है आद्या और श्रीकुल में पृथक्-पृथक् हैं। जिह्वा अथवा कारण इन्हीं से शुद्ध होना उचित है, क्योंकि इस मन्त्र-योग में कोई भी कार्य अमन्त्रिक होना अनुचित है। जप आदि ही से शुद्ध कर व्यवहृत होते हैं।

जप की प्रारम्भिक अवस्था में बाह्य उपचार—पान, सुगन्ध, धूप, कारण आदि भी तथा मण्डपादि रम्य दृश्य एवं पूर्ण निरुपाधि-रहित शून्यता तथा सम्मुख स्व-कल्पोक्त शक्ति और प्रिय नैवेद्य किञ्चित्-मात्र तृप्ति देकर सहायता देते हैं। आसन, माला आदि इन सबका अर्थ साधारणतया चित्त में शान्ति, तृप्ति तथा एकान्त-शून्यता, जो हिम-पात में अनुभव होती है, लाना है, जिसके लिये पीठ-शक्तियों का पूजन होता है, परन्तु इतना ही नहीं, रसायन शास्त्र के प्रयोगों की तरह ये कुछ नूतन बात ही उत्पन्न करते हैं और यथाकाल में यह स्थिति उत्पन्न करते हैं कि प्रगाढ़ नींद में सोये हुये को भी अत्यन्त (हलकी) सुख की निद्रा तक में मन्त्र की झङ्कार से खाली नहीं रखते। इनमें से मुख्य-मुख्य विषय निम्न प्रकार हैं—

१ श्रीगुरु-वन्दना, कवच, जप, स्तुति, आज्ञा ।

२ भूत-शुद्धि, तत्व-शुद्धि, अन्तर्याग, तर्पण, कवच, मूल से प्राणायाम ।

३ मन्त्र के शिव का जप ।

४ कुल्लुका, शाप, उत्कीलन, संजीवन ।

५ मन्त्र-शिखा, मन्त्र-चैतन्य, अवयव-ध्यान, मन्त्रार्थ, मन्त्र-शोधन ।

६ सेतु, महासेतु, निर्वाण, दीपिनी, मूल-पद्म में काम-वीज तथा मूर्ध्नि में काकिनी-वीज ।

७ मन्त्र-ध्यान, मन्त्र-संकेत ।

८ झिल्लरा, मुख-शोधन ।

९ भूतलिपि-युक्त जप ७ मूल-पुटित ।

१० अमृत-योग, षट्-चक्र में डाकिन्यादि-पुटित मूल ।

११ मुख-शुद्धि, चौर-मन्त्र (प्रति द्वार २० बार)।

१२ योनि-मुद्रा, जिह्वा-शोधन, प्राण-योग ।

१३ प्रमदा, अङ्ग-मन्त्र, क्रम-मन्त्र ।

१४ मूल जप,

१५ अन्त में कवच, हृदय, स्तोत्र, शतनाम, सहस्रााम का पाठ

जप तीन प्रकार का है–वाचक, उपांशु और मानस । नमें मानस ही श्रेष्ठ है । पर जब तक मन्त्र ठीक-ठीक ारीर में न बैठ जाय, तब तक मानस न जपे । इस मानस चार भेद हैं --बैखरी, मध्यमा, पश्यन्ति और परा । न्तर रेचक-युक्त दीर्घ प्रणव से इनका शीघ्र बोध होता , पर यह सब शक्ति की चैतन्यता की उत्तरोत्तर अवस्था ।

इस प्रकार जब चार स्व-कल्पोक्त जप अर्थात् अपनी पनी विद्या की निर्धारित संख्या के पुरश्चरण हो जायँ, से आद्या में वर्ण-लक्ष-द्वय का (पर यदि आद्या का केवल ोज मात्र हो, तो उसकी संख्या कोटि है, इसलिये दो ोटि हुआ)। यथा–'साधना-रहिते देवि! वर्ण-लक्ष-द्वयं जपेत् ।' प-संख्या भिन्न विद्याओं में भिन्न है । जैसे श्रीबाला में ोटचर्द्ध आदि ।

यदि इससे भी कुछ ठीक न हो, तो "उपायास्तत्र र्तव्या सप्त शंकर-भाजिता ।" ये भी धूनन, शोषण आदि । मूल देवता के पुरश्चरण के साथ ही कुल्लुका, कवच, दय, स्तोत्र, शतनाम, सहस्रनाम आदि हैं, जो क्रमशः प्राण, दुर्ग, अंगस्त्राण, सह-चर, अंग-रक्षक, सेना के नाम से पुकारे गये हैं । इनका भी पुरश्चरण होता है तथा क्रम-मन्त्रों का भी करना जरूरी है । होम, तर्पण, मार्जन, अभिषेक, प्रदक्षिणा आदि के भी पुरश्चरण होते हैं । इनसे सभी प्रकार के पूर्व-जन्म-जनित संस्कार, कर्म तथा मल-रूपी पाप-राशि का नाश होता है । इस मल के हटते ही आत्म-रूप का दर्शन, सरोवर के निर्मल होते ही तल में स्थित शिला की भाँति, शीघ्र होता है ।

यम-नियम आचार के अन्तर्गत आ जाते हैं । जिस विद्या में जो आचार होता है, वही उस विद्या में प्रधान रूप से यम-नियम-विषयक कार्यक्रम का निर्णय करता है । आचार भी नीलाचार आदि शास्त्रों में दिये हैं, पर इनका रहस्य गुरु-गम्य है । आसन का उपयुक्त होना साधना में प्रधान चीज है । जैसे--

मृतासनं विना देवि यो जपेत् घोर-दक्षिणाम् ।
स पच्यते नरके घोरे यावत् चन्द्र-दिवाकरौ ॥

विहित आसन ही लेकर साधना आरम्भ करना उचित है । देखा जाता है कि जब मनुष्य को इनके ज्वलन्त अनुभव होते हैं, तब साधन का सूत्र-पात होता है । हठ-योग के पद्मासन आदि मन्त्रशास्त्र में दूसरा अर्थ रखते हैं और कोमलादिक ही शक्ति के उत्थान में सहायता देते हैं ।

सर्वत्र जहाँ देखो, आजकल के गुरु 'सिद्धियों से दूर रहो' का उपदेश देते हैं ! सिद्धियाँ क्या किसी ने बिखेर रक्खी हैं कि उठा लो ? नहीं, ये तो पथ के 'मील-पत्थर' हैं । इनसे पता लगता है कि मनुष्य किस भूमिका का अधिकारी बन गया ।

"यदि क्रुद्धो योगी, चलयति समस्तं त्रिभुवनं"—आदि वाक्य साधक की स्थिति कहाँ पर है, इसको बताते हैं । स्थान-विशेष, महामाला, विशेष आसन एवं शक्ति–साधक को अल्पकाल में ही सुचारु रूप से सम्पन्न करते हैं ।

मृतासने जपेन्मन्त्री महाविद्यामनुशुभ ।
अचिरात्तस्य सिद्धि स्यात् नात्र कार्य्या विचारणा ॥

शक्ति का उत्थान इन आसनों पर विशेष अवलम्बित है, पर ये अधिकारी के विषय हैं । यदि भाग्य-वशात् त्रि-दण्ड भी सहज कुम्भक हो, तो नाड़ी-क्षालन आदि क्रिया-सिद्ध होकर सहज कुम्भक एकदम सिद्ध हो जाता है । तीव्र, मध्य, मन्द आदि तीव्राति-तीव्र भेद से मनुष्य

साधन-समर में प्रवृत्त होते हैं और इसी प्रकार साधन-भेद से उन्मनी आदि अवस्था को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार पूरा जप ही (लय अवस्था में) जब पूर्ण बाह्य तथा अन्तर-अवस्था को भेद देता है, तब आत्म-साक्षात्कार की अवस्था स्वतः प्राप्त हो जाती है। यथा—

योगिनः सहजावस्था स्वयमेव जायते।

* * *

शंकर-श्रुति-मार्ग

['चण्डी'—आषाढ़ १९९९]

भारत धर्म-प्रधान देश रहा है। प्राचीन सनातन धर्म अनेकानेक युगों से अनेक सम्प्रदायों, विविध धर्मों तथा आचार्य गणों के विभिन्न मत-मतान्तरों से—विशेष कर हठ-योग और नाथ-सम्प्रदाय के क्रिया-कलापों से बहुत कुछ प्रभावित हुआ और जल-स्रोत-सा इधर-उधर बहता भी रहा। ये अर्वाचीन छायायें, प्रति-छायायें सनातन धर्म के वक्ष पर ऐसी अङ्कित होती गईं कि मूल धर्म-तत्व के प्रति भी जनता पूर्ण शङ्का और घृणा की पक्षपात-पूर्ण दृष्टि से "वीभत्स", "जघन्य" आदि विशेषण व्यवहृत करने लगी।

यदि पक्षपात एक किनारे कर दिया जाय, तो श्री शङ्कर-श्रुति का अनुशीलन अत्यन्त मधुरिमा-मय मूल-तत्व प्रकाशित करता है, जिससे सर्वत्र एक ही सिद्धान्त, एक ही योग, एक ही अटल नियम और एकता-पूर्ण महत्व दृष्टि-गोचर होता है। इस शङ्कर-उपदिष्ट मार्ग में उपर्युक्त प्रभावों से नवीनाचार्यों द्वारा अनेक नई-नई योजनाएँ, कूटार्थ आदि भी प्रवेश पा गये हैं। मूल धर्म केवल मधुर, सरल और सुन्दर है।

इस आदिनाथ-कथित श्रुति के इस विराट् महा-शास्त्र के मूलतः चार ही महा-वाक्य आधार-भूत हैं (ये वेदान्त के महा-वाक्यों से भिन्न हैं), जिन पर समग्र कर्म-काण्ड, क्रिया-कलाप और यागादि निर्भर हैं। पर भिन्न-भिन्न भूमिकाओं में प्रविष्ट साधक उनकी उतनी ही सूक्ष्म विवेचना, उतना ही गहन मनन कर सकते हैं, जितनी शक्ति-पात की मात्रा ने उनमें योग्यता उत्पन्न कर दी है अथवा भाव की उत्पत्ति की है। इसीलिये शास्त्र भी श्री गुरु को 'भाव' का उपदेश देने से वर्जित करता है।

यह एक नियम, जिसका चरम उद्देश्य विदेह-मुक्ति है, शङ्कर-आगम में पूर्णतया सर्वतो-रूपेण ओत-प्रोत दिखता है। आगम कहता है—

सर्वेभ्यश्चोत्तमा वेदाः वेदेभ्यो वैष्णवं महत्।
वैष्णवादुत्तमं शैवं शैवाद्दाक्षण्यमुत्तमम्॥
दाक्षाण्यदुत्तमं वामं वामात् सिद्धान्तमुत्तमम्।
सिद्धान्तादुत्तमो कौलो कौलात् परतरो नहि॥

केवल साधारण-सा श्लोक है, पर रचना तो आदिनाथ की ही है—सर्वधर्मात् उत्तमं धर्म कुल-धर्म शिवोदितम्।

क्रम-पूर्वक आलोचना करने से घटित होता है कि 'मूलाधार'-कमल वेद-रूपी चार पत्रों से युक्त वेदाधिष्ठातृ श्री ब्रह्मा—गुरु का स्थान है। समस्त वेद केवल सूक्ष्म रूप में वाक्-बीजान्तर्गत हैं। उसी मूल त्रिकोण में शक्ति चिर निद्रा में निद्रित है। इसलिये वेद केवल बहिर्वृत्ति है, क्योंकि इसका सम्बन्ध वैखरी से है। बिना अन्तर्मुख हुये न वेद सूक्ष्म रूप वाग्भव में लय होंगे और न शक्ति का उत्थान होगा। उपनिषद् कहता है—ज्ञानं मोक्षैक-कारणम्।

यह ब्रह्मा—गुरु की कृपा से सम्भव है।

दूसरा कमल 'स्वाधिष्ठान' है, जिसमें श्री गुरु रासेश्वरी राधा (राकिणी) से युक्त श्रुति की समस्त ऋचा-रूपिणी गोपियों से रास में विराज रहे हैं ("देख्यो कहूँ वह कुञ्ज कुटीरन बैठो पलोटत राधिका पायन")।

साधक कवि प्रसादी सङ्गीत में गाता है—"न करो मन द्वेषा द्वेषी।" द्वेष किससे? क्या वैष्णवों से, जो समस्त श्रुति को परमानन्द-विहार में एकाकार कर प्रेमा-भक्ति के रूप में आनन्द-वर्षा कर रहे हैं, जिसमें साधक सहज ही अष्ट-पाश ❀ मुक्त गोपी-प्रेम का आश्रय ग्रहण करता है और जो अन्तर्तम देश में शक्ति को उद्घोषित करने का आधार-भूत है। "व्यक्ताधिष्ठान-सत्वैक-मूर्ति" सर्व-व्यापक शक्ति के प्रकटार्थ आश्रय-भूत आधार को खोजती है। इस चक्र वा अवस्था में आधार कृष्ण हैं। बिना गुरु की कृपा के इससे ऊपर गति नहीं है।

कल मुरली-रव बाजित कूजित,
लज्जित कोकिल मञ्जु-मते।
मधु मधुर मधुर मधु-कैटभ भञ्जनि,
कैटभ-मज्जनि रास-रते॥

जब श्री राधा व गोपियाँ रासोन्मत्त प्रेमा-भक्ति से चूर हो अवस्था में रत रहकर परितृप्त अवस्था प्राप्त करती हैं और समस्त गात्र शिथिलता को प्राप्त होते हैं तब इस परमोल्लास तथा लक्ष्य की विश्रान्ति ज्ञानाग्नि-रूप 'मणिपुर'-चक्र में गौरी-शङ्कर के रूप में होती है।

"योगो मोक्षः"—मणिपुर में, जब बाह्य इन्द्रियाँ थक जाती हैं, तब चित्त अन्तर-तम प्रदेश में प्रवेश करता है। उस समय ज्ञान-शक्ति प्रबल होती है। यही स्थान शिव-शक्ति-युक्त मणिपुर है। श्री श्यामा की लूट हुई; लूटनेवाले तीन बने। श्री चरणों का महावर लूट कर ब्रह्मा ने अपना सारा शरीर ही लाल कर लिया; विष्णु ने श्री-चरण की नीलिमा-युक्त आभा से अपनी देह को सत्व-गुण-सम्पन्न किया और शेष बची नखों की चन्द्र-ज्योत्स्ना तथा बचे स्वयं श्री चरणारविन्द, सो श्री शङ्कर ने—जो "दस्युता-पतये" हैं, ज्योत्स्ना-रूपी प्रसाद तो सर्वाङ्ग में मला और श्री-चरणों को अपने हृदय में सदैव के लिए स्थापित कर लिया। वाह रे लोभी!

पर केवल मणिपुर से ही इति-श्री नहीं हुई। 'अनाहत'—विक्षेपादि व आणवादि मल, जीवन-दोष पुरुष-प्रधान वा शक्ति-प्रधान, दक्षिण वा वाम हैं, द्वैत-अद्वैत आदि विकार उत्पन्न करते हैं। अनाहतस्थ अविनश्वर इसी पुरुष-प्रधान तत्व-ज्ञान से ही विष्णु-ग्रन्थि-भेद कराते हैं।

'विशुद्ध'—पर जब पुरुष-प्रधान या दक्षिण-मार्ग श्रेष्ठत्व की ओर गति-शील होता है, तब शक्ति-प्रधान वा वाम-(श्रेष्ठ) मार्ग का आश्रयीभूत होना पड़ता है। यही पूर्णतया पाप-विहीन वा शुद्ध अवस्था प्रदान करता है। यहाँ के अधीश्वर अर्द्ध-नारीश्वर-रूप में विराज रहे हैं।

'आज्ञा'—अन्तर्वृत्ति होने पर प्रेमा-भक्ति हुई थी, जिसकी विश्रान्ति ज्ञानाग्नि में हुई, जिससे शिव-प्रधान या शक्ति-प्रधान का झगड़ा उठा। परन्तु जब इस भेद-बुद्धि का विनाश होता है, तब उस भूमिका में पदार्पण होता है, जिससे यही सिद्धान्त प्रतिपादित होता है कि—

"शिव-शक्ति-विभागेन जायते सृष्टि-कल्पना।"

शास्त्र में मां कहती है—

केचित् द्वैतमिच्छन्ति केचित् इच्छन्ति चापरे।
मम तत्वं विजानन्तो द्वैताद्वैत-विवर्जितः॥

यही सिद्धान्त कार्मण मल की निवृत्ति करता है।

सहस्रार वा कौल-तत्व—उपनिषद् का वाक्य—"गुरुरेकः।"

श्री गुरु केवल आदिनाथ हैं, जो दीक्षा-काल में जीवत्व-दोष, मल-त्रय वा परमात्मा के आत्मा हो जाने के दोष को मिटाने को मानव गुरु में आविर्भूत होते हैं और इस सातवीं भूमिका में पूर्ण एकत्व को प्राप्त करा देते हैं। इस स्थान में, जहाँ से फिर आवागमन नहीं होता, पूर्ण निर्वाण की प्राप्ति होती है। यही कौलावस्था है और इससे परे कुछ भी नहीं है।

मुक्ति संहार में है। चतुरस्र-रूपी वेद से विन्दु में लय होना ही मुक्ति है। यही सात चक्र श्री-चक्र का बोध कराते हैं। प्रारम्भ के पाँच चक्रों के अधिप जब निश्चल होते हैं, तब उनकी संज्ञा पञ्च-महाप्रेत होती है। उनके ऊपर "आज्ञा-चक्र" में स्थित शिव ही कामेश्वर हैं और सहस्रार में विन्दु-रूप गुरु-तत्व ही "श्री" हैं।

"मन्त्रात्मकस्य देवस्य देवता गुरु-रूपिणी।"

उक्त सप्त कलाएँ ही 'प्रणव' को बनाती हैं—

"तस्या वाचको प्रणवः।"

अर्थात षट्-शिवा वअनुच्चार्य "विन्दु" मिलकर

❀ अष्ट-पाश—

लज्जा घृणा भयं शङ्का जुगुप्सा चैव पंचमी।
कुलं शीलं तथा जातिरष्टौ पाशः प्रकीर्तिताः॥

❀ शङ्कर-श्रुत-मार्ग

सृष्टि-क्रम में प्रणव एवं यन्त्रादि को बनाते हैं।

“तस्य सप्तधा प्रान्त-भूमि प्रज्ञा”

परन्तु इस अवस्था को प्राप्त साधक को शास्त्र आज्ञा करता है कि किसी भूमिका को निम्न न देखना और निन्दा सहकर भी भाव का उपदेश मत करना। यथा—

“अन्यायो न्यायः न प्रणयेत्कमपि।”
“लोकान्न निन्द्यात्।”
“कौल-प्रतिष्ठा न कुर्यात्।”

यह तो केवल साधारण-सी व्याख्या है। यही एक नियम सर्वतोरूपेण सप्तशती के चरित-त्रय में दश महाविद्या वा अन्तर्याग, बहिर्याग आदि में सर्वत्र लागू है पर आचार्यों के मिश्रण से कुछ-का-कुछ बनाकर इस सरल धर्म में हठ-योग आदि मिला दिया गया है। इस धर्म का ‘हठ’ दूसरा है, जो केवल वीर-साधना है। प्रार्थना है—

तव पद्मेव पर पद्स्मिन्,
शील-युतो मम किन्तु शिवे॥

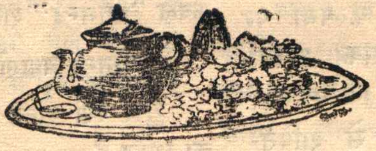

दुर्लभ तन्त्र साहित्य (संस्कृत) में

‘गुप्तावतार दुर्लभ तन्त्रमाला’ के अन्तर्गत अब तक निम्न तन्त्र प्रकाशित हो चुके हैं। ये बहुत ही कम संख्या मे छपे हैं। फलतः पहला संस्करण समाप्त हो हो वाला है। दूसरा संस्करण पता नहीं कब छपे। अतः तन्त्र-साहित्य के प्रेमियों को इनका मूल्य मनिआर्डर से भेजकर इन्हें तुरन्त मंगा लेना चाहिये। म० आ० से मूल्य भेजनेवाले बन्धुओं से डाक व्यय नहीं लिया जाता। शर्त यह है कि म० आ० पांच रुपये से कम का न हो।

महा-चीना-चार सार तन्त्र	रु २-५०	निरुत्तर तन्त्र	रु २-५०
गुप्त-साधन तन्त्र	२-५०	तोडल तन्त्र	१-५०
कुलार्णव तन्त्र	३-५०	मन्त्र-कोष	२-००
काली-तन्त्र (भाषा टीका)	३-००	कामधेनु तन्त्र	२-००
श्रीभुवनेश्वरी-रहस्य	३-००	निर्वाण तन्त्र	२-००
सांख्यायन तन्त्र	३-००	नील तन्त्र	२-००
परा-तन्त्र	२-५०	परशुराम तन्त्र	१-००

पाँच रुपये से कम मूल्य की पुस्तकें मँगानेवाले बन्धु कृपया पुस्तक के मूल्य के साथ रजिस्ट् डाकव्यय हेतु एक रुपया और भेजें।

जो पुस्तकें चाहिए, उनके नाम म० आ० के कूपन पर लिख दें।

विद्या-रहस्य और साधना

जगत् के उच्चाति-उच्च अन्वेषण का भव्य प्रासाद केवल प्रकाश और विमर्श तक सीमित है। आदिनाथ का कथन है--"अतः परं न जानामि।" सच्चिदानन्दमयी का स्थान "वाचातीता परा कला" नीरव और निविड़ अन्धकार से परे है--"सार्वान्ते कालिका स्मृता।"

अनेक धर्मों ने सृष्टि की उत्पत्ति की भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ की हैं। अस्तु, सृष्टि की कल्पना पर विचार प्रकट न करके केवल मात्र उसका शास्त्र-वर्णित विधान जान लेना ही पर्याप्त होगा। अनुच्चार्य विन्दु से विसर्ग की उत्पत्ति, विसर्ग से शक्ति-शृङ्गाट तथा वृत्त और भू-बिम्ब की उत्तरोत्तर विकाशावस्था ही संक्षेप में सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति का चरम रहस्य है। विशेष अनुसन्धान से प्रतीत होगा कि यही रहस्य ३६ तत्वों तथा यन्त्रादि व मूर्तियों का आधार-भूत विषय है।

इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि इस मनोनीत विषय में प्रविष्ट साधक कम-से-कम मन्त्र-योग के विषय से भले प्रकार परिचित हो जाय। मन्त्र-योग के अङ्ग प्राणायाम और प्रत्याहारादि नहीं हैं, न इनसे उच्च समाधि प्राप्त होने की आशा है--

"आशिका-बन्धनं नास्ति नासिका-बन्धनं नहि।
न पद्मासन-गतो योगी न नासाग्र-निरीक्षणः॥"

जब तक स्वयं ही समाधि प्राप्त नहीं होती अथवा सहज कुम्भक (स्वभाव-गत) सिद्ध नहीं होता है, तब तक बाहर का यत्न--शारीरिक जोर केवल शरीर की क्षति करता है--

"उत्पन्न-शक्ति-बोधस्य व्यक्त-निश्शेष-वर्मणो।
योगिनः सहजावस्था स्वयमेव प्रजायते॥"

इसी सहज जप पर कबीर साहब भी जोर देते हैं, पर लक्षणों के उचित अनुशीलन के बाद साधक को प्रतीत होगा कि इस सहज साधन से मानों उसके "पिण्डाण्ड" में वीणा की झङ्कार-निखिल तारों की संवेदना-युक्त नीरव मधुरिमा-मग्न संगीत-लहरी चिदाकाश की ओर लय हो रही है। साधक! यही विश्व का राग है; इसी की ध्वनि का सूचक होने से हिन्दू-घरों में शङ्ख का आदर है। महार्णव की लहरें इसी काम-कला की गूँज को समस्त ब्रह्माण्ड में विकरित कर रही हैं। माँ का स्वरूप-निदर्शन केवल "आनन्द" शब्द के अन्तर्गत है--

"आनन्दं ब्रह्मणो रूपं।"

शुभ्र वर्ण शून्य-तम छाया ही मां के अवस्थान का स्थान है--

"महा-मध्यं च चक्रस्य महानन्दात्मकं पुनः।
अनुक्त-विमर्शैक-सारं समन्वियं भजेत्॥"

इसी पराति-परा कला का छाया-अदर्शन ही इसको विन्दु-रूप में प्रतिष्ठित करता है--

"वैन्दवे परमा काले सच्चिदानन्द-लक्षणे।
निष्प्रपञ्चे निराभाशे निर्विकल्पे निरामये॥"

केवल छाया-प्रदर्शन मात्र ही से भेद-शिव-तत्व और शक्ति-तत्व स्फुरित हुए हैं। उनके संयोग की ध्वनि से वेदादि बीज तथा उससे समस्त मातृकाओं की उत्पत्ति हुई है--

"स्थूल-सूक्ष्म-विभेदेन त्रैलोक्योत्पत्ति-मातृका।"

प्रथम तो मातृका से वामा, ज्येष्ठा और रौद्री से युक्त त्रिकोण की उत्पत्ति हुई। व्यञ्जनों की ध्वनि से शेष ३४ तत्वों तथा अपनी अधिकतर विकासावस्था में मातृका-वृत्त की उत्पत्ति हुई। अधिकाधिक विकासावस्था में अष्ट, षोडश आदि पत्र-स्थित शक्ति-योगनियाँ इन्हीं तत्वों से आविर्भूत सृष्टि-कलोपयोगी काम-क्रोधादि (अष्ट-दल) एवं निद्रा, क्षुधा, तन्द्रादि (षोडश-दल) की अधिष्ठात्री शक्तियाँ हुईं। अन्त में जब वृत्त पूर्ण बहिर्वृत्ति को प्राप्त होता है,

तब चतुर्द्वार-युक्त चतुरस्र में परिणत होता है, जिसकी प्रत्येक भुजा द्वादश-मातृका-युक्त है। इसीलिए अन्तर्वृत्ति में ही मोक्ष है। विशुद्ध मां को प्राप्त करने के लिए संहार-क्रम का ही अवलम्बन करना पड़ता है।

पूर्व-कथित छाया का निदर्शन ही अरूपा, आनन्द-मयी दो रेखा-रूप से लक्षित करता है—

"किमस्मादि-रेखा मूर्ध्नि ध्यायितव्या।"

साधक! आद्या मां का रूप अत्यन्त कराल होने पर भी परिपूर्ण प्रेम व आनन्द से ललकते हुये घट के सदृश है। यह मां स्वयं ही पुत्र को ऐसे स्थान तक में त्याग नहीं सकती है, जहाँ से उसके बन्धु-बान्धव भी उसे छोड़कर चले जा रहे हैं। पागल मां स्नेह-वश इसी स्थान में पुत्र के मलीन शव की प्रतीक्षा में है।

सौन्दर्य के उपासकों से पूछा जाय कि सौन्दर्य है क्या? एक लेखक लिखता है कि 'यह 'मैं' का सौन्दर्य ही है, जो महा कुरूप 'नाऽहम्' को भी सुन्दर और आकर्षक बना देता है। प्रत्येक सौंदर्य-परक धर्म का अन्त व्यभिचार में होता है। डिसराइली सौन्दर्य का दृष्टि-कोण सौन्दर्योपासक पर निर्भर है। जॉन ऑक्स नेहेरिस मृत्यु को मधुर कृपा-युक्त माता मानते हैं, जिसका मुख दया और सौन्दर्य से उद्भासित हो रहा है। स्वर्गीय टैगोर युवती नहीं, वृद्धा के सौन्दर्य-चित्रण में पदावली लिखते हैं, जिसका भाव है नारी-सौन्दर्य की अयथार्थता पर एक चलतू उपदेश। लङ्का-काण्ड में गोस्वामी जी रक्त-रञ्जित श्री राम की देह के अतुलनीय सौन्दर्य के प्रकाशन में सफल हुये हैं।

इसी प्रकार घोर कालानल में प्राण-उन्मादिनी, उतावली में मुक्त-केशी, विवस्त्रा मां श्मशान में, जहाँ कि देह की सम्बन्धिनी मां तक ने परित्याग कर दिया था, उस मृत्यु से नवीन और विषाद-पूर्ण पुत्र-शव को ग्रहण करती है। सौन्दर्य केवल भाव पर अवलम्बित है। क्या यह मां का चरम सौन्दर्य नहीं है?

शून्याति-शून्य तम-प्रदेश (श्मशान) में स्थित शुभ्रतम महा-शून्य छाया से चिदानन्द में मग्न—यही मां की विन्दु-रूप में कल्पना है। यह अनुच्चार्य विन्दु सम-भाव से सर्वत्र चैतन्यता प्रदान करता हुआ स्वयं निर्विकल्प और निर्हित तत्व है। इसकी आनन्दोल्लास की अवस्था स्व-अंश से श्रीविद्या व पञ्चाशत मातृकाओं की सृष्टि हुई, जिनसे अग्नि-अर्क-सोमात्मक काम-कला-त्रिकोण की रचना हुई। गहन विषय की ओर आगे न बढ़ इन महाविद्याओं के केवल स्वरूप-ध्यान की ही विवेचना करने से विषय स्पष्ट हो जायगा।

श्री विद्या

अरूप पदार्थ अपनी इच्छा-शक्ति की परितृप्ति के लिये सृष्टि का नियमन करने को 'श्रीविद्या'-रूप में आविर्भूत हुआ है। रागात्मिका, रक्त-कमलासीना, रक्ताम्बरा 'श्रीविद्या' ही समग्र सृष्टि का त्रिपुरेश्वरी के रूप में सञ्चालन कर रही है।

साधक! पाश ही समस्त जीवों को बद्ध करता है। पञ्च-बाण और इक्षु-धनु से पार पानेवाला कौन है?

"बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।"

इस महांकुश से कौन आगे बढ़ सकता है? सांसारिक जीवन राग-मोह से व्याप्त है। उसी का द्योतक है रक्त-वर्ण और रक्त-कमल। इनसे नियन्त्रित किया हुआ पञ्च-प्रेत-मय प्रपञ्च है। किसकी सामर्थ्य है कि इतने दृढ़ शासन से बाहर जा सके? भक्त की बात दूसरी है।

यही समस्त अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों की परा भट्टारिका 'श्री विद्या' भुवन-रूप में प्रकट होकर सृष्टि का शासन करती है। पञ्च-तत्वों के नियन्त्रणार्थ पीताम्बरा-रूप महालक्ष्मी के रूप में सौख्य आदि प्रदान किया, ग्रहण किया और विश्व के मङ्गलार्थ धूमावती के रूप में आधि-व्याधि से पीड़ित किया। मातङ्गी-रूप में अवशेष को ग्रहण किया और विश्व के रक्षार्थ भैरवी-रूप धारण किया। क्योंकि अन्त में मुक्ति संहार में है, संहार-मूर्ति छिन्न-मस्ता का रूप धारण कर इडा-पिङ्गला-युक्त सुषुम्ना को रक्त-धार में प्रकट किया, जो अन्तर्वृत्ति का सूचक है।

साधक ! समस्त विश्व प्रपञ्चेश्वरी 'श्री विद्या' से चला और इस समस्त विश्व में विकाशावस्था का मूल मातृका ही है, जिससे यह अनन्त कोटि सृष्टि असंख्य प्रकार की दिखाई देती है। भेद-बुद्धि का इतना दौर-दौरा है कि एक दूसरा जैसा नहीं मिलता। इस सब भेद की जड़ में यही ५० वर्ण हैं

जब श्रीविद्या सृष्टि-कार्य में अत्यन्त शिथिल होती हैं, अब उनकी रक्त-रञ्जित आभा पवित्र सर्वव्यापी नीलिमा में परिवर्तित हो जाती है। पञ्च-तत्वों के अधिपों को मार उनके कपालों का मुकुट बन जाता है। पाश को काटने के लिए हाथ में छुरी आ जाती है। स्नेह-वत्सला मां कातर सन्तान की रक्षा के लिए अपने हाथों में पुष्प-धनु को वाणों-सहित खप्पर में धधकती हुई ज्ञानाग्नि में जलाकर उसके रक्षार्थ खड्ग धारण करती हैं। राग-रञ्जित-रक्त-कमल मुकुलित नील वर्ण का हो गया है। भेद मूला मातृका छिन्न-शिर (मुण्ड)-माल बन गई है। पुत्र-प्राणा मां स्तन खोले पुत्र को उच्च स्वर से पुकार रही है।

इतनी करुणामयी मां—"स्मृतापि एक-वारा सदा-मुक्ति हेतुः"–क्या सौन्दर्य की चरम मूर्त नहीं ? साधक के दृष्टि-कोण में यही अन्तर है। वह पूजा के अन्त में अन्य सम्प्रदायों की तरह पापी-का-पापी ही नहीं रहता।

"दुर्गा दुर्गा बोले तो गेल पापी सब।"

यही ब्रह्म-मयी द्वितीया है, जो सृष्टि के पूर्व आद्या-रूप में आनन्द-मयी थी।

समस्त उच्च साधनाओं का ध्येय केवल अन्तःकरण-चतुष्टय का लय करके स्वरूप में स्थित होना है। यह शाक्त-साधना में अति सुगम है, जहाँ उस परात्ति-परा भट्टारिका निखिल ब्रह्माण्ड-जननी से माता और अबोध पुत्र का सम्बन्ध है। शिशु को स्वयं कुछ करना-धरना नहीं। वह तो पूर्णतया मां पर अवलम्बित है। उसे ज्ञान से कुछ काम नहीं।

ज्ञान ही अहङ्कार की जड़ है। सबसे विचित्र तो यह है कि जैसे जल-स्रोत नीचे को ही बहता है, उसी प्रकार केवल मां ही बच्चे को प्यार करती है। बच्चे को तो केवल अबोध शिशु ही बनना है, जिसमें मुख्यता है सरलता और सहज साधना की। बच्चे का तुतलाना ही मां को प्रसन्न करता है, न कि धुरन्धर आचार्य का स्तवन।

विधि-निषेध के झगड़े से परे शिष्य का मुख्य साधन अश्रु-पात ही है—

"श्रद्धयाऽश्रद्धया वापि यः कश्चिद् मानवः स्मरेत्।
दुर्गं च दुर्गतिं जित्वा स याति परमां गतिम्॥"

जिससे वह जगज्जननी का मणि-द्वीप स्थित सिद्धासन कँपा देता है। मां दयामयी शिशु-वत्सला जल्दी में दिग्वस्त्रा ही भागकर आती है। इस परम स्वरूप को देखने का अधिकारी केवल पूर्ण वृत्ति का साधक ही है, अन्य नहीं। ज्ञानियों के लिये तो मां ने अपने को वस्त्रों में रुद्ध कर लिया है।

शैशव भेद-बुद्धि-शून्य अवस्था है—सर्वत्र समता का प्रत्यक्ष उदाहरण है—"सदसद् वाखिलात्मके।" शिशु केवल मां को ही सब कुछ समझता है। जिस विराग-प्राप्ति के लिये मुनि कठिन तप करते है, वह श्मशान और शव आदि के दर्शन ही से करस्थ है। वहाँ काम-क्रोध आदि के हटाने का प्रयास नहीं करना पड़ता। मां के सम्मुख होते ही भय-त्रय नष्ट हो दर्शन का अधिकारी बन जाता है। शिशु मां को महिमा से डरता नहीं। एकमात्र उसी पर निर्भर रहता है। उसके दोष मां की दृष्टि में क्षम्य ही नहीं, वरन् आदरणीय हैं। इस प्रकार अधिकार-सम्पन्न साधकधृष्टता-पूर्वक पूछता है—

"संसार यखिल न छिन,
मुण्ड-माल को थाइ पेलि ?"

नवरात्र

'नवरात्रि' से ९ रात्रियों का प्रयोजन कदापि नहीं है । नव-शक्तियों से युक्त होने से 'नवरात्रि' कही जाती है—

"नव-शक्तिभिः संयुक्तं नवरात्रं तदुच्यते ।"

(शक्ति-संगम, २ खण्ड, १३ पटल, श्लोक २)

उग्रचण्डा आदि नव शक्तियाँ हैं ।

मुख्यतः 'नवरात्र' दो हैं—

(१) चैत्र मास में अथवा 'वासन्तीय' और–

(२) आश्विन मास में वा 'शारदीय' ।

महाकाल-संहिता युग के अनुसार ४ नवरात्रों का उल्लेख करती है । यथा—

(१) सत्य युग में चैत्र शुक्ल

(२) त्रेता में आषाढ़ शुक्ल

(३) द्वापर में माघ शुक्ल

(४) कलि में आश्विन शुक्ल

चैत्र की 'शयन' तथा आश्विन की 'बोधन'–नवरात्र कही गई है । आश्विन वा शारदीय 'नवरात्र' प्रधान प्रकार से सर्व-मान्य है । इसमें जैसे कि चण्डिका से सभी की मूल विद्या का इंगित है, उसी प्रकार 'सरस्वती' शब्द सभी का बोधक है । जैसे–

अनिरुद्ध-सरस्वती=आद्या

नील-सरस्वती=द्वितीया

श्री-सरस्वती=श्री विद्या

सम्वत्-सरस्वती=भुवना

चण्डिका आदि भी इसी प्रकार सबकी द्योतक है । यथा—

चण्डिका=आद्या

उग्र-चण्डिका=द्वितीया

प्रचण्ड-चण्डिका=छिन्ना

इस प्रकार पूर्वाचार्यों ने इन शब्दों को पशु-सङ्कट में नियोजित किया था । इसलिये पञ्चांग-कार 'स्वरस्वती'-शब्द का उपयोग करते हैं ।

उपासना-काण्ड में तिथि प्रधान है और वह देवतांग मानी गई है । नक्षत्र पौराणिक धर्म है और उपासना में गौण माना गया है । शक्ति-सङ्गम, महाकाल-संहिता आदि इसी मत को मानते हैं तथा पुरश्चर्यार्णव और निर्णय-सिन्धु में इसके प्रचुर प्रमाण-युक्त श्लोक हैं ।

उपासना-काण्ड में ज्योतिष का अपना महत्व-पूर्ण स्थान है, पर तिथि को प्रधानता दी गई है, नक्षत्र का विषय गौण है । सम्प्रदाय-त्रय से यद्यपि पारण अलग-अलग है, पर नवमी को पारण आवश्यक है । इस नवमी को केवल शुद्ध नवमी—सूर्योदय में होना जरूरी है । उपर्युक्त आशय के तन्त्रों के अनेक उद्धरण सुलभ हैं ।

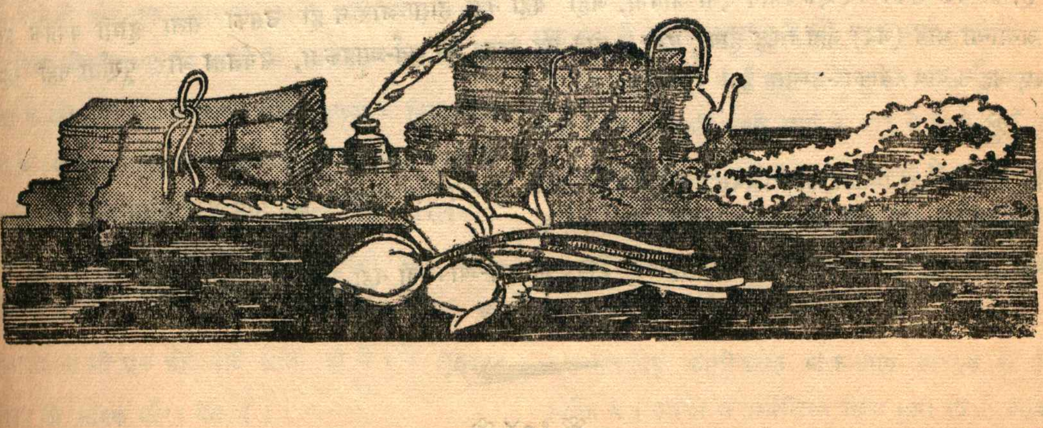

प्रश्नोत्तर

[परम पूज्य 'राष्ट्रगुरु श्री १००८ श्री स्वामी जी महाराज अपने प्रवचनों में प्रायः प्रतिदिन जिज्ञासुओं के महत्वपूर्ण प्रश्नों का समाधान अति सरल शैली में करने की कृपा किया करते हैं। एक बन्धु ने ऐसे ही दो प्रश्नों के उत्तर लिख भेजने की कृपा की है। क्या ही अच्छा हो कि अन्य बन्धु भी पूज्यश्री के मुख से प्राप्त उपदेशों को परोपकाराय लिख भेजने का पुण्य कार्य करें। हम उसे सधन्यवाद प्रकाशित करेंगे। -सं०]

प्रश्न संख्या १:—क्या ब्रह्म और प्रकृति अनादि हैं या एक ही वस्तु के दो नाम ?

उत्तर :—

प्रकृति नाम स्वभाव का है। किसी मनुष्य की प्रकृति उससे अलग नहीं हो सकती। इसी प्रकार प्रकृति ब्रह्म का स्वभाव है और वह उससे अलग नहीं है। ब्रह्म और प्रकृति में कोई भेद नहीं है, एक रूप के ही दो नाम दिये गये हैं। भेद केवल अविद्या के कारण दिखाई दे रहा है। अविद्या माया का एक रूप है। पाँच तत्वों के ऊपर परमेश्वर का माया-तत्व है और इस माया के कारण यह सब कुछ अलग-अलग दिखायी दे रहा है। पाँच तत्व कार्य हैं और माया तत्व कारण रूप है। कार्य और कारण अलग-अलग नहीं हो सकते, यह भेद इसी प्रकार का है।

जैसे :—

स्वर्ण और स्वर्णाभूषण में भेद, अंधकार में सर्प और रस्सी का भेद आदि।

जब ज्ञान का प्रकाश होने पर अविद्या-रूपी अंधकार नष्ट हो जाता है, तब भेद नष्ट हो जाता है और ब्रह्म तथा प्रकृति में कोई भेद नहीं दीखता, केवल एक ही तत्व ब्रह्म रह जाता है।

प्रश्न संख्या २:—कुछ विद्वानों का मत है कि न अद्वैत-वाद है, न द्वैत-वाद है किन्तु त्रैत-वाद है। क्या यह सिद्धान्त उचित है ?

उत्तरः—

त्रैत-वाद सिद्धान्त के माननेवालों का मत है कि संसार में तीन अलग-अलग तत्व—ब्रह्म, जीव और माया देखे जाते हैं और तीनों का अलग-अलग अस्तित्व है किन्तु यह विचार उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि यदि इस सिद्धान्त को माना जाता है, तो भेद मानने पर एक स्थान ऐसा आयेगा, जहाँ ब्रह्म नहीं होगा और न ही उसकी सत्ता होगी क्योंकि इसके बिना अन्योन्या भाव (भेद) नहीं सिद्ध होगा, ऐसा न होने पर ईश्वर की सर्व-व्यापकता, सर्वज्ञता और पूर्णता नहीं रहेगी, इसलिए अद्वैत-वाद स्वीकार-सम्मत है।

जैसे :—

मिट्टी का घड़ा मिट्टी का ही स्वरूप है। तब तो उसमें मिट्टी-तत्व व्यापक है। यदि घड़ा अलग वस्तु (मिट्टी से अलग) है, तो घड़े में मिट्टी की व्यापकता नहीं हो सकती।

इसी प्रकार यदि तीनों तत्व अलग-अलग होंगे तो ईश्वर की सर्व-व्यापकता नहीं होगी। इसलिए अद्वैत-वाद का सिद्धान्त पूर्ण है।

-: संस्मरण :-

[श्रद्धेय कविवर पण्डित सुमित्रानन्दन जी पन्त ने 'कौल-कल्पतरु' श्री शुक्ल जी के शाक्त-धर्म-प्रचार के महत् कार्य में अन्तरङ्ग सहयोगी एवं 'चण्डी' के सुलेखक स्वर्गीय पण्डित कालीचरण जी पन्त के सम्बन्ध में प्रस्तुत संस्मरण लिखने की कृपा की है, जिससे उनके साधना-परायण परिवार का महत्वपूर्ण परिचय मिलता है। आशा है कि पाठक बन्धु इसे ध्यान से पढ़कर आवश्यक उद्बोधन प्राप्त करेंगे।—सं०]

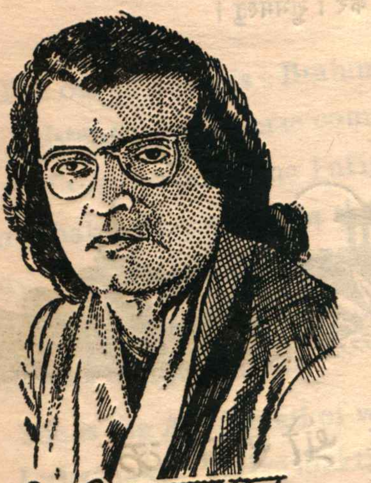

श्री सुमित्रानन्दन पन्त

स्वर्गीय श्री कालीचरण पंत मेरे मौसेरे भाई लगते थे। वे बाहर से बड़े सूखे और कठोर जान पड़ते थे पर भीतर बड़ा कोमल सहृदय हृदय रखते थे। छुटपन से ही उनके समवयस्क उनसे डरते थे और एक प्रकार से उनसे दबते थे। उनके स्व० पिता श्रीजयकृष्ण पंत शक्ति के उपासक थे। कालीचरण के बड़े भाई मायाराम पंत शक्ति-साधना में सिद्ध माने जाते थे। वे श्मशान में जाकर शव-साधना की क्रिया करते थे, ऐसा मैंने सुना है। स्वभाव के बड़े उदार तथा परोपकारी थे किन्तु अत्यधिक मद्य-सेवन के कारण उनकी मृत्यु युवावस्था ही में हो गयी। कालीचरण के मझले भाई श्री भोलादत्त पंत भी एक छोटे-मोटे शाक्त ही थे। वे गृहस्थ-जीवन को अधिक महत्व देते थे।

अपने पिता तथा परिवार के वातावरण से संस्कार ग्रहण कर सबसे छोटे भाई कालीचरण ने शक्ति-उपासना ही का मार्ग अपनाया। उनकी लगन तथा निष्ठा देखकर अल्मोड़ा के राजा साहब श्री आनन्द सिंह जी ने उन्हें इस मार्ग में दीक्षित कर उनके विकास में बड़ी सहायता की। फलत: वे अपने मार्ग प्रचण्ड साधक माने जाते थे और लोगों के कथनानुसार उन्हें अनेक सिद्धियाँ भी प्राप्त थीं। उनके पास शाक्त-दर्शन, पूजन, विधि-विधान आदि संबंधी पुस्तकों का अच्छा संग्रह था, जिनमें कुछ दुर्लभ ग्रंथ भी बताये जाते हैं।

कालीचरण पंत अपनी साधना तथा मार्ग-संबंधी बातों को अत्यन्त गोपनीय रखते थे। बाहर से देखने पर कोई नहीं कह सकता था कि वे एक उच्च कोटि के साधक हैं। कभी देवी-देवता-संबंधी चर्चा छिड़ती, तो वे मर्म-भरी मुसकान कर बातों की दिशा मोड़ देते थे।

कालीचरण जीवन बीमा कंपनी के उच्च अधिकारियों में एक थे। वे अपने व्यवसाय में भी सफल माने जाते थे। मेरा परिचय उनसे बहुत पीछे हुआ। वे मुझसे कभी खुलकर बातें नहीं करते थे, कभी उनके मार्ग के बारे में पूछने पर टालमटोल करते रहते थे। मुझ पर स्नेह रखते थे, इसलिए उनका दुराव उनके पथ का एक लक्षण मान कर मैं हँस देता था। पर मेरे भांजे बद्रीदत्त पांडे से उनकी खूब घुटती थी। उसे वे कुछ चमत्कार की बातें बतलाते रहते थे।

निःसंदेह कालीचरण भक्ति-प्राण स्वभाव के विनम्र व्यक्ति थे। उनका अन्तर्व्यक्तित्व छिपा हुआ था। उसके बारे

में कह सकना कठिन है। आयु के अन्तिम वर्षों में वे थोड़ा बहुत खुल गए थे। किन्तु पते की बात पूछने पर कहते थे—"मैं तो सिपाही हूं; मुझे कुछ भी बताने का अधिकार नहीं।"

सुनता हूँ, मृत्यु के समय उन्हें प्रकाश-स्वरूपिणी भगवती के दर्शन हुए थे और उन्हीं के आकर्षण में लीन होकर उन्होंने अपनी ऐहिक लीला का संवरण किया। मृत्यु के समय उन्होंने अपनी पत्नी को बुलाकर पूछा—"तुम्हें भगवती का दिव्य स्वरूप दिखायी पड़ता है?" उनके 'नहीं' कहने पर उन्होंने कहा "बह सामने तो खड़ी हैं, मुझे बुला रही हैं, मैं अब जाता हूँ"— यही उनके अंतिम शब्द थे।

कालीचरण की आकस्मिक मृत्यु का समाचार सुन मन को धक्का लगा था। वे कुछ ही महीने पहले प्रयाग आए थे और अभी काफी स्वस्थ थे। प्रयाग से लौटने के बाद उन्हें अलबत्ता नेत्र-रोग ने कष्ट दिया था, ऐसा उन्हीं के पत्र से ज्ञात हुआ था, पर गर्मी में मेरे अल्मोड़ा जाने तक उनका प्रायः दो सप्ताह पूर्व देहांत हो चुका था। वे अपने सौजन्य की स्मृति मन में छोड़ गए हैं। भगवान् उनकी आत्मा को शांति प्रदान करें। शुभमस्तु।

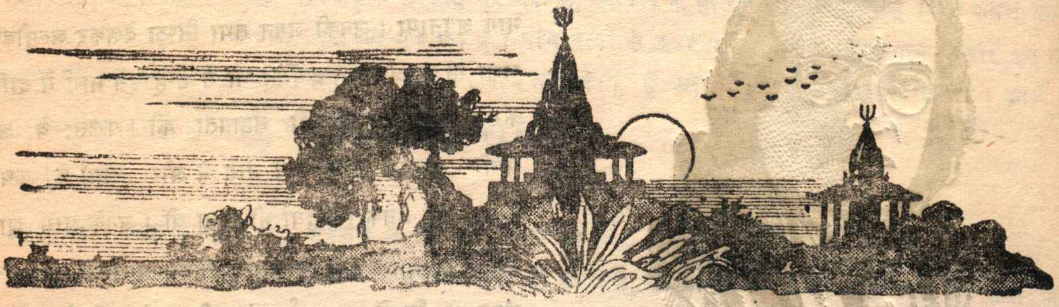

नारद द्वारा भगवान् श्रीराम को

आश्विन मास में नवरात्र-व्रत का उपदेश

"हे राघव! रावण के विनाश का उपाय बताता हूं। इसके लिए आप श्रद्धापूर्वक आश्विन मास में नवरात्र-व्रत करिये। हे राम! नवरात्र में उपवास, भगवती का पूजन तथा विधिवत् जप-होम करने से सब कामनाएँ पूरी होती हैं। देवी को पवित्र पशुओं का बलि अर्पण कर जप का दशांश हवन करके आप शक्ति-सम्पन्न हो जायेंगे। सबसे पहले भगवान् विष्णु ने यह व्रत किया था फिर शंकर जी ने और ब्रह्मा जी ने किया। उनके बाद इन्द्र ने इस व्रत का पालन किया। महर्षि विश्वामित्र ने यह व्रत किया था। भृगु, वशिष्ठ तथा कश्यप भी इसे कर चुके हैं। जब देव-गुरु बृहस्पति की भार्या को चन्द्रमा ने हर लिया था, तब उन्होंने भी नवरात्र-व्रत किया था। अतएव हे राजेन्द्र! रावण का बध करने के लिए आप भी यह व्रत करिये। वृत्रासुर का बध करने के लिये इन्द्र ने और त्रिपुरासुर के नाशार्थ भगवान शङ्कर ने इस उत्तम व्रत को किया था। मधु दैत्य के बध के लिये भगवान् विष्णु ने सुमेरु पर्वत के शिखर पर इस व्रत का पालन किया था। अतएव हे महामते! आप भी पूर्ण तत्परता के साथ यही व्रत कीजिए।"

[दे० भा०-तृतीय स्कन्ध—अध्याय ३०]

SHAKTI-UPASANA

The origin of all is Brahman, the infinite, the ineffable. Out of this supreme Existent this universe comes to be. The power that brings this finite world out of the bosom of the Infinite is Brahman's own puissance, Brahman as power, Shakti. It is called in the Veda, 'MAYA' with which the One becomes the Many. Maya is not a power of illusion or falsehood, but a power of formation. Out of the Real the great Maya-Shakti forms the innumerable reals that constitute this manifestation.

She is the Adi Shakti of which all other Shaktis are projections. Jnanashakti, Icchashakti, Kriyashakti, which in their combined workings uphold this universe, are self-castings of this Primal Shakti whom we adore as the Divine Mother.

She is the Chit Shakti who makes all life possible. In worshipping Her, we worship the Source and Sustainer of our existence. If we lose sight of Her, we become ineffective and wander like blind men in a dark room. By Japa, by worship, by meditation, by yoga, by whatever means we must establish Her presence in our waking consciousness. Then only will we be able to make full use of our life and all that the Divine has given to us.

This is so not only individually. Even as a nation, India needs to awake to the Shakti that ensouls her and build her life in the mould that is demanded by her Spirit. The first step in this direction is to look upon all forces, all energies as the expressions of Bharata Shakti at different levels of life, in different spheres of development, and devote ourselves to their fullest growth in the image of the Mother of us all.

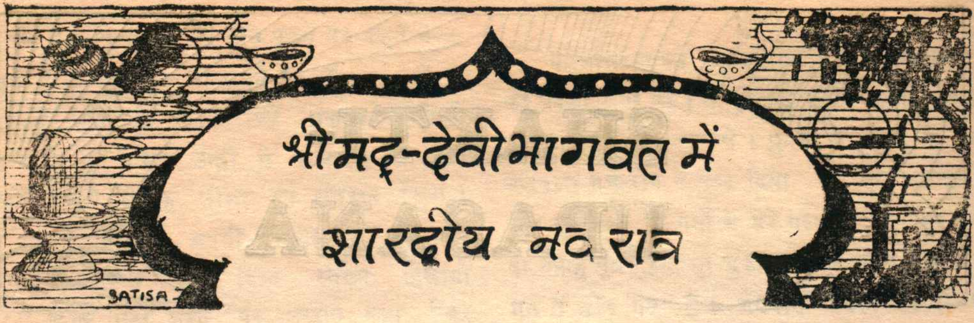

श्रीमद्-देवीभागवत में शारदीय नवरात्र

शरत् काल अर्थात् आश्विन के नवरात्र में विशेषतया भगवती श्री जगदम्बा चण्डिका देवी का व्रत करना चाहिये। इसी प्रकार वसन्त ऋतु के नवरात्र में भी यह व्रत विधेय है। ये दोनों ही ऋतुएँ 'यम-दंष्ट्रा' कही गई हैं क्योंकि इनमें विविध प्रकार के रोगादि उत्पन्न होते हैं और प्राणियों का व्यापक रूप से नाश होता है। अतएव आत्म-कल्याण की इच्छा करनेवाले व्यक्तियों को प्रयत्न-पूर्वक नवरात्र का व्रत विधिपूर्वक करना चाहिए। इस व्रत का प्रारम्भ शुक्ल प्रतिपदा से होता है। इसलिए इसकी तैयारी अमावास्या के दिन ही बुद्धिमान लोगों कर लेनी चाहिये।

अमावास्या के दिन

व्रत से सम्बन्धित सभी वस्तुओं को पहले एकत्र करे। भोजन केवल एक बार करे और हविष्य पदार्थों को ही ग्रहण करे। अपने घर में या घर के निकट किसी समतल और पवित्र स्थान में सोलह हाथ लम्बा-चौड़ा मण्डप बनाये। इस मण्डप को सुन्दर स्तम्भों और पताकाओं से सजाए। सारे स्थान को श्वेत मिट्टी गोबर से लिपवाए।

उक्त मण्डप के मध्य में एक सुन्दर, चौकोर और टिकाऊ वेदी बनाए। यह वेदी चार हाथ लम्बी-चौड़ी और एक हाथ ऊँची होनी चाहिये। इस वेदी या पीठ के ऊपर चाँदनी तनवाए और चारों ओर रंग-बिरंगे तोरण बनाकर तथा बन्दनवार लटकाकर उसे शोभा-युक्त करे।

रात्रि के समय ऐसे विद्वान् ब्राह्मणों को सादर बुलाए, जो श्री जगदम्बा की उपासना के तत्व को जानते हों और जो सदाचारी, संयमी तथा वेद-वेदांगों के ज्ञाता हों।

प्रातःकाल नदी, नद, तड़ाग, बावली, कुँए पर जाकर अथवा घर में ही विधि-वत् स्नान करे। फिर नित्य-कर्म समाप्त कर ब्राह्मणों का अनुष्ठान करने के लिये वरण करे। मधुपर्क और अर्घ्य-पाद्य से उनका पूजन कर उन्हें यथाशक्ति वस्त्र तथा आभूषण भेंटकर सन्तुष्ट करे। इस कार्य में कंजूसी न करे क्योंकि सब प्रकार से सन्तुष्ट ब्राह्मणों के द्वारा किये गये पूजनादि कर्म ही फलदायक होते हैं।

श्रीमद्-देवी भागवत् और चण्डी-माहात्म्य (श्री दुर्गा सप्तशती) का पाठ करने के लिये यथा सामर्थ्य नौ, पाँच, तीन अथवा एक ब्राह्मण की नियुक्ति करे। श्रीमद् देवीभागवत का पारायण करने के महत्कार्य में किसी शान्त स्वभाववाले ब्राह्मण को नियुक्त करना चाहिए।

सबसे पहले वैदिक मन्त्रों से स्वस्त्ययन अर्थात् मंगल-पाठ कराए। तदनन्तर पूर्वोक्त वेदी के ऊपर एक सिंहासन स्थापित करे। सिंहासन में एक नवीन रेशमी वस्त्र बिछाए। इस वस्त्र के ऊपर शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म से युक्त चार भुजाओं वाली अथवा विविध आयुधों से युक्त अठारह भुजाओं वाली सनातनी भगवती की प्रतिमा को प्रतिष्ठित करे। देवी की यह प्रतिमा यथाशक्ति रत्न-जटित आभूषणों मोतियों के हार तथा सुन्दर वस्त्रों से शोभायमान होनी चाहिये। प्रतिमा की आकृति सौम्य और

शुभ लक्षणों से युक्त हो, इसका विशेष ध्यान रखना चाहिये।

यदि प्रतिमा के प्रतिष्ठा करना सम्भव न हो, तो उसके स्थान पर नवार्ण मन्त्र से युक्त श्री दुर्गा-यन्त्र की स्थापना करे।

वेदी के दाहनी ओर एक कलश स्थापित करे। इस कलश को वैदिक मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर उत्तम तीर्थ-जल से परिपूर्ण करे और जल में सुवर्ण तथा रत्न छोड़ दे। कलश को पञ्च-पल्लवों से शोभायमान करे। पूजा में लगनेवाली सभी सामग्रियों को वेदी के चारों ओर सजा कर रख ले। मङ्गलाचार के लिये गायन-वादन की व्यवस्था कर ले।

प्रतिपदा से पूजनारम्भ

हस्ति-नक्षत्र से युक्त नन्दा (प्रतिपदा) तिथि में विधिवत् पूजा प्रारम्भ करना शुभ होता है। इस पूजा से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है। सम्भव हो तो इस दिन उपवास रखे अथवा केवल एक बार रात्रि मे हविष्य का भोजन करे।

पूजन प्रारम्भ करने के पहले देवी से प्रार्थना करे। यथा–

करिष्यामि व्रतं मातर्नवरात्रमुत्तमम्।
साहाय्यं कुरु मे देवि जगदम्ब ममाखिलम्॥

अर्थात् हे मात: ! मैं नवरात्र के उत्तम व्रत को करूँगा। हे देवि, हे जगदम्ब ! मेरी पूर्ण सहायता करिए !

इसके बाद विधि-पूर्वक मन्त्रों का उच्चारण करते हुये जगदम्बा का पूजन करे। पूजन में चन्दन-अगर-कपूर; मन्दार-करंज-अशोक-चम्पा-कनैल-मालती-ब्राह्मी आदि के सुगन्धित पुष्प और विल्वपत्र; धूप तथा दीप का सविधि प्रयोग करे। नारियल-नीबू अनार-केला-नारंगी-कटहल-बिल्व फलों के साथ अन्न प्रदान करे। मांसाहारी लोगों को पशु-बलि करनी चाहिये।

होम के लिए त्रिकोणाकार कुण्ड अथवा स्थण्डिल की रचना करे, जिसका प्रमाण (नाप) शुभदायक रखे।

प्रातः, मध्याह्न और सायं—तीनों काल पूजन करे और गीत-वाद्य-नृत्य द्वारा अधिक-से-अधिक उत्सब मनाये। प्रतिदिन भूमि पर ही शयन करे।

प्रतिदिन कुमारी-पूजन करे। चाहे तो केवल एक कुमारी का नित्य पूजन करे या प्रति-दिन एक-एक कर कुमारी की संख्या बढ़ाता जाय अर्थात् पहले दिन एक कुमारी का, दूसरे दिन दो कुमारियों का, तीसरे दिन तीन का—इसी प्रकार नवें दिन नौ कुमारियों की पूजा करे। अथवा प्रतिदिन नौ कुमारियों का पूजन करे। जैसी श्रद्धा और शक्ति हो, वैसा करे किन्तु कंजूसी न करे।

ब्राह्मणों को ब्राह्मण जाति की कन्या का कुमारी-रूप में पूजन करना चाहिये। क्षत्रिय को ब्राह्मण-क्षत्रिय दोनों जातियों की कन्या का, वैश्य को ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य तीनों जातियों का और शूद्र को चारों जातियों की कन्या का 'कुमारी'-रूप में पूजन करने का अधिकार है। विविध धन्धों में लगे हुये लोगों को अपनी ही जाति की कन्या का पूजन करना चाहिये।

ब्राह्मण-कन्या के पूजन से सब कार्यों की सिद्धि, क्षत्रिय-कन्या के पूजन से विजय-प्राप्ति, वैश्य-कन्या के पूजन से धन-लाभ और शूद्र-कन्या के पूजन से वंश-वृद्धि होती है।

कुमारियों के नाम और उनकी पूजा से प्राप्त होनेवाले फल का विबरण निम्न प्रकार है—

एक वर्ष की कन्या	"कुमारिका"	दुःख-दारिद्रय का नाश, शत्रु-संहार और धन-आयु-बल की वृद्धि
तीन " "	"त्रिमूर्ति"	धर्म-अर्थ-काम की पूर्ति, धन-धान्य की प्राप्ति और पुत्र-पौत्रादि की वृद्धि
चार " "	"कल्याणी"	विद्या (ज्ञान), विजय, राज्य-सुखादि सभी कामनाओं की पूर्ति

पाँच	वर्ष	की कन्या	"रोहिणी"	रोग-नाश
छः	"	"	"कालिका"	शत्रु-नाश
सात	"	"	"चण्डिका"	धन और ऐश्वर्य की प्राप्ति
आठ	"	"	"शाम्भवी"	मोह-दुःख-दारिद्रय का नाश तथा संग्राम में विजय-प्राप्ति
नौ	"	"	"दुर्गा"	शत्रु-नाश, साधना में सिद्धि और परलोक में सुख की प्राप्ति
दस	"	"	"सुभद्रा"	सभी कामनाओं की पूर्ति

दस बर्ष से अधिक आयुवती कन्याओं का पूजन कुमारी-रूप में नहीं करना चाहिये। ऊपर लिखे नामों से विधि-वत् कुमारियों का पूजन करे। पूजन के मन्त्र क्रमशः निम्न प्रकार हैं—

मन्त्रों के पूर्व में 'श्रीरस्तु' अथवा 'श्री' या किसी अन्य बीज-मन्त्र से युक्त मन्त्र का उच्चारण करे।

कुमारिका... कुमारस्य च तत्वानि या सृजत्यपि लीलया।
कादीनापि च देवांस्तां कुमारीं पूजयाम्यहम् ॥

जो कुमार कार्तिकेय के तत्वों को और ब्रह्मा आदि देवताओं को अपनी लीला से रचती हैं, उन भगवती 'कुमारी' का मैं पूजन करता हूँ।

त्रिमूर्ति·· सत्वादिभिस्त्रिमूर्तिर्या तैर्हि नाना-स्वरूपिणी।
त्रिकाल-व्यापिनी शक्तिस्त्रिमूर्ति पूजयाम्यहम् ॥

सत्व आदि व गुणों के द्वारा जो तीन मूर्तिवाली हैं और उन्हीं (गुणों) के द्वारा जो विविध स्वरूपवाली हैं, तीनों कालों में व्याप्त रहनेवाली शक्ति हैं, उन भगवती 'त्रिमूर्ति' का मैं पूजन करता हूँ।

कल्याणी ..कल्याण-कारिणी नित्यं भक्तानां पूजिताऽनिशम्।
पूजयामि च तां भक्त्या कल्याणी सर्व-कामदाम् ॥

अहर्निश पूजा किए जाने पर जो अपने भक्तों का नित्य कल्याण करनेवाली हैं, उन सब कामनाओं को देनेवाली भगवती 'कल्याणी' का मैं भक्ति-पूर्वक पूजन करता हूँ।

रोहिणी रोहयन्ती च बीजानि प्राग्-जन्म-सञ्चितानि वै।
या देवी सर्व-भूतानां रोहिणीं पूजयाम्यहम् ॥

समस्त प्राणियों के पूर्व जन्मों के सञ्चित कर्म-बीजों को जो उगाती हैं, उन भगवती 'रोहिणी' का मैं पूजन करता हूँ।

कालिका काली कालयते सर्वं ब्रह्माण्डं स-चराचरम्
कल्पान्त-समये या तां कालिकां पूजयाम्यहम्

कल्प के अन्तिम समय में चर-अचर के सहित सम विश्व का जो लय करती हैं, उन भगवती 'कालि का मैं पूजन करता हूँ।

चण्डिका·· चण्डिकां चण्ड-रूपां च चण्ड-मुण्ड-विनाशिनीम्
तां चण्ड-पाप-हरणीं चण्डिकां पूजयाम्यहम्

प्रचण्ड रूपवाली और चण्ड मुण्ड का विनाश करनेवा और महा पापों को दूर करनेवाली भगवती 'चण्डि का मैं पूजन करता हूँ।

शाम्भवी अकारणात् समुत्पत्तिर्यन्मयैः परि-कीर्तिता।
यस्यास्तां सुखदां देवीं शाम्भवीं पूजयाम्यहम्

वेदों द्वारा जिनकी उत्पत्ति बिना किसी कारण अ स्वतः बताई गई है, उन सुख देनेवाली भगवती 'शाम्भ का मैं पूजन करता हूँ।

दुर्गा·· दुर्गात् त्रायति भक्तं या सदा दुर्गति-नाशिनी
दुर्गेया सर्व-देवानां तां दुर्गां पूजयाम्यहम्

दुर्दशा को नष्ट करनेवाली जो अपने भक्त को वि से सदा बचाती हैं और जो समस्त देवताओं के लिये कठिनाई से जानने योग्य हैं, उन भगवती 'दुर्गा' का पू करता हूँ।

सुभद्रा सुभद्राणि च भक्तानां कुरुते पूजिता सदा।
अभद्र-नाशिनीं देवीं पूजयाम्यहम् ॥

। किये जाने पर जो अपने भक्तों का सदा कल

❀ श्री मद्-देवी भागवत में शारदीय नव

ती हैं, अमङ्गल का नाश करनेवाली उन भगवती सुभद्रा' का मैं पूजन करता हूँ ।

उक्त मन्त्रों का उच्चारण कर वस्त्र, आभूषण, पुष्पमालाओं और सुगन्ध आदि से कन्याओं का सदा भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये ।

नवरात्र के नवों दिन पूजन करने में यदि असमर्थ हो तो केवल अष्टमी के दिन विशेष रूप से भगवती का पूजन करे क्योंकि दक्ष-यज्ञ को ध्वस्त करनेवाली भद्रकाली का आविर्भाव करोड़ों योगिनियों के सहित 'अष्टमी' को ही हुआ था । अतः अष्टमी को विशेष पूजन का अत्यधिक महत्व है ।

अष्टमी के दिन खीर तथा मांस से हवन कर ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये तथा फल-फूल का उपहार अर्पित कर श्री जगदम्बा को प्रसन्न करना चाहिये ।

जो लोग पूरे नवरात्र भर उपवास पूर्वक व्रत करने में असमर्थ हों, उन्हें केवल तीन दिन--सप्तमी, अष्टमी और नवमी को उपवास सहित व्रतानुष्ठान करना चाहिये । इससे उन्हें पूर्ण फल की प्राप्ति होगी । पूजन, हवन, कुमारी-पूजा और ब्राह्मण-भोजन इन्हीं कर्मों से नवरात्र का व्रत सम्पन्न होता है ।

श्री महामहोपाध्याय-भगवत्पूज्यपाद-श्री गोविन्दाचार्य-शिष्य
श्री भगवच्छङ्कराचार्य-शिष्य श्रीविष्णुशर्माचार्य-शिष्य श्रीप्रगल्भाचार्य-शिष्य

श्रीविद्यारण्य यति-विरचितम्

श्री श्रीविद्यार्णव तन्त्रम्

जैसा कि नाम से ही प्रकट है, यह एक विशाल ग्रन्थ है । 'चण्डी' पत्रिका के आकार में दो खंडों में इसे प्रकाशित किया जा रहा है । प्रथम खण्ड का पूर्वार्द्ध छप गया है, जिसमें दश श्वासों के अन्तर्गत १८४ पृष्ठों में लगभग ८०० विषयों का वर्णन हुआ है, छः पृष्ठों में सूची है । प्रथम खण्ड का उत्तरार्द्ध भी मासिक खण्डों में छप रहा है और यह लगभग २२० पृष्ठों में समाप्त होगा । प्रथम खण्ड के इन दोनों प्रकाशित भागों का मूल्य १७)५० है । अतः कृपया १८)५० मनिआर्डर से भेजें ।

मनिआर्डर मिलते ही प्रथम खण्ड का पूर्वार्द्ध सेवा में भेज दिया जायगा ।

१८)५० भेजकर दुर्लभ तन्त्रग्रन्थ प्राप्त करें और धार्मिक साहित्य के प्रकाशन में सहायक बनने का पुण्य और यश लाभ अलग पाएँ । म० आ० कृपया निम्न पते पर भेजें—

कल्याण मन्दिर, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६

तन्त्र में अनुसन्धान

[गुजरात से 'शिव-शक्ति-योगी' परम पूज्य श्री कृष्ण ब्रह्मचारी जी ने 'कौल-कल्पतरु' चण्डी गताङ्क के इसी स्तम्भ में प्रकाशित स्वीडन के श्री गुन्नार एण्डर्सन की जिज्ञासाओं के सम्बन्ध अपने विचार लिख भेजने की कृपा की है। उन्हें यहाँ सादर प्रकाशित किया जाता है।—सं०]

तान्त्रिक शब्दों के सम्बन्ध में मैं पहले यह कहे देता हूँ कि ताम्त्रिक मन्त्रों को लोग वैदिक अपभ्रंश मानते हैं, लेकिन ऐसी बात नहीं है--तान्त्रिक मन्त्र प्राकृतिक शब्द हैं—

The Natural Sound which is heard in meditation having with power.

तांत्रिक मूल ध्वनि से ही बाद में वैदिक शब्द बने। इसीलिए श्री एण्डर्सन ने जो पूछा है, उसके उत्तर में निम्न उत्तर विचारणीय हैं—

१-(पृष्ठ ७२) "संकेत" से क्या तात्पर्य है ? तो यहाँ हम पाते हैं--सं + केत। अब "सं" क्या, यह जानना है- तो इसके लिये हमें उपलब्ध है-सरस्वती-रहस्योपनिषद् में-

यां विदित्वाऽखिलं बन्धं निर्मथ्याखिल-वर्त्मना।
योगी याति परं स्थानं सा मां पातु सरस्वती ॥
"सं" उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न
शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः॥

अर्थात् जिसको जानकर समस्त बन्धन से मुक्त होकर योगी सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त करता है, वे सरस्वती मेरी रक्षा करें--वे, जो "सं" ध्वनि के साथ प्रकट होती हैं। आपको कोई तो देखकर भी नहीं समझ पाता; कोई सुनकर भी नहीं समझ पाता, लेकिन किसी के लिए इस तरह हो जाती हो, जैसे अपने सुन्दर वस्त्रों को खो कर कोई सुन्दरी अपने पति की गोद में नग्न होक आलिंगन में आ जाय।

अतः उन्होंने जो पूछा है कि "सर्वोच्च आम्नाय जब सत्य का साक्षात्कार हो जाता है और कुछ करने शेष नहीं रहता; किसी क्रिया की आवश्यकता नहीं रहती तब संकेत शब्द का क्या तात्पर्य है ?"—इस प्रश्न समाधान ऊपर के उद्धरण के अनुसार अब इस प्रका स्पष्ट होता है—

संकेत—सं + केत—सं + कृत—सं + कृत्य—अनावरि कृत्य—नग्न सम्भोग (Naked Enjoyment—LIBERATED ENJOYMENT)—मुक्त भोग

२—इसी प्रकार "चैतानि" शब्द (पृष्ठ ७४) का भी अ स्पष्ट है, जो निम्न प्रकार है—

चैतानि--चिति चैतन्य (Unfoldment of full blown absolute supreme Power.)

इसीलिये "संकेत" एव "चैतानि" शब्द सर्वो आम्नाय में व्यवहृत किए गए हैं।

३—परा प्रासाद मन्त्र है- "हं सः ॐ" तथा

वीज है-"हं सः ॐ"

मूल तान्त्रिक ध्वनि इस प्रकार है-

सः ॐ-सः औं-सहौं-स्हौं

इसी तरह–हं सः ॐ–ह स औं–ह्सौं

अब कोई यह कहे कि "स्हौं" या "ह्सौं" अपभ्रंश 'सः ॐ' तथा "हं सः ॐ" के, सो बात नहीं है, बल्कि ये शुद्ध हैं क्योंकि ये बीज हैं और बीज में गति Speed है और गति में शक्ति है--Speed is maintained in speed alone. Any Shakti appears with its vibrations, accelerations, Tune & Speed only & due to vibrations appears Sound that is seed & seed is speed. कभी कभी 'साधक की अपरिपक्व अवस्था में' शक्ति जब अपने रूप को प्रकट नहीं करती है, तो वह 'बीज-मन्त्राक्षर' रूप में दिखाई देती है और सम्पूर्ण वेद उसी अपरिपक्व अवस्था में हैं जबकि शक्ति के बदले उसके मन्त्र ही सम्मुख आते रहे। बीजाक्षरों के सम्बन्ध में बह्वृचोपनिषद् में है कि——

"ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः। यस्तन्नः वेद किमृचा करिष्यति। य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥".

अर्थात् मन्त्र-बीज-अक्षर चिदाकाश में हैं, जिनमें सभी देवता (शक्ति) वास करते हैं। जिसने इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं किया, उसने वेद पढ़कर क्या किया! जिसने उसे जाना, वह वैसा ही हो गया; शक्ति-स्वरूप हो गया।

अब स्पष्ट है कि वेदों में भी तन्त्र की यानी अनुभूति की ही स्तुति है। अब मैं पुनः "परा प्रासाद मन्त्र" के वैदिक (यानी "Slow-not in speed.) शब्द "हं सः ॐ" की व्याख्या करूंगा——

इस मन्त्र का बीज है–"सः ॐ"।

"सः" शब्द का अर्थ लोग "पुरुष-वाच्य" लगाते हैं, जबकि वास्तविकता इसकी उभय-लिङ्गी है। "सः" शब्द का व्यवहार "तत्" के निर्देश में हुआ है क्योंकि "ॐ" को "सः" यानी मात्र पुरुष के रूप में ही निर्देश नहीं किया जा सकता। "ॐ" उभय-लिंगी शिव-शक्त्यात्मक है।

छान्दोग्योपनिषद् में वर्णित है कि——

"तदेतन्मिथुनमोमित्येतस्मिन्नक्षरे संसृज्यते यदा वै मिथुनौ समागच्छत आपयतो वै तावन्योऽन्यस्य कामम्।"

अर्थात् वह "ॐ" मिथुन है, ऐसा कहा गया है क्योंकि उभय-लिङ्ग के एक दूसरे की कामना को पूरा करने के लिये मिथुन ही है, जिसे "ॐ" अक्षर के रूप में कहा गया है।

तो स्पष्ट है कि "ॐ" मिथुन-बीज है; उभय-लिङ्ग संयोग है और मिथुन-स्वरूपता की उपलब्धि ही परा प्रासाद है। "हं" यानी साधक की मिथुन-स्वरूपता की उपलब्धि के लिए ही "हं सः ॐ" है।

तैत्तिरीयोपनिषद् में आया है कि–

रसो वै सः॥ रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति॥ को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात्॥ यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्॥

अर्थात्–वह परम सत्ता, जिसे मिथुन-स्वरूप "ॐ" कहा गया है, वह रस ही है। उस रस को प्राप्त कर ही कोई आनन्दित होता है। कौन यहाँ जीवित रह सकता, यदि चिदाकाश-स्वरूप आनन्द न होता?

यहाँ—"कौन यहाँ जीवित रह सकता"–प्रश्न के द्वारा उसकी शक्ति-स्वरूपता को दिखाया जा रहा है। अतः "आकाश" शब्द का प्रयोग चिदाकाश के लिए है और उसी चिदाकाश-स्वरूपता को उपलब्ध करने हेतु "हं" आकाश बीज है, जो महान् ब्रह्मानन्द का हेतु है। यहाँ स्पष्ट कर देता हूँ कि "ब्रह्म" यदि "शब्द" है, तो उसका अर्थ है "शक्ति"—क्योंकि आगे कहा जा चुका है कि वह नीरस नहीं है।

४—'कुल-दीप' का तात्पर्य प्रज्ञाचक्षु से है। 'दीप' शब्द यहाँ अग्नि (शक्ति), प्रकाश एवं ज्ञान के लिए प्रयुक्त है।

५—अन्तस्तेजो बहिस्तेज—When 'Mantra' or the 'basic word' is repeated again & again i.e. the constant practice of the seed reveals the manifold colours (तेज) and forms lay hidden in the seed and the real form is evinced; there will be no difference in closed or opened eyes–Vision of coloured & brilliant light will be the same, in day time or in dark night it does not matter.

६ प्रौढ़ान्तोल्लास-सहिताम् तथा प्रौढ़ान्तोल्लास पर्यन्तम् के सम्बन्ध में मैं इतना ही कहूँगा कि—

प्रौढ़ शब्द का भावार्थ होता है OLDNESS or maintenance of GRAVITY—& this is unnatural-प्रकृति का निखार पूर्णरूप से यौवन में होता है। प्राकृतिकता यौवन में है और उल्लास उसी में सम्भव है तथा जहाँ प्रकृति (Nature) है, वहीं शक्ति है।

अस्तु, प्रौढ़ता का भाव खत्म होकर (अन्त होकर) उल्लास यानी यौवन का भाव जब तक न आये, तब तक मद्य-पान करने हेतु ही–"प्रौढ़ान्तोल्लास-सहिताम्" तथा "पर्यन्तम्" शब्द का व्यवहार किया गया है। जहां प्रौढ़ता खत्म हो जाय तथा ताजे खिले हुए पुष्प की तरह खिल उठें—तब तक ही मद्य का सेवन करें–अधिक नहीं।

७—"अष्टक" "मिथुन" तथा अष्टाङ्ग-पूजा—वैदिक शास्त्रों में जैसे "अष्टाङ्ग ब्रह्मचर्य" का उल्लेख किया गया है—ठीक उसके विपरीत तान्त्रिक आवरण "अष्टाङ्ग-मिथुन" है, जिसे 'अष्टाङ्ग-पूजा' कहा गया है। "मिथुन" को "पूजा" इसीलिए कहा गया है कि "मिथुन" से ही "ब्रह्मचर्य" सम्भव है और "ब्रह्म" का अर्थ है "शक्ति" (पहले कह चुका हूँ)। मिथुन के सम्बन्ध में सामवेद के छान्दोग्योपनिषद् के द्वितीय अध्याय के द्वादश खण्ड की सामोपासना में वर्णित है कि—

"उपमन्त्रयते स हिंकारो, ज्ञपयते स प्रस्तावः स्त्रिया सह शेते स उद्गीथः, प्रति-स्त्रीं सह शेते स प्रतिहारः, कालं गच्छति तन्निधनं, पारं गच्छति तन्निधनमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतम् ॥१॥ स य एवमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतं वेद मिथुनीभवति मिथुनान्मिथुनात् प्रजायते सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान् प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्या न कांचन परिहरेत्तद् व्रतम् ॥२॥"

अर्थात् जिस स्त्री के साथ मिथुन करना है, उसे पहले अभिमन्त्रित किया जाय यानी उसके अन्दर शक्ति का भाव जागृत किया जाय (यह हिंकार है)। मिथुन के लिये उससे निवेदन और उसके सम्बन्ध में ज्ञान देकर उन्हें मिथुन-प्रिया बनाना (यह प्रस्ताव है)। फिर उस स्त्री के साथ सन्नद्ध मुद्रा में शयन—यह उद्गीथ (रस ॐ) है। अन्य स्त्रियों के साथ भी इस तरह शयन-यह प्रतिहार है। इस सामतन्त्र उपासना के द्वारा साधक का काल चला जाता है। यह काल का निधन है तथा साधक की स्थिति विश्वोत्तीर्ण मुक्ति की हो जाती है। साधक इस प्रकार की पूजा से संसार-सागर के पार चला जाता है। यह उसके संसार-रूपी तथा अज्ञान, अशक्ति एवं निरानन्द, नीरसता का निधन है। यह मिथुन वामदेव्य सामोपासना है—(जिस पूजा का वर्णन इस प्रकार वेदोपनिषद् में है, उसकी लोग 'वाममार्ग' तथा 'वामाचार' कह कर तान्त्रिक उपासना की निन्दा करते हैं)। जो इस मिथुन सामोपासना को जान लेता है, वही ठीक मिथुनी होता है तथा इस प्रकार की मिथुन-पूजा से ही वह अमिथुन यानी ब्रह्मचारी हो जाता है—सम्पूर्ण आयु को प्राप्त करता है और जब तक जीवित रहता है, महान् प्रजा और पशुओं से सम्पन्न रहता है, उसकी महान् कीर्ति होती है। जिस

स्त्री के साथ मिथुन किया जाय, उसके शरीर के अथवा मिथुन के समय उतारे गये स्वर्ण (आभूषण) का अपहरण न करे, यह व्रत है।

८--श्री एण्डर्सन ने जो "समयाचार" के सम्बन्ध में पूछा है कि कुलार्णव के एक श्लोक में वर्णित है कि "यदि कोई किसी ऐसे शिष्य को 'कुलाचार' का रहस्य बताता है, जो पहले से 'समयाचार' से परिचित नहीं है, तो वे गुरु-शिष्य दोनों नर्क को जाते हैं।"

इस सम्बन्ध में मेरे दृष्टिकोण में समयाचार इस प्रकार है—

समयाचार=सम आचार (किन्तु साधारणतया लोग "समय+आचार"--ऐसा अर्थ लेते हैं, जो गलत है क्योंकि कालात्मक दृष्टिकोण में "समय" शब्द संस्कृत में नहीं है)।

हाँ, तो "सम+आचार"--का अर्थ है "समता का भाव" वीर-भाव = शिवोऽहम् की स्थिति। पुरुषत्व और प्रकृतित्व (यानी स्त्रीत्व, नारीत्व या शक्तित्व) दोनों अर्द्धाङ्ग हैं; दोनों सम् यानी बराबर हैं—दोनों के मिलन को संयोग--सम्+योग कहा जाता है-(इसी 'सं' या 'सम्' को लक्ष्य कर योगी 'समाधि' शब्द को पराकाष्ठा मानते हैं)। अतः जब तक सम+आचार प्राप्त न हो; जब तक पुरुषत्व यानी शिवत्व का भाव प्राप्त न हो--जब तक 'जो शिव हैं, सो मैं हूँ' ऐसा अभेद-भाव नहीं है, तब तक जीव-भाव या पशु-भाव कहा गया है।

यानी तब तक ऐसे शिष्यों को शक्ति की-नारी की—प्रकृति की-'मां' कह कर उपासना करानी चाहिये। उसे कुलाचार-यानी शिव-शक्ति का सम्भोग-आचरण—मिथुन नहीं कराना चाहिए क्योंकि कुलाचार यानी वीराचार में जिस शक्ति को पहले मां कह रहे थे, उसी शक्ति को 'मिथुन-प्रिये' कह कर शिव-भाव में आकर उन सर्व-सम्भोग-भवना से सम्भोग किया जाता है।

जो जीवत्व को त्याग सके, पशुत्व को खो सके, बालत्व-पन खत्म करके 'मां' कहना छोड़ सके, वही "वीर" है—उसी भाव को 'वीर' भाव कहा गया है। यह अकाट्य सत्य है क्योंकि साधना में शक्ति-नारी-स्त्री या प्रकृति एक ही है। जिस शक्ति से पहले अज्ञात दशा में 'मां' कह कर प्रार्थना की जाती है, उसी से बाद में स्वकीया शक्ति कह कर भोग किया जाता है।

यह प्रज्ञाचक्षु यानी तीसरे नेत्र के खुलने यानी ज्ञान होने के बाद की बातें हैं। तन्त्र-ग्रन्थों में इसीलिए "ज्ञानी" शब्द आया है। जैसे—'कालिका-हृदय-ज्ञानी लता-साधना-तत्परः' (ज्ञानी वीर को कहा जाता है)। 'कालिका-हृदय' 'यानी' शक्ति के रहस्य का ज्ञान जिसे हो गया—(रहस्य मैंने बताया) वह ज्ञानी तब लता-साधन-तत्पर होता है यानी मिथुन साधना-रत होता है यानी कुलाचार में आता है। पुनश्च तत् 'परः' यानी उसके भी परे 'दिव्य-भाव' में चला जाता है।

यही साधना का रहस्य है—यहाँ सांसारिकता खत्म हो जाती है।

* * *

काली की नित्यायें

[मन्त्र एवं ध्यान-सहित]

१ काली नित्या

मन्त्र—ॐ ह्लीं कालि कालि महाकालि कौमारि मह्यं देहि स्वाहा।

ध्यान-श्याम-वर्णा महा-भीमा घोर-रावा करालिनी।
मुण्डमाला-विभूषाढ्या दक्षे खड्गे प्रविभ्रती।
तर्जनीं धारयन् वामे नृत्यन्ती प्रेत-भूमिषु ॥

२ कपालिनी

मन्त्र—ॐ ह्लीं श्रीं कपालिनि महाकपाल-प्रिय-मानसे कपाल-सिद्धिं मे देहि हूं फट् स्वाहा।

ध्यान-ध्यायेदञ्जन-पुञ्जाभामापीन-स्तन-युग्मकां ॥
चन्द्र-वक्त्रां च बिम्बौष्ठीं मुक्त-केशीं दिगम्बरां ॥
चतुर्मुण्डोपरि-गतां शङ्ख-कङ्कण-भूषिताम्।
खड्ग-त्रिशूल-वरदाभयान् हस्त-चतुष्टये ॥

३ कुल्ला

मन्त्र—ॐ क्रीं कुल्लायै नमः

ध्यान-चतुर्भुजां त्रिनयनां मुकुटाटोप-मण्डिताम्।
शवासन-गतां कुल्लां दश-मुण्डोपरि-स्थिताम्।
वराभयौ करे वामे पुस्त-स्रग् दक्षिणे करे ॥

४ कुरुकुल्ला

मन्त्र—क्रीं ॐ कुरुकुल्ले क्रीं ह्रीं मम सर्व-जन-वशमानय क्रीं कुरुकुल्ले ह्रीं स्वाहा।

ध्यान-ततो ध्यायेन्महाविद्यां कुरुकुल्लां कुलेश्वरीम्।
शवोपरि-समासीनां मुण्ड-माला-विभूषिताम् ॥
कपाल-कर्तृका-हस्तां खड्ग-खेटक-धारिणीम्।
अञ्जनाद्रि-निभां दिव्यां मुक्त-केशीं चतुर्भुजां ॥

५ विरोधिनी

मन्त्र—ॐ क्रों ह्रीं क्लीं हूँ विरोधिनी शत्रूनुच्चाटय विरोधय शत्रु-क्षयरङ्की हूँ फट्।

ध्यान-चतुर्भुजां त्रिनयनां शव-पद्मोपरि-स्थिताम्।
त्रिशिखं नाग पाशं च घण्टां च डमरुं तथा।
साम्विभ्रतीं महादेवीं क्रमाद् भुज-चतुष्टये॥

६ विप्रचित्ता

मन्त्र—ॐ श्रीं क्लीं चामुण्डे विप्रचित्ते दुष्ट-घातिनि शत्रून्नाशय एतद्दिनावधि-प्रिये सिद्धिं मे देहि हूँ फट् स्वाहा।

ध्यान-चतुर्भुजां त्रिनयनां पीनोन्नत-पयोधराम्।
दिगम्बरां मुक्त-केशीं ललज्जिह्वां भयानकाम्॥
भीम-दंष्ट्रां करालास्यां सृक्किणी-रक्त-वाहिनीम्।
खड्ग-मुण्ड-कपाल-त्रिशूल-हस्तां महोदरीम्॥

७ उग्रा

मन्त्र—ॐ स्त्रीं हूँ ह्रीं हूं फट्।

ध्यान-ततो ध्यायेत् परामुग्रां प्रत्यालीढ-पद-स्थिताम्।
चतुर्भुजां त्रिनयनां मुण्डमाला-विभूषिताम्॥
श्याम-वर्णां मुक्त-केशीं खड्गेन्दीवर-धारिणीम्।
कपाल-कर्तृका-हस्तां वर-दान-परायणाम्॥

८ उग्रप्रभा

मन्त्र—ॐ हूं हूं उग्र-प्रभे देवि काली-महादेवि स्वरू दर्शय हूं फट् स्वाहा।

ध्यान-चतुर्भुजां त्रिनयनां शव-पद्मोपरि-स्थिताम्।
सुप्रसन्न-मुखाम्भोजां शव-मांस-प्रभोजनीम्॥
शवानां कर-संघातैः कृत-काञ्चीं हसन्मुखीम्।

खड्ग-मुण्ड-धरां वामे दक्षे खर्पर-कर्तृके ॥

९ दीप्ता

मन्त्र—ॐ क्रीं हूं दीप्तायै सर्व-मन्त्र-फलदायै हूं फट्

स्वाहा ।

ध्यान-चतुर्भुजां त्रिनयनां मुण्ड-माला-विभूषिताम् ।
शव-पद्मे समासीनां पीनोन्नत-पयोधराम् ।
शवास्थि-कृत-केयूर-शङ्ख-कङ्कण-भूषिताम् ।
खड्ग-मुण्ड-धरां वामे सव्येऽभय-वर-प्रदाम् ॥

१० नीला

मन्त्र—हूं हूं क्रीं क्रीं ह्लीं ह्लीं हसबलमरी नीलपताके

हूं फट् ।

ध्यान-भयङ्कराकृति-धरां मुण्ड-माला-विभूषिताम् ।
रक्त-चञ्चल-नेत्राब्जां ललज्जिह्वां च भीषणाम् ।
शवोपरि-समासीनां नरमांसास्थि-भूषणाम ।
ध्यायेन्नीलां ज्ञान-दात्रीं सर्व-सिद्धि-प्रदायिनीम् ॥

११ घना

मन्त्र—ॐ क्लीं ॐ घनालये धनालये ह्लीं हूं फट् ।

ध्यान-चतुर्भुजां त्रिनयनां कृष्ण-वर्णां च भीषणाम् ।
सद्यः-कृतत-बाहूनां दधानां क्षुद्र-घण्टिकाम् ॥
हस्तेषु खेटकं खड्गं पाशं मुद्गरं तथा ।
धारयन्तीं घनां ध्यायेत् रक्ताप्लाविताधराम् ॥

१२ बलाका

मन्त्र—ॐ क्रीं ह्लीं बलाका-कालि अत्यद्भुत-पराक्रमे

अभीष्ट-सिद्धिं मे देहि हूं फट् स्वाहा ।

ध्यान-नित्यां बलाकां ध्याये त्रिनेत्रां श्मशान-वासिनीं ।
भीमाकृतिं श्याम-वर्णां दधानां हस्त-किंकिणीम् ।
विकीर्ण-केशैः राजन्तीं धारयन्तीं च बाहुषु ।
खड्गं मुण्डं दक्षे वामे चषकं मुद्रां-तर्जनीम् ॥

१३ मात्रा

मन्त्र—ॐ क्रीं ह्लीं हूं ऐं १० महामात्रे सिद्धिं मे देहि

सत्वरं हूं फट् स्वाहा ।

ध्यान-शव-वक्षसि भ्राजन्तीं भीषणाकार-धारिणीम् ।
त्रिनेत्रैः शोभितां दिव्यां चतुर्भिर्बाहुभिस्तथा ॥
कपालं कर्त्रिकां चैव तीक्ष्णं खड्गं शिरस्तथा ।
धारयन्तीं भजे मात्रां भक्ताभीष्ट-प्रदायिनीम् ॥

१४ मुद्रा

मन्त्र—ॐ क्रीं ह्लीं हूँ प्रीं फ्रें मुद्राम्बा मुद्रा-सिद्धिं मे देहि

भो जगन्मुद्रा-स्वरूपिणी हूं फट् स्वाहा ।

ध्यान-ध्यायामि मुद्रां नित्यां वै मुण्ड-माला-विभूषितां
रुधिरेणाधरौष्ठं च प्लावयन्तीं भयङ्करीम् ॥
चतुर्भुजैः कपालं वै छुरिकां खड्ग-खेटके ।
दधानां जयदां देवीं जनानामभय-प्रदाम् ॥

१५ मिता

मन्त्र—ॐ क्रीं हूँ ह्लीं ऐं मिते पारमिते पराक्रमाय ॐ

क्रीं हूं ह्लीं ऐं सोऽहं हूं फट् स्वाहा ।

ध्यान-भीमां विकीर्ण-केशां च ध्यायेन्नित्यां मितां शुभां ।
कृष्णां वर्णां रक्त-वस्त्रां शवासीनां भयानकाम ॥
मुण्ड-माला-धरां दिव्यां धारयन्तीं चतुर्भुजैः ।
चन्द्र-हासं मस्तकं च वरं चैवाभयं तथा ॥

सूचना—काली की १६ वीं महा-नित्या का मन्त्र व ध्यान अप्राप्त है ।

लाभदायक योजना

एकमात्र

'कौल-कल्पतरु' चण्डी के ग्राहक बन्धुओं के लिये !...

लगभग सोलह वर्ष पूर्व 'चण्डी' मासिक द्वारा दो अनूठे विशेषाङ्क—'सप्तशती-विशेषाङ्क' व 'शाक्त धर्म विशेषाङ्क' क्रमशः सम्वत् २०१३ व २०१४ वि० में प्रकाशित हुये थे।··· इन दोनों विशेषाङ्कों का मूल्य तीस रु० प्रति विशेषाङ्क है। आपको यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता होगी कि अति उपयोगी इन दोनों विशेषाङ्कों के मूल्य में 'चण्डी' के ग्राहकों के लिये ५०% की छूट दी गई है। परन्तु यह विशेष छूट एकमात्र उन ग्राहकों को सुलभ होगी, जो दोनों विशेषाङ्क एक साथ मंगायेंगे। यह छूट मात्र ३१ दिसम्बर १९७३ तक ही रहेगी। इच्छुक सज्जन कुल बत्तीस रु० (सह रजिस्ट्री व्यय) मनीआर्डर द्वारा निम्न पते पर भेजकर दोनों विशेषाङ्क प्राप्त कर सकते हैं। मनीआर्डर प्राप्त होते ही दोनों विशेषाङ्क रजिस्टर्ड डाक द्वारा भेज दिये जाएँगे। हमें विश्वास है कि 'कौल-कल्पतरु चण्डी' के ग्राहक बन्धु हमारी इस योजना से अवश्य लाभान्वित होंगे।

'सप्तशती-विशेषाङ्क' व 'शाक्त-धर्म-विशेषाङ्क' के प्रमुख विषयों की झाँकी इस प्रकार है—

—: सप्तशती विशेषांक :—

भगवती श्री दुर्गा की आरती—पूज्य-चरण गुप्तावतार बाबा श्री सोलेलाल जी महाराज
गुप्त सप्तशती
सप्तशती की उपासना का प्रकार—आचार्य परमानन्दन शास्त्री
चण्डी (सप्तशती) नवार्ण मन्त्र—पण्डित-प्रवर श्री हरिशास्त्री दाधीच
सप्तशती में वेदान्त—पं० श्रीकान्त बिहारी मिश्र
चण्डी (सप्तशती) रहस्य—'धर्मरञ्जन' डा० निमाईचन्द्र घोष
सार्ध नव-चण्डी प्रयोग—परम पूज्य श्री १००८ श्री स्वामी जी महाराज, दतिया
सप्तशती वा सप्तसती—'कौलानन्दनाथ' श्री प्रभातकुमार बनर्जी
चण्डी (सप्तशती) में द्वैत-अद्वैत का समन्वय—'कुलभास्कर' पं० गोविन्द शास्त्री दुगवेकर
सप्तशती में प्रपत्तिवाद—पं० रघुवीर मिश्र
श्री सप्तशती—श्री कृपानाथ सिंह
सप्तशती गीता—'कौल-कल्पतरु' श्री श्यामानन्दजी
सप्तशती में आध्यात्मिक साधना—श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती
सप्तशती का देवता—'विद्या-मार्तण्ड' श्री सी० बी० स्वामी शास्त्री
श्री दुर्गा सप्तशती—'कुल-सङ्घशेखर' श्री देवीप्रसाद घिल्डियाल
सप्तशती की कुछ विशेष बातें (धारावाहिक निबन्ध)—'कुलभूषण' श्री रमादत्त शुक्ल
बाबा श्री की मन्त्रात्मक सप्तशती—पं० श्री कन्हैयालाल र० दवे
सप्तशती का मनन—श्री पुण्यशील शर्मा
मा दुर्गा की कृपा—श्री राजेन्द्रलाल दास
श्री दुर्गा सप्तशती और शाप-मोचन (धारावाहिक निबन्ध)—पं० श्रीकान्त बिहारी मिश्र
महापूजा-विमर्श—'विद्या मार्तण्ड' श्री स्वामीशास्त्री
मूल सप्तशती—प्रेषक पं० लक्ष्मणदत्त शास्त्री
श्री बाला-गर्भित महाविद्या—श्री कन्हैयालाल र० दवे
श्री सप्तशती का प्रभाव—'विद्या-मार्तण्ड' श्री

सी॰ वी॰ स्वामी शास्त्री
दुर्गा सप्तशती पाठ की महिमा—श्री राजेन्द्रलाल दास विशारद
नवार्ण में ॐ के संयोग का विमर्श—पंडित प्रवर श्री हरिशास्त्री दाधीच
बाला त्रिपुरसुन्दरी का संग्राम-कौतुक—'कुल-भास्कर' पं॰ गोविन्द शास्त्री दुगवेकर
नवरात्रि-विधान—महन्त श्री १०८ स्वामी अक्षाभ्यानन्द जी सरस्वती
सप्तशती-साधना-यन्त्र में सरस्वती का स्थान—आचार्य श्री परमानन्दन शास्त्री
सशती—'कुल-मजगुरु पं॰ योगीन्द्रकृष्णदौर्गादत्ति शास्त्री
चण्डी—राजगुरु पं॰ श्री हरिदत्त शास्त्री
शक्ति की परम्परा में 'भगवती दुर्गा'—पं -मातृदत्त त्रिवेदी
शक्ति-योग दर्शन—स्वामी शिवानन्दजी महाराज
शक्ति-चालीसा—श्री रामअधीन श्रीवास्तव
सप्तशती में पाठ-भेद—श्री नेमधर शर्मा
श्री छिन्नमस्ता महाविद्या—परम पूज्य १००८ श्री स्वामी जी महाराज
श्री वल्लभेशोपनिषत्—डा॰ आर॰ बी॰ दवे

-: शाक्त-धर्म विशेषांक :-

विश्वेश्वरी महाशक्ति और उसके दस भाव—श्री हरकिशन ल॰ झवेरी
अष्टोत्तर शाक्त-तीर्थ
शाक्त-सिद्धान्त—'विद्यामार्तण्ड' श्री सी॰ वी॰ स्वामी शास्त्री
कुल-धर्मः सनातनः—विश्व-विजयी कुल-शिरोमणि' लेफ्टिनेण्ट जनरल श्री धन शम्शेर जङ्ग बहादुर राणा
शाक्तों का मातृ-नेह—पं॰ श्री ललन पांडेय
शक्ति—पं॰ ज्वालाप्रसाद तिवारी
शाक्त-धर्म (धारावाहिक निबन्ध)—पं॰ श्री कान्तविहारी मिश्र
शाक्त-दर्शन की परिचायिका 'दुर्गा सप्तशती' का आध्यात्मिक रहस्य—प्रथम साधन-सोपान—'कौल-कल्पतरु' श्री श्यामानन्द नाथ
शाक्त धर्म में बलिदान का महत्व-श्री राजेन्द्रलाल दास, विशारद
कवच का चमत्कार—'धर्म-रञ्जन' डा॰ निमाईचन्द्र घोष
माँ का स्वरूप-'कुलभास्कर' पं॰ गोविन्द शास्त्री दुगवेकर
कुण्डलिनी-मुख—श्री कन्हैयालाल र॰ दवे
त्रिशती की व्याख्या—'कुल-मार्तण्ड राजगुरु' पं॰ योगीन्द्र कृष्ण दौर्गादत्ति जी शास्त्री
ललाट पर सिन्दूर का भाव—श्री राजेन्द्रलाल दास, विशारद
शाक्त-धर्म के सम्बन्ध में—'चन्द्रशेखरावधूत' श्री माधवानन्द नाथ
शाक्तों को मातृ-स्नेह से लाभ-पं॰ श्री ललनपांडेय
शाक्त पथ—पं॰ कालीचरण पन्त
श्री कुण्डलिनी शक्ति—पं॰ श्रीकान्त बिहारी मिश्र
शक्तियोग दर्शन—स्वामी शिवानन्द जी महाराज
द्वितीय साधन-सोपान (शाक्त दर्शन की परिचायिका 'दुर्गा सप्तशती' का आध्यात्मिक रहस्य—धारावाहिक निबन्ध)—श्री श्यामानन्द नाथ
काली—ठा॰ मोहन सिंह जी
तन्त्रों का गोपनीय तत्व—कुँवर श्री जयसिंह जी
दैवी शक्ति की पहचान—पं॰ श्री ललन पांडेय
सनातनी दीक्षा का क्रम—'विश्व विजयी कुल-शिरोमणि' लेफ्टिनेण्ट जनरल श्री धनशम्शेर जङ्ग बहादुर राणा

आदि आदि

कृपया शीघ्रता करें, क्योंकि इन विशेषाङ्कों की मात्र कुछ प्रतियाँ ही शेष हैं।

पता—चण्डी कार्यालय अलोपी बाग; मार्ग प्रयाग—६

धार्मिक जगत की हलचल

१ श्री श्री सुन्दरी महालक्ष्मी देवी दुर्गा यज्ञ

गुजरात की भक्ति-निष्ठ जनता द्वारा शारदीय नवरात्र में उक्त यज्ञ का सङ्कल्प लेकर अनुष्ठान किया जा रहा है। इस सम्बन्ध में 'शिव-शक्ति-योगी' पूज्यश्री कृष्ण ब्रह्मचारीजी द्वारा प्रचारित एक विज्ञप्ति से ज्ञात होता है कि धर्म-प्राण गुजराती बन्धुओं ने उक्त यज्ञ नौ बार करने का निश्चय किया है। पहला यज्ञ अहमदाबाद अथवा किसी जिला नगर में होनेवाला है। यह यज्ञ "नव-कुण्डात्मक" होगा। इस सम्बंध में पूर्ण विवरण अगले अङ्क में प्रकाशित किया जायेगा।

२ जर्मनी में तान्त्रिक "कला" का प्रदर्शन

पिछले कुछ वर्षों में योरप, अमेरिका आदि विदेशी राष्ट्रों की जनता में 'तन्त्र-विद्या' की ओर विशेष रुचि जागृत हुई है। तन्त्र-शास्त्र में प्रतिपादित अध्यात्म-तत्व के सम्बंध में वहाँ व्यापक रूप से अनुसन्धान तो हो ही रहा है, साथ ही सर्व-साधारण जनता को उसका सामान्य ज्ञान कराने के उदेश्य से "तन्त्र" के 'कलात्मक पक्ष' को भी महत्व दिया जा रहा है। उदाहरण के लिए भारतीय कलाकार श्री अजीत मुकर्जी द्वारा प्रस्तुत तान्त्रिक चित्रों का प्रकाशन विदेशी प्रकाशकों ने इधर बड़े उत्साह से किया है। इन चित्रों की पहली प्रदर्शनी ग्रेट ब्रिटेन की आर्ट्‌स काउंसिल द्वारा हेवर्ड गैलरी में लन्दन में आयोजित की गई। ब्रिटिश दूरदर्शक (टेलीविजन) एवं आकाशवाणी (रेडियो) ने इस सम्बंध में विशेष कार्यक्रम प्रस्तुत किए। इसके बाद अभी हाल में पश्चिम जर्मनी की राजधानी पश्चिमी बर्लिन में वैदेशिक सम्बंध संस्थान (इंस्टीच्यूट आफ फारेन रिलेशंस) द्वारा दूसरी प्रदर्शनी आयोजित हुई है। ही प्रदर्शनी योरप के ज्यूरिच और वियना जैसे प्रमुख नगरों में भी तन्त्र के महत्व को प्रदर्शित करने के लिए स्वीकार की गई। श्री मुकर्जी की इन्हीं कलाकृतियो को दिल्ली के "तन्त्र-म्यूजियम" का मूलाधार बनाया गया है।

३ शाक्त-साधना—परा मनोविज्ञान का प्रेरणा-स्रोत

अन्तर्राष्ट्रीय परा मनोविज्ञान संस्थान के तत्वावधान में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में भारत का प्रतिनिधित्व करते हुए ख्याति-लब्ध मनोवैज्ञानिक तथा मनोविज्ञानशाला उत्तर प्रदेश के निदेशक डाक्टर जमुनाप्रसाद ने शाक्त-साधना की पृष्ठ-भूमि में परा मनोविज्ञान के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि—

"शाक्त-साधना परा मनोविज्ञान की प्रेरणा-भूमि है। अति प्राचीन शाक्त-साधना में परा मनोवैज्ञानिक तत्वों का विलक्षण समायोजन है। इस साधना के तांत्रिक रहस्यों में परा मनोविज्ञान का स्वरूप और महत्व स्पष्ट रूप से परिलक्षित है।"

अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में भाग लेने के बाद वापस आने पर डाक्टर प्रसाद ने बताया है कि—

"इलाहाबाद स्थित परा मनोविज्ञान संस्थान शाक्त-धर्म तथा उसमें व्याप्त तांत्रिक और परा मनोवैज्ञानिक रहस्यों पर शोध-कार्य करेगा। शाक्त-साधना को वैज्ञानिक आधार देने के लिए इसका व्यापक अध्ययन आवश्यक है, जिसके लिए शाक्त-धर्म के साधकों और विद्वानों का सहयोग अपेक्षित है।"

स्मरणीय है कि उक्त अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी विगत २८ अगस्त को आरम्भ हुई थी और ३० अगस्त तक चली थी। इस गोष्ठी में परा मनोविज्ञान और मानव विज्ञान के प्रख्यात विद्वानों और विचारकों ने परा मनोविज्ञान तथा मानव-विज्ञान के सापेक्ष्य संबंध और महत्व पर प्रकाश डाला।

४—नवचण्डी अम्बा-यज्ञ

कौल-साधक श्री वसन्तकुमार आचार्य, अध्यक्ष मध्य भारत शाक्त-सम्मेलन द्वारा शारदीय नवरात्र के पुण्य पर्व पर अपने गुरु-तुल्य श्री टी० भीमाचारी जी एवम् वैद्यराज पं० चन्द्रशेखर जी शास्त्री के मार्ग-दर्शन में माँ भगवती चामुण्डा की सप्तशती के सम्पुटित पाठ एवं नित्य-रात्रि श्री सूक्त, नवार्ण, बटुक, हनुमान जी व अन्य देवताओं की नौ दिन तक हवनात्मक आराधना की गई।

उप-साधक के रूप में श्री सत्यनारायण जी शर्मा, एम० ए०, मैजिशियन, मंत्री आल इण्डिया मैजिक सर्किल शाखा, इन्दौर एवं डा० श्री गुणवन्त राय शाह, लेक्चरार श्री रविशंकर शुक्ल, होमियो-पैथी कालेज, इन्दौर का पूर्ण सहयोग मिला।

नवमी की रात्रि में रात भर हवनादि होकर प्रातः विजयोत्सव-पर्व के साथ मां की आरती एवं प्रसाद-वितरण किया गया। कार्य-क्रम में माँ के सेवकों की उपस्थिति काफी अच्छी रही।

इस सारे कार्य-क्रम में प्रकाशचन्द्र जी शास्त्री, एडवोकेट, सदस्य मध्य भारत शाक्त सम्मेलन एवं श्री गोविन्दराव जी वारे का सहयोग सराहनीय रहा।

श्रद्धांजलि

मैं लगभग ५ वर्ष पूर्व ही पूज्यपाद कौल-सम्राट् श्री पन्त जी के सान्निध्य में अनायास ही आया। तब से प्रतिदिन पूज्यवर श्री पन्त जी का स्नेह मेरे प्रति बढ़ता ही गया। अपने पुत्रों से अधिक विश्वास मेरे प्रति उनका था। उन्होंने मुझसे कहा था कि शीघ्र ही वे 'वीर-भूमि' में 'वीरासन' पर आसीन होकर याम मात्र में ही श्री कुण्डलिनी-जागरण कर देंगे। एक बार साधन जुट भी गया था परन्तु उनकी अस्वस्थता से सम्पन्न नहीं हो सका।

पूज्यपाद श्री पन्त जी के प्रयास से ही मुझ पर प्रथम कृपा स्वामी नीलधारा, चण्डी-मन्दिर (कौल-धाम) के द्वारा हुई थी। तत्पश्चात् त्र्यक्षरी मुझे कानपुर से प्राप्त हुई। जब पूज्य पन्त जी थे, प्रति पल हर दुःख में उनकी कृपा रहती थी। मैं उनके गुण-गान अनेक जन्मों में भी नहीं कर सकता।

लगभग प्रतिदिन प्रसङ्गवश सभी पूज्य शाक्त जनों की ही चर्चा वे अपने श्रीमुख से किया करते थे। 'चण्डी' के प्रवर्तक पूज्यवर 'कौल-कल्पतरु' स्व० पण्डित देवीदत्त जी शुक्ल की प्रशंसा उन्हीं के मुख से सुनी थी और उनके मणिपुरवासी होने पर जो संस्मरण पन्त जी ने लिखाया, वह मेरी ही लेखनी से लिखा गया था। मुझे उस लेख की आरंभिक पंक्ति अभी भी याद है—'……स्मृति-पटल के पूर्व-पृष्ठों का सिंहावलोकन करने से……'

उक्त लेख में वैष्णव ग्रन्थ वाल्मीकि रामायण से उद्धरण देकर उन्होंने कितनी कुशलतापूर्वक सिद्ध किया था कि वैदिक काल में किस प्रकार शुद्धि-कारण का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ करता था।

पूज्य पन्त जी के शिवलोक-गमन के बाद अल्मोड़ा में मन नहीं लगा। उनके जाने से अल्मोड़ा मानों श्री-हीन हो गया। जब भी अल्मोड़ा जाता हूँ, पन्त जी की साधना-स्थली पर शिर नवाता हूँ। उनका पूजा-कक्ष तो जागृत पीठ ही है। अक्टूबर ७३ मास की २२ तारीख को उनका वार्षिक श्राद्ध हुआ।

इन टूटे-फूटे शब्द-पुष्पों से मैं उनकी पुण्य स्मृति में अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

ज्योतिष विधान

(गताङ्क पृष्ठ २६ का शेष)

चौदहवें स्कम्भ में उल्लिखित २७ योगों मे से ९ योग अशुभ हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—

१ वैधृति, २ व्य० पा०=व्यतीपात, ३ परिघ योग का पूर्वार्ध, ४ वज्र योग के आरम्भ की तीन घड़ियाँ, ५ गण्ड योग की छः घड़ियाँ, ६ अति= अतिगण्ड की नौ घड़ियाँ, ७ व्याघा=व्याघात की नौ घड़ियाँ, ८ शूल योग की पाँच घड़ियाँ और ९ विष्कुम्भ।

उक्त ९ योगों के अशुभ काल में कोई शुभ कार्य न करे। शेष १८ योग उत्तम हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१ सिद्धि, २ वरीयान, ३ शिव, ४ सिद्धि, ५ साध्य, ६ शूभ, ७ शुक्ल, ८ ब्रह्म, ९ ऐन्द्र, १० प्रीति, ११ आयु= आयुष्मान, १२ सौभा=सौभाग्य, १३ शोभन, १४ सुकर्मा, १५ धृति, १६ वृद्धि, १७ ध्रुव, १८ हर्षण।

ये सत्ताइस योग दोनों पक्षों की तिथियों में वितरित रहते हैं।

१५ वें १६ वें स्कम्भों में उक्त योगों का 'मान' देकर १७ वें स्कम्भ में योगों का काल बताया गया है और १८ वें १९ वें स्कम्भों में उनका 'समय' घण्टा-मिनट में बताया गया है।

२० वें और २१ वें स्कम्भ से 'करण' का ज्ञान होता है। 'करण' ११ प्रकार के हैं, जिनमें से प्रथम ६ 'करण' शुभ हैं। यथा—

१ बव, २ बा० = बालव, ३ कौ.=कौलव, ४ तै.= तैतिल, ५ ग.=गर, ६ व.=वणिज।

शेष ५ करण अशुभ हैं। यथा—

१ भ.=भद्रा (विष्टि), २ श.=शकुनि, ३ च.=चतुष्पद, ४ ना.=नाग, ५ कि=किस्तुघ्न।

२१, २२ और २४, २५ वें स्कम्भों से उक्त करणों का 'मान' ज्ञात होता है।

इस प्रकार पञ्चाङ्ग के २५ स्कम्भों का संक्षिप्त परिचय पाठक सहज ही हृदयङ्गम कर सकते हैं। 'योगों' और करणों के बिचार-सम्बन्ध में विशेष नियम आगे बताये जायँगे।

अब पञ्चाङ्ग के आगे के स्कम्भों में पुनः शीर्षक छप दृष्टिगत होते हैं। पहला शीर्षक है 'योगः।' ये वार-नक्ष योग हैं। इनके अन्तर्गत आनन्दादि २८ योगों का उल्ले मिलता है। यथा—

१ आनन्द, २ का. द.=काल दण्ड, ३ धूम्र, ४ धाता, ५ सौम्य (सुधाकर), ६ ध्वांक्ष, ७ ध्वज (केतु), ८ श्रीव.=

श्रीवत्स, ९ वज्र, १० मुद्गर, ११ छत्र, १२ मित्र, १३ मानस, १४ पद्म, १५ लुम्बक (लुम्ब), १६ उत्पात, १७ मृत्यु, १८ काण, १९ सिद्धि, २० शुभ, २१ अमृत, २२ मुसल, २३ गद (अन्तक), २४ मातङ्ग (कुञ्जर), २५ राक्षस, २६ चर, २७ स्थिर (सुस्थिर) और २८ प्र० मा० (प्रवर्द्धमान)।

इन 'योगों' से सम्बंधित दिवस का शुभाशुभ सहज ही ज्ञात हो जाता है। उक्त योगों के नाम से ही प्रकट है कि कौन योग शुभ है और कौन अशुभ। फिर भी पाठकों की सुविधा के लिए १३ अशुभ योगों के नाम नीचे दिए जाते हैं--

१ काल-दण्ड, २ धूम्र, ३ ध्वांक्ष, ४ वज्र, ५ मुद्गर, ६ लुम्बक, ७ उत्पात, ८ मृत्यु, ९ काण, १० मुसल, ११ गद, १२ राक्षस, १३ चर।

'योगः' शीर्षक के बाद क्रमशः चार प्रचलित सन्-सम्वत् की तिथियाँ दी गई हैं। यथा—अं०=अंग्रेजो अर्थात् ईस्वी सन्, फ०=फसली सन्, सायण और सौ.=सौर सम्वत्।

तारीखों के बाद चं०=चन्द्रमा की रा=राशि का प्र०=प्रवर्तन घटी-पल में बताया है। इसके आगे के चार स्कम्भों में क्रमशः सूर्योदय और सूर्यास्त का समय घण्टा-मिनट में सूचित किया गया है।

तदनन्तर 'औ. स्प. पू.' के अन्तर्गत काशी (वाराणसी) में सूर्योदय काल के अनुसार सूर्य का स्पष्ट दिया गया है। उसी के बाद 'क्रान्तिः' शीर्षक के अन्तर्गत सूर्य की क्रान्ति उ०=उत्तर, द०=दक्षिण के सङ्केत से बताई गई है।

अन्तिम स्कम्भ है 'रेल अं' का। इसके अन्तर्गत धन (+) या ऋण (—) चिन्हों को ध्यान में रखकर भारतीय स्टैण्डर्ड टाइम को सूर्य घड़ी के मान में परिणत किया जा सकता है। 'रेल अं' यदि धन (+) है, तो स्टैण्डर्ड टाइम में उसे घटाने से और यदि ऋण (—) है, तो उसे जोड़ देने से उसका घटी-पल–काशी का स्पष्ट मान निकल आएगा।

स्कम्भों की समाप्ति के बाद ऊपर के कोष्ठ में पहले तो मास और पक्ष का उल्लेख है। फिर भारतीय सायण शक सम्वत् तदनुसार अंग्रेजी सन् की पन्द्रह दिनों की अवधि का संकेत रहता है। इस स्कम्भ के नीचे प्रतिदिन के सामने उस दिन की विशेष बातें संस्कृत में दी जाती हैं। यथा—

सबसे पहले भ०=भद्रा, फिर चन्द्रमा किस राशि में है इसका निर्देश है। सूर्य का नक्षत्र और व्रतोपवास का उल्लेख कर विशेष योग यदि कोई है, तो उसे बताया जाता है। इन विशेष योगों के नाम निम्न प्रकार हैं--

१ सर्वार्थ-सिद्धि, २ अमृत-सिद्धि, ३ यम-घण्ट, ४ द्विपुष्कर, ५ त्रिपुष्कर, ६ रवि योग, ७ यायी-जय और स्थायी सन्धिकर योग।

यहाँ निम्न शब्द-संकेतों को ध्यान में रखना चाहिए—

दि०=दिन, रा०=रात्रि उ०=उपरान्त, या०=यावत्, या० दि०=यावत् दिवस (सारे दिन) (क्रमशः)

* * *

श्रद्धांजलि

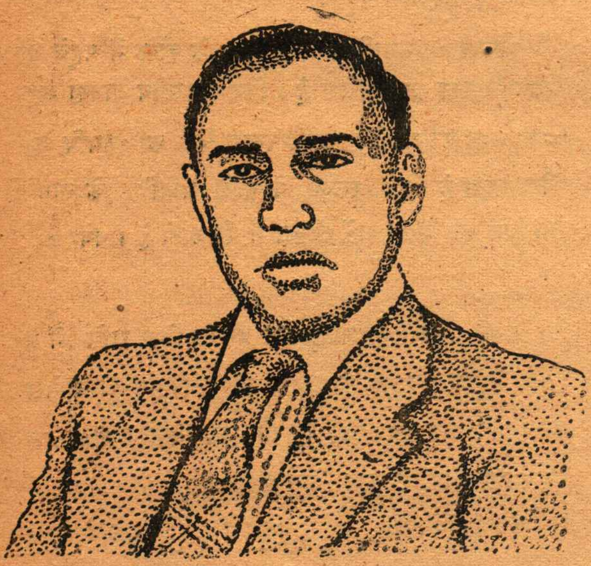

पण्डित कालीचरण पन्त

अल्मोड़ा के स्वर्गीय पण्डित कालीचरण जी पन्त वास्तव में "कौल-शिरोमणि" थे। स्वर्गीय महाराज आनन्द्रसिह जी से आपको वीर-मार्ग की साधना का क्रियात्मक प्रशिक्षण मिला था। फलतः आप उस सम्बन्ध में पूर्ण निष्णात थे। 'कौल-कल्पतरु' स्वर्गीय पण्डित देवीदत्त शुक्ल जी से आपका सम्पर्क उस समय अचानक ही हो गया था, जब आप प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्ययन कर रहे थे। इस सम्पर्क का रोचक वर्णन आपने स्वयं अपने 'पूज्यवर सुकुल जी' शीर्षक संस्मरणात्मक लेख में किया है। देखिए "चण्डी", वर्ष ३०, पृष्ठ ५८-६१।

"गोपनीयता" के सिद्धान्त के आप कट्टर अनुयायी थे। वार्तालाप में प्रायः आप वीर-मार्ग का उपहास-सा करते पाये जाते थे; मस्तक पर भस्म-विन्दु आदि आप कभी धारण नहीं करते थे और आंग्ल वेश-भूषा में अधिकतर लोगों को आपके दर्शन मिलते थे। अतएव आपके साधक-स्वरूप का ज्ञान उन्हीं व्यक्तियों को हो पाता था, जो आपके निकट सम्पर्क में पहुँच पाते थे। यही नहीं, निकट सम्पर्क के लोगों को भी आपकी वास्तबिक योग्यता का भान कठिनाई से ही हो पाता था, क्योंकि साधना की रहस्यात्मक बातों को आप सदैव "गोपनीयता" के आवरण में छिपाये रहते थे। मन्त्र-बीजों का उच्चारण आप कभी नहीं करते थे और यदि कोई कभी आपके समक्ष 'क्रीं', 'श्रीं', 'ह्रीं', आदि का उच्चारण कर देता था, तो आप तुरन्त ही अपने दोनों कानों में उँगली डाल लेते थे तथा उच्चारण करने को मना करते थे। जिन कतिपय व्यक्तियों को आपके अर्चन के देखने का अवसर मिलता था, वे प्रयत्न करने भी आपके पूजा-क्रम तथा आपके द्वारा बनाई जानेवाली मुद्राओं को समझ नहीं पाते थे; इतनी सावधानी के साथ आप "गोपनीयता" के नियम का पालन करते थे।

"कौल-कल्पतरु" पूज्य श्री शुक्ल जी के सम्पर्क के फल-स्वरूप आपके "गोपनीयता" के भाव में क्रमशः कमी आती गई। "चण्डी" का प्रकाशन सम्वत् १९९६ विक्रमी में प्रारम्भ होने पर आपने पहले तो उसमें 'कालिकानन्द' के कल्पित नाम से लेख लिखा, किन्तु बाद में आपने अपने वास्तविक नाम को छापने की अनुमति दे दी। यही नहीं, शाक्त-धर्म के प्रचार की "चण्डी" की भावना ने आपको इतना आकृष्ट किया कि आपने प्रति नवरात्र में अनेक इच्छुक व्यक्तियों को अपने खर्च से शाक्त-धर्म की दीक्षा दिलाने का नियम बना लिया। आप स्वयं तो दीक्षा देते नहीं थे, किन्तु बाहर से शाक्त आचार्यों को अल्मोड़

बुलाकर उनसे दीक्षा दिलाते थे। उदाहरण के लिए हमें स्मरण है; एक बार आपने मिथिला के प्रसिद्ध कौलाचार्य श्री श्यामानन्द नाथ को बड़े आदर के साथ अल्मोड़ा बुलाया था; उन्हें अपने पास से आने-जाने का द्वितीय श्रेणी का रेलवे किराया और पर्याप्त दक्षिणा प्रदान की थी। प्रायः स्वयं दीक्षा इसलिए नहीं देते थे, क्योंकि आप का कहना था कि आपके गुरुदेव ने उसके लिए आपको अनुमति नहीं दी थी, किन्तु जहां तक हम समझ पाए, आप वस्तुतः अपनी स्वाभाविक निःस्पृहता की भावना के वशीभूत होकर दीक्षा देने के कार्य से विरत रहे। अन्यथा नवदीक्षित व्यक्तियों के दीक्षा-दाता गुरुदेव तो अपने दूरस्थ स्थानों को पधार जाते थे; उनके मार्ग-दर्शन का कार्य व्यवहारतः आपको ही करना पड़ता था।

इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि इधर जीवन के अन्तिम वर्षों में आप और भी अधिक शाक्त-धर्म के प्रचार कार्य में तत्पर हो गए थे और आग्रह करके 'कौल-कल्पतरु' पूज्यश्री शुक्ल जी से आपने अनेक व्यक्तियों को दीक्षा-लाभ कराया। एक उद्भट व्यक्ति की दीक्षा के लिए तो आपको घोर परिश्रम करना पड़ा। अल्मोड़ा में अपने घर में अनिवार्य आवश्यकताएँ होने पर भी लोकोपकार की भावना से आप दूरस्थ नगरों में न केवल हफ्तों टिके रहे, अपितु दिन-रात परिश्रम कर उक्त महानुभाव को साधना का पूरा क्रम स्वयं सिखाया—अपने प्रत्यक्ष निर्देशन में पुरश्चरण तक सम्पन्न कराया !

अल्मोड़ा में तथा पर्वतीय क्षेत्रों में आप इतने गुप्त नहीं थे। इसके विपरीत आपके संबंध में प्रसिद्ध था कि आप विकट तान्त्रिक हैं किन्तु इस प्रसिद्धि के फलस्वरूप आपकी "गोपनीयता" में कोई व्याघात नहीं पहुँचा क्योंकि वहाँ के लोग आपकी तान्त्रिकता से आतङ्कित ही रहे और कदाचित् कोई भी आपकी साधना-प्रवणता का लाभ वहाँ नहीं उठा पाया। वैसे आप अधिकारी व्यक्तियों को साधना-मार्ग में दीक्षित कराने और उन्हें मार्ग-दर्शन करने-कराने में बहुत ही उदार थे।

आपकी उदारता का एक प्रमाण आपकी वह विज्ञप्ति है, जो आपने 'चण्डी' में शाक्त-सेमिनार के सम्बन्ध में छपवाई थी। आपने शाक्त-धर्म के जिज्ञासु साधकों का आवाहन अल्मोड़ा में किया था और वहाँ उनके ठहरने, खाने-पीने का भार स्वयं वहन करने का आश्वासन दिया था तथा उनकी साधना-सम्बंधी जिज्ञासाओं का समाधान करने का उत्तरदायित्व स्वीकार किया था। साधकों को केवल अपने निवास-स्थान से अल्मोड़ा तक आने-जाने का व्यय वहन करना था। किन्तु यह शाक्तों का अति दुर्भाग्य ही माना जायेगा कि उन्होंने उक्त अभूतपूर्व आवाहन की ओर ध्यान तक नहीं दिया !

पूज्य श्री पन्त जी हरद्वार के 'कौल-धाम' के प्रमुख एवं सक्रिय ट्रस्टी भी थे। यह 'कौल-धाम' वीर साधकों के लिए परम तीर्थ के समान है। पहले पहल पन्त जी द्वारा ही इस तीर्थ का स्पष्ट परिचय उनके द्वारा लिखित 'कौल-धाम' शीर्षक लेख (देखिए 'चण्डी' वैशाख २०२१ पृष्ठ ३६) से प्रकाश में आया। उसी वर्ष भाद्रपद के अङ्क में पुनः 'कौल-धाम' के महत्व को हृदयङ्गम कराने के लिए उन्हीं के द्वारा लिखित एक टिप्पणी भी सम्पादकीय स्तम्भ में 'कौल-धर्म का परिचय' शीर्षक से प्रकाशित की गई।

कौल-सिद्धान्तों के अनुधावन में आपकी दृढ़ता निरन्तर अनुकरणीय बनी रही। इस सम्बंध में एक प्रसंग का यहाँ उल्लेख करना उचित ही होगा। तीर्थराज प्रयाग के संगम क्षेत्र में 'शाक्त-सम्मेलन' का आयोजन यहाँ के प्रसिद्ध तीर्थ-पुरोहित श्री पण्डित नारायणप्रसाद शर्मा द्वारा किया गया। माघ-मेले के मैदान में विशाल तम्बू कनात आदि स्थापित हो गए। भव्य नाम-पट्ट (साइन बोर्ड) और उद्घोषकों (लाउड स्पीकर) तथा विद्युत्-प्रकाश की आकर्षक व्यवस्था की गई। 'तांत्रिक-प्रदर्शनी' और 'शाक्त धर्म पर प्रवचन'—आकर्षण के विशेष विषय थे, इस सबके साथ ही 'शतचण्डी यज्ञ' के विराट् आयोजन का भी प्रयास था। इस सबको आशीर्वाद प्राप्त था एक वीतराग सिद्ध संन्यासी महात्मा का। साथ ही अनेक महन्तों और तीर्थ-पुरोहितों तथा पण्डितों का हार्दिक सहयोग अलग सुलभ था। प्रतीत होता था कि 'शाक्त-सम्मेलन' वास्तव में अस्तित्व में आकर सक्रिय हो उठा है। किन्तु पूज्य श्री पन्त जी को जब यह ज्ञात हुआ कि 'शतचण्डी-यज्ञ' में छाग-बलि का प्रावधान नहीं है, तो आपने समस्त आयोजन से अपने को विलग कर लिया। आपको समझाने-बुझाने, मनाने के सभी उपाय

निष्फल गए। आपने दृढ़तापूर्वक कहा कि—'छाग-बलि से रहित शतचण्डी का परिणाम कभी कल्याणकारी नहीं हो सकता और कम-से कम मैं इस अशास्त्रीय आयोजन में भाग नहीं ले सकता' और सचमुच ही पूज्य श्री पन्त जी का यह कथन सत्य प्रमाणित हुआ। उक्त सारा आयोजन जैसे-तैसे ही चला और 'शाक्त-सम्मेलन' पुनः निष्क्रियता के अन्धकार में लुप्त हो गया।

पूज्य श्री पन्त जी कौल-सत्संग में विशेष रुचि रखते थे। कितने ही कौल महात्माओं, साधकों की जीवन-कथा से आप अन्तरंग रूप से परिचित थे। हमारे अनुरोध से आपने इन कथाओं को लिपि-बद्ध करना प्रारम्भ किया और ऐसे अनेक जीवन-चरित प्रकाश में आए, जिनसे जिज्ञासु साधकों को प्रोत्साहन मिल सकता है। खेद है कि परिस्थितियों-वश यह लेख-प्रकाशन का कार्य पूर्ण रूप से नहीं हो सका।

पटना की प्रख्यात पूज्या श्री १००८ श्री माई जी उधर प्रति वर्ष प्रयाग पधारा करती थीं। एक-दो-बार ऐसा संयोग हुआ कि पूज्य श्री पन्त जी भी यहाँ उपस्थित थे। आपने तुरन्त ही जाकर पूज्या श्री माई के दर्शन किये। पूज्या श्री माई जी आपको देखकर अति प्रसन्न हुईं। आपने अपने श्री मुख से अनेक बार यह प्रतिपादित किया कि 'पन्त जी वास्तव में एक उच्च कोटि के साधक हैं और इनकी कुण्डलिनी जाग्रत है।'

काशी में सम्वत् २०२२ में तत्कालीन राज्यपाल श्री विश्वनाथ दास की प्रेरणा से जब 'तांत्रिक सम्मेलन' का अभूतपूर्व आयोजन किया गया, तब उसकी दर्शन-गोष्ठी में भाग लेने के लिए पूज्य श्री पन्त जी को सादर आमन्त्रित किया गया था और आपने उसके लिए शाक्त दर्शन पर जो सूत्रात्मक निबन्ध अल्प समय में ही प्रस्तुत किया, उसे सुनकर सम्मेलन में उपस्थित दिग्गज दार्शनिक भी मुग्ध हो उठे थे। बाद में उस निबन्ध को आपने कल्याण मन्दिर को प्रकाशनार्थ अर्पित कर दिया। आपकी उक्त अनूठी कृति आपकी विद्वत्ता की आज भी कीर्ति-पताका फहरा रही है। 'तांत्रिक सम्मेलन' के सूत्रधार महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ जी कविराज से भी आपका उसी समय पहले पहल साक्षात्कार हुआ था और आपकी कौल-धर्म की मर्मज्ञता से वे अत्यधिक प्रभावित हुये थे।

तन्त्र-दर्शन में तो आप पारङ्गत थे ही, तांत्रिक कर्म-काण्ड में भी आप सिद्धहस्त थे। प्रयाग में आप अपनी सहज दयालुतावश एक संकट-ग्रस्त न्यायाधीश के प्रति दयार्द्र हो उठे और उनके कल्याणार्थ एक अनुष्ठान का सङ्कल्प कर बैठे। उस समय हमें उनके क्रिया-कौशल को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। देखते-ही-देखते केवल एक अर्घे और तश्तरी के सहारे आपने हवन-वेदी पर एक कलापूर्ण जटिल यन्त्र की रचना कर डाली और उस यन्त्र के विविध कोष्ठ-प्रकोष्ठों को चित्र-विचित्र रङ्गों से भरकर हम लोगों का आश्चर्य में डाल दिया। केवल कुछ ही घण्टों के उस अनुष्ठान के फलस्वरूप कालान्तर में उक्त न्यायाधीश महोदय की अभीष्ट-सिद्धि भी हो गई।

पूज्य श्री पन्त जी ऐसे ही साधना-सिद्ध, परोपकारी, निःस्पृह, धर्मप्राण कौल साधक थे। आपके तपोपूत जीवन का पूर्ण वर्णन वस्तुतः गम्भीर अनुसन्धान का विषय है। हमारा जैसा अल्पज्ञ इस कार्य में सर्वथा असमर्थ है। यहाँ टूटे-फूटे शब्दों में जो बाल-प्रयास आपकी विशेषताओं को व्यक्त करने के लिए किया गया है, उससे आपके दिव्य स्वरूप की एक झाँकी भी प्रस्तुत नहीं होती। फिर भी एक अल्पज्ञ भक्त की हार्दिक श्रद्धाञ्जलि के रूप में यदि पाठक बन्धुओं ने इस पर किञ्चित् भी विचार किया और कुछ भी प्रेरणा प्राप्त की, तो लेखक अपने को कृतार्थ मानेगा। नमो नमः 'कौल-शिरोमणि-श्रीकाली चरण-पादुकाभ्यां।

१—'श्रीपीताम्बरा पीठ' में जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य

गताङ्क के 'धार्मिक जगत् की हलचल' स्तम्भ में उक्त शीर्षक से एक समाचार छपा है । साथ ही तत्सम्बन्धी दो चित्र भी प्रकाशित हुए हैं, जिनमें से प्रथम चित्र में कामकोटि-पीठ के जगद्गुरु का पूर्ण कुम्भ से 'स्वागत' का पूर्ण विवरण 'श्री पीताम्बरा पीठ परिषद्' से हमें अब प्राप्त हुआ है, जो निम्न प्रकार है—

जगद्गुरु श्री १००८ श्री शङ्कराचार्य श्री स्वामी जयेन्द्र सरस्वती जी महाराज दतिया (म० प्र०) के सर्किट हाउस में ठहरे थे । आपको वहाँ से लाने के लिए 'श्री पीताम्बरा पीठ' की ओर से श्री वृजनन्दन जी शास्त्री एवं श्री ललिताप्रसाद जी शास्त्री तथा श्री विष्णुकान्त जी गए और आपके आगमन पर 'पीठ' के शास्त्रि-वर्ग ने आपका स्वागत किया । स्वागत-भाषण संस्कृत में श्री वृजनन्दन जी शास्त्री ने पढ़ा था ।

इस प्रकार श्री जगद्गुरु जी का स्वागत यथोचित रूप से 'श्री पीताम्बरा-पीठ' में पीठ के प्रतिनिधि शास्त्रियों द्वारा सम्पन्न हुआ था । आशा है कि पाठक इस विवरण से उक्त समाचार को सही रूप में हृदयंगम कर सकेंगे ।

२—'चण्डी' का त्रैमासिक प्रकाशन

'कौल-कल्पतरु' चण्डी का प्रकाशन इस वर्ष त्रैमासिक-रूप में प्रारम्भ किया गया । यह उसका तीसरा त्रैमासिक अङ्क है । शाक्त-साहित्य के प्रेमियों ने 'चण्डी' का स्वागत सोत्साह किया है और उनका आग्रह है कि इसे पूर्ववत् मासिक-रूप में ही प्रकाशित किया जाय । हम भी उनसे सहमत हैं किन्तु जबतक ग्राहकों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि नहीं होती है, तब तक दिन-प्रतिदिन वर्द्धमान मँहगाई के इस युग में वैसा करना सम्भव नहीं प्रतीत होता ।

यह सच है कि दो-तीन बन्धुओं ने 'चण्डी' के ग्राहकों की संख्या बढ़ाने में विशेष प्रयास किया है, किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि सभी प्रेमी पाठक ऐसा प्रयत्न करें कि उनके परिचय के अधिक-से-अधिक लोग अपने विषय की इस एकमात्र अनूठी पत्रिका के ग्राहक बनें और इससे लाभ उठावें । जैसे ही ग्राहकों की संख्या एक सहस्र तक पहुंचेगी, वैसे ही "कौल-कल्पतरु" चण्डी का प्रकाशन मासिक-रूप में होने लगेगा । आशा है कि जो बन्धु 'चण्डी' को प्रति मास प्राप्त करना चाहते हैं, वे अपने पत्रिका की उक्त आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए कृपया अधिकाधिक सचेष्ट होने का कष्ट करेंगे ।

३—स्वर्गीय पन्त जी को श्रद्धाञ्जलि

'कौल-शिरोमणि' स्वर्गीय पण्डित कालीचरण पन्त जी की पुण्य स्मृति में 'कौल-कल्पतरु' चण्डी का एक 'श्रद्धाञ्जलि-विशेषाङ्क' ही हम प्रकाशित करना चाहते थे । इस सम्बन्ध में हमें अनेक उपयोगी लेख भी प्राप्त हो गए और स्वर्गीय पन्त जी का एक दुर्लभ चित्र भी मिल गया किन्तु अचानक ही कागज आदि के मूल्य में अत्यधिक वृद्धि हो जाने के कारण उस सबका उपयोग करने में हम असमर्थ रहे, इसका हमें दुःख है । जिन महानुभावों के लेखादि प्रकाशित नहीं हुए हैं, वे परिस्थिति को समझ कर कृपया हमें क्षमा करेंगे । सम्भव हुआ, तो उनका प्रकाशन अगले अङ्क में किया जायेगा ।

४—स्व० पन्त जी का कौल श्राद्ध

शारदीय नवरात्र की समाप्ति के तुरन्त बाद ही पूज्य श्री पण्डित पूर्णानन्द जी मैठाणी के सत्प्रयास से 'कौल-शिरोमणि' स्व० पण्डित कालीचरण जी पन्त का "कौल-श्राद्ध" विन्ध्याचल के पवित्र धाम में भैरव-कुण्ड के आचार्य-प्रवर पूज्य श्री यमुनाप्रसाद जी ब्रह्मचारी की छत्र-छाया में विधिवत् सम्पन्न हुआ

इस महत्कार्य में विन्ध्याचल-धाम के साधक-प्रवर श्री बटुकनाथ जी ने तथा तीर्थराज प्रयाग के 'कुलभूषण' पं० रमादत्त शुक्ल, एम० ए० ने अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया। 'कुलमार्तण्ड राजगुरु' स्व० पं० योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति जी शास्त्री के ग्रन्थ 'साधना-रहस्य' (मूल्य १५.००) में प्रकाशित 'कौल-श्राद्ध' शीर्षक लेख एवं 'कौल-श्राद्ध-विधि' नामक एक हस्तलिखित पद्धति के अनुसार उक्त संस्कार किया गया।

प्रकाशित हो गया!

परम पूज्य 'राष्ट्रगुरु' श्री १००८ श्री स्वामी जी महाराज

द्वारा उद्घाटित एवम् षोडशाङ्गों से युक्त

तांत्रिक पंचांग

[श्री-कुल एवम् काली-कुल उभय-विध साधकों के लिए उपयोगी]

ढं बुद्धि तत्व पञ्चदश वर्ष

अधिक मार्गशीर्ष शुक्ल १५ संवत् २०३० से ज्येष्ठ शुक्ल १३ संवत् २०३२
तदनुसार
१० दिसम्बर १९७३ से ८ जुलाई १९७५ तक

* * *

मूल्य—४-००

पं० देवीदत्त शुक्ल स्मारक
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
प्रयाग—६

श्रीदशभुजा-दुर्गा-ध्यानम्

ॐ जटा-जूट-समायुक्ताम् अर्धेन्दु-कृत-शेखराम् ।
लोचन-त्रय-संयुक्तां पूर्णेन्दु-सदृशाननाम् ॥
तप्त-काञ्चन-वर्णाभां सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम् ।
नव-यौवन-सम्पन्नां सर्वाभरण-भूषिताम् ॥
सुचारु-दशनां तीक्ष्णां पीनोन्नत-पयोधराम् ।
त्रिभङ्ग-स्थान-संस्थानां महिषासुर-मर्दिनीम् ॥
मृणालायत-संस्पर्श-दश-बाहु-समन्विताम् ।
त्रिशूलं दक्षिणे ध्येयं खड्गं चक्रं क्रमादधः ॥
तीक्ष्ण-वाणं तथा शक्तिं बाहु-सङ्गे सुसङ्गतम् ।
खेटकं पूर्ण-चापं च पाशमङ्कुशमूर्ध्वकः ॥
घण्टां वा परशुं वाऽपि वामेऽधः प्रतियोजयेत् ।
अधःस्थं महिषं तद्-वत् विशीर्षकं प्रदर्शयेत् ॥
शिरश्छेदोद्भवम् तद्वद्-दानवं खड्ग-पाणिकम् ।
हृदि शूलेन निर्भिन्नं निर्यदन्त्र-विभूषितम् ॥
रक्त-रक्तीकृताङ्गश्च रक्त-विस्फुरितेक्षणम् ।
वेष्टितं नाग-पाशेन भृकुटी-भीषणाननम् ॥
सपाश-वाम-हस्तेन धृत-पाशं च दुर्गया ।
वमद्-रुधिर-वक्त्रं च देव्याः सिंहं प्रदर्शयेत् ॥
देव्यास्तु दक्षिणं पादं समं सिंहोपरि-स्थितम् ।
किञ्चिदूर्ध्वं तथा वाममङ्गुष्ठं महिषोपरि ॥
स्तूयमानं च तद्-रूपममरैः सन्निवेशयेत् ।
उग्र-चण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्ड-नायिका ॥
चण्डा चण्ड-वती चैव चण्ड-रूपा च चण्डिका ।
अष्टाभिः शक्तिभिस्ताभिः सततं परिवेष्टिताम् ॥
चिन्तयेज्जगतां धात्रीम् धर्म-कामार्थ-मोक्षदाम् ।

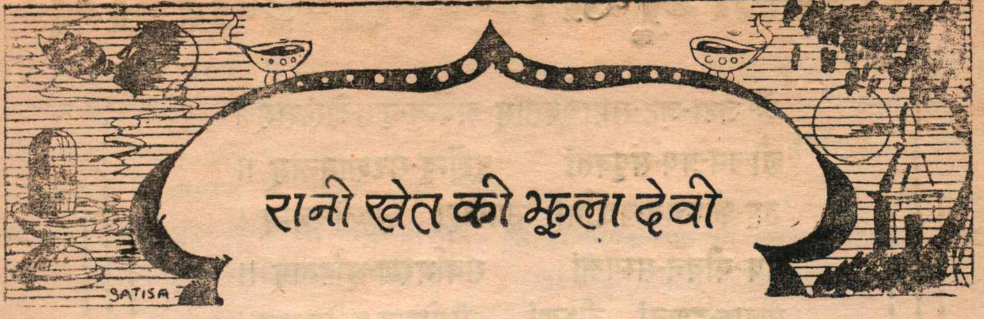

रानी खेत की झूला देवी

पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले ।
रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राण-कारणात् ॥
(श्री दुर्गा सप्तशती ११-५०)

जगन्माता दुर्गा जी को हिमालय की पर्वत-शृङ्खलाएं विशेष प्यारी थीं। उन्होंने अपने निवास-स्थान प्राय: पर्वतों की चोटियों पर ही बनाये। जगदम्बा की पूजा भी पर्वत-चोटियों पर अनेक स्थापित मन्दिरों में आदि काल से ही होती रही है। यथा—

इति कृत्वा मतिं देवा हिमवन्तं नगेश्वरम् ।
जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः ॥
(श्री दुर्गा सप्तशती ५-७)

भारतवर्ष के उत्तराखण्ड में देवी के अनेक मन्दिरों की स्थापना हुई है। इन मन्दिरों की शृङ्खला पुण्यगिरि से प्रारम्भ होकर नन्दादेवी (नन्दाकोट) तक चली गयी है। अनेक मन्दिरों में साल-साल भर या अन्य त्योहारों में मेले लगते हैं। उत्तराखण्ड के दक्षिणी छोर में मैदानी भाग पड़ते हैं, जिनसे रेलवे-यात्रा आरम्भ होती है। इनमें पूर्व से पश्चिम की ओर टनकपुर, काठगोदाम, कोटद्वार, हरिद्वार तथा देहरादून मुख्य हैं।

झूलादेवी का पुनीत स्थान उत्तर-पूर्व रेलवे के काठगोदाम स्टेशन से ८० कि०मी० उत्तर-पश्चिम की ओर स्थित है। काठगोदाम से रोडवेज की बसें प्रातः ६ बजे से सायं ४ बजे तक रानीखेत के लिए मिलती हैं। काठगोदाम से रानीखेत तक डामर की सर्पिणी आकार की सड़क पर सैकड़ों नाले और कल-कल निनाद करती जल-धाराएँ दिखाई देती हैं। सड़क के दोनों ओर चीड़, देवदारु, बाँज के सदाबहार ऊँचे-ऊँचे वृक्ष अनेकानेक पुष्पाच्छादित लताएँ किसी भी पथिक का मन मोह लेती हैं। रानीबाग, भीमताल होती हुई पहाड़ की "डब्बा"-नुमा बसें 'गरम पानी' नामक स्थान पर पहुंच कर विश्राम करती हैं, जहाँ इनके दहकते ईंजनों को पानी डाल कर ठण्डा किया जाता है। इनके साथ ही यात्री भी यहाँ रुक कर भोजन आदि ग्रहण करते हैं। प्रातः ६ बजे से चला यात्री हो या सायं ४ बजे का, गरम पानी की चाय, रायता, आलू के गुटके (दमालू) और दोपहर का खाना छोड़ नहीं सकता। गरम पानी का स्वच्छ और सस्ता खाना आज भी हजारों सैलानियों की क्षुधा को तृप्त करता है।

यहाँ पाठकों का परिचय पहाड़ की इन मोटर-सड़कों से भी करा देना उचित है। ये मोटर-सड़कें तंग, कदम-कदम पर घुमावदार होती हैं; ऊपर को देखें, तो तुङ्ग पर्वत-शिखर और नीचे देखें, तो गहरी खाइं नजर आती है। किसी नये यात्री का तो कलेजा मुंह में आ जाता है, जब मोटर स्पीड के साथ एक मोड़ से दूसरे मोड़ पर पहुंच जाती है! इन मोटरों के ठिगने ड्राइवर अपनी कला का परिचय उसी प्रकार देते हैं, जिस प्रकार एक नट। वैसे देखा जाय, तो यह कटु सत्य ही है कि क्षण भर की लापरवाही पूर्ण बस के यात्रियों को मौत की गोद में सुला सकती है।

'गरम पानी' से लगभग डेढ़ घण्टे में बस रानीखेत पहुंच जाती है। रानीखेत से चौबटिया गार्डन के लिए सिटी बसें चलती हैं। झूलादेवी का मन्दिर रानीखेत से चार मील दूर चौबटिया गार्डन के रास्ते में ही स्थित है। मन्दिर की स्थापना आदि काल की है। इसका निर्माण चौकोर कटे पत्थरों से किया गया है। इसके पास छोटी-छोटी धर्म-शालाएँ भी हैं, जिनमें पथिक विश्राम करते हैं अथवा साधु-संन्यासियों का निवास रहता है। साधु-संन्यासियों का जीवन इस रमणीक स्थान पर ही समाप्त हो स्वर्ग की प्राप्ति करता है।

सती जी के देह-त्याग के उपरान्त उनका पुनर्जन्म शैलराज हिमालय के यहाँ हुआ। शैलराज स्वयं तो पार्व

जी की बहुत प्रेम करते ही थे, राज-रानी मैना भी उन्हें प्राणों से भी अधिक प्यार करती थीं। मैना जी तथा शैलराज हिमालय अपनी एकमात्र सन्तान अपर्णा जी को भ्रमणार्थ कूर्मांचल तथा बद्री-केदार के अनेक परम पुनीत स्थलों में ले जाया करते थे। कहा जाता है, अपर्णा जी को नन्दा नामक हिम-शृङ्ग पर बैठना बहुत पसन्द था। उनकी इच्छानुसार शैलराज सदा प्रबन्ध कर देते थे।

इसी प्रकार कूर्मांचल के पश्चिमी भाग में एक रमणीक क्षेत्र स्थित है, जिसे आजकल रानीखेत के नाम से जाना जाता है। पर्यटकों का यह एक आकर्षक केन्द्र है। समुद्र तल से इसकी ऊंचाई ६,५०० कि॰मी॰ है। इसी स्थल मे एक बार भ्रमण करते करते शैलराज व मैना जी पहुंच गयीं। साथ में अपर्णा जी भी थीं। इस अवसर पर अपर्णा जी के बालिकोचित आग्रह पर एक पेड़ में झूला बाँधा गया, जिसमें अपर्णा जी को बैठा कर झुलाया गया।

शैलराज एवं मैना जी तो अपनी लाड़ली अपर्णा जी को घूमते-घुमाते अन्यत्र ले गये, किन्तु भक्त-गणों ने उक्त स्थान पर एक मन्दिर बनाने का निश्चय कर लिया। किंवदन्ती है कि जब मन्दिर बन रहा था, तो एक प्रमुख कार्य-कर्त्ता को यह स्वप्न हुआ कि जब मन्दिर बन जाय, तब देवी जी की स्थापना झूले पर ही की जाय। स्वप्न के अनुसार देवी की स्थापना मन्दिर के अन्दर झूला टाँग कर झूले पर कर दी गयी। तभी से यह स्थान "झूला देवी" के नाम से प्रसिद्ध हुआ और समय के साथ-साथ इसकी ख्याति चारों ओर फैलती गयी।

झूला देवी का उक्त मन्दिर आज भी रानीखेत के पश्चिमांचल में स्थित है। इसका प्राकृतिक सौन्दर्य सर्वत: व्याप्त है। प्रतीत होता है कि जगदम्बा के अनन्य भक्त हो देवदारु की ऊँची ऊँची वृक्षावलियों के रूप में अचल प्रहरी बन कर सदा-सदा से माँ जगदम्बा के अनवरत ध्यान में लीन हैं। स्वच्छ, धवल चाँदनी के प्रकाश को छान-छान कर वे माँ को अर्पित करते रहते हैं तथा शीतल मन्द वायु से आह्लादित होकर माँ के मन्दिर को चित्रित करते रहते हैं। उत्तर तथा पूर्व दिशा में स्थित गिरिराज हिमालय मानों अपनी प्राण-प्रिय बेटी अपर्णा को दृष्टि से ओझल नहीं होने देते हैं। कोई भी पर्यटक उस नैसर्गिक छवि से मुग्ध हुए बिना नहीं रहता। फिर माँ के भक्तों का क्या कहना। वे तो वहाँ परमानन्द की अनुभूति प्राप्त कर अपने को धन्य-धन्य समझते हैं।

जगज्जननी झूला देवी के दर्शन मात्र से लौकिक इच्छाएं बराबर पूरी होती रही हैं। इसके दृष्टान्त प्रायः देखने को मिलते रहते हैं। भक्त साधकों को इष्ट की सिद्धि प्राप्त होने में देर नहीं लगती। सत्यलोक-वासी मोहन बाबा यहाँ के सिद्ध पुरुष हो गये हैं। वे मन्दिर के प्राङ्गण में नृत्य करते-करते भाव-विभोर हो अश्रु-धाराओं से ओत-प्रोत हो जाते थे। दर्शक उन्हें देख कर मन्त्र-मुग्ध हो जाते थे और नास्तिक भी बलात् देवी जी की मूर्ति के प्रति श्रद्धावनत हो जाते थे। उस काल में यद्यपि रानीखेत गोरा-फौज का केन्द्र था, लेकिन मन्दिर के सम्मान के प्रति किसी प्रकार की हीन भावना का प्रदर्शन करने का साहस कभी किसी को नहीं हुआ।

झूला देवी के समीपवर्ती अंचलों में सेव के फलों से लदी सहस्रों पेड़ों की पंक्तियाँ मानो देवी जी के वरदान का साक्षात्कार कराती हैं। फल के इन उद्यानों में 'चौबटिया' उद्यान सर्वश्रेष्ठ है। इस उद्यान का रख-रखाव उत्तर-प्रदेश सरकार करती है। स्व॰ नेहरू जी को यह स्थान बहुत पसन्द था। इसलिए वे अपने जीवन-काल में कई बार यहाँ विश्राम के लिये रुके थे। अन्य भी अनेक महान् पुरुष यहाँ प्रति वर्ष आए और आज भी आते रहते हैं।

पर्यटकों को यहाँ ईश्वर-प्रदत्त प्राकृतिक छटा के अतिरिक्त अन्य सुविधाएँ प्राप्त नहीं हैं। फिर भी दर्शनार्थियों की भीड़ यहाँ बराबर दूर-दूर से आती रहती है। यह माँ झूला देवी के ही दिव्य आकर्षण का सुपरिणाम है।

समीपवर्ती स्थल में पहाड़ की एक गुफा के अन्दर पवन-सुत हनुमान जी का भी एक मन्दिर है। यह "हनुमान-गुफा" के नाम से विख्यात है। माँ की सेवा से पवन-सुत अपने को वंचित क्यों रखते! आवास के अभाव में मानों उन्होंने एक गुफा में ही आसन लगा लिया और माँ की भक्ति में लीन हो गये।

माँ झूला देवी के विधि-पूर्वक अर्चन से मनोवांछित वस्तुओं की प्राप्ति तो होती ही है, साथ ही अनुष्ठान

आदि से असाध्य रोगों का निवारण तथा यश के प्रतिठानों की प्राप्ति भी होती है। विधान-सभा के अनेक भक्त सदस्यों ने यहाँ अनेक बार अनुष्ठान करवाये हैं और उन्हें तत्काल वांछित फल की प्राप्ति हुई है। अनेक नवयुवकों ने यहाँ पूजा कर जीविकोपार्जन के उच्च पद प्राप्त किये हैं।

विज्ञ उपासकों का मत है कि झूला भगवती का विग्रह बड़े-बड़े गूढ़ साधन-रहस्यों से परिपूर्ण है; कर्म, भक्ति और ज्ञान की त्रिवेणी है, जो भक्तों के लिए वांछा-कल्पतरु है। इसके सकाम उपासक मनोभिलषित वस्तु को सहज ही में प्राप्त कर लेते हैं तथा प्रेमी उपासक मां के सान्निध्य की दुर्लभ स्थिति को प्राप्त होते हैं।

नया प्रकाशन

क्रम-दीक्षा-पूर्वक पूर्णाभिषेक पति

शाक्त-साधना में 'क्रमदीक्षा' की महिमा सर्व-मान्य रही है, किन्तु 'क्रमदीक्षा' की पद्धति क्या है, यह एक अति गोपनीय विषय रहा है। कुछ विद्वान् साधकों ने इस विषय पर 'चण्डी' पत्रिका में प्रकाश डाला है, किन्तु उससे उसकी जटिलता में वृद्धि ही होती है। 'कल्याण मन्दिर' द्वारा प्रकाशित 'साधना-रहस्य' (मूल्य १५ रु०) के पृष्ठ १० से २३ तक के लगभग १५ पृष्ठों में क्रम-दीक्षा के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण दिया गया है, जिसमें षडाम्नाय के अनुसार क्रमदीक्षा के बारह प्रकारों का वर्णन किया गया है। इस वर्णन से क्रमदीक्षा का महत्व तो स्पष्ट होता है, परन्तु क्रमदीक्षा की व्यावहारिक पद्धति का उद्घाटन नहीं होता।

'कौल-कल्पतरु' स्व० पण्डित देवीदत्त शुक्ल ने गोपनीयता के अवांच्छनीय आवरण के हटाने के अपने दीर्घ-कालान सफल प्रयास को अन्निम भूमिका के रूप में 'क्रमदीक्षा' के बोधगम्य स्वरूप को उद्घाटित करने की कृपा की। २० मई १९७१ को अपने मणिपुर-प्रस्थान के कुछ ही मास पूर्व 'क्रमदीक्षा-पूर्वक पूर्णाभिषेक' की यह पद्धति प्रकाशित करने की असीम उदारतापूर्ण अनुमति आपने दी थी और इसका अधिकांश आपके समक्ष ही छप भी गया था, किन्तु प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण पुस्तक-रूप में यह अब प्रकाश में आ रही है।

प्रातःस्मरणीय पूज्य शुक्लजी के अनुसार सारे भारत में इस पद्धति से पूर्णाभिषेक-प्राप्त व्यक्ति केवल दस ही उनकी जानकारी में थे। ११वें वे स्वयं थे। इस तथ्य से इस पद्धति की दुर्लभ एवं गरिमा स्पष्ट है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि 'क्रमदीक्षा' की इस पद्धति से लाभ अधिकारी व्यक्ति गुरुदेव की कृपा से ही प्राप्त कर सकते हैं। आशा है कि साधक-वर्ग इस अभूतपूर्व प्रकाशन से लाभान्वित होगा और यही 'कौल-कल्पतरु' श्री शुक्ल जी की कामना थी।

पूज्य स्व० शुक्ल जी ने 'क्रम-दीक्षा' के श्रीकुल और काली-कुल दोनों कुलों के क्रम-मन्त्रों का सङ्कलन ही नहीं किया, अपितु इन मन्त्रों के सम्बन्ध में विनियोग, ऋष्यादि न्यासों का भी संग्रह किया। उनकी हस्तलिखित पाण्डुलिपियों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वे इस विशिष्ट पूर्णाभिषेक-पद्धति को परिष्कृत करने के लिए निरन्तर यत्नशील रहे। इसी पद्धति के अनुसार उन्होंने अपने इने-गिने कतिपय प्रिय शिष्यों को पूर्णाभिषिक्त भी किया, जो अपने भौतिक और आध्यात्मिक लक्ष्यों की प्राप्ति में निरन्तर अग्रसर ही हो रहे हैं। इस तथ्य से प्रमाणित है कि यह 'क्रम-दीक्षा-पूर्वक पूर्णाभिषेक-पद्धति' वास्तव में सर्व सिद्धि-प्रद है। मूल्य तीन रुपये।

पता—शक्ति-साधना पीठ, अलोपीबाग मार्ग प्रयाग—६

ज्योतिष विधान

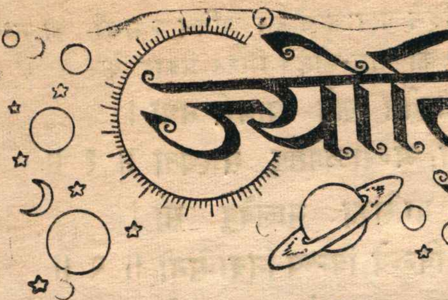

'कौल-कल्पतरु' चण्डी के पिछले अङ्कों के इस स्तम्भ के अन्तर्गत पञ्चाङ्ग के देखने की विधि बताई जा चुकी है। अब चैत्र शुक्ल प्रतिपदा रवि-वार सम्वत् २०३१ तदनुसार २४ मार्च १९७४ से नवीन विक्रम वर्ष का प्रारम्भ हो रहा है इस विक्रम सम्वत् का नाम है—'प्रभव'।

प्रभव सम्वत्सर के राजा सूर्य हैं। मन्त्री शनिदेव हैं। शस्य अर्थात् अन्नादि-उपज-धन-सम्पत्ति तथा नीरस पदार्थों के स्वामी भौम हैं। दुर्ग अर्थात् किले और मेघ अर्थात् वर्षा का नियन्त्रण मन्त्री शनिदेव के अधीन है। रस के स्वामी हैं गुरुदेव और धान्य के स्वामी चन्द्रदेव हैं। फलों के स्वामी शुक्रदेव हैं।

इस वर्ष का फल संक्षेप में इस प्रकार है—संहारक शस्त्रों के आविष्कार के फल-स्वरूप सारे संसार में आतङ्क की वृद्धि होगी। एशिया के विविध राष्ट्रों में परस्पर प्रतिद्वन्द्विता की भावना बढ़ेगी। युद्ध की सम्भावना बनी रहेगी तथा अकाल से मानव समाज पीड़ित रहेगा। साम्यवाद का प्रभाव राजनीति में और अधिक बढ़ेगा। यवन देशों का वातावरण अधिकाधिक अशान्त होगा। विश्व के किसी महान् व्यक्ति का देहावसान होगा। भूकम्पादि तथा वायुयान एवं अन्य प्रकार के यानों को दुर्घटनाओं में वृद्धि होगी।

भारत की सैन्य-शक्ति अधिकाधिक सम्पुष्ट होगी और वह सुरक्षित बनेगा। खाद्य पदार्थों की कमी होने से उनके मूल्य बढ़ेंगे। सिचाई-व्यवस्था में सुधार होगा। वर्षा अधिक होगी, किन्तु खण्ड वृष्टि होने से कठिनाई होगी। मित्र राष्ट्रों से भारत की घनिष्ठता बढ़ेगी। जिन राज्यों में किसी महिला के हाथों में सत्ता होगी, वहाँ उपद्रव अधिक होंगे। कहीं-कहीं शासन में उलट-फेर होगा। प्राकृतिक विषमताओं के कारण किसानों को चिन्ता रहेगी।

एशिया के दक्षिण-पश्चिम में स्थित देशों पर साम्यवाद का प्रभाव बढ़ेगा। महामारी एवं समुद्री तूफानों के कारण जन-नाश हो सकता है। पाकिस्तान में आन्तरिक उपद्रव होंगे, शासन के मुख्य अधिकारियों की अवनति होगी। योरप तथा अमेरिका का व्यापार उन्नतिशील रहेगा। रूस का महत्व विश्व-राजनीति में और भी बढ़ेगा।

वासन्तिक नवरात्र रविवार २४ मार्च ७४ को विक्रम सम्वत् 'प्रभव' के प्रथम दिवस से प्रारम्भ हो मङ्गलवार २ अप्रैल ७४ को व्रत का पारण होगा। इस श्रेष्ठ पर्व-काल में चण्डी-पाठ के द्वारा भक्तजनों को अपने व्यक्तिगत तथा अपने परिवार, समाज, देश एवं समस्त विश्व के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना चाहिए। दीक्षा-प्राप्त बन्धुओं को अपने इष्ट-देवता का नित्यार्चन कर अपना अभीष्ट साधन करना चाहिए।

जगदम्बा के द्वादश स्थान

त्रिपुरा-रहस्य के माहात्म्य खण्ड के अनुसार जगदम्बा के द्वादश स्थानों के दर्शन से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। जो दर्शन न कर सके, वह प्रतिदिन प्रातःकाल इन पवित्र स्थानों का नाम-स्मरण यदि कर लिया करे, तो उसका कल्याण होगा। स्थानों का नाम-कीर्तन निम्न प्रकार करे—

काञ्ची-पुरे तु कामाक्षीम लये भ्रामरी तथा।
केरले तु कुमारी सा; अम्बाऽऽनर्तेषु संस्थिता ॥ १ ॥
करवीरे महालक्ष्मी; मालिका मालवेषु सा।
प्रयागे ललिता देवी; विन्ध्ये विन्ध्य-निवासिनी ॥ २ ॥
वाराणस्यां विशालाक्षी; गयायां मङ्गलावती।
वंगेषु सुन्दरी देवी; नेपाले गुह्यकेश्वरी ॥ ३ ॥

फल-श्रुति

इति द्वादश-रूपेण संस्थिता भारते शिवा।
एतासां दर्शनादेव सर्व-पापैः प्रमुच्यते ॥ ५ ॥
अशक्तो दर्शने नित्यं स्मरेत् प्रातः समाहितः।
तथाप्युपासकः सर्वैरपराधैर्विमुच्यते ॥ ६ ॥

उक्त द्वादश स्थानों के स्पष्ट परिचय के लिए निम्न तालिका दर्शनीय है—

क्रमांक	स्थान	देवता
१	काञ्चीपुर (दक्षिण भारत)	कामाक्षी
२	मलयगिरि (" ")	भ्रामरी (भ्रामराम्बा)
३	केरल (" ")	कुमारी (कन्या कुमारी)
४	आनर्त (गुजरात)	अम्बा
५	मालवा (उज्जैन-मध्य प्रदेश)	कालिका
६	करवीर (कोल्हापुर-महाराष्ट्र)	महालक्ष्मी
७	प्रयाग (इलाहाबाद-उत्तरप्रदेश)	ललिता (अलोपी देवी)
८	विन्ध्य-गिरि (विन्ध्याचल- ")	विन्ध्य-वासिनी
९	वाराणसी (काशी— ")	विशालाक्षी
१०	गया (बिहार)	मङ्गलावती
११	वङ्ग (बङ्गाल)	सुन्दरी
१२	नेपाल (काठमाण्डू)	गुह्यकेश्वरी

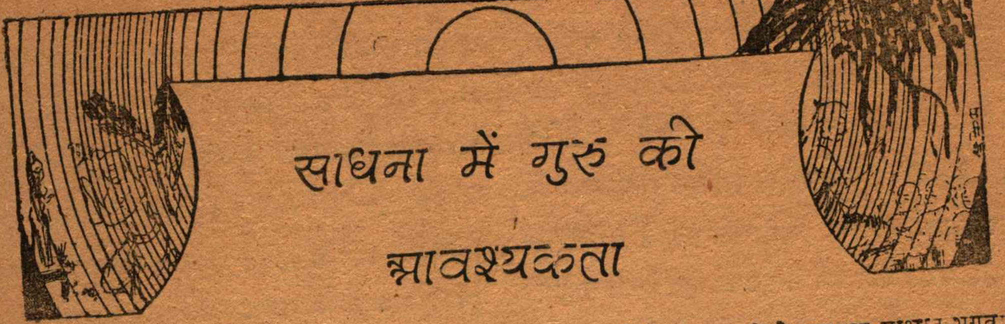

साधना में गुरु की आवश्यकता

गुरु-महिमा

भगवती श्रीविद्या के उपासना-सम्बन्धी ग्रन्थों में श्री विद्यारण्य यति विरचित 'श्रीविद्यार्णव तन्त्र' का महत्व सर्वाधिक है। यद्यपि भारतीय संस्कृति के प्रत्येक क्षेत्र में गुरु का गौरव समान रूप से मान्य है, तथापि उपासना-क्षेत्र में तो उपासकों के लिए गुरु को गरिमा उपास्य देवता से भी अधिक है। इस क्षेत्र में गुरु के वरदहस्त के सशक्त अवलम्बन के विना एक पद भी आगे बढ़ना उपासक के लिए सुगम नहीं है।

आजकल कुछ लोग साधना के क्षेत्र में स्वकीय पुरुषार्थ के आश्रय से सिद्धि हस्तगत करना चाहते हैं। स्वावलम्बन एक ग्राह्य सद्गुण है और हम उसकी उपेक्षा नहीं करते हैं किन्तु स्वावलम्बन की भी एक सीमा है। वे लोग मन्त्रशास्त्र की पुस्तकों में मन्त्र या देवता का साधना-विधि पढ़कर सिद्धि के चक्कर में पड़ जाते हैं। गुरु-प्राप्ति के प्रपञ्च में न पड़ते हुए वे कठोर परिश्रम भी करते हैं किन्तु बलवती गुरु कृपा के अभाव में उन्हें असफलता के अङ्क का ही आश्रय लेना पड़ता है। ऐसे ही लोग आगे चल कर मन्त्र, उपासना, कर्मकाण्ड के प्रबल विरोधी बन जाते हैं और श्रद्धा-सम्पन्न साधकों की साधना में भी बाधक हो जाते हैं। ऐसे लोगों को अपना हठ छोड़ कर सद्गुरु को शरण ग्रहण कर लक्ष्य की उपलब्धि करनी चाहिए।

स्वामी विद्यारण्य जी के अनुसार साक्षात् भगवान् शङ्कर ही गुरु रूप से भोग और मोक्ष के प्रदाता हैं; इस प्रकार भक्ति-पूर्वक गुरु का स्मरण करनेवाले को सिद्धि शीघ्रता से प्राप्त होती है। गुरु भक्ति के द्वारा जिस प्रकार समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, उस प्रकार यज्ञ, दान, तप, तीर्थ, व्रत आदि से नहीं प्राप्त होती हैं। बड़े-बड़े शारीरिक कष्टों के सहने अथवा तपश्चर्या के द्वारा जो फल प्राप्त होता है, वह सम्पूर्ण फल सरलता के साथ गुरु सेवा से प्राप्त होता है। गुरु-सेवा के द्वारा ब्रह्मा-विष्णु-शङ्कर का पद प्राप्त करना कठिन नहीं है। जिस प्रकार अग्नि रुई के बड़े से बड़े ढेर को क्षण भर मे जलाकर राख बना देती है, उसी प्रकार गुरु-चरणों का सेवा बड़े बड़े पापों तथा अशुभ कर्मों को तत्काल स्वाहा कर देती है। कुल-मार्ग में गुरु भक्ति का ही प्राधान्य है। गुरु-चरणों की अटल निष्ठा ही समस्त मन्त्रों की साधिका है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि पुरुषार्थों की सिद्धि गुरु चरणों की कृपा से ही प्राप्त होती है। संसार में प्राणी के लिए तभी तक मोह, शोक, भ्रम, कष्ट या दुःख है, जब तक वह शरणागत-वत्सल गुरु के चरणों का निर्भर आश्रय नहीं प्राप्त कर लेता है। गुरु को सामान्य प्राणी नहीं समझना चाहिए। जो गुरु का प्राकृत जनों के समान समझते हैं, उनके समस्त पुण्य पाप फलद हो जाते हैं। वे देवोपासना तथा मन्त्र-जप के द्वारा कभी भी सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकते हैं।

संसार में जन्म के प्रदाता माता-पिता अपने अगणित उपकारों के कारण सर्वाधिक पूज्य होते हैं, किन्तु कर्तव्य-अकर्तव्य का प्रदर्शक होने के कारण गुरु उनसे भी अधिक पूज्य होता है। ईश्वर के रुष्ट होने पर गुरु रक्षा करता है, किन्तु गुरु के रुष्ट होने पर कोई रक्षक नहीं है। शिष्य को मन, वाणी, शरीर और कर्म से गुरु का हित करना चाहिए। शरीर की रक्षा और धन का अर्जन अज्ञानान्धकार के वारक गुरु के कार्यों के लिए ही करना चाहिए गुरु के कठोर वचनों को आशीर्वाद समझना चाहिए।

गुरु में सदैव शिव की भावना करनी चाहिए। श्री विद्यारण्य जी का स्पष्ट कथन है कि गुरु में मनुष्य, मन्त्र में अक्षर तथा प्रतिमा में पत्थर की भावना करनेवाले प्राणी नरक-गामी होते हैं।

गुरौ मनुष्य-बुद्धिं च मन्त्रे चाक्षर-बुद्धिकम्।
प्रतिमासु शिला-बुद्धिं कुर्वाणो नरकं व्रजेत्॥

(श्री विद्यार्णव तन्त्र २१४)

गुरु-लक्षण

'गुरु'-शब्द अति व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है। जीवन के किसी भी क्षेत्र में हित-मार्ग के प्रदर्शक को 'गुरु' संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है, किन्तु आध्यात्मिक क्षेत्र में तो जीव को शिव, बद्ध को मुक्त और अज्ञानी को ज्ञानी में परिणत करने में पूर्ण सक्षम व्यक्ति ही 'गुरु' शब्द से अभिधेय कहा जा सकता है। 'गुरु'-शब्द का निर्वचन इस प्रकार किया जाता है—

गु-शब्दस्त्वन्धकार स्याद् रु-शब्दस्तन्निरोधने।
अन्धकार-निरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते॥

'गु'--शब्द का अर्थ अन्धकार है और 'रु' उसका निरोधक—रोकनेवाला। अन्धकार का निरोधक होने के कारण 'गुरु' गुरु कहा जाता है। गुरु अज्ञानान्धकार को दूर करके ज्ञानालोक को प्रदान करता है। सनातन परम्परा में सविधि उपनयन (यज्ञोपवीत-संस्कार) को सम्पन्न करके वेद के अध्ययन-कार्य को पूर्ण करानेवाला गुरु है। 'गुरु' शब्द की निष्पत्ति 'गृ—सेचने' धातु से होती है। दीक्षा-कर्म में अभिषेक (सेचन) करने के कारण सम्भवतः ऐसा कहा जाता है। हयशीर्ष-पञ्चरात्र में इसका प्रमाण मिलता है। छः प्रकार के गुरुओं का विवरण देते हुए कहा गया है कि जो पूर्णाभिषेक को करनेवाला है, वही वास्तविक गुरु है, उसी की पादुका पूजनीय है—

प्रेरकः सूचकश्चैव वाचको दर्शकस्तथा।
शिक्षको बोधकश्चैव षडेते गुरवः स्मृताः॥
पञ्चैते कार्याभूता : स्युः कारणं बोधको भवेत्।
पूर्णाभिषेक-कर्त्ता यो गुरुस्तस्यैव पादुका।
पूजनीया महेशानि ! बहुत्वेऽपि न संशयः॥

वर्तमान युग में नाना-प्रकार के शास्त्रों के समान नाना प्रकार के गुरु मिलते हैं। सिद्धि-विहीन, आचरण-विहीन, ज्ञान-विहीन तथा नानाविध इन्द्रिय-विषयों में अनुरक्त व्यक्ति धन के लोभ से शिष्यों की संख्या-वृद्धि शतधा करते हैं। शिष्य के कल्याण की ओर उनकी दृष्टि का जाना तो दूर रहा, वे उसे अनर्थकारी कार्यों की ओर भी प्रवृत्त करते हैं। साधना-क्षेत्र में प्रवेश करनेवाले व्यक्तियों को इन कपट-वेष-धारी अर्थ-लोलुप गुरुओं से सतर्क रहकर ही गुरु-चयन करने की ओर उन्मुख होना चाहिये। बाह्याकार से आज के मानव के आचरण (चरित्र) का वास्तविक बोध असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य है। अतः सावधानीपूर्वक दीर्घकाल तक 'गुरु' के चरित्र और ज्ञान का परीक्षण आवश्यक है। 'कुलार्णव' तन्त्र में कहा गया है कि गुरु की ज्ञानोपदेश-क्षमता, मन्त्र-सिद्धि तथा बोधकत्व (शिष्य में ज्ञान-शक्ति को जगाने की योग्यता) को सम्यक् प्रकार से समझकर शिष्य

होना चाहिये—

ज्ञानोपदेश-सामर्थ्य मन्त्र-सिद्धिमपीश्वरि ।
बोधकत्वं च विज्ञाय शिष्यो भूयान्न चान्यथा ॥
(श्री विद्यार्णवतन्त्र, द्वितीय श्वास)

परशुराम-कल्पसूत्र-भाष्य तथा कुलार्णव तन्त्र (११ समुल्लास) में गुरु के लक्षण दिए गए हैं ।

संक्षेप में गुरु को शुद्धवेष धारण करनेवाला, सम्पूर्ण सुन्दर लक्षणों से युक्त, सर्वाङ्ग-सुन्दर, सम्पूर्ण तन्त्र-शास्त्र का ज्ञाता तथा विधान-वेत्ता, लोक को मोहित करने में सक्षम, सुन्दर मुखवाला, सन्देह तथा भ्रान्ति का निवारक, सङ्केत के द्वारा अभिप्राय को समझने में समर्थ, तर्क-वितर्क में कुशल, अन्तर्मुखी, सर्वज्ञ, देश-काल को समझनेवाला, तीनों काल (भूत, भविष्य, वर्तमान) को जाननेवाला, निग्रह (वश में करना) तथा अनुग्रह (कृपा) में समर्थ, शक्ति का प्रबोधक, शान्त, दयालु, जितेन्द्रिय, गम्भीर, अधिकारी-अनधिकारी को जाननेवाला, शिव और विष्णु के समान प्रभुता-सम्पन्न, सज्जन, मन्त्र-शक्ति-सम्पन्न, धीर, सन्तुष्ट, दयालु तथा भक्त-वत्सल आदि होना चाहिए ।

इस प्रकार समस्त सद्गुणों से सम्पन्न, सदाचारी, ज्ञानवान तथा अपने प्रयोजन को पूर्ण करने में पूर्ण सम्पन्न, गुरु का अन्वेषण करना चाहिये । जो स्वयं ज्ञान-सम्पन्न नहीं है, वह दूसरे को कैसे अज्ञान से मुक्त कर सकता है ? जिसमें मन्त्र-शक्ति प्रबुद्ध नहीं है, वह दूसरे को मन्त्र प्रदान करके सिद्धि कैसे प्रदान करवा सकता है ? अतः पूर्ण परीक्षण के पश्चात् ही शिष्य को गुरु का निर्वाचन करना चाहिए । इस प्रकार सर्व-शक्ति-सम्पन्न गुरु का चयन करके उसमें पूर्ण निष्ठा के साथ सिद्धि-पथ पर अग्रसरित होना चाहिए ।

श्रीविद्यार्णव तन्त्र-कार के अनुसार एक अक्षर का भी ज्ञान प्रदान करनेवाले गुरु का अपमान नहीं करना चाहिए । अतः किसी में भी 'गुरु'-दृष्टि रखने के पश्चात् उसमें मनुष्य-दृष्टि त्याग कर देव-बुद्धि रखना चाहिए । मन्त्र, उसका देवता तथा गुरु एक समान हैं । इनमें किसी भी प्रकार की भेद-बुद्धि नहीं करनी चाहिए ।

शिवमेवाश्रितो नित्यं वाङ्-मनः-काय-कर्मभिः ।
आचार्यः स सदोद्दिष्टः शिव-दीक्षादि-कर्मसु ॥
(अतीवागम तन्त्र)

पावन संस्मरण

प्रातः-स्मरणीय श्रीमद् भगवत्पूज्यपाद पिता जी पण्डितवर श्री केदारनाथ शर्मा जी त्रिवेदी श्री महाविद्या के परम सफल एवं सिद्ध उपासक थे। वे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को श्री चक्र मय मानते थे अर्थात् श्री यन्त्र अशेष ब्रह्माण्ड-मय है। तदनुसार बिन्दु-चक्र सत्य-लोक, त्रिकोण तपोलोक, अष्ट-कोण जनलोक, अन्तर्दशार महर्लोक, बहिर्दशार स्वर्लोक, चतुर्दशार भुवर्लोक, भूलोक प्रथम वृत्त, अष्टदल-कमल अतल, अष्ट-दल के बाहर का वृत्त वितल, षोडश-दल कमल सुतल, वृत्त-त्रय तलातल, भूपुर की प्रथम रेखा महातल, द्वितीय रेखा रसातल और तृतीय रेखा पाताल है। ब्रह्मादि देवता, इन्द्रादि लोकपाल, सूर्यादि नवग्रह, अश्विन्यादि २७ नक्षत्र, मेष वृष आदि बारह राशियाँ, वासुकि आदि सूयं, यक्ष, वरुण, वैनतेय गरुड़, मन्दार आदि वृक्ष, रम्भादि अप्सराओं का समूह, कपिल आदि सिद्ध-संघ, वसिष्ठ आदि मुनिवर, कुबेर प्रमुख यक्ष, राक्षस, किन्नर, गन्धर्व, विश्वावसु आदि गायक, एरावत आदि आठ दिग्गज, उच्चैःश्रवादि हय, समस्त प्रकार के आयुध, हिमालय आदि पर्वत सप्त महासागर, नदियाँ, नगर और राष्ट्र— ये समस्त श्री चक्र से ही समुद्भूत हुये हैं। श्री चक्र और ब्रह्माण्ड को इस एकात्मकता का उन्हें पूर्ण एवं परिपक्व ज्ञान था।

इतना ही नहीं, श्री चक्र की भावना पूज्य पिता जी ने स्वकीय शरीर में ही कर ली थी। उनका मानव देह स्वयं श्री चक्र हो गया था। उनके ब्रह्म-रन्ध्र में बिन्दु चक्र, मस्तक में त्रिकोण, ललाट में अष्टकोण, भ्रू-मध्य में अन्तर्दशार, कण्ठ में बहिर्दशार, हृदय में चतुर्दशार, कुक्षि में वृत्त, स्वाधिष्टान में षोडशदल कमल, मूलाधार में षोडशदल के बाहर का वृत्तत्र (त्रिवृत्त) जानु मे भूपुर को प्रथम रेखा, जंघा में भूपुर की द्वितीय रेखा तथा चरणों में भू-गृह की तृतीय रेखा की स्थिति था। योगिनी हृदय नामक ग्रन्थ में इस प्रकार के साधक को शिव, विष्णु और ब्रह्मा के समान निरूपित किया गया है—

> त्रिपुरेशी महायन्त्रं पिण्डाण्डात्मकमीश्वरि।
> या जानाति स योगीन्द्रः स शम्भुः स हरिर्विधिः॥

इस श्री यन्त्र के नौ शिव-शक्ति चक्रों में पूज्य पिताजी नव चक्रेश्वरियों की अर्चना करते थे। इन नौ शिव शक्ति चक्रों में से त्रिकोण, अष्टकोण, दशार-द्वय (दो दशार) और चतुर्दशार-ये पाँच अधोमुख त्रिकोण शक्ति-चक्र कहलाते हैं। बिन्दु चक्र, अष्टदल कमल, षोडशदल कमल और चतुरस्र-ये चार ऊर्ध्व-मुख त्रिकोण शिव चक्र कहलाते हैं। बिन्दु चक्र त्रिकोण के साथ, अष्ट-दल कमल अन्तर्दशार और बहिर्दशार के साथ तथा भूपुर चतुर्दशार (चतुर्दश कोण) के साथ श्लिष्ट होता है; अतएव शिव और शक्ति चक्रों का परस्पर अविनाभाव सम्बन्ध है। अर्थात् एक दूसरे के बिना ये नहीं होते हैं। इसी प्रकार त्रिकोण शक्ति-रूप तथा त्रिकोण के भीतर का बिन्दु 'पर-शिव' है। बिन्दु-चक्र के बिन्दु और त्रिकोण अर्थात् शिव और शक्ति का परस्पर अविनाभाव सम्बन्ध है।

> चतुर्भिः शिव-चक्रैश्च शक्ति-चक्रैश्च पञ्चभिः।
> नव-चक्रैश्च संसिद्धं श्री-चक्रं शिवयोर्वपुः॥

प्रातःस्मरणीय श्रीमद्भगवत्पूज्यपाद पिता जी के शरीर में श्री चक्र की स्थिति—

क्र०	शरीरस्थ श्रीचक्र	नव चक्र	नव चक्रों के नाम	नव चक्रेश्वरी
१	मूलाधार	१ चतुरस्र	त्रैलोक्य मोहन	त्रिपुरा
२	स्वाधिष्ठान	२ षोडशदल	सर्वाशापरिपूरक	त्रिपुरेशी
३	नाभि	३ अष्टदल	सर्वसंक्षोभण	त्रिपुर सुन्दरी
४	हृदय	४ चतुर्दशार	सर्वसौभाग्य दायक	त्रिपुर वासिनी
५	कण्ठ	५ बहिर्दशार	सर्वार्थ साधक	त्रिपुराक्षी
६	भ्रूमध्य	६ अन्तर्दशार	सर्वरक्षाकर	त्रिपुर मालिनी
७	ललाट	७ अष्टार	सर्व रोगहर	त्रिपुरा सिद्धा
८	मस्तक	८ त्रिकोण	सर्व सिद्धि प्रद	त्रिपुराम्बा
९	ब्रह्मरन्ध्र	९ बिन्दु	सर्वानन्दमय	महात्रिपुर सुन्दरी

श्री यन्त्र के भूपुर में तीव्र जाग्रदवस्था का, वृत्त-त्रय में मन्द जाग्रदवस्था का, षोडश-दल में स्वप्नावस्था का तथा अष्टदल में सुषुप्त्यवस्था का समावेश किया जाता है। भूपुर, वृत्त-त्रय, षोडश-दल और अष्ट-दल—ये चार चक्र पूर्वाम्नायात्मक हैं। ये पूर्ण अज्ञान की चार अवस्थाएँ साधारण प्राणी की सी हैं; जिन्हें पूज्य पिता जी साधना के समारम्भ में ही पार कर चुके थे।

अन्तर-वर्ती चक्रों में ज्ञान-प्राप्ति की साधन-स्वरूपा सप्त भूमिकाओं का समावेश होता है। तदनुसार चतुर्दशार में शुभेच्छा, बहिर्दशार में शुभ विचारणा तथा अन्तर्दशार में तनुमानसा का समावेश पूज्य पिता जी ने सरलतापूर्वक स्वल्पकाल में ही कर लिया था। ये तीन चतुर्दशार, बहिर्दशार तथा अन्तर्दशार चक्र दक्षिणाम्नायात्मक चक्र हैं।

तदुपरान्त अष्टार चक्र में सत्वापत्ति, त्रिकोण चक्र में असंशक्ति तथा बिन्दु-चक्र में पदार्थ-भाविनी का समावेश भी पूज्य पिता जी ने यथा शीघ्र सफलतापूर्वक कर लिया था। ये तीन चक्र—अष्टार, त्रिकोण और बिन्दु-चक्र पश्चिमाम्नायात्मक चक्र हैं।

इन पूर्वोक्त दश चक्रों का समष्टि-रूप पूज्य पिताजी ने ज्ञानात्मक उत्तराम्नायात्मक चक्र में पूर्ण किया था।

तदुपरान्त उत्तराम्नायात्मक चक्र में महावैन्दव चक्र अर्थात् विन्द्वन्तर्गत-चक्र मिलकर पूर्णता नमक ऊर्ध्वाम्नायात्मक चक्र निर्मित होता है तथा उसी महावैन्दव चक्र में तुर्यगा का समावेश होने से पूज्य पिता जो ने ज्ञान-कण्ड द्वारा श्री चक्रोपासना सफलतापूर्वक निष्पन्न की थी।

कर्मकाण्ड के विषय में श्री चक्र के विभिन्न चक्रों में पूज्य पिताजी ने पृथक्-पृथक् दर्शन-शास्त्रों का समावेश किया था। भूपुर में चार्वाक्-दर्शन, वृत्त-त्रय (त्रि-वृत्त) में स्मृति-पुराणादि-दर्शन, षोडश-दल में बौद्ध-दर्शन, अष्ट-दल में गाणपत्य-दर्शन, चतुर्दशार में सांख्य-मीमांसा न्याय-वैशेषिक पातञ्जल-वेदान्तादि दर्शन, बहिर्दशार में वैदिक-दर्शन, अन्तर्दशार में सौर-दर्शन, अष्टार (अष्टकोण) में वैष्णव-दर्शन, बिन्दु में शैव-दर्शन तथा महावैन्दव-चक्र में कौल दर्शन का समावेश किया था।

श्री चक्र का चित्र

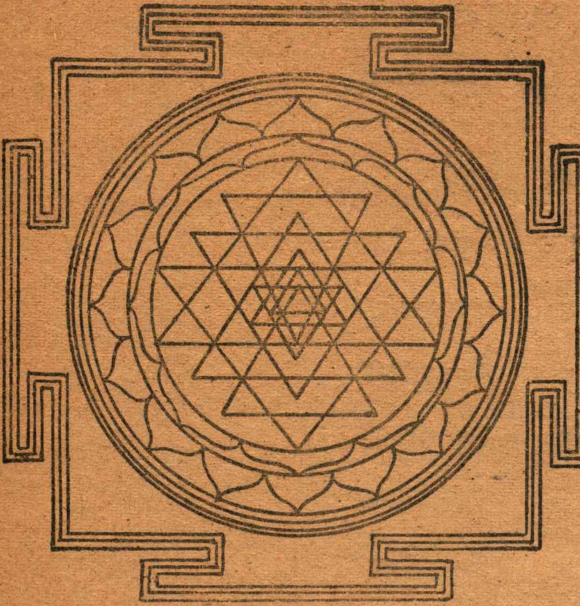

पूर्वाम्नाय में अज्ञानावस्था के कारण देवता को स्वामी माता मानकर और अपने को दास, पुत्र आदि मानकर उपासना होती है तथा 'पापोऽहं पाप-कर्माहं, 'ताप-त्रयाग्नि-सन्तप्तं त्राहि मां परमेश्वरि अथवा परमेश्वर ! कहा जाता है।

दक्षिणाम्नाय में ज्ञान भूमिका के पूर्वार्द्ध से इष्ट-देवता को भैरव की शक्ति तथा स्वयं को भैरव-रूप की भावना से उपासना होती है।

पश्चिमाम्नाय में ज्ञान भूमिका के उत्तरार्द्ध होने से इष्ट-देवता को तथा स्वयं को एक ही मानकर परम शक्ति-रूप बनकर 'रचित-युवति-वेशास्मद्धिया ध्यायते सः' यह भावना की जाती है। 'परोऽहमपरश्चाहं परापर-मयोऽप्यहम्।' अर्थात् 'पर भी मैं हूं तथा अपर भी मैं ही हूँ एवं परापर-मय भी मैं ही हूँ। अन्य नहीं है।'

उत्तराम्नाय में पूर्ण ज्ञान-भूमिका होने से अपने आप में मन्त्र-भावना हो जाती है—'मन्त्रोऽहं मन्त्र-कल्पोऽहं मन्त्र-जाप्यहमेव च।' अर्थात् 'मैं ही मन्त्र हूं और मन्त्र-जापी भी मैं ही हूं।'

ऊर्ध्वाम्नाय में ज्ञान-भूमिका की पराकाष्ठा हो जाने से साधक अपने आपको सच्चिदानन्द-स्वरूप मानता है अर्थात् अपने में सच्चिदानन्द की भावना करता है।

श्रीमद्-भगवत्पूज्यपाद पिता जी श्रीमहाविद्या को अखि आगम तथा वेदान्त-विदित सच्चिदानन्द-स्वरूपिणी मानते तथा स्वयं को तत्स्वरूप ही जानकर देहान्त-समय-पर्य श्रुति-विहित विधि के अनुसार विमुक्त होते हुए भी उपासन करना अपना परम कर्तव्य समझते थे।

पूज्य पिता जी ने षोडशी, महाषोडशी तथा सप्तद महनाख्या सुन्दरी, निर्वाण महात्रिपुरसुन्दरी को सर्वानन्द-मय ब्रह्मरन्ध्रस्थ बिन्दु-चक्र में तुरीया विद्या मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित की थी। उन्होंने तुरीयावस्था में सविकल्प समाधि द्वारा जीव और ब्रह्म की एकता अर्थात् शिव-शक्ति-सामरस्य का प्रत्यक्ष अनुभव किया था। यह वह अवस्था थी, जिसमें सर्वव्यापिनी विमर्श शक्ति भी महा प्रकाश में निमग्न हो चुकी थी। यही प्रकाश और विमर्श का अनुपम संयोग था अर्थात् अमृत के उच्चतम स्वरूप मोक्ष का दिव्य साक्षात्कार कर वे वैशाख शुक्ला पूर्णिमा सोमवार सम्वत् २००१ विक्रमी तदनुसार ८ मई सन् १९४४ ई० को प्रातःकाल ८½ बजे पुण्य-मयी बेला में चिर समाधिस्थ हो अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायिका श्री राजराजेश्वरी भगवती महात्रिपुरसुन्दरी महारानी जी की महाशक्ति के दिव्य महाप्रकाश में सदा सर्वदा के लिए विलीन हो गए।

पूज्य पिता जी को ब्रह्मरन्ध्रस्थ बिन्दु-चक्र के सर्वानन्द-मय नामक चक्र को आवरण देवता सच्चिदानन्द पराऽहन्ता के दिव्य साक्षात्कार से समस्त लौकिक सिद्धियों के अतिरिक्त तुरीयावस्थातीत निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति हुई। सर्वयोनिमुद्रा शिव-शक्ति-सामरस्य अर्थात् जीव-ब्रह्मैक्य के कारण ब्रह्मानन्द की अलौकिक अनुभूति प्रदान करने में समर्थ हुई।

श्री मद्भगवत्पूज्यपाद पिता जी के महाप्रयाण-काल में उनके सन्निकटस्थ प्रिय जनों ने उनके नैसर्गिक अजपा-जप का आरोह तथा अवरोह-क्रम प्रत्यक्ष अनुभव किया था, जिसका दक्षिणामूर्ति संहिता में इस प्रकार उल्लेख है-

अथ वक्ष्ये महेशानि प्रत्यहं प्रजपेन्नरः।
मोहान्धो यो न जानाति मोक्षस्तस्य न विद्यते॥
श्री गुरोः कृपया देवि ज्ञायते जप्यते यदा।
उच्छ्वास-निःश्वासतया तदा बन्ध-क्षयो भवेत्॥
उच्छ्वासैरेव निःश्वासैर्हंस इत्यक्षर-द्वयम्।
तस्मात्प्राणाख्य हंसाख्य आत्माकारेण संस्थितः॥

नाभेरुच्छ्वास-निःश्वासाद् हृदयाग्रे व्यवस्थितः ।
षष्टि-श्वासैर्भवेत् प्राणाः षट-प्राणाः नाडिका मता ।।
षष्टि-नड्या ह्यहोरात्रं जप-संख्या-क्रमो मतः ।

एकविंशति-साहस्रं षट्-शताधिकमीश्वरि ।।
जपते प्रत्यहं प्राणी सान्द्रानन्द-मयीं पराम् ।
उत्पत्तिस्तु जपारम्भो मृत्युस्तत्र निवेदनम् ।।
विना जपेन देवेशि जपो भवति मन्त्रिणः ।
अजपेयं ततः प्रोक्ता भव-पाश-निकृन्तनी ।।

अर्थात् 'स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास के रूप में जीव जिस मन्त्र का जप करता है उसे ही हंस अथवा 'अजपा मन्त्र' कहा गया है। सांसारिक मोह से अन्धा हुआ अज्ञानी जीव जब तक इस परा विद्या को नहीं जानता, तब तक उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है। जब श्री गुरुदेव की कृपा से इस विद्या को जान लेता है एवं तदनुसार साधना-रत हो जाता है, तभी उसको सांसारिक बन्धनों से मुक्ति प्राप्त होती है। श्वास की स्वाभाविक बहिर्गमन एवं अन्तर्गमन की क्रिया में 'हंस' इन दो अक्षरों का जप चलता रहता है, इसीलिए प्राण को 'हंस' कहते हैं तथा वही आत्म-स्वरूप है। श्वास-क्रिया नाभि से प्रारम्भ होती है, उसी के अनुसार हृदय-चक्र (अनाहत) में प्राण की स्थिति है। ६० श्वास-क्रिया होने पर उसकी संज्ञा 'प्राण' होती है। ६ प्राणों की एक नाड़ी एवं ६० नाड़ी का एक पूर्ण दिन-रात होता है। इस प्रकार ६०×६×६०=२१,६०० इक्कीस हजार छः सौ श्वास ही इस मन्त्र की जप-संख्या है। प्रत्येक प्राणी दिन-रात प्रतिदिन इस परमानन्द-स्वरूपिणी परा विद्या का जप करता रहता है। श्वास-प्रश्वास के रूप में इस जप का प्रारम्भ जन्म लेते ही हो जाता है तथा मृत्यु के समय उस जप का समर्पण होता है। इस प्रकार यह जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त एक अखण्ड साधना है। इस उपासना में बिना जप किए ही मन्त्री साधक का जप चलता रहता है। अतः संसार-बन्धन को नष्ट करनेवाला यह 'अजपा जप' के नाम से विख्यात है।'

प्रथम आरोह-क्रम में 'हंस' का जप होता है तथा द्वितीय अवरोह-क्रम में 'सोऽहं' मन्त्र का जप किया जाता है; जिसकी भावना निम्नलिखित श्लोकों में सन्निहित है—

हंसो गणेशो विधिरेव हंसो
हंसो हरिर्हंस-मयश्च शम्भुः ।
हंसो हि जीवो गुरुरेव हंसो
हंसो ममात्मा परमात्म-हंसः ।।
देहो देवालयः प्रोक्तो जीवो नाम सदाशिवः ।
त्यजेदज्ञान-निर्माल्यं सोऽहं-भावेन पूजयेत् ।।
अहं देवो न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोक-भाक् ।
सच्चिदानन्द-रूपोऽहमात्मानमिति भावयेत् ।।
हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत् पुनः ।
हंसात्मिकां भगवतीं जीवो जपति सर्वदा ।।

अर्थात् 'इस मन्त्र के प्रतिपाद्य देवता आधारादि चक्रों के अनुसार क्रमशः मूलाधार के गणेश, स्वाधिष्ठान के ब्रह्मा, मणिपूर (नाभि) के विष्णु, अनाहत (हृदय) के शिव, विशुद्धि (कण्ठ) के जीव, आज्ञा (भ्रू-मध्य) के गुरु तथा त्रिकोण के आत्मा एवं सहस्रार के परमात्मा देवता हैं। इन समस्त रूपों का विकाश हंस मन्त्र से ही होता है। अतः यही सबका कारण है तथा इन समस्त रूपों का समन्वय इसी मन्त्र में है। शरीर-रूपी मन्दिर में सदाशिव ही जीव-रूप से निवास करते हैं। इस मन्त्र के द्वारा अज्ञान-रूपी निर्माल्य (जो चण्डाधिकार होने से त्याज्य है) छोड़ने पर ही 'हंस' 'सोऽहं'-रूप में परिणत हो जाता है। इसके अनुसार भावना इस प्रकार है कि—मैं ही साक्षात् ब्रह्म हूं, मैं समस्त शोकों से मुक्त हूं तथा सच्चिदानन्द-स्वरूप हूं।' इस प्रकार स्वयं को ब्रह्म-रूप मानना चाहिये। श्वास के बहिर्गमन में हकार का उच्चारण होता है तथा अन्तर्गमन में सकार का। इस प्रकार जीव हंस स्वरूपिणी भगवती अजपा-गायत्री का जप करता रहता है।'

ब्रह्मरन्ध्र में बिन्दु के रूप में कारण-तत्व की स्थिति है। ऊर्ध्व में शक्ति रूप विसर्ग एव अधो भाग में शिव-बिन्दु की स्थिति है। उसे ही 'हंस'-शब्द से निरूपित किया गया है, अवरोह-क्रम में 'सोऽहं'-रूप से भी इसे ही निरूपित किया गया है। इसी को परमात्म-मन्त्र भी कहते हैं।

श्रीमद्भगवत्पूज्यपाद पिता जी श्रीमहाविद्या के पूर्ण सिद्धोपासक होने के कारण समस्त चक्रों के देवताओं को २१,६०० श्वासों की योजना के अनुसार गत दिवस के जप का समर्पण करते थे। पूर्णमण्डलाक्षर-रूप श्वासों की संख्या ५७६ है। अकार तथा क से लेकर क्षकार-पर्यन्त ३६ अक्षर माने गए हैं। अ से अः पर्यन्त १६ स्वर के वर्णों को ३६ के

साथ गुणित करने से १६ × १६=५७६ पूर्णमण्डलाक्षर की संख्या होती है। एक मास में ३६ दिन श्रीविद्या-क्रम में माने जाते हैं। ३६ दिन की संख्या को पूर्णमण्डलाक्षर की संख्या से गुणित करने पर ३६ × ५७६=२०,७३६ श्वास-संख्या हो जाती है। प्रकाशानन्दनाथ से लेकर सुभगानन्द-नाथ पर्यन्त ९ नाथ हैं, जिन्हें अ, ऋ, क, च, ट, त, प, य, श—इन नौ अक्षरों से जाना जाता है। शिव से लेकर पृथ्वी पर्यन्त ३६ तत्वों के श्वास की संख्या ३६ मानी गई है। कामेश्वरी नित्या से लेकर चित्रा नित्या पर्यन्त १६ नित्याओं की संख्या १६ प्रश्वास होती है। पाँच दिन में पूर्ण होनेवाली घड़ियों की संख्या अ, ए, च, त, य—इन पाँच अक्षरों से मानी गई है। घड़ी के अनुसार इनकी संख्या ६० होती है। मेषादि राशियों की संख्या १२ है, इसीलिए राशि-संख्या के श्वास १२ लिए गए हैं। सूर्यादि नव ग्रहों की संख्या ९, तत्वों की संख्या ५, मातृकाओं की संख्या ५०, इसके अनन्तर श्री चक्र में आए हुए ९१ शक्ति आवरण देवताओं की श्वास संख्या ९१ ली जाती है। इस प्रकार ५७६ + २०७३६ + ९ + ३६ + १६ + ६० + १२ + ९ + ५ + ५० + ९१ =कुल २१,६०० श्वास-संख्या आती है। एक निश्चित समय से अजपा का प्रारम्भ करना चाहिये और उसी के अनुसार समय विभाग करके अभ्यास करना अत्यन्त उपयोगी होता है।

पूज्य पिता जी जिस चक्र का जो निर्दिष्ट समय होता था, तदनुसार ही ध्यान करते हुए जपसंलग्न रहते थे। उक्त प्रकार से अनवरत अभ्यास करने के कारण उनको शीघ्र ही आत्मा के स्वरूप के साथ तादात्म्य लाभ हो गया और वे केवल ७० वर्ष की आयु में ही स्वेच्छा से सांसारिक क्लेशों से मुक्त हो महाशक्ति के दिव्य एवं दुर्लभ महा प्रकाश में सदा सर्वदा के लिए लीन हो गए। जब कि ज्योतिर्गणनानुसार उन्हें ९६ वर्ष ८ मास २४ दिवस पर्यन्त पूर्णायु का उपभोग करना था। पूज्य पिता जी ने इस नश्वर समयावधि की अवहेलना कर अपने परिपूर्णतम अमृत-तत्व का सहर्ष संवरण कर महानिर्वाण-पद अर्जित किया था।

इसी साधना-क्रम की प्रशंसा में 'शारदातिलक' नामक ग्रन्थ में उल्लेख है:—

हंसः पदं परेशानि प्रत्यहं जपते नरः।
मोहान्धो यो न जानाति मोक्षस्तस्य न विद्यते॥
श्रीगुरोः कृपया देवि ज्ञायते जप्यते ततः।
तस्माच्छ्वासैश्च निःश्वासैस्तदा बन्ध-क्षया भवेत्॥
अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्ष-दायनी।
तस्या विज्ञान-मात्रेण नरः पापैः प्रमुच्यते॥
अजपा सदृशी विद्या चानया सदृशो जपः।
अनया सदृशं पुण्यं न भूतं न भविष्यति॥

अर्थात् हे भगवति महात्रिपुरसुन्दरि। यह वही 'हंस'-पद है, जिसका मनुष्य प्रतिदिन जप करता है। मोह में पड़ कर जो मनुष्य इस मन्त्र को नहीं जानता, उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। जब श्री गुरुदेव भगवान् की कृपा से जीव इसका जान लेता है तथा इसका जप करता है, तब इस श्वास की साधारण क्रिया से, जो अनायास ही सम्पन्न होती रहती है उसी के द्वारा वह संसार-बन्धन से छूट जाता है। योगियों को मोक्ष प्रदान करनेवाली इस अजपा नामक गायत्री के ज्ञान मात्र से संपूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। न तो विद्या के समान कोई विद्या है और न इसके जैसा कोई जप ही। इस विद्या के समान पवित्र साधना आज तक न तो हुई है और न होगी अर्थात् यह सर्वश्रेष्ठ उपासना है।,

तन्त्र में अनुसन्धान

'कौल कल्पतरु' चण्डी के पिछले अङ्कों में हम यह सप्रमाण दर्शा चुके हैं कि विदेशों में 'तन्त्र" के सम्बन्ध में अनुसन्धान-काय कितनी तत्परता और सजगता के साथ किया जा रहा है। उसकी तुलना में हमारे अपने देश में क्या कुछ हो रहा है, वह भी जानने योग्य है। वाराणसी में लगभग १० वर्ष पूर्व तत्कालीन राज्यपाल श्री विश्वनाथ दास की प्रेरणा से आयोजित "तन्त्र सम्मेलन" का विवरण 'चण्डी' के सं० २०२३ के अङ्कों में छपा है। उस सम्मेलन की सफलता या असफलता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उक्त "तंत्र-सम्मेलन" का नाम फिर नहीं सुनाई पड़ा। इधर इलाहाबाद की मनोविज्ञान शाला के निर्देशक श्री जमुनाप्रसाद जी का ध्यान 'शाक्त-धर्म' के प्रति आकृष्ट हुआ है और उन्होंने एक परिपत्र शाक्त महात्माओं, साधकों आदि की सेवा में भेजा है। दिनांक २०-१०-७३ को भेजे गये एक ऐसे ही परिपत्र की प्रतिलिपि पूज्य श्री स्वामी दिव्यानन्द जी सरस्वती ने हमें भेजी है। वह यहाँ उद्धृत है—

श्रद्धेय श्री स्वामी दिव्यानन्द जी सरस्वती,

परा मनोवैज्ञानिक शक्तियों में हम भारतीयों का दृढ़ विश्वास है। इसीलिए पाश्चात्य विज्ञान हमसे इस क्षेत्र में मार्ग-दर्शन की अपेक्षा करते हैं लेकिन आज के समाज के लिये किसी भी तथ्य को स्वीकार कराना तब तक कठिन है, जब तक इसका वैज्ञानिक आधार न हो। इसी प्रयास में हम लोग कुछ वर्षों से परा मनोविज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान कर रहे हैं। पुनर्जन्म, संस्कार, एतेन्द्रियों पर हमने कुछ अनुसंधान-कार्य किया भी है।

मैं परा मनोविज्ञान के अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन में भाग लेने के आधार पर यह अनुभव करता हूँ कि भारतीय दर्शन और धर्म के विषय में पाश्चात्य जगत् के विचार भ्रामक हैं। हमारा यह सतत प्रयास है कि भारतीय दर्शन एवं धर्मों का पाश्चात्य देशों में सही मूल्यांकन हो। इस वर्ष मैंने इंग्लैण्ड में २२ वें अंतर्राष्ट्रीय अधिवेशन में "शाक्त धर्म में परा-मनोवैज्ञानिक शक्तियों का प्रति-दर्शन" विषय पर अपने विचार व्यक्त किये थे। कुछ पाश्चात्य परा-मनोवैज्ञानिकों ने शाक्त-धर्म के बारे में और इसमें निहित शक्तियों के अध्ययन के प्रति अपनी उत्सुकता भी व्यक्त की है।

इस संबंध में मैंने "चण्डी कार्यालय" प्रयाग तथा चण्डी के सम्पादक पण्डित रमादत्त जी शुक्ल से परामर्श किया था। उन्होंने हमें आपसे सहयोग-प्राप्ति के लिये निवेदन करने को कहा है। हमें पूर्ण विश्वास है कि हमें शाक्त धर्म तथा उसमें निहित शक्तियों का प्रायोगिक अध्ययन करने में आपका विशेष सहयोग मिलेगा।

अतः आपसे सानुरोध निवेदन है कि संलग्न पत्र द्वारा हमें शीघ्रातिशीघ्र उत्तर प्रेषित करने की कृपा करेंगे; जिससे मैं आपकी सेवा में अपने किसी सहयोगी को भेज सकूं।....

इस परिपत्र के उत्तर में दिनाङ्क ७-११-७३ को श्री स्वामी जी ने जो उत्तर श्री जमुनाप्रसाद जी को भेजा, उसका मुख्यांश निम्न प्रकार है—

"...आपने लिखा कि आपने इंग्लैंड में २२वें अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन में "परा मनो वैज्ञानिक शक्तियों का प्रतिदर्शन" विषय पर अपने विचार व्यक्त किये। आपने यह नहीं

लिखा कि आपके भाषण का पाश्चात्य वैज्ञानिकों पर क्या प्रभाव पड़ा। क्या अपने भाषण की प्रतिलिपि मेरी जानकारी के लिये भेजने की अनुकम्पा करेंगे ?

आपने लिखा कि आपने संपादक 'चण्डी' प्रयाग से परामर्श किया तथा उन्होंने आपको मेरे से सहयोग प्राप्त करने की सलाह दी। पर आपने यह नहीं लिखा कि उनके और आपके वार्तालाप से क्या निष्कर्ष निकला और क्या शेष प्रश्न रह गया, जिसके विषय में आप मुझ जैसे तुच्छ व्यक्ति से सहयोग प्राप्त करने के इच्छुक हैं। मैंने शाक्त-धर्म के विषय में जो कुछ भी ज्ञान प्राप्त किया है, वह 'चण्डी' पत्रिका द्वारा ही किया है। आप मुझसे क्या विशेष सहायता चाहते हैं, यह आपने स्पष्ट नहीं लिखा।

मैंने 'चंडी' पत्रिका द्वारा जो कुछ भी शाक्त-विज्ञान-संबंधी ज्ञान प्राप्त किया है, उसे अपनी तुच्छ बुद्धि के द्वारा अपनी छोटी सी पुस्तक 'यत्र-तत्र-सर्वत्र' में लिपिबद्ध किया है। यह पुस्तक आपकी सेवा में बुक पोस्ट द्वारा अलग से भेजी जा रही है।

आपकी संस्था 'चण्डी' पत्रिका से कितनी पुरानी या नई है लिखें। आपकी संस्था के उद्देश्य तथा संस्था ने अब तक क्या कार्य किया है, उसका विवरण भी भेजने की अनुकम्पा करें तो कैसा ? आपकी संस्था तथा चंडी पत्रिका यदि दोनों मिलाकर प्रयत्न करें, तो मैं समझता हूँ कि इस क्षेत्र में अभीष्ट प्रगति सम्भव हो सकती है।

काशी और प्रयागराज दोनों हिन्दू सत्य सनातन धर्म (आगम-निगम) के मुख्य केन्द्र हैं। सभी धर्माचार्य व धर्म-प्रचारक भी इन्हीं स्थानों में कार्य-रत हैं। बड़े बड़े विद्यालय भी यहीं पर स्थित हैं। यदि सब धर्माचार्य मिल-जुल कर प्रयास करें, तो मैं समझता हूँ कि भारतीय दर्शन एवं धर्मों का पाश्चात्य देशों में सही मूल्यांकन हो सकता है।

"संघे शक्तिः कलियुगे।" इस कलियुग में संगठन की परमावश्यकता है। सत्य सनातन धर्म के प्रचार के लिये आज अनेकानेक संस्थायें अलग अलग कार्य कर रही हैं। यदि ये सब मिलकर कार्य करें, तो धर्म-संरक्षण संभव है।...

उक्त पत्र-व्यवहार से स्पष्ट है कि भारत में तन्त्र-अनुसंधान का कार्य कितने हलके ढंग से किया जा रहा है। परा मनोविज्ञान के भारतीय अनुसन्धान-कर्ता "प्रायोगिक अध्ययन" में रुचि रखते हैं, किन्तु उनका यह "प्रायोगिक अध्ययन" है क्या वस्तु और इसे वे किस प्रकार सम्पादित करना चाहते हैं, इसे वे स्पष्ट नहीं कर पाते। ऐसी दशा में यदि उन्हें अपेक्षित सहयोग शाक्त-साधकों और महात्माओं से नहीं मिल पाता, तो निस्सन्देह इसका उत्तर-दायित्व उन्हीं पर है। क्या ही अच्छा होता कि मनोविज्ञान-शाला के निर्देशक महोदय का ध्यान अपने परिपत्र को अधिक स्पष्ट करने की ओर जाता, जिससे सम्बोधित व्यक्ति उनके आशय को सरलता से समझकर उन्हें अपना सहयोग प्रदान कर सकता।

विशेष--'कुलार्णव तन्त्र' के सम्बन्ध में स्वीडेन के श्री गुन्नार एण्डर्सन की जिज्ञासाएँ और उनके समाधान नव वर्ष की 'कौल-कल्पतरु' चण्डी में प्रकाशित होगे, जिनसे पाठकों को विदित होगा कि विदेशों में कितने व्यवस्थित ढंग से और गहराई के साथ तन्त्र पर अनुसन्धान किया जा रहा है।

पुस्तक समालोचना

माधव ग्रन्थावली

(संपादक एवं टीकाकार डा० भवानीलाल भारतीय एवं कु० इन्द्रा सक्सेना)

उपर्युक्त ग्रन्थ (पृष्ठ-संख्या २७४, मूल्य ५ रुपये) मुन्शी माधवराम कृत "शक्ति-भक्ति-प्रकाश" 'करुणा-बत्तीसी" तथा "करुणाष्टक" का सटीक आलोचनात्मक अध्ययन है। मुन्शी माधवरामजी के व्यक्तित्व तथा कृतित्व का विषद् मूल्यांकन कु० इन्द्रा सक्सेना, एम० ए०, बी० एड० ने किया है तथा काव्यों पर टीका-लेखन-कार्य डा० भवानीलाल भारतीय, एम० ए०, पी-एच० डी० ने किया है।

यों तो इन तीनों काव्य-ग्रन्थों का प्रकाशन पहिले कई बार हो चुका है और अनेक शाक्त व वैष्णव भक्त इनका नित्य पाठ भी किया करते हैं परन्तु इन ग्रन्थों की हिन्दी-टीका का अब तक अभाव ही रहा है। हर्ष का विषय है कि आज वह अपेक्षित अभाव पूर्ण हुआ है। टीकाकार महोदय ने केवल शाब्दिक टीका ही नहीं की है वरन् मूल ग्रन्थों में सांकेतित आख्यानों व कथानकों की पूर्ण खोज कर विस्तृत वर्णन अपनी अत्यन्त सरल व सुन्दर शैली में प्रस्तुत किया है। निश्चय ही मूल कवि के हृदय के भावों को स्पर्श करते हुए निम्नांकित्त तथ्य को प्रमाणित कर डाला है—

'कवि करोति काव्यानि रसं जानाति पंडितः।'

वेद, उपनिषद्, पुराण, दर्शन, इतिहास, काव्य, साहित्य, तंत्र, पत्र-पत्रिकाओं एवं अनेक हस्त-लिखित पुस्तकों द्वारा संपुष्ठित करते हुए बहुत ही सुन्दर ढंग से आलोच्य ग्रन्थों की समीक्षा की गई है। ग्रन्थ को पढ़कर मेरा हृदय आनन्द से विभोर हो गया। इस महान् पुरुषार्थ के लिए मैं विद्वान् संपादक महोदयों को हार्दिक बधाई देना अपना परम कर्त्तव्य मानता हूं।

मूल ग्रन्थ "शक्ति-भक्ति-प्रकाश" में एक स्थान पर कहा गया है—

दियो वरदान चित्रगुप्त को उजैनी बीच,
पद्म पुराण में है कथा विस्तार की।
मांडव को श्राप त्रयलोचनी ! विमोच कीन्हों,
पाई है बड़ाई धर्मराज अधिकार की॥

होय के प्रसन्न वर देवी ऐसो वर दीन्हों,
तेरे बंस अंस पै मुदार राजद्वार की।
ऐसी भांति कायथ को कौम को निवाजी तुम,
भई कहा सूम जो हमारी बार बार की॥

यह कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी, यदि मैं कहूँ कि यह भगवती के उपर्युक्त वरदान का ही फल है कि आज भी श्री भवानीलाल भारतीय व सुश्री कु० इन्द्रा सक्सेना जैसे कुल-भूषण कायस्थ समाज में विद्यमान हैं। समस्त कायस्थ-समाज को इनका गर्व होना चाहिए।

—स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती

(यह ग्रन्थ कल्याण मन्दिर, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग–६ से मँगा सकते हैं।)

"CHID-VILAS"

(A treatise on SRI VIDYA in Sanskrit and Hindi)

This is one of the many books published by the Peetambra Peeth parishad under the guidance of the Great Shakta Savant Shri 1008 Swami Jee Maharaj. Apart from Makarand Stotra, Shri Vidya Upasana Paddhati, Panchastavi, Tripura Mahimna Stotra (all of Sri Kula) and many other books on the subject 'Chid-Vilas' appears to be the best and the last thing on the subject of Shri VIDYA. It is an obstruse Tantra lore whose authorship is not known but to a certain measure can be attributed to Kalidas, as it resembles in certain ways his widely celebrated 'Chidgagana-Chandrika.'

The introduction by Shastri Brijnandan is a good one and explains in cartain ways the many abstruse points. It propounds Para Vidya in HER supreme aspect and Sama-rasya. A new dimension has been added to the meaning of Khechri Mudra in verse 36. The main Sanskrit commentary in the 38 verses is the life of the book and throws light on many an abstruse points of Shri Vidya.

The fact that it has been published through the grace of His Holiness 1008 Swami Jee Maharaj adds new dimension to the celebrated work. Some people may think that this should not have been made available to all but what I can feel personally, is that it may make an impact on the minds of those who are keen to promote their knowledge. After all like a good farmer, a Guru throws so many seeds in the soil at the time of sowing and some may sprout and some may not-all depending on the fertility of the soil.

The get up of the book is very fine and surprisingly has a meagre cost of Re. One only

— Major B. N. Thussu,
F.R.A.S. (London)

◆ ◆ ◆

रास-पञ्चाध्यायी

साधकों के लिए 'रास-पञ्चाध्यायी' का अध्ययन बहुत ही लाभकारी है। प्रस्तुत ग्रन्थ की लगभग ७० पृष्ठों की लम्बी भूमिका में श्री द्वारकेश संस्कृत महा विद्यालय मथुरा के प्रधानाचार्य पण्डित श्री श्यामसुन्दर चतुर्वेदी ने बड़ी विद्वत्ता के साथ 'रास'-शब्द की प्राचीनता दर्शाते हुए उसके धार्मिक स्वरूप को स्पष्ट किया है। रास-लीला के बारह प्रतीकार्थ आपने बताए हैं, जिनमें से एक यह है—

.... योग-शास्त्र के अनुसार अनाहत नाद ही वंशी-ध्वनि है; अनेक नाड़ियाँ ही गोपियाँ हैं; सहस्र-दल-कमल ही सुरम्य वृन्दावन है, जहाँ आत्मा-परमात्मा का सुखमय सम्मिलन होता है तथा जहाँ पहुँचकर ईश्वरीय विभूति के साथ जीवात्मा की सम्पूर्ण शक्तियाँ सुरम्य रास रचती हुई नृत्य करती हैं।...

३६० पृष्ठों में श्री रास-पंचाध्यायी को विशद विवेचन के साथ बड़े अक्षरों में प्रकाशित किया गया है। वेदाचार्य याज्ञिक-सार्वभौम पौराणिक-रत्न पण्डित श्री लक्ष्मणदत्त चतुर्वेद कृत ब्रज भाषा-भाष्य से यह ग्रन्थ वास्तव में भक्तजनों के लिए बहुत ही उपयोगी और संग्रहणीय बन गया है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु उत्तर प्रदेश शासन ने एक सहस्र रुपए की सहायता प्रदान की है। इसी से इसके महत्व को समझा जा सकता है। मूल्य है १५) पन्द्रह रुपए।

प्राप्ति-स्थान—कल्याण मन्दिर, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग-६ से अपनी प्रति कृपया शीघ्र मँगा लें।

स्तुति-प्रेरणा

थारो जनम सफल होय जाय झट रे, अम्बे, अम्बे, अम्बे, अम्बे रट रे ॥ टेर ॥
विषय भोग में क्यों भरमावे, हो रे थारी ऊमर दिन दिन जाय घट रे ॥ १ ॥
सोहं सोहं जाप जपो नित, हां रे थारा पाप प्रबल सब जाय कट रे ॥ २ ॥
ढूंढ़त है क्या बाहिर बाहिर, हां रे थारे जोत जगे निज घट घट रे ॥ ३ ॥
'दिव्य' कहे मां करुणा कर अब, हां रे दीजे मुक्ति मुझे मां चटपट रे ॥ ४ ॥

धार्मिक जगत की हलचल

१—श्री हनुमान मन्दिर

वाराणसी में देवालयों की भरमार है। श्री हनुमान जी के भी कितने ही मन्दिर वहाँ दर्शनीय हैं। सङ्कट-मोचन हनुमान जी का देवालय तो अति प्रसिद्ध है किन्तु वाराणसी के उत्तरांचल में स्थित हनुमान फाटक नामक मुहल्ले की एक विशेषता यह है कि इसे गोस्वामी तुलसीदास की साधना-स्थली होने का गौरव प्राप्त है। इसी मुहल्ले में गोस्वामीजी द्वारा स्थापित एक श्री बाल-हनुमान जी की मूर्ति दर्शनीय है।

२—चैती मेला १९७४

काशीपुर (जिला नैनीताल) कुमाऊँ का एक प्रसिद्ध धार्मिक एवं ऐतिहासिक शक्ति-पीठ है। पद्म-पुराण के मानस खण्ड में तथा अन्य अनेक धर्म-ग्रन्थों में इस पीठ-स्थान की महिमा वर्णित है। प्रति वर्ष की भाँति इस वर्ष के वास्तविक नवरात्र के अवसर पर चैत्र शुक्ल प्रतिपदा रविवार तदनुसार २४ मार्च १९७४ से चैत्र शुक्ल चतुर्दशी शुक्रवार दिनांक ५ अप्रैल ७४ तक यहाँ चैती मेले का भव्य आयोजन होगा। सर्व-सज्जा व धूमधाम के साथ देवी जी का जलूस नगर देवी-मन्दिर से देवी-मन्दिर चैती मेला को जायगा और ४ अप्रैल ७४ को वापस नगर देवी-मन्दिर को आएगा। माता बाला सुन्दरी देवी का वार्षिक विशेष पूजन चैत्र शुक्ल द्वादशी दिनांक ४ अप्रैल ७४ की रात्रि १२ बजे सम्पन्न होगा।

३—श्री दश-भुजा दुर्गा मन्दिर

उक्त श्री हनुमान मन्दिर के निकट हनुमान फाटक मुहल्ले में ही 'श्री दश-भुजा दुर्गा-मन्दिर" प्रतिष्ठित है। इसकी व्यवस्था 'श्री दुर्गा आश्रम, ('पीली कोठी' वाराणसी-१) के संस्थापक डाक्टर जी० आर० मल्लिक के योग्य निर्देशन में हो रही है। आपके द्वारा 'श्री दुर्गा चालीसा' और उक्त मन्दिर का संक्षिप्त परिचय भी प्रकाशित किया गया है। इस मन्दिर में महिषासुर-मर्दिनी भगवती दुर्गा की प्रामाणिक प्रतिमा के साथ ही श्री दुर्गेश्वर महादेव एवं भगवती दक्षिणा काली के दर्शनीय विग्रह स्थापित हैं।

मन्दिर के प्राङ्गण में समय-समय पर विद्वान् एवं अनुभवी साधक महात्माओं के प्रवचन हुआ करते हैं। इसके सिवा यज्ञ-मण्डप, सप्तशती-पाठशाला, श्री दुर्गा ग्रन्थागार, तन्त्र-विद्या अनुसन्धानशाला एवं अतिथिशाला की भी व्यवस्था 'श्री दुर्गाश्रम' के अन्तर्गत की गई है।

श्री दशभुजा-दुर्गा का ध्यान इसी अङ्क के प्रारम्भ में प्रकाशित किया गया है।

सम्पादकीय

१—'शाक्त-साधना-पीठ'

शाक्त-साधना एक वैज्ञानिक साधना है। उसके द्वारा कोई भी व्यक्ति आध्यात्मिक शक्ति का संचय कर अपनी अभीष्ट मनोकामना को पूर्ण कर सकता है, परन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि इस साधना के सिद्धान्तों को अच्छी तरह से समझा जाय और उसके क्रियात्मक पक्ष को हृदयंगम कर उसका अभ्यास किया जाय। साधना के सिद्धान्त और क्रियात्मक पद्धति को जाने-समझे बिना पूर्ण सफलता का मिलना सम्भव नहीं है।

आज अधिकतर लोग यह देखकर कि शाक्त-साधना से इष्ट-सिद्धि वास्तव में शीघ्र और अवश्य मिलती है, इस साधना की ओर आकृष्ट होते हैं किन्तु वैज्ञानिक ढंग से उन्हें सिद्धान्तों और क्रियात्मक पद्धति का ज्ञान नहीं हो पाता। इस त्रुटि को दूर करने के उद्देश्य से ही "शाक्त-साधना-पीठ" की स्थापना की गई है।

"शाक्त-साधना-पीठ" से जिज्ञासु बन्धु अधिक-से-अधिक लाभ उठा सकें, इस विचार से "कौल-कल्पतरु" चण्डी के इस अङ्क के सम्पादकीय में "पीठ" के प्रवेश-पत्र का स्पष्टीकरण किया जा रहा है। यह प्रवेश-पत्र दो रुपये भेजकर सभी बन्धु मँगा सकते हैं।

"पीठ" के प्रवेश-पत्र को ध्यान से पढ़ने से पाठकों को ज्ञात होगा कि जिज्ञासु बंधुओं को तीन श्रेणियों में रखा गया है—

१ वे बन्धु, जो शाक्त-साधना के सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं;

२ वे बन्धु, जो शाक्त-साधना की दीक्षा प्राप्त करना चाहते हैं और—

३ वे बन्धु, जो शाक्त-साधना की दीक्षा प्राप्त कर चुके हैं और अपनी साधना के संबंध में आवश्यक मार्ग-दर्शन प्राप्त करना चाहते हैं।

"पीठ" के प्रवेश-पत्र के पृष्ठ १ पर यह निर्देश किया गया है कि "पीठ" के सदस्य बननेवाले बन्धु अब तक की गई अपनी साधना का विवरण लिखने की कृपा करें। यह विवरण बहुत ही आवश्यक है क्योंकि इसी के आधार पर वांछित मार्ग-दर्शन कराया जायगा। अतः इस सम्बन्ध में यहाँ यह स्पष्ट करना उचित प्रतीत होता है कि उक्त विवरण में किन बातों का उल्लेख होना चाहिए।

पहली बात तो यह है कि शाक्त-साधना-विषयक कौन-कौन सी पुस्तकें आपके पास विद्यमान हैं, उनका पूरा नाम, लेखक-प्रकाशक का नाम कृपया लिखें।

दूसरी बात यह कि आजकल कितना समय प्रतिदिन क्रियात्मक साधना में लगाते हैं और वह साधना किस पुस्तक के अनुसार करते हैं। यदि किन्हीं आचार्य-गुरुदेव महानुभाव का निकट-सम्पर्क आपको प्राप्त है, तो कृपया उनका शुभ नाम व पूरा पता कृपया लिखें।

तीसरी बात यह है कि अब तक की आपकी साधना का फल आपको कैसा मिला है? आपको अपनी साधना से कहाँ तक सन्तोष है?

साधना के फल-स्वरूप जीवन में सफलता मिली है या नहीं? यदि मिली है, तो उसका उल्लेख करें। यदि नहीं मिली है, तो उसे स्पष्ट करें। कोई विशेष घटना रही हो, तो उसका वर्णन करें। जन्म-पत्र हो, तो प्रतिलिपि भेजें।

हमें आशा है कि "शाक्त-साधना-पीठ" द्वारा अधिक-से-अधिक बन्धु लाभान्वित होंगे और शाक्त-साधना की पद्धति को वैज्ञानिक अर्थात् विधि-सम्मत प्रामाणिक ढंग से जान-समझ कर अपनी भौतिक अभिवृद्धि के साथ-साथ आध्यात्मिक निःश्रेयस को प्राप्त करेंगे।

अन्त में पुनः निवेदन है कि "पीठ" के "प्रवेश-पत्र" को भर कर और जिस श्रेणी के सदस्य बनें, उसके प्रथम मास का निर्धारित शुल्क भेजकर "पीठ" की सेवाओं से लाभ उठावें।

२—संगठन

सुरतगिरि बंगला, कनखल (हरिद्वार) से स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती लिखते हैं कि—

श्री रामतीर्थ, दण्डी संन्यासी जी महाराज ने 'ब्राह्मणों के दो दल' शीर्षक एक लेख में वेद, स्मृति, तन्त्र, पुराणादि शास्त्रों का प्रमाण देते हुये यह सिद्ध किया है कि पशु-बध, हिंसा, मांस-भक्षण शास्त्रों द्वारा वैध है। अश्वमेध और गोमेध आदि यज्ञों का भी उन्होंने उल्लेख किया है। तत्पश्चात् आपने ब्राह्मण-समुदाय को दो दलों (सुर और असुर) में विभक्त करते हुये लिखा है कि शास्त्रों में कही गई हिंसा-विधि को ब्राह्मणों का सुर दल कदापि नहीं मानता है, केवल असुर-दल ही शास्त्र-विहित हिंसा-विधि का पोषक है। अंत में आपने लेख का उपसंहार इस प्रकार किया है:—

" इसलिये देव ब्राह्मणों का कर्तव्य है कि पहले धर्म-ग्रन्थों का सुधार करके फिर उनके प्रमाणों को ग्रहण करके भारतीय धर्म का प्रचार करें। तभी गो-रक्षा हो सकेगी और आर्य हिन्दू जाति का मतान्तरों में शिर ऊँचा हो सकेगा। अन्यथा किसी भी प्रकार से शिर ऊँचा नहीं हो सकता, इसलिये पंजाब की शास्त्री-परीक्षा में पढ़ाये जानेवाले, गो-रक्षक राजा दिलीप और राम के गुरु-वशिष्ठ को गोमांस-भक्षण रूप मिथ्या कलंक लगानेवाले 'उत्तर-राम' चरित नामक पुस्तक का परीक्षा से बहिष्कार कराना चाहिये।"

मेरे विचार से श्री स्वामी जी महाराज का यह सुझाव उपयुक्त है कि ब्राह्मणों के सुर और असुर दोनों दलों को अपने मत-भेद हटा कर एक हो जाना चाहिये ताकि वे संगठित होकर भारतीय धर्म का प्रचार करने में समर्थ हो सकें। सुझाव केवल उत्तम ही नहीं, सामयिक भी है, क्योंकि कहा है 'संघे शक्तिः कलियुगे'। इस कलि-युग में संगठन में ही शक्ति है।

श्री स्वामी जी महाराज का यह भी सुझाव है कि संगठित होकर **भारतीय धर्म** का प्रचार करें। भारतीय धर्म से आपका क्या अभिप्राय है, यह आपने स्पष्ट नहीं किया पर जहाँ तक मेरा विचार है, आपका अभिप्राय कलिकाल के धर्म से है। कलि-काल के धर्म के संबंध में तंत्रों में भगवान् शंकर के इस प्रकार के आदेश मिलते हैं:—

१. 'कृते श्रुत्युक्त मार्ग-स्यात् त्रेतायां स्मृति-संभवः।
द्वापरे तु पुराणोक्त कलौ आगम-सम्मतः॥'

सतयुग में श्रुति (वेद) धर्म, त्रेता युग में स्मृति धर्म, द्वापर में पुराण धर्म और कलियुग में आगम धर्म प्रशस्त है।

२. निर्वीर्या श्रौत जातीयाः विष-हीनोरगा इव।
आगमोक्त-विधानेन कलौ देवान् यजेत् सुधीः॥

विषहर सर्प जिस प्रकार निःशक्ति हो जाते हैं, उसी प्रकार कलियुग में वेद-मन्त्र निःशक्ति हो जाते हैं।

इसलिए बुद्धिमान मनुष्य को चाहिये कि वह कलियुग में आगम शास्त्र के अनुसार देवार्चन करे।

३. यत्रास्ति भोगाः न च तत्र मोक्ष,
यत्रास्ति मोक्षः न च तत्र भोगाः।
श्री–सुन्दरी-सेवन-तत्पराणाम्,
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥

जहाँ भोग हैं, वहाँ मोक्ष नहीं मिलता और जहाँ मोक्ष है, वहाँ भोग नहीं मिलते, परन्तु भगवान् शंकर कहते हैं कि हे पार्वती! जो मनुष्य कलियुग में तेरी उपासना आराधना करेंगे, उनको भोग और मोक्ष दोनों साथ-साथ मिल सकेंगे

४. कले प्राबल्य-समये, सर्व-धर्म-विवर्जिते।
गोपनात् कुल-धर्मस्य, कौलोऽपि नारकी भवेत्॥

कलियुग के सबल होने पर जब सब धर्म नष्ट हो जावेंगे, उस वक्त यदि कौल कुल-धर्म (आगमोक्त शाक्त-धर्म) को छिपावेगा, तो वह नर्क का अधिकारी होगा।

आज हम देखते हैं कि हिन्दू धर्म की छीछालेदर हो रही है। हमारे चौथे वर्ण के लोग, जिनकी संख्या तीन वर्णों से अधिक है, दिन-प्रतिदिन हिन्दू धर्म को छोड़कर ईसाई धर्म को अपनाते जा रहे हैं। इस प्रकार हिन्दूओं की संख्या दिन-दिन घटती जा रही है। यदि हिन्दू-समाज नहीं चेता, तो वह दिन दूर नहीं, जब कि सारा-का-सारा हिन्दू समाज एक दिन समाप्त हो जाय।

क्या ही अच्छा हो, यदि हमारे धर्माचार्य इस विषय पर ध्यान दें और संगठित होकर भारतीय धर्म का प्रचार करें, ताकि देश में जो झूठ-कपट, चोर-बाजारी, भ्रष्टाचार, अत्याचार, अनाचार फैल रहा है, वह निर्मूल होकर सुख-शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो।

सङ्गठन के सम्बन्ध में श्री स्वामी दिव्यानन्द जी की कामना निश्चय ही श्लाघनीय है, किन्तु दण्डी संन्यासी जी महाराज का कथन मूलतः निराधार है। ब्राह्मण-समुदाय को 'सुर' और 'असुर' के दो दलों में विभाजित करना हास्यास्पद है और विभाजन का आधार शास्त्र-विहित हिंसा को मानना तो सर्वथा निस्सार है। जो शास्त्र में विहित है, वह 'आसुरी' कैसे हुआ? वस्तुतः आमिष और निरामिष-भोजी दोनों ही समुदाय 'सुर'-समुदाय ही मानने योग्य हैं। असुर समुदाय तो वही हो सकता है, जो आसुरी दुर्गुणों से युक्त हो। 'सुर' और 'असुर' में न पहले कभी सद्भाव था और न अब हो सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि भाषा, भोजन, वस्त्रादि सभ्यता की बातों में विभिन्नता के आधार पर परस्पर द्वेष-भाव दूर हो और संस्कृति की एकता के आधार पर भारतीय लोग सङ्गठित होने की भावना को दृढ़ीभूत करें।

३—शोक-समाचार

पं० श्री बेनीराम दुबे पुरानी बस्ती, रायपुर (म० प्र०) से लिखते हैं कि—

रायपुर-निवासिनी श्रीमती भगवती बाई श्री १००८ आप्तकाम श्री गुप्तावतार बाबा के प्रमुख शिष्य श्री १०८ पूज्य श्री वंशीलाल महाराज की पट्ट शिष्या थीं। ये तथा इनके पति श्री अयोध्याप्रसाद अग्रवाल मनसा वाचा कर्मणा परम गुरु-भक्त रहे।

दिनांक १०-२-१९७४ को १२ बजे रात्रि में श्रद्धेया श्रीमती भगवती बाई भौतिक लीला समाप्त कर अन्तिम चेतना जगदम्बा के चरणों में समर्पण कर उनके लोक को प्रस्थान कर गईं।

आपके देहान्त से रायपुर के गुप्तावतार-मण्डल को अपूरणीय क्षति पहुँची है। श्री जगदम्बा से प्रार्थना है कि गतात्मा को चिर शांति और सन्तप्त जनों को इस क्षति के सहने की शक्ति प्राप्त हो।

"कौल-कल्पतरु" चण्डी का तैंतीसवाँ वर्ष

श्री जगदम्बा की दया और शाक्त बन्धुओं के सहयोग के फलस्वरूप इस अङ्क से 'कौल-कल्पतरु' चण्डी के प्रकाशन का ३२ वाँ वर्ष पूर्ण हो रहा है। इस वर्ष कागज का मूल्य अचानक ही अत्यधिक बढ़ जाने के कारण हमें न केवल 'चण्डी' को मासिक के स्थान पर त्रैमासिक रूप में प्रकाशित करने को बाध्य होना पड़ा, अपितु कागज भी घटिया प्रयुक्त करना पड़ा। जितने पृष्ठों का साहित्य हम जिस प्रकार सचित्र रूप में देना चाहते थे, उसमें भी अर्थाभाव के कारण हमें संयम करना पड़ा। अस्तु।

अब चैत्र सम्वत् २०३१ से 'कौल-कल्पतरु' चण्डी का प्रकाशन हम द्वैमासिक रूप में करने जा रहे हैं। इससे प्रेमी पाठकों को चार के स्थान में छः अङ्क वर्ष में प्राप्त होंगे। साहित्य भी अधिकाधिक उपयोगी और विविध प्रकार का देने का प्रयास किया जायेगा। आवश्यकता केवल इस बात की है कि 'चण्डी' के ग्राहक बन्धु स्वयं अपना वार्षिक शुल्क बारह रुपए तो इस अङ्क के प्राप्त होते ही भेजने की कृपा करें ही; साथ ही कम-से-कम दो नए ग्राहक बनाकर उनसे भी वार्षिक शुल्क शीघ्र भिजवाने की कृपा करें। जो महानुभाव आर्थिक सहायता कर सकते हों, वे कृपया अपना योग-दान करने की कृपा करें। तभी हम इस कठिन काल में नियमित और सुचारु रूप से 'कौल-कल्पतरु' चण्डी का प्रकाशन करने में कृत-कार्य हो सकेंगे।

हमें पूर्ण विश्वास है कि श्री जगदम्बा के सभी भक्त शाक्त धर्म की इस एकमात्र पत्रिका के उत्कर्ष के लिए यथा सम्भव अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करने की कृपा अवश्य करेंगे। हमारा विचार पुनः मासिक रूप में ही पूर्ववत् इस पत्रिका के प्रकाशन का है, किन्तु यह तभी सम्भव है, जब कम-से-कम एक हजार ग्राहकों का सहयोग हमें सुलभ हो। यदि सभी पाठक बन्धु इस ओर ध्यान देकर प्रयत्न करने की कृपा करेंगे, तो उक्त विचार के कार्यान्वित होने में कुछ भी कठिनाई नहीं होगी। आशा है कि हमारे इस निवेदन को सभी शाक्त-साहित्य-प्रेमी गम्भीरता से पढ़ेंगे और अपना हार्दिक सहयोग प्रदान कर यश तथा पुण्य के भागी बनेंगे।

उपयोगी प्रकाशन

साधना-रहस्य—

लेखक—‘[illegible]-मार्तण्ड’ राजगुरु स्वर्गीय पं० योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति जी शास्त्री; मूल्य १५.००

दीक्षा, क्रम-दीक्षा, गुरु-मण्डल, श्री गुरु-क्रम, गुरु-महिमा, दीक्षा के भेद, मन्त्र-रहस्य, पूजा के लिए आसन व पुष्प, माला, माला-संस्कार-विधि, माला-प्रार्थना व विसर्जन, मन्त्रों के भेद, मन्त्रों की षट्-चक्र-शुद्धि, दूषित-मन्त्र का उपाय, संस्कार, मन्त्र-शक्ति व देवता, षोडश पात्र, तत्वों का रहस्य व शुद्धि, शाक्त-धर्म, शाक्त-दर्शन, समयाचार और मत, हादिमत व कादिमत, पूर्णाभिषेक विधान, कौल-श्राद्ध और अन्त्येष्टि, आम्नायों का रहस्य, सिद्ध के लक्षण से महत्वपूर्ण विषयों का सरल और सुबोध शैली में विवेचन। विस्तृत जानकारी के लिए उपर्युक्त ग्रन्थ को मंगाइये।

तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि—

लेखक—महामहोपाध्याय डा० गोपीनाथ कविराज मूल्य ७.५०

सत्य का परम स्वरूप तथा महाशक्ति की लीला, भगवान का जीवोद्धार, क्रम—दीक्षा, तन्त्र का स्वरूप, आविर्भाव द, शक्ति-साधना, तान्त्रिक पूजा का परम आदर्श, षट्चक्र का भेद, षट्चक्र-भेद की परावस्था, मन से उन्मनी, ान, सृष्टि का उन्मेष (शाक्त मत), अमरत्व-साधन पर शाक्तदृष्टि, जप-विज्ञान, नाद-तत्व, आदि-आदि। पूर्ण री के लिये उपर्युक्त ग्रन्थ को शीघ्र मंगाइये।

अध्यात्म-चर्चा

प्रथम भाग : मूल्य रु० १-५०

लेखक पण्डित श्री मुन्नालाल दुबे जी ने राजकीय सेवा से अवकाश ग्रहण करने के बाद आध्यात्मिक साहित्य अध्ययन करने के साथ-साथ आवश्यक बातों को संग्रह करना प्रारम्भ किया। इन्हीं बातों को उक्त प्रकाशित किया गया है। प्राणियों की मुख्य इच्छा, संसार की उत्पत्ति, हमारी अज्ञानता, कर्तव्य क्या है, उसकी मुक्ति, धर्म और ज्ञानी, माया की महिमा, सभी धर्मों का एक लक्ष्य, मनुष्य का कोष्ठ शरीर, और माया, जीव ही दोषी है, मोक्ष और आवागमन, आवागमन के कष्ट, छुटकारे का उपाय, कल्याण के और ध्यान, प्रणव की महिमा, मृत्यु पर वृथा शोक, आत्मा का विज्ञान, भगवत्कृपा, परमात्मा का व्यापक परमात्म-स्वरूप का तत्व, श्रद्धा की प्रधानता, सुख और दुःख, आशा और निराशा, मुक्ति-दायिनी विशुद्ध बुद्धि, वृत्तियाँ, आत्मा और देह, भक्ति और यम-नियमादि, गुरु की महिमा, मानव धर्म, शांति की खोज, मानव के ध्येय, ज्ञान-भक्ति तथा कर्म, हिंदूधर्म की महत्ता, मानव जीवन क्या है, बुद्धि और विवेक—जैसे शीर्षकों की उपयोगिता स्वयं-सिद्ध है। प्रचार-हेतु मूल्य लागत मात्र रखा गया है। अपनी प्रति कृपया शीघ्र मंगावें।

* * *

कल्याण मंदिर प्रकाशन

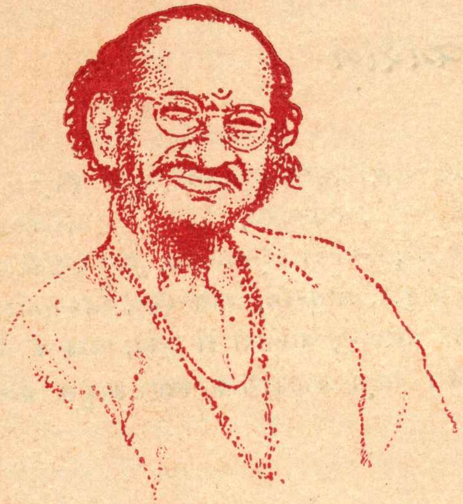

गुप्तावतार बाबा श्री

अनमोल विचार

' ....."गायत्री" में साधक स्थिति में गति और "नवार्ण" में साधक चामुण्डा याने की उत्पत्ति, स्थिति और लय समाया हुआ विश्व की सञ्चालिका शक्ति "चण्ड-वेगेति अर्थात तीव्र-गति में 'विच्चे' याने शरण मांगता है। इस तरह गायत्री का पूरा मन्त्र में भी है।...'

('मुमुक्षु मार्ग' पष्ठ ४३—गायत्री

❀ ❀ ❀

श्री प्रभु—

१ माया का रचनवाला स्वामी है—जिस माया से विश्व को जीवन को तात्रों का भान होता है। (माया बीज)

२ श्रेयत्व का कर्त्ता है, जिससे जीवन की उलझन सुलझाई जाती है सूझती है (श्री बीज)।

वह उस प्रवाह का मूल कारण है, जिसे तरने से कल्याण होता है।

३ विद्या-अविद्या के संघर्षण का कर्त्ता है, जिससे मनुष्य को क्रिया का मिलता है और सर्व विकार पचकर ताकत-युद्ध-शक्ति (एबिलिटी टु स्ट्रगल) (क्रिया बीज)।

४ मूलाग्नि व प्रवाहिनी गति का स्वामी है, जिससे जड़त्व दूर (वाग्बीज)।

५ परिश्रम का कर्त्ता है, जिससे जीवन की शुष्कता दूर होती है (काम

६ नवनवत्व रूप व्याधि व प्राचीनत्व-रूप मृत्यु से बचानेवाला और सिखानेवाला है। (रहस्य बीज)

७ सत्य का काश, उसकी पूर्ति व उसको पहचानने की शक्ति को अस्तित्व कैसे सम्भाल कर सुरक्षित रखा जाय, यह सिखलानेवाला है! (कूर्च बीज)

प्रभु सबका कल्याण करनेवाला है, उसके चरणों में [रज बन कर] के भाव में अखिल विश्व की उपासना समाई हुई है।

[चरणांकिता कुण्डलिनी-चण्डी २०१९,

❀ मुमुक्षु मार्ग—भाग ३ के "रहस्योद्घाटन" अध्याय मे उक्त विचारों को विस्तार से पढ़िए, लाभ उठाइए

सम्पादक, मुद्रक एवं प्रकाशक : श्री पुण्यशील शर्मा, बी० ए०, "शाक्त-साधना-पीठ," प्रयाग—६

काल-कल्पतरु

चण्डी

'शिवः शक्त्या युक्तौ यदि भवति शक्तः प्रभवितुम् ।
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ॥
अतस्त्वामाराध्यां हरि-हरविरिंच्यादिभिरपि ।
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृत-पुण्य प्रभवति ॥'

—श्री आद्य शङ्कराचार्य

अर्थात् हे भगवती! भगवान् शिव तुम्हारी सहायता से सृष्टि, स्थिति और सहार करने में समर्थ होते हैं। यदि ऐसा न हो; यदि वे तुम्हारी सहायता न लें, तो अकेले हिल-डुल भी नहीं सकते। इसलिये ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि देवताओं से आराधनीया तुमको प्रणाम करने के लिये बड़े पुण्यों की आवश्यकता है। तुम्हारी स्तुति करना तो दूर रहा, विना पुण्य के तुम्हें प्रणाम करने में भो मनुष्य समर्थ नहीं है।

वार्षिक शुल्क : १२)
एक प्रति : २)

शाक्त-साधना पीठ, प्रयाग-६

पर्व-दिन

२४ मार्च ७४	चैत्र शुक्ल १	रविवार	नवरात्रारम्भ
२ अप्रैल ७४	चैत्र शुक्ल ९	सोमवार	भगवती तारा जयन्ती
५ अप्रैल ७४	चैत्र शुक्ल १२-१३	गुरुवार	प्रदोष व्रत
२९ अप्रैल ७४	वैशाख कृष्ण १२	शुक्रवार	प्रदोष व्रत
२४ अप्रैल ७४	वैशाख शुक्ल २	बुधवार	मातङ्गी जयन्ती
२५ अप्रैल ७४	वैशाख शुक्ल ३	गुरुवार	परशुराम जयन्ती
२६ अप्रैल ७४	वैशाख शुक्ल ४	शुक्रवार	भगवती पीताम्बरा जयन्
२७ अप्रैल ७४	वैशाख शुक्ल ५	शनिवार	जगद्गुरु शङ्कराचार्य,,
३ मई ७४	वैशाख शुक्ल १२	शुक्रवार	प्रदोष व्रत
४ मई ७४	वैशाख शुक्ल १३	शनिवार	भगवती छिन्नमस्ता जयन्
१९ मई ७४	ज्येष्ठ कृष्ण १२-१३	रविवार	प्रदोष व्रत

नवीन तान्त्रिक पञ्चाङ्ग (मूल्य ४) रु० के अनुसार

* * *

(आवरण पृष्ठ ३ का शेषांश)

सप्तशती विशेषाङ्क (चण्डी २०१३)	३०-००
सविधि श्रीविद्या खड्ग माला	४-००
सार्थ सौन्दर्य लहरी	४-५०
साधक का संवाद	-५०
सांख्यायन तन्त्र	३-००
सौन्दर्यलहरी पद्यानुवाद	[illegible]-००
हिन्दी कुलार्णव	३-००
हिन्दी कौलावली निर्णय	५-००
हिन्दी शाक्तानन्द तरङ्गिणी	[illegible]-५०
हिन्दी तन्त्रसार ५ भाग	१०-०
ज्ञानसङ्कलिनी तन्त्र	१-५०
हिन्दुओं की पोथी	३-०
Wine to Women	2.0

पं० देवीदत्त शुक्ल स्मारक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

प्रयाग—६

'कौल-कल्पतरु' चण्डी

वर्ष ३३]　　चैत्र-वैशाख शुक्लाष्टमी २०३१ वि०　　[संख्या १-२

अनुक्रमणिका

१. श्री दुर्गा आपदुद्धाराष्टक स्तोत्रम् : सङ्कलित २
२. वासन्तिक नवरात्र-रहस्य : पंडित-प्रवर श्री नथमल जी दाधीच, लक्ष्मणगढ़, सीकर (राजस्थान) ३
३. प्रयोग-माला — अनुभूत मन्त्र : वेदाचार्य पं० लक्ष्मणदत्त शास्त्री चतुर्वेद, महोली पौर, मथुरा (उ०प्र०) ५
४. भगवती दिगम्बरी दक्षिण काली की आरती : आशु-रत्न-कवि श्री धन्नराज, साँभर लेक (राजस्थान) ८
५. सिद्धिमार्ग के पथिक--वामा खेपा : श्री हरिहर भट्टाचार्य
६. धार्मिक जगत् की हलचल [१-रायपुर में सनातन-धर्माचार्य-सम्मेलन, २-पटना में "परावाणी," ३-नव-सम्वत्सर-समारोह, ४-श्री महादुर्गा पीठ] ११
७ जिज्ञासु के पत्र : १३
८. सदुपदेश-सुधा--पवित्र आत्मा : सङ्कलित १४
९ सम्पादकीय [१ शाक्त-सङ्गठन की समस्या, २ शक्ति-स्वरूप-तत्व] १५

शक्ति-स्वरूप-तत्व

१०. मा : श्री पूज्य चरण परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी शङ्कर तीर्थ महाराज ९
११. जय मा : गुप्तावतार बाबा श्री १६
१२. शक्ति-तत्व : विद्यावारिधि पं० शिवनाथ शास्त्री १७
१३. श्री भवानी स्तुति : श्री आद्य शङ्कराचार्य २०
१४. वेद में शक्ति-तत्व : परम पूज्य 'राष्ट्र-गुरु' श्री १००८ स्वामी जी महाराज, 'श्री पीताम्बरा पीठ' २१

समाचार पत्र केन्द्रीय अधिनियम (नियम ८ फार्म ४,) १९५६

'कौल-कल्पतरु' चण्डी मासिक [हिन्दी] के स्वामित्व तथा तत्सम्बन्धी विवरण

१-प्रकाशन का स्थान　प्रयाग
२-प्रकाशन की अवधि　द्वैमासिक
३-मुद्रक का नाम　पुण्यशील शर्मा
राष्ट्रीयता　भारतीय
पता　परावाणी प्रेस प्रयाग—६
-प्रकाशक का नाम　पुण्यशील शर्मा
राष्ट्रीयता　भारतीय
पता　शाक्त-साधना पीठ, प्रयाग-६
५-सम्पादक का नाम　पुण्यशील शर्मा
राष्ट्रीयता　भारतीय
पता　शाक्त-साधना पीठ, प्रयाग-६
६—उन व्यक्तियों के नाम और पते जो इस पत्रिका के मालिक या साझेदार हैं या जो उसकी पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझीदार हैं—पुण्यशील शर्मा

मैं पुण्यशील शर्मा, घोषित करता हूं कि ऊपर दिए गए विवरण मेरी पूरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सही हैं।

दिनाङ्क १ अप्रैल १९७४　　**पुण्यशील शर्मा (प्रकाशक)**

-: श्रीदुर्गा आपदुद्धाराष्टकं स्तोत्रम् :-

नमस्ते शरण्ये शिवे सानुकम्पे, नमस्ते जगद्व्यापिके विश्व-रूपे ।
नमस्ते जगद्वन्द्य-पादारविन्दे, नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥१॥
नमस्ते जगच्चिन्त्यमान-स्वरूपे, नमस्ते महायोगि-विज्ञान-रूपे ।
नमस्ते नमस्ते सदानन्द-रूपे, नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥२॥
अनाथस्य दीनस्य तृष्णातुरस्य, भयार्तस्य भीतस्य बद्धस्य जंतोः ।
त्वमेका गतिर्देवि निस्तार-कर्त्री, नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥३॥
अरण्ये रणे दारुणे शत्रु-मध्ये, जले सङ्कटे राजगेहे प्रवाते ।
त्वमेका गतिर्देवि निस्तार-हेतुर्नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥४॥
अपारे महा-दुस्तरेऽत्यन्त-घोरे, विपत्सागरे मज्जतान् देह-भाजान् ।
त्वमेका गतिर्देवि निस्तार-नौका, नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥५॥
नमश्चण्डिके चण्ड-दोर्दण्ड-लीला, समुत्खण्डिताखण्डलाशेष-शत्रोः ।
त्वमेका गतिर्विघ्न-सन्दोह-हर्त्री, नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥६॥
त्वमेकाखिलाराधिता सत्यवादी-ननेकाऽखिला क्रोधना क्रोधनिष्ठा ।
इडा पिङ्गला त्वं सुषुम्णा च नाडी, नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥७॥
नमो देवि दुर्गे शिवे भीम-नादे, सदा सर्व-सिद्धि-प्रदात्रि स्वरूपे ।
विभूतिः सतां कालरात्रि-स्वरूपे, नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥८॥

शरणमसि सुराणां सिद्ध-विद्याधराणां,
मुनि-दनुज-नराणां व्याधिभिः पीडितानाम् ।
नृपति-गृह-गतानां दस्युभिस्त्रासितानां,
त्वमसि शरणमेका देवि दुर्गे प्रसीद ॥९॥
इदं स्तोत्रं मया ख्यातमापदुद्धारमष्टकं ।
त्रिसन्ध्यमेक-सन्ध्यं वा पठनादेव सङ्कटात् ॥१०॥
मुच्यते नात्र सन्देहो भुवि स्वर्गे रसातले ॥११॥

वासन्तिक नवरात्र-रहस्य

पण्डित-प्रवर श्री नथमल जी दाधीच, कौलाचार्य, श्री भुवनेश्वरी महा शक्तिपीठ

भारत में नवीन वर्षारम्भ चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से होता है। इसी समय प्रकृति भी नवीन सौन्दर्य से शृंगार करके वसंत की नव आभा धारण करके संसार को मोहित करती है।

इस वसंत-सौन्दर्य-मय भारत में चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से अरूप रूप यौवना वसन्त प्रकृति की प्राण-स्वरूपा श्री दुर्गा भगवती की "वासन्तिक नवरात्र पूजा" प्रारम्भ होती है। इस उत्सव में समग्र भारत के हिन्दू एक-प्राण होकर विशाल धन-राशि व्यय करते हुए एक साथ संलग्न होकर आनन्द-तरंग में प्रवाहित हो रहे हैं, किन्तु सामान्य जन को यह बोध नहीं है कि यह दुर्गा भगवती कौन हैं? हम किसकी आराधना करते हैं? दस भुज क्या हैं? यह दुर्गा असुर-विनाश पूर्वक युद्ध-निमग्न क्यों है?

ब्रह्माण्ड की समष्टि-शक्ति ही भगवती श्री दुर्गा है एवं सत्व गुण ब्रह्म का साकार रूप है। अथवा भगवती तनु ही दस-भुजा दुर्गा-मूर्त्ति है। यह विश्व-रूपिणी महामाया नित्य है। यह समस्त विश्व इससे उत्पन्न हुआ है। इसके द्वारा ही विश्व में पुण्य और पाप-शक्ति का संग्राम अनिवार्य रूप से हो रहा है। इस संग्राम में कभी देवता विजयी होते हैं, तो कभी असुर। जब देव पराजित होकर असुर जयी होते हैं, तब इस जगत् में पुण्य के परिवर्तन-स्वरूप पाप-शक्ति का प्राबल्य ही दृष्टि-गोचर होता है। एवं जब देव गण हीन-शक्ति होते हैं, तब पुण्य शक्ति की रक्षा के लिए भगवती आविर्भूता होती हैं।

मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत चण्डी में कथित है कि पुरा काल में दैत्याधिपति महिषासुर के साथ एक सम्वत्सर-पर्यन्त देवजन का संग्राम घटित हुआ। इस युद्ध में असुरों द्वारा देव-राज इन्द्र पराजित हुए एवं महिषासुर ने स्वर्ग पर अधिकार कर लिया। पराभूत देव ब्रह्मा के निकट सहायता प्राप्त कर हरिद्वार-समीप उपस्थित हुए। शिव के मुख-मण्डल से महाज्योति निर्गत हुई। साथ ही इन्द्रादि देवगण के देह से भी ज्योति निकलीं। एकीभूत यह ज्योति-राशि श्री दुर्गा स्वरूपा नारी-मूर्ति में परिणत हो गया।

देवगण भक्ति-भाव से अवनत हो श्री पराम्बा का स्तवन करने लगे। स्तवन से सन्तुष्ट होकर प्रसन्न-वदना देवी ने कहा कि—"निश्चिन्त होकर अपने स्थान को जाओ। मैं भी महिषासुर का संहार करने जाती हूँ। तुम लोगों को यही वर देती हूँ कि जब-जब असुर-बल प्रबल होकर तुम लोगों का अधिकार हस्त-गत करे, तब-तब मेरा स्मरण करने पर मैं आविर्भूत होकर दानव-संहार कर तुम लोगों को स्वाधिकार-प्रतिष्ठित करूँगी।"

इस आख्यान से प्रकट है कि देवी समस्त देव-शक्ति की समृद्धि-रूपिणी है। शक्ति जब व्यष्टि भाव में व्यवस्थित है, तब देव-शक्ति एवं समष्टि भाव से जब व्यवस्थित होगी, तब वही महाशक्ति दुर्गा दश महा विद्या-रूपा है। वैज्ञानिक जगत् को स्थूल भाव से देखते हैं। अतः उनकी दृष्टि सीमा-बद्ध रहती है। जगत् के तो सूक्ष्म, सूक्ष्मतर एवं सूक्ष्मतम स्तर हैं। इसका उनको पता ही नहीं है। उनके मत में पदार्थ की तीन अवस्थाएँ हैं—ठोस, द्रव व गैस। जैसे जल की तीन अवस्थाएँ बरफ, जल, वाष्प। कोई-कोई वैज्ञानिक आकाश (ईथर) पदार्थ को काय-क्लेश से और भी स्वीकार करते हैं, किन्तु इससे अधिक उन्नत दृष्टि उनकी नहीं है।

आर्य ऋषियों का कथन है कि इस स्थूल जगत् के भूर्लोक के परे और भी सात स्तर हैं। उनके नाम आकाशादि पंच-भूत हैं। एक स्तर के भूत का एक-एक स्वतंत्र तत्व है। इसके ग्रहण हेतु एक-एक इन्द्रिय है। जिन तत्वों के संयोग से जिस स्पन्दन का अनुभव इन्द्रियों को होता है, उनको पंचतन्मात्रा कहते हैं। पंच-तत्वों के उपादान-भूत परमाणु को ही 'तन्मात्रा' कहते हैं। जैसे पार्थिव परमाणु का नाम गंध तन्मात्रा है। पंच तन्मात्राओं तक जाने से स्थूल जगत् को भूर्लोक कहते हैं।

इससे परे अन्य षट् लोक हैं। इनके नाम भू से सत्य तक सप्त हैं। ये सप्त लोक प्रत्येक भौतिक उपादान से गठित हैं। परस्पर केवल स्थूल-सूक्ष्म का तारतम्य है। भूर्लोक की तरह ऊपर के षट् लोकों के भी सात स्तर हैं। भूर्लोक का जो सूक्ष्मतम स्तर है, वही वैज्ञानिकों का आदि तत्व है एवं वही जगत् का परम परमाणु आदि अद्वितीय महाभूत है। उससे ऊपर निम्न षट् स्तर का उपादान गठित होता है। यही आकाशादि पंच तत्व प्रकट करता है, किन्तु यह आदि तत्व नहीं है। वस्तुतः भूर्लोक का आदि तत्व भुवर्लोक स्थूलतम तत्व से स्थूल है। भुवर्लोक के आदि तत्व की तुलना से भूर्लोक का आदि तत्व परमाणु नहीं है। अन्यान्य लोक-विषय में भी इसी प्रकार है।

सप्त लोक पर्यन्त जो सूक्ष्माति-सूक्ष्म तत्व आदि तत्व उपनीत होता है, वही आर्य ऋषि–कथित 'मूल प्रकृति' है। यही सर्व सूक्ष्मतम महा मूलभूत पर स्तर-संहृत होकर सर्व-निम्न स्तर भूर्लोक के आदि तत्व 'प्रोटाइल' का रूप धारण करता है। अतः प्रकृति 'प्रोटाइल'–जातीय होने पर भी एक पदार्थ नहीं है। इसी का अन्य नाम 'माया' है। यह मूल प्रकृति सत्त्व-रज-तम तीन परस्पर-विरोधी प्रवणता की रंगभूमि है। काल-वश जब इन तीनों की साम्य होता है, तब 'प्रकृति' एवं यह अवस्था अव्यक्त प्रलय-अवस्था है। इस साम्यावस्था की जब विच्युति होती है, तब व्यक्तावस्था होकर सृष्टि की अभिमुखी होती है और उसे 'प्रधान' कहते हैं। सूक्ष्म से स्थूल होकर प्रकृति सप्त लोक से अनुलोम-क्रम से व्याकृत होती है। प्रलय-काल में ये सप्त लोक स्थूल से सूक्ष्म स्तर विलोम-क्रम से मूल प्रकृति में उपशान्त होते हैं। यही हमारी सृष्टि-स्थिति-संहार-कारिणी काली दुर्गा प्रभृति नाम-रूप से ऋषियों के हृदय में प्रकाशित हो रही थी।

ऋषियों ने ध्यान-योग से माँ का दर्शन किया। दश-भुजा मूर्ति प्रकाशित हुई। वही श्री दुर्गा मूर्ति है। भारत-वासी प्रति वर्ष वसन्त ऋतु में इसी महा-शक्ति की आराधना करते हैं। अतः वासन्तिक नवरात्र महाशक्ति की आराधना मात्र है। महाशक्ति ने पाप और यथेच्छा-चारिता-स्वरूप पशुबल रूपी महिषासुर को अपने शासन में कर रखा है। इसी महाभाव की प्रतिमा वसन्तोत्सव में पूजित होती है। महाशक्ति दश-दिक् में व्याप्त होकर अवस्थित है और ब्रह्माण्ड का सृष्टि-स्थिति साधन करती है। अतः वह दशभुजा है। भीषण बल-विक्रम-शक्ति इन्द्रिय-गण का राजा मन अर्थात् सिंह उसका वाहन है। अविद्या-जात अज्ञानरूपी असुर को पाश में आबद्ध करके उसके वक्ष में भीषण विवेक-शूल बींधकर उसका केश ग्रहण कर रखा है। दक्षिण में सर्व-सिद्धि-प्रदाता ज्ञान-गुरु गणपति हैं। उनके आगे धनैश्वर्य-प्रदायिनी लक्ष्मी देवी हैं। वाम में विपुल बल-विक्रम-शाली देव-सेनापति कार्तिकेय हैं। बाद में वाग्वादिनी वाणी हैं। सर्व देवता सर्वाश्रय से उसके पश्चात् गमन करते हैं।

वसंत के उत्सव में मानव हृदय में परमात्मा केवल शक्तिरूप से ही प्रकटित होता है। अन्य किसी प्रकार उसका अनुभव नहीं हो सकता। ऋषियों ने उसको इसीलिए महाशक्ति-रूप में स्वयं देखा और अन्यों को दिखलाया है। गुण-त्रय से परिपूर्ण परमात्मा ही शक्ति-रूप से प्रकाशित हुआ है। वही विश्व-ब्रह्माण्ड की लीला में लिप्त है। ऐश्वर्य, ज्ञान, बल, वीर्य महाशक्ति की विभूति है। दसों दिशाओं में जो शक्ति है, उसने दश भुजा-रूप से दर्शन दिया है। उसी के पार्श्व में अंग-देवता हैं। इसी श्री दुर्गा को ध्यान-योग से देख कर स्वयं पूजा कर सकल को पूजन का उपदेश ऋषियों ने दिया है और यही 'वासंतिक नवरात्र' दुर्गा-पूजन नाम से भारत में प्रतिष्ठित हो रहा है।

पाठक शक्ति-पूजन का रहस्य समझ लें। इस प्रकार शक्ति की प्रतिष्ठा न होने पर कोई समाज उन्नत नहीं हो सकता। आओ, हम भारत-वासी एक मन से प्रकृत शक्ति-पूजा में प्रवृत्त होकर जगत् में एक बार फिर भारत की जय-घोषणा करें। आओ, भारत की चिर प्रख्यात दृढ़ शक्ति को पाने के लिये उस सूक्ष्माति-सूक्ष्मा, ब्रह्मा-विष्णु-शिवाराध्या, परब्रह्म-ज्ञान-विनोदिनी महा-बुद्धि-प्रदायिनी, मुक्ति-दायिनी, महाशक्ति श्री दुर्गा देवी के पदारविन्दों में हम बारम्बार प्रणाम करें।

* * *

प्रयोग माला

अनुभूत मन्त्र

पण्डित लक्ष्मणदत्त शास्त्री चतुर्वेद,

आदरणीय सुहृद्वर पं० श्री रमादत्त जी शुक्ल, एम० ए० महोदय का दि० २८-[illegible]-७४ का कृपापत्र प्राप्त हुआ था। उस पत्र में मुझसे अनुरोध किया है कि 'आप अपने अनुभूव मन्त्रों की प्रयोग-पद्धति लिखकर 'चण्डी' पत्रिका में प्रकाशनार्थ भेजने की कृपा करें, जिससे 'चण्डी' के पाठक एवं साधक लाभान्वित हों।' इस पत्र को पढ़कर मैं बहुत प्रभावित हुआ। शुक्लजी का 'चण्डी' के प्रति निष्ठा का भाव श्लाघनीय है। उसी पत्र में पुनः आदेश भी दिया कि 'मैं चाहता था कि कुछ कल्याणकारी प्रयोग जैसे निर्धनता दूर करने के, सन्तान-प्राप्ति के, रोग-दूरीकरण के, मृत्यु-निवारण के, भूत-बाधा समाप्त करने के-आदि विषयक जो आपकी जानकारी के हों, उन्हें आप देने की कृपा करते। फिर आप जैसा चाहें।' मैंने विचार किया, आजकल महर्घता के युग में किसी साधक के पास पर्याप्त समय नहीं है कि 'कलौ चतुर्गुणं प्रोक्तं' के अनुसार पाँच लक्ष का जप कर सकें। अतएव क्षिप्र सिद्धि-प्रद एवं निम्न पुरश्चरण द्वारा सिद्ध मन्त्र से साधक अभीष्ट सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं। निम्न मन्त्र हमारी कुल-परम्परा में अनुभूत हैं एवं मेरे अनुभव में भी आये हैं। अतः नूतन वत्सर के उपलक्ष्य में 'चण्डी'-पाठकों को समर्पित करते मुझे हर्ष हो रहा है। इन मन्त्रों को गुरु-मुख कर लेना चाहिये। अथवा अपने इष्टदेव को तीन बार सुना देना चाहिये। पुनः कार्य में लेने चाहिये। ये मन्त्र होली या दिवाली की रात्रि में सहस्रावर्तन करने से ही सिद्ध हो जाते हैं।

पुरश्चरण की विधि

साधक को चाहिये कि देवता के सान्निध्य में कुशासन, मृग-चर्म अथवा ऊर्णासन पर बैठकर दीपक जलाये। फिर १ ॐ भूः आत्मतत्वाय स्वाहा, २ ॐ भुवः विद्यातत्वाय स्वाहा, ३ ॐ स्वः शिवतत्वाय स्वाहा, ४ ॐ भूर्भुवः स्वः सर्वतत्वाय स्वाहा' कहकर चार आचमन करने चाहिये। गायत्री मन्त्र से अथवा मूलमन्त्र से तीन बार प्राणायाम करके आसन-शुद्धि करे। जैसे—'पृथिवीति मन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः, कूर्मो देवता, सुतलं छन्दः, आसन-पवित्रीकरणे विनियोगः' कहकर जल छोड़ दे। आसन के नीचे त्रिकोण बनाकर जल-गन्धाक्षत-पुष्प 'ॐ आधार-शक्ति-कमलासनाय नमः' कहकर चढ़ावे एवं प्रार्थना करे—

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णु-धारिता।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु-चासनम्।

फिर भूतोत्सारण करे—

अप-सर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिता।
ये भूता विघ्न-कर्त्तारस्ते गच्छन्तु शिवाज्ञया॥

अब भैरव को नमस्कार करे—

तीक्ष्ण-दंष्ट्र महाकाय कल्पान्त-दहनोपम।
भैरवाय नमस्तुभ्यं अनुज्ञां दातुमर्हसि॥

इसके बाद वाम पैर से तीन बार प्रहार करके हाथ धोकर गन्धाक्षत-पुष्प 'ॐ कर्म-साक्षिणे दीप-देवतायै नमः' कहकर चढ़ा दे। पुनः प्रार्थना करे—

भो दीप ब्रह्म-रूपस्त्वं ज्योतिषां प्रभुरव्ययः।
यावत्कर्म समाप्तिः स्यात्तावत् त्वं सुस्थिरो भव॥

यदि साधक ज्ञाता हो, तो भूत-शुद्ध्यादि भी कर ले। तदनन्तर सङ्कल्प पढ़कर गोत्रोच्चारण—अमुक गोत्रोत्पन्नोऽमुक शर्मा, वर्मा, गुप्त अमुक-मन्त्र- सिद्धि-

कामनया होलिका-पर्वणि, दीपावलि-पर्वणि वा सहस्रावृत्ति-मन्त्र-जपमहं करिष्ये'--ऐसा कहकर जल डाल दे। पुनः माला (रुद्राक्ष, तुलसी, रक्त-चन्दन, कमलगट्टा या स्फटिक) को जल से धोकर गन्धाक्षत चढ़ाकर धूप लगाकर प्रार्थना करे--

मां माले महामाये सर्व-शक्ति-स्वरूपिणि।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव॥

गोमुखी में रखकर मन्त्र जपना चाहिये। जिन मन्त्रों का विनियोग न्यास ध्यान हो, तो वह पहिले कर ले। तब माला-संस्कार करे। जो सिद्ध मन्त्र हैं, उनके विनियोगादि शास्त्रकारों ने भी नहीं दिये। उन मन्त्रों के तो अक्षर ही सर्वस्व हैं।

पुरश्चरण की दूसरी प्रक्रिया यह है कि सूर्य-चन्द्र-ग्रहण के पर्व-काल में ग्रहण पड़ने के समय से पहिले ही पूर्वोक्त दीप-प्रज्वालन से लेकर माला-संस्कार-पर्यन्त विधि सम्पादन करके सङ्कल्प करना चाहिये। विशेषता यह है-'राहुग्रस्ते दिवाकरे ग्रासादि-मोक्ष-पर्यन्तं अमुक-मन्त्र-कामः तन्मन्त्रस्य जप-रूप-पुरश्चरणमहं करिष्ये।'

यदि चन्द्रग्रहण हो, तो 'राहुग्रस्ते निशाकरे ग्रासादि मोक्ष-पर्यन्तं अमुक-मन्त्र-सिद्धि-कामः तस्य मन्त्रस्य जप-रूप-पुरश्चरणमहं करिष्ये'-ऐसा सङ्कल्प करके स्थानीय ग्रहण-काल से पाँच मिनट पहिले से तथा मोक्ष होने के बाद भी पाँच मिनट जप करके जल छोड़ना चाहिये 'अनेन मत्कृतेन जपेन मन्त्र-सिद्धिरस्तु।'-यह प्रक्रिया ग्रस्तोदय एवं ग्रस्तास्त में नहीं करनी चाहिये।

यदि सम्भव हो, तो सूर्य-ग्रहण में उसी दिन जप का दशांश हवन तिलाज्य से करे। तद्दशांश तर्पण, तद्दशांश मार्जन, न्यूनतम एक ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिये। एक अन्य बात भी विचारणीय है कि पुरश्चरण के दिन साधक के चतुर्थ, अष्टम एवं द्वादश चन्द्रमा न हों क्योंकि मन का मन्त्र से सम्बन्ध है एवं चन्द्रमा का मन से। वेद भी प्रतिपादन करता है—'चन्द्रमा मनसो जातः' अर्थात् विराट् पुरुष के मन से ही चन्द्रोत्पत्ति हुई है।

गर्भ-धारण मन्त्र एवं पुरश्चरण के बाद प्रयोग-विधि

ॐ नमो भगवति पद्मे ह्रीं ह्रीं क्लीं क्लूं त्रीं ठँ ठ ठँ अमुन्या आबल्य हानाय स्वाहा।

पुरश्चरण के पश्चात् हरे नारियल अथवा बिजौरे के फल पर १०८ बार मन्त्र पढ़ना चाहिये। मन्त्र में 'अमुष्या' के स्थान पर स्त्री का षष्ठ्यन्त नाम पढ़ना चाहिये। जैसे किसी स्त्री का नाम सरस्वती, यमुना, गङ्गा है, तो-'सरस्वत्याः, यमुनायाः, गङ्गायाः' पढ़ना चाहिये। मासिक धर्म की दिन शुद्धि बाद स्त्री को दे और वह उसे खा ले, तो गर्भ-धारण हो। हरा नारियल दो-चार दिन में खा ले, तो कार्य सिद्ध हो।

जिह्वा-कीलन मन्त्र एवं विधि

ॐ नमो आकाश-पूरिणि पाताल-पूरिणि मधु-मांस-आहार-भक्षिणि अमुकस्य जिह्वां कीलय कीलय स्वाहा॥

पुरश्चरणोत्तर आक के पत्ते पर चिता के कोले की स्याही से लोहे की लेखनी से मन्त्र लिखे। 'अमुक' के स्थान पर साध्य का षष्ठ्यन्त नाम लिखकर उसके ऊपर लोहे की कील गाड़ दे। फिर २१ बार मन्त्र जप करके उस पत्ते को धरती में गाड़ दे। इस प्रकार ७ दिन विधि करे, तो शत्रु, वकील, आदि का जिह्वा-कीलन हो।

लक्ष्मी-प्राप्ति का मन्त्र एवं विधि

ॐ नमो मणि-भद्राय आयुध-धराय मम लक्ष्मी-वांच्छितं पूरय पूरय ऐं ह्रीं क्लीं ह्यौं मणि-भद्राय नमः।

एकान्त स्थान को गोबर से लीप कर पटे के ऊपर गड़गडा नारियल रखकर केशर-सिन्दूर के तीन टीके लगाकर 'ॐ मणि-भद्राय नमः' कह कर पंचोपचार (गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य) पूजन करके १००० बार ६ मास प्रतिदिन जप करे, तो देवता प्रत्यक्ष दर्शन देता है और जो माँगो, वही देता है।

यह मन्त्र हमने अपने एक शिष्य से कराया था। एक मास बाद ही उसने सट्टा बताया। वह अङ्क आ गया। उसे धन प्राप्त हुआ। देवता क्रुद्ध हो गया। रात्रि में भयानक रूप दिखाकर कहने लगा कि 'अब किसी को मत बताना।' शिष्य हमारा आत्म-रक्षा कर लेता था। इस कारण वह विचलित नहीं हुआ। उसकी लड़की ५ वर्ष की लेट रही थी, उस पर प्रहार कर दिया। ७ दिन में ठीक हुई। कहने का तात्पर्य यह है कि ये

उग्र देव हैं। बड़े संयम एवं नियमपूर्वक अनुष्ठान करना चाहिये। तभी सफलता प्राप्त होती है।

अनुष्ठान के विशेष नियम

एक बार भोजन, पृथ्वी में अथवा तखत पर लेटना, क्रोध न करना तथा ब्रह्मचर्य से रहना। दूसरे का अन्न न खाना चाहिये। क्षौर न कराये।

रोग एवं अपमृत्यु-निवारक मन्त्र

किसी प्राचीन शिवालय में जाकर गणेश जी की पूजा 'ॐ गं गणपतये नमः' इस मन्त्र से षोडशोपचार से करे। तदनन्तर 'ॐ नमः शिवाय' इस मन्त्र से महादेव जी का पूजन करके मन्त्र का विनियोग पढ़े। यथा—

अस्य श्री अमृत-मृत्युञ्जय-मन्त्रस्य कहोल ऋषिः, विराट् छन्दः, अमृत-मृत्युञ्जय सदाशिवो देवता, अमुक गोत्रोत्पन्नस्य अमुक शर्मणो मम समस्त-रोग-निरसन-पूर्वक अपमृत्यु-निवारणार्थे जपे विनियोगः।

कहकर जल छोड़ दे। पुन षडङ्गन्यास करे।यथा—

ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः।	ॐ हृदयाय नमः
जूं तर्जनीभ्यां नमः।	जूं शिरसे स्वाहा
सः मध्यमाभ्यां नमः।	सः शिखायै वषट्
मां अनामिकाभ्यां नमः।	मां कवचाय हुम्
पालय कनिष्ठिकाभ्यां नमः	पालय नेत्रत्रयाय वौषट्
पालय करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः	पालय अस्त्राय फट्

ध्यान

स्फुटित-नलिन-संस्थं मौलि-बद्धेन्दु-रेखा
स्रवदमृत-रसार्द्रं चन्द्र-वन्ह्यर्क-नेत्रम्।
स्व-कर-लसित-मुद्रा-पाश-वेदाक्ष-मालं
स्फटिक-रजत-मुक्ता-गौरमीशं नमामि ॥

सवा लाख मन्त्र जप की पूर्ति के लिये पाँच हजार प्रतिदिन जप करना चाहिये। जप के बाद हृदयादि न्यास करके ध्यान करे। पुनः जल लेकर 'अनेन मत्कृतेन जपेन श्री अमृत-मृत्युञ्जयः प्रीयताम्' कहकर छोड़ दे।

इस दस अक्षर की विद्या को मन्त्र-शास्त्र में मृत्यु को भी मौत के घाट उतारनेवाली कहा है।

जप का दशांश हवनादिक करे। तिलाज्य में गिलोय भी डालनी चाहिये। अशक्त होने पर तत्तद्दशांश का चतुर्गुणित जप करने से अनुष्ठान पूर्ण होता है एवं आरोग्यता मिलती है, अपमृत्यु-निवारण होता है।

भूत-प्रेत-बाधा निवृत्त करने का मन्त्र

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं, ॐ ह्रीं क्लीं खं भूतेश ह्रीं ह्रां खड्ग-रावणाय नमः।

पुरश्चरण के बाद किसी व्यक्ति की भूत-बाधा दूर करनी हो, तो पीली सरसों पर इस मन्त्र की १०८ आवृत्ति से अभिमन्त्रित करे। पुनः जिस स्त्री या पुरुष पर बाधा हो, उस पर मन्त्र पढ़ता हुआ सात बार सरसों मारे, तो वह व्यक्ति आवेश में आकर बोलने लगता है और अपनी इच्छानुसार माँगता है। साधक को चाहिये कि उसके घरवालों से उस वस्तु को प्रदान कराये, तो फिर भूत-बाधा नहीं होती।

हमारे यहाँ के प्राचीन एवं अर्वाचीन तान्त्रिक इसी मन्त्र से भूत-बाधा दूर करते हैं। साधक को सावधान रहना चाहिये। आवेश में आकर वह प्रहार भी कर देता है। ऐसा मैंने कई बार देखा है। हमारे ससुर जी बहुत भारी तान्त्रिक थे। उन्होंने मुझसे निषेध कर दिया कि 'इस कार्य को तुम मत करना। ऐसा मैंने देखा है कि भूत-बाधा निवृत्त करनेवालों के लड़के मर जाते हैं।' हमारा पहिला साला भी मर गया था। अतएव विरक्त साधक को ही यह परोपकार करना चाहिये। गृहस्थ साधक न करे।

गृहस्थ साधक को चाहिये कि नवरात्रों की महाष्टमी के दिन नवार्ण मन्त्र अथवा भैरव मन्त्र अथवा खड्ग-रावण मन्त्र को भोजपत्र पर रक्त-चन्दन से अनार की कलम से लिखकर दो दिन अधिवास करके गन्धाक्षत से पूजन करे एवं दशमी के दिन बाधावाले व्यक्ति को दे दे। वह व्यक्ति यथा सम्भव सोने, चाँदी अथवा तांबे के ताबीज में रखकर गण्डा में उसको पुवाकर अच्छे चन्द्रमा जिस दिन हों, उस दिन गो-दुग्ध अथवा गंगा जल से तावीज को धोकर गन्धाक्षत-पुष्प चढ़ाकर धूप लगाकर कण्ठ में धारण कर ले, तो भूत-बाधा से त्राण होता है। यहां के तांत्रिक इस रीति

को भी अपनाते रहे हैं। मैं भी इसी रीति का अनुसरण करता हूँ।

आज-कल के तान्त्रिक कान्छरी मुद्रा से गोप्य रखना चाहते हैं। 'न देयं पर-शिष्याय' यह उद्घोष करते रहते हैं। प्राचीन आचार्यों का अनुसरण नहीं करते। सौंदर्यलहरी के भाष्यकार जब षोडशी मन्त्र के बीज का उद्घाटन करने लगे, तो लिखा कि 'इस बीज-मन्त्र को मैं स्पष्ट लिख रहा हूँ। मुझे ही मन्त्रोपदेष्टा साधक गण समझें।' भारतवर्ष की रसायन विद्या सुवर्ण-रजत बनाने की लुप्त हो गई। तांत्रिक विद्या भी लुप्त होती चली जा रही है। स्वनाम-धन्य मणिद्वीप-वासी श्रद्धेय पं० देवीदत्त जी शुक्ल इस 'चण्डी' कल्पतरु को लगा गये हैं। विद्वान साधकों का पावन कर्त्तव्य है कि इसका सिञ्चन करते रहें, तो यह फल देता रहेगा। जय जगदम्ब ॥

भगवती दिगम्बरी दक्षिणा काली की आरती

ॐ जय दक्षिण कारी, हो मय्या जय जय महाकारी,
विश्व विमोहन हारी जय जय भद्र कारी, ॐ जय दक्षिण०

(१)

भव भय हारी जनहित कारी, तू ही इच्छा कारी, हो मय्या तू ही
गुह्ये अजर पिताम्बरी, महिमा अति भारी, ॐ जय दक्षिण कारी।

(२)

तू ही नव भक्ति, तू ही सब सक्ती, तू ही मंगल कारी, हो मय्या तू ही०
मोह दर्प भ्रम हारी, सद् कुल आचारी, ॐ जय दक्षिण कारी।

(३)

तू ही अवलम्बे, तू ही जगदम्बे, तू ही त्यारन हारी, हो मय्या तू ही०
मंजुल सुख रस वारी, तू ही करुणा कारी ॐ जय दक्षिण कारी।

(४)

सब हित धारन; तू ही जग कारण; साधन सुख कारी; हो मय्या तू ही०
दीन दया उर राखत, त्रिय लोकी धारी; ॐ जय दक्षिण कारी।

(५)

बुद्धि प्रकाशन, तू ही सहवा शन; शासन रचवारी; हो मय्या शासन०
धन्नराज कवि गावे (मां) या विन्ती मारी, ॐ जय दक्षिण कारी।

सिद्धिमार्ग के पथिक

वामा क्षेपा

श्री हरिहर भट्टाचार्य

वामा क्षेपा का आविर्भाव बंगाल के 'वीर-भूमि' नामक जिले में हुआ था। इस जिले का अपना महत्व रहा है। अति प्राचीन काल से यहाँ वीराचार की साधना प्रचलित रही है और बहुत से साधकों ने वीर भाव से उपासना कर यहाँ सिद्धि प्राप्त की है। इसी से इस जनपद का नाम ही 'वीर-भूमि' पड़ गया।

इस पवित्र जनपद के विविध स्थानों में भगवती सती के देह के खण्डित अङ्गों के गिरने से अनेक सिद्ध शक्ति-पीठ प्रतिष्ठित हो गये हैं। नन्दिपुर ग्राम में गले का हार गिरा था, अतः वहाँ देवी नन्दिनी विद्यमान हैं और उनके भैरव हैं नन्दिकेश्वर। लाभपुर अट्टहास में अधरोष्ठ गिरा था, जिससे देवी फुल्लरा की प्रतिष्ठा है और उनके भैरव हैं विश्वेश। दुबराजपुर स्टेशन से सात मील उत्तर की ओर दोनों भौंहें गिरी थीं, अतः वहाँ महिषमर्दिनी स्थान है और उनके भैरव हैं वक्रनाथ। इस स्थल पर पाँच उष्ण जल-स्रोत हैं, जो बात रोगों तथा पक्षाघात को दूर करते हैं।

नलहाटी में गले की नली गिरी थी, अतः वहाँ देवी कालिका की प्रतिष्ठा है और उनके भैरव हैं योगीश। यह स्थान स्टेशन से प्रायः एक कोस की दूरी पर नैर्ऋत कोण में स्थित है। बोलपुर की उत्तर-पूर्व दिशा में तीन कोस की दूरी पर कोपाइ नदी के निकट देवी कङ्काली का पीठ-स्थान है। यहीं बेनुटी ग्राम है, जहाँ महाकवि कालिदास ने सिद्धि पाई थी।

केन्दुविल्व (केंदुलि) ग्राम में प्रसिद्ध कवि जयदेव, नानुर ग्राम में कवि चण्डीदास और वीरचन्द्रपुर ग्राम में महाप्रभु नित्यानन्द जैसे महापुरुष अवतीर्ण हुये। ऐतिहासिक राजनीतिज्ञ महाराजा नन्दकुमार का जन्म इसी जिले के भद्रपुर ग्राम में हुआ था।

तारा-पीठ या तारापुर वशिष्ठ देव के सिद्धपीठ के रूप में विख्यात है। यह पीठ पूर्वी रेल्वे की लूप लाइन पर स्थित मोल्लारपुर या रामपुर हाट स्टेशन से लगभग सात मील की दूरी पर और तारापीठ रोड हाल्ट स्टेशन से केवल तीन मील की दूरी पर स्थित है। बैलगाड़ी के सिवा यातायात का अन्य कोई साधन यहाँ उपलब्ध नहीं है। यह तारापीठ ५२ पीठों के अन्तर्गत माना गया है।

तारापीठ तीन हैं। सती देवी के तीन नेत्रों के मणिविन्दु बत्तीस योजन के अन्दर त्रिकोणाकार में तीन विभिन्न स्थानों में गिरे थे। मिथिला के पूर्व दक्षिणी कोने में भागीरथी की उत्तर दिशा में त्रियुगी नदी की पूर्व दिशा में सती देवी के बाएँ नेत्र की मणि गिरी। यह स्थान नील सरस्वती तारा पीठ के नाम से प्रसिद्ध है। बगुड़ा जिले के अन्तर्गत करतोया नदी के पश्चिम में दाईं मणि गिरी। यह स्थान एकजटा तारा या महादेवी भवानी तारापीठ के नाम से विख्यात है। चक्रेश्वर के ईशान कोण में वैद्यनाथ धाम की पूर्व दिशा में उत्तर-वाहिनी द्वारका नदी के पूर्वी तट पर महा श्मशान में श्वेत शिमूल के वृक्ष के मूल स्थान में सती देवी के ऊर्ध्व नेत्र का तारा गिरा। यह स्थान शिलामयी चण्डी भगवती उग्रतारा के नाम से प्रसिद्ध है। भैरव चन्द्रचूड़ हैं। इसी तारा-पीठ में वशिष्ठदेव ने सिद्धि लाभ किया था।

उक्त तीनों तारा-पीठों में से किसी भी पीठ में तीन लक्ष जप करने से साधक को निश्चय ही सिद्धि लाभ होता है और भगवती की कृपा से साधक के आधिभौतिक, आधिदैविक व आध्यात्मिक—तीनों तापों का नाश होता है।

वामा क्षेपा का आविर्भाव उस युग में हुआ था, जब विदेशी विधर्मियों के अत्याचार और अनाचार के असह्य भार से भारतवासी अत्यधिक प्रपीड़ित हो उठे थे। धर्माचार्यों ने उस प्रपीड़न से जन-साधारण की रक्षहेतु 'वीराचार' का प्रवर्तन किया था। "गौड़ेनोत्प

दिता" यही विद्या बंगाल और मिथिला में लोक-प्रिय हुई, जिससे यवनों द्वारा पराभूत भारत की निर्वीर्यता क्रमशः दूर होती गई और अन्ततः उसने पुनः स्वाधीनता लाभ किया। यह तथ्य ऐतिहासिक अनुसन्धान का विषय है।

शिलामयी उग्रतारा पीठ के पवित्र क्षेत्र में द्वारका नदी के तटवर्ती महाश्मशान में बालक वामाचरण के हृदय में मां तारा की ज्योति ठीक उसी प्रकार और प्रायः उसी काल में प्रकाशित हुई, जिस प्रकार विशालाक्षी के मन्दिर में बालक गदाधर (रामकृष्ण परमहंस) के हृदय में मां काली की प्रभा उद्भासित हुई थी। श्री जगदम्बा ने इन्हीं दोनों विभूतियों के द्वारा नवीन भारत के प्राणवन्त एवं धर्मनिष्ठ बनने का मार्ग प्रशस्त किया।

वामा क्षेपा का जन्म एक निर्धन ब्राह्मण परिवार में हुआ। पितामह रामानन्द चट्टोपाध्याय के दो पुत्र १ सवानन्द और २ धर्मदास हुये जिनमें धर्मदास निस्सन्तान रहे। सर्वानन्द चार कन्याएँ और दो पुत्र हुये। कन्याओं के नाम थे–१ जयकाली, २ दुर्गा, ३ द्रवमयी और ४ सुन्दरी। वामाचरण और रामचन्द्र नाम के दो पुत्र थे। इनमें से

वामा क्षेपा

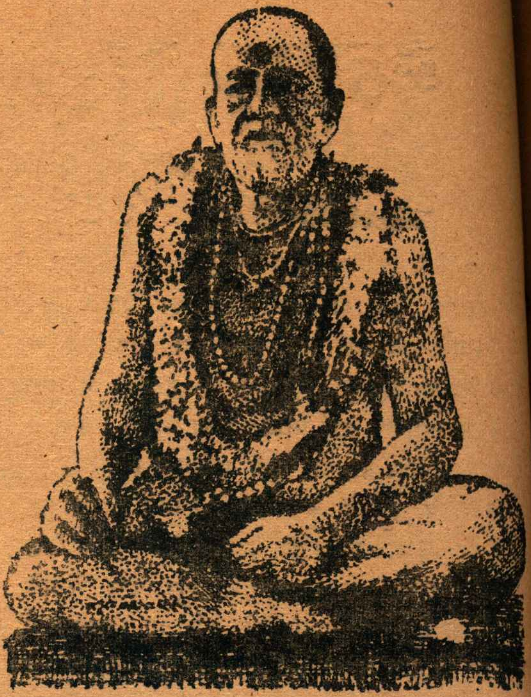

वामाचरण ही बाद में 'वामा क्षेपा' और तारापीठ के भैरव' के रूप में जगद्-विख्यात सिद्ध महापुरुष हुये।

◆

मन्त्रसिद्धि का उपाय

अपने विषय की यह कितनी उपयोगी पुस्तक है, यह इसी से प्रकट है कि यह इसका चोथा संशोधित एवं परिवर्तित संस्करण है। इस अपूर्व पुस्तक में इस बात का रहस्य साफ-साफ शब्दों में प्रकट कर दिया गया है कि मन्त्रों का क्या महत्व है और आजकल लोग उनसे लाभ क्यों नहीं उठा पाते। साथ ही मन्त्रों-द्वारा लौकिक तथा परलौकिक कल्याण की सिद्धि करने का उपाय भी इनमें बताया गया है। मुख्य विषय इस प्रकार हैं—मन्त्र क्या हैं, मन्त्र पुरश्चरण, मन्त्र-संग्रह आदि—

स्पष्ट है कि हिन्दी में यह एक अनूठी पस्तक है और हर व्यक्ति के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

मूल्य २=००,

धार्मिक जगत की
हलचल

१—रायपुर में सनातन-धर्माचार्य-सम्मेलन

परम पूज्य श्री स्वामी करपात्री जी महाराज द्वारा संस्थापित अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ सनातन धर्म की अभिवृद्धि के लिए अनेक वर्षों से निरन्तर प्रयास करता आ रहा है। देश के विविध स्थानों में धर्मसंघ की शाखाएँ भी हैं, जिनके द्वारा समय समय पर उद्‌बोधक धार्मिक आयोजन होते रहते हैं। मध्य प्रदेश के रायपुर सम्भाग की धर्मसंघ शाखा ने एक ऐसा ही आयोजन उक्त 'सम्मेलन' के रूप में विगत १५ मार्च से १६ मार्च ७४ तक आयोजित किया। इस प्रकार के आयोजनों का क्या महत्व है, इसे स्पष्ट करने के लिए उक्त शाखा के संरक्षक एवं अध्यक्ष राजेश्री महन्त वैष्णवदास के परिपत्र का कुछ अंश यहाँ उद्धृत है—

'……देश में विगत वर्षों में जिस तरह धर्म के प्रति उपेक्षा, धार्मिक स्थलों में जनता की अनास्था, धर्म-गुरुओं का अपमान और नये नये अवतार हो रहे हैं, उनसे बचने हेतु तथा हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिए एक राष्ट्रीय रंगमंच तैयार करने हेतु रायपुर में अखिल भारतीय सनातन धर्माचार्य सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है ताकि हिन्दू धर्म के प्रमुख लोग एकत्रित होकर धर्म में नव जीवन व रक्त-संचार के उपायों पर विचार कर सकें।

जिस तरह श्री शंकराचार्य महाराज और अन्य सनातन धर्माचार्यों ने हिमालय से कन्याकुमारी तक हिन्दू धर्म का शंखनाद किया था, उसी प्रकार एक बार पुनः धार्मिक क्रांति लाना है। लोग सभी के प्रति समान आचरण करें। नैतिकता की रक्षा के लिये भगवान् के प्रति लोगों में धार्मिक भावना उत्पन्न हो। प्रान्तीयता का विष भूलकर वे एक ही हिन्दू धर्म के झण्डे के नीचे एकत्र हों, ताकि देश के विघटनकारी, प्रतिक्रियावादी और पृथक्तावादी प्रवृत्तियों को करारी शिकस्त दी जा सके।

हिन्दू धर्म जिस तरह खंडित होकर टुकड़े-टुकड़े में बंटता जा रहा है, उसे देखते हुए चारों पीठों के धर्माचार्यों ने भी धार्मिक क्रांति की आवश्यकता को महसूस किया है। हिन्दू धर्म की रक्षा, धर्म-गुरुओं के प्रति आस्था, मन्दिरों के कार्य-कलापों में जनता की रुचि तथा धार्मिक भावना उत्पन्न करने हेतु देश के धर्माचार्यों का सम्मेलन रायपुर में एक ही साथ एक ही मंच में बैठकर राष्ट्रीय चेतना व राष्ट्रीय एकता के लिये भी आवश्यक है।……'

२—पटना में "परा वाणी"

'अद्वैत शक्ति-साधना-सत्सङ्ग-संस्था' के अध्यक्ष पण्डित श्री कमलाकान्त जी मिश्र से 'कौल-कल्पतरु' चण्डी के पाठक परिचित ही हैं। आप शाक्त-समाज के सङ्गठन में सक्रिय रूप से बराबर रुचि लेते रहे हैं। अपने २४ फरवरी ७४ के कृपापत्र में आपने एक सुखद समाचार दिया है। वे लिखते हैं कि—

"... पटना के मन्दिरी मुहल्ले में "परा वाणी" नाम से शक्ति-साधना-सम्बधी संस्था की स्थापना हुई है, जिसके अध्यक्ष दरभङ्गा जिला निवासी डाक्टर दुर्गाचरण कर्ण हैं। उक्त संस्था में सहयोग देनेवाले आचार्य परमानन्दन शास्त्री आदि कितने ही महानुभाव हैं। दिनांक १९ जनवरी ७४ की रात्रि में डाक्टर रमेशचन्द्र वर्मा, अध्यापक सहरसा महाविद्यालय तथा प्रोफेसर तारानन्द जी के साथ हम "परा वाणी" निकेतन में पहुँचे। वार्तालाप करने के पश्चात् अच्छा उद्देश्य ज्ञात हुआ यानी जो उद्देश्य शाक्त-सम्मेलन प्रयाग का है तथा 'अद्वैत शक्ति-साधना-सत्संग-संस्था' सहरसा का भी है।

"...हमारा उद्देश्य है कि इन तीनों संस्थाओं को सम्बद्ध कर आगे बढ़ा जाय। अतः "सहरसा अद्वैत शक्ति साधना सत्सङ्ग संस्था" के सदस्य गण ने वैशाख शुक्लाष्टमी तदनुसार २९ अप्रैल ७४ को एक विशिष्ट सम्मेलन करने का सङ्कल्प किया है।...."

३—नव-सम्वत्सर समारोह

प्रयाग के हिन्दू-समाज ने सोल्लास नव संवत्सर पर्व मनाकर नये साल का स्वागत किया अनेकानेक अभावों तथा जीवन की विसंगतियों से संत्रस्त होने के कारण यद्यपि उत्सव मनानेवालों के चेहरे पर उल्लास और उमङ्ग के भाव पर्याप्त रूप में झलकते दिखाई दे रहे थे तथापि विभिन्न वर्ग एवं भाषा-भाषियों द्वारा आयोजित उत्सवों से यही धारणा दृढ़ हुई कि भारतीय संस्कृति का अजस्र स्रोत अब भी जन-मानस में प्रवाहित हो रहा है और उसमें पूरे भारत को एक सूत्र में पिरोये रखने की क्षमता अब भी विद्यमान है।

गंगा-पार झूंसी में स्थित संकीर्तन-भवन में विद्वान् पण्डितों द्वारा 'प्रभव' नामक संवत्सर के वर्ष-फल-वाचन के बाद श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने अपने आशीर्वचन से उपस्थित जन-समुदाय को कृतार्थ किया। उनके संक्षिप्त किन्तु मर्मस्पर्शी प्रवचन में वर्तमान समय में हो रही अधर्म की हानि, अनाचार की वृद्धि के प्रति पीड़ा स्पष्ट झलक रही थी किन्तु उनके संतोचित हृदयोद्गार से उपस्थित जन-समुदाय में विश्वास दृढ़ हुआ कि अब भी भारत का कुछ बिगड़ा नहीं है और सन्त-महात्माओं के निर्देश से स्थिति अब भी सम्भल सकती है।

४—श्री महादुर्गा पीठ

पण्डित-प्रवर श्री नथमल जी दाधीच कौलाचार्य—श्री भुवनेश्वरी महाशक्ति पीठ, लक्ष्मणगढ़ (राजस्थान) से 'कौल-कल्पतरु' चण्डी के पाठक परिचित ही हैं। आपके शिष्य-वृन्द ने एक सुखद समाचार दिया है—

श्री पराम्बा के आदेश से संसार-दावानल-दग्ध जीवों के उपकारार्थं श्री महादुर्गा के पीठ-निर्माण का सङ्कल्प लिया गया है। इसके साथ जिज्ञासु, धार्मिक ज्ञान-पिपासु एवं आतुरजनों के लाभार्थं वर्तमान में सञ्चालित—'श्री महाशक्ति-पुस्तकालय' एवं 'श्री महाशक्ति-दातव्य औषधालय' को भी विस्तृत करने का विचार है।

शाक्त धर्म के जिज्ञासु जनों को दीक्षा, महापूर्णाभिषेक आदि प्रदान कर श्री पराम्बा की शास्त्रीय आर्ष व्यवस्था और शाक्त-योग-साधन-शिक्षा सर्व-साधारण-प्राप्ति हेतु यह आयोजन शाक्त धर्म के प्रचार-प्रसार द्वारा विश्व के मानव मात्र के कल्याण की अभिवृद्धि हेतु भारत-राष्ट्र के लड़खड़ाते पाँवों को सबल एवं शक्तिमान बनाने हेतु है, जिससे भीषण अशान्ति के तट पर खड़े विश्व के शान्ति के मार्ग पर अग्रसर होने का आत्म-बल प्राप्त हो सके।

आशा है, धर्म-प्रेमी सज्जन लोक-हितार्थ और धर्म-प्रसारार्थ अपनी शक्ति के अनुसार इस पुनीत कार्य में सहयोग देकर पुण्य और यश के भागी बनते हुए अपना लौकिक और पारलौकिक कल्याण साधित करेंगे : ह्रीं श्रींरस्तु।

जिज्ञासु के पत्र

पूज्य श्री स्वामी दिव्यानन्द जी सरस्वती २६-२-७४ को कनखल (सहारनपुर) से लिखते हैं—

[१]

'कौल-कल्पतरु' चण्डी वर्ष ३२, आषाढ़-भाद्रपद शुक्लाष्टमी २०३० संख्या ४-६ के 'धार्मिक जगत की हलचल' में कहा गया है कि—

"काञ्ची-काम-कोटि-पीठ के जगद्-गुरु श्री शंकराचार्य स्वामी जयेन्द्र सरस्वती पिछले दिनों दतिया के 'श्री पीताम्बरा-पीठ' में पधारे और 'राष्ट्र-गुरु' परम पूज्य श्री १००८ स्वामी जी महाराज से आपका साक्षात्कार हुआ। दो विभूतियों का यह अभूतपूर्व मिलन वस्तुतः सारे हिंदू-राष्ट्र के लिये कल्याणकारी सिद्ध होगा, इसमें सन्देह नहीं।"

आज देश में हिंदू धर्म का ह्रास हो रहा है। भ्रष्टाचार अपनी चरम सीमा पर है। क्या ही अच्छा होता, यदि इन दो राष्ट्र-गुरुओं के इस शुभ अवसर पर भाषण हुए होते और जनता-जनार्दन को हिंदू धर्म का महत्व समझाया जाता और भ्रष्टाचार-निवारण के उपाय बतलाये जाते? यह समय की मांग है।

यदि इस सम्बन्ध में अधिक विवरण मालुम हो, तो मान्य सम्पादक जी उसे 'चण्डी' के अगले अङ्क में प्रकाशित करने की अनुकंपा करेंगे।

[धार्मिक समाचारों के सङ्कलन के प्रति वास्तव में आजकल के पत्रकारों का ध्यान ही नहीं है। यही कारण है कि इस प्रकार के समाचार हमें ऐसे श्रद्धालु बन्धुओं की कृपा से प्राप्त होते हैं, जो पत्रकार-कला को जानते नहीं। फलतः वे महत्वपूर्ण बातों को छोड़ देते हैं। जब तक पत्रकारों का ध्यान इस ओर आकृष्ट नहीं होता, हमें ऐसे अपूर्ण समाचारों से ही सन्तोष करना होगा। —सं०]

[२]

विशुद्ध चण्डी [दुर्गा सप्तशती]

'चण्डी' में कुछ वर्षों पहले श्री दुर्गा सप्तशती के शुद्ध संस्करण के सम्बन्ध में जोर-शोर से चर्चा चली थी कि वर्तमान में प्रचलित संस्करणों में कोई भी संस्करण शुद्ध नहीं है। सभी में पाठान्तर व अशुद्धियाँ हैं। फिर वह चर्चा बन्द हो गई।

'चण्डी' चैत्र-वैशाख-ज्येष्ठ वर्ष ३२ संख्या ३ के पृष्ठ पर कहा है कि सम्वत् २०२६ में गोण्डल (सौराष्ट्र) के भुवनेश्वरी पीठ के संस्थापक आचार्य द्वारा एक संशोधित 'दुर्गा-सप्तशती-चण्डी-पाठ' प्रकाशित हुआ है।

मुझे स्मरण है कि बहुत वर्षों पहले एक शुद्ध संस्करण 'चण्डी' कार्यालय से भी प्रकाशित हुआ था। इन दोनों में किसको मान्यता दी जाय? इसका स्पष्टीकरण होना चाहिये। पाठ-प्रेमी अब भी भ्रमित हैं।

[गोंडल के संस्करण की त्रुटियाँ भी 'चण्डी' में उद्घाटित की जा चुकी हैं और चण्डी कार्यालय द्वारा प्रकाशित सप्तशती का संस्करण एक तो आजकल अप्राप्य है; दूसरे उसका प्रकाशन जिस समय हुआ था, उस समय उक्त त्रुटियों के परिमार्जन के प्रति किसी का ध्यान ही नहीं था। वस्तुतः सप्तशती के विशुद्ध संस्करण के प्रकाशन की आवश्यकता आज भी बनी हुई है, किन्तु इस कार्य के सम्पन्न करने में कम-से-कम पाँच सहस्र रुपयों की आवश्यकता है। इतने धन की व्यवस्था यदि हो जाय, तो उक्त विशुद्ध संस्करण शीघ्र ही काशित हो सकता है। पूज्य श्री स्वामी जी जैसे धर्माचार्य यदि यत्नशील हों, तो रु० ५००० का एकत्र होना कोई कठिन बात नहीं है। क्या इस तथ्य की ओर आचार्यों का ध्यान आकृष्ट होगा?—सं०]

सदुपदेश-सुधा

पवित्र आत्मा

जो व्यक्ति पवित्र है, उस पर कोई विजय प्राप्त नहीं कर सकता। कोई शत्रु उसको न तो हरा सकता है और न सता सकता है। उसकी रक्षा ईमानदारी और पवित्रता के द्वारा होती है। उसको और किसी रक्षक की आवश्यकता नहीं। जिस प्रकार यह असम्भव है कि पाप पुण्य पर अधिकार जमा सके, उसी प्रकार अपवित्र मनुष्य पवित्र मनुष्य पर कभी अधिकार नहीं जमा सकता। मिथ्या दोषारोपण, घृणा और द्वेष न तो पवित्रता के पास पहुँच सकते हैं और न उसका कुछ बिगाड़ ही सकते हैं और जो मनुष्य उसको हानि पहुँचाना चाहते हैं, उनको अन्त में स्वयं तिरस्कार सहना पड़ता है।

पवित्र मनुष्य कोई ऐसा काम नहीं करता, जिससे उसको दूसरों से दबना पड़े अथवा वह कोई इच्छा ऐसी नहीं रखता है, जिसको वह दूसरों पर प्रकट न कर सकता हो। इसलिए वह निर्भय रहता है। और उसे कभी लज्जित नहीं होना पड़ता। वह जो काम कर सकता है, उसे दृढ़तापूर्वक करता है और जो बात कहता है, वह खरी कहता है। वह किसी के आगे नहीं झिझकता। जो मनुष्य किसी का अनिष्ट नहीं करता, वह किसी के सामने क्योंकर लज्जित हो सकता है? चूंकि वह किसी को हानि नहीं पहुँचाता, इसलिए दूसरे भी उसे हानि नहीं पहुँचाते, इसी प्रकार चूंकि वह किसी को धोखा नहीं देता, इसलिए दूसरे भी उसे धोखा नहीं देते।

पवित्र मनुष्य अपने सब काम ईमानदारी और परिश्रम के साथ करता है और पाप से कोसों दूर रहता है। इसलिए उसे कोई किसी बात में दबा नहीं सकता। जिसने पवित्रता के द्वारा शत्रुओं को मार डाला है, उसे न तो कोई बाह्य शत्रु पराजित कर सकता है और न उसे बाह्य शत्रुओं से अपनी रक्षा करनी पड़ती है क्योंकि उसकी पवित्रता ही उसकी रक्षा के लिए यथेष्ट है।

जो मनुष्य अपवित्र है, उसे प्रायः सभी बातों में दबना पड़ता है क्योंकि वह मनोविकार और पक्षपात का दास बना रहता है। दूसरों के विषय में वह मिथ्या मन्तव्य स्थिर कर लेता है। इसलिए उसको दूसरों के द्वारा सदा दुःख पहुंचता है। जब दूसरे उस पर दोषारोपण करते हैं, तब उसे बड़ा दुःख पहुंचता है क्योंकि वह वास्तव में सदोष है और चूंकि उसके पास अपनी रक्षा करने के लिए पवित्रता नहीं होती, इसलिये वह बदला लेकर अथवा तरह-तरह की दलीलें या धोखा देकर अपने आपको निर्दोष सिद्ध करने का प्रयत्न करता है।

सम्पादकीय

१—शाक्त-सङ्गठन की समस्या

आज से ३२ वर्ष पूर्व शाक्त सम्मेलन, प्रयाग की मासिक मुख-पत्रिका के रूप में 'चण्डी' का आविर्भाव जिन उद्देश्यों को लेकर हुआ था, उनमें से एक प्रमुख उद्देश्य 'शाक्त-सङ्गठन' था। 'कौल-कल्पतरु' स्व० पण्डित देवीदत्त शुक्ल द्वारा लिखित सम्पादकीय टिप्पणियों से इस तथ्य का भले प्रकार प्रतिपादन हो जाता है। श्रावण १९९६ के सम्पादकीय में 'हमारा निवेदन' का निम्न उद्धरण ध्यान से पढ़ने योग्य है—

'........शाक्तों के सङ्गठन एवं शाक्त-धर्म के प्रचार का जो ध्येय है, वह स्वयं ही एक नई बात है। सके पहले इस विषय की, कम-से-कम हिन्दी में तो चर्चा तक नहीं होती थी और आज जब शाक्त-सम्मेलन जैसी एक संस्था स्थापित हो गयी है और उसकी मुख पत्रिका चण्डी भी निकल चली है, तब यह अपने ढङ्ग की एक महत्व की बात तो है ही। अब जरूरत इस बात की है कि शाक्त लोग भी अपने कर्त्तव्य का पालन करें। वह इस तरह कि अधिक संख्या में आकर सङ्घ-बद्ध हों। ऐसा होने से उनकी शक्ति बढ़ेगी और वे अपने धर्म में अधिक निष्ठावान् हो सकेंगे।.......'

शाक्त लोग सङ्घ-बद्ध किस प्रकार हों, इसके लिए पूज्य शुक्ल जी ने एक सरल एवं व्यावहारिक सुझाव भी मार्गशीर्ष १९९६ की प्रथम सम्पादकीय टिप्पणी 'जगदम्बा की सामूहिक उपासना' में इस प्रकार दिया है—

'......अब केवल साल में दो बार माता को याद कर लेने से काम न चलेगा। चाहिए तो यह कि नित्य ही कुछ न कुछ समय निकाल कर मा को याद अति श्रद्धा के साथ की जाय, परन्तु यदि यह सम्भव न हो, तो प्रतिमास शुक्लाष्टमी को तो उनकी सेवा-पूजा में घण्टे-दो घण्टे का समय अवश्य ही लगाया जाय। क्या ही अच्छा हो, यदि प्रत्येक गाँव में किसी सुन्दर स्थान में सभी ग्राम-वासी एकत्र होकर घट-स्थापन-पूर्वक मां का यजन-पूजन करना प्रारम्भ कर दें। घट-स्थापन-पूर्वक सविधि षोडशोपचार से मां का पूजन कर चुकने पर जो लोग चण्डी का पाठ कर सकते हों, चण्डी का पाठ करें और जो पाठ न कर सकते हों, वे चुपचाप बैठकर मन्त्र-जप या नाम-जप ही करें। इस प्रकार जगदम्बा का यजन सामूहिक रूप से करने से लोक-कल्याण तो होगा ही, साथ ही समाज में धार्मिक भावना का भी उदय होगा।.... शाक्त साधकों को चाहिये कि इस योजना को वे कार्य का रूप देने का प्रयत्न करें।.....'

सम्वत् १९९६ के पौष के अगले अङ्क में 'कौल-कल्पतरु' श्री शुक्ल जी ने अपने उक्त सुझाव को 'सामूहिक पूजा' शीर्षक टिप्पणी द्वारा पुनः प्रतिपादित किया और लिखा कि—

'........सामूहिक पूजा का महत्व सारे संसार में आज भी माना जाता है, परन्तु जिन हिन्दुओं के पूर्वजों ने उसका पहले-पहल प्रचलन किया था, उन्हीं की सन्तान उसको आज महत्व-हीन कर बैठी है और एकाकी की पूजा को ही अपना सब कुछ मान लिया है। वास्तव में हमारे पराभव के कारणों में से एक कारण हमारी यह धारणा है, जो हानिकर तो है ही, भ्रान्त भी है।......शाक्तों में सामूहिक पूजा का

प्र। (आज भी है और वे उसके महत्व को जानते भी हैं, परन्तु उनका सम्यक् सङ्गठन न होने से उनकी जो सामूहिक पूजाएँ होती रहती हैं, उनमें वह विशेषता नहीं रही।… …’

इस प्रकार शाक्त-सम्मेलन एवं ‘चण्डी’ के प्रवर्तक ‘कौल-कल्पतरु’ श्री शुक्ल जी ने शाक्त-सङ्गठन की आवश्यकता का निर्देश कर शाक्तों को उद्बुद्ध करने का प्रयास किया था। उनका यह प्रयास ‘चण्डी’ के द्वारा लगातार ३० वर्षों तक चलता रहा। इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रयास को सफलता नाम मात्र को ही मिली और शाक्तों का जैसा सङ्गठन आप चाहते थे, वैसा नहीं हो सका, किन्तु सङ्गठन की जो भावना आप उत्पन्न करना चाहते थे, उसकी नींव तो पड़ ही गई।

हमें हर्ष है कि उस नींव पर यदा-कदा सङ्गठन का भवन बनाने का प्रयास करते कुछ उत्साही परोपकारी शाक्ताचार्य महानुभाव आज भी दृष्टिगत होते हैं। ‘कौल-कल्पतरु’ चण्डी के इसी अङ्क के ‘धार्मिक जगत् की हलचल’ में प्रकाशित एक समाचार से हमारे उक्त कथन की पुष्टि होती है। श्री जगदम्बा से हमारी यह हार्दिक कामना है कि सहरसा के आचार्य श्री कमलाकान्त जी मिश्र की अध्यक्षता में ‘अद्वैत-शक्ति-साधना-सत्सङ्ग’ पटना के ‘परा-वाणी’ संस्थान के सहयोग से शाक्तों के सङ्गठन की समस्या को सुचारु रूप से सुलझाने का सुयश अर्जित करे। साथ ही समस्त शाक्त-बन्धुओं से हमारा अनुरोध है कि वे यथा शक्ति इस महत्कार्य में अपनी शुभ कामना, सुझाव, आर्थिक अनुदान के आश्वासन आदि रूपों में अपना हार्दिक सहयोग प्रदान कर यश और पुण्य के भागी बनें।

२–‘शक्ति-स्वरूप-तत्व’

‘कौल-कल्पतरु’ चण्डी के पाठकों को इस वर्ष ‘शक्ति-स्वरूप-तत्व’ नामक ग्रन्थ क्रमशः भेंट करने का निश्चय किया गया है। उसके प्रारंभिक आठ पृष्ठों में अनुक्रमणिका, भूमिका एवं माहात्म्य-निदर्शन रहेगा। नवें पृष्ठ से चुने हुए उपयोगी लेख रहेंगे, जिसकी कुल संख्या लगभग १५० होगी। प्रस्तुत अङ्क के साथ उक्त ग्रन्थ के ९ से २४ पृष्ठ दिये जा रहे हैं। पाठकों से अनुरोध है कि वे कृपया इन्हें सुरक्षित रखें और प्रारम्भ के आठ पृष्ठों के मिलने पर उक्त ग्रन्थ की अलग जिल्द बनवा लेंगे।

वाममार्ग

इस पुस्तक में वाममार्ग क्या है, उसका स्वरूप क्यां है, उसकी साधना-प्रणाली कैसी है, इन सब बातों की विवेचना शास्त्रीय प्रामाणों के आधार सर्वाङ्ग रूप से की गई है। यह विषय शताब्दियों से इस देश के धार्मिक क्षेत्र में विवाद-ग्रस्त रहा है। प्रकट रूप से इस विषय का पहली बार खुलकर इस पुस्तक में समर्थन किया गया है। इसके पढ़ने से पाठकगण ‘वाममार्ग’ के वास्तविक रूप से परिचित हो सकते हैं। इसकी उपयोगिता इसी से प्रकट है कि यह इसका तीसरा संस्करण है। मूल्य ४=००,

मा, तुम अक्षर-परब्रह्म-स्वरूपिणी, तुम जन्म-नाश-रहिता, तुम द्योतनात्मिका हो। मा, तुम प्रणव वा ओंकार वा परम ब्रह्म हो, इस कारण तुम अक्षरा हो। "अक्षरं ब्रह्म परम्' और सदा अपने भाव में स्थिर रहती हो, इस कारण तुम अक्षरा हो—

क्षरति संचलति क्षरम्। न क्षरम् अक्षरं ध्रुवम्—अक्षरा ध्रुवा। "अक्षरं वर्ण-निर्माणं वर्णमप्यक्षरं विदुः। अक्षरं न क्षरं विद्यादक्षरं श्रुति-तोषयोः॥

मा, तुम सबकी आत्मा-रूप से विश्व-रूपिणी वा विश्व-व्यापिनी होने के कारण भी अक्षरा हो—

अश्नुते आप्नोति विश्वात्मकत्वाच्च अक्षरा।

और मा, तुम महाप्रलय में निखिल सृष्टि खा जाती हो यानी अपने में खींच लेती हो, इसलिये भी तुम अक्षरा हो।

अश्नाति गीन् लोकान् भुंक्ते भूतात्मवात् अक्षरा।

मा, एकमात्र सत्य वस्तु तू ही है—तुमसे अतिरिक्त जो कुछ है, वह असत् है–निखिल वस्तुओं के ही उपचय-अपचय परिणाम हो रहे हैं, केवल मात्र तुम ही एक भाव से एक रस से चिरकाल रही हो, इस कारण तुम नित्या हो-सन्मात्र हो-जन्म-नाश–रहिता हो। मा, तुम सुधा-अमृत-रूपा—निखिल ज्ञानों का फल हो, देवताओं का अन्न प्राण—आत्मा तुम्हीं हो। अकारादि-वर्णों में ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत-रूप तीनों मात्रा से अकार-उकार-मकार नाम से जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति के अभिमानी विश्वचैतन्य तैजस चैतन्य-प्राज्ञ चैतन्य रूप तीनों मात्रा से, ब्रह्मा-विष्णु-महेश इन तीनों देवता-रूप तीनों मात्रा से, ऋक्-यजु-साम इन तीन वेद-रूप तीनों मात्रा से, गार्हपत्य-आहवनीय-दक्षिण इन तीन अग्नि-रूप तीनों मात्रा से, भूलोक-भुवर्लोक स्वर्गलोक इन तीनों मात्रा रूप से मा, तुम्हीं विराज रही हो—

"सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता।"

ॐ=अ+उ+म। अ+उ=ओ, इसमें 'म' देने से 'ओम्' होता है। ओंकार के सात अंग हैं—पूर्वार्द्ध में अ, उ, म और उत्तरार्द्ध में नाद (ँ), विन्दु (ं), कला वा अंश वा शक्ति (=), शान्त वा कलातीत ( ) भाग हैं—

"ओंकारार्द्धोऽर्द्ध-मात्रान्त शान्तिनिःशेष-मानसः"

(योगवाशिष्ठ, निर्वाण, उत्तरखण्ड ७१।२)

मा ॐकार-रूपिणी शब्द-ब्रह्म है। शब्द-ब्रह्म के 'अकार' द्वारा रजो-गुण ब्रह्मा, 'उ' कार द्वारा सत्त्व गुण विष्णु और 'म' कार द्वारा शिव लक्षित होते हैं। 'नाद' सात्त्विक रामा शक्ति, राजसिक ज्येष्ठा शक्ति तथा तामसिक रौद्री शक्ति ये तीन शक्तियाँ हैं। 'विन्दु' सात्त्विक, राजसिक और तामसिक अहङ्कार-समष्टि है। सांख्य में इसी विन्दु को 'अहङ्कार' कहा गया है।

इस विन्दु-त्रय से विष्णु, ब्रह्मा और प्रकट रुद्र हुये हैं। रुद्र-रूप तामसिक विन्दु से उत्पन्न शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पंचतन्मात्राएं तथा उनसे उत्पन्न आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी ये पंचभूत; ब्रह्मा-रूप राजसिक विन्दु से उत्पन्न शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध यह शक्ति-पंचक तथा वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ ये पाँच भौतिक कर्मेन्द्रिय; एवं विष्णु-रूप सात्त्विक विन्दु

से उत्पन्न शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध विषयक ज्ञान तथा श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और घ्राण ये पाँच भौतिक ज्ञानेन्द्रिय तथा मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार—ये चारों अन्तःकरण 'कला' शब्द से कहे जाते हैं। 'कलातीत' इन सबमें अनुप्रविष्ट अधिष्ठान-चैतन्य है। इस तरह ओंकार के सात अङ्ग हैं।

ओंकार के चतुष्पाद ये हैं——विश्व, तैजस, प्राज्ञ तथा तुरीय अथवा अविद्या-पाद, विद्या-पाद, आनन्द-पाद और तुरीय-पाद। स्थूल इन्द्रियों से ग्राह्य पदार्थों को 'स्थूल-पाद' या अविद्या-पाद या 'विश्व' कहा जाता है। जो पदार्थ स्थूलेन्द्रिय-ग्राह्य नहीं, पर अन्तरिन्द्रिय-ग्राह्य होते हैं, उनको 'सूक्ष्म-पाद' या विद्या-पाद या 'तैजस' कहा जाता है। गुणमात्र रूप से स्थित पदार्थ 'बीज' या आनन्द-पाद या 'प्राज्ञ' नाम से कहे जाते हैं। गुणातीत अवस्था 'साक्षी' या 'तुरीय' नाम से अभिहित है।

ओंकार के त्रि-स्थान ये हैं——जागरित-स्थान, स्वप्न-स्थान और सुषुप्ति-स्थान। यहाँ स्थान-शब्द के अर्थ हैं अभिमान के विषय। इनमें किसी प्रकार चलन या गतागति नहीं है। जागरित स्थान, स्वप्न स्थान तथा सुषुप्ति स्थान—इनमें ओंकार अभिमान करते हैं। जाग्रदवस्था में परिदृश्यमान जगत् (विश्व) तथा जाग्रदभिमानी पुरुष (विराट्) प्रथम स्थान है। स्वप्नावस्था में परिदृश्यमान जगत् (तैजस) तथा स्वप्नाभिमानी पुरुष (हिरण्यगर्भ) द्वितीय स्थान है। सुषुप्ति-अवस्था में अनुभूयमान अज्ञानाधिकृत आनन्द (अव्याकृत) तथा सुषुप्ति अभिमानी (प्राज्ञ) तृतीय स्थान है। अर्थात् जीव की समष्टि और व्यष्टि जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति ये तीन अवस्थाएँ ही शब्द-ब्रह्म रूप ओंकार के तीन स्थान हैं।

ओंकार पंच-देवता-मय है। 'अथर्वशिखोपनिषद्' में कहा गया है कि ॐकार ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और शिव (महेश्वर) इन पंच-देव-मय है—

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरः शिव एव च।
पंचधा पंच-दैवत्यः प्रणव परिपठ्यते॥

ब्राह्मणों के सर्व कर्मों में ॐकार का विनियोग अत्यावश्यक है। सुतरां ॐकार को जानना ही ब्राह्मणों का प्रधान कर्तव्य है। ओंकार को न जानने से ब्राह्मणों के समस्त कर्म निष्फल हो जाते हैं। निष्फल-कर्म ब्राह्मणों की शक्ति तथा तेज हीन और निष्प्रभ हो जाने के कारण वे ब्राह्मणत्व से च्युत होकर ब्राह्मण नाम के अनधिकारी तथा अयोग्य रह कर दुःखपूर्ण जीवन-यापन में बाध्य हो रहे हैं। अतएव कहा गया है—सप्त अंग, चतुष्पाद तथा त्रि-स्थान-विशिष्ट एवं पंच-देवता-स्वरूप ॐकार को—मा को जो ब्राह्मण नहीं जानता, वह कैसे ब्राह्मण हो सकता है?

"सप्ताङ्गं च चतुष्पादं त्रि-स्थानं पंच-दैवतम्।
ओंकारं यो न जानाति कथं स ब्राह्मणो भवेत्॥"

मा, तुम केवल मात्र त्रिधा मात्रा-स्थिता—ॐकार-रूपिणी ही नहीं हो——अर्द्धमात्रा—तुरीया—निर्गुण ब्रह्म भी तुम्हीं हो, अर्थात् चित्-शक्ति परम-पद भी तुम्हीं हो——

"मात्रा तृतीया विच्छक्तिरर्द्ध-मात्रा परं पदम्"

नाद, बिन्दु, कला और कलातीत ये सभी परम-पद के अन्तर्गत हैं। स्वरूप में ओंकार-रूपिणी मा परम-पद——परम व्योम हैं। "यस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदुः"—निखिल देवता इसी मा में ही वास करते हैं। मा परब्रह्म है परन्तु तटस्थ भाव से सृष्टि-स्थिति-लयकारिणी है। सृष्टि न भासने तक मा अर्द्धमात्रा निर्गुण ब्रह्म है और सृष्टि भासने के अनन्तर मा समष्टि-भाव से सगुण विश्व-रूप तथा व्यष्टि भाव से जीव-जीव में आत्मा है और सृष्टि के विपर्यय काल में युग-युग में मा अवतार-रूप से प्रकट होती है।

जिसका जन्म नहीं है, मृत्यु नहीं है, वही नित्या है। जन्म-मृत्यु-रहित वस्तु क्या है ? आत्मा ही है-"**न जायते म्रियते वा कदाचित्** ।" मा ही आत्मा है--"**आत्मा एवासि मातः** ।" वाह, कैसे सुन्दर सिद्धान्त हैं ! जीव देह नहीं है, जीव आत्मा है--जीव ही मा है- जीव का जन्म भी नहीं है, मृत्यु भी नहीं है। जीव ! तुम्हारा शोक, मोह, रोग, मृत्यु—ये सब भ्रम-मात्र हैं। आत्मा-रूपिणी मा की भावना से जीव, तुम्हारे सम्पूर्ण मोह का लय अवश्य हो जायगा।

मा नित्या है—ब्रह्म-मयी है। मा, तुम ब्रह्म-मयी होने से स्पष्ट शब्द से तुम्हें कैसे उच्चारण किया जायेगा ! अर्द्धमात्रा का स्पष्ट भाव से उच्चारण नहीं किया जा सकता है। निर्गुण ब्रह्म तो धारणा के ही अतीत है-फिर उसका उच्चारण कैसे किया जाय ? श्रुति कहती है—

"**यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह** ।"

स्वर-संयोग के बिना अनुच्चारणीय जो अर्द्धमात्रा है-वह व्यंजन वर्ण रूप से. विराजमाना जो है, मा, वह तो तुम्हीं हो—तुम अव्यक्ता हो-

"**अर्द्धमात्रा-स्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः** ।"

मां, व्यक्त-अव्यक्त निखिल रूप ही तुम्हारा है। तुम्हीं संपूर्ण विश्व हो-और संपूर्ण विश्व को तुमने ही धारण कर रखा है। सृष्टि, स्थिति, लय तुम्हारा विलास है। जगत् में जहाँ जो कुछ कार्य हो रहा है, मां, तुम्हीं कर रही हो। विद्या-रूपिणी भी तुम्हीं हो, अविद्या-रूपिणी भी तुम्हीं हो। मनुष्य को ज्ञान (आनन्द) देकर माया-मुक्त तुम्हीं करती हो, फिर अज्ञान देकर मोह-युक्त भी तुम्हीं करती हो—

"**सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतु-भूता सनातनी ! संसार-बन्ध-हेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी** ।" "**सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानममोहनं च** ।"

तुम जगत् की माता हो। साधारण जननी क्वचित् कदाचित् किंचित् जन्म देती है, पर तुम क्षण-क्षण में, पल-पल में अनंत कोटि ब्रह्माण्डों का सृजन करती हो। तुम्हारा कार्य, तुम्हारी शक्ति, तुम्हारी करुणा के वर्णन में कौन समर्थ है ?

देवगण और पितृगणों की तृप्ति लाभ की जाती है स्वाहा, स्वधा, मंत्रादि से शास्त्र-विहित कर्मों के द्वारा। परन्तु निखिल तृप्ति का आधार मा है। यह आनन्द-रूपिणी मा ही सर्वप्रकार आनन्द की समष्टि है, जिस प्रकार जल की समष्टि समुद्र है। घृत-भक्षण से आयु की वृद्धि होती है, इस कारण घृत को आयु कहा जाता है-"**आयुर्वै घृतम्**"; अन्न-भक्षण से जीवन-रक्षा होने के कारण अन्न को ही जीवन कहा जाता है--"**अन्नं वै जीवनम्**"; उसी प्रकार स्वाहा-स्वधा मन्त्रों से देवलोक तथा पितृलोक की तृप्ति होने के कारण स्वधा-स्वाहा को तृप्ति-रूपा जगदम्बा कहते हैं।

मा, तुम स्वाहा—देवताओं की तृप्तिकरी—देवताओं के लिये तृप्ति-रूपा होकर चिरकाल रहने की प्रतिज्ञा करने के कारण देव-हविर्दान-मंत्ररूपा हो, तुम स्वधा—पितरों की तृप्तिकारी—पितृलोक के उद्देश्य में दीयमान द्रव्य-जनित तृप्ति--पितृ-दान-रूप मंत्र भी तुम हो। तुम वषट्कार—देवताह्वान की मन्त्र-रूपिणी हो। स्वरात्मिका—उदात्तादि स्वर-रूप भी तुम हो—अथवा समस्त देव-कर्म वा पितृ-कर्म की फल-रूपा स्वर्ग भी तुम हो—"**त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कार-स्वरात्मिका** ।"

मा, शब्द-रूप से ही तुम प्रथम आत्म-प्रकाश करती हो—शब्द-ब्रह्म तुम्हीं हो। और शब्द ही जगत् का प्राण है तथा जगत् की उपादान-भूत प्रकृति भी शब्द का ही कार्य है। प्रकृति भी तुम्हीं हो—'**आनन्द-घन-सन्दोहः प्रभुः प्रकृति-रूप-धृक्**'। मा, तुम ही चैतन्यरूपिणी हो और सर्वशक्ति भी तुम्हीं हो। मन्त्र-समूह शब्द ही है और मन्त्र ही चैतन्य-रूपी ब्रह्म का प्रत्यक्ष स्वरूप है। अग्नि और रुद्र एक ही हैं। अग्नि समस्त वस्तु के उपादान पृथक् करके ध्वंस करती है और

रुद्र भी विनाश का कर्त्ता है। इस कारण रुद्र ही अग्नि है, स्वाहा महादेव-पत्नी है।

सविता–जगत्-प्रसविता की अधिष्ठात्री देवता गायत्री है और जिस समय वेद-माता गायत्री **'भूर्भुवः स्वः'** समेट कर आप-आपा निर्गुणा रहती है, तब वही सावित्री कहलाती है। सावित्री—मा ही समकाल में निर्गुणा, सगुणा, आत्मा और अवतार-रूपों से लीला करती है। मा, तुम आदि करण होने से सर्वोत्कृष्टा द्योतनशीला—प्रकाशरूपा जननी हो—**"त्वमेव सा त्वं सावित्री त्वं देवि जननी परा।"**

मेरी मा चेतना-रूपिणी और सर्व-शक्ति-मयी है। चन्द्र, सूर्य, आकाश, समुद्र, प्रकृति सब कुछ मा ही धारण कर रही है। शक्ति-भिन्न शिव-चैतन्य तो शव मात्र है। मा के धारण न करने पर विश्व कहाँ रह सकता है? सर्व-शक्ति मा की सृजन-शक्ति की मूर्त्ति है ब्रह्मा, रक्षा-शक्ति की मूर्त्ति है विष्णु और लय-शक्ति की मूर्त्ति है रुद्र! जगत् में सृष्टि, स्थिति, लय शक्ति का कार्य सर्वदा ही चल रहा है और मा ही सृष्टि-स्थिति-संहारापन्न-निखिल विश्व को अपनी ब्राह्मी, वैष्णवी, रौद्री शक्ति से धारण कर सृष्टि-स्थिति-संहार लीला सर्वदा ही कर रही है। संहार में भी मा आनन्द-रूपिणी ही है—

> **पायाद् वो वन्द्यमानः प्रलयमुदितया भैरवः कालरात्र्या"** (योगवाशिष्ठ निः उः ८१। १०२)

वशिष्ठदेव प्रार्थना कर रहे हैं—प्रलय में जगद्-भक्षण करके कालरात्रि-स्वरूपिणी प्रसन्ना आनन्द-विह्वला जो देवी नाचती हुई यहाँ भैरव की अर्च्चना कर रही है—कालरात्रि से वन्द्यमान वह कल्पान्त-भैरव, हे श्रोतृ-वर्ग! तुम्हारे विघ्न विनाश कर तुम्हारी रक्षा करें।

> **"त्वयैव धार्यते सर्वं त्वयैतत् सृज्यते जगत्।**
> **त्वयैतत् पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा॥**
> **विसृष्टौ सृष्टि-रूपा त्वं, स्थिति-रूपा च पालने।**
> **तथा संहृति-रूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये॥"**

'मैं देह हूँ' इस प्रकार की बुद्धि 'अविद्या' कही जाती है। 'मैं देह नहीं हूँ, मैं चिदात्मा हूँ' ऐसी बुद्धि का नाम 'विद्या' है। अविद्या से जीव संसार में बँध जाते हैं और विद्या जीवों की माया के बन्धन खोल देती है। इस कारण जो लोग माया के बन्धन से मुक्ति चाहते हैं, उन्हें सर्वदा विद्या का अभ्यास करना चाहिए––

> **"देहोऽहमिति या बुद्धिरविद्या सा प्रकीर्त्तिता।**
> **नाहं देहश्चिदात्मेति बुद्धिर्विद्येति भण्यते॥**
> **अविद्या संसृतेर्हेतु-र्विद्या तस्या निवर्त्तिका।**
> **तस्माद् यत्नः सदा कार्यो विद्याभ्यासे मुमुक्षुभिः॥"**

महती विद्या परब्रह्म-गोचर-ज्ञानरूपा तत्वमसि अहं ब्रह्मास्मि इत्यादि महावाक्य-ज्ञान-जन्या विद्या महा-विद्या।

श्रीगुरुमुख से **'तत् त्वम् असि'** तुम ही ब्रह्म हो–इस महावाक्य का श्रवण करके विचार द्वारा **"अहं ब्रह्मास्मि"** मैं ही ब्रह्म हूँ, **"सोऽहम्"** मैं ही वह हूँ इत्यादि महावाक्य विचार-जनित ज्ञान में जब स्थिति होती है, तब महाविद्या का नाम होता है। इस प्रकार ज्ञान में स्थिति होने पर जीव का अहं सच्चिदानन्द परब्रह्म में खो जाकर सच्चिदानन्द परब्रह्म होकर ही जो स्थिति होती है, वही महाविद्या मा है। स्थिति ही मा है।

मा महाज्ञान-स्वरूपा है––ब्रह्म-ज्ञान में स्थिति-रूपा है। फिर मा प्रपंच-ज्ञान-रूपा अविद्या भी है।

महती सर्व-विषया मुक्ति-पर्यन्ता वसना माया—
अन्यत्र अन्याकारावभासिनी शक्ति महा माया।
महती सुदृढ़ा अनात्मेति आत्मेति बुद्धिः एवं
आत्मनि अपि अनात्मेति बुद्धि-माया महामाया।
महती मूला सच्चिदानन्दे आत्मनि संसारित्व-रूपानर्थावभास-हेत अविद्या माया महामाया मूला अविद्या।

महती ब्रह्मादि-मोहिका माया अविद्या-शक्तिः महामाया।

ब्रह्म में जगत् दिखलाना, अनात्मा में आत्मबुद्धि और आत्मा में अनात्मबुद्धि, असंसारी आत्मा को संसारी बनाना, ब्रह्मादि देवगणों को भी मोह में गिराना--ये सब महामाया के कार्य हैं। इस कारण कहा गया है—

तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः।
महामाया हरेश्चैतत् तया संमोह्यते जगत्--

इस मोह के बारे में विस्मय नहीं मानना चाहिए। जगत्पति श्रीहरि की योगनिद्रा-रूपा यह महामाया जगत् को संमोहित करती है।

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवि भगवती हि सा।
वलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति॥"

स्वप्रकाश रूप सर्वैश्वर्यमयी महामाया अपनी आज्ञा और निषेध-लङ्घनकारी ज्ञानियों का चित्त भी बलपूर्वक विवेक से खींचकर मोह में गिराती है—उस समय प्रेममयी दया-रूपिणी मा ही '**महद्भयं वज्रमुद्यतम्**" उद्यत-वज्र महाभयंकरी-रूप से दण्ड भी देती है। मा ही सत्त्व-रज-तमः गुणों से इस स्थावर-जंगम-पूर्ण विश्व को रचती है और रचने के अनन्तर सन्तानों को छोड़कर चली नहीं जाती; किन्तु सर्वदा ही सबकी रक्षा भी करती है। इसके आज्ञा-निषेध के पालन में चेष्टा करने पर यह मा प्रसन्ना होकर सबकी अभीष्ट-दात्री तथा मुक्ति का भी कारण होती है।

मा ही ब्रह्म-विद्या-रूपा है, समस्त पुरुषार्थ-साधिका परमा है, सनातनी--नित्या है, मुक्ति का हेतु है, और यह मा ही ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि ईश्वरों की भी ईश्वरी है तथा संसार-बन्धन का कारण भी यह मा ही है—

तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम्।
सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये॥

सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी।
संसार-बन्ध-हेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी॥

बुद्धि-शक्ति का नाम मेधा है। जिस शक्ति के द्वारा सभी आत्मा-रूप से अनुभूत होते हैं, उसी बुद्धि-शक्ति को महामेधा कहते हैं। जगज्जननी की सर्वज्ञत्व-शक्ति ही महामेधा है। निखिल-वेदों में जो कुछ है, उसका स्मरण महास्मृति है विधाता। ब्रह्मा सृष्टि करने के समय अतीत कल्प का स्मरण करके "**यथापूर्वमकल्पयत्**" अतीत कल्प में जिस प्रकार थी, उसी प्रकार की सृष्टि रचता है। जो कुछ सृष्ट हुआ है, जो कुछ सृष्ट हुआ था और जो कुछ सृष्ट हो सकता है--इन सबका ज्ञान ही वेद है। वेद का यह स्मरण भी मा तुम ही हो। स्मृति-रूपा तुम्हें सिवाय, ब्रह्मा अतीत कल्प का--निखिल वस्तु का स्मरण नहीं कर सकता।

संसार का मूल कारण है राग वा आसक्ति वा तृष्णा वा भोगेच्छा। तुम्हारे विधि-निषेध-पालन में सचेष्ट न रहने पर मा, तुम ही महामाया-रूप से जीव का विनाश करती हो। मा, तुम अपने आज्ञा-लङ्घन-कारी को महामोह, महा-ममता देकर बार-बार जनन-मरण-प्रवाह में डुबाती हो। मा, तुम समस्त देव-शक्ति-रूपा सात्त्विकी शक्ति हो, फिर समस्त असुर-शक्ति-रूपा राजसी शक्ति भी हो—

महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः।
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी॥

शक्ति और शक्तिमान् का अभेद होने के कारण '**शैवागम**' में कहा गया है—आनन्द-घन-सन्दोहः प्रभुः प्रकृति-रूप-धृक्—आनन्द-घन-मूर्ति प्रभु परमेश्वर ही प्रकृति-रूप भी धारण करता है। प्रकृति का गुण है सत्त्व, रज, तम। सत्त्वगुण ज्ञान और सुख का हेतु है। रजोगुण रागात्मक दुःख का हेतु है और तमोगुण आवरक, मोह वा अज्ञान का हेतु है। ये तीनों गुण जिस समय समान

अवस्था में रहते हैं। तब प्रकृति का नाम होता है अव्यक्त।

मा, तुम चैतन्य-रूपिणी हो, चैतन्य से अतिरिक्त सब कुछ का मूल कारण वा प्रकृति भी तुम हो और इन तीनों गुणों को पृथक् कर जगद्-रूप से स्थापन करना भी तुम्हारा ही कृत्य है, इस कारण तुम 'गुण-त्रय-विभाविनी' हो। मा, तुम कालरात्रि—मरण-रात्रि—कल्पान्त-रात्रि—जगत्-लय-रूप रात्रि (रात्रि-अभिमानिनी देवता) हो। महारात्रि-ब्रह्मणो रात्रिः-चतुर्मुख ब्रह्मा की प्रलय-रात्रि—मुक्ति-रात्रि हो, और मोहरात्रि ममतावर्त्त-मोह-गर्त्त-पातिनी महामायाख्या संसार-कर्त्री मानुषी रात्रि भी हो, इस कारण तुम दारुणा अनति-क्रमणीया दुष्परिहारा हो—

प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुण-त्रय-विभाविनी।
कालरात्रि र्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा।

मा, तुम लक्ष्मी—धन-रत्नादि की अधिष्ठात्री चैतन्य-रूपिणी हो। अर्थ-प्राप्ति के लिये भी जो लोग तुम्हारे आज्ञा-निषेध का पालन करते हुये तुम्हारे शरणापन्न होते हैं, उनकी अर्थ-कामना भी तुम पूर्ण करती हो। अर्थार्थी भक्तों के ऊपर कृपा करना भी तुम्हारा स्वभाव है। मा, तुम सबके हृदय में बैठकर सबको चला रही हो, इस कारण तुम ईश्वरी हो। मा, तुम कुर्म में घृणा-रूप से हृदय में रहने के कारण कुकर्म करने में लोक-लाज बाधा देती है। तुम निश्चयात्मिका बुद्धि-रूपा—चिन्मात्र बोधात्मिका अर्थात् निश्चयात्मिका बुद्धि वा विचार-शक्ति ही तुम हो। लाज-रूपिणी मा ही हमारी पाप-पथ से सर्वदा रक्षा करती है। भुक्त अन्नों का परिपाक कर हमें पोषण करती है, हमारे अंगों का सौष्ठव करती है मा ही। वैश्वानर अग्नि-रूप से पाक-कारिणी तथा अंगों का उपचय-कारिणी मा ही है।

यदृच्छा-लाभ में सन्तोष भी मा है। जिसके हृदय में मा विराज रही है, उसका फिर असन्तोष कहाँ से आयगा! जो होना है, होने दो—मंगल-रूपिणी मा मेरे उपकार के निमित्त ही मुझे सुख भी देती है, फिर विपद् देकर भी कर्म-क्षय कराती है। सन्तोष-रूपिणी मा ही मुझे कल्याण मार्ग में चला रही है। आनन्द-रूपिणी मा ही शान्ति है। विषय-सुख का अनुसन्धान न कर आनन्द-रूपिणी मा की ओर देखने से ही शान्ति मिलती है, मा से अतिरिक्त क्षण-ध्वंसी विषय लेकर विव्रत रहने से शान्ति कैसे मिलेगी?

भीतर-बाहर मा ही रही है—इसे विश्वास करो, करके आज्ञा-पालन में श्रद्धा करो। श्रद्धा पकने से ज्ञान का उदय होगा और तब तत्पर हो सकोगे—मा के एक-निष्ठ भक्त होकर अपने हृदय भरित कर सकोगे। उसके बाद 'मेरी आत्मा ही मा है'—इस ज्ञान का उदय होगा। इस अभेद ज्ञान से अचिर में ही शान्ति लाभ होगा—

श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञाने लब्धा परां शान्तिमचिरेणाधि-गच्छति॥

अपकार-कारी का अपकार न करने की इच्छा का नाम क्षान्ति वा क्षमा है—यह सहन-शक्ति है। जो सर्वदा भीतर-बाहर प्रणाम करते-करते मा के नाम लेने का अभ्यास करता है—सब कुछ सहन करने की शक्ति-रूप से प्रकट होकर मा ही उसे कृतार्थ करती है। मा ही क्षान्ति है—

त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोध-लक्षणा।
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च॥

प्रतिदिन पहले ही इसी अमूर्त्त मा का स्मरण अत्यावश्यक है—उसके अनन्तर मा के मूर्त्त रूप का स्मरण करना चाहिए। मूर्त्त रूप किसी भी रूप से हृदय में ले आकर मा के निराकार भाव का चिन्तन करना होता है-

"साकारेण महादेवि निराकारं च भावयेत्।"

मा, तुम अपने दश हाथों में दश आयुध (अस्त्र) लेकर दशभुजा महाकाली रूप से विराजती हो। मा, तुम

खड्गिणी–खड्ग-धारिणी, शूलिनी–शूल-हस्ता, घोरा–एक हाथ से छिन्नमुण्ड धारण करके अति भयंकरी, गदिनी—गदा-धारिणी, चक्रिणी—चक्र-धारिणी, शङ्खिनी–शङ्ख-धारिणी, चापिनी—धनु-धारिणी, वाण-धारिणी लौह कण्टकावृत क्रमोन्नत यष्ठी-धारिणी तथा लौह मुद्गर-धारिणी हो—ये सब अस्त्र तुम्हारे दश हाथों में शोभा पा रहे हैं। असुर-नाशिनी, अभक्त-भयंकरी मा के दश हाथों में यद्यपि दश प्रहरण हैं, श्रवण-युगल में मृत-शिशु-युगल शोभा पाते हैं, कटि-देश बालकों के हाथों से सुशोभित हो रहा है, सद्यश्छिन्न नरमुण्ड एक हाथ में देखा जाता है—यह मूर्त्ति यद्यपि अभक्त के लिए घोरा है–भयंकरी है, तथापि भक्त देख पाता है कि मा सौम्या–प्रसन्न-वदना सुन्दरी, सौम्यतरा–जो सुन्दरी से भी अधिक सुन्दरी और निखिल सुन्दर वस्तुओं से भी सौन्दर्य-शालिनी—अत्यन्त आह्लादिका है और मा ब्रह्मा इन्द्र प्रभृति देवगणों की भी नियंत्री है, इस कारण अतिशय श्रेष्ठा परमेश्वरी है—

खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा।
शङ्खिनी चापिनी वाण-भुशुण्डी-परिघायुधा ॥
सौम्या सौम्यतराशेष-सौम्येभ्यस्त्वति-सुन्दरी।
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ॥

जगत् में सत् तथा असत् कितनी वस्तु हैं, उनकी संख्या कौन कर सकता है? हे अखिलात्मिके! हे सर्व-स्वरूपे! उन सबकी जो शक्ति है, वही जब तुम हो, तो सर्व-शक्ति-स्वरूपा तुम्हारा स्तव किस प्रकार किया जा सकता है?—

यच्च किंचित् क्वचिद् वस्तु सदसद् वाखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं कि स्तूयसे तदा ॥

जो इस जगत् का सृष्टि-कर्त्ता है, जो इसका पालन-कारी है और जो इसका लय-कर्त्ता है, उन महाशक्ति-धरों को भी तुम, हे मा, निद्रा से आच्छन्न करती हो, तो सीमा-शून्या शक्ति-शालिनी तुम्हारा स्तव करने में किसका सामर्थ्य है? किसी का भी नहीं है—

यया त्वया जगत्-स्रष्टा जगत्-पातात्ति यो जगत्।
सोऽपि निद्रा-वशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥

जगत्पालक विष्णु, जगत्-स्रष्टा ब्रह्मा तथा जगत्-संहारक महेश्वर को भी तुम शरीर-धारण कराती हो, इस प्रकार महा-महा-शक्ति-शालिनी तुम्हें स्तव करने में इस जगत् में कौन समर्थ हो सकता है? यानी कोई नहीं हो सकता––

विष्णुः शरीर-ग्रहणमहमीशान एव च।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ॥

जब पूर्णभाव से मा का स्तव करने में असमर्थ ब्रह्मा जी भी जैसे-तैसे भाव से जिस किसी भी रूप से अपने मन की बात मा को निवेदन करके मा की महती कृपा लाभ कर लेते हैं, तो कातर-हृदय से दुःख दूर करने के लिये जिस किसी भाव से पुकारने पर ही मा अवश्यमेव दुःख दूर कर देगी। इस प्रकार सहाय रहने से भी मनुष्य किस कारण सारी आशा छोड़कर निराश होके दुःखों से म्रियमान होते हैं? धैर्य के साथ, विश्वास-पूर्ण हृदय से पुकारते रहो। अपनी शक्ति के अनुसार कातर-हृदय से मा को अपने दुःख सूचित करो—दुःख-प्रतीकार के लिए मा की स्वरूप-चिन्ता, मा के स्वभाव की चिन्ता करके–कल्पना में भी मा की मूर्त्ति जितनी हो सके, स्मरण करके और मा ही सब कुछ सजकर सामने खड़ी है, भावना वरके, दुःख दूर करने के लिए मा से प्रार्थना करो—इससे ही मा निश्चय ही तुम्हारी ज्वाला-माला मिटा देगी।

मेरी मा तो सर्व-शक्ति-रूपिणी, दरिद्र-दुःख-भय-हारिणी, सर्वोपकार-करणाय सदार्द्र-चित्ता, करुणा-वरुणालया, दयमान-दीर्घ-नयना, नित्य-नव-नवाकरुण-प्रदर्शन में परिपूर्ण वराभय-अदायिनी जगत् जननी हैं। मा कभी सन्तान की उपेक्षा नहीं करती––**"नहि माता समुपेक्षते सुतम्"**।

जिसको चिर लग्न हो गया है, वह तो सर्व-भय, सर्व-व्याकुलता, सर्व-द्वन्द्वों से चिर-मुक्त होकर अभय-पद में सुस्थित हो गया है। परमतत्त्व का ही नाम है--ॐ, ब्रह्म, आत्मा, मा।

करुणा करना ही मा का स्वभाव है। दुष्ट का संहार करके भी यह मा दुष्ट के प्रति करुणा ही करती है। विद्या, मात्रा, बुद्धि, स्मृति, संपूर्ण दैवी शक्ति, समस्त आसुरी सम्पत्—तब ही यह मा है। मा से अतरिक्त और कुछ भी नहीं है। जब सकल कार्यों में, सकल वाक्यों में, समस्त भावना में इसी मा की सेवा विस्मृत न कर मनुष्य जीवन बिता सकता है, तभी वह समस्त कर्म-क्षय करके मा को लेकर ही--मा का होकर ही—मा होकर ही रहता है। यही जीव की संसार से मुक्ति है ।। ॐ श्रीः ।।

* * *

जय मा

जय मा भवानी कालिका, जय भुवन बहु संचालिका।
जय मा मृडानी मालिका, शिव कंठकर लल लालिका ।। १ ।।
जय एकता समरस मता, जय सामरस्य सुमालिका।
जय शाकिनी संचारिका, जय हाकिनी हंतालिका ।। २ ।।
जय ईश माता मारिका, जय कारिका कङ्कालिका।
जय डाकिनी डमरु डिमध्वनी नायिका पल घालिका ।। ३ ।।
जय लक्ष्मणाग्रजपालिका, समरालिका अमरालिका।
जय शुक्र संजीवनि महाविद्या प्रदायिनि शालिका ।। ४ ।।
जय मन्त्रदा, जय यन्त्रदा जय प्रणव माया जालिका।
जय तन्त्रदा तन्त्रालिनी, जय इन्द्रजाला मालिका ।। ५ ।।
जय दृश्य एक विधायिका पुनि लुप्त नव नव नालिका।
जय 'मोति' माया लक्ष्यदा संरक्षिणी संपालिका ।। ६ ।।

* * *

शक्ति-तत्त्व

उद्यत्सूर्य-सहस्र-भास्वर-तनुः सूक्ष्मातिसूक्ष्मा परा
विद्युत्पुञ्ज-निभेन्दु-कोटि-सदृशी धाम-त्रयाध्यासिनी ।
तत्तेजस्त्रितयात्मकैक-मनुभिर्वाक्-काम-शक्त्याख्य-युक्
कूटस्थ्यब्धि-शरर्त्तुभिः परिणता नित्यात्मिका पातु नः ॥

वह सूक्ष्मतम से भी अधिक सूक्ष्म, जिसके अभौतिक, अवैयक्तिक और वैयक्तिक शरीर सहस्रों उदयोन्मुख सूर्यों की ज्योति से (अनन्त, अपरिमेय प्रकाश से) प्रकाशित हैं; जिसका द्वितीय आकार विद्युत्पुञ्ज की भाँति (न श्वेत, न काला) प्रदीप्त है; जिसके तृतीय आकार से करोड़ों चन्द्रमाओं की शान्त और मोहक ज्योति निकलती है; जो तीन धामों में प्रसन्नतापूर्वक निवास करती है; जिसके तेज और वाणी का निरन्तर निस्सरण वाक्, काम और शक्ति-कूट कहलाता है और ३, ४, ५ व ६ अङ्कों द्वारा प्रकट किया जाता है; जो स्वभाव से नित्य और समस्त कारणों का मूल कारण है, वह परा भगवती हमारी रक्षा करे ।

प्रिय पाठको और पाठिकाओ,

सम्माननीय ऋषियों की व्याख्याओं तथा पुरातन व आधुनिक दार्शनिक, मनोदार्शनिक एवं वैज्ञानिक साक्षियों के आधार पर हम यह निस्सन्देह कह सकते हैं कि सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय, जो कुछ व्यक्त या अव्यक्त रूप में होती है, प्रधानतः उस ढंग पर निर्भर करती है जिस ढंग में विश्व-सम्बन्धी योजना की मूल प्रेरणा अव्यक्त कारण की व्यक्ति और विकास में सहायता करती है ।

ईश्वर का सृष्टि-रचना में क्या उद्देश्य है, इसका उत्तर कई प्रकार से दिया गया है । एकोऽहं बहु स्याम, आत्म-लीला, चितिः स्वतन्त्रा विश्व-सिद्धि-हेतुः, आदि के अनुसार अव्यक्त कारण को क्रमशः शब्दब्रह्म, अनाहत, अकृतनाद, आन्तरस्फोट, परा, प्राण प्रणव और महाकुण्डलिनी आदि के द्वारा अभिहित किया जाता है । विश्व-निवास-सम्बन्धी सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए न्याय और वैशेषिक संसार का कर्तृत्व स्वतन्त्र ईश्वर पर आरोपित करते हैं । उनके मतानुसार स्वतन्त्र ईश्वर आठ मूलतत्वों, नित्यज्ञान, नित्य-इच्छा आदि के द्वारा सृष्टि करता है । सांख्य कर्म की शक्ति की वकालत करता हुआ ईश्वर की उपेक्षा करता है । योग ईश्वर का कर्तृत्व निर्विवाद मानता है । वह ईश्वर पंच क्लेशों से अस्पृष्ट है । पूर्व-मीमांसा वेद-कर्म के अनुसार और जीव की पराधीनता के आधार पर सृष्टि-प्रवाह को अनादि मानता है और उत्तर-मीमांसा मायोपाधि ईश्वर का कर्तृत्व निरूपित करता है ।

शक्ति-मत—अद्वैतवादी और द्वैतवादी दोनों—विश्व-रचना सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए कहता है कि शिव की संतुलितावस्था हो जाने पर शक्ति में क्षोभ उत्पन्न होता है और वह क्षोभ परस्पर के कार्य-विभाजन में परिणत हो जाता है । शिव और शक्ति में से एक का कार्य धनात्मक होता है और दूसरे का ऋणात्मक । शिव धनात्मक आधार का कार्य करते हैं और शक्ति ऋणात्मक चित्रों में धनात्मक पृष्ठ-भूमि के अनुसार रङ्ग देती हुई क्रमशः शून्य को रूप में बदलती चली जाती है—उत्तरोत्तर गहरा रङ्ग देती हुई—जब तक सृष्टि का विकास पूर्ण नहीं हो जाता ।

उपर्युक्त विकासवादी सिद्धान्तों से—जगत् के सृष्टा की मनोदार्शनिक या इन्द्रियातीत परिस्थिति कुछ भी हो—

यह स्पष्ट हो जाता है कि अव्यक्त के व्यक्त होने के लिए मूल प्रेरणा आवश्यक है। इस इन्द्रियातीत मूल प्रेरणा को अत्यन्त शक्तिशाली भी होना चाहिए। इतना शक्तिशाली, जिसकी कल्पना भी न की जा सके—और वह समस्त उपादानों का, जिसकी सृष्टि के लिए आवश्यकता होती है--धारण करनेवाली भी हो, जिससे परमोत्कृष्ट विश्व का निर्माण कर सके।

मूल प्रेरणा स्वयं अनेक मनोदार्शनिक गतियों और चेष्टाओं का समवाय है, अतः उसे अकारण कहा जाता है। केवल मूल निर्माता ही उसका कारण है। यह शब्द-ब्रह्म या प्राण-शक्ति, जो समस्त स्पन्दनशील पिण्डों की प्राण है, जिससे प्राणी को शक्ति मिलती है, अन्तरास्फोट, जिसका स्पन्दन जीवन की आभ्यन्तरिक नाड़ी को गतिशील बनाता है, अनाहत जो प्रत्येक स्थान पर प्रस्पन्दित और प्रस्फुरित होता है, बिना किसी धातु-उपकरण की सहायता के, और जो सदैव अकृतनाद रहता है, किसी हाथ से नहीं रचा जा सकता। संक्षेप में हम सभी—जड़ और चेतन—इस धरा, महा कुण्डलिनी या शब्द-ब्रह्म के द्वारा ही—जीवित रहते हैं। हम उसी के भाग या अंश हैं। हम उसी महान् के छोटे से भाग हैं। हमारी स्थिति ठीक बंधन में पड़े पशु जैसी है। हम कंचुकों से यथा संभव आनन्द की प्राप्ति करते हैं, पर शिव के वरदानों से वंचित रहते हैं।

उपर्युक्त सिद्धान्त--कि शब्द-ब्रह्म और महाकुण्डलिनी से पृथक् किसी पदार्थ की सत्ता ही नहीं हो सकती—की व्याख्या आधुनिक वैज्ञानिक दूसरे प्रकार से करते हैं। आधुनिक ज्योतिषी यह परीक्षण करने के बाद कि विश्व शाश्वत युवा रहता है, कहते हैं कि हम न सृष्टि का आदि मानते हैं और न अन्त। हम किसी ऐसी अवस्था को नहीं स्वीकार कर सकते जब कि शक्ति का अभाव हो जाने के कारण संसार मृतक हो जायेगा। वैज्ञानिकों का कथन है—"हम ऐसे स्थान की कल्पना नहीं कर सकते, जिसमें प्रकृति अपने दो रूपों में से किसी एक में मौजूद न हो। इच्छा या आकांक्षा के रूप में मन न केवल पशु या वनस्पति-जगत् में विद्यमान रहता है, वह सृष्टि के उस भाग में भी है, जिसे हम जड़ प्रकृति कहते हैं। प्रत्येक अणु-परमाणु में एक प्रकार की चेतना और इच्छा रहती है।" जेम्स जीन्स का कथन है--"विश्व सृष्टा के मस्तिष्क का एक विचार है।" इससे यही सिद्ध होता है कि मूलेच्छा अव्यक्त कारण द्वारा समस्त संसार में परिव्याप्त है। शक्ति का यह विस्तार ही शक्ति-मत का मुख्य प्रतिपाद्य है।

विभिन्न दार्शनिकों के अन्तिम लक्ष्य की विवेचना करने पर शाक्त-धर्म का मुख्य मत और भी स्पष्ट हो जाता है। न्याय और वैशेषिक के मत से जीव का अन्तिम लक्ष्य १६ और ७ दुःखमय तत्वों की बेड़ियों को तोड़ फेंकना है। सांख्य ने त्रिविध दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति को अत्यन्त पुरुषार्थ माना है। योग ५ क्लेशों की आत्यन्तिक निवृत्ति को मोक्ष मानता है। पूर्व मीमांसा के मत से द्वन्द्व-समूहों से पृथक् होकर आकाश—स्वतंत्र की प्राप्ति ही मोक्ष है। उत्तर-मीमांसा के मत से अज्ञानता के बन्धन से छूटकर ब्रह्म में लीन हो जाना ही मोक्ष है।

दार्शनिकों के विविध समुदायों के अनुसार विश्व अपना वर्त्तमान अवस्था में अनेक दुःख-द्वन्द्वों का आकार है। अतएव इसमें रहकर इन दुःख-द्वन्द्वों से छुटकारा पाने का प्रयत्न करना होता है। यहीं पर शाक्त-धर्म इन दर्शनों से भिन्न है। उसके मत से सृष्टि भुक्ति-मुक्ति के लिये है। इन दोनों का उपयोग पूर्ण रूप में होना चाहिये। व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि शास्त्रों के अनुकूल आचार-व्यवहार करते हुए संसार के सर्वोत्तम प्राप्त साधनों को अनन्योपभोग का साधन बनाने में वीर की भाँति प्रयत्न करना और इस अग्नि-परीक्षा में उत्तीर्ण होकर अत्युत्कृष्ट सिद्धि को प्राप्त करना।

तपस्या द्वारा प्राप्त शक्ति का दुरुपयोग न हो जाय, अतएव शास्त्र के आदेशों का अक्षरशः अनुगमन आवश्यक है।

कारण यह है कि जो वस्तु हमारी बुद्धि को स्वतन्त्रता प्रदान करती है, पर हमें आत्म-संयम नहीं सिखाती, वह अन्ततः भयानक होती है (गेटे)। आत्म-सम्मान, आत्म-ज्ञान, आत्म-संयम, ये तीनों ही जीवन को परमेश्वर के पास ले जाते हैं--(टेनीसन)। अभिप्राय यह है कि शरीर और मन के संयम-द्वारा ही हम ईश्वर का सम्पूर्ण मन, सम्पूर्ण हृदय और सम्पूर्ण आत्मा से प्रेम कर सकते हैं।

भारतीय योग और तन्त्र-शास्त्र शारीरिक और मानसिक संयम की शिक्षा पर बहुत जोर देते हैं। इसके लिए उन्होंने कई प्रकार के आसन-व्यायामादि का विधान किया है, क्योंकि प्रकृति के नियमानुसार शरीर मशीन की भाँति काम करता हुआ संपूर्ण बाह्य और आभ्यंतरिक प्रभावों की प्रतिक्रिया करता है। उच्चतर क्षेत्रों में जब कि मस्तिष्क शक्ति और बल का अक्षय्य भांडार और साधन बन जाता है और असाधारण रहस्यमय कार्य करने की उसमें क्षमता आ जाती है, वह (मस्तिष्क) अपने में से इतना प्रदान कर सकता है, जितना उसमें रहने की सम्भावना भी नहीं होती। जितना पाता है, उससे अधिक दे सकता है। भारतीय सिद्धों में से अनेक इसी प्रकार के शक्ति-सम्पन्न योगी थे। उनके वश में ऐसी ही रहस्यपूर्ण शक्तियाँ थीं।

मनुश्चन्द्रः कुबेरश्च लोपामुद्रा च कामराट्,
अगस्त्य-नन्दि-सूर्याश्च विष्णु-स्कन्द-शिवास्तथा।
दुर्वासाश्च महादेव्या द्वादशोपासकाः स्मृताः,
शक्रश्च चोन्मनी चैव तथा च वरुणस्ततः।
धर्मराजोऽनलो नागराजो वायुर्बुधस्तथा,
ईशानश्च रतिश्चैव तथा नारायणोऽपि च।
ब्रह्मा जीवो महादेव्यास्त्रयोदश उपासकाः,
पञ्च-विंशति-संख्याकोपासकानां महेश्वरि।
(श्री विद्यार्णव तंत्रे ६)

ये सभी शाक्तधर्म के अनुयायी थे। अज्ञातवाद के रचयिता महर्षि वशिष्ठ तारा के उपासक थे। हमें यह भी ज्ञात हुआ है कि श्री शंकराचार्य के १९ शिष्यों में से ९ गृहस्थ थे और वे शाक्त-मत के अनुयायी थे। शारदातिलक और श्री विद्यार्णवतंत्र के रचयिता लक्ष्मणाचार्य जी और श्रीविद्यारण्य जी शक्ति-मत के समर्थक थे और साथ ही वेदान्ती भी। शंकराचार्य जी द्वारा स्थापित पीठों में श्रीयंत्र की पूजा अब तक प्रचलित है। इससे प्रकट होता है कि शक्ति-पूजा का सर्व-साधारण में बहुत अधिक प्रचलन था ।

अन्त में शाक्त-मत के दो प्रधान तत्त्वों—भुक्ति और मुक्ति—के विषय में यह बतलाना आवश्यक समझता हूं कि दोनों का एक साथ निर्वाह हो सकना किस प्रकार सम्भव है। इसका उत्तर इस प्रश्न के उत्तर से मिल सकता है कि सर्वोत्तम आत्म-जिज्ञासु कौन हो सकता है। महर्षि नारद ने एक बार सनत्कुमार से अपनी विद्या का परिचय देते हुए कहा था—

स होवाच ऋग्वेदं अध्येमि यजुर्वेदं सामवेदं आथर्वणं चतुर्थमितिहासं पुराणं पंचमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाको वाक्यमेकायनं देव-विद्यां ब्रह्म-विद्यां क्षत्र-विद्यां नक्षत्र-विद्यां सर्व-देव-जन-विद्यामेतदत्र भगवोऽध्येमि। छा० उ० अ०

ये सब शास्त्र तो केवल--

अरे महतो भूतस्य निःश्वसितमेतत् यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासं पुराणं विद्यामुपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुवाकानि व्याख्यानानि अस्यैवैतानि सर्वाणि निःश्वसितानि।

वृ० आ० २४ अध्याय।

महत् के निःश्वास मात्र हैं! एक तांत्रिक के लिये अभ्यास करते समय परम शक्ति का अनुभव करने के पूर्व इनका अध्ययन-मनन अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

छन्दः पादौ तु वेदास्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्,
शिक्षा घ्राणं महेशानि हस्तौ कल्पोऽथ कथ्यते।
ज्योतिषं देवि तन्नेत्रं निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते,

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा-न्याय-विस्तरैः ॥
धर्म-शास्त्रं पुराणं च विद्या एताश्चतुर्दश ।
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गांधर्वश्चेति ते त्रयम ।
अर्थशास्त्र-समायुक्ता विद्याष्टदशधा रसाः ।

शाश्वत वेद-पुरुष का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये छन्द, व्याकरण, शिक्षा, कल्प, ज्योतिष आदि का पूर्ण परिचय आवश्यक है।

तांत्रिक साधक यह जानता है कि उसे अपनी साधना की पूर्त्ति के लिये उपर्युक्त विद्याओं का ज्ञान आवश्यक है। तभी वह उच्च-से-उच्चतर पद पर पहुंच सकता है। क्योंकि यह विश्व महत् शक्ति का ही प्रकट और प्रकाश्य रूप है—

कामो योनिः कमला वज्रपाणि—
र्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः ।
पुनर्गुहा सकला मायया च
पुरूच्येषा विश्वमातादि विद्या ॥
इमां विज्ञाय सुधाया मदन्ति
परिस्रुता तर्पयन्तः स्वपीठम्
नाकस्य पृष्ठे महतो वसन्ति
परं धाम त्रैपुरं चाविशन्ति ॥

* * *

श्री भवानी स्तुति

घृत-क्षीर-द्राक्षा-मधु-मधुरिमा कैरपि पदै-र्विशिष्यानाख्येयो भवति रसना-मात्र विषयाः ।
तथा ते सौन्दर्यं परम-शिव-दृङ् मात्र विषयः कथङ्कारं ब्रूमः सकल-निगमागोचर-गुणे ॥

'घी, दूध, अंगूर अथवा शहद का स्वाद कैसा है और उनके स्वाद में क्या-क्या अन्तर है—इसे हम शब्दों द्वारा अलग-अलग करके किसी प्रकार भी नहीं समझा सकते, चाहे हम कितने ही पण्डित और शब्द-शास्त्री क्यों न हों। इसका तो हम रसनेन्द्रिय के द्वारा अनुभव ही कर सकते हैं, दूसरे को समझा नहीं सकते। इसी प्रकार, हे देवि, तुम्हारी अनुपम छवि का कोई वर्णन नहीं कर सकता, वह तो केवल परम शिव के प्रत्यक्ष का ही विषय है। सौन्दर्य की बात ही क्या, तुम्हारे और-और गुणों का भी कोई वर्णन नहीं कर सकता। वेद और उपनिषद् भी हार मान जाते हैं और 'नेति'-'नेति' कहकर ही अपना पिण्ड छुड़ाते हैं।

सपर्णामाकीर्णां कतिपय-गुणैः सादरमिह, श्रयन्त्यन्ते वल्लीं मम तु मतिरेवं विलसति ।
अपर्णैका सेव्या जगति सकलैर्यत्परिवृतः, पुराणोऽपि स्थाणुः फलति किल कैवल्य-पदवीम् ॥

संसार में लोग अनेक प्रकार के गुणों से युक्त, पत्तोंवाली लता का ही आदरपूर्वक सेवन करते हैं। परन्तु मेरा अपना मत तो यह है कि जगत् में सब लोगों को अपर्णा (बिना पत्तों की बेल अर्थात् देवी पार्वती, जो इस नाम से प्रसिद्ध हैं) का ही सेवन करना चाहिये, जिनके संसर्ग से पुराना स्थाणु (ठूँठ) भी (अर्थात् देवाधिदेव महादेव, जो संसार के आदि कारण होने से सबसे पुराने तथा सर्व-गत, अक्रिय, अपरिणामी एव निर्विकार होने के कारण 'स्थाणु' अर्थात् अविचल कहलाते हैं) मोक्ष-रूपी फल देने लगता है।

वेद में शक्ति तत्व

शक्ति-तत्त्व की उपासना अनादि-काल से ही संसार में होती आ रही है। लौकिक और पारमार्थिक दोनों विषयों की सिद्धि इससे होती है, इसीलिये आर्यजनता सनातनकाल से ही बल, ऐश्वर्य, ज्ञान, सौन्दर्य, निःश्रेयस आदि तत्वों को अपने धर्म तथा समाज के अङ्गरूप में मानती आ रही है। ये सारी वस्तुयें शक्ति-तत्व के ही रूपान्तर हैं। उपनिषदों में जिसे ब्रह्म कहा गया है, वह शक्ति पदार्थ का अभिन्न रूपान्तर ही है। इसीलिये श्री आचार्य भगवत्पाद ने सौन्दर्यलहरी में कहा है—

'शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितु
न चेदेवं देवः न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ।'

अर्थात् ब्रह्म शक्ति-तत्व-युक्त ही कार्य करने में समर्थ है अन्यथा वह कुछ भी नहीं कर सकता। अनुभव से भी यह बात प्रत्यक्ष है कि शक्तिमान् ही कोई भी कार्य करते देखा गया है। संसार के इतिहास से भी यह प्रकट है कि सदैव संसार में शक्ति-शालियों का ही बोलबाला रहा है। आर्य-जाति ने अतीत में जो कुछ भी ऐश्वर्य, ज्ञान, तप आदि की उन्नति की थी, उसका मूल कारण शक्ति-तत्व की उपासना ही है, क्योंकि बिना शक्ति के ये सब असम्भव हैं।

संसार के सबसे प्राचीन वैदिक ग्रन्थों के अवलोकन से भी यह बात पुष्ट होती है, जिनका उद्धरण आगे दिया जायेगा। वैदिक साहित्य में भी सबसे प्राचीन संहिता-ग्रन्थों में अनेक मन्त्रों में शक्ति-तत्व का रहस्य कहा गया है। देवीसूक्त, रात्रिसूक्त और सरस्वतीसूक्त तो प्रसिद्ध ही हैं। आज अथर्ववेद के प्रथमकाण्ड के तेरहवें सूक्त पर ही 'चण्डी' के पाठकों की सेवा में कुछ निवेदन करते हैं, जिससे शक्ति-विषयक ईश्वरीय आदेशों का रहस्य समझने का भाव हृदयंगम किया जा सकता है। शक्ति-तत्व को प्रधान रूप में बतानेवाले तान्त्रिक साहित्य के भावों का सामञ्जस्य भी यथा स्थान किया जायेगा, जिससे नव-शिक्षित जनता में तान्त्रिक साहित्य के विषय में जो भ्रान्त धारणा हो गयी है, उसका निराकरण होगा। सूक्त के प्रत्येक मन्त्र के साथ तान्त्रिक सिद्धान्त का मिलान करते हुये विचार किया जायेगा।

इस सूक्त में चार मन्त्र हैं। भृगु आङ्गिरस इसके ऋषि हैं और विद्युत् देवता हैं। इस विद्युत्तत्व के द्रष्टा या आविष्कारक भृगु मुनि की शक्ति का उदाहरण महाभारत, पुराणादि ग्रन्थों में जिस तरह बताया गया है, उस तरह का कोई दूसरा उदाहरण आर्य ग्रन्थों में नहीं मिलता है। वे इतने शक्तिशाली थे कि उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु और महेश की भी परीक्षा ली थी और विष्णु को भी लात मारी थी। यजुर्वेद में भृगु आंगिरस के विषय में इस प्रकार कहा गया है—

भृगूणामाङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम (अ० १-१८)

अर्थात् अङ्गिरा-गोत्रवाले भृगुओं के तेज से तेजस्वी होओ। इसी के अनुसार शतपथ ब्राह्मण भी कहता है—'इत्येतद् वै तेजिष्ठं तेजो यद् भृग्वंगिरसाम्' अर्थात् भृगु आंगिरसों का ही यह सर्वश्रेष्ठ तेज है। गोपथ ब्राह्मण में 'एतद् वै भूयिष्ठं ब्रह्म यद् भृग्वङ्गिरसाम्' (गो-पू-३ ४) कहा गया है। यह सब महन्व शक्ति पदार्थ का ही है। 'ऋषयो मन्त्र-द्रष्टारः' के अनुसार उक्त शक्तिशाली भृगु अङ्गिरा मुनि इस रहस्यमय सूक्त के ऋषि हैं। उन्होंने ही इस अनादि शक्ति-विज्ञान को जगत् के सम्मुख प्रकट किया है। विद्युत् इस सूक्त का प्रतिपाद्य देवता-रूप शक्ति-

पदार्थ है। 'द्यु त् दीप्तौ' इस धातु से क्विप् प्रत्यय होकर कर्त्रर्थक दीप्ति प्रकाश आदि अर्थों की सिद्धि होकर विद्यु त् का स्पष्ट अर्थ यह है कि विद्यु त् सबका प्रकाशक है और स्व-स्व-कार्य-करण में समस्त पदार्थों को वह योग्यता प्रदान कर रही है। आजकल पाश्चात्य विज्ञान के प्रचार से बिजली-तत्व का जो प्रचार एवं उपयोग हो रहा है, वह इसका स्थूल ही रूप है। शुद्ध चेतन-रूप, जो सारे जगत् का नियामक है, इससे परे है। वही इस सूक्त का प्रतिपाद्य है। उसे ही दार्शनिक ग्रन्थों में सच्चिदानन्द-रूपिणी बताया गया है। वही ब्रह्म-तत्त्व है। यह भाव सूक्त के अक्षरों पर ध्यान देने से प्रकट होता है, जिसका पहला मन्त्र इस प्रकार है—

नमस्ते अस्तु विद्यु ते नमस्ते स्तनयित्नवे।
नमस्ते अस्त्वश्मने येनादूडाशे अस्यसि ॥१॥

अर्थात् हे प्रकाश-रूपवाली देवि विद्युत् शक्ति-रूपे, तुझे नमस्कार है। शब्द-रूप से गर्जना करनेवाली तुझे नमस्कार है। अश्म वज्र भी तेरा रूप है, अतः उसे नमस्कार है, जिससे तू हमारे क्लेशों को नष्ट करती है।

बिजली का मुख्य सम्बन्ध जल से है। उसका कारण-रूप मेघ है। उसमें बिजली की चमक, गर्जना तथा वज्रपात तीनों होते हैं। ये तीनों विद्युत् शक्ति के भौतिक रूप हैं। जगत् के व्यवहार में इन तीनों चीजों का उपयोग करके आज भौतिक विज्ञान अनेक चामत्कारिक दृश्य नित्य नये रूप दिखा रहा है, परन्तु इससे केवल ऐहिक लाभ ही सब लोग उठा सकते हैं, मानसिक या आध्यात्मिक उन्नति में इसका कोई साक्षात् उपयोग नहीं है, केवल बाह्योपकरणमात्र में ही इसका उपयोग है। इसलिये इसे मनुष्य-जीवन का लक्ष्य माननेवाले पाश्चात्य समाज का इस समय विनाशोन्मुख प्रवाह हो रहा है। एलेक्ट्रॉन-प्रोटॉन और न्युट्रॉन इन दो प्रकार की बिजलियों से सारे पार्थिव पदार्थों की सृष्टि हुई है। पृथ्वी का यह वर्तमान रूप इन्हीं दोनों विद्युतों के योग का परिणाम है। यह साइन्स-वेत्ताओं का मत है। इसी से मिलता-जुलता वैदिक सिद्धान्त भी है—

इयं वै पृथिवी भूतस्य प्रथमजा' (श०१४-१-२-१०)

अर्थात् भूत—भौतिक सृष्टि के पहले यह पृथिवी ही उत्पन्न हुई। विद्युत् के विषय में उक्त मन्त्र में जितने शब्द आये हैं, उनकी निरुक्ति वैदिक ग्रंथों में भिन्न-भिन्न प्रकार से की गयी है।

विद्यु त् 'शक्तिः' तान् देवान् व्यद्यत् पापनः सकाशात् वियोगितवान् यद् विद्यु त् तस्माद् विद्यु त् (तै० ३-१०-९-१)

अर्थात् देवताओं को पापों से छुड़ाने की वजह से उसका नाम विद्युत हुआ; **'विद्यु द् ब्रह्मेत्याहुः'** (श० ६-१-१-१४) विद्युत् ही ब्रह्म है; **'विद्यु द् वाऽशनिः'** (श०६-१-३-१४ बिजली ही वज्र है; **विद्यु द् वाऽअपां ज्योतिः'** (यजुर्वेद १३-५३) बिजली ही जल की ज्योति है; **'वृष्टिर्वै याज्या विद्यु देव विद्यु द हि इदं वृष्टिमन्नाद्यं सम्प्रयच्छति'** (ऐ० २-४१) अर्थात् समस्त जल-कणों का एकीभाव ही बिजली है; बिजली ही वृष्टि, अन्नादि की पुष्टि को प्रदान करती है; **यो विद्यु ति पुरुषः स सर्व-रूपः सर्वाणि ह्येतस्मिन् रूपाणि'** (ऐ० ४-१) अर्थात् बिजली में वह रुष है। उसी के ये सब रूप हैं, उसी में ये सब रूप रहते हैं।

बिजली में गति है। जहाँ गति है, वहाँ शब्द का रहना या होना नियम-सिद्ध है। शब्द ही वज्र है या उसकी अभिन्न शक्ति ही वज्र कहलाती है, जिसे कहा गया है—**'वज्र एव वाक्'** (ऐ० २-२१), **'वाग्घि वज्रः'** (ऐ० ४-१)। महर्षि पतञ्जलि महाभाष्य में कहते हैं—**'स वाग् वज्रो यजमानं हिनस्ति'** अर्थात् वह वाणी वज्र होकर यजमान का विनाश कर देती है। इन उक्त प्रमाणों पर विचार करने से विद्युत् शक्ति के भौतिक,

दैविक एवं आध्यात्मिक रूपों का रहस्य स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाता है।

महर्षि यास्क का मत है कि प्रत्येक वैदिक मन्त्र का अर्थ भौतिक, दैविक एवं आध्यात्मिक इन तीनों रूपों में वैदिकों को जानना चाहिये। **यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतो समन्त्रो भवति तास्त्रिविधः परोक्ष-कृताः प्रत्यक्ष-कृताः, आध्यात्मिक्यश्च'** (नि० ७-१) अर्थात् जिस अर्थ की इच्छा से ऋषि जिस देवता की स्तुति करता है, वह मन्त्र उस देवता का होता है। उसके तीन भेद हैं–परोक्ष, प्रत्यक्ष और आध्यात्मिक। अन्य पुरुष की अपेक्षा से जो वर्णन होता है, उसे परोक्ष, मध्यम पुरुष (तुम) की अपेक्षा वाले को प्रत्यक्ष तथा मैं (अहम्) रूप से तादात्म्य करके बतलाने वाले मन्त्रों को आध्यात्मिक कहते हैं। इस नियमानुसार सूक्त की यह ऋचा प्रत्यक्ष कृत है। ऋषि प्रत्यक्ष रूप में उस महाशक्ति का वर्णन कर रहे हैं। वेदान्त शास्त्र में अन्य पुरुष का अन्तर्भाव मध्यम तथा उत्तम पुरुष में किया जाता है। **'युष्मदस्मद्-गोचरयोः'** इत्यादि भाष्य में श्री स्वामी शङ्कराचार्य ने अहम् और त्वम् को ही निकट-सम्बन्धी माना है। इनमें भी 'अहम्' ही मुख्य है। तुम का व्यवहार भी कल्पित है, क्योंकि व्यवहार-काल में तुम का उपयोग मानकर भी अपने को सब कोई 'मैं' ही कहते हैं। इसलिए तुम का व्यवहार कल्पित ही है, क्योंकि भेद मायिक है और भेद-कृत समस्त वर्णन मायिक है। परमार्थ आध्यात्मिक वर्णन है। परोक्ष, प्रत्यक्ष वर्णनों का अभिप्राय अध्यात्मवाद में तात्पर्य रखता है।

महर्षि व्यास भी **'तत्तु समन्वयात्** वे० द० १-४-४) इस सूत्र से समस्त वैदिक वाक्यों का तात्पर्य ऐसा ही मानते हैं। महर्षि यास्क ने **'अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि'** इस देवी सूक्त को आध्यात्मिक अर्थ में ही बताया है। अतः अध्यात्मवाद की अपेक्षा से इस मन्त्र का आध्यात्मिक अर्थ इस प्रकार लगाया जा सकता है (दैविक अर्थ अध्यात्मवाद के ही अन्तर्गत है)–'हे देवि, विद्युत्-रूपे, मूलाधार चक्र में सार्ध-त्रिवलय रूप से रहनेवाली तुझे नमस्कार है। ध्वनि-वर्ण-रूप से गर्जना करनेवाली, तुझे नमस्कार है। स्वाधिष्ठान आदि चक्रों के भेदन में वज्र का कार्य करनेवाली, तुझे नमस्कार है!' इन तीनों कार्यों की सिद्धि शक्ति से ही होती है, जिसे तन्त्र-शास्त्राभ्यासी साधक अच्छी तरह जानते हैं। इनके सुसम्पन्न होने पर सभी साधकों के कष्ट (पाप) निवृत्त हो जाते हैं। इसीलिये ऋषि कहते हैं **'येना दूडाशे अस्यसि'** अर्थात् हमारे (साधकों के) सभी क्लेशों को दूर करती है।

शक्ति-पदार्थ का विशद रूप में निरूपण करनेवाले तन्त्र-ग्रन्थों में भगवान् शिव ने बताया है कि मूलाधार चक्र में सोये हुये सर्प के आकार में सार्ध-त्रिवलय रूप में इस जगत् का अभिन्न-निमित्तोपादान-कारण शक्ति-तत्त्व है, जो आन्तरिक साधन से जाग्रत् होता है। उक्त मन्त्र के वर्णन के ही अनुसार तान्त्रिक साधना में शक्ति पदार्थ का वर्णन किया गया है। त्रिपुरा-सार-समुच्चय में कहा गया है—

शक्तिः कुण्डलिनीति यानि गदिता आईम संज्ञा जगन्निर्माणे सततोद्यता प्रविलसत् सौदामिनी-सन्निभा।
शंखावर्त-निभां प्रसुप्त-भुजगाकारां जगन्मोहिनीम्,
तन्मध्ये परिभावयेद् विस-लता-तन्तूपमेयाकृतिम्॥१०॥
हूँ कारेण गुरूपदिष्ट-विधिना प्रोत्थाप्य सुप्तां ततः,
कृत्वा तां कलया तयापर मया चिद्-रूपया सङ्गताम्।
मायां कुण्डलिनी समाहित-मनास्ता-मुच्चरेत् कौशिकीं,
शक्तिं ब्रह्म-महा-पथेन सहितामा-धारतः स्वात्मना॥

(४ प-११)

अर्थात् आईम संज्ञा-वाली, जगद्-रचना में सततोद्यत, चमकती हुई बिजली के सदृश, शंख के मुख के समान आवर्त (चक्करदार) सदृश, सोये हुये सर्प के समान, सारे

जगत् को मुग्ध करनेवाली, विस-तन्तु के सदृश कुण्डलिनी-शक्ति मानी गयी है उपदिष्ट रीति से 'हूँ'—बीजाभ्यास द्वारा सोई हुई कुण्डलिनी को उठाकर परम चित्कला से उसका योग करके आधार-पद्म से लेकर सहस्रार-पर्यन्त समस्त षट्-चक्रों का समाहित मन द्वारा अनुभव करना चाहिये। १०, ११

इसी मार्ग में शब्द या नाद का भी अनुभव योगी साधकों को होता है। इस सम्बन्ध में कहा गया है—

आदौ मत्तालि-माला गल-पथ-विगलत्तार-झंकार-हारी, नादोऽसौ वंशि-कांस्यानिल-भरित-लसद्-वंश-निस्वान-तुल्यः। घंटा-नादानुकारी तदनु-जल-निधि-ध्वान-धीरो गभीरों, गर्जं पर्जन्य-घोषः पर इह कुहरे वर्तते ब्रह्म-नाड्याः (३ पृ. श्लो.)

अर्थात् पहले मत्त भृङ्ग की गुञ्जार होती है। बाद में वेणु की मधुर ध्वनि सुनाई देती है। तत्पश्चात् घंटा-नाद समुद्र की ध्वनि सदृश सुनाई देता है। यह सब घोष ब्रह्म-नाडी में सुनाई देता है। द्रि. इ-५०। नौ नाद तथा वर्णों की भी उत्पत्ति तन्त्रों में कुण्डलिनी के जागने पर ही मानी जाती है। कुण्डलिनी का यह रहस्य षट्चक्रों के सहित वेद में भी माना गया है—

गौरोर्मिमाय सलिलानि तक्षती एक-पदी द्विपदी सा चतुष्पदी नव-पदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् (ऋ. सं. १-१६४-४१)

अर्थात् गौरी वाक् कुण्डलिनी-महाशक्ति जलों को तोड़ती हुई (जल से पंच-तत्वों का उपलक्षण है, जो षट्-चक्रों में विलित होते हैं। तोड़ने से वज्रपाती गृहीत होता है। इस प्रकार 'तक्षू-तनू-करणे' का अर्थ संगत होता है) एकपदी, ॐ द्विपदी, सोऽहम् सा ॐ चतुष्पदी, ॐ भुर्भुवः स्वः अष्टापदी, अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग, शवर्ग, तथा नवपदी नवनाद वाली है। सहस्रार में सहस्राक्षर वाली भी हो जाती है।

यह रहस्य तन्त्र-वेत्ता योगियों को भलीभाँति विदित है। यहाँ इसे लिखने का अभिप्राय यह है कि सूक्त के प्रथम मन्त्र में **'विद्युते, स्तनयित्नवे, अश्मने'** इन शब्दों द्वारा तन्त्रोक्त सिद्धान्त का भी एकीकरण होता है। षट्-चक्रों में जिन-जिन देवताओं का वास माना जाता है, वे व्यष्टि-रूप हैं। **'यः पिण्डे स ब्रह्माण्डे'** की उक्ति के अनुसार वे देवतागण भी उसी परा-महाशक्ति के अंश हैं। जैसे शरीर के संचालन में उनका उपयोग है, वैसे ही ब्रह्माण्ड में भी उनका रूप है।

पिण्ड-ब्रह्माण्ड के अभेद का अनुभव कर अद्वैत तत्त्व पर पहुँचना ही शाक्तवाद का परम लक्ष्य है। **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** के अनुसार प्रथम मन्त्र में कहा हुआ शक्ति का स्थूल-रूप इस परा-शक्ति का ही रूपांतर है, जो गुण-वैचित्र्य से नानाकार प्रतीत हो रहा है **'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'** का यही अभिप्राय है। द्वैत अवस्था में रहते हुए योग-क्षेम की प्राप्ति करना भी अत्यन्त आवश्यक है। अतः सूक्त के दूसरे मन्त्र द्वारा ऋषि कहते हैं—

नमस्ते प्रवतो न पाद्यतस्तपः समूहसि।
मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥२॥

अर्थात् हे देवि, प्रकृष्ट ज्ञानवालों को तू पतन की ओर नहीं ले जाती है, इसलिए तुझे नमस्कार है, क्योंकि तू तप, ज्ञान आदि श्रेष्ठ वस्तुओं का समूह है। अपने कल्याणात्मक रूपों से हमारी रक्षा कर। हम तेरी सन्तान हैं। हमारे लिये कल्याण (मय) का दर्शन करा।

भुक्ति-मुक्ति दोनों प्रकारों की प्राप्ति शक्ति-साधना से होती है। इसी अभिप्राय से सप्तशती ग्रन्थ में सुरथ तथा समाधि इन दोनों अधिकारियों को मेधा-महर्षि ने उपदेश दिया है। **'भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव'** वाला सिद्धान्त इसी तत्त्व पर माना गया है। सूक्त के उक्त मन्त्र में यही बात कही गयी है। सप्तशती के इस ग्रन्थ में भी ऐसा कहा गया है—

ॐ ह्रीं

कल्याण मन्दिर, प्रयाग—६

ोरी का उपदेश	१-००
ध्यात्म चर्चा	१-५०
न्नयघट	०-७०
नन्दलहरी	२-२५
ापदुद्धार बटुकभैरव स्तोत्र	१-००
ारतिमाला	०.७५
त्सव गीताञ्जलि	२-५०
देश मुक्तावली दो भाग	[illegible]-५०
कारादि काली-नाम-साहस्र	४-००
मला नित्यार्चन	३-००
मला स्तव मञ्जरी	३-००
ी कमला विशेषाङ्क	३०-००
मधेनु तन्त्र	२-५०
ा राम चरित मानस	
है ?	१-००
ली कपूर स्तवः	१-००
ली तन्त्र	३-००
नित्यार्चन	५-००
ली स्तव मञ्जरी	(यन्त्रस्थ)
ली स्वरूप तत्व	३-००
ार्णव तन्त्र	४-००
ल कीर्तन	१-·५
दीक्षा-पूर्वक पूर्णाभिषेक	३-००
त्री तत्व विमर्श	४-००
साधन तन्त्र	२-५०
पूजा के स्तोत्र	२-००
डिका माहात्म्य	१-००
डी चरितावली	०-७५
न्नमस्ता नित्यार्चन	[illegible]-००
न्त्रिक पञ्चाङ्ग	४-००
न्त्रकमाह्निकम्-संक्षिप्तं	४-५०
ापुर का महामानव	१-००
ा स्वरूप तत्व	३-००
ा नित्यार्चन	(यन्त्रस्थ)

तारा स्तव मञ्जरी	३-००
ताडन तन्त्र	२-००
दकारादि श्री दुर्गा नामसाहस्र	०-७५
दुर्गा नित्यार्चन	३-००
दुर्गा स्तव मंजरी	३-००
दुर्गा सप्तशती(शब्दशः पद्या०)	२-००
दोहावली	०-७
धनप्राप्ति के प्रयोग	१-५०
धर्ममार्ग पर	४-००
नवरात्र पूजा पद्धति (वैदिक)	१-५०
नवरात्र विशेषाङ्क (चण्डी २०१४)	३०-००
निर्वाण तन्त्र	२-००
निरुत्तर तन्त्र	(यन्त्रस्थ)
नील तन्त्र	३-००
पञ्चमकार तथा भावत्रय	(यन्त्रस्थ)
पञ्चमकार विशेषाङ्क (चण्डी २०२८)	२०-००
परशुराम तन्त्र	१-००
परातन्त्र	२-००
पारायण विधि	२-००
बाला नित्यार्चन	४-००
बाला स्तव मञ्जरी	(यन्त्रस्थ)
भगवती गीता	५-५०
भुवनेश्वरी नित्यार्चन	४-००
भुवनेश्वरी विशेषाङ्क (चण्डी २०१६)	३०-००
भुवनेश्वरी रहस्य	३-००
भुवनेश्वरी स्तव मञ्जरी	३-००
भैरवी चक्र पूजन	१-००
मन्त्रकोष	(यन्त्रस्थ)
मन्त्रसिद्धि का उपाय	२-००
महाचीनाचार सार तन्त्र	१-५०
महामाया त्रया	२-००

मातृ उपासना	२-५०
मातृका भेद तन्त्र	(यन्त्रस्थ)
मुद्राएँ एवं उपचार	३-००
मानस पूजन	१-००
मुमुक्षु मार्ग (तीन भाग)	६-००
वाममार्ग	४-००
बगला नित्यार्चन	(यन्त्रस्थ)
बगला पूजा पद्धति-वैदिक	२-००
बगला विशेषाङ्क (चण्डी २०२०)	३०-००
वन्दे मातरम्	२-००
विनय सुधा	१-२५
शतचण्डी विधान	३-७५
शाक्त दर्शन	३-००
शाक्त धर्म क्या है ?	३-००
शाक्त-धर्म विशेषाङ्क	३०-००
श्यामा सपर्या वासना	४-५०
श्यामा पूजा पद्धति	(यन्त्रस्थ)
श्री कल्पद्रुम (दो भाग)	५-५०
श्री त्रिपुरा महोपनिषद्	४-५०
श्री नाथादि गुरुत्रयं	३-५०
श्री ललिता नित्यार्चन	४-००
ललिता विशेषाङ्क (चण्डी २०१६)	३०-००
श्री श्रीविद्या नित्यार्चन	५-५०
श्री श्रीविद्या स्तव मंजरी	(यन्त्रस्थ)
श्री श्रीविद्यार्णव तन्त्र प्रथम खण्ड (पूर्वार्द्ध)	१७-५०
श्री षोडशी नित्यार्चन	४-००
श्री षोडशी विशेषाङ्क (चण्डी २०१५)	३०-००
सन्तान सुख प्राप्ति के प्रयोग	१-००
सप्तशती मीमांसा	२-५०
सप्तशती रहस्य	३-५०
साधना रहस्य	१५-००

संस्थापक :- शाक्त-साधना-पीठ

'कौल-कल्पतरु' स्व० पूज्य शुक्ल जी

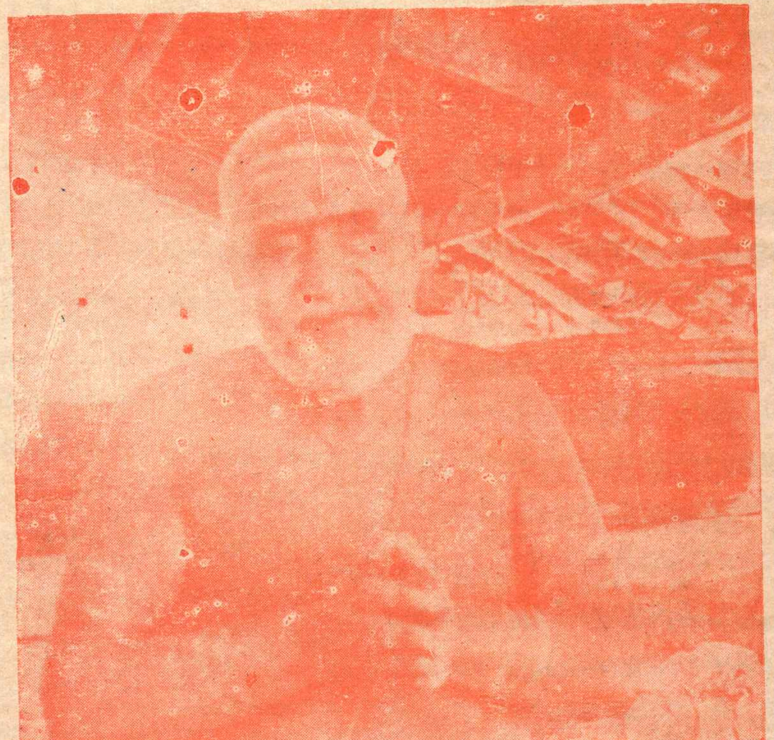

भूतपूर्व सम्पादक 'सरस्वती'

तृतीय पुण्य तिथि : २० मई १९७१

सम्पादक एवं प्रकाशक : श्री पुण्यशील शर्मा 'शाक्त साधना पीठ' प्रयाग—६
मुद्रक : श्री राजनारायण मिश्र परावाणी प्रेस, प्रयाग—६

'कौल-कल्पतरु'

चण्डी

त्वमेव सूक्ष्मा स्थूला त्वं व्यक्ताव्यक्त-स्वरूपिणी ।
निराकारापि साकारा कस्त्वां बोधितुमर्हति ॥
उपासकानां कार्यार्थं श्रेयसे जगतामपि ।
दानवानां विनाशाय धत्से नाना-विधास्तनुः ॥
चतुर्भुजा त्वं द्वि-भुजा षड्-भुजाष्ट-भुजा तथा ।
त्वमेव विश्व-रक्षार्थं नाना शस्त्रास्त्र-धारिणी ॥
(महानिर्बाण तन्त्रम् ४।१५-१७)

तुम्हीं सूक्ष्मा; तुम्हीं स्थूला और तुम्हीं व्यक्त तथा अव्यक्त उभयरूपिणी हो । निराकार होकर भी तुम साकार हो । कौन तुम्हारा स्वरूप जान सकता है ? उपासकों की कार्य-सिद्धि के निमित्त, निखिल जगत् के मङ्गल-साधन के लिये एवं दानवों के विनाश हेतु तुम विविध देह धारण करती हो । तुम विश्व-रक्षा के निमित्त कभी चतुर्भुजा, कभी द्वि-भुजा, कभी षड्-भुजा और कभी अष्ट-भुजा होकर नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों को धारण करती हो ।

वार्षिक शुल्क : १२)
एक प्रति : २)

शाक्त-साधना पीठ प्रयाग

पर्व-दिन

२८ मई ७४	ज्येष्ठ शुक्ल ७-८	भौमवार	भगवती धूमावती जयन्ती
३० मई ७४	ज्येष्ठ शुक्ल १०	गुरुवार	गङ्गा दशहरा
२ जून ७४	ज्येष्ठ शुक्ल १३	रविवार	श्री प्रदोष व्रत
४ जून ७४	ज्येष्ठ शुक्ल १५	मङ्गलवार	ग्रस्तास्त चन्द्रग्रहण * (रात्रि २-९ से ५-२३ तक)
८ जून ७४	आषाढ़ कृष्ण ३	शनिवार	श्री गणेश चतुर्थी व्रत
१३ जून ७४	आषाढ़ कृष्ण ८	गुरुवार	शीतलाष्टमी
१७ जून ७४	आषाढ़ ,, १२	सोमवार	श्री प्रदोष व्रत
२२ जून ७४	आषाढ़ शुक्ल १-२	शनिवार	श्री मोहिनी याग
१ जुलाई ७४	आषाढ़ शुक्ल १२	सोमवार	श्री प्रदोष व्रत
४ जुलाई ७४	आषाढ़ शुक्ल १५	गुरुवार	गुरु पूर्णिमा
१७ जुलाई ७४	श्रावण कृष्ण १३	बुधवार	श्री प्रदोष व्रत

नवीन तांत्रिक पञ्चाङ्ग (मूल्य ४) रु० के अनुसार)

* चन्द्र-ग्रहण के पुण्य काल में अभीष्ठ मन्त्र का पुरश्चरण अवश्य करें। पुरश्चरण-विधि जानने के लिये 'ग्रहण-पुरश्चरण' पुस्तक तीन रुपये भेजकर रजिस्ट्री से प्राप्त करें।

राशि अनुसार इष्ट-देवता

राशि	अधिपति	इष्ट देवता	राशि	अधिपति	इष्ट देवता
१ मेष	मङ्गल	बगलामुखी	७ तुला	शुक्र	भुवनेश्वरी
२ वृष	शुक्र	भुवनेश्वरी	८ वृश्चिक	मङ्गल	बगलामुखी
३ मिथुन	बुध	षोडशी (कामाख्या)	९ धनु	वृहस्पति	तारा
४ कर्क	चन्द्र	कमला	१० मकर	शनि	दक्षिणा काली
५ सिंह	सूर्य	मातङ्गी	११ कुम्भ	,,	,, ,,
६ कन्या	बुध	षोडशी	१२ मीन	वृहस्पति	तारा

❀ राहु की इष्टदेवता 'छिन्न मस्ता' और केतु की 'धूमावती' हैं। इन दोनों ग्रहों की महादशा में इन्हीं महाविद्याओं की उपासना कल्याणकारी है।

अनमोल विचार

भगवान् यदि अमृत-स्वरूप हैं प्रकाश-रूप हैं, तो फिर उनके भक्त यदि मृत्यु को प्राप्त होते हैं, अज्ञान को प्राप्त होते हैं, दुःख को प्राप्त होते हैं—तो सारी पूजा व्यर्थ है यानी पूजा अमृत सत्ता की नहीं हुई।

भगवान् का रास्ता सत्य का रास्ता—मोक्ष का रास्ता है, चित् का रास्ता यानी शक्ति और सिद्धि का रास्ता, आनन्द का रास्ता, प्रेममय रसमय रास्ता है।

इसी रास्ते को सम्पूर्ण विश्व के लिए सुगम करने के लिए प्रयत्नशील है "तन्त्र" यानी संसार में प्रणवमय सच्चिदानन्द स्पन्दन प्रवाहित करनेवाली संसार को चैतन्य करनेवाली भगवती शक्ति की साधना।

'कौल-कल्पतरु' चण्डी
वर्ष २२] ज्येष्ठ-आषाढ़ शुक्लाष्टमी २०३१ वि० [संख्या ३-४

अनुक्रमणिका

१ अनमोल विचार : 'शिव-शक्ति-योगी' परम पूज्य श्री कृष्ण ब्रह्मचारी जी १७
२ सार्थ काली-कस्तूरी-स्तव-राज : श्री हरिहरानन्द नाथ १८
३ शाक्त-साहित्य : श्री हरिहर शर्मा २०
४ सिद्धि-मार्ग के पथिक—वीर-भूमि : श्री हरिहर भट्टाचार्य २२
५ कुण्डलिनी योग : 'कुलज्ञ' स्वामी दिव्यानन्द जी सरस्वती २५
धार्मिक जगत् की हलचल [१—नवरात्र के मेले, २—सहस्रचण्डी महायज्ञ, ३—भगवान् सूर्य षष्ठी
६ व्रत, ४—योगासनों की उपयोगिता, ५—विज्ञान और योग, ६—हरिद्वार में कुम्भ-मेला, ७—विक्रम
सम्वत् एवं नवरात्र का महत्व, ८—एक लाख साठ हजार रुपये का गुप्त दान, ९—'हिन्दू-धर्म को
लौटो' समारोह] ३०
७ सम्पादकीय [१—उड़ीसा में तान्त्रिक-सम्मेलन, २—'कौल-कल्पतरु' चण्डी द्वैमासिक-रूप में] ३२
८ हिन्दी तन्त्रसार (७०—वीर-साधन प्रक्रिया, ७१—चण्डोग्र-शूलपाणि, ७२—मातङ्गी, ७३—उच्छिष्ट-
चाण्डालिनी) : 'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल, एम० ए० ३३-४०

शक्ति-स्वरूप-तत्व

९ वेद में शक्ति-तत्व : परम पूज्य 'राष्ट्र-गुरु' श्री १००८ स्वामी जी महाराज, 'श्री पीताम्बरा पीठ' २५
१० श्री भवानी स्तुति : श्री आद्य शङ्कराचार्य २९
११ शक्ति-तत्व या ब्रह्मविद्या : श्री कृपानाथ सिंह, एडवोकेट ३०

साथ

श्रीकाली-कस्तूरी स्तवराज

श्री हरिहरानन्दनाथ (स्व० पण्डित-प्रवर श्री हरिशास्त्री दाधीच जयपुर)

[जयपुर के 'आम्नाय-धुरन्धर आगम-रत्न' स्वर्गीय शास्त्री जी ने शाक्त साहित्य के अभाव को दूर करने में बड़ा परिश्रम किया। 'चण्डी' की पुरानी फाइलें उनके ज्ञान-वर्द्धक लेखों और उद्बोधक रचनाओं से गौरवान्वित हैं। वे संस्कृत और हिन्दी दोनों पर समान अधिकार रखते थे। कुशल लेखक होने के साथ ही सिद्ध आशु-कवि भी थे। प्रस्तुत स्तव-राज हमें आपसे बहुत पहले ही प्रकाशनार्थ प्राप्त हुआ था, किन्तु परिस्थितियों वश इसका प्रकाशन उनके जीवन-काल में नहीं हो सका। उनकी पुण्य-स्मृति में हम इसे यहाँ सादर प्रकाशित कर रहे हैं। आशा है कि "कौल-कल्पतरु" चण्डी के पाठक इसे ध्यान से पढ़कर लाभ उठाएँगे। –सं०]

पालिकाऽखिल-लोकानां सर्व-कर्म-निभालिका।
कपाल-मालिकाढ्या सा कालिका श्रेयसेऽस्तु मे॥

जो सभी लोकों का पालन करनेवाली है और सबके सभी कर्मों का निरीक्षण—देख-भाल, सँभाल करनेवाली है; जो कपाल-माला धारण करती है, वह आद्या भगवती कालिका मेरा श्रेय—कल्याण करनेवाली रहे।

कस्तूरी द्वि-गुण-श्रुतीषु रहिता शीतांशु-लेखोज्ज्वला;
यस्या बीज मनुर्जयत्यविरतं लोकांश्छिवं लम्भयन्।
प्राणान् पोषणमापयन् जन-मनो मात्राः समुल्लासयन्;
वन्देऽहं परमेश्वरां भगवतीं तां दक्षिणां कालिकाम्॥१॥

दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें वर्णों से रहित कस्तूरी चन्द्र-विन्दु—अनुस्वार-संयुत (क्रीं) हुई; जिसका वीज-मन्त्र (मुख्य मन्त्र) निरन्तर लोगों को कल्याण (सुख) पहुँचाता हुआ तथा जपनेवालों के प्राणों को पुष्ट करता हुआ; मनोबल बढ़ाता हुआ सर्वोत्कर्ष को प्राप्त हो रहा है; जगत् में जय पा रहा है, उस परमेश्वरा-परमेश्वर-रूपिणी भगवती दक्षिण कालिका को मैं प्रणाम करता हूँ।

हंहो दक्षिण-कालिके! भगवती! प्राणैक-सञ्चालिके!
एकार्णं तव बीजमुक्तमनिशं त्वां भावयन्तो हृदि।
ये लोकाः प्रजपन्ति, ते कवि-कला-विज्ञान-लीला-विधौ
भू-भृन्मौलि-लसत्-किरीट-निहितं पश्यन्ति पाद-द्वयम्॥२॥

हे जीव मात्र में प्राण सञ्चालन करनेवाली (प्राण-स्पन्दन-क्रिया प्रकृति भगवती महामाया श्री आद्याकाली के ही अधीन है। यही काली शक्ति प्राण-क्रिया का संचालन करती है) भगवति दक्षिण कालिके!

इस ऊपर बताए हुये आपके एकाक्षर बीज-मन्त्र को जो लोग सदा हृदय में आपका ध्यान करते हुये जपते हैं, वे विद्वान कवि-कला (कविता के) विज्ञान की लीला में प्रवीण हुये अपने पदों—चरणों को बड़े-बड़े राजाओं के मस्तकस्थ किरीट पर चढ़े (रखे) देखते हैं। अर्थात् वे महाकवि तथा राज-पूज्य विद्वान् बन जाते हैं।

विद्या-राज्ञि जनास्त्वदेक-शरणास्त्वद्बीज-मुक्तं परं
त्रिः कृत्वा प्रजपन्ति ये निज-गुरुं ध्यात्वा नमस्कृत्य च।
ते द्राक्षा मधु पौण्ड्रकेक्षु पयसां माधुर्य सञ्जित्वरीं
द्रागेवामृत-वर्षिणीं कवि-कलां निर्मातुमीशाः क्षितौ ॥३॥

हे विद्या-राज्ञि! (काली का नाम विद्या राज्ञी है। इसका मुख्य मन्त्र विद्या राज्ञी के नाम से विख्यात है तथा दसों महाविद्याओं में आद्या (प्रधान) होने से भी यह काली भगवती विद्याओं की रानी-रूप है। इसलिए) आपको ही एक मुख्य शरण माननेवाले जो साधक लोग ऊपर कहे आपके एकाक्षर बीज-मन्त्र को द्विगुणित कर अपने गुरुदेव का ध्यान तथा उन्हें प्रणाम कर जपते हैं, वे भूमि पर अर्थात् यहाँ इस लोक में दाख, मधु (शहद), पौण्ड्रकेक्षु (बड़े ईख) और दूध की माधुरी (मिठास) को जीतनेवाली, अमृत बरसानेवाली कविता का निर्माण करने में समर्थ हो जाते हैं।

काली कूर्च-वधू-मयीं तव शिवे! विद्यां परां त्र्यक्षरीं;
प्रेतारण्य-गतो महा-निशि महाकालस्य हाला-मदो-
ल्लास-स्फूर्जित विभ्रमां स्व-हृदये ध्यायन् त्रि-लक्षं जपेत्।
तस्याऽराति-कुलं प्रयाति विकलं भूत्वान्तकस्यान्तिकम् ॥ ४ ॥

हे शिवे लोक-कल्याणकारिणि! काली (क्रीं), कूर्च (हूँ), वधू (ह्रीं)—इन तीन बीजोंवाली आपकी दूसरी त्र्यक्षरी विद्या को जो साधक श्मशान-स्थल में महा-निशा (अर्द्ध-रात्रि) में परमेश्वर भगवान् महाकाल शिव के मुख की हाला-पान के मदोल्लास से अधिकाधिक बढ़ते विलास वाली आपको निज हृदय में ध्याते हुए तीन लाख जपते हैं, उनका शत्रु-वर्ग विकल होकर यमराज के पास पहुंच जाता है।

पूर्व तीसरे पद्य में एक त्र्यक्षरी विद्या बताई है। इस चौथे पद्य में दूसरी त्र्यक्षरी विद्या कही है। पहली त्र्यक्षरी विद्या अनर्गल कवित्व-शक्ति देती हुई सर्व-कार्य-सिद्धि देती है। दूसरी त्र्यक्षरी विद्या शत्रु-संहार करती हुई सर्व-समृद्धि देनेवाली है। यह विवेचन ध्यान में रखने योग्य है।

मातस्तम्पुटितं श्रियाऽति-रुचिरं कृत्वा त्रि-वर्णं मनुं,
पश्यन् कौल-बधू-कुलालयमहो रात्रौ त्रि-लक्षं जपेत्।
स प्राज्ञो निज-मन्दिराजिर-गतां भ्रू-वेल्लनापेक्षिणीं,
दासेरीमिवि गेह-सेवन-परां पद्यालयं पश्यति ॥५॥

अहो मातः! हे अम्बिके! उक्त त्रि-वर्ण सुन्दर मन्त्र को श्री से—'श्रीं'–बीज से सम्पुटित कर जो साधक अर्द्ध-रात्रि में कुलाङ्गना के कुलागार को देखता हुआ तीन लाख जप करता है, वह विद्वान् साधक

'कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी की तृतीय पुण्य तिथि के अवसर पर

शाक्त-साहित्य

श्री हरिहर शर्मा

'कौल-कल्पतरु' स्वर्गीय पण्डित देवीदत्त शुक्ल ने अपना सारा जीवन शाक्त-धर्म के पुनरुत्थान के महत्कार्य में लगा दिया था। आज से लगभग ४० वर्ष पूर्व हिन्दी-भाषा में शाक्त-साहित्य का प्रायः नितान्त अभाव था। इस अभाव की पूर्ति करने में उन्होंने सतत प्रयास किया। शाक्त-समाज की सर्वाधिक प्रिय प्राण-स्वरूपा "दुर्गा सप्तशती" के परिष्कृत शब्दशः पद्यानुवाद की कमी उन्हें इतनी खटकी कि उन्होंने सर्व-प्रथम उसी दिशा में प्रयत्न किया और इस प्रकार जो कृति प्रस्तुत हुई, उसे राष्ट्रभाषा हिन्दी के निर्माता अपने साहित्यिक गुरु आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी को समर्पित किया, जिसे उन्होंने बहुत ही पसन्द किया। सप्तशती का यह पद्यानुवाद संस्कृत न जाननेवाले जगदम्बा-भक्तों को वरदान जैसा सिद्ध हुआ। बहुसंख्यक बन्धु आज उसी का पाठ करते हैं और लाभ उठाते हैं।

उस काल में शाक्त-साधना के महत्वपूर्ण सोपान 'वामाचार' या 'वाममार्ग' के सम्बन्ध में लोगों में भारी भ्रान्ति व भ्रम व्याप्त था। देशी और विदेशी विद्वानों तथा महात्माओं ने अपने कथनों और लेखों द्वारा 'वाममार्ग' को बुरी तरह बदनाम कर दिया था। सामान्य लोगों की यह धारणा बन गई थी कि 'वाममार्ग' का अर्थ है जादू-टोने से पूर्ण व्यभिचार आदि अनैतिक कामनाओं की पूर्ति करने की तांत्रिक साधना। इस दुष्प्रचार के फलस्वरूप "तन्त्रशास्त्र" जैसे पवित्र साहित्य के पढ़ने-समझने तक से लोग विमुख हो रहे थे। इस भ्रामक धारणा को दूर करने के उद्देश्य से पूज्य शुक्ल जी ने "वाममार्ग" नामक पुस्तक हिन्दी में बड़े परिश्रम से लिखकर तैयार की। यह पुस्तक बड़ी लोक-प्रिय हुई। यहाँ तक कि उसके दो संस्करण हाथों हाथ बिक गये और तीसरा संस्करण भी समाप्त-प्राय है।

पूज्य शुक्ल जी सारे जीवन शाक्त-साधकों के घनिष्ठ सम्पर्क में रहे। जहाँ कहीं भी वे जाते, खोजकर शाक्त-साधकों से मिलते थे। इस सम्पर्क के फलस्वरूप उन्होंने अनुभव किया कि शाक्तों की रहस्य-पूजा, जो निशा-पूजा या चक्रार्चन के नाम से प्रख्यात है, उसकी पद्धति हिन्दी में न होने के कारण जिज्ञासुओं और साधकों को बड़ी असुविधा होती है। फलतः उन्होंने बड़ा परिश्रम करके "चक्रपूजा" नामक पुस्तक तैयार की। यह पुस्तक शाक्तों का कण्ठ-हार बन गयी। तीसरे संस्करण तक पहुँचते-पहुँचते इसके अनेक रूप बन गए अर्थात् पहले यह केवल श्री बाला जी के ही पूजन पर आधारित थी किन्तु उसे परिष्कृत कर भगवती बाला, ललिता, षोडशी, कमला और दुर्गा—इन पाँच देवियों के चक्रार्चन-विधान के रूप में प्रकाशित किया गया। प्रयास है कि शेष देवियों का भी पूजा-विधान तदनुसार तैयार कर दिया जाय। इससे समस्त शाक्त-साधकों की विविध साधना-पद्धतियों का वैषम्य दूर होकर एकात्म-भावना विकसित हो सकेगी।

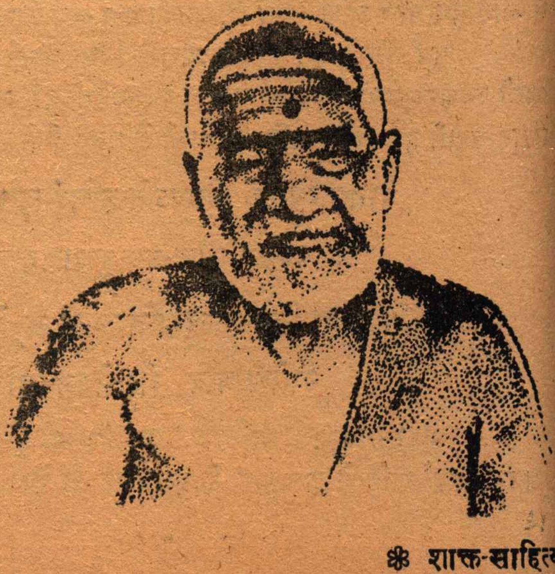

'चक्रपूजा' नामक पुस्तक तैयार करते समय पूज्य शुक्ल जी का ध्यान इस पूजा के लिए आवश्यक स्तोत्रों के संग्रह की भारी कमी के प्रति आकृष्ट हुआ और उन्होंने 'चक्रपूजा के स्तोत्र' नामक पुस्तिका तैयार कर इस कमी को भी दूर किया। इस पुस्तिका में उन्होंने अनेक प्रकार के प्रचलित प्राचीन गुरु-स्तोत्र, शक्ति-स्तोत्र, पात्र-वन्दनाएँ, उल्लास-स्तोत्र, नीराजन, पुष्पाञ्जलि, वीर-वन्दना और शान्ति-स्तोत्र सङ्कलित कर शाक्त-समाज को गद्गद क दिया। इस पुस्तिका का भी पहला संस्करण समाप्त हो चुका है। दूसरा संस्करण समाप्त प्राय है।

जो बन्धु संस्कृत नहीं जानते हैं, उनकी सुविधा के लिये पूज्य शुक्ल जी ने 'विनय सुधा'' और ''कौल कीर्तन' नामक दो पुस्तकें तैयार कीं, जिनमें 'चक्रपूजा के स्तोत्र' में संकलित स्तोत्रों के हिन्दी पद्यानुवाद तथा उसी प्रकार के मौलिक पद्यों का उन्होंने समावेश किया।

शाक्त-धर्म के प्रति अनर्गल आक्षेपों से पूज्य शुक्ल जी पूर्णतया परिचित थे। कितने ही लोगों की शंकाओं को उन्होंने स्वयं दूर किया था, किन्तु उन्होंने अनुभव किया कि इन आक्षेपों के उत्तर सभी लोगों तक पहुँचने चाहिये। फलतः ''साधक का सम्वाद'' नामक उन्होंने एक रोचक पुस्तक तैयार की, जिसमें कथा-वार्ता के माध्यम से पाठकों का मनोरंजन करते हुये उन्हें बताया है कि शाक्त-साधना का वास्तविक स्वरूप क्या है और उस पर किये जानेवाले आक्षेप कितने असङ्गत एवं निराधार हैं। यह पुस्तक भी बहुत लोक-प्रिय हुई और इसका दूसरा संस्करण चल रहा है।

शाक्त-धर्म के सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिए कितने ही निबन्ध पूज्य शुक्ल जी ने लिखे। इनमें से कुछ को ''शाक्त धर्म क्या है?'' नामक पुस्तक में संगृहीत कर प्रकाशित किया गया है।

शाक्त समाज का संगठन किस प्रकार हो, इसकी चिन्ता पूज्य शुक्ल जी को बराबर रहती थी। अतः उन्होंने उसकी भी रूपरेखा बनाने का प्रयास किया, जिसके फलस्वरूप ''धर्म-मार्ग पर'' नामक उपन्यास तैयार हो गया। इस उपन्यास से स्पष्ट होता है कि एक शाक्त साधक किस प्रकार आत्म-कल्याण के साथ-साथ समाज का हित-साधन कर सकता है।

इस प्रकार हिन्दी में शाक्त-साहित्य का धारा-प्रवाह सृजन कर पूज्य शुक्ल जी ने जो महत्वपूर्ण कार्य किया, उसका मूल्याङ्कन करना सरल नहीं है। समय ही उसका मूल्य स्पष्ट करेगा। उनकी तृतीय पुण्य तिथि २० मई ७४ के पुण्य अवसर पर हम उनके कृतित्व का स्मरण करते हुये श्री जगदम्बा से यह प्रार्थना करते हैं कि उन्होंने जिस महत्कार्य का श्रीगणेश किया और जिसे उन्होंने अपने जीवन-काल में ही परिपुष्ट करके दिखा दिया, उनके उस महान् सङ्कल्प को अग्रसर करने में हम समर्थ बनें।

उल्लेखनीय है कि 'कौल-कल्पतरु' पूज्य शुक्ल जी ने हिन्दी में शाक्त साहित्य की रचना करते समय शास्त्रोक्त-विधि को सदैव ध्यान में रखा। फलतः जो कुछ उन्होंने लिखा या लिखवाया, वह पूर्णतया प्रामाणिक और सिद्धि-प्रद रहा है। 'मन्त्र-सिद्धि का उपाय'' नामक पुस्तक भी उन्हीं की देन है, जिसका चौथा संस्करण समाप्त-प्राय है। अधिक क्या, कल्याण-मन्दिर द्वारा प्रकाशित शताधिक पुस्तकों और विगत ३० वर्षों की 'चण्डी' फाइलों में संगृहीत शाक्त-साहित्य उनके दृढ़ संकल्पपूर्ण अनवरत प्रयास का प्रत्यक्ष प्रमाण है। उन्हें हमारी हार्दिक श्रद्धाञ्जलियाँ इस तृतीय पुण्य तिथि के अवसर पर समर्पित हैं।

* * *

सिद्धिमार्ग के पथिक

वीर-भूमि

भारत-भूमि का बङ्गाल प्रदेश तन्त्र-विद्या का केन्द्र रहा है। इसके सम्बन्ध में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि—'वंगेनोत्पादिता विद्या, मैथिलेन च पालिता' अर्थात् बङ्ग या बङ्गाल प्रदेश में तन्त्र-विद्या की उत्पत्ति हुई और मिथिलावासियों ने इस विद्या का पालन किया—इसका प्रचार-प्रसार किया।

ऐसे ही तान्त्रिक बङ्ग-प्रदेश के पश्चिमी भाग का एक जिला है 'वीरभूमि।' नाम से ही स्पष्ट है कि इस जिले में शाक्त-धर्म के प्रसिद्ध 'वीराचार' की साधना करनेवाले साधक महापुरुषों को प्रधानता रही। यहाँ यह विशेषतया ज्ञातव्य है कि इस जिले की दिव्यता इस कारण और भी माननीय है कि यहाँ जगदम्बा सती के देह के अनेक अङ्ग गिरे, जिससे कितने ही दर्शनीय पवित्र पीठ-स्थान बन गए हैं। यथा--

ग्राम	सती का अङ्ग	पीठ-देवता	भैरव
१ नन्दिपुर	कण्ठ-हार	नन्दिनी	नन्दिकेश्वर
२ लाभपुर	अधरोष्ठ	फुल्लुरा	विश्वेश
३ दुबराजपुर	भ्रू-युग	❀महिष-मर्दिनी	वक्रनाथ
४ नलहाटी	कण्ठ-नलिका	कालिका	योगीश
५ तारापुर	ऊर्ध्व नेत्र-तारा	उग्रतारा	चन्द्रचूड़

उक्त शक्ति पीठों के अतिरिक्त यहाँ भगवती कङ्काली देवी का सिद्ध स्थान है। यह पवित्र स्थान बोलपुर के उत्तर पूर्व की ओर लगभग ६ मील की दूरी पर कोपाइ नदी के किनारे स्थित है।

तारापुर

तारापुर के उग्र-तारा-पीठ में ही वशिष्ठ मुनि ने अपनी ऐतिहासिक साधना द्वारा भगवती तारा का साक्षात्कार प्राप्त किया था। यह सिद्ध पीठ पूर्वी रेलवे के मोल्लारपुर या रामपुरहाट स्टेशन से लगभग सात मील की दूरी पर स्थित है। तारापीठ रोड नामक एक हाल्ट स्टेशन भी बन गया है, जहाँ से उक्त पीठ की दूरी केवल तीन ही मील है। बैलगाड़ी की सवारी मिलती है। इस स्थान को बावन शक्ति-पीठों के अन्तर्गत माना गया है।

उल्लेखनीय है कि सती देवी के नेत्रों के मणि-बिन्दु बत्तीस योजन के क्षेत्र में त्रिकोणाकार में तीन विभिन्न स्थानों में गिरे माने जाते हैं। यथा–

१ नील-सरस्वती तारा पीठ—मिथिला-प्रदेश के पूर्व-दक्षिण ओर भागीरथी नदी को उत्तर दिशा में त्रियुगी नदी के पूर्व ओर बाएँ नेत्र की मणि;

२ एकजटा महादेवी भवानी तारा पीठ—बगुड़ा जिले में करतोया नदी की पश्चिम दिशा में दाएँ नेत्र की मणि और—

३ उग्रतारा (शिलामयी चण्डी) पीठ—वैद्यनाथ धाम की पूर्व दिशा में उत्तर-वाहिनी द्वारका नदी के पूर्वी तट पर स्थित महा-श्मशान के एक श्वेत शिमूल (सेमर) वृक्ष की जड़ में सती देवी के ऊर्ध्व नेत्र का तारा गिरा था। यहाँ के भैरव चन्द्रचूड़ हैं। इसी तारा-पीठ में वशिष्ठ मुनि ने सिद्धि पाई थी।

वामाक्षेपा का आविर्भाव-काल

श्री वामा क्षेपा का आविर्भाव जिस काल में हुआ था, वह

❀ यह पीठ दुबराजपुर स्टेशन से सात मील उत्तर की ओर है। यहाँ गर्म पानी के पाँच स्रोत हैं, जो वात-रोगियों–पक्षाघात आदि के लिए लाभकारी है।

एक ऐतिहासिक महत्व रखता है। अंग्रेजों की प्रभुता के माध्यम से पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता वङ्ग देश में अपनी जड़ें जमाने का घोर प्रयास कर रही थीं। इस प्रयास के प्रतिरोध के लिये अनेक वीराचारी शाक्त महापुरुषों का आविर्भाव वंग प्रदेश में हुआ। ब्रह्मचारी श्री लोकनाथ, परमहंस श्री रामकृष्ण और ब्रह्मचारी श्री वामाचरण (बाबा श्री वामाक्षेपा)–इन तीनों महात्माओं का एक ही लक्ष्य था–म्लेच्छ प्रभाव का निर्मूलन। तत्कालीन दुःख-दुर्दशा से बचने का एक ही उपाय उन्होंने वंग-वासियों में प्रचारित किया और वह उपाय यह था कि–

डूब देरे मन काली बोले
हृदि रत्नाकरेर अगाध जले।

अर्थात् 'काली-काली' कहकर अपने हृदय-सागर के अगाध आनन्द-सागर में मग्न हो जाओ।

अंग्रेजी प्रभुता से आक्रान्त वंग राजधानी कलकत्ता नगरी के निकट रहते हुये परमहंस श्री रामकृष्ण ने 'शक्ति-पात' द्वारा भारत के भावी नागरिकों के पुनरुत्थान के महत्कार्य का श्री गणेश किया और एक गाँव के बीहड़ श्मशान में रहकर श्री वामाचरण ने समस्त दीन-दुखी ज्ञान-विहीन देश-वासियों के उद्धार के लिये श्मशान-वासिनी जगदम्बा को तार-स्वर से पुकारा—मा तारा––तारा-तारा।

इसी का सुफल यह हुआ कि बंगाल में स्थान-स्थान पर शक्ति-पीठ की स्थापना हुई और मातृ-पूजा की ऐसी धारा बह चली कि सर्व-साधारण लोग उसमें आकण्ठ आप्लावित हो उठे। श्मशान में जगदम्बा की जय-जयकार और जय-जय गुरुदेव की ऐसी ध्वनि गुञ्जायमान हो उठी कि निर्जीव आबाल-वृद्ध-वनिता जीव-वन्त हो उठे।

परमहंस रामकृष्ण ने वंग-समाज के मध्यम वर्ग के व्यक्तियों को शक्ति-मन्त्र में दीक्षित कर उन्हें वीराचार की ओर मोड़ दिया, जिससे वे ईसाई संस्कृति के भारतीय संस्करणों ब्रह्म-समाज आदि के प्रभाव से बच गए। इसी प्रकार समाज के निम्न श्रेणी के लोगों के उद्धार हेतु ब्रह्मचारी श्री वामाचरण का आविर्भाव हुआ और उनकी वैसी ही लीला रही।

जिस प्रकार आतुड़ ग्राम के छोटी जातिवालों की देवी विशालाक्षी के मन्दिर में बालक गदाधर के हृदय में मां काली का आविर्भाव हुआ था, उसी प्रकार द्वारका नदी के किनारे महाश्मशान में बालक वामाचरण के अन्तःस्थल में मां तारा अवतरित हुईं। जगदम्बा ने इन दो महापुरुषों के माध्यम से भारतीय सनातन धर्म और संस्कृति की रक्षा किस अनूठे ढंग से की, यह सहृदय विचारक ही अनुभव कर सकते हैं।

वंग देश के दक्षिण में रहकर परमहंस श्री रामकृष्ण ने पाश्चात्य संस्कृति के दम्भ को चूर-चूर कर दिया और अपने शिष्य विवेकानन्द के द्वारा उन्होंने भारत को पुनः मानव संस्कृति के केन्द्र-रूप में प्रतिष्ठित करने में सफलता प्राप्त की। इसी प्रकार बाबा श्री वामा क्षेपा ने देश के उपेक्षित, दुःखी, अछूत और अपमानित जन-समाज को जाग्रत करने का महत्कार्य सम्पादित किया। नीच जाति के एक कोढ़ी के हाथ का पानी पिये बिना वामाचरण को कुछ अच्छा ही नहीं लगता था। किसी ने एक बार उन्हें टोका कि––

"एक तो जाति का हाडि़ (डोम); उस पर हाथ में कोढ़–उसके हाथ का पानी पीते हो?"

उत्तर दिया था वामाचरण ने––**"मैं तो जल पीता हूँ उसके हाथ का; किन्तु तुम साले उसके पैर का जल पीते हो।"** साथ ही यह भी उन्होंने कहा था कि **"जात-कुजात से मुझे क्या! मेरे लिए तो सभी मां तारा की सन्तान हैं। उसके पास जो अधिकार ब्राह्मण को प्राप्त हैं, वही चाण्डाल को भी हैं।"**

अंग्रेजों की कूटनीति भारत के इतिहास में प्रसिद्ध रही है––'डिवाइड एण्ड रूल।' विभाजन करो और शासन करो। इसी कूटनीति का शिकार होकर १८ वीं शती के मध्य में भारतीय समाज छिन्न-भिन्न होकर सर्वथा असहाय हो रहा था। सामाजिक नेता तक भयभीत हो उठे थे। तभी बाबा श्री वामा क्षेपा के अमृतमय उपदेश उन्हें मिले––

मनुष्य में अभय देने की शक्ति नहीं,
अभय तो देती है अभया।

❀ यहां इस तथ्य की ओर सङ्केत है कि कोढ़ी उसी गांव के जिस सरोवर में घुसकर पानी लाता था, उसी सरोवर का पानी सारा गांव पीता था।

दुःख अपनी चेष्टा से जाता नहीं
पुकारो-पुकारो मां को ।
अरे, क्यों मरते हो हाय-हाय कर
जाओ मन्दिर और पुकारो मां को,
देगी वही प्राण-भिक्षा ।

जनता के दुःख-रूपी हलाहल का कितनी ही बार बाबा श्री वामाक्षेपा ने पान किया और कष्ट उठाया। कितनी ही बार उन्होंने प्रार्थना की होगी—"बाबा, अब यह और कभी पाप नहीं करेगा।" कितनी ही बार उन्होंने अपने प्रहार मात्र से कितने ही लोगों के पुराने और ताजे पापों का परिहार कर दिया। कितनी ही बार, समाज ने जिन्हें दोषी ठहरा दिया था, उनका भी पक्ष बाबा ने लिया और उन्हें बचाया।

अदालत में खड़े होकर उन्होंने धमकी दी कि "अरे, किसके धन को किसने चुराया! उसके पास नहीं था, इसलिए ले लिया। ठीक किया। उसे छोड़ दो। नहीं छोड़ोगे, तो मैं सब सालों को 'फट्' कर दूंगा।"

बाबा श्री वामा क्षेपा का अर्थ-सम्बन्धी उपदेश निराला ही होता था। परमहंस श्री रामकृष्ण कहते थे कि "टका (रुपया-पैसा) मिट्टी है, मिट्टी ही टका है।" वामा क्षेपा कहा करते थे कि "टका बोले टं टं—त्वं त्वं—तारा तारा।

उक्त वीराचारी महापुरुषों ने देश के प्रत्येक मनुष्य में शक्ति का सञ्चार करने का अभूतपूर्व प्रयास किया। मातृ-पूजा का उपदेश करते हुये वामा क्षेपा कहते थे कि "शरीर ठीक रखो। नहीं तो शक्ति बढ़ेगी नहीं। क्यों रे शाले, माया का त्याग करेगा? माया ही तो मा है, जिसे माया नहीं है, वह है राक्षस। जो माया त्याग करता है, वह पतित है। माया-त्याग का मतलब है मां का त्याग। माया की जय बोलो। कोई कष्ट में है, देखकर भी—माया त्याग कर चल देता है—तू क्या मनुष्य है? उसके दुःख दूर करने की चेष्टा कर। फिर उसके भाग्य में जो है, वही होगा।"

❧

दुर्लभ तन्त्र साहित्य (संस्कृत) में

'गुप्तावतार दुर्लभ तन्त्रमाला' के अन्तर्गत अब तक निम्न तन्त्र प्रकाशित हो चुके हैं। ये बहुत ही कम संख्या में छपे हैं। फलतः पहला संस्करण समाप्त होने ही वाला है। दूसरा संस्करण पता नहीं कब छपे। अतः तन्त्र-साहित्य के प्रेमियों को इनका मूल्य मनिआर्डर से भेजकर इन्हें तुरन्त मंगा लेना चाहिये। म० आ० से मूल्य भेजनेवाले बन्धुओं से डाक व्यय नहीं लिया जाता है। शर्त यह है कि म० आ० पांच रुपये से कम का न हो।

महा-चीना-चार-सर तन्त्र	रु १-५०	निरुत्तर तन्त्र	यन्त्रस्थ
गुप्त-साधन तन्त्र	२-५०	तोडल तन्त्र	२-००
कुलार्णव तन्त्र	४-००	मन्त्र-कोष	२-००
काली-तन्त्र (भाषा टीका)	३-००	कामधेनु तन्त्र	२-५०
श्रीभुवनेश्वरी-रहस्य	३-००	निर्वाण तन्त्र	२-००
सांख्यायन तन्त्र	३-००	नील तन्त्र	३-००
परा-तन्त्र	यन्त्रस्थ	परशुराम तन्त्र	१-००

पाँच रुपये से कम मूल्य की पुस्तकें मँगानेवाले बन्धु कृपया पुस्तक के मूल्य के साथ रजिस्ट्री डाकव्यय हेतु एक रुपया और भेजें। जो पुस्तकें चाहिए, उनके नाम म० आ० के कूपन पर लिख दें।

पता—कल्याण मन्दिर, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६

कुण्डलिनी योग

'कुलज्ञ' स्वामी दिव्यानन्द जी सरस्वती

'योग' शब्द का अर्थ है मिलना अर्थात् एक वस्तु को दूसरी वस्तु से मिलाने की क्रिया को 'योग' कहते हैं। आध्यात्मिक अर्थ में-यों कहिये कि जीवात्मा को परमात्मा में मिलाने की क्रिया का नाम योग है। 'कुण्डलिनी योग' वह क्रिया है, जिसके द्वारा जीव और शिव की एकता की जाती है। कहा जाता है कि–

देहो देवालयः प्रोक्तं जीवो देव सदाशिवः।
तजेदज्ञान-निर्माल्यं, सोहं-भावेन चिन्तयेत् ॥

अर्थात् हमारा शरीर देवालय (मन्दिर) है और जीव-रूपी शिव उसमें निवास करते हैं, अज्ञान-रूपी निर्माल्य (आवरण) को हटाकर सोहं-भाव से चिन्तन करना चाहिये। सोहं मन्त्र क्या है ?

हकारेण बहिर्जाता, सकारेण प्रवेशिता।
हंसः हंसः इति मन्त्रेण, जीवो जपति सर्वतः ॥
नानया सदृशा विद्या, नानया सदृशो जपः।
नानया सदृशो मन्त्रः, न भूतो न भविष्यति ॥
अजपा नाम गायत्री, योगिनां मोक्ष-दायिनी।
यस्या सङ्कल्प-मात्रेण, नरः सायुज्यमाप्नुयात् ॥

'ह' शब्द के साथ श्वास बाहर निकलता है और 'स' शब्द के साथ श्वास भीतर जाता है। इस प्रकार 'हंसः हंसः' के द्वारा मनुष्य हर समय 'अजपा' जप करता रहता है। इसको अजपा जप इसलिये कहते हैं कि यह बिना रटन के अपने आप ही निरन्तर चलता रहता है। इसको श्वास-जप भी कहते हैं। रात-दिन में मनुष्य २१,६०० श्वास लेता है (साधारण श्वास की गति)। इसलिये कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन दो सौ (२००) माला (१०८ मनिकों की माला) फेर लेनी चाहिये, जिससे २००×१०८=२१, ६०० जप हो जाय। एक भी श्वास व्यर्थ न जाय, दिन सार्थक हो जाय। यह अजपा जप मानसिक जप में ही सम्मिलित है। इस जप-संख्या को फिर शरीरस्थ प्रत्येक चक्र में स्थित देवता के कर-कमलों में समर्पित कर देना चाहिये। यथा—

षट् शतं गणनाथश्च, षट्-सहस्रं पितामहे।
षट्-सहस्रं गदापाणि, षट्-सहस्रं पिनाकिने।
सहस्रं आत्मने दद्यात्, सहस्रं परमात्मने ॥
सहस्रं गुरवे दद्यात, एतत्संख्या समर्पयेत् ॥

अर्थात् मूलाधार में गणपति को ६००, स्वाधिष्ठान में ब्रह्मा को ६०००, मणिपुर में विष्णु को ६०००, अनाहत में रुद्र को ६०००, विशुद्धि में जीवात्मा को ६०००, आज्ञा चक्र में परमात्मा को १००० और ब्रह्मरन्ध्र में गुरु (परम शिव) को १००० कुल २१,६००।

जप तीन प्रकार के होते हैं—वाचक, उपांशु और मानसिक। इसी प्रकार शब्द या वाणी भी तीन प्रकार की होती है–वैखरी, मध्यमा और परा। इन्हीं तीन वाणियों से उपर्युक्त तीन प्रकार के जप होते हैं। इन शब्दों या वाणियों की जननी (उत्पन्न करनेवाली) कुण्डलिनी शक्ति है, जो मूलाधार (गुदा) चक्र में साढ़े तीन आंटे लगाकर सर्पाकार से स्थित है।

"शब्दानाम् जननी त्वमत्र भुवने, वाक्-वादिनी उच्यते।"

इस कुण्डलिनी को वाक्-वादिनी शक्ति कहते हैं क्योंकि सारे शब्दों की उत्पत्ति इसी कुण्डलिनी शक्ति के द्वारा होती है। यही शक्ति समस्त पिण्डाण्ड का संचालन करती है। यह मूलाधार में सदा अधोमुख लेटी रहती है। तात्पर्य यह कि जब तक मनुष्य विषयासक्त रहता है, तब तक यह सोई रहती है और जब मनुष्य विषयों को मन से हटाकर अध्यात्म की ओर लगाता है, तब यह ऊर्ध्वमुखी होती है। जिस प्रकार सपेरा जब पूंगी बजाता है, तब सोया हुआ नाग फण उठाकर सीधा लकड़ी की तरह खड़ा हो जाता है, ठीक उसी प्रकार योगी लोग आसनों और प्राणायाम के द्वारा कुण्डलिनी

को जगाकर उसे ऊर्ध्वमुखी करते हैं। भक्तगण जप के द्वारा और ध्यानी लोग ध्यान के द्वारा कुण्डलिनी को जागृत किया करते हैं। इस प्रकार यह ऊर्ध्वमुखी होकर शरीर में ऊपर के सब चक्रों को क्रमशः भेदन करती हुई ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचकर परम शिव से संयोजित होती है।

चक्र छः हैं–१ मूलाधार, २ स्वाधिष्ठान, ३ मणिपूर, ४ अनाहत, ५ विशुद्धि और ६ आज्ञा चक्र। इन सबसे ऊपर ब्रह्मरन्ध्र है, जो परम धाम है और जहाँ पर परम शिव सह शक्ति विराजमान हैं। मूलाधार में जब कुण्डलिनी पर प्राणों का आघात पड़ता है, सुषुम्ना में रन्ध्र खुल जाता है और प्राणों के साथ सुषुम्ना में होती हुई तथा ब्रह्म-ग्रन्थि (स्वाधिष्ठान में), विष्णुग्रन्थि (मणिपूर में), और शिवग्रन्थि (अनाहत में) का भेदन कर जब आज्ञा-चक्र में पहुँचती है, तब योगी अमृत का पान करने लगता है। इसी आज्ञा चक्र में इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्ना-इन नाड़ियों का संयोग होता है। इसी को त्रिवेणी कहते हैं। यों तो शरीर में ७२,००० बहत्तर हजार नाड़ियाँ हैं, पर उनमें तीन मुख्य हैं--१ इड़ा, २ पिङ्गला और ३ सुषुम्ना। इड़ा बायें पैर की तली से चलकर आज्ञा-चक्र होती हुई ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचती है। पिङ्गला दाहिने पैर से की तली चलकर आज्ञा-चक्र होती हुई ब्रह्मरन्ध्र पहुँचती है। सुषुम्ना, जो रीढ़ की हड्डी में रहती है, मूलाधार से चलकर आज्ञा-चक्र में होती हुई ब्रह्म-रन्ध्र में पहुँचती है। इन तीनों नाड़ियों का सङ्गम आज्ञा-चक्र में होता है, जैसा

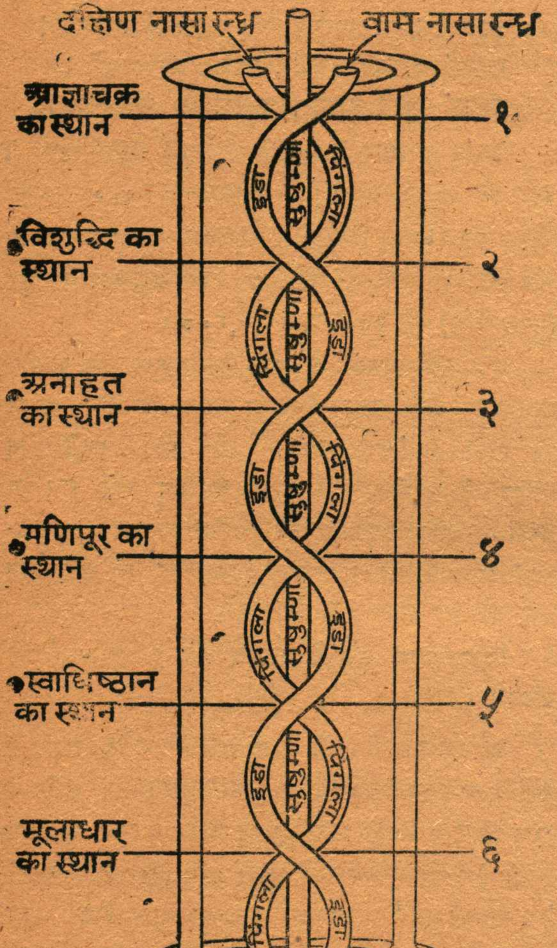
दक्षिण नासारन्ध्र
वाम नासारन्ध्र
आज्ञाचक्र का स्थान
१
विशुद्धि का स्थान
२
अनाहत का स्थान
३
मणिपूर का स्थान
४
स्वाधिष्ठान का स्थान
५
मूलाधार का स्थान
६
इड़ा
सुषुम्ना
पिंगला

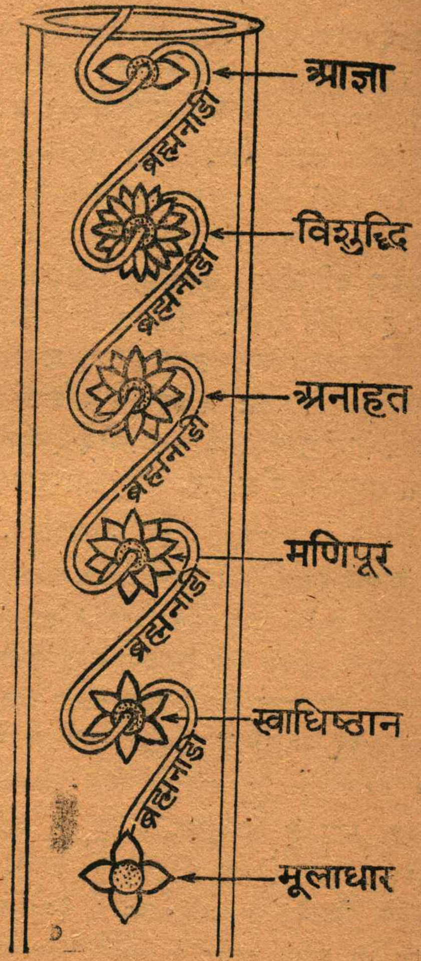
आज्ञा
ब्रह्मनाडी
विशुद्धि
ब्रह्मनाडी
अनाहत
ब्रह्मनाडी
मणिपूर
ब्रह्मनाडी
स्वाधिष्ठान
ब्रह्मनाडी
मूलाधार

कि ऊपर वर्णन किया गया है। यहाँ से आगे चलकर जब योगी कुण्डलिनी को ब्रह्म-रन्ध्र या सहस्रार में ले जाकर परम शिव से संयोजित करता है, तब वह वहाँ परम शिव के चरण-कमलों से द्रवित अमृत का पान कर परमानन्द को प्राप्त करता है। उसके सब दुःखों की निवृत्ति हो जाती है तथा वह आप्त-काम हो जाता है। यही निर्विकल्प समाधि की अवस्था है। यही मुक्तावस्था है।

उपर्युक्त चक्रों के प्रत्येक पृथक्-पृथक् स्थान, कमल-दल, रंग, वर्णाक्षर, देवता तथा शक्ति हैं। वे इस प्रकार हैं—

चक्र-स्थान	दल-संख्या	रंग	वर्ण	देवता	शक्ति
१ मूलाधार-गुदा	चतुर्दल	रक्त	वंशंषंसं	गणपति	साकिनी
२ स्वाधिष्ठान-लिंग	षड्दल	पीत	बं लं	ब्रह्मा	काकिनी
३ मणिपूर-नाभि	दशदल	नील	डं···फं	विष्णु	लाकिनी
४ अनाहत-हृदय	द्वादशदल	अरुण	कं····ठं	रुद्र	राकिनी
५ विशुद्धि-कण्ठ	षोडशदल	धूम्र	अं···अः	जीवात्मा	डाकिनी
६ आज्ञा-भृकुटि	द्विदल	विद्युत्	हं···क्षं	परमात्मा	हाकिनी

यहाँ पाठकों के लिये ध्यान में रखने की मुख्य बात यह है कि कुण्डलिनी-उत्थान की साधना केवल वही व्यक्ति कर सकता है, जो साधन-चतुष्टय अर्थात् विवेक, वैराग्य, षट्-सम्पत्ति (शम, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा और समाधान) और मुमुक्षत्व-भाव से सम्पन्न हो। साथ ही किसी जानकार गुरु के बताये हुये मार्ग से साधना करने पर ही इस कार्य में सफलता प्राप्त कर सकता है। इस योग-साधना का विषय अति गूढ़ और रहस्यमय है। इसमें मन की सारी वृत्तियों का क्षय हो जाता है

"योगश्चित्त-वृत्ति-निरोधः"—यह उक्ति महर्षि पातञ्जलि के राज-योग की है। कुण्डलिनी-योग तथा राजयोग (अष्टाङ्ग योग) का फल एक ही है। यह योग-विद्या आध्यात्मिक विद्या है। यह आत्म-विद्या है। यही श्री विद्या है। यह सर्वश्रेष्ठ विद्या है। यह सतयुग की विद्या है। अतः कलियुग के अल्पायु व अल्प-बुद्धि मनुष्य के लिये अप्राप्य नहीं, तो दुष्प्राप्य अवश्य है।

बहुत से लोगों का ऐसा विश्वास है कि योग गृहस्थों के साधन करने की वस्तु नहीं है। इस सम्बन्ध में यहाँ तक कहा जाता है कि "देखा देखी साजे योग, छीजे काया बाढ़े रोग"; परन्तु यह उनकी भारी भूल है। यदि ऐसा होता, तो भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्त अर्जुन को इसकी श्रेष्ठता बतलाते हुये गीता में यह न कहते कि—

तपस्वीभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोधिकः।
कर्मिभ्याश्चाधिको योगी, तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

मुण्डमाला का रहस्य

शास्त्र का कथन है कि भगवती काली ने अपने गले में मुण्डों की माला धारण कर रखी है। प्रश्न उठता है, क्या ये नर-मुण्ड हैं ? नहीं, जब सृष्टि नहीं थी, तब कौन उसे मिल गया, जिसका मुण्ड काट कर उसने पहन लिया ! वास्तव में ये मुण्ड वर्ण-माला के ५० अक्षर हैं और इन अक्षरों की माला ही काली की मुण्ड-माला है। यही काली मनुष्य के शरीर में कुण्डलिनी-रूप से स्थित है।

देवनागरी के उक्त ५० वर्ण प्रत्येक मनुष्य के शरीर के पद्म-दलों पर स्वतः अंकित हैं। जब इन दलों की पंखुड़ियाँ मुंदी रहती हैं, मनुष्य की प्रवृत्ति बहिर्मुखी रहती है, परन्तु इन वर्णों पर जब जप किया जाता है, तब ये पंखुड़ियाँ खुलती हैं और मूलाधार में सुप्त कुण्डलिनी सुषुम्ना के मार्ग से सहस्रार की ओर बढ़ती है। इस तरह शिव-शक्ति का मिलन सहस्रार में होता है और यहीं पर साधक परमानन्द का अनुभव करता है।

नाम और रूप ही जगत् है, जो वर्णों द्वारा व्यक्त है। जब मां काली जगत् का संहार करती है, तब इन वर्णों को अपने में लीन कर लेती है। फिर सृष्टि करते समय नाद का विस्फोट होता है। यह नाद मूलाधार में परा बाणी के रूप में स्थित रहता है। उसमें स्फोट होने पर मणिपुर में नाद पश्यन्ती-रूप ग्रहण करता है। उसमें भी अधिक विकसित होने पर अनाहत में मध्यमा-रूप ग्रहण करता है। फिर यह नाद स्थूल रूप धारण कर बैखरी के रूप में कण्ठ से प्रकट होता है। तब बाह्य सृष्टि-गोचर होता है।

वाक्—वाणी या शब्द प्रकाश है। उसका अर्थ कला है, तत्व है, भुवन है। वाक् और अर्थ से सारी सृष्टि होती है। यही वर्ण-माला सृष्टि का प्रतीक बनकर मां काली के गले में लटकी हुई है, जो प्रलय-काल में फिर उसी में विलीन हो जाती है। अतः सृष्टि के इस अद्वैत ज्ञान और प्रलय के गूढ़ रहस्य को जानने के लिये मन की माला जपने के लिये ही अजपा जप का विधान है, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है। इसी को इङ्गित करते हुये सन्त कबीर ने कहा है—

माला फेरत युग गया, पाया न मन का फेर।
कर का मनका छांड़ि के, मन का मनका फेर ॥

इसी अद्वैत ज्ञान को महा-कवि कालिदास ने भी शब्द और अर्थ की अभिन्नता प्रदर्शित करते हुये कहा है—

वागर्थाविव सम्पृक्तौ, वागर्थ-प्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ बन्दे, पार्वती-परमेश्वरौ ॥
ॐ ह्रौं स्हौं शिव आदि-गुरुभ्यो नमः।

निम्नांकित श्लोक से भी स्पष्ट है कि काली की मुण्ड-माला वर्णाक्षरों की ही माला है, जो मनुष्य के शरीर में कुण्डलिनी शक्ति के रूप में स्थित है:—

आधारे लिङ्ग-नाभौ हृदय-सरसिजे ताल-मूले ललाटे।
द्वि-पत्रे षोडशारे द्विदश-दश-दले द्वादशार्धे चतुष्के॥
वासान्ते वाल-मध्ये ड-फ कण्ठ-देशे स्वराणाम्।
हं-क्षं तत्वार्थ-युक्तं सकल-दल-गतं वर्ण-रूपं नमामि॥

भावार्थः—मूलाधार में 'वं शं षं सं', स्वाधिष्ठान में 'बं भं मं यं रं लं', नाभि (मणिपूर-चक्र) में 'डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं', हृदय (अनाहत चक्र) में 'कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं', कण्ठ (विशुद्धि चक्र) में 'अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः' और भृकुटि (आज्ञा चक्र) में 'हं क्षं' सहित वर्ण रूपा कुण्डलिनी शक्ति को मैं नमस्कार करता हूँ।

अजपा-जपा और कुण्डलिनी-गीत

[१]

प्रभाती

गुरु-चरणा चित लाऊँ, प्रात उठ गुरु-चरणा चित लाऊँ। टेर
तीन पहर निशि विगत हुए जब, शैया से उठ जाऊँ,
हाथ-पैर मुख-मंजन करके आसन बैठ जमाऊँ,
गुरु-चरणा...॥१॥
शीश सहस्र-दल-कमल अमल में, इक-टक ध्यान लगाऊँ,
पी-पी शक्ति-सहित परम शिव पद पीयूष अघाऊँ,
गुरु-चरणा...॥२॥
गनपति, ब्रह्मा, विष्णु, शङ्कर, जीव ईश शिर नाऊँ,
पञ्च-तत्व से मूलादिक षट्-चक्र पूज हरषाऊँ,
गुरु-चरणा...॥३॥
सहस्र अष्ट दश तीन सहस्र में; षट्-शत और मिलाऊँ,
निज निज संख्या जप देवन के हस्त-कमल पदराऊँ,
गुरु-चरणा...॥४॥
'हंसः हंसः सोहं सोहं' अजपा-जप जप जाऊँ,
'दिव्य' कहै मानस पूजन कर परम पदारथ पाऊँ,
गुरु-चरणा...॥५ ॥

[२]

यह मुक्ति की दातारी है, कुल कुण्डलिनी नारी है ।।टेर।।
प्रथम चक्र है मूलाधार, वं शं षं सं अक्षर चार ।
रक्त-कमल-दल चार देवता गनपति मङ्गल-कारी है,
कुल-कुण्डलिनी नारी है ।।१।।
प्रथम चक्र के ऊपर दूजो, स्वाधिष्ठान चक्र को पूजो ।
वालान्तर-युत षट्दल-पङ्कज पीत-देव मुख चारी है,
कुल-कुण्डलिनी नारी है ।।२।।
मणिपूर नाभि-स्थल मांय, दस दल-सहित सरोज सुहाय ।
नील रंग ड-फ वर्ण देवता लक्ष्मीकान्त मुरारी है,
कुल-कुण्डलिनी नारी है ।।३।।
चौथो चक्र अनाहत जानो, द्वादश दल पङ्कज पहिचानो ।
हृदय बीच क-ठ वर्ण अरुण, अरु देव रुद्र त्रिपुरारी है,
कुल-कुण्डलिनी नारी है ।।४।।
चक्र विशुद्धि कण्ठ-स्थान, षोडश दल-युत कमल महान ।
धूम्र वर्ण स्वर षोडश अक्षर, देव जीव जहां जारी है,
कुल-कुण्डलिनी नारी है ।।५।।
भृकुटि-मध्य लेखो तुम जोय, आज्ञा-चक्र कमल-दल दोय ।
'हं क्ष' विद्युत् वर्ण देवता परमात्मा अधिकारी है,
कुल-कुण्डलिनी नारी है ।।६।।
कञ्ज श्वेत दल सहस्र सुराजे, शीश सहित शक्ति शिव भ्राजे ।
चरण-सुधा-रस पान करे, जो आनँद लहै अपारी है,
कुल-कुण्डलिनी नारी है ।।७।।
कुण्डलिनी-शक्ति को जगाओ, चक्र-भेद शिव-सङ्ग मिलाओ ।
'दिव्य' कहे विधि गुरु से सीखो, ये ही विनय हमारी है,
कुल-कुण्डलिनी नारी है ।।८।।

धार्मिक जगत की हलचल

१—नवरात्र के मेले

विन्ध्याचल में प्रतिवर्ष की भाँति नवरात्र के अवसर पर विन्ध्यवासिनी देवी, काली खोह और अष्टभुजा की त्रिकोण-यात्रा-पूर्वक भक्त-जनों के अपार समूह ने सोत्साह श्री जगदम्बा का दर्शन-पूजन किया।

बकसर की सुरथ-समाधि द्वारा पूजित चण्डिका देवी के भव्य मन्दिर के क्षेत्र में उन्नाव, रायबरेली, कानपुर आदि जनपदों के भक्तजनों ने सभक्ति आकर प्राचीन देवी-प्रतिमाओं के दर्शन-पूजन से अपने को कृतार्थ किया।

सिकन्दरपुर (बलिया-उ० प्र०) में ग्रामीण स्त्रियों ने आदि-शक्ति माता कालिका की पूजा-अर्चना की। मनियर और रतसड़ (हरिराम ब्रह्म-स्थल) के नवरात्र मेले में गाजीपुर, आजमगढ़, जौनपुर, देवरिया, गोरखपुर, वाराणसी, भोजपुर, सीवान, छपरा आदि के लोगों ने सोत्साह भाग लिया।

गाजीपुर जिले के बिन्दवलिया ग्राम के नवनिर्मित काली-मन्दिर पर ग्राम-प्रधान की ओर से मेले का आयोजन किया गया।

जबलपुर (म० प्र०) से लगभग १०० मील दूर सतना जिले के मैहर नामक स्थान पर मां शारदा देवी के मन्दिर में नवरात्र के अवसर पर विशाल मेले का आयोजन हुआ।

२—सहस्रचण्डी महायज्ञ

सर्व-धर्म-समभाव केन्द्र के संस्थापक श्री चन्द्र स्वामीजी महाराज की प्रेरणा से मिर्जापुर की श्री गोवर्द्धन गोशाला के प्राङ्गण में सहस्रचण्डी महायज्ञ ४ अप्रैल ७४ को सानन्द सम्पन्न हुआ। इस यज्ञ-स्थल पर नौ दिनों तक मां विन्ध्यवासिनी की पूजा-अर्चना एवं हवन आदि के साथ रात्रि में ९ बजे से १० बजे तक प्रतिदिन विद्वानों के प्रवचन भी होते रहे।

३—भगवान सूर्य षष्ठी व्रत

चैत्र मास के सूर्य-षष्ठी व्रत के अवसर पर गया (बिहार) में लगभग पचास हजार नर-नारियों ने श्री सूर्य-कुण्ड और फल्गु नदी के कुण्डों से भगवान् सूर्यदेव को अर्घ्यदान किया। गया से लगभग ५० किलोमीटर दूर औरंगाबाद जिले के देव-क्षेत्र में भगवान सूर्य के प्राचीन मन्दिर में बिहार के विविध जिलों के लगभग एक लाख व्यक्तियों ने सूर्यदेव के दर्शन किए तथा अर्घ्य दान किया।

४—योगासनों की उपयोगिता

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर के सञ्चालक स्वामी सत्यानन्द सरस्वती ने हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी के मालवीय भवन में प्रवचन करते हुए कहा कि—

'योग-विद्या केवल संन्यासियों के लिए ही नहीं है, बल्कि हर गृहस्थ भी शारीरिक स्वास्थ्य, चित्त की शान्ति के लिए योगासनों का अभ्यास कर सकता है। चोरी, डकैती, हिंसा आदि का शमन राजयोग से हो सकता है, जिसका सम्बन्ध चित्त और मन की एकाग्रता है। आसन, प्राणायाम, ध्यान और योग-निद्रा—इन चारों का उपयोग गृहस्थाश्रम में रहते हुए क्रमशः १५, १०, १५ तथा ३० मिनट में सहज ही किया जा सकता है। हृदय-रोग और रक्त-चाप के दोष आधा घण्टा प्रतिदिन योग-निद्रा की क्रिया से नियन्त्रित हो सकते हैं।'

५—विज्ञान और योग

विश्व-सेवा-सङ्घ के अध्यक्ष स्वामी आत्मानंद परमहंस की प्रेरणा से इलाहाबाद पोलिटेक्नीक में प्रयाग यौगिक प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना की गई है। इस सम्बंध में परमहंस जी ने घोषित किया है कि—

'वैज्ञानिक युग के अभिशापों से मानव मन को मुक्ति दिलाने के उद्देश्य से विज्ञान के साथ योग के समन्वय का प्रयोग किया जा रहा है। साधना और चिन्तन आध्यात्मिक औषधियाँ हैं, जो आत्मा और मन को स्वस्थ तथा प्रफुल्लित रखती हैं। मानव मन को सन्तुलित रखने के लिए विज्ञान के साथ मानवीय मूल्यों को जीवन्त बनाए रखने की आवश्यकता है, जो योग के माध्यम से ही सम्भव है। उक्त केन्द्र में यौगिक विद्या के अध्ययन तथा अभ्यास की सुविधा दी जायेगी।'

६—हरिद्वार में कुम्भ-मेला

इस वर्ष १४ अप्रैल ७४ से हरिद्वार में कुम्भ मेले का श्री गणेश हुआ। इस अवसर पर भारत के कोने-कोने से तथा विदेशों से भी लगभग बीस लाख यात्री आए। यात्रियों की सुविधा के लिए गंगा जी पर २० पुल बाँधे गए। मेले का क्षेत्र २०० वर्ग किलोमीटर में विस्तृत रहा। १४ मई ७४ के अन्तिम स्नान-दिवस पर उक्त विशाल धार्मिक मेले का समापन हुआ।

७—विक्रम सम्वत् एवं नवरात्र का महत्व

भाटपार रानी (देवरिया–उ०प्र०) के मदनमोहन मालवीय शिक्षा-संस्थान में आयोजित नववर्षारम्भ समारोह में संस्थान के मुख्य आचार्य पण्डित केशवचन्द्र मिश्र ने कहा कि 'यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम लोगों ने अब तक विक्रम सम्वत् को जीवन का दैनन्दिन अङ्ग नहीं बनाया। यह सम्वत विदेशियों की पराजय और भारतीय स्वतन्त्रता एवं राष्ट्रीयता का प्रतीक है।'

श्री रामायण उपाध्याय, अध्यक्ष हिन्दी-विभाग ने इस अवसर पर नवरात्र के सम्बन्ध में कहा कि 'नवरात्र में शक्ति की आराधना होती है। दुर्गा सप्तशती में मङ्गल से जुड़ी शक्ति और अहङ्कार से जुड़ी शक्ति के बीच सङ्घर्ष का वर्णन है, जिसमें अमाङ्गलिक असुरों पर सृष्टि-विधायिनी शक्ति की विजय प्रदर्शित है।'

८—एक लाख साठ हजार रुपये का गुप्तदान

दक्षिण भारत के तिरुपति मन्दिर में किसी तीर्थयात्री ने उक्त भारी धनराशि सौ-सौ रुपये के नोटों में गुप्त दान के रूप में अर्पित की।

९—'हिन्दू-धर्म को लौटो'-समारोह

महाराष्ट्र के ठाणें जिले के दहाणं, जव्हार और तलासरी तालुकों में बसनेवाले अब तक पिछड़े हुये वनवासियों में आत्म-विश्वास व आशावाद की एक अभूतपूर्व लहर दौड़ रही है। विश्व-हिन्दू-परिषद् के कार्यकर्ताओं ने गुड़ी पाडवे के शुभ मुहूर्त पर २४ मार्च, १९७४ के दिन पवित्र महालक्ष्मी मन्दिर के विशाल पट्टांगण में, जो चारोंटी नाके से दो मील के अन्तर पर अवस्थित है, एक 'परावर्तन-समारोह' (हिन्दू धर्म को लौटो) का आयोजन किया।

वेद-मन्त्रों की मधुर, पवित्र एवं उच्च ध्वनियों के मोहक वातावरण में वारली-कोमकनी व ठाकुर जातियों के ५१ परिवारों ने, जो अनेक निकट व दूर के गांवों से आये थे, स्वेच्छा से अपने पुरखों के हिन्दू-धर्म को अंगीकार करते हुये ख्रिस्ती आवरण उतार फेंका। श्री भण्डारे गुरुजी के पौरोहित्य में 'विश्व-हिन्दू-परिषद्' की बम्बई शाखा के उपाध्यक्ष श्री दौलतराम जी भैरूमल ने 'होम और 'पूजा' सम्पन्न की। ५० से अधिक विशिष्ट धार्मिक व सामाजिक कार्यकर्ताओं ने इस महोत्सव में भाग लिया, जिसमें बम्बई से श्री कामदार जी अध्यक्ष विश्व-हिन्दू-परिषद, श्री हर मोहन लाल जी, श्री दाभुण्णा ठीकेदार, डा० रतनचन्द्र जी जैन, श्री हर आत्माराम जी, श्री कृष्णकुमार जी श्री अण्णा चालके, श्री भय्या जी जोशी उल्लेखनीय हैं। ठाणें के श्री अप्पा जोशी और अनेक हिन्दू-धर्म प्रेमी उपस्थित थे। बाद में परावर्तित बन्धुओं को श्री महालक्ष्मी के मन्दिर में पूजन के लिये ले गये और सामूहिक भोजन हुआ।

सम्पादकीय

१—उड़ीसा में तान्त्रिक-सम्मेलन

पिछले दिनों एक और "तांत्रिक-सम्मेलन" का आयोजन देश में उत्कल प्रदेश में हुआ, जिसका उद्घाटन राज्यपाल द्वारा किया गया। इसके पूर्व लगभग दस वर्ष पहले सम्वत् २०२१ में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल द्वारा वाराणसी में "तान्त्रिक सम्मेलन" आयोजित हुआ था, जिसमें नेपाल, बंगाल, मिथिला, आसाम और दक्षिण भारत के तांत्रिक विद्वानों ने भाग लिया था। व्यावहारिक दृष्टिकोण के अभाव में उस सम्मेलन का कोई विशेष लाभकारी परिणाम नहीं निकला। उड़ीसा में आयोजित तान्त्रिक सम्मेलन के प्रस्तावकों एवं व्यवस्थपकों ने भी कदाचित् उत्तर प्रदेश के "तान्त्रिक सम्मेलन" की असफलता से कोई शिक्षा ग्रहण नहीं की और केवल नाम के लिए सम्मेलन का आयोजन कर बैठे। ऐसी धारणा इसलिये होती है, क्योंकि उड़ीसा के "तांत्रिक सम्मेलन" का कोई प्रचार तक नहीं किया गया—उससे सम्बन्धित कोई विज्ञप्ति तक देखने में नहीं आई। एक छोटे से समाचार से केवल यह जानने को मिला कि उक्त "सम्मेलन" का आयोजन सम्पन्न हो गया! "कौल-कल्पतरु' चण्डी के पाठकों की जानकारी के लिये उक्त समाचार यहाँ उद्धृत किया जाता है--

"…२७ अप्रैल को उड़ीसा के राज्यपाल श्री बी० डी० जत्ती ने अपील की कि 'सम्पूर्ण विश्व में भयङ्कर रोगों से पीड़ित पुरुषों और महिलाओं के कष्टों और दुःखों के दूर करने के लिये तन्त्रों का उपयोग किया जाना चाहिये।'

श्री जत्ती कटक से लगभग ६० किलोमीटर दूर चाँदी खोली में पहाड़ी की चोटी पर प्रथम तांत्रिक सम्मेलन का उदघाटन कर रहे थे। आपने कहा कि यदि प्राचीन काल में तांत्रिक भयङ्कर रोगों को दूर कर सकते थे, तो हम उस विद्या को, जिसे हमने खो दिया है, पुनरुज्जीवित तथा पुनः कायम कर वर्तमान समय में भी वही परिणाम पाने की आशा क्यों नहीं कर सकते?" ..

निश्चय ही उक्त "तान्त्रिक सम्मेलन" में कुछ विज्ञ और अनुभवी तान्त्रिक साधकों ने सहयोग दान किया होगा, किन्तु उनके सम्बन्ध में कोई विवरण उपलब्ध नहीं है। सम्मेलन में किन-किन बातों पर विचार किया गया, तन्त्र-विद्या के उद्धार के लिये क्या प्रस्ताव स्वीकार किये गये आदि कोई विवरण प्राप्त नहीं है। इससे स्पष्ट है कि यह सम्मेलन कितनी उपेक्षा के साथ आयोजित हुआ है। आश्चर्य तो यह है कि एक राज्यपाल के द्वारा उद्घाटित सम्मेलन की यह दशा है!

उड़ीसा के उक्त "तान्त्रिक सम्मेलन" का विशेष विवरण प्राप्त करने का प्रयास हम कर रहे हैं। प्राप्त होने पर उसे अगले अङ्क में प्रकाशित किया जायगा।

२–'कौल-कल्पतरु' चण्डी द्वैमासिक-रूप में

पाठकों के अनुरोध पर 'कौल-कल्पतरु' चण्डी का प्रकाशन इस वर्ष द्वैमासिक-रूप में किया जा रहा है, यद्यपि कागज और छपाई आदि के मूल्यों में निरन्तर असहनीय वृद्धि हुई है। इधर डाक-व्यय भी बढ़ गया है और रेल हड़ताल आदि के कारण अङ्कों के भेजने में भी कठिनाई उत्पन्न हुई है। फिर भी श्री जगदम्बा की दया और प्रेमी पाठक बन्धुओं के सहयोग की आशा से हम अपने दायित्वों को पूर्ण करने के लिए प्रयत्नशील हैं।

पाठक बन्धुओं से अनुरोध है कि अपनी पत्रिका को नियमित और स्थायी बनाने लिए उसके नये ग्राहक बनाकर तथा आर्थिक सहायता स्वयं देकर तथा दानी महानुभावों से दिलाकर पुण्य और यश के भागी बनें।

हिन्दी-तन्त्रसार

७० वीर-साधन प्रक्रिया

[‘कौल-कल्पतरु’ चण्डी के गत वर्ष के अन्तिम अङ्क में ‘हिन्दी तन्त्रसार’ के अन्तर्गत ‘तारा-मन्त्र-विधान’ प्रकाशित हो चुका है। अब उससे आगे का अंश क्रमशः दिया जा रहा है। ७० वें विषय का शीर्षक है ‘वीर-साधन-प्रक्रिया’ किन्तु वस्तुतः इस विषय के नाम से शव-साधन का विधान दिया गया है। यह साधन किसी अनुभवी आचार्य के ही निर्देशन में करणीय है। इस साधन-विधान के बाद विशिष्ट देवताओं के मन्त्र और उनकी पूजा-पद्धतियाँ दी गई हैं, जो क्रमशः प्रकाशित की जायँगी।—सं०]

वीर-तन्त्र में लिखा है कि कृष्ण अथवा शुक्ल पक्ष की अष्टमी या चतुर्दशी के दिन वीर-साधन करे किन्तु वीर-साधन कृष्ण पक्ष में ही प्रशस्त है। सार्द्ध-प्रहर रात्रि बीत जाने पर चिता-स्थान में एक शव लाकर मन्त्र-ध्यान-परायण हो अपने हित-साधन के लिये कार्य करे। इस साधन के काल में किसी भी प्रकार डरे नहीं, हँसे नहीं और किसी भी ओर देखे बिना एकाग्र-मन से केवल मन्त्र का जप करता रहे। वीर-साधन के लिये आवश्यक पूजा-सामग्री यह है—१ सामिषान्न, २ गुड़, ३ छाग, ४ सुरा, ५ पायस, ६ पिष्टक, ७ विविध प्रकार के फल और ८ अपने-अपने कल्पोक्त नैवेद्य इत्यादि।

समस्त पदार्थों को श्मशान में लाकर निर्भीक-हृदय हो समान गुणवाले सशस्त्र बन्धु-गण के साथ वीर-साधन करे। योगिनी हृदय में लिखा है कि बलि के लिये सामिषान्न, गुड़, छाग, मधु, पिष्टक, परमान्न, दुग्ध, फल और मूल इन पदार्थों का संग्रह करे। बलि-द्रव्य को सात पात्रों में रखे। चार पात्रों को चार दिशाओं में और मध्य में तीन पात्रों को रखकर मन्त्र-पाठ सहित उन्हें निवेदन करे। गुरु, भाई या व्रतशील ब्राह्मण को आत्म-रक्षा के लिये कुछ दूरी पर स्थित करे।

वीर-साधन की क्रिया के लिए असंस्कृत चिता ही प्रशस्त है। जल-सिञ्चन आदि द्वारा परिष्कृत चिता में वीर-साधन न करे। चण्डाल आदि की चिता मिलने से वीर-साधन-कार्य में शीघ्र सिद्धि मिलती है। जो व्यक्ति बड़ा बलवान हो, अति बुद्धिमान हो, अत्यन्त साहसी हो, पवित्र, सरल-मन, दानी और सभी प्राणियों का हितैषी हो, वही वीर-साधन के करने का अधिकारी है।

उक्त प्रकार का अधिकारी साधक सामान्य अर्घ्य स्थापन कर स्वशाखोक्त स्वस्तिवाचन-पूर्वक निम्न प्रकार ङ्कल्प करे—

ॐ अद्येत्यादि अमुक-गोत्रः श्री अमुकदेव-शर्मा अमुक-मन्त्र-सिद्धि-कामः (अमुक-सिद्धि-कामः वा) श्मशान-साधनमहं करिष्ये।

इसके बाद विविध वस्त्रालङ्कार आदि से विभूषित होकर पूर्वाभिमुख बैठे और मूलमन्त्र के अन्त में ‘फट्’ जोड़कर याग-स्थान का प्रोक्षण करे। फिर गुरु-चरण-रज का ध्यान कर गणेश, वटुक, योगिनी और मातृकाओं का पूजन कर बाँएँ पैर को आगे कर चिता-स्थल में प्रवेश करे। तदनन्तर ‘फट्’ से आत्म-रक्षा कर निम्न मन्त्र से प्रणाम कर तीन पुष्पाञ्जलियाँ प्रदान करे—

ये चात्र संस्थिता देवा राक्षसाश्च भयानकाः।
पिशाचाः सिद्धयो यक्षा गन्धर्वाप्सरसां गणाः॥

योगिन्यो मातरो भूताः सर्वाश्च खेचरा स्त्रियः ।
सिद्धिदास्ता भवन्त्यत्र तथा च मम रक्षकाः ॥

पूर्व-दिशा में श्मशानाधिपति की पूजा कर 'ॐ हूँ श्मशानाधिप इमं सामिषान्न-बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णाप गृह्णापय विघ्न-निवारणं कुरु सिद्धिं मम प्रयच्छ स्वाहा' इस मन्त्र से उन्हें बलि अर्पित करे ।

फिर दक्षिण दिशा में भैरव की पूजा कर 'ॐ ह्रीं भैरव भयानक इमं......स्वाहा' मन्त्र से उन्हें बलि दे । इसके बाद पश्चिम-दिशा में काल-भैरव की पूजा कर 'ॐ हूं कालभैरव श्मशानाधिप इमं...स्वाहा' मन्त्र से बलि देकर उत्तर-दिशा में महाकाल की पूजाकर 'ॐ हूँ महाकाल श्मशानाधिप इमं ..स्वाहा' मन्त्र से बलि दे ।

तदनन्तर चिता के मध्य में शेष तीन बलियाँ क्रमशः निम्न मन्त्रों से प्रदान करे—

१—ॐ काल-रात्रि महाकालि इमं......स्वाहा ।

२— ॐ हूँ भूतनाथ श्मशानाधिप इमं .....स्वाहा ।

३— ॐ हूँ सर्व-गणनाथ श्मशानाधिप इमं......स्वाहा ।

इसके बाद पञ्च-गव्य और जल द्वारा श्मशान-स्थित अस्थि आदि का प्रोक्षण कर उसके ऊपर पीत वस्त्र बिछा कर वट-पत्र या भूर्ज-पत्र पर पीठ-मन्त्र लिखकर उक्त पीत वस्त्र के ऊपर उसे स्थापित करे । उसके ऊपर व्याघ्र-चर्मादि आसन बिछाकर उस पर वीरासन से बैठकर निम्नलिखित वीरार्दन-मन्त्र से अभिमन्त्रित लोष्ट् को दशों दिशाओं में फेंकते हुए दिक्-रक्षा करे—

हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं कालिके घोर-दंष्ट्रे प्रचण्डे चण्डनायिके दानवान् दारय हन हन शव-शरीरे महाविघ्नं छेदय छेदय स्वाहा हूँ फट् ।

इस प्रकार दसों दिशाओं में रक्षा-विधान कर उनके मध्य में बैठकर पूजा करने से भैरव देव का आविर्भाव होता है और किसी प्रकार की विघ्न-बाधा नहीं होती । साधन-काल में साधक यदि भयभीत हो, तो पूर्वोक्त बन्धु-वर्ग को सतर्क होकर उसके भय को दूर करना चाहिये ।

इसके बाद कर्पूर-युक्त श्वेत अर्क(मदार) का तुला को बत्ती बनाकर प्रदीप जलाकर वहाँ रखे । उस दीपक के ऊपर 'ॐ देव्यस्त्रेभ्यो नमः' से अस्त्र-पूजा कर साधक अपने अधो भाग में 'फट्' मन्त्र से गड्ढा बनाकर उक्त प्रज्वलित दीपक को उसमें रखे । इस दीपक के बुझने से साधना में विघ्न पड़ता है । अतः वह वायु से बुझे नहीं, इस उद्देश्य से उसे गड्ढे में स्थापित करने का विधान है ।

तदनन्तर सङ्कल्प करे । यथा—

अद्येत्यादि अमुक-गोत्रः श्री अमुकदेव शर्मा अमुक-मन्त्र-सिद्धि-कामः अमुक-मन्त्रस्यामुक-संख्यक जपमहं करिष्ये ।

सङ्कल्प के बाद स्व-कल्पोक्त विधान से भूतशुद्धि आदि कर षोढा या प्रणव-न्यास कर पूजा करते हुए मन्त्र-चिन्ता पूर्वक अनन्य-चित्त से जप करे । जप का नियम यह है कि एकाक्षर मन्त्र का दस हजार, द्वयक्षर का आठ हजार, त्र्यक्षर का पाँच हजार और चतुरक्षरादि मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करे । अथवा रात्रि से प्रारम्भ कर सूर्योदय-पर्यन्त जप करे ।

महा-भय से यदि साधक व्याकुल हो, तो वस्त्र द्वारा साधक के कानों और नेत्रों को बन्द कर दे, जिससे न वह कुछ सुन सके और न देख सके । अर्द्धरात्रि पर्यन्त जप करने पर भी कुछ न देखे, तो निम्नलिखित जयदुर्गा मन्त्र से ईशानादि चारों कोणों में सर्षप और तिलोऽसि आदि मन्त्र से तिल फेंके—

ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा । ॐ तिलोऽसि सोम देवत्यो गोसवस्तृप्ति-कारकः । पितृणां स्वर्ग-दाता त्वं मर्त्यानां मम रक्षकः । भूत-प्रेत-पिशाचानां विघ्नेषु शान्ति-कारकः ।

फिर पूर्वोपवेशन-स्थान से सात कदम चलकर उसी स्थान पर बैठकर देवता का पुनः पूजन और जप करे। जप-काल में कोई आकर यदि कहे कि 'वर ग्रहण करो' तो देवता को प्रतिज्ञा-बद्ध करके अभिलषित वर ग्रहण करे।

जप के आदि, मध्य और अन्त में बलि प्रदान करे। जप के आदि, मध्य अथवा अन्त समय में यदि कोई देवी 'दो दो' कहकर बलि माँगे, तो यव-पिष्ट-निर्मित महिष अथवा छाग की बलि प्रदान करे। देवी नर या गज-बलि माँगे, तो 'अगले दिन बलि दूंगा' यह प्रतिज्ञा कर अपने घर को जाय। अगले दिन यव-पिष्ट द्वारा नर अथवा गज प्रस्तुत कर उसकी बलि प्रदान करे। तन्त्रान्तर में लिखा है कि यव-चूर्ण या तण्डुल-चूर्ण द्वारा बलि तैयार कर तत्तद्-देवता के बलिदान-मन्त्र से खड्ग द्वारा उसका छेदन कर बलि प्रदान करे।

योगिनी हृदय में लिखा है कि जप के समाप्त होने पर उक्त प्रकार महिष या गज की बलि देकर वर ग्रहण-पूर्वक बन्धुवर्ग के सहित प्रसन्न-मन से अपने घर जाय और अपनी सामर्थ्य के अनुसार गुरु, गुरु-पुत्र और गुरु-पत्नी को दक्षिणा दे।

भाव-चूडामणि में लिखा है कि शून्य गृह, नदी-तट, पर्वत, निर्जन प्रदेश, बिल्व-मूल, श्मशान और श्मशान के समीपस्थ वन-प्रदेश में शव-साधन करना प्रशस्त है। कृष्ण या शुक्ल पक्ष की अष्टमी या चतुर्दशी तिथि में या कुजवार के निशा-काल में उक्त साधना करने से साधक परमा सिद्धि को प्राप्त करता है। माष-भक्त बलि के लिए तिल, कुश, सर्षप और धूप-दीपादि पूजा की सभी सामग्री का संग्रह साधक को करना चाहिये। इसके बाद पूर्वोक्त किसी स्थान को चुनकर वहाँ जाय और सामान्यार्घ्य-स्थापन कर पूर्व-मुख होकर 'मूलं फट्' से याग-स्थल का अभ्युक्षण करे। फिर पूर्व में गुरु का, दक्षिण में गणेश का, पश्चिम में वटुक का और उत्तर में योगिनी का पूजन कर भूमि पर पूर्वोक्त वीरार्दन मन्त्र लिखे। तब पूर्वोक्त 'ये चात्र' इत्यादि मन्त्र से पूर्ववत् तीन पुष्पाञ्जलियाँ देकर प्रणाम करे। फिर पूर्वोक्त विधि से श्मशानाधिपति-गण को बलि देकर निम्नलिखित अघोर सुदर्शन मन्त्र से शिखा-बन्धन करे—

ॐ ह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर घोर घोरतर तनु-रूप चट चट प्रचट प्रचट कह कह वम वम बन्ध बन्ध घातय घातय हूँ फट् ॐ सहस्रारे हुं फट्।

अब अपने हृदय पर हाथ रख कर सुदर्शन-मन्त्र के अन्त में 'आत्मानं रक्ष रक्ष' जोड़कर मन्त्र-जप-पूर्वक आत्म-रक्षा करे। फिर पूर्वोक्त रूप से भूतशुद्धि और विविध न्यास कर जयदुर्गा-मन्त्र से चारों दिशाओं में सर्षप फेंककर 'तिलोऽसि' इत्यादि मन्त्र से तिल-विकिरण कर विहित शव के समीप जाय।

भाव चूडामणि में लिखा है कि जो व्यक्ति यष्टि, शूल या खड्ग की चोट से प्राण छोड़ता है; जल में डूबने से, वज्रपात अथवा साँप के काटने से जिसके प्राण छूटते हैं, उस प्रकार के चण्डाल जाति के व्यक्ति के मृत देह को इस कार्य के लिये शव बनावे। इस शव का तरुण-वयस्क और सुन्दर अङ्गवाला होना आवश्यक है। सम्मुख-युद्ध से जो मरा न हो और युद्ध में प्राण त्याग किया हो, उसका देह भी शव-साधन के लिए प्रशस्त है।

भैरव तन्त्र के अनुसार यष्टि आदि की चोट से मृत अथवा जल में डूबने से मृत व्यक्ति की देह प्रशस्त है। स्वेच्छा-मृत व्यक्ति की देह ग्राह्य नहीं है। स्त्री के वशीभूत, पतित, अस्पृश्य, दुर्नीति-युक्त, श्मश्रु-हीन, नपुंसक, कुष्ठ-रोगी, दुर्भिक्ष में मृत अथवा वृद्ध व्यक्ति का शव छोड़ देना चाहिये। सद्यो मृत शव ही विहित है; पर्युषित शव द्वारा साधन करने से कार्य-सिद्धि नहीं होती। अतः इस प्रकार के शव और स्त्री के मृत देह को इस साधन में ग्रहण न करे।

कालो-तन्त्र का मत है कि ब्राह्मण और गाभीर शव को छोड़कर शव-साधन करे। वीर साधन कार्य में सद्यो मृत व्यक्ति का ही देह प्रशस्त है। अन्य साधारण कार्य में पशु का भी शव ग्रहणीय है।

इस प्रकार सुलक्षण शव लेकर मूलमन्त्र-जप करता हुआ पूजा-स्थल में जाय। शव के पास बैठकर 'ॐ फट्' से शव के ऊपर अभ्युक्षण करे। फिर 'ॐ हूँ मृतकाय नमः फट्' इस मन्त्र से तीन पुष्पाञ्जलि देकर शव का स्पर्श करते हुए निम्न मन्त्र से प्रणाम करे—

वीरेश परमानन्द शिवानन्द कुलेश्वर।
आनन्दभैरवाकार देवी-पर्यङ्क-शङ्कर।
वीरोऽहं त्वां प्रपद्यामि उत्तिष्ठ चण्डिकार्चने॥

अर्थात् हे वीरेश ! हे परमानन्द ! हे शिवानन्द ! हे कुलेश्वर ! तुम आनन्दभैरव-स्वरूप और देबी के पर्यङ्क शङ्कर-स्वरूप हो। वीरभाव से देवी के अर्चनार्थ तुमको मैं प्रणाम करता हूँ। तुम उठो।

इस प्रकार प्रणाम कर 'ॐ हूँ मृतकाय नमः' से शव का प्रक्षालन कर सुगन्धित जल से उसे स्नान करावे। फिर वस्त्र द्वारा शव-देह का मार्जन, धूप द्वारा शोषण और चन्दनादि द्वारा लेपन करे। फिर उसकी कमर पकड़कर उसे पूजा-स्थल में ले आये।

इसके बाद कुश की शय्या बनाकर पूर्व की ओर शव का शिर रखते हुए शव को स्थापित करे। शव के मुख में जातीफल और खदिरादि-युक्त ताम्बूल देकर शव को अधोमुख रखे। शव की पीठ पर चन्दनादि का लेप कर बाहु-मूल से लेकर कटि-देश तक के स्थान में एक चतुरस्र मण्डल बनावे। चतुरस्र के मध्य में अष्टदल-पद्म और चतुर्द्वार बनाकर पद्म के मध्य में 'ॐ ह्रीं फट्' के साथ तत्तत् कल्पोक्त पीठ-मन्त्र लिखे। उसके ऊपर कम्बलादि आसन बिछावे।

तन्त्रान्तर में लिखा है कि शव के पास जाकर उसके कटि-देश को धारण करे। इस पर यदि शव किसी प्रकार का उपद्रव करे, तो उसके देह पर निष्ठीवन निक्षेप कर पुनः प्रक्षालन पूर्वक उसे जप-स्थल में लाये।

इसके बाद जप-स्थान की दसों दिशाओं में बारह अंगुल के बराबर अश्वत्थादि यज्ञीय काष्ठों को पूर्ववत् स्थापित करे और पूर्वादि क्रम से इन सब काष्ठों पर इन्द्रादि दश दिक्-पालों की पूजा कर सामिषान्न द्वारा उन्हें बलि प्रदान करे। यथा—

१ पूर्व में—'ॐ लां इन्द्राय सुराधिपतये ऐरावत-वाहनाय वज्र-हस्ताय सशक्ति-पारिषदाय सपरिवाराय नमः' से पाद्यादि पूजन कर सामिष बलि निम्न मन्त्र से दे—'ॐ लां इन्द्राय सुराधिपतये इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्न-निवारणं कृत्वा मम सिद्धिं प्रयच्छ स्वाहा। एष माष-भक्त-बलिः ॐ लां इन्द्राय स्वाहा।'

इसी प्रकार पूजन-मन्त्रों से सभी का पाद्यादि-पूजन और बलि-मन्त्रों से सबको सामिष बलि प्रदान करे। यथा—

२ आग्नेय कोण में अग्नि का पूजा-मन्त्र—ॐ रां अग्नये तेजोऽधिपतये मेष-वाहनाय सपरिवाराय शक्ति-हस्ताय सायुधाय नमः।

बलि-मन्त्र—ॐ रां अग्नये तेजोऽधिपतये इमं बलिं०......ॐ रां अग्नये स्वाहा।

३ दक्षिण में यम का पूजा-मन्त्र—ॐ यां यमाय प्रेताधिपतये दण्ड-हस्ताय महिष-वाहनाय सायुधाय नमः।
बलि-मन्त्र—ॐ यां यमाय प्रेताधिपतये इमं बलिं०......ॐ यां यमाय स्वाहा।

४ नैऋत कोण में निऋति का पूजा-मन्त्र—ॐ क्षां निऋतये रक्षोऽधिपतये असि-हस्ताय सवाहनाय सपरिवाराय नमः। बलि-मन्त्र—ॐ क्षां निऋतये रक्षोऽधिपतये इदं बलिं०...ॐ क्षां निऋतये स्वाहा।

५ पश्चिम में वरुण का पूजा-मन्त्र—ॐ वां वरुणाय जलाधितये पाश-हस्ताय मकर-वाहनाय सायुधाय नमः।
बलि-मन्त्र—ॐ वां वरुणाय जलाधिपतये इदं बलिं०......ॐ वां वरुणाय स्वाहा।

६ वायव्य कोण में वायु का पूजा-मन्त्र—ॐ यां वायवे प्राणाधिपतये हरिण-वाहनायांकुश-हस्ताय नमः ।
बलि-मन्त्र—ॐ यां वायवे प्राणाधिपतये इदं बलिं..... ॐ यां वायवे स्वाहा ।
७ उत्तर में कुबेर का पूजा-मन्त्र—ॐ कुबेराय यक्षाधिपतये गदा-हस्ताय नर-वाहनाय सपरिवाराय नमः ।
बलिं-मन्त्र—ॐ कुबेराय यक्षाधिपतये इदं बलिं०..... ॐ कुबेराय स्वाहा ।
८ ईशान कोण में ईशान का पूजा-मन्त्र—ॐ हां ईशानाय भूताधिपतये शूल-हस्ताय वृष-वाहनाय सपरि-
वाराय नमः । बलि-मन्त्र—ॐ हां ईशानाय भूताधिपतये इदं बलिं०..... ॐ हां ईशानाय स्वाहा ।
९ इन्द्र (पूर्व)-ईशान के मध्य में ब्रह्मा का पूजा-मन्त्र—ॐ आं ब्रह्मणे प्रजाधिपतये हंस-वाहनाय पद्म-हस्ताय
सपरिवाराय नमः ।
बलि-मन्त्र—ॐ आं ब्रह्मणे प्रजाधिपतये हंस-वाहनाय इदं बलिं०..... ॐ आं ब्रह्मणे स्वाहा ।
१० नैऋत-वरुण (पश्चिम) के मध्य में अनन्त का पूजा-मन्त्र—ॐ अं अनन्ताय नागाधिपतये सायुधाय चक्र-
हस्ताय रथ-वाहनाय सपरिवाराय नमः ।
बलि-मन्त्र—ॐ अं अनन्ताय नागाधिपतये सायुधाय इदं बलिं०..... ॐ अं अनन्ताय स्वाहा ।

इसके बाद सर्व-भूत-बलि प्रदान कर अधिष्ठातृ देवता, चतुःषष्ठि योगिनी और डाकिनियों को बलि प्रदान करे ।
तदनन्तर साधक अपने निकट पूजा-द्रव्य और कुछ दूरी पर उत्तर साधक को स्थापित कर 'मूलं ह्रीं फट्
शवासनाय नमः' से शव की पूजा करे । फिर 'मूलं ह्रीं फट्' इस मन्त्र का उच्चारण कर अश्वारोहण-क्रम से शव के
पृष्ठ-भाग पर बैठकर अपने चरण-तल में कुछ कुश निक्षेप करे । फिर शव के केशों को फैलाकर जूटिका-बन्धन कर गुरु,
गणपति और देवी को प्रणाम करे । तब प्राणायाम और षडङ्ग-न्यास कर पूर्वोक्त वीरार्दन-मन्त्र से दसों दिशाओं में लोष्ट्-
निक्षेप कर सङ्कल्प करे । यथा—

अद्येत्यादि अमुक-गोत्रः श्रीअमुक-देव-शर्मा अमुक-देवतायाः सन्दर्शन-कामः अमुक-मन्त्रस्यामुक-संख्या-जपमहं करिष्ये ।

इस प्रकार सङ्कल्प कर 'ॐ ह्रीं आधार-शक्ति-कमलासनाय नमः' से आसन-पूजन कर बाईं ओर शव
के निकट अर्घ्य-पात्रादि स्थापित कर शव-जूटिका पर पीठ-पूजा कर षोडश, दश या पञ्चोपचारों से इष्टदेवता की पूजा
कर शव के मुख में सुगन्धित जल डालकर देवी का तर्पण करे । इसके बाद शव के ऊपर से उठकर शव के सम्मुख खड़े
होकर निम्न मन्त्र पढ़े—

ॐ वशो मे भव देवेश ! मम वीर-सिद्धिं देहि देहि महाभाग ! कृताश्रय-परायण !

अर्थात् हे देवेश ! तुम मेरे वशीभूत होकर मुझे वीर-सिद्धि प्रदान करो । हे महाभाग ! तुम अपनी शरण लेने-वाले व्यक्ति के प्रति निष्ठा रखते हो ।

अब पट्ट सूत्र से शव के दोनों पैरों को बाँध कर मूलमन्त्र से शव के देह को दृढ़तापूर्वक बाँधे । फिर निम्न मन्त्र से शव के पाद-मूल में त्रिकोण यन्त्र बनावे—

ॐ मद्वशो भव देवेश ! वीर-सिद्धि-कृतास्पद !
भीम ! भीरु-भयाभाव ! भव-मोचन ! भावुक !
त्राहि मां देव देवेश ! शूराणामधिपाधिप !

इसके बाद शव के ऊपर बैठकर उसके दोनों हाथों को दोनों पार्श्वों में फैलाकर उस पर कुशों को बिछावे । फिर साधक
उन बिछे हुए कुशों पर अपने दोनों पैर स्थापित कर पुनः तीन प्राणायाम कर शिरः-स्थित पद्म में गुरुदेव का और अपने

हृदय में देवी का ध्यान करते हुए दोनों होठों को सम्पुट कर विहित माला द्वारा मौन होकर निर्भय हृदय से श्मशान-साधन-क्रमानुसार जप करे।

जप करते करते यदि अर्द्ध-रात्रि तक कुछ दिखाई न दे, तो पूर्ववत् सरसों और तिल विकिरण कर अधिष्ठित स्थान से सात कदम चलकर जप करे। जप-काल में भय उत्पन्न होने पर आकाश में किसी के आकर कुञ्जरादि बलि मांगने पर निम्न मन्त्र का पाठ करे--

यत् प्रार्थय बलित्वेन दातव्यं कुञ्जरादिकम्।
दिनान्तरे च दास्यामि स्वनाम कथयस्व मे॥

अर्थात् अगले दिन तुमको गजादि बलि प्रदान करूँगा। अपना नाम मुझे बताओ। इस प्रकार कह कर पुनः निर्भय होकर जप करने लगे। यदि वह मधुर शब्दों में अपना नाम बतावे, तो साधक फिर कहे कि 'त्वं अमुक इति सत्यं कुरु' अर्थात् तुम अमुक हो, प्रतिज्ञा करो कि मुझे अभीष्ट वर दोगे।

इस प्रकार उसे प्रतिज्ञा-बद्ध कर साधक वर की प्रार्थना करे। यदि वह प्रतिज्ञा-बद्ध न हो और वर न दे, तो पुनः एकाग्र मन से जप आरम्भ करे, किन्तु प्रतिज्ञा कर वर दे दे, तो और जप की आवश्यकता नहीं है। अभीष्ट वर पाने के बाद यह समझे कि मेरा कार्य सिद्ध हो गया और शव की जूटिका खोलकर शव का प्रक्षालन कर उसे दूसरे स्थान में स्थापित कर उसके पैरों के बन्धन को खोल दे और पूजा-सामग्री को जल में फेंककर शव को जल में या भूगर्भ में डाल कर स्नान करे।

इसके बाद साधक अपने घर जाय और अगले दिन रात्रि में पूर्व-प्रतिज्ञानुसार गजादि बलि अर्पित करे। बलि-मन्त्र—येषां यजमानोऽहं ते गृह्णन्त्विमं बलिं।

देवता ने गज, वाजि, नर या शूकर जो बलि माँगी हो, उसी के अनुसार पिष्ट-मय—अभीष्ट बलि अर्पित कर साधक उपवास-पूर्वक रहे। दूसरे दिन साधक प्रातः-कृत्यादि नित्य-कर्म समाप्त कर पञ्चगव्य पिए और पचीस ब्राह्मणों को भोजन करावे। इसमें यदि समर्थ न हो, तो अपने सामर्थ्य के अनुसार ब्राह्मण-भोजन करावे। कम-से-कम दस ब्राह्मणों को अवश्य भोजन करावे। तदनन्तर स्नान-पूर्वक भोजन कर उत्तम स्थान में निवास करे।

ब्राह्मण-भोजन न कराने से साधक दरिद्र होता है और देवी विशेष रूप से रुष्ट होती हैं।

उक्त प्रकार मन्त्र-सिद्धि होने पर तीन, छः या नौ रात्रि तक इस तथ्य को गुप्त रखे। किसी भी प्रकार अपनी सिद्धि की बात को प्रकट न करे।

मन्त्र-सिद्धि के तुरन्त बाद स्त्री-शय्या पर जाने से साधक व्याधि-ग्रस्त होता है, गीत सुनने से बहरा और नृत्य देखने से अन्धा होता है। दिन के समय किसी के साथ कथा-वार्ता करने से साधक गूंगा होता है। अतएव पन्द्रह दिन तक साधक को इस प्रकार के सभी कामों से दूर रहना चाहिये, क्योंकि साधक के देह में पन्द्रह दिनों तक देवी का निवास रहता है। इस एक पक्ष की अवधि में साधक गन्ध या पुष्प ग्रहण न करे और यदि बाहर जाय, तो अन्य वस्त्र पहनकर जाय। गाय और ब्राह्मण की कदापिन निन्दा न करें; दुर्जन, पतित और नपुंसक व्यक्ति को छुए तक नहीं; प्रतिदिन पवित्र होकर देवता, गाय, विप्रादि को स्पर्श करे और प्रातःकाल नित्यकर्म सम्पन्न करने के बाद बिल्व-पत्रोदक का सेवन करे।

मन्त्र-सिद्धि के सोलहवें दिन गङ्गा-स्नान कर 'मूलं स्वाहा अमुक-देवतां तर्पयामि नमः' इस मन्त्र से देवी का जल द्वारा तीन सौ से अधिक बार तर्पण करे। स्नान और तर्पण के बिना देवता का तर्पण नहीं होता। इस प्रकार करने से साधक सिद्धि पाकर विविध भोगों को प्राप्त कर अन्त में मोक्ष पाता है। अन्त में दक्षिणा देकर अच्छिद्रावधारण करना चाहिए।

७० चण्डोग्र-शूलपाणि

कुब्जिका तन्त्र में लिखा है कि प्रणव, मायावीज, कूर्चवीज और 'शिवाय-फट्' अर्थात 'ॐ ह्रीं हूँ शिवाय फट्' यह चण्डोग्र-शूलपाणि का महामन्त्र है। यह सर्वार्थ-सिद्धि का देनेवाला है।

इस मन्त्र का ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री और देवता है चण्डोग्र-शूलपाणि। अङ्गन्यास निम्न प्रकार करे—

	कराङ्गन्यास	षडङ्गन्यास
ॐ ह्रां	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
ॐ ह्रीं	तर्जनीभ्यां स्वाहा	शिरसे स्वाहा
ॐ ह्रूं	मध्यमाभ्यां वषट्	शिखायै वषट्
ॐ ह्रैं	अनामिकाभ्यां हूँ	कवचाय हूँ
ॐ ह्रौं	कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्	नेत्रत्रयाय वौषट्
ॐ ह्रः	करतल-करपृष्ठाभ्यां फट्	अस्त्राय फट्

ध्यान—

शुद्ध-स्फटिक-सङ्काशं चतुर्बाहुं किरीटिनं।
शूलं कपालं दक्षे तु वामे तु पाशमंकुशम्॥
सुरा-पान-रसाविष्टं साधकाभीष्ट-दायकम्।
ध्याये चण्डोग्र-शूलपाणिं सर्वार्थ-सिद्धि-प्रदम्॥

अर्थात् चण्डोग्र शूलपाणि विशुद्ध स्फटिक के समान उज्ज्वल वर्णवाले हैं, चार भुजाएँ हैं और मुकुट पहने हैं। दाहने हाथों में शूल और नर-कपाल है तथा बाएँ हाथों में पाश और अंकुश लिए हैं। ये सदा सुरा-पान के आनन्द में मग्न रहते हैं और साधकों को इच्छित फल प्रदान करते हैं। ऐसे सर्वार्थ-सिद्धि-दायक चण्डोग्र-शूलपाणि का मैं ध्यान करता हूं।

इस प्रकार ध्यान कर यथाविधि पूजा करे। पाँच हजार जप से पुरश्चरण होता है। जप-संख्या के दशांश-संख्यक रक्त-कमलों से होम करे। घृत, मधु और शर्करा इन तीन मधुर वस्तुओं से युक्त रक्त कमलों से हवन करने से साधक को कवित्व-शक्ति प्राप्त होती है और उसके धन-सम्पत्ति की वृद्धि होती है। पायस और कुसुम्भ-तैल से होम करने से शीघ्र ही शत्रु-नाश होता है। करवीर कुसुमों के होम से शत्रु का वाक्-स्तम्भन और श्वेत कमलों के होम से सारा संसार मोहित होता है।

इस देवता के पूजन-यन्त्र की रचना-विधि यह है कि पहले षट्कोण बनावे। उसके बाहर अष्ट-दल पद्म अङ्कित कर षट्कोण के मध्य में मूलमन्त्र लिखे। इसी यन्त्र में पूजन करे और हविष्याशी रहता हुआ दिवा काल में जप करे।

इस मन्त्र के पुरश्चरण से सभी विघ्न दूर होते हैं और इस मन्त्र के जप मात्र से सभी विषयों की सिद्धि प्राप्त होती है।

७१ मातङ्गी

वामकेश्वर तन्त्र में लिखा है कि सभी सिद्धियों की देनेवाली मातङ्गी देवी की उपासना से शीघ्र ही वाक्-सिद्धि प्राप्त होती है।

प्रणव, मायावीज, कामवीज, कूर्चवीज, मातंग्यै, अस्त्र और स्वाहा अथात् 'ॐ ह्रीं क्लीं हूँ मातंग्यै फट् स्वाहा'—यही मातङ्गी देवी का महा-मन्त्र है।

इस मन्त्र के ऋषि दक्षिणामूर्ति, छन्द विराट् और देवता मातङ्गी देवी हैं। अङ्ग-न्यास निम्न प्रकार करे—

कराङ्गन्यास		षडङ्गन्यास
ॐ ह्रां	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
ॐ ह्रीं	तर्जनीभ्यां स्वाहा	शिरसे स्वाहा
ॐ ह्रूँ	मध्यमाभ्यां वषट्	शिखायं वषट्
ॐ ह्रैं	अनामिकाभ्यां हूँ	कवचाय हूँ
ॐ ह्रौं	कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्	नेत्र-त्रयाय वौषट्
ॐ ह्रः	करतल-करपृष्ठाभ्यां फट्	अस्त्राय फट्

पूजा-यन्त्र—पहले षट्कोण बनावे । उसके बाहर अष्टदल-पद्म अङ्कित करे । षट्कोण के मध्य में मूलमन्त्र लिखे ।

इसी यन्त्र में जवा पुष्पों से देवी की पूजा करे । अष्टदल पद्म के दलों में मनोभवा, रति, प्रीति, क्रिया, श्रद्धा, अनङ्गकुसुमा, अनङ्गमदना और मदनालसा—इन आठ शक्तियों का पूजन कर एकाग्र-चित्त होकर देवी का ध्यान करे। यथा—

श्यामाङ्गीं शशि-शेखरां त्रिनयनां रत्न-सिंहासन-स्थिताम् ।
ध्यायेऽहं वेदैर्बाहु-दण्डैरसि-खेटक-पाशांकुश-धराम् ॥

अर्थात् देवी मातङ्गी श्याम-वर्णा हैं, अर्द्ध-चन्द्र मस्तक पर है, तीन नेत्र हैं, चार भुजाओं में खड्ग-खेटक पाश और अंकुश लिए हैं तथा रत्न-जटित सिंहासन पर विराजमान हैं। उनका मैं ध्यान करता हूँ ।

इस प्रकार ध्यान कर मनोरम गन्ध-पुष्पादि उपचारों से देवी की पूजा कर नैवेद्य और शर्करा-युक्त पायस अर्पित करे ।

छः हजार जप से उक्त मन्त्र का पुरश्चरण होता है । जप पूर्ण होने पर जप-संख्या का दशांश घृत-शर्करा-मधु युक्त पलाश-समिधा से होम करे । होम के समय उक्त आठ शक्तियों के नाम से भी आहुतियाँ प्रदान करे। इस प्रकार पुरश्चरण कर चुकने पर प्रयोग करे। प्रयोग की विधि निम्न प्रकार है—

साधक चतुष्पथ अथवा श्मशान में अथवा स्त्रियों के समूह में मत्स्य, मांस और पायस देकर गुग्गुल से धूप प्रदान करे । यह प्रयोग रात्रि में ही करे । इस प्रकार उपासना करने से देवी साधक की मनोकाभना पूर्ण करती है और वह कवित्व-शक्ति प्रात करता है । उक्त प्रयोग से साधक में अग्नि, जल और वाक्-स्तम्भन की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। जिस प्रकार गरुड़ सर्पों का नाश करता है, उसी प्रकार इस देवी की उपासना के फल-स्वरूप साधक भी अपने शत्रुओं का नाश करने में समर्थ होता है । इस उपासना से साधक शास्त्र-ज्ञान में, वाद-विवाद में और कवित्व में दूसरे वृहस्पति के समान हो जाता है । उक्त प्रकार देवी की उपासना करने से वह साधक को सभी सिद्धियाँ प्रदान करती है और कुबेर के समान धनी व्यक्ति उसके घर आकर उसे धन प्रदान करते हैं। मतस्य और मांस के बिना इस वेवता की पूजा न करे ।

७२ उच्छिष्ट-चाण्डालिनी

१ फेत्कारिणी तन्त्र में लिखा है कि 'उच्छिष्ठ'-शब्द के बाद 'चाण्डालिनी सुमुखी' कहकर 'देवी महा-पिशाचिनी' कहे । फिर मायावीज, चन्द्र-विन्दु और विसर्ग-युक्त तीन ठकारों का उच्चारण करे। अर्थात् 'उच्छिष्ट-चाण्डालिनी सुमुखी देवी महा-पिशाचिनी ह्रीं ठः ठः ठः' । यह मन्त्र सर्व-सिद्धि-दायक है ।

२ उन्नीस अक्षरों का सर्वाभीष्ट-प्रद मन्त्र यह है—उच्छिष्ट-चाण्डालि मातङ्गि सर्व-वशङ्करि नमः स्वाहा।

३ मन्त्र-देव-प्रकाशिका नामक दुर्लभ ग्रन्थ में लिखा है कि–'ऐं ह्रीं क्लीं सौः ऐं ज्येष्ठ-मातङ्गि नमामि उच्छिष्ट-चाण्डालिनि त्रैलोक्य-वशङ्करि स्वाहा ।' इस मन्त्र के आदि में 'हूं' वीज जोड़ने से अन्य चौथा मन्त्र प्रस्तुत होता है, जिससे आराधना करने से सब प्रकार के पाप नष्ट होते हैं ।

। । सु शास्त्रेषु विवेक-दीपेष्वाद्येषु
वाक्येषु का त्वदन्या ।
ममत्व-गर्तेऽतिमहान्धकारे विभ्रामयत्यतदतीव विश्वम्'
(अ० ११-३०) ।

इस मन्त्र की व्याख्या सर्वस्वकार ने जैसी की है, उसका तत्व यह है कि 'हे देवि, ज्ञान-उपाय के साधन आन्विक्षिकी आदि विद्याओं में जिससे लोक के योग-क्षेम का विधान होता है, मनु आदि शास्त्रों द्वारा प्रवृत्ति एवं निवृत्ति तथा विवेक के दीप स्वरूप वेदान्त आदि शास्त्रों का जो अनादर करते हैं, उन्हें अहम्-मम-अभिमान रूप संसार में, जो अन्धकार-रूप है, तू घुमाती है ।

'**अन्धं तमः प्रविशन्ति ये अविद्यामुपासते**'—इस मन्त्र में भी उक्त तत्व ही कहा गया है अर्थात् अविद्या की उपासना करनेवाले अन्धकार में चले जाते हैं । यही पतन है । '**विद्ययामृतमश्नुते**'—विद्या से ही अमृत की प्राप्ति होती है । इसलिये तू विद्वानों को पतन की ओर नहीं ले जाती है । अतः हमें भी वहीं मार्ग बता, क्योंकि—

लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टि-स्वधे ध्रुवे ।
महारात्रि महाविद्ये नारायणि नमोऽस्तु ते ।
(सं०११-२१)

अर्थात् ऐश्वर्य, लज्जा (शुभ गुण), महाज्ञान (अविद्या-निवर्तक) श्रद्धा; पुष्टि-रूप स्वधा, नित्य, महारात्रि-रूप अन्धकार, अज्ञान-स्वरूपावरण करनेवाला भी हे नारायणि, तेरा स्वरूप है । अतः तुझे नमस्कार है ।

वेद में इसे ही कल्याण-रूपवाली शिवा तनु कहा गया है—

'या ते रुद्र शिवा-तनूरघोरा पाप-काशिनी ।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि ।
(यजु० १६-२)

अर्थात् हे रुद्र, आपकी कल्याणकारी शान्ति तथा ऐश्वर्यादि को प्रदान करनेवाली जो शिवा (महाशक्ति) तनू है, उसके द्वारा हमें आप निरीक्षण करें ! हम सब तेरे पुत्र हैं, हमारा कल्याण (मय) करें ।

'**अमृतस्य पुत्राः**'–इस श्रुति से सारा विश्व उसकी ही सन्तति है, यह सिद्ध होता है । '**यद् वै शिवं तन्मयः**' (तै० २, २, ५, ५) यहाँ पर कल्याण के वाचक 'मय' शब्द का व्यवहार किया गया है । उक्त बातों की सिद्धि के लिये वैदिक कर्मकाण्ड एवं तांत्रिक कर्मकाण्डों का निर्माण महर्षियों ने किया है, जिनका आचरण करके सभी प्रकार के ऐश्वर्यों की प्राप्ति होती है । महर्षि कणाद ने धर्म की व्याख्या की है कि '**यतोऽभ्युदय-निःश्रेयस-सिद्धिः स धर्मः**' अर्थात् जिससे अभ्युदय, ऐश्वर्य और मोक्ष की प्राप्ति हो, वही धर्म है । यह लक्षण शाक्त-धर्म में पूर्णतया घटित होता है ।

अब तीसरे मन्त्र से श्री परा शक्ति के अस्त्र-शस्त्रों को नमस्कार करते हुये उसके पर उत्कृष्ट सर्व-व्यापक तथा योगियों के हृदय में वास करनेवाले स्वरूप को ऋषि बताते हैं—

प्रवतो नयान्नम एवास्तु तुभ्यं नमस्ते हेतये तपुषे
च कृण्मः । विद्यते धाम परमं गुहा यत्समुद्रे
अन्तर्निहितासि नाभिः ॥ ३ ॥

अर्थात् उच्च पदवी पर आरूढ़ योगियों को तू गिराती नहीं है, प्रत्युत उन्हें अपनी सायुज्य पदवी प्रदान करती है । हम तुझे नमस्कार करते हैं । तेरे अस्त्र-शस्त्र को भी हमारा नमस्कार है, जिन्हें तूने असुरों के विनाशार्थ ग्रहण किया है । तेरा परम धाम गुप्त हृदय-प्रदेश है, उसमें आधार-रूप से तू छिपी हुई है, उसे हम जानते हैं ।

अहं-मम-रूप अविद्या-जन्य संसार में ही लगे रहनेवाले जीव बार-बार जन्म-मरण-रूप संसार में आते रहते हैं, क्योंकि उनके सुख का आधार क्षणिक, विनाशी, आपात रमणीय यह संसार ही है । उन्हें शाश्वत शान्ति नहीं मिलती । अतः मुमुक्षु इससे विरक्त होकर विद्या का अनुसरण

करता है। उसी को ‘यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्-धाम परमं मम’ (गीता) वाली उक्ति से कहा गया है। ‘सोऽध्वनः पारमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते’ (कठ०) अर्थात् ब्रह्म को प्राप्त होने पर फिर संसार में मुमुक्षु नहीं आता। इसी तत्व को ‘प्रवतो न पात्’ इस पद से कहा गया है। यही शक्ति का परम धाम है।

सप्तशती में कहा गया है—‘मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्त-समस्त-दोषैर्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवी’ (अ० ४८) अर्थात् समस्त अविद्या-दोषों से रहित होकर मोक्षार्थी मुनिगण विद्या-रूप से तुम्हारा ही अभ्यास करते हैं। वह विद्या तुम हो। जब जब भक्त-समुदाय असुरों से पीड़ित होता है, तब तब असुरों के विनाशार्थ श्री आदिशक्ति का आविर्भाव होता है, जिसे किसी-न-किसी प्रकार से सभी आस्तिक-समुदाय मानता है। ‘इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति। तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरि-संक्षयम्’—इस मन्त्र से यही बात कही गयी है। उस समय अनेक तेजः-स्वरूपा अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर श्री अम्बा प्रकट होती हैं। इसे ही सूक्त में ‘हेतये च तपुषे’ पद से कहा गया है। सप्तशती में भी श्री भगवती के अस्त्रों से रक्षा की प्रार्थना की गयी है—‘खड्ग-शूल-गदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके। कर-पल्लव-सङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः’ (४-२६) अर्थात् हे अम्बिके, खड्ग, शूल, गदा आदि जितने तुम्हारे अस्त्र-शस्त्र हैं, उनसे तू हमारी सब ओर से रक्षा कर।

हे देवि, समुद्र परमात्मा में अभेद-सम्बन्ध सामरस्य-भावापन्न होकर तू छिपी हुई है, उसे हम उपनिषद् द्वारा जानते हैं। ‘मम योनिरप्सु अन्तः समुद्रे’ देवी सू० ७—इस मन्त्रांश में भी ‘समुद्र’-पद आधारार्थों में व्यवहृत हुआ है। सायणाचार्य ने इसका अर्थ परमात्मा ही किया है—‘समुद्रवन्त्यस्माद्-भूतानि इति समुद्रः परमात्मा’ अर्थात् सब प्राणी-समूह जिससे प्रकट होते हैं। इसलिए परमात्मा को समुद्र कहते हैं। बहुत लोग इस मन्त्रांश से ब्रह्म को कारण तथा शक्ति-तत्व को कार्य समझते हैं, परन्तु यह भ्रम है। गीता में ब्रह्म का योनि-कारण शक्ति को भी कहा गया है—‘मम योनिर्महद्‌ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्’।

वास्तव में निमित्त की अपेक्षा से ब्रह्म, शक्ति दोनों के परम-कारणत्व का व्यवहार होता है। ‘यो वेद-निहितं गुहायां परमे व्योमन् सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति (तै० उ०) इस उपनिषद्-वचन में भी मन्त्रार्थ को विशद किया गया है।

उक्त तीनों मन्त्रों द्वारा शक्ति-तत्त्व का भौतिक दैविक तथा आध्यात्मिक रहस्य बताया गया है। वैदिक, तान्त्रिक एवं पौराणिक मतों में जो शक्ति का स्वरूप माना जाता है, उसका अभेद दिखलाया गया है। जो लोग पौराणिक एवं तान्त्रिक सिद्धान्त को वेद-बाह्य अनार्यों की वस्तु बताते हैं तथा उसमें वर्णित काली आदि शक्ति-रूपों की पूजा को अनार्य-पूजा कहते हैं, उन्हें वैदिक सिद्धान्त को विचारपूर्वक देखना चाहिये तथा समझ-बूझकर सम्मति देनी चाहिये।

वैदिक साहित्य में अनेक बार ‘देवी’ या ‘शक्ति’ शब्द का प्रयोग हुआ है। ‘प्राणो वा अपानो व्यानस्तिस्रो देव्यः’ (ऐ०-२-४) अर्थात् यहाँ पर प्राण, अपान और व्यान इन तीनों को देवी बताया है। अपान, व्यान भी प्राण के ही रूप हैं। वास्तव में प्राण ही शक्ति है। इसी को लोक में ‘दम’ कहते हैं। इसीलिये ऐसी कहावत है कि दम से ही आदम है अन्यथा मुर्दा है। इसी प्राण, अपान और व्यान को पौराणिक सिद्धान्त में महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती कहते हैं। महाविद्या-क्रम में यही काली, तारा, षोडशी कहलाता है।

'स एषैकः प्रजापतिरतद्-देव्यश्च पञ्च तस्माद्-देविकाः पंच भवन्ति पञ्च हि दिशाः' (श० ६-५-१-१६७) अर्थात् प्रजापति (परमात्मा) और उसकी देवियाँ ाँच हैं, क्योंकि दिशायें पाँच ही हैं। पञ्चाम्नाय में ही देवी-देवताओं का समस्त विभाग है। दीक्षा-काल में दिशा-क्रम से ही घट-स्थापन करके पाँच आम्नायों का उपदेश होता है। षष्ठाम्नाय अधराम्नाय कहलाता है या अनुत्तराम्नाय। उसका उपदेश अमुख्य होने से पाँच में ही गतार्थ होने से पाँच ही कहा गया।

ता वा एता देव्यः दिशो ह्येता (देव्यः दश दिशः)
(श० ६-५-१-३१)

अर्थात् ये दशों दिशायें ही दश देवियाँ हैं। महाभागवत में ऐसी कथा आयी है कि जब सती अपने पिता दक्ष के घर जाने लगीं, तब उन्हें श्री शङ्कर ने रोका। तब अपने भयानक रूप से प्रकट होकर उन्होंने अपना महत्व दिखाया। श्री महादेव उसे न देख सकने के कारण उठकर भागे। तब श्री भगवती ने दशों दिशाओं में अपने दश महाविद्या-रूप धारण कर श्री शङ्कर को रोका था। इस कथा का मूल उक्त श्रुति ही है। दशों विद्याओं की लय-भावना की भी कथा वहीं पर कही हुई है। सभी रूपों का लय श्री काली रूप में किया गया है। यही रूप सब शक्ति-रूपों में मुख्य है। इसका एक स्वतन्त्र ही विज्ञान है। काली-रूप की प्रधानता क्यों है, यह लेख के बाहर की बात है। अतः पुनः किसी प्रसङ्ग में इसकी चर्चा हो सकेगी।

रुद्र-रूप शिव की ही ये शक्तियाँ हैं। रुद्र अग्नि को कहते हैं—'अग्निर्वै स देवः तस्यैतानि नामानि शर्व इति यथा प्राच्या आचक्षते भव इति यथा वाहीकाः पशूनां पती रुद्रोऽग्निरिति' (श० १-७-३-८) अर्थात् उस देवी को शर्व, पूर्व देश वाले उसी को भव, वाहीक-देशोद्भव पशुपति रुद्र अग्नि आदि नामों से कहते हैं।—रुद्रों हि वै एष देवानामशान्तः सञ्चितो भवति' (कौ० १६-४) देवताओं में रुद्र अशान्त अग्नि-तत्व है। इसीलिए रुद्र-रूप में ही संहार युद्ध आदि कार्यों के लिये मुख्यतः इसकी उपासना की जाती है। रौद्र-रूपों में काली-रूप प्रधान होने से मुण्डक उपनिषद् में 'काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सु-धूम्रवर्णा। विस्फुल्लिगिनी विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्त-जिह्वा' प्रथम निर्दिष्ट है। 'पञ्च-शून्य-स्थिता तारा सर्वान्ते कालिका स्मृता' इस तन्त्र-वाक्य द्वारा भी काली की प्रधानता सिद्ध होती है। 'चतुर्युगानां राज्ञी वै कालिका परिकीर्तिता। विद्या-राज्ञी सिद्ध-विद्या कलौ शीघ्र फल-प्रदा' (शक्तिसंगम तन्त्र)। 'कलौ काली विशिष्यते' आदि वचनों से काली-रूप की प्रधानता ज्ञात होती है।

रौद्र-रूप की प्रचण्डता को लक्ष्य करके शिल्प-विज्ञान के अनुसार शक्तियों की मूर्ति-कल्पना की गयी है। वैदिक साहित्य में शक्ति-तत्व की प्रचण्डता का निरूपण अनेक स्थानों में कहा गया है। इस सूक्त के चौथे मन्त्र में यही तत्त्व तथा संगठन-शक्ति का रहस्य बताया गया है, जो सप्तशती मध्यम चरित की कथा का मूल है। इसी रहस्य को लेकर मार्कण्डेय पुराण में विस्तार से कहा गया है—यां त्वा देवा असृजन्त विश्व इषुं कृण्वाना असनाय धृष्णुम्। सा नोमृड विदथे गृणाना तस्यै ते नमो अस्तु देवि ॥ ४ ॥ अर्थात् जिस महाशक्ति को 'धृष्णु'—सब देवों को कष्ट देनेवाले महिषासुर को मारने के लिये युद्ध में स्तुति द्वारा सब देवताओं ने बाण अर्थात् उसके नाश के साधन-रूप से बनाया था, वह देवी हमारी रक्षा करे। हे देवि, तुझे नमस्कार है, क्योंकि युद्ध में तेरी ही स्तुति होती है।

सप्तशती के दूसरे अध्याय में यह कथा है कि महिषासुर दैत्य ने एक समय अपने आतङ्क से देवताओं को

पीड़ित किया था। देवताओं ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश के साथ मिलकर एक महान् तेज प्रकट किया। वह तेज दिव्य स्त्री-रूप में प्रकट हुआ। अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र को उसे सब देवताओं ने प्रदान किया। सभी के अङ्ग-रूप से वह महाशक्ति बनी थी, जिसे कहा गया है—'निःशेष-देव-गण-शक्ति-समूह-मूर्त्या' अर्थात् समस्त देवताओं के शक्ति-समूह से ही वह मूर्ति बनी थी। इसे ही सूक्त में **'यां त्वा देवा असृजन्त विदथे गृणाना'** इन रहस्यमय पदों से कहा गया है। उस सामूहिक शक्ति ने महिषासुर को युद्ध में मारा, जिसे अकेले ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता भी नहीं मार सके थे। सप्तशती के तीसरे अध्याय में यह प्रसंग स्पष्ट रूप से कहा गया है। चौथे अध्याय में उसी महत्वपूर्ण महती देवता की स्तुति भी देवताओं ने की है, जो अपूर्व है। **'संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्'** ऋ०वाले वैदिक एकता के रहस्य को प्रकट करने के लिये ही यह मध्यम चरित्र की कथा लिखी गयी है।

शक्ति-तत्त्व के समस्त रहस्यों के प्रकट करनेवाले इस (सप्तशती) ग्रन्थ-रत्न में यदि संगठन-शक्ति का निरूपण न होता, तो एक बड़ी भारी कमी रह जाती, क्योंकि **'सङ्घे शक्तिः'** वाली युक्ति ही सर्वश्रेष्ठ शक्तिवाद की उक्ति है। 'यूनियन इज़ स्ट्रेंग्थ—डिवाइडेड वी फ़ाल' परम तत्व है। इसी का निदर्शन यह मध्यम चरित है। इसलिये सप्तशती के तीनों चरितों में यह चरित सबसे श्रेष्ठ है। प्रथम उत्त चरित का पाठ अकेले करना मना है, परन्तु मध्यम चरित के विषय में यह बात नहीं है। इसका पाठ अकेले भी कर सकते हैं—

'एकेन वा मध्यमेन नैकेनेतरयोरिह' (वै० रहस्य० ३२)

अर्थात् एक मध्यम चरित के पाठ से ही पूर्णता हो जाती है, परन्तु प्रथम, उत्तर चरित का पाठ अकेले न करे इत्यादि।

इसी एकता के विषय में वेद कहता है **'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः'** (यजुः ४०·४) अर्थात् एकता देखनेवाले ज्ञानी-समाज को शोक कहाँ और मोह कहाँ। युद्ध के समय ही एकता का परम उपयोग होता है। इसीलिये **'विदथे गृणाना'** कहा गया, क्योंकि युद्ध ही महान् आपत्ति है। स्वार्थ-परायणता के ही समय युद्ध होता है। अप-स्वार्थ में ही फूट का बीज होता है। किसी देश, संस्कृति, जाति के पतन में व्यक्ति-गत अप-स्वार्थ की प्रधानता रखकर सामूहिक स्वार्थ की उपेक्षा करना होता है, जिसे इतिहासज्ञ पूर्ण रीति से जानते हैं। ऐसे समय महालक्ष्मी ही सुमति प्रदान कर अपने राष्ट्र-भक्तों की रक्षा करती है। अतः उसकी स्तुति-पूजा को खूब स्मरण रखना चाहिये।

भारतीय युद्ध में प्रवृत्त अर्जुन को भगवान् श्रीकृष्ण ने इसीलिये गीतोपदेश के प्रथम श्री दुर्गा भगवती की स्तुति करने को कहा था, जिस भीष्म-पर्व में बड़े ही सुन्दर रूप में अङ्कित किया गया है। जो इस महाशक्ति की उपासना करता है, उसे फिर और किसी की उपासना करने की आवश्यकता नहीं रहती। इसीलिये सूक्त के तीसरे मन्त्र में कहा गया है—**'नम एवास्तु तुभ्यम्'** अर्थात् तुम एक ही को हमारा नमस्कार है। इस सूक्त में सात बार **'नमः'** शब्द का प्रयोग होने से संसार की संचालिका सप्त-मातृका-रूप को तथा निवृत्ति की सप्त-भूमिका को नमस्कार किया गया। **'तस्यै ते नमो अस्तु देवि'**—इस स्त्री-लिंग-वाचक 'तस्यै' 'देवि' पदों से यह सूक्त शक्तिवाद का ही पोषक है, यह निःसंदिग्ध रूप से सिद्ध हो जाता है। 'देवि'-पद सम्बोधन का होने से प्रत्येक सूक्त के मन्त्र से इसका सम्बन्ध है।

युद्ध के प्रसङ्ग में एक बात कहना रह गयी कि विजय प्राप्त होने पर अभिमान का होना स्वाभाविक है, जिसे

बताने के लिये केन उपनिषद् की यक्ष की आख्यायिका बतायी गयी है। असुरों पर विजय प्राप्त करने पर देवताओं के अभिमान को निवृत्त करने के लिये साक्षात् कृपामयी हेमवती उमा का आविर्भाव उपनिषत्कार ने क्या ही सुन्दर रूप से लिखा है, जिसका दूसरा उदाहरण वैदिक साहित्य में मिलना कठिन है। ब्रह्म-विद्या ही अभिमान-अहंकार आदि रहित शाश्वत शान्ति को देनेवाली है। उसके बिना लौकिक विजय फिर पतन का हेतु हो सकती है। इसीलिये उपनिषत् का उपसंहार '**ज्येये स्वर्गे प्रतितिष्ठति**' रूप में किया गया है। आजकल केवल ऐहिक भावना से प्रेरित होकर ही शक्ति की उपासना एवं साधक लोग परिश्रम करते रहते हैं, जिससे यह परम रहस्य लुप्त होता जा रहा है। अतः श्री जगन्माता से बार-बार यही प्रार्थना है कि अपनी सभी सन्तानों के अन्दर अपने सभी रहस्यों को प्रकट कर धारण करे।

उपर्युक्त सूक्त की विवेचना यथामति की गयी। इन मन्त्रों में और भी बहुत से रहस्य होंगे, क्योंकि वेदों के विषय में यह कहा गया है कि '**तपसा मन्त्राणामनेकेऽर्थो भवन्ति**' अर्थात् तप से वेद-मन्त्रों के अनेक अर्थ हो जाते हैं। शक्ति-विषय के और भी कितने सूक्त हैं, जिनमें शाक्त-साधना के रहस्य भरे हुये हैं! विद्वानों का यह कर्तव्य है कि उसे प्रकट कर शाक्त-साधना को विशद करें तथा जनता को कल्याण-मार्ग की ओर ले चलने का सदुद्योग करें। यह तो एक नमूना मात्र है, समय हुआ तो अन्य सूक्तों के अर्थों पर भी यथामति प्रकाश डाला जायगा। ॐ शम्।

श्रीभवानी-स्तुति

भवानि स्तोतुं त्वां प्रभवति चतुर्भिर्न वदनैः, प्रजानामीशानस्त्रिपुर-मथनः पञ्चभिरपि।
न षड्भिः सेनानीर्दश-शत-मुखैरप्यहि-पतिस्तदान्येषां केषां कथय कथमस्मिन्नवसरः ॥ १

हे भवानी! औरों की बात ही क्या, अखिल सृष्टि के रचयिता प्रजापति ब्रह्मा जी अपने चारों मुखों से भी तुम्हारी स्तुति नहीं कर सकते; त्रिपुर-हर शङ्कर पाँच मुख रहते हुये भी इस विषय में मूक होकर रह जाते हैं; छः मुख-वाले कार्तिकेय भी मन मारकर बैठ जाते हैं! इन सबकी कौन कहे, हजार मुख-वाले शेष जी भी मन मसोसकर रह जाते हैं, परन्तु तुम्हारी स्तुति नहीं कर पाते। कोई करे भी तो कैसे? तुम्हारे गुणों की थाह पावे, तब न! फिर मेरे जैसे जीव की तो सामर्थ्य ही क्या, जो इस काम में हाथ डालने का दुःसाहस करे!

त्वदन्यः पाणिभ्यामभय-वरदो दैवत-गणस्त्वमेका नैवासि प्रकटित-वराभीत्यभिनया।
भयात् त्रातुं दातुं फलमपि च वाञ्छा-समधिकं, शरण्ये! लोकानां तव हि चरणावेव निपुणौ ॥

हे शरणार्थियों को शरण देनेवाली! तुम्हें छोड़कर जितने दूसरे देवता हैं, वे अपने हाथों से ही अभय और वरदान का काम लेते हैं। इसी से तो उन्होंने अपने हाथों में अभय और वरद-मुद्रा धारण कर रक्खी है। तुम्हीं एक ऐसी हो, जो इन दोनों ही मुद्राओं के धारण करने का स्वाँग नहीं रचतीं। रचने भी क्यों लगीं, तुम्हें इसकी आवश्यकता ही क्या है? तुम्हारे दोनों चरण ही आश्रितों को सब प्रकार के भयों से मुक्त करने तथा उन्हें इच्छित फल से अधिक देने में समर्थ हैं। तुम्हारे हाथ सदा शत्रु-संहार के काम में ही लगे रहते हैं। भक्तों के लिए तो तुम्हारे चरण ही पर्याप्त हैं।

शक्ति-तत्व या ब्रह्म-विद्या

प्रस्तावित विषय इतना दुरूह और कठिन है कि बड़े-बड़े विद्वानों के लिये भी इस पर पूर्ण विवेचन करना कठिन ही नहीं, अपितु सामर्थ्य के बाहर मालूम पड़ता है। ऐसी अवस्था में मेरे जैसे अल्पज्ञ का उद्यत होना उतना ही हास्यास्पद है, जितना कि एक बौने के लिए चांद पकड़ने की चेष्टा। तथापि जैसे आकाश में पक्षी अपने सामर्थ्यानुकूल उड़ा ही करता है, उसी प्रकार अपनी लेखनी को पवित्र करने के लिये श्री दयामयी की दया के भरोसे अपनी बुद्धि और वाग्विभवानुकूल श्री करुणामयी जगदम्बा के गुणानुवाद की ओर अग्रसर हो रहा हूँ। यदि अपने इस प्रयास में शतांश भी सफल हुआ, तो मैं अपने को कृतकृत्य समझूंगा।

इस समीक्षा में यत्र-तत्र 'तन्त्र' और 'आगम' शब्द व्यवहृत होंगे, इसलिये प्रस्तावित विषय पर विचार करने के पूर्व 'तन्त्रशास्त्र' अथवा—'आगम-शास्त्र' पर दो शब्द कह देना अनुचित न होगा।

'तन्त्र' का व्यापक अर्थ है—शास्त्र, सिद्धान्त, अनुष्ठान, विज्ञान, विज्ञान-विषयक ग्रन्थ इत्यादि। जगद्गुरु शङ्कराचार्य ने 'सांख्य' को भी तन्त्र कहा है। महाभारत में न्याय, धर्मशास्त्र, योग आदि के लिये भी 'तन्त्र' शब्द प्रयुक्त हुआ है। तन्त्र का दूसरा नाम आगम भी है। इसकी व्याख्या श्री वाचस्पति मिश्र ने इस प्रकार की है—

आगम वह शास्त्र है, जिसके द्वारा भोग और मोक्ष के उपाय बुद्धि में आते हैं। यह व्युत्पत्ति आगम और नगम (वेद) के भेद से कही जा रही है। कर्म, उपासना और ज्ञान के स्वरूप को निगम बताता है और उसके साधनभूत उपायों को आगम सिखाता है। विस्तारार्थं तन् धातु से औणादिकं ष्ट्रन् के योग से 'तन्त्र' शब्द बना है। इसका अर्थ वह शास्त्र है, जिसके द्वारा ज्ञान का विस्तार किया जाता है। अथवा जो साधकों का त्राण (रक्षा) करता है, उसको 'तन्त्र' कहते हैं। शैव सिद्धान्त के 'कामिक आगम' में तन्त्र की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी गई है—'तत्व मन्त्र से युक्त अनेक अर्थों का जो प्रकाश करता है, उसे तन्त्र कहते हैं।'

'तन्यते ज्ञानमनेन इति तन्त्रम्'—जिस शास्त्र के पठन-पाठन तथा अनुसरण से ज्ञान की वृद्धि होती है, उस शास्त्र का नाम तन्त्र है।

तनोति विपुलानर्थान् तत्व-मन्त्र-समन्वितान्।
त्राणं च कुरुते यस्मात् तन्त्रमित्यभिधार्यते॥

मन्त्रशास्त्र में मन्त्र का विस्तार से वर्णन रहता है और उससे तत्सम्बन्धी ज्ञान का बोध होता है। ब्रह्म तथा प्रकृति का तत्व क्या है, इसका विचार तन्त्रशास्त्र में किया गया है। किस प्रकार दुःखों के पंजे से मुक्ति प्राप्त हो सकती है; किस प्रकार ऐहिक सुख-सम्पद् मिल सकना है तथा किस उपाय से पारलौकिक परमानन्द एवं मुक्ति का लाभ हो सकता है; किस यत्न से मनुष्य देवता-स्वरूप बन सकता है—इन सब विषयों का सुन्दर प्रशस्त पथ तन्त्रशास्त्र में दिखलाया गया है।

अद्वैत वेदांत में जिस अद्वैत की उत्पत्ति प्रबल युक्तियों के सहारे सिद्ध की गई है, उसकी व्यावहारिक योजना आगम में बताई गई है। इस प्रकार आगमों की

मूल भित्ति निगम ही है। साधारणतया यह भ्रम लोगों में व्याप्त है कि तन्त्र केवल शक्ति या शक्ति के उपासकों के धर्मग्रन्थ का नाम है, पर ऐसा नहीं है। दूसरे आगम-सम्प्रदायों के भी तन्त्र हैं, जैसे शैव-तन्त्र, वैष्णव-तन्त्र आदि। ये तन्त्र आगम-शास्त्र हैं।

सनत्कुमार संहिता में लिखा है—

श्रौताश्रौत-विभेदेन द्विविधस्तु शिवागमः।
श्रुति-सार-मयः श्रौतः सः पुनर्द्विविधो मतः॥
स्वतन्त्र इतरश्चेति स्वतन्त्रो दशधा पुरा।
तथाष्टदशधा पश्चात् सिद्धान्त इति गीयते॥
इतरः श्रुति-सारः तु शत-कोटि प्रविस्तरः।

अर्थात् शैवागम के दो प्रकार हैं—श्रौत और अश्रौत। श्रौत श्रुति-सार-मय है और यह दो प्रकार का है–स्वतन्त्र और इतर।

श्रुति शब्द तन्त्र-वाचक भी है। कहा गया है—श्रुति दो प्रकार की है-'वैदिकी' और 'तांत्रिकी।' महर्षि हारीत ने कहा है—

'अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः। श्रुति-प्रमाणको धर्मः। श्रुतिस्तु द्विविधा वैदिकी तांत्रिकी च।'

कुछ तन्त्र वेदानुकूल हैं और कुछ स्वतन्त्र। तन्त्रोक्त आचरणों का अधिकार चारों वर्णों को है। वेद ज्ञान-कांड-प्रधान होने के कारण उनका अधिकार सबको नहीं है, किन्तु तन्त्र क्रियात्मक होने के कारण तन्त्रोक्त आचार का पालन सभी वर्णं के लोग कर सकते हैं। विशेष सुविधा यह है कि सात्विक, राजस और तामस तीनों प्रकार के तन्त्र उपलब्ध हैं। सात्विक आगमों को 'तन्त्र', राजस को 'यामल' और तामस को 'डामर' कहते हैं। जिस साधक को जिस भाव की प्रबलता होगी, वह उसी भाव के आगम का आश्रय करेगा। तीनों का फल एक ही है। साधक क्रमशः सात्विक भाव में परिणत होकर अन्त में मुक्त हो जाता है।

तांत्रिकों का सिद्धान्त है कि आगम-स्वरूप को जान लेने से ही मुक्ति होती है। वैदिक सूक्तों में भी यही बात समझाई गई है। श्री-सूक्त, लक्ष्मी-सूक्त, रात्रि-सूक्त, देवी-सूक्त, उषनस-सूक्त, नारद-सूक्त आदि इसके प्रमाण है।

दूसरे विचार के अनुसार तन्त्र दो प्रकार के हैं—आगम और निगम। आगम के कहनेवाले श्री शङ्कर भगवान् और निगम की कहनेवाली भगवती आनन्दभैरवी हैं। आगम की श्रोत्री भगवती हैं और निगम के श्रोता आनन्दभैरव हैं—

गुरु-शिष्य-पदे स्थित्वा स्वयमेव सदाशिवः।
प्रश्नोत्तर-पदैर्वाक्यैस्तन्त्रं समवतारयत्॥

वेदोक्त शक्ति-तत्व की व्याख्या-स्वरूप ही तन्त्र ग्रन्थ हैं और वे क्रिया-प्रधान हैं। पञ्चाग्नि-विद्या, मधु-विद्या आदि वेदोक्त-विद्याओं का विधान तन्त्र में ही पाया जाता है।

तन्त्रों में तीन भाव और सात आचार वर्णित हैं। पशु-भाव, वीर-भाव और दिव्य-भाव तथा वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार और कौलाचार। इनमें से कौल सबसे श्रेष्ठ कहलाते हैं। चन्दन और कीचड़, पुत्र और शत्रु में जो भेद नहीं जानता; घर और श्मशान में तथा सुवर्ण और तृण में जो भेद नहीं करता; वही कौल है (भाव-चूड़ामणि)। यह अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार ब्राह्मी स्थिति का ही लक्षण है। कौल-मार्ग में शिव-शक्ति का सामरस्य बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है। शक्ति ही अन्तर्मुखी होने से शिव है और शिव ही बहिर्मुख होने से शक्ति है, यही वह सामरस्य है। कौल-मार्ग में एक समय-मार्ग भी है, जो सर्वोपरि माना गया है। समय-मार्गी ब्रह्म-स्वरूप ही हो जाता है और यही कौल-मार्ग की विशेषता है। तांत्रिक सम्प्रदाय में भाव-शुद्धि का ही सबसे अधिक महत्व है और उसी से सिद्धि प्राप्त होती है।

तांत्रिक साधना दो प्रकार की है--बहिर्याग और अन्तर्याग। बहिर्याग में गन्ध, पुष्प, धूप-दीप, विल्व-पत्र और नैवेद्य के द्वारा पूजा की जाती है। अन्तर्याग में इन बाह्य वस्तुओं की आवश्यकता नहीं होती। मानसोपचार के उपकरण स्वतन्त्र हैं। इसमें पञ्चभूतों के द्वारा उपचार-कल्पना करनी होती है। पृथ्वी-तत्व को गन्ध, आकाश-तत्व को पुष्प, वायु-तत्व को धूप, तेजस्तत्व को दीप, रसात्मक जल-तत्व को नैवेद्य के रूप में कल्पित कर इस पंचोपचार द्वारा पूजा करनी पड़ती है। इसी का नाम अन्तर्याग है। षट्-चक्रों का भेद ही इस अन्तर्याग का प्रधान अङ्ग है।

जैसा पहले कहा गया है, प्रस्तावित विषय 'शक्ति-तत्व' है। शक्ति-तत्व 'शक्ति' और 'तत्व' दो शब्दों से बना सामासिक शब्द है। रूपक कर्मधारय समास होने से इसका अर्थ होगा 'शक्ति-रूप तत्व' अथवा 'शक्ति ही तत्व' है और षष्ठी तत्पुरुष समास होने से इसका अर्थ होगा 'शक्ति का तत्व।' कोई भी समास क्यों न हो, इस सामासिक शब्द का यथार्थ अर्थ जान लेना आवश्यक है। सच तो यह है कि इन दोनों शब्दों का यथार्थ अर्थ मैं नहीं जानता, न जानने की क्षमता ही रखता हूँ और न इनके लिये मेरे जानते कोई यथार्थ पर्यायवाचक शब्द ही है। तथापि यथा साध्य इस पर प्रकाश डालने की चेष्टा की जा रही है।

'तत्व' से साधारणतः वह वस्तु समझी जाती है, जिसका खंड अथवा विनाश न हो। भारत के प्राचीन विचारानुसार इस सृष्टि में 'तत्व' पाँच हैं, जैसे पृथ्वी, जल आदि। वैज्ञानिक अनुसंधान से पता चलता है कि जल आदि भी इस अर्थ में 'तत्व' नहीं हैं, क्योंकि ये भी दूसरी-दूसरी वस्तुओं से बने हैं, जैसे जल हाइड्रोजन और आक्सिजन नामक दो वाष्पों के संयोग से बना है। गवेषण करने पर मालूम होता है कि शक्ति अर्थात् एनर्जी ही वह वस्तु है, जिसका खंड अथवा विनाश नहीं होता है। इसी प्रकार 'अक्षर' शब्द का भी अर्थ है-जिसका क्षर अर्थात् विनाश वा खंड न हो। इसीलिये अ, आ, इ आदि को अक्षर कहते हैं, क्योंकि इनका भी खण्ड नहीं होता है और जब हम इससे भी आगे बढ़ते हैं, तो पाते हैं कि वास्तव में 'ब्रह्म' ही वह पदार्थ है जिसका यथार्थ में विनाश अथवा खंड नहीं होता। इसीलिये ब्रह्म को 'अक्षर' वा 'अक्षर-ब्रह्म' भी कहते हैं। इस प्रकार 'ब्रह्म' 'तत्व' कहा जा सकता है और जैसा ऊपर कहा गया है, 'शक्ति' अथवा एनर्जी को भी तत्व कह सकते हैं। यह सही भी है, लेकिन प्रश्न उठता है कि आखिर 'तत्व' उस पदार्थ को क्यों कहते हैं, जिसका खण्ड अथवा विनाश न हो? इसलिये 'तत्व' शब्द का यथार्थ शब्दार्थ जान लेना परमावश्यक हो जाता है।

हम लोग 'तत्वमसि' इस श्रुति-वाक्य से प्रायः बहुत कुछ परिचित हैं। इसका अर्थ साधारणतया यही होता है कि 'वह तुम हो'। यहाँ 'तत्' अथवा वह शब्द 'परब्रह्म-परमात्मा' के लिये आया है। अब 'ब्रह्मत्व' अथवा 'ब्रह्मपन' के अर्थ में इस 'तत्' शब्द की भाववाचक संज्ञा 'तत्व' होगी। इसीलिये यह निश्चयात्मक रूप से कहा जा सकता है कि इस 'तत्' शब्द की भाववाचक संज्ञा 'तत्व' है, जिसका साधारण अर्थ है और होगा 'ब्रह्मत्व' वा ब्रह्मपन' अर्थात् अक्षर, अखण्डनीय, अविनाशी, अनादि, अनन्त, सत्य, सर्व-व्यापी, सर्वज्ञ, सर्व-शक्तिमान् आदि।

अब 'शक्ति' शब्द का भी वास्तविक अर्थ जान लेना उचित है। 'शक्ति' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—

> ऐश्वर्य-वचनः शश्च क्तिः पराक्रम एव च।
> तत्स्वरूपा तयोर्दात्री सा शक्ति परिकीर्तिता॥

अर्थात् 'श' कहते हैं ऐश्वर्य को और 'क्तिः' कहते हैं पराक्रम को। इस प्रकार 'षडैश्वर्य-पराक्रम'-स्वरूप को तथा दोनों की देनेवाली को 'शक्ति' कहते हैं।

'कुलज्ञ' स्वामी श्री दिव्यानन्द सरस्वती कृत

चार उपयोगी कृतियाँ

प्रवृत्ति में निवृत्ति—गृहस्थ आश्रम में रहते हुये मोक्ष किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है, इसका सुबोध करण इस अनूठी पुस्तक में किया गया है। सृष्टि की रचना, मनुष्य जन्म का उद्देश्य, आरोग्य जीवन, दैविक और क सम्पत्ति, कर्म और उसकी व्याख्या, गुरु और शिष्य, स्त्री-धर्म, पुरुषार्थ और प्रारब्ध, माया और ब्रह्म तथा -माहात्म्य, उपासना या पूजा, जप-विधान, कुण्डलिनी-योग, वेदान्त व तत्व ज्ञान, सत्सङ्ग तथा भगवन्नाम-कीर्तन, ाहात्म्य और प्रवृति में निवृति जैसे १६ महत्वपूर्ण विषयों का विवेचन इसमें किया गया है। लगभग २०० पृष्ठ, रु० ५=०० ।

यत्र तत्र सर्वत्र--जहाँ तहाँ सब स्थानों में जिस तत्व-ज्ञान के जानने के लिये सभी लोग सदा उत्सुक पाये हैं, उसी 'शक्ति-तत्व'' का रहस्योद्घाटन इस पुस्तिका में प्रश्नोत्तर-शैली में किया गया है। पाठक को ऐसा लगता मानों उसके मन में उठनेवाले प्रश्नों का उत्तर साक्षात् गुरुदेव से मिल रहा है। इस प्रकार ब्रह्म और माया ? शक्तिमान् से क्या सम्बन्ध है ? आगम और निगम से क्या तात्पर्य है ? ब्रह्माण्ड का क्या रहस्य है ? द्वैताद्वैत का क्या है ? आचार और भाव-त्रय क्या हैं ? आदि आदि अनेक जिज्ञासाओं को बड़ी सरल भाषा में समझाया गया है। ों के सिवा गुरु की आवश्यकता, जीवन्मुक्त के लक्षण, तीर्थाटन का महत्व, वर्ण और आश्रम, अबतार-वाद, बहिरंग , अन्तरंग साधना, नवरात्र जैसे विषयों पर भी प्रकाश डाला गया है। लगभग सवा सौ पृष्ठ, मूल्य रु० ३.०० ।

दिव्य दृष्टान्तावली—दीपावली होली, नवरात्र उत्सवों का रहस्य, कर्मों की गति, स्त्रियों का चरित्र, होनहार, कारण, काम और क्रोध, अतिथि-सत्कार, माया का स्वरूप जैसी ज्ञातव्य बातों पर इस पुस्तक में प्रकाश डाला आत्माष्टक, बद्रीनारायण, जोत से जोत जगाते चलो आदि .० उद्बोधक भजन भी इसमें दिये हैं। लगभग पृष्ठ, मूल्य रु० ४.०० ।

शक्ति-सुयश--विविध राग-रागिनियों में १५० से अधिक भजन इसमें संगृहीत हैं। गणपति-प्रार्थना, गुरु-वन्दन, श, भैरव-महिमा एवं उपदेशात्मक पद्यों से युक्त यह पुस्तक भक्ति-भावना को विकसित करने में बड़ी सहायक है। लगभग सवा सौ, मूल्य रु० ३.०० ।

कुछ अन्य उपयोगी प्रकाशन

द्देवी भागवत, भाषा टीका	८.००	दुर्गा सप्तशती, पत्राकार	२.००
सप्तशती, सजिल्द	३.००	,, ,, , गुटका ६४ पेजी	१.००
कल्पलता, ,,	५.५०	, ,, , ,, ३२ पेजी	०.६०
रहस्य, ,,	६.००	दुर्गा रामायण सजिल्द	१.१०
रहस्य, ,,	६.५०	बगलाराध्य-सरणि	०.६०
सप्तशती, रफ़ कागज	२.००	वशीकरण मन्त्र	१.५०
सप्तशती, सादी जिल्द	१.७५	वृहद् कौवा तन्त्र	१.७५

पुस्तकें शीघ्र पाने के लिये कृपया वांछित पुस्तकों का पूरा या कम-से-कम आधा मूल्य अग्रिम से भेजें। शेष मूल्य की वी. पी. कर दी जायगी।

कल्याण मन्दिर, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६

'कौल-कल्पतरु' स्व० पूज्य शुक्ल जी

भूतपूर्व सम्पादक 'सरस्वती'

तृतीय पुण्य तिथि : २० मई १९७४

सम्पादक एवं प्रकाशक : श्री पुण्यशील शर्मा 'शाक्त साधना पीठ' प्रयाग—६
मुद्रक : श्री राजनारायण मिश्र परावाणी प्रेस, प्रयाग—६

चण्डी

अचिन्त्यामिताकार-शक्ति-स्वरूपा,
प्रति-व्यक्त्यधिष्ठान-सत्तैकमूर्त्तिः ।
गुणातीतनिर्द्वन्द्वबोधैकगम्या,
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥
न बाला न च त्वं वयस्था न वृद्धा
न च स्त्री न षण्ढः पुमान् नैव च त्वम् ।
न च त्वं सुरी नाऽसुरी किन्नरी वा,
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥

—महाकाल संहिता

अर्थात् शिव जी पार्वती जी से कहते हैं कि तुम अचिन्तनीय, असीम, शक्तिरूप प्रत्येक जीव का अधिष्ठान और सत्ता ही तुम्हारा स्वरूप है । त्रिगुणातीत, द्वन्द्वरहित, शुद्धबुद्धि से जानने के योग्य होने से तुम निश्चय ही अद्वितीय परब्रह्मरूप हो । तुम न बालिका न युवती न वृद्धा हो, न पुरुष न स्त्री न नपुंसक, न देवी न दानवी न किन्नरी ही हो, तुम अद्वितीय परब्रह्मरूप हो ।

वार्षिक शुल्क : १२)
एक प्रति : २)

शाक्त-साधना पीठ, प्रयाग-६

नए प्रकाशन

१ श्री बगला नित्यार्चन (तृतीय नवीन संस्करण)

यह पुस्तक तान्त्रिक पूजन का संग्रह है। इसे दतिया के परम पूज्य राष्ट्र-गुरु श्री १०८ स्वामी जी महाराज ने परशुराम कल्पसूत्र के आधार पर लिखा है। इसका पूजन-विधान सर्वाङ्गपूर्ण है। ऐसी उपयोगी पद्धति अब त कहीं से प्रकाशित नहीं हुई है। न्यासादि, पात्र-स्थापन, आवरण-पूजन, षडाम्नाय-पूजन आदि इसमें विस्तार के साथ दिये गये हैं।

मूल्य ३.००

२ सविधि श्री काली-कर्पूर-स्तवः (द्वितीय नवीन परिवर्धित संस्करण)

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है यह पुस्तक शाक्त-साधकों के लिये परम उपयोगी है। इस दूसरे नवीन संस्करण में साधना-क्रम, सिंहावलोकन, माहात्म्य-निदर्शन द्वारा स्तोत्र के महत्व पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। मूल स्तोत्र के साथ ही फौजदार श्री बनबीर सिंह जी कृत पद्यानुवाद भी दिया गया है, जिससे अर्थ समझने में और भाषा में पाठ करने की सुविधा पाठक बन्धुओं को मिलेगी।

मूल्य १.५०

३ आगमोक्त योग-साधना—स्वामी दिव्यानन्द जी सरस्वती

इस बीसवीं शती में, जब मानव मानव का शत्रु बन रहा है, दानवता का चारों ओर बोलबाला है, एक नई जागृति तथा चेतना को प्रस्फुटित करना होगा, अपनी संस्कृति के मूलभूत नैतिक शाश्वत मूल्यों को पुनः वर्तमान कसौटी पर कस कर खरा सिद्ध करना होगा। यह कार्य केवल सन्त ही कर सकते हैं, क्योंकि उनका जीवन व्यक्तिगत स्वार्थों से परे होता है। वे तो पर-हित के ही लिए जीवित रहते हैं। 'सर्वभूत-हिते रताः' तथा 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' ही जिनका लक्ष्य है। प्रस्तुत पुस्तक एक ऐसे ही सन्त का इस दिशा में उठाया हुआ एक नया पग है।

मूल्य २.००

४ ज्योतिष-सम्बन्धी नवीन पुस्तकें

ज्योतिष-रत्नमाला	८-००	सुलभ ज्योतिष ज्ञान	१२-००	ज्योतिष प्रवेशिका	०-५०
मेलापक विवेचन	०-५२	सुगमं लग्न-जातकम्	०-६२		

पता—कल्याण मन्दिर अलोपीबाग मार्ग—प्रयाग—६

खेद-प्रकाश

कागज की कमी के कारण प्रस्तुत अङ्क अत्यधिक विलम्ब के साथ प्रकाशित हुआ है; साथ ही हमें आवरण पृष्ठ के लिये साधारण कागज के प्रयोग के लिए बाध्य होना पड़ा है। हमें विश्वास है कि पाठक बन्धु हमारी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए क्षमा प्रदान करेंगे।...अगला अङ्क नवरात्र अङ्क के रूप में प्रकाशित होगा, जो कि १० अक्टूबर ७४ तक आपकी सेवा में पहुँच जायेगा।

—व्यवस्थापक

वह शक्ति, जिसे हम माता कहकर पूजते हैं, दिव्य चिन्मयी शक्ति है, जो अखिल विश्व की अधिष्ठात्री है।

*

माता परम पुरुष की चिति और शक्ति हैं और जो कुछ वे सर्जन करती हैं, उस सबके बहुत ऊपर स्थित हैं।

*

माता केवल ऊपर से ही विश्व का शासन नहीं करतीं बल्कि वे इस निम्नतर त्रिविध जगत् के भीतर भी अवतरित होती हैं।

*

तुम्हारे लिये एकमात्र फल है भगवती माता की प्रसन्नता और उनके कार्य की सिद्धि।

*

सदा ऐसा जीवन बिताओ, मानो कि परम पुरुष और भगवती माता तुम्हें देख रही हों। ऐसा कोई भी कार्य न करो; ऐसा कुछ भी सोचने व अनुभव करने की चेष्टा मत करो, जो भागवत उपस्थिति के अयोग्य हो।

—श्री अरविन्द

'कौल-कल्पतरु' चण्डी

वर्ष ३३] श्रावण-भाद्रपद शुक्लाष्टमी २०३१ वि० [संख्या ५-६

१ सार्थ श्री काली-कस्तूरी-स्तव-राज : श्री हरिहरानन्द नाथ ४२
२ TANTRA VERSUS VEDAS : SIR JOHN WOODROFFE 44
३ उद्गार : पं० कपिलनारायण मिश्र, बिहार ४५
४ पूजा की आवश्यकता : श्री प्रेमशङ्कर सिंह, प्राञ्जल, मध्यप्रदेश ४६
५ धार्मिक जगत् की हलचल [१ मन्त्र द्वारा अग्नि-प्रज्वलन, २ दुर्गामहायज्ञ] ४८
६ अनमोल विचार: 'शिव-शक्ति-योगी' परम पूज्य श्री कृष्ण ब्रह्मचारी जी, राजस्थान ४९
७ नमामि श्री चक्र मण्डलं : पं० रमेशचन्द्र शर्मा, राजस्थान ५१
८ ग्रहण-पुरश्चरण : कापालिक उद्बोधनानन्द ५३
९ हिन्दी-तन्त्रसार [७४ धूमावती, ७५ भद्रकाली, ७६ उच्छिष्ट-गणेश, ७७ धनदा देवी, ७८ श्मशान काली] ५७
१० सम्पादकीय [१ श्री कापालिक जी के आशीर्कटाक्ष, २ शाक्त-साधना-पीठ से लाभ उठायें] ६३
११ शक्ति-तत्व या ब्रह्म-विद्या : श्री कृपानाथ सिंह, एडवोकेट ३३

सार्थ

श्री काली-कस्तूरी स्तवराज

श्री हरिहरानन्द नाथ (स्व० पण्डित-प्रवर श्री हरिशास्त्री दाधीच, जयपुर)

(गताङ्क पृष्ठ १८ का शेषांश)

अहो मातः ! हे अम्बिके ! उक्त त्रिवर्ण सुन्दर मन्त्र को श्री से—'श्रीं' बीज से सम्पुटित कर जो साधक अर्द्ध रात्रि में कुलाङ्गना के कुलागार को देखता हुआ तीन लाख जप करे, वह विद्वान् साधक अपने घर के आँगन में भ्रू कुटी के संकेत की अपेक्षा करनेवाली गृह-कर्मकरी दासी के समान लक्ष्मी को देखता है। उक्त दोनों ही त्र्यक्षरी विद्याओं का यह प्रयोग लक्ष्मी-प्रद (प्रधानतया) होता हुआ अन्यान्य भी काम देता है।

कुल-क्रम में दीक्षित हुई सौभाग्यवती 'कुलाङ्गना' कहलाती है। उसके समर्चन का संकेत है।

चामुण्डे ! भुवना-विदर्भितमिदं बीजं पुनस्तावकं,
जप्तं कौल-रहस्य-याग-निरतैर्यैरागमज्ञैर्निशि ।
स्रष्टुं पालयितुं च हर्तुमपि ते बाढं क्षमा मानवाः,
लोकेशन्ति शिवन्ति च क्वचिदहो पीताम्बरन्ति क्वचित् ॥६॥

हे चामुण्डे ब्रह्म-पट्ट-महिषि ! ब्रह्म-विवेक-प्रदे ! चण्ड-मुण्ड-वध-करि ! यह पूर्वोक्त आपका एकाक्षर निज-वीज 'क्रीं' कुल-क्रम के रहस्य-याग में निरत रहनेवाले साधकों—आगम-विज्ञ लोगों से निशीथ (अर्ध-रात्रि) में जपा जाय या जपा गया है अथवा जपा हुआ पुरश्चरणादि से सिद्ध किया हुआ है। वे साधक सिद्ध लोग संसार में सर्जन, पालन और संहार में परम समर्थ होते हुये कहीं ब्रह्मा बनते हैं, कहीं पालन-शक्ति से विष्णु बनते हैं और कहीं संहार-विद्या से शिव बन जाते हैं। अर्थात् अवसर, भावना और आवश्यकतानुसार वे स्वयं ब्रह्मा, शिव, विष्णु का सामर्थ्य रखनेवाले होते हैं, यह भावार्थ हुआ। काली-साधना ही क्या शक्ति-साधन मात्र ही कुलाचार (वाम-क्रम) से करना महानिर्वाण तन्त्र में भगवान् शङ्कर ने बताया है। देखो—

कुलाचारं बिना देवि ! शक्ति-मन्त्रो न सिद्धिदः ।
तस्मात् कुलागमेनैव साधयेत् शक्ति-साधनम् ॥

(महानिर्वाण तन्त्र, पाँचवां उल्लास, २१ वां पद्य)

अर्थात् हे देवि ! पार्वती ! कुलाचार (वाम-क्रम) बिना शक्ति-मन्त्र सिद्धि नहीं देता है। इसलिये कुलाचार से ही शक्ति-साधन करना चाहिये। इसी तन्त्र के चौथे उल्लास में भगवान् शिव ने यहाँ तक प्रतिज्ञा करते हुये कहा है कि—

सत्यं ब्रवीमि हे देवि ! हृदि कृत्वावधारय ।
सर्व-धर्मोत्तमात् कौलात् परो धर्मो न विद्यते ॥

अन्यत्र मेरुतन्त्रादि में भी 'कौलात् परतरो नहि' ऐसा स्पष्ट है। 'आगमोक्त-विधानेन कलौ देवान् यजेत् सुधी' इत्यादि से तो सभी देवों का साधन इसी मार्ग से (आगम-विधान से) करना कहा है। इत्यादि समझ लेना चाहिये।

श्यामे व्याकुल-कुन्तले तव मनुं कामाद्यमाद्यन्तयोः,
कृत्वा ये प्रजपन्ति पञ्चम-दिशा त्वां पूजयन्तो विदः ।
तेषां मानसमीप्सितं फलयितुं देवाः सुरेन्द्रादय–
स्तेऽहं पूर्विकया व्रजन्ति मुदिता राज्ञामिवाऽनुव्रजाः ॥७॥

हे बिखरे (छितराए) केशवाली कालि ! आपके उक्त वीज-मन्त्र को काम (क्लीं) से पुटित कर पञ्चम-दिशा, पाँच मकार-संयुक्त अर्चन-क्रम से आपको पूजते हुए जो विद्वान् साधक जपते हैं, उनके मनोऽभिलाष को सफल करने के लिये इन्द्रादि सभी देव लोग (गण) 'मैं पहले— मैं पहले' वाली वृत्ति से प्रसन्न हुए ऐसे दौड़ते हैं, जैसे राजाओं के आज्ञा-पालन के लिये उनके अनुचर दौड़ते हैं ।

कुलागम और कुलाचार में ही पञ्चमकार-पूजा-क्रम है । गुरुओं से पूछो, तो सब ज्ञात होगा ।

स्फूर्ज्जद्-बाल-शवावतंस-विलुलद्-दीर्घायत-श्रोत्रिणि !
वाग्बीजानुगतं पुरोगतमिदं वीजं त्वदीयं जपैः ।
सिद्धं भक्ति-जुषां कुल-क्रम-विदां त्वत्साधकानां पुरः
संसारादि-निदान-बोधममलं द्राक् स्थापयत्यम्बिके ॥८॥

सुतरां शोभित होते हुए बालक-शव-युग के बने कर्ण-भूषणों से हिलते-डुलते हुए लम्बे-चौड़े कानोंवाली कालि अम्बिके ! इसी आपके एकाक्षर वीज को वाग्वीज (ऐं) से अनुगत पुरोगत अर्थात् पुटित कर जो साधक जपते हैं, तो जप से सिद्ध हुआ वह वीज-मन्त्र आपके उन जप-परायण भक्तिमान और कुल-क्रम-विज्ञानवान् साधकों के आगे शीघ्र ही संसार का आदि कारण निर्मल आदिम तत्व-ज्ञान उपस्थित कर देता है। अर्थात् 'ऐं' वीज–पुटित आपके वीज-मन्त्र जपनेवाले ब्रह्म-विद्या-प्राप्त तत्वज्ञानी बन जाते हैं । उन्हें संसार के कारण-तत्वों का भान हो जाता है ।

एक-द्वि-त्रि-गुणात्ततस्त्भवदभिधा-सम्बुद्धि-वह्नि-प्रिया—
संयुक्ताच्च भवन्ति षण्-मनु-वराः काले निशीथेऽम्बिके ।
ते सर्वेऽपि रहस्य-याग-विधिना त्वां पूजयद्भिर्जनै—
र्जप्ताः शीघ्र-तरं फलन्ति सुतरामादित्य-वृक्षा इव ॥९॥

हे अम्बिके मा कालिके ! ततः उस उक्त बीज एक केवल एकाक्षर और क्रम से द्विगुण तथा त्रिगुण से आपके नाम के सम्बोधन युक्त कर स्वाहा लगाने से छः मन्त्र प्रादुर्भूत होते हैं। जैसे—१ क्रीं स्वाहा, २ क्रीं क्रीं स्वाहा, ३ क्रीं क्रीं क्रीं स्वाहा, एवं सम्बुद्धि-योग से–४ क्रीं कालिके स्वाहा, ५ क्रीं क्रीं कालिके स्वाहा और ६ क्रीं क्रीं क्रीं कालिके स्वाहा । ये क्रम से त्र्यक्षरी, चतुरक्षरी, पञ्चाक्षरी, षडक्षरी, सप्ताक्षरी तथा अष्टाक्षरी विद्याएँ प्रगट होती हैं । ये सभी मन्त्र निशीथ-काल में रहस्य-याग के द्वारा आपका यजन करते हुए साधकों से जपे जाने पर सभी साधकों के काम पूरण करने को कल्पवृक्षों के समान हो जाते हैं । अर्थात् सविधान आगमोक्त विधान से सिद्ध किये ये सभी मन्त्र सब कुछ सिद्धि देते हैं।

Tantra versus vedas

Sir John Woodroffe (Arthor Avalon)

'Para Shakti' may be worshipped according to Vedic or Tantrik rites according to the 'Adhikar' of the worshipper. A follower of the Agama calls himself an Agamavadi, Kaul, Shakta, shaiva and so forth.

The Tantras are a recognised part of the scriptures of that which is generally called "Hinduism",. The Suta Samhita says the Puranas are of authority in the same way as the different Agamas. Agamas are of equal authority with shruti and for a full understanding of the Vedanta it is necessary to know among other scriptures the Agama.

The Upanishads also contain doctrine and practice of and are referred to as authority by the Agamavadins. The Agamas are based on and are a continuation of the Vedas.

It is of interest to here note that for reasons which have not yet been explained, the Tantra Shastra at any rate in its 'Shakta' form appears to have a special affiliation with Atharva Veda. This, however, does not, of course, mean that Mantras, Yantras, Chakras or other elements of 'Upasana' belong to this Veda alone.

The authority of the Atharva Veda has been called in question. The argument is that as the Vedas are spoken of as 'Trayi Vidya', it is only the Rik, Yajus and Sam which are the original Vedas. The Atharva Veda is said to be of later date. Reference is made to the fact that it is replete with ritual and magic.

The meaning, however, of the term 'Trayi Vidya' is not understood. 'Trayi' does not refer to the number of the Vedas but to the three Kandas—Karma, Upasana and Jnana. The threefold knowledge has, therefore, nothing to do with the number of the Vedas.

The word 'Veda' signifies four, as when it is said of Brahma, that he is 'Veda-bahu' or four armed. There are Brahmanas, who are called Chaturvedis (proficient in the four vedas) just as there are others called Trivedis and Dwivedis.

Not merely the Atharva Veda but the others also contain ritual injunctions. The name 'Atharvan' occurs in the other three Vedas. The four classes of priests

are also well-known, namely—Adhvaryu, Hota, Udgata and Brahma, the last of whom superintend the work of the other Ritviks. It is said by some that the Atharva Veda is named after a great Brahma who belonged to the line of Angira

It is an error to attribute to any 'Veda' or 'Upanishad' higher authority than the rest. The suta Samhita says Veda is one and the goal thereof is one also, but it is divided into different Shakhas' or branches and as such Vedas verily are endless. Though Shruti is endless, it points to one 'Veda' or truth.

उद्गार

पण्डित कपिलनारायण मिश्र

[१] मग्न खेलों में मुझे करके बता तूं दर्प से;
दूर बैठी क्यों अरी मां आज मेरे मर्म से ॥ १ ॥
मानता हूं भूल बैठा क्वचित तुझको खेल में,
क्या इसी से मोड़ बैठी मुँह तूं भी कर्म ❀ से ॥ २ ॥ ❀ धर्म
ये खिलौने खेलने को तो दिये तुमने ही हैं;
दूर से लखती रही तू खेल सारे; तर्स ❀ से ॥ ३ ॥ ❀ करुणा
अब जो जागी तर्ष ❀ हो विकल सर्वत्र खोजा, ❀ चाह,
जो न पाया ढिग तुझे तो; रो पड़ा हूँ दर्द से ॥ ४ ॥
तन गँवा धन गँवा बहुत खेला धर्म में;
सह्य अब न हो रहा; शीश झुका है शर्म से ॥ ५ ॥
इस बार बस इस बार केवल नेह से,
अकिंचन पर कृपा कर उबारो गर्त से ॥ ६ ॥
हो गयी थी भ्रान्ति, पर विश्वास खोया था न मैं;
अब न शक्ति शेष, जो, तुझको मनाऊँ अर्थ से ॥ ७ ॥

[२] कर दी कृपा है आज तूने मां अनोखी रीति से;
रहता भरा तव दिल सदा है सुत के प्रति प्रीति से ॥ १ ॥
जो आज तूने की न होती मुझ अकिंचन पै दया,
तो मैं तड़पता दुख में रहता पड़ा ऐ मां ! सदा ॥ २ ॥
निस्तेज अरिदल हो गए अवलोक तव सुकीर्ति से;
कर दी कृपा है आज तूने मां अनोखी रीति से ॥ ३ ॥
है ज्ञान मेरे पास न तो शब्द तव गुणगान को,
कर दी है तूने आज सारे चूर अरि अभिमान को ॥ ४ ॥
रखना दया निज दास पै, डरते रहें अरि भीति से;
कर दी कृपा है आज तूने मां अनोखी रीति से ॥ ५ ॥
भूले जो नर ऐसी कृपामयी की कृपा की दृष्टि को
धिक्-धिक् है सौ-सौ बार ऐसे ही मानव जन्म को ॥ ६ ॥
करती तूं रहना नेह वृष्टि, मांदा सुप्रीति से,
मुझसा अकिंचन दास पै डरते रहें अरि भीति से ॥ ७ ॥

पूजा की आवश्यकता

श्री प्रेमशङ्कर सिंह 'प्राञ्जल', एम० ए०

कई जन्मों के सुकृत कर्म से विपर्यय-पूर्ण जीवन में शान्ति और आनन्द की फल्गु-धारा का थोड़ा-सा अनुभव होता है। मन, प्राण, वायु और आकाश आदि में सर्वत्र एक ही तत्व का आभास दिखाई देता है। हम सत्य के पुत्र हैं और सत्य ही हमारा स्वरूप है, लेकिन आज तो जीवन में दम्भ और आडम्बर का राज्य है। हम नित्य-प्रति असत्य का संचय एवं असत्य का आचरण कर रहे हैं। हम यह जानते हैं कि यह शरीर नित्य नहीं है, किन्तु हम भौतिकवाद को ही प्रश्रय दे रहे हैं।

सत्य सदा विद्यमान रहा है। आज मेरे देश में सत्य की अवहेलना हो रही हैं। सत्य तो वह है, जिसका ध्वंस नहीं होता और न ही उसकी उत्पत्ति होती है। सत्य में किसी प्रकार का विकार नहीं आता। हमारी आत्मा सत्य है, नित्य है, शाश्वत है। हमारी आत्मा नया कलेवर प्राप्त करती है। तभी तो हम भी बहुत्व को प्यार करते हैं। गङ्ग और पराव के जल में कोई अन्तर नहीं। कश्मीर और कन्याकुमारी की माटी में कोई अन्तर नहीं। इसी तरह दुर्गा, काली, राम, कृष्ण, शिव और विष्णु में कोई अन्तर नहीं। मुझे जब जो भाव अच्छा लगेगा, उसी भाव से उस शाश्वत शक्ति को पुकारूँगा। कभी कहूंगा उसे राम, कभी कृष्ण, कभी राधे, कभी श्याम और कभी श्यामा।

यह संसार 'सत्य' से ही उत्पन्न है। एक दिन यह संसार विलीन हो जावेगा, किन्तु जो कुछ बचा रहेगा, वही सत्य है। सत्य ही तो काली, दुर्गा, भगवती, तारा, भगवती तारिणी एवं दस महाविद्या है। इस सत्य की प्राप्ति मनुष्य को जब तक नहीं हो जाती, तब तक वह दुःख के अनुभव से मुक्त नहीं हो सकता। बस, इसीलिए मानव-जीवन में अभाव दूर नहीं होता और जन्म-मृत्यु की धारा बन्द नहीं होती।

इस संसार में हम सब पूर्णता की ओर बढ़े जा रहे हैं। सम्पूर्ण जीवन पूर्णत्व की ओर जाने का प्रयास करते रहने पर भी हम इस प्रश्न का उत्तर नहीं पाते कि 'मैं कौन हूं? मेरा क्या कर्त्तव्य है? किसलिए मेरा जन्म हुआ है?' हम अपना स्वरूप ही नहीं जानते। इस दयनीय दशा-विमोचन के लिये 'पूजा' की आवश्यकता है।

'पूजा' से मनुष्य उन्नत होता है। महापुरुषों के गुण-कीर्त्तन, चरित्र–महत्व एवं कार्य-प्रणाली के अनुसरण से हम समुन्नत होते हैं।

'पूजा' से मनुष्य का जीवन मधुर-से-मधुरतम होता है। महत् की पूजा करने से हममें त्याग की सेवा के भाव का उदय होता है। हम भौतिक सम्पदा का अधिक संचय नहीं करेंगे। हम धर्ममय, कर्ममय, पुण्यमय, सत्यमय होने का प्रयास करेंगे। हम अपनी मलिनता एवं दुर्बलता को दूर करने का प्रयास करेंगे। इस प्रयास में गुण-समूह हमारे पास आयेंगे। बूंद से समुद्र की ओर जाने का यह प्रयास–विराट् की पूजा का यह आयोजन प्रायः सभी सभ्य देशों में है। निम्न स्तुति में भाव-पूजा के पुष्प सन्निनिष्ट हैं। इसे हम समझें और परमात्म-तत्व में लीन हों:—

गुरोर्मध्ये स्थितं विश्वं विश्व-मध्ये स्थितो गुरुः।
गुरुर्विश्वं नमस्तेऽस्तु विश्व-गुरुं नमाम्यहम्॥
गुरोर्मध्ये स्थिता माता मातृ-मध्ये स्थितो गुरुः।
गुरुर्माता नमस्तेऽस्तु मातृ-गुरुं नमाम्यहम्॥
श्री मत्परं-ब्रह्म-गुरुं वदामि,
श्रीमत्परं-ब्रह्म गुरुं स्मरामि,
श्रीमत्परं ब्रह्म गुरुं भजामि,
श्रीमत्परं ब्रह्म गुरुं नमामि॥

यही विश्व-रूप गुरु के अन्तर में अवस्थित है; विश्व के अन्तर में भी गुरु विराजमान हैं। यह दृश्यमान विश्व

गुरु का ही स्थूल-रूप है, उन श्री गुरु को मेरा प्रणाम है। गुरु के अन्तर में 'मां' (महती चित्-शक्ति) अवस्थान कर रही है। मां के अन्तर में भी गुरु ही विराजमान है। गुरु-रूपिणी मां को मेरा प्रणाम। मातृ-रूपी श्री गुरु को मेरा प्रणाम। श्रीमत् परब्रह्म-स्वरूप श्री गुरु को वाक्य में उच्चारण करते हैं, मन में स्मरण करते हैं और काय-मनो-वाक्य में भजन और प्रणाम करते हैं।

मुझे इस पुण्य भूमि के लोगों से कहना है--जिस कुएं या तालाब के पानी में बाहर से पानी नहीं आता, वह कुआँ या तालाब सूख जायेगा। हम कब तक अन्यान्य लोगों को स्वीकार नहीं करेंगे ? हम कब तक विराट् होने की कोशिश नहीं करेंगे ? इस धरती को माटी का रंग एक है। सभी प्राणियों में एक ही रंग का खून है। जल का—आकाश का रंग एक है। फिर हममें भ्रांति क्यों है ? हममें ऊँच-नीच का भेद-भाव क्यों ? जिस तरह प्रभु निरामय और एक हैं, उसी तरह मनुष्य-समाज भी एक है। गंगा के जल में नाली का जल मिलने पर नाली का जल गंगा का जल हो जाता है। मुझे तो इस भरत-भूमि के लोगों से कहना है कि तुम लोग अमृत के पुत्र हो—

शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः
जानन्तु विश्वे अमृतस्य सत्ताः।

अमृत का पुत्र सर्वत्र एक अखण्ड अमृत की सत्ता का अनुभव करे। आओ हम कहें —

सुचिन्तितं यद्वा कुचिन्तितं मया,
अनुष्ठितं सद् अवावाप्य कर्म यत्।
तदेव मातः हृदिस्थया मे
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।
प्रातः प्रभृति सायान्तं सायाह्नात् प्रातरन्ततः।
यत् करोमि जगन्मातस्तदेव तव पूजनम्॥

"सुचिन्ता अथवा कुचिन्ता, सत्कर्म्म अथवा असत् कर्म्म-जो कुछ मुझसे किया जाता है, हे मां तुम मेरे हृदयस्थ होकर जैसा कार्य करा रही हो, मैं वैसा ही कर रहा हूं—यह समझने की शक्ति मुझे दो। हे जगन्मातः! प्रातःकाल से सन्ध्या पर्यन्त एवं सन्ध्या-काल से प्रातःकाल तक मैं जो कुछ करता हूँ, सब ही तुम्हारी पूजा है।"

पहले हमें माता-पिता गुरुजनों की पूजा सेवा-भाव से श्रद्धा-भाव से करनी होगी। देश की पूजा भारती मां के रूप में करना होगा। माता पृथ्वी की पूजा करने के बाद श्रेष्ठ जनों के प्रति अकपट सम्मान अभिव्यक्त करना होगा। ऐसा करने से महत् चरित्र के सावयव गुण हममें अधिष्ठित और प्रतिष्ठित होगे। दिव्य तत्व की पूजा से हम निश्चय ही उन्नत होगे। जब हम उस अनन्त की पूजा करेंगे; हमारे अन्तस् का मिथ्या भाव-अहं-भाव झुकेगा। हम पवित्र भावों से परिपूर्ण होंगे।

यद्यपि अनेक स्थानों में देखा जाता है कि दीर्घकाल पूजा की गई, किन्तु उन्नति नहीं हुई। इसका एकमात्र कारण है कि यथार्थ भाव से पूजा एवं सत्सङ्ग नहीं किया गया।

पूजा के द्वारा हम अपने इष्ट को गौरवान्वित किया करते हैं, यह सत्य नहीं। सत्य तो यह है कि उसकी पूजा करके हम स्वयं गौरवमय होते हैं—

यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।

जो जैसी चिन्ता किया करते हैं, उनकी सफलता भी तद्-रूप हुआ करती है।

गुरु की पूजा करके शिष्य ईश्वर–पूजा का अधिकारी होता है। यदि महती प्रतिभा से सम्पन्न गुरु की पूजा से मनुष्य महत्व-लाभ कर सकता है, तो दिव्यतर शक्ति की पूजा-प्रतिष्ठा से वह क्यों नहीं दिव्य-शक्ति की गुण-गरिमा से अलंकृत होगा ? दिव्य तत्व-चिन्तन से मनुष्य दिव्य-भाव-प्रेरणा से परिप्लावित होता है, तो क्यों नहीं ईश्वर की चिन्ता करके वह ईश्वरत्व प्राप्त करेगा ?

यदि हम सहज, सुगम, पवित्र जीवन के लिये लालायित हैं, तो हमें पूजा करनी होगी। देश-भेद, सम्प्रदाय-भेद, आचार-भेद से पूजा की प्रणाली भिन्न हो सकती है, किन्तु ब्रह्ममयी उपासना में सभी प्रकार के भेद का विनाश हो जाता है, यह सत्य है।

धार्मिक जगत की हलचल

१—मन्त्र द्वारा अग्नि-प्रज्वलन

मई के अन्तिम सप्ताह की घटना है। पूना (महाराष्ट्र) में एक ब्राह्मण पण्डित ने मन्त्र-शक्ति के द्वारा अग्नि प्रज्वलित कर वैज्ञानिकों को चकित कर दिया। यह रहस्यपूर्ण प्रक्रिया उक्त पण्डित जी ने उन्नीसवीं बार सफलतापूर्वक अनेक वैज्ञानिकों के समक्ष प्रदर्शित की। हव्य सामग्री में पाँच पदार्थ थे, जिनकी जाँच उक्त वैज्ञानिकों ने अग्नि जलने के पहले की और जलने के बाद भी की। उनकी जाँच से यह स्पष्ट था कि हव्य पदार्थों के मिश्रण से कोई रासायनिक ज्वलन शील साधन प्रस्तुत नहीं हुआ, जो तापमान के बढ़ने से प्रज्वलित हो उठता। फलतः वैज्ञानिकों को इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ा कि किसी अज्ञात शक्ति के द्वारा अग्नि का प्रज्वलन हुआ, जो हमारे प्राचीन ऋषियों और कुछ वैदिक मनीषियों को ज्ञात रही है। उक्त प्रयोग की एक विशेषता यह रही कि जो अग्नि मन्त्र द्वारा प्रज्वलित हुई, उसमें धुएँ का लेश भी नहीं दिखाई पड़ा। चिनगारियाँ अवश्य प्रस्फुटित हुईं किन्तु उसके लिये प्रारम्भिक उत्तापन-प्रक्रिया का कोई चिह्न दृष्टिगत नहीं हुआ। इस प्रकार मन्त्र-शक्ति द्वारा अग्नि प्रज्वलन का रहस्यमय चमत्कार इस आधुनिक युग में एक बार पुनः प्रक्षत्य हुआ है, जिससे आस्तिक वर्ग की आस्था को निश्चय ही बल मिलेगा।

२—श्री दुर्गा महायज्ञ

देवी शिवा भगवती की असीम कृपा से सागरमती नदी के सुरम्य तट पर शिवजी एवं बालाजी के मन्दिर के निकट जन-कल्याणार्थ अनन्त श्री विभूषित "काश्मीरी बाबा" ठाकुर राजयोगी स्वामी श्री कृष्ण ब्रह्मचारी जो महाराजा (कृष्णांऽग महाप्रभु) के तत्वावधान में भावता एवं समीपस्थ सभी ग्रामों के सामूहिक सहयोग से दुर्गा महायज्ञ भांवता ग्राम में आश्विन शुक्ल १ से ९ (दिनांक १६ अक्टूबर से २४ अक्टूबर १९७४) तक शारदीय नवरात्रि के शुभ अवसर पर आयोजित किया जा रहा है।

अजमेर-निवासी-महायज्ञ-शिरोमणि पूज्य-प्रवर पण्डित श्री ब्रजमोहन जी व्यास इस यज्ञ का आचार्यत्व ग्रहण करेंगे।

इस यज्ञका उद्घाटन विश्व के एकमात्र 'जन्म-सिद्ध' ठाकुर श्री श्री बालक ब्रह्मचारी जी महाराज (कलकत्ता) के कर-कमलों द्वारा होगा।

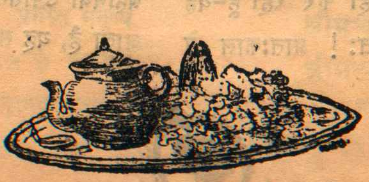

अनमोल विचार

राजयोगी स्वामी श्रीकृष्ण जी ब्रह्मचारी

आज का समग्र संसार भोग की कामना में स्वयं काल का भोग बन चुका है। मुक्त भोग किसी को प्राप्त नहीं है। मुक्ति की चाहना किसी ने नहीं की। जड़ों में पानी कोई नहीं डालता और फल फूल की चाह सबको है। दुःख से मुक्ति के लिए भगवान् बुद्ध ने प्रयास किया था किन्तु शरीर को बुढ़ापे और मृत्यु-रूपी दुःख से नहीं बचा सके; तो सर्वाङ्गीण मुक्ति कैसी ?

सर्वाङ्गीण मुक्ति के लिये भगवान् श्रीकृष्ण ने अपना दृष्टान्त समक्ष रखा—वह था उनके शरीर का शाश्वत यौवन और शरीर-सहित विश्वोत्तीर्ण निमज्जन। भगवान् श्रीकृष्ण भी माता के गर्भ से शरीर धारण कर ही आये थे, तो प्रकृति की गति यदि मृत्यु ही है और जब शरीर धारण कर ही भगवान् भी आये, तो इस नियम को भंग क्यों कर गये ? क्यों नहीं अन्य शरीर-धारियों की तरह उन्होंने भी जरा और मृत्यु-पथ का अवलम्बन किया ?

किन्तु यह तो उनका हर शरीरधारी के लिये एक मार्ग-दर्शन था। हर किसी को इस दृष्टान्त का अनुकरण करना है। तभी कृष्ण को भी पूजना सार्थक होगा। सिर्फ भगवान् मान कर पूज लेने से ही अनुयायी होना नहीं कहा जा सकता।

एक बूँद विष यदि कोई पी ले, तो सम्पूर्ण शरीर विषमय हो जाता है। उसी तरह एक बूँद अमृत यदि कोई पी ले, तो सम्पूर्ण शरीर अमृतमय हो जाता है। भगवान् जो अमृत है, उसे यदि कोई देख ले, छू ले, सुन ले या चख ले, तो वही हो जाना पड़ता है।

अणु-अणु जो व्याप्त भगवान् हैं, तो उनके सिवा न तो अणु है, न संसार है, न पञ्चभूत है, न माया का पर्दा है। उनके सिवा कुछ है ही नहीं—सब कुछ वे ही हैं—सब कुछ अमृत ही है, तो फिर कुछ सड़ने गलने छोड़ने या त्याज्य का प्रश्न ही नहीं उठता।

एक बूँद जल जैसे सागर में मिल जाय, तो जैसे बूँद के जल का अस्तित्व नष्ट नहीं होता, वैसे ही इस शरीर का अस्तित्व नष्ट नहीं होना चाहिए। एक टुकड़ा सोना यदि सोने के पर्वत से मिल जाय, तो अपने अस्तित्व को पर्वत करने के सिवा और कुछ शेष नहीं छूटता।

प्रत्येक प्राणी ब्रह्म का अंश है और अवतार है। स्वर्ण-पर्वत से टूटा हुआ टुकड़ा भी सोना ही है। भगवान् का हर अंश भगवान् है। सिर्फ सोये हुए भागवत गुणों को जागृत करना ही हर किसी का कर्त्तव्य है। इसी के लिए तन्त्र-साधना है। शरीर को भी मुक्त करना यानी शरीर में ब्रह्मत्व का समावेश करना अनिवार्य है, अन्यथा संसार को पूर्ण मुक्त भोग या भगवान् की पूर्ण उपलब्धि नहीं होगी।

हर कोई भगवान् के ही अंश हैं। अतः सभी सत्य सङ्कल्प हैं। यदि सृष्टि के अणु-अणु हर प्राणी ने अपनी नश्वरता का ही सङ्कल्प कर लिया है और पूजा किसी न किसी रूप में अज्ञान-मृत्यु और अन्धकार की ही करने लगे, तो मेरे अन्दर अवश्य एक ऐसी ज्योति जल रही है, जो इस भूल को—इस अन्धकार को खत्म करने का सङ्कल्प ले चुकी है, क्योंकि जिसकी कामना हो, जिसकी पूजा हो, वही मिलता है।

सत्य का हर अंश त्रिकाल-सत्य है। यह संसार प्रत्यक्ष सत्य है। खुले नयन मैं आकाश की अनन्तता के पार तक झांक कर देखा—अणु-अणु यही कह रहे थे—"मुझे मत छोड़ दो सड़ने गलने के लिए। तुम आत्मा हो, स्वयं अमृत-स्वरूप हो, अमृत का घूंट मुझे पीने दो—मेरे लिए तुम भी मृत्यु का सङ्कल्प मत करो। जिस डाल पर बैठे हो, उसी को मत काटो। न मैं स्वप्न हूँ, न मिथ्या हूँ—मैं सत्य हूँ। इसमें कीट-पतङ्ग की तरह साधना-रहित क्षुद्र भोग भोग कर तथा प्रचलित नश्वर-मिथ्यात्व का प्रवचन करके पलायन-वादिता के सिद्धान्त का अवलम्बन क्यों? भागकर जाना कहां है, जब अणु-अणु भगवान् को छोड़ कर और कुछ नहीं है?

अपने अङ्ग को, अपने हृदय को, अपनी बांहों को काटकर कोई भगवान् का या उस भगवती शक्ति का आलिङ्गन करना चाहे, तो यह कैसे सम्भव है?

* * *

नमामि श्री चक्र मंडलं

पण्डित रमेशचन्द्र शर्मा

ॐ नमामि गुरुं, भजामि गुरुं, नमामि पार-ब्रह्म-परमेश्वरीम् ।
नमामि श्री चक्र-मण्डलं, नमामि नित्यं श्री कुल-सुन्दरीम् ॥१॥

द्वार सायुज्य-मुक्ति के सुराऽसुर, गन्धर्व, किन्नर, मुनिगण खड़े,
काल महाकाल के विलय तत्व को देख चिन्तित पड़े ।
है कौन ऐसा मार्ग जिससे, भुक्ति और मुक्ति मिले
तब ध्यान परमेश्वरी का धर, श्री चक्र-पूजन को चले ॥२॥

महानिशा के काल में जब सकल पशु जन सो गये,
आये उस शुद्ध भूमि पर मधुरादि चन्दनानेक पुष्प लिये,
सङ्ग में कुलयोगिनी, कुल-द्रव्यादि से युक्त हो,
वीर-भावेश में सभी, अष्ट पाशों से मुक्त हो ॥३॥

ध्यान कर कुल गुरुओं का, परापर परमेष्ठी गुरू,
वटुकादि ध्यान धर भूत शुद्धि आदि किये ।
न्यास कवचादि कर सामान्य-विशेषार्घ स्थापन किये,
कलशादि स्थापन हो चुका तब कला-पूजनादि किये ॥४॥

ब्रह्म, शुक्र, कृष्ण रुद्र शाप विमुक्त पहले कारण को किया,
फिर वहीं ध्यान आनन्द भैरव-व आनन्द भैरवी का किया,
प्रार्थना की तभी हे सागरोत्पन्न सुधा हे मधु सुन्दरी,
वर्ण गन्ध मद हैं ब्रह्मा विष्णु महेश-रूप तव परमेश्वरी ॥५॥

द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ का शोषण, दहन, अमृत संस्कार कर,
योगिनी में सर्व शक्ति का आह्वान कर, पंच तत्व शोधन किया ।

आवरण पूजन तर्पण, गुरु, श्री, भोग, शक्ति योगिनी वीरादि पात्रों से किया,
मूर्ध्नि में गुरु आदि का हृदय में ध्यान आनन्द आनन्देश्वरी का किया ॥६॥

स्थूल, सूक्ष्म, शिव, सर्वतत्व, शुद्धि आदिक खण्ड ग्रहण किये,
पात्रादि स्तुति आत्म तर्पण कर, कुल योगिनी शक्ति को लिये,
बह गयी सुधा से सुधा शुद्ध, ध्यान में चित्त लवलीन हुआ,
अनहद का सुनाद सुन, मन और भी पुलकित हुआ ॥७॥

पुष्पाञ्जलि अर्पित कर, सुभगार्चा से तत्व क्लीं का ज्ञात हुआ,
भेदकर मूलाधार से सहस्रार, चित्त उन्मनातीत हुआ।
देखा जब जो वहाँ थी वह यहीं है और निश्चित यहीं है,
गद्गद् हुआ तब यह कहा, धन्य धन्य जीवन मेरा हुआ ॥८॥

यों प्रेम से जब अश्रु-धारा बह चली, अमृत की धारा गिरी,
खुल गये षट् चक्र सब, ज्ञान पल में सहज ही हो गया।
धन्य धन्य तुम श्री चक्र-देव धन्य धन्य हे श्री चक्र-मण्डल,
धन्य धन्य है जीवन सफल मेरा, जो दर्शन तेरा हो गया ॥९॥

दुर्लभ तन्त्र साहित्य (संस्कृत) में

'गुप्तावतार दुर्लभ तन्त्रमाला' के अन्तर्गत अब तक निम्न तन्त्र प्रकाशित हो चुके हैं। ये बहुत ही कम संख्या में छपे हैं। फलतः पहला संस्करण समाप्त होने ही वाला है। दूसरा संस्करण पता नहीं कब छपे। अतः तन्त्र-साहित्य के प्रेमियों को इनका मूल्य मनिआर्डर से भेजकर इन्हें तुरन्त मंगा लेना चाहिये।

महा-चीना-चार-सार तन्त्र	रु १-५०	निरुत्तर तन्त्र	यन्त्रस्थ
गुप्त-साधन तन्त्र	२-५०	तोडल तन्त्र	२-००
कुलार्णव तन्त्र	४-००	मन्त्र-कोष	२-००
काली-तन्त्र (भाषा टीका)	३-००	कामधेनु तन्त्र	२-५०
श्रीभुवनेश्वरी-रहस्य	३-००	निर्वाण तन्त्र	२-००
सांख्यायन तन्त्र	३-००	नील तन्त्र	३-००
परा-तन्त्र	३-००	परशुराम तन्त्र	१-००

पाँच रुपये से कम मूल्य की पुस्तकें मँगानेवाले बन्धु कृपया पुस्तक के मूल्य के साथ रजिस्ट्री डाकव्यय हेतु एक रुपया और भेजें। जो पुस्तकें चाहिए, उनके नाम म० आ० के कूपन पर लिख दें।

पं० देवीदत्त शुक्ल स्मारक
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
प्रयाग—६

ग्रहण-पुरश्चरण

श्री कापालिक उद्बोधनानन्द

द्वैमासिक रूप देख अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। साधुवाद लीजिए। भगवती आपका प्रयास सफल करें, जिससे पुनः इस भीषण युग में आप मासिक रूप दे सकें। आजकल की हालत जैसी है, क्या बड़े-क्या छोटे-सभी हाहाकार कर रहे हैं, त्रस्त हैं, आशंकित हैं, कौन जाने, आनेवाला कल इससे भी कहीं भयंकर रूप न ले। हम आप कर ही क्या सकते हैं ! समय की गति के अनुरूप ही बहना और उसके अनुकूल आचरण करना–यह तो युग-धर्म हुआ और उसको पलट देने की क्षमता रखना वा पलट कर दिखा देना हुआ कौल-धर्म ! कहिये, गलत तो नहीं कह रहा हूँ, पर पलट देने-वाला हो, तो कैसा हो ? लक्षावधि पुरश्चरण नहीं कर पाएँगे–साङ्गोपाङ्ग नियम का पालन नहीं करेंगे–उग्र साधना नहीं होगी, तब तो काल-चक्र आप ही को धक्का मार देगा। जब घुड़सवारी भी हुनर चाहती है, तो 'दिवा-रात्रि-विपर्ययी" बनने के लिये बिना हुनर के कैसे काम होगा !

कोई बात नहीं, आप तो छोटा प्रयोग चाहते हैं, तो लीजिए, आपके सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ ग्रहण-काल के पुरश्चरण की संक्षिप्त रूप-रेखा। इस वर्ष ५ जून व २९ नवम्बर को दो ग्रहण होने जा रहे हैं, उसी का लाभ उठाइये। टेरिए और देखिए, माई जरूर कुछ-न-कुछ कर ही दिखाएगी–क्या दिखाएगी, यह तो आपके श्रद्धा-विश्वास पर निर्भर होगा।

ग्रहण जब तक आँखों से दीखता रहे वा जिस स्थान पर ग्रहण हो रहा हो, वहाँ पर जब तक ग्रहण दृष्टिगोचर हो (मेघाच्छादित आकाश से भ्रमित न हो जाइयेगा), वहीं शास्त्रानुसार ग्रहण का पुण्यकाल माना जाता है। होने के लिए, तो प्रत्येक अमावास्या वा पूर्णिमा को ग्रहण होते हैं, परन्तु दृष्टिगोचर न होने के कारण उनका महत्व नहीं रहता है। अस्तु, जब तक पुण्यकाल रहे, उस अवधि में किया गया जप अत्यन्त पुण्यदायी माना गया है। मन्त्र के वर्णों की संख्या के अनुसार लक्षावधि किए गए जप का पुण्य ग्रहण-काल में केवल स्पर्श से मोक्ष-पर्यन्त जप करने से ही प्राप्त हो जाता है।

सबसे पहले ग्रहण के पूर्व स्नानादि करके आसन-शोधन, आचमन, धूप-दीप-स्थापन, प्राणायाम, दिग्बन्ध, न्यासादि करके सङ्कल्प कीजिए—

अमुक-मासे अमुक-पक्षे अमुक-ग्रहणे अमुक-गोत्रोत्पन्न अमुकानामोऽहं श्रीमद् इष्ट-देवता-प्रीत्यर्थं शास्त्रोक्त-पुण्य-फल-प्राप्ति-कामनया वा अमुक-मन्त्र-सिद्धि-कामनया अमुक-मन्त्रस्य स्पर्शारभ्य मोक्ष-पर्यन्त जपमहं करिष्ये—

ग्रहण-काल से कुछ पूर्व ही जप प्रारम्भ कर दीजिए और ग्रहण-पर्यन्त जप करते रहिए। ध्यान रहे, ग्रहण में मानसिक जप का ही विधान है। पाठ वा वाचिक जप का निषेध है। ग्रहण के बाद जितना जप हो चुका हो, उसका दशांश हवन, हवन का दशांश तर्पण और तर्पण का दशांश मार्जन व मार्जन का दशांश ब्राह्मण (वीर) का भोजन उचित है। अभाव में दशांश जप का चौगुना जप और करके १०८ आहुति देने से भी लोग काम चलाते हैं। ग्रहण-काल में दान का अत्यन्त पुण्य है। अतः कुछ तिल-पत्रादि सुवर्ण का दान भी अवश्य करना उचित है। कुछ विशेष बातें हैं, जो निम्नलिखित हैं:—

१ ग्रहण में यदि राशि से अनुकूल ग्रहण हो, तो ग्रहण देखते हुए उस बिम्ब में इष्ट-देवता का ध्यान करते हुए जप करना अत्यन्त प्रशस्त माना गया है।

२ ग्रहण-काल में समुद्र-गामिनी नदी में नाभि-पर्यन्त जल में स्थित होकर जप करना अत्यन्त पुण्य-दायी है। पुरश्चर्यार्णव में इसका विशेष महत्व उल्लिखित है।

३ शाबर मन्त्र ग्रहण में अत्यन्त सरलता से सिद्ध होते हैं। अतः उनकी संख्यानुसार उनका भी जप किया जाता है।

४ अपने नित्य किए जानेवाले सभी मन्त्रों का जप ग्रहण में अवश्य करना चाहिये, ताकि वे मलिनता को न प्राप्त हों।

५ ग्रहण-काल में दीक्षादि के लिये कोई अन्य विचार की आवश्यकता नहीं है।

६ वीर-भाव वालों को चाहिए कि ग्रहण-समय में पञ्चतत्व से पूजन के उपरान्त जप करें और पशु-भावावलम्बन न करें, जैसा कि प्रचलित है।

७ ग्रहण के बाद स्नान (चाहे अशक्तावस्था में मन्त्र-स्नान ही हो) करके यज्ञोपवीत बदल कर तब दशांश हवनादि करें।

८ ग्रहण में श्राद्ध आवश्यक है। स्मार्त्त मतावलम्बी प्रायः हेम वा आम श्राद्ध करते हैं।

९ स्मार्त्तमतानुसार निर्णयसिन्धु में अनेक प्रकार के विधि-निषेधों का वर्णन आया है। यथा सूर्यग्रहण में चार पहर पहले और चन्द्र-ग्रहण में तीन पहर पहले ही भोजन कर लें, क्योंकि उनका सूतक आरम्भ हो जाता है। माधव के मत से ग्रस्तास्त-ग्रहण में पुनः बिम्ब-दर्शन करने के बाद अर्थात् पुनः चन्द्रोदय वा सूर्योदय होने पर भोजन करना विहित है। वेध-काल तथा ग्रहण में पक्वान्न-ग्रहण निषिद्ध है। ग्रहण का बासी अन्न भी नहीं खाना चाहिये। आरनाल (नरसल), दूध, मट्ठा, दही, घृत से पके अन्न और मणि में स्थित जल राहु से दूषित नहीं होता है। अनेक ग्रन्थों तथा लोकाचार के अनुसार खाद्य वस्तुओं में ग्रहण-काल में कुश डालने से वस्तु अपवित्र नहीं होती। रविवार को सूर्य-ग्रहण तथा सोमवार को चन्द्र-ग्रहण होने पर चूड़ामणि योग होता है, जो अन्य ग्रहणों की अपेक्षा करोड़ गुना अधिक फलदायी माना जाता है। ग्रहण में मूत्र-पुरीषोत्सर्ग दरिद्रता, कीट-योनि; सोने से आयु-क्षीणता; विषय-सेवन से शूकर-योनि; खाने-पीने से नरक; उबटन लगाने से कुष्ट होता है। बाल-वृद्ध-रोगी के लिए कोई नियम नहीं है।

१० ग्रहण-जनित शान्ति के लिए सुवर्ण-सर्प के फन पर मोती रख उसे घृत से पूर्ण ताँबे वा काँसे के पा में रखकर दक्षिणापूर्वक दान करे। सूर्यग्रहण में सोने का नाग वा सोने का चन्द्रमा और चन्द्रग्रहण में चाँदी का चन्द्रमा बनवाकर अथवा तिल, घीं, सुवर्णादि दान का विधान है। दान का मन्त्र निम्नलिखित है:—

तमोमय महाभीम सोम-सूर्य-विमर्दन।
हेम-तार-प्रदानेन मम शान्ति-प्रदो भव॥
विधुं-तुद नमस्तुभ्यं सिंहिकानन्दनाच्युत।
दानेनानेन नागस्य रत्त मां वेधजाद्भयात्॥

११ ग्रहण-शान्ति के लिये मन्त्रौषधि स्नान का भी विधान है:—चार घड़े जल से भरे लेकर उसमें सप्त-मृत्तिका (गज, अश्व, सर्प-बांबी, दो नदी के संगम, कुण्ड, गोष्ठ, राज-द्वार की मिट्टी), पंचपल्लव, पञ्चगव्य, पंचरत्न, पंचत्वचा, गोरोचन, पद्मक, शंख, कुंकुम, रक्तचन्दन, सीपी, स्फटिक, तीर्थ-जल, सफेद सरसों, गूगुल, महुआ, देवदारु, विष्णु-क्रान्ता, शतावा, बला, सहदेई, दोनों हल्दी, हाथी के दाँत, उशीर, चन्दन—इन सबको घड़ों में डाल कर चार ब्राह्मणों द्वारा स्वस्ति-वाचन कराकर उनकी सफेद माला व चन्दन से पूजा करें। ब्राह्मण इन कलशों में देवताओं का आवाहन करें। यथा—

सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः।
चायान्तु यजमानस्य दुरित-त्तय-कारकाः॥
योऽसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रभुर्मतः।
सहस्र-नयनः शक्रो ग्रह-पीड़ां व्यपोहतु॥
मुखं यः सर्व-देवानां सप्तार्चिरमित-द्युतिः।
चन्द्रोपराग-सम्भूतमग्निः पीडां व्यपोहतु॥
यः कर्म-सात्ती लोकानां धर्मो महिष-वाहनः।
यमश्चन्द्रोपरागोत्थां ग्रह-पीड़ां व्यपोहतु॥
रत्तो-गणाधिपः सात्तान्नीलाञ्जन-सम-प्रभः।
खड्ग-हस्तोऽति-भीमश्च ग्रह-पीड़ां व्यपोहतु॥
नाग-पाश-धरो देवः सदाम-कर-वाहनः।
स जलाधिपतिर्देवो ग्रह-पीड़ां व्यपोहतु॥
प्राण-रूपो हि लोकानां सदा कृष्ण-मृग-प्रियः।
वायुश्चन्द्रोपरागोत्थां ग्रह-पीड़ां व्यपोहतु॥
योऽसौ निधि-पतिर्देवः खड्ग-शूल-गदा-धरः।
चन्द्रोपराग-कलुषं धनदोऽत्र व्यपोहतु॥

ोऽसाविन्दु-धरो देवः पिनाकी वृष-वाहनः ।
न्द्रोपराग-पापानि स नाशयतु शंकरः ।
ैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च
ह्म-विष्ण्वर्क-रुद्राश्च दहन्तु मम पातकम् ॥

इस प्रकार वरुण मन्त्रों से आवाहन करके इनको ताम्रादि पत्र पर लिखवा कर यजमान के मस्तक रख करके इन कलशों को हाथ में लेकर 'पूर्वोक्त मन्त्रों जमान को स्नान करावें। फिर आचार्य को सुवर्ण वरण कर प्रदान करके दक्षिणा गोदानादि दें। तिलों याहृतियों को पढ़कर हवन करके यथा शक्ति दान करें। हण में सूर्य भगवान् के नाम-मन्त्रों को पढ़कर मन्त्र-न करे। इससे ग्रहण-जनित समस्त दोषों की शान्ति ी है। विशेष निर्णय-सिन्धु आदि में देखना चाहिए ..

"लिखाते चलो उस्ताद," शागिर्द बोला, "ऐसा ाओ कि सिवाय तुम्हारे और कोई करा ही न सके। मार करके सब तुम्ही को आचार्य बनावेंगे। तब खूब र्णादि दान मिलेगा। अजी, हमारी सुनो, तो अब से कुछ ादक जी की प्रशंसा लिखना शुरू करो। देखा नहीं, ों' में विज्ञापन निकला है कि जो आचार्य जिस क्रम के अपना नाम पता भेजें, तो उनके निकटस्थ लोगों को के सम्पर्क में भेजा जाए। तुम्हारा भी विज्ञापन छपने ता, तो बड़ा मजा आता।"

"क्या बकवास शुरू की", उस्ताद गरजे, "मुझे क्या पड़ी है अपना विज्ञापन छपवाने की। जिसे सौ दफे पड़ी हो, आवे वरना न आवे। जब मैं मूड में रहा ं, तो तू कदापि टोंका मत कर .. .."

"अरे उस्ताद !" शागिर्द बोला, "कुछ तो सोचो। तो मैं भी बुड्ढा हो चला। नहीं तो खैर, सब प्रबन्ध ही कर डालता था, पर अब उतना सपरता नहीं है। ापन से बड़ा फायदा होगा। जरा विचार तो करो, मूड आफ कर लेना। आखिर चेला मूड़े बिना न ारा काम चलेगा, न हमारा। फिर कभी-कभी तो वहारिक दृष्टि-कोण से देखा करो। अरे, दो-चार ात्मक वाक्यों से होता हीं क्या है।"

"मैं और तारीफ करूँ", उस्ताद उवाच, "यह तो मुझसे ही नहीं सकता और उस पर से मैं विज्ञापन के लिए रीफ करूँ! देखा नहीं, स्वामी दिव्यानन्द जी ने नी अच्छी बात लिखी कि दतिया में हुए जगद्गुरु शंकराचार्य और पूज्य-प्रवर स्वामी जी के भाषण-विचारादि कुछ प्रकाशित हों, तो उसके उत्तर में पत्रकारों को दोष देकर टिप्पणी पूरी हो गई। यह नहीं कि दतिया-स्थित किसी को लिखकर विवरण मँगा लेते, तो क्या हो जाता! सब दोष दूसरों का ही है, क्या खूब रही! अगर पूज्यवर स्वामी जी को ही लिखते, तो ही कुछ-न-कुछ जरूर लिखकर आ जाता—क्या इसी की तारीफ करूँ!

खैर, आप कहेंगे कि वीर-मार्ग-विषयक तो ग्रहण में लिखा ही नहीं, तो कहूँ—संकेत हर जगह है। वीर-भाव-परक में आपका पंचगव्य पञ्चामृत—सभी दूसरे होते हैं। उसमें उपवासादि का निषेध है, वरन कुल-पुष्प-युक्त दीप-कुलासन, वीर-आसन, वीर-माला लेकर पञ्चतत्त्वात्मक यजन करके वीर-वेष वा रक्त-कौशेय वस्त्रादि धारण करके जप करना और कुल-द्रव्यों से हवन करना विहित है। यह सब तो आपको गुरु-कृपा से हीं मिलेगा और **"बुद्धि-भेदं न कारयेत्।"** अपना राग बजा कर मैं बुद्धि-भेद क्यों उत्पन्न करूँ।

वीर-साधना के लिये ग्रहण से बढ़ कर कुछ है ही नहीं, पर वह उत्तर साधक, योग्य गुरु के निर्देशनादि के विना सम्भव नहीं है और न सर्व-साधारण के लिए है ही। मैं ऐसा कुछ भी स्पष्ट लिखना नहीं चाहता, जिससे या तो बुद्धि-भेद वाली बात आये या आप अपने मन से पढ़ कर करें और धोखा खा जाएं। चलिए, टेरना है और टेरने के लिए बहाने भी हैं। जब यथा अवसर कुछ बदला-बदली होती रहती है, तो ऊब नहीं होती। इससे अधिक क्या लिखा जाए। वीर-मार्ग से अभिषेक-मन्त्रादि पृथक् होंगे, जो स्वतः लोगों को गुरु-परम्परागत प्राप्त होते हैं।

यों तो हर पर्व पर अभिषेकादि का विधान है। नाना कामनाओं की सिद्धि भी होती है। यदि माई लिखवाएगी, तो वे सब भी क्रमशः आपके सामने यथा समय प्रस्तुत हो जाएँगे। नहीं तो क्या लिखूँ...

"अजी उस्ताद", शागिद बोला, "यह रोना कैसा शुरू कर दिया! अजी, लिखना तो कलम तोड़ कर चाहिए और तुम्हारी लेखन-शैली ही तो आकर्षण-वाली है, वरना तुम्हारे व्यक्तित्व में क्या धरा है कि जो तुम्हारे स्वरूप को देखे, तो करने धरनेवाला भी भाग खड़ा हो, पर क्या कहें तुम्हारे खोखले सिद्धान्तवाद को, जिसे तुम यथावसर बदलते रहते हो—

"अरे, तू मेरा चेला बनता है," उस्ताद बोले, "पर बोलता तो गुरु बन कर है। तेरी बोली है कि जैसे बिच्छू का डंक ! क्या मेरे व्यक्तित्व में कुछ नहीं है, तो क्या, हुआ, मेरे माथे पर वशीकरण तिलक तो लगा ही रहता है, जो कि किसी को भी मोहित करने के लिए पर्याप्त है। हां बेटे, जरा सिगरेट का तम्बाकू निकालकर उसमें गाँजा तो भर दे–कुछ तुरीयानन्द हो जाए, तो गाड़ी आगे बढ़े––

आषाढ़ मास में प्रतिपदा से नवरात्रारम्भ होता है, उसमें प्रतिपद से तृतीया तक "अम्बुवाची" नामक महायोग होता है। इन दिनों कामाख्या महापीठ पर विशेष पूजन होता है, जो स्त्रियों और पूर्णाभिषिक्तों द्वारा सम्पन्न किया जाता है, क्योंकि महापीठ से उन दिनों रजःस्राव होता है। उसी समय का चीर पंडे लोग रखते हैं और यात्रियों को देते हैं। यह समय भी अत्यन्त उत्कृष्ट है और इसमें की गई साधना अत्यन्त फलदायी होती है। आप अपने निकटस्थ किसी बंगाली से पूछकर इसका प्रारम्भ समय जान सकते हैं। इसमें जप-पाठादि सभी का महत्व है, विशेष कर यदि कामाख्या में जाकर किया जाए, तो कहना ही क्या।

नवरात्र के ही समान इस पर्व का प्रचलन बंगाल-आसाम में है, परन्तु अन्य भागों में नहीं है। इस शुभ अवसर पर भी विशेष पूजनादि करके लाभ अवश्य उठाना चाहिए। विधान नवरात्र वत् ही है। रक्तवस्त्र, रक्तपुष्प, रक्तवर्णमाला इत्यादि का प्रयोग विहित है। बड़े आश्च की बात है कि किसी भी महत्वपूर्ण पुस्तक में इस प का विधान नहीं मिलता। इसी समय योनि-कवच, योनि-स्तोत्रादि का पाठ-योनि-मन्त्र-जपादि पुरश्चरण होता है।

यतः––कामाख्या वरदे देवि नील-पर्वत-वासिनि।
पञ्च-देवि जग माता योनि-मुद्रा नमोऽस्तुन्ते॥

माई वहाँ स्वयं त्रिकोण-रूपा हैं। आशा है, आप अपने किसी सुयोग्य जानकार व्यक्ति से, जो कामाख्या या आसाम में हो, सम्पर्क स्थापित करके विशेष विवरण मंगा कर प्रकाशित कराने की कृपा करेंगे, क्योंकि सर्व-साधारण तक जानता है कि शाक्त-साधना में प्रमुख स्थली कामरूप ही है और वहीं का विशेष विवरणादि पद्धति नहीं मिलती। जो कुछ हमने अपने लोगों से जाना है, वह संकेत-रूप में लिख दिया है, परन्तु प्रामाणिक विवरण के बिना उपरोक्त का स्पष्टीकरण सम्भव नहीं है।

अच्छा, इस लेख के लिए इतना ही सही–फिर कभी हमारी बकवास सुनिएगा। अजी हम क्या जानें! लेखनी की नोक पर तो कोई और ही बैठा है––वही जो मन में है, वही जो तन में है, वहीं जो सबमें है, वही जिसे कौन जाने, वही जिसे सब जानते हैं, वही लिखती-लिखवाती है, वही पढ़ती-पढ़वाती है, वही वही वही और मैं क्या जानूं––

तथापि त्वद्भक्तिर्मुखरयति चास्माकमसिते!
तदेतत् क्षन्तव्यो न खलु पशु-रोषः समुचितः।

हिन्दी-तन्त्रसार

[गतांक पृष्ठ ४० का शेषांश]

यह विद्या महाविद्या है; सुख, मुक्ति, राज्य और सौभाग्य प्रदान करती है। इस मन्त्र से साधना करनेवाला साधक जो-जो सिद्धि चाहता है, वह उसे तत्काल प्राप्त होती है। इसकी साधना-विधि निम्न प्रकार है—

भोजन के बाद बिना आचमन किए मूलमन्त्र से बलि अर्पित करे। फिर हृदय में देवी का ध्यान करते हुए अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए मन्त्र का जप करे। उच्छिष्ट द्रव्य की बलि देना ही इसमें प्रशस्त है। इस साधना में तिथि और नक्षत्रादि के विचार की आवश्यकता नहीं है। सभी समय यह साधना की जा सकती है और इसमें अङ्ग-न्यासादि की भी आवश्यकता नहीं है। अरि-दोषादि का विचार इसमें नहीं किया जाता। अशौच आदि दोषों से इस साधना में कोई बाधा नहीं पड़ती। अन्य किसी भी नियम का इसमें प्रतिबन्ध नहीं है। इस मन्त्र के अभ्यासी साधक के समक्ष कोई विघ्न नहीं आता।

उच्छिष्ट-चाण्डालिनी का ध्यान निम्न प्रकार करे—

शवोपरि समासीनां रक्ताम्बर-परिच्छदाम्।
रक्तालङ्कार-संयुक्तां गुञ्जा-हार-विभूषिताम्॥
षोडशाब्दां च युवतीं पीनोन्नत-पयोधराम्।
कपाल-कर्तृका-हस्तां परां ज्योतिः-स्वरूपिणीम्॥

अर्थात् देवी उच्छिष्ट चाण्डालिनी शवासन पर बैठी हैं; रक्त-वस्त्र पहने हैं; रक्त-वर्ण के आभूषणों से विभूषित हैं; गुञ्जा-हार से शोभित सोलह वर्ष की युवती हैं; दोनों उरोज समुन्नत हैं; बाएँ हाथ में नर-कपाल और दाएँ में कैंची लिए हैं तथा ज्योतिः-स्वरूपा हैं।

मन्त्रज्ञ साधक उक्त प्रकार ध्यान कर उच्छिष्ट पदार्थ की बलि अर्पित कर एकाग्र-चित्त से जप करे। मन्त्र-सिद्धि के लिए उच्छिष्ट ही पदार्थ द्वारा हवन करे। इस मन्त्र के जप से सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

साधना की दूसरी विधि यह है कि साधक सभी इच्छाओं की पूर्ति के लिए होम और तर्पण करे। फिर स्थण्डिल में चतुरस्र मण्डल बनाकर उस मण्डल के बीच में मूलमन्त्र से देवी की पूजा करे। पहले 'मूलं मण्डलाय नमः' इस मन्त्र से मण्डल की पूजा करें। तब अग्नि-स्वरूपा देवी का ध्यान कर होम करे। तन्त्र में लिखा है कि देवी को अग्नि-स्वरूपा ध्यान कर दही और श्वेत सरसों से युक्त चावल द्वारा होम करे। इस प्रकार एक हजार होम करने से राजा वश में होता है। मार्जार के मांस द्वारा होम करने से साधक सभी शास्त्रों में पारङ्गत होता है। मधु-युक्त छाग-मांस के सहस्र होम से साधक की कुल-देवता सिद्ध होती है। विद्या की अभिलाषा रखनेवाला साधक शर्करा-युक्त खीर से होम करे। इससे साधक चौदह विद्याओं का ज्ञाता होता है। घृत, मधु और शर्करा-युक्त बिल्व-पत्र से एक मास तक एकाग्र मन से होम करने से बन्ध्या नारी को भी चिरजीवी पुत्र की प्राप्ति होती है। मधु-युक्त रक्त बदरी-पुष्प के होम से भाग्यहीन नारी सौभाग्यवती होती है। रजस्वला के वस्त्र के टुकड़े-टुकड़े कर उन्हें मधु और खीर से युक्त कर यदि होम करे, तो तीनों लोक वशीभूत होते हैं।

यह मन्त्र सभी पापों को नष्ट करता है। इसके उच्चारण मात्र से पाप-राशि भस्म हो जाती है। उच्छिष्ट-दोष को छोड़कर पवित्र भाव से इस मन्त्र का जप करना चाहिए।

इस देवता के पुरश्चरण में जपादि की संख्या का कोई उल्लेख नहीं मिलता, तथापि एक हजार आठ बार मन्त्र का जप और जप का दशांश होम करना विधेय है। किन्तु निबन्धकार का मत है कि यह सिद्ध-विद्या है; अतः इनकी सिद्धि के लिए पुरश्चरण की आवश्यकता नहीं है।

७४ धूमावती—फेत्कारिणी तन्त्र में लिखा है कि 'धूं धं धूमावती स्वाहा'—यह धूमावती-मन्त्र शत्रुओं का नाशक है। इसकी पूजा-पद्धति निम्न प्रकार है—

प्रातःकृत्यादि करने के बाद भूतशुद्धि एवं प्राणायाम कर न्यास करे। यथा—

ऋष्यादि-न्यास—पिप्पलाद-ऋषये नमः शिरसि, निवृच्छन्दसे नमः मुखे, धूमावत्यै देवतायै नमः हृदि।

	कराङ्ग-न्यास	षडङ्ग-न्यास
धां	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
धीं	तर्जनीभ्यां स्वाहा	शिरसे स्वाहा
धूं	मध्यमाभ्यां वषट्	शिखायै वषट्
धैं	अनामिकाभ्यां हूँ	कवचाय हूँ
धौं	कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्	नेत्र-त्रयाय वौषट्
धः	करतल-करपृष्ठाभ्यां फट्	अस्त्राय फट्

इसके बाद ध्यान करे। यथा—

विवर्णा चञ्चला रुष्टा दीर्घा च मलिनाम्बरा।
विवर्ण-कुण्डला रूक्षा विधवा विरल-द्विजा॥
काक-ध्वज-रथारूढा विलम्बित-पयोधरा।
सूर्प-हस्ताति-रूक्षाक्षी धूत-हस्ता वरान्विता॥
प्रवृद्ध-घोणा तु भृशं कुटिला कुटिलेक्षणा।
क्षुत्-पिपासार्दिता नित्यं भयदा कलह-प्रिया॥

अर्थात् भगवती धूमावती विवर्णा हैं; चञ्चला, क्रोधी और विशालकाय हैं। वस्त्र मैले हैं। केश विवर्ण और रूखे हैं। दांत विरल और स्तन लटके हुए हैं। ये विधवा रूप धारण किए हैं और कौवे की पताका से युक्त रथ पर बैठी हैं। इनकी आँखें बड़ी रूखी हैं और हाथ काँपते रहते हैं। एक हाथ में सूप और दूसरे में वर-मुद्रा है। नाक बहुत लम्बी है; स्वभाव और दृष्टि में कुटिलता है। ये भूख और प्यास से व्याकुल, सदा भयङ्कर रूपवाली और कलह-प्रिया हैं।

इस प्रकार ध्यान कर पूजा करे। पुरश्चरण के लिए कृष्ण-पक्ष की चतुर्दशी से उपवास रखे और किसी सूने घर, श्मशान या वन-प्रदेश में दिन-रात मौन रहते हुए एक लाख बार मन्त्र-जप करे। पुरश्चरण-काल में उष्णीष और आर्द्र वस्त्र धारण करना आवश्यक है। फिर शत्रु के नाम के ऊपर मूलमन्त्र लिखकर उसके ऊपर शिवलिङ्ग का स्थापन कर पूजन-पूर्वक जप में लगे। अन्यत्र लिखा है कि शिव-लिङ्ग का निर्माण कर **'अमुकं मारय'** इस प्रकार शत्रु नाम का निर्देश कर जप करना चाहिये। इस प्रकार पाँच सौ बार मन्त्र-जप करने पर उक्त शत्रु ज्वर-ग्रस्त होगा। पञ्चगव्य या दूध द्वारा होम करने से उसका ज्वर छूट सकेगा। उसके बाद पञ्चोपचारों से देवी की पूजा कर जप करे।

हरिद्रा-पत्र पर शत्रु का नाम लिखकर किसी वन के बीच में डालकर उसके ऊपर उक्त-मन्त्र का अयुत (दस हजार) जप करे । इससे उक्त शत्रु का उच्चाटन होगा ।

श्मशान की अग्नि में कौए को दग्ध कर उसकी भस्म लेकर उसे १०८ बार उक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित करे । इस भस्म को शत्रु का नामोच्चारण करते हुए आठों दिशाओं में फेंके । इससे भी शत्रु का उच्चाटन होता है । कृष्ण-पक्ष में श्मशान की भस्म से शिव-लिङ्ग बनावे । उस पर शत्रु-नाम सहित उक्त मन्त्र लिखकर पूजा करे और भैंस के दूध द्वारा धूप देकर जो जो पदार्थ शत्रु के अमङ्गल-सूचक हैं, वे ही द्रव्य प्रदान करे । इस प्रकार पूजन करने से देवी महिषी-रूप धारण कर साधक के शत्रु का शीघ्र ही विनाश करती हैं ।

श्मशान-भस्म से शिव-लिङ्ग बनावे । पुष्पादि से उसकी पूजा करे । **'हे भगवन्'** इस प्रकार उन्हें सम्बोधन कर मन-ही-मन कर्तव्य की चिन्ता करते हुए नीम और काक-पक्ष को एकत्र लेकर उसके ऊपर १०८ बार मन्त्र का जप करे । फिर **'अमुकं द्वेषय द्वेषय'** कहकर मूलमन्त्र का उच्चारण कर धूप प्रदान करे । इस प्रयोग से शत्रु-वर्ग में एक दूसरे के बीच महान् विद्वेष उत्पन्न होगा । इस विद्वेष की शान्ति करनी हो, तो चिता-काष्ठ लाकर उसकी अग्नि जलावे और उस अग्नि में दूध से हवन करे ।

रजस्वला के रक्ताक्त वस्त्र द्वारा निर्मित धूप को जलाकर यदि निवेदन करे, तो कालिका गृध्र-रूप से आकर शत्रु का नाश करती हैं । निर्माल्य पत्र-पुष्पादि द्वारा धूप देने से इस प्रयोग की शान्ति होती है ।

वराह-कर्ण द्वारा धूप देने से देवी रात्रि-काल में शूकर-रूप में आकर शत्रु-कुल का नाश करती हैं ।

अश्वत्थ-पत्र की धूप देकर पञ्चगव्य अथवा केवल दूध अथवा घृत-मधु और शर्करा इस त्रिमधु द्वारा होम करने से सभी प्रकार के अभिचार-दोषों की शान्ति होती है ।

यज्ञोडुम्बर आदि क्षीरि-वृक्ष की कील बनाकर उसके ऊपर शत्रु-नाम-सहित धूमावती का मन्त्र लिखे । फिर इस कील के ऊपर मूलमन्त्र का जप कर शत्रु के दोनों पैरों को भूमि में कील द्वारा जटित करने की भावना करे । इससे शत्रु का उच्चाटन होता है ।

शत्रु के दोनों पैरों की धूल और घृत द्वारा पक्षियों को बलि देकर चिता-भस्म के ऊपर मूलमन्त्र का जप करे । फिर उसी भस्म को शत्रु के घर के भीतर गुप्त रूप से पहुँचावे । इससे शत्रु का उच्चाटन होगा ।

७५ भद्रकाली—आरम्भ में प्रासाद-वीज (हौं) का उच्चारण कर 'कालि' कहे । फिर 'महाकालि' शब्द कहकर दो बार 'किलि' पद का उच्चारण करे । अन्त में **'फट् स्वाहा'** कहे । अर्थात् **'हौं कालि महाकालि किलि किलि फट् स्वाहा'**—यही भगवती भद्रकाली का महामन्त्र है ।

इस मन्त्र से भद्रकाली की पूजा कर प्रतिदिन १०८ बार मन्त्र-जप करे । जप के लिए १०८ दाने की जप-माला का प्रयोग करे । भगवती भद्रकाली ध्यान करने पर अपने भक्तों के समस्त दुःख दूर करती हैं ।

पूजा-पद्धति यह है कि भूत-शुद्धि आदि से लेकर प्राणायाम तक की क्रिया कर शिव-लिङ्ग में गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य—इन पञ्चोपचारों से पूजन कर देवी का ध्यान करे । यथा—

क्षुत्-क्षामा कोटराक्षी मसि-मलिन-मुखी मुक्त-केशी रुदन्ती;
नाहं तृप्ता वदन्ती जगदखिलमिदं ग्रासमेकं करोमि ।
हस्ताभ्यां धारयन्ती ज्वलदनल-शिखा-सन्निभं पाश-युग्मं;
दन्तैर्जम्बू-फलाभैः परिहरतु भयं पातु मां भद्रकाली ॥

अर्थात् क्षुधा (भूख) के कारण क्षीण शरीरवाली, धँसी हुई आँखों वाली, स्याही के समान श्याम-मुखी, बिखरे केशवाली, रुदन-शीला और 'मैं तृप्त नहीं हूँ; इस सारे संसार को मैं अपना एक ग्रास बनाऊँगी' यह कहनेवाली, दोनों हाथों में प्रज्वलित अग्नि-शिखावत् प्रकाशमान दो पाश धारण करनेवाली, दाँतों से जामुन-फल जैसी प्रभा फैलानेवाली भगवती भद्रकाली मेरे भय को दूर करें और मेरी रक्षा करें।

देवी भद्रकाली की उपासना से शत्रु का शीघ्र ही दमन हो जाता है। जो साधक जिस कामना से शत्रु-निग्रह-कारिणी भद्रकाली की उपासना करता है, उसकी वही कामना पूरी होती है।

कुछ का मत है कि इन महादेवी के पुरश्चरण में दक्षिण कालिका की पुरश्चरण-पद्धति के अनुसार कार्य करे, किन्तु इनके मन्त्र का पुरश्चरण एक हजार आठ बार के ही जप से होता है।

७६ उच्छिष्ट-गणेश–'ॐ हस्ति-पिशाचि लिखे स्वाहा' अथवा 'गं हस्ति-पिशाचि लिखे स्वाहा'-समस्त मन्त्रों में सार-भूत उच्छिष्ट-गणेश का उक्त मन्त्र साधारण व्यक्ति को नहीं देना चाहिए। सभी तन्त्रों में इस मन्त्र को गोपनीय बताया गया है। संसार की हित-कामना से इसे प्रकाशित किया गया है।

इस मन्त्र का पुरश्चरण सोलह हजार जप से होता है। विशेष नियम यह है कि कृष्ण पक्ष की चतुर्थी तिथि तक नारी-सहयोग पूर्वक अर्थात् स्त्री-सङ्ग नियमित रखते हुए प्रतिदिन एक हजार जप करे। प्रतिदिन देवता को मधु से स्नान कराकर गुड़-पायस का नैवेद्य अर्पित करे। भोजन के बाद बिना आचमन किए जूठे मुँह ही इस देवता का मन्त्र जप किया जाता है। जप करते समय मन में यह विचार करे कि 'मैं गणेश हूँ; मैं सर्वदा सन्तुष्ट हूँ।'

श्वेत आकन्द या रक्त चन्दन की एक अंगुष्ठ बराबर प्रतिमा उच्छिष्ट-गणेश की बना ले और उस मूर्ति में प्राणप्रतिष्ठा कर विप्र, वह्नि तथा गुरु के समीप सोलह हजार मन्त्र-जप करने से शीघ्र मन्त्र-सिद्धि होती है। उच्छिष्ट-मुख और अपवित्र भाव से ही इस देवता का मन्त्र-जप, पूजादि करना चाहिए।

मतान्तर से शुद्ध मुख से भी जप-पूजादि का विधान है। कुछ का मत है कि इस देवता की उपासना में पूजा की आवश्यकता नहीं है; केवल मानसिक जप ही करना चाहिये। कराङ्ग-न्यास न कर 'मैं ही स्वयं गणेश-स्वरूप हूँ', इस प्रकार चिन्तन करते हुए जप करे।

गर्ग मुनि के मत से निर्जन जङ्गल में रक्त-चन्दन लगा कर ताम्बूल चर्वण करते हुए जप करे। तन्त्रान्तर में लिखा है कि साधक विविध आभूषणों से सज्जित होकर निरन्तर जप करे। कुछ का कथन है कि देवता की पूजाकर मोदक चर्वण करते हुये जप करे।

भृगु मुनि का कथन है कि उच्छिष्ट-गणेश की उपासना में फल खाते हुए जप करे। विभीषण के मत से मांस का नैवेद्य अर्पित कर उसी नैवेद्य को खाते हुए जप करे।

उच्छिष्ट-गणेश का विशेष प्रयोग यह है कि राज-द्वार, वन-भूमि, सभा, गोत्र-समाज, विवाद, व्यवहार, संग्राम, शत्रु-सङ्कट, नौका, कानन, द्यूत-कार्य, विपत्-काल, ग्राम-दाह, चौर-भय और सिंह-व्याघ्रादि-भय में इस देवता का मन्त्र स्मरण करने मात्र से जैसे सूर्य द्वारा अँधेरा दूर हो जाता है, वैसे ही सभी विघ्न समाप्त हो जाते हैं।

यक्ष-पति कुबेर ने विविध उपहारों से इन्हीं उच्छिष्ट-गणेश की उपासना की, जिससे उन्होंने अभीष्ट फल प्राप्त कर धनेश्वरत्व लाभ किया।

मूल-मन्त्र से १०८ बार अभिमन्त्रित अपामार्ग की समिधा से इस देवता का होम करने से साधक सौभाग्यवान् होता है।

वानरास्थि से निर्मित कीलक को उच्छिष्ट-गणेश के मन्त्र से अभिमन्त्रित कर जिसके घर में स्थापित किया जाय, उस व्यक्ति का उच्चाटन होता है। इस कीलक को किसी दूकान में यदि रखा जाय, तो वहाँ क्रय-विक्रयादि व्यवसाय नहीं होगा। शौण्डिक (मद्य-व्यवसायी) के घर में उक्त कीलक को रखने से उस घर में विद्यमान मद्य विकृत हो जायगी।

वेश्यालय में उक्त कीलक रखे, तो वेश्या को ग्राहक न मिलेंगे। किसी अविवाहिता कन्या के घर में कीलक खे, तो उसका विवाह नहीं होगा। मनुष्यास्थि-निर्मित कीलक उक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित कर जिसके घर में रखा जाय, सकी शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है।

उक्त कीलक को उठाकर फेंक देने से सभी दोष शान्त हो जाते हैं। जिस व्यक्ति का नाम लेकर इस मन्त्र का क हजार बार जप किया जाता है, वह व्यक्ति अवश्य वशीभूत होता है, इसमें सन्देह नहीं।

विवाहार्थी व्यक्ति पाँच हजार होम करे, तो उत्तम रमणी को प्राप्त करता है। अयुत-संख्यक होम करने से शीघ्र ही राजा वशीभूत होता है।

उक्त मन्त्र का एक कोटि जप करने से साधक अष्टसिद्धियों का स्वामी होता है; शून्य में गमन करने की शक्ति से मिलती है और वह सर्वज्ञ होता है।

इस मन्त्र को भूर्ज-पत्र पर लिखकर कण्ठ या मस्तक में धारण करे, तो साधक के सौभाग्य की वृद्धि होती है और उसको सब प्रकार से रक्षा होती है, इसमें सन्देह नहीं।

७७ धनदा देवि—हे देवि ! विन्दु-समन्वित त-वर्ग का चौथा वर्ण, मायवीज, श्रीं वीज, सम्बोधनान्त 'रति-प्रिया' और 'स्वाहा' कहने से 'धं ह्रीं श्रीं रति-प्रिये स्वाहा' यह मन्त्र प्रस्तुत होता है। इसी मन्त्र से धनदा देवी की पासना करे। यह मन्त्र सभी मन्त्रों में श्रेष्ठ है।

'धं श्रीं ह्रीं रति-प्रिए स्वाहा'—यह धनदा-मन्त्र का दूसरा रूप है। कुबेर ने इसी मन्त्र को मान्यता दी है।

पूजा-पद्धति यह है कि प्रातः-कृत्य से प्राणायाम तक के कर्म कर ऋष्यादि न्यास करे—

कुबेर-ऋषये नमः शिरसि। पंक्तिश्छन्दसे नमः मुखे। धनदायै देवतायै नमः हृदि।

अब कर-षडङ्ग-न्यास करे। यथा—

कराङ्ग-न्यास		षडङ्ग-न्यास
ॐ ह्रां	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
ॐ ह्रीं	तर्जनीभ्यां स्वाहा	शिरसे स्वाहा
ॐ ह्रूं	मध्यमाभ्यां वषट्	शिखायै वषट्
ॐ ह्रैं	अनामिकाभ्यां हूँ	कवचाय हूँ
ॐ ह्रौं	कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्	नैत्र-त्रयाय वौषट्
ॐ ह्रः	करतल-करपृष्ठाभ्यां फट्	अस्त्राय फट्

इसके बाद ध्यान करे। यथा—

कुंकुमोदर-गर्भाभां किञ्चिद्-यौवन-शालिनीम्।
मृणाल-कोमल-भुजां केयूराङ्गद-भूषणाम्॥
तुला-कोटि-परिभ्रान्त-पाद-पद्म-द्वयान्विताम्।
माणिक्य-हार-मुकुट-कुण्डलादि-विभूषिताम्॥

नीलोत्पल-दृशं किञ्चिदुद्यत्-कुच-विराजिताम्।
कराभ्यां भ्राम्यत्-कमलां रक्त-वस्त्राङ्ग-रागिणीम्॥
हेम-प्राकार-मध्यस्थां रत्न-सिंहासनोपरि।
ध्यायेत् कल्पतरोर्मूले देवतां धन-दायिकाम्॥

अर्थात् धनदा देवी कुंकुम-कोष के भीतरी भाग के समान रंगवाली नव-यौवना हैं। दोनों भुजाएं मृणाल-वत् कोमल हैं और केयूर-अङ्गदादि आभूषणों से सज्जित हैं। दोनों चरण-कमलों में नूपुर गुंजायमान हैं। माणिक्य-हार, मुकुट और कुण्डलादि अलङ्कारों से वे शोभायमान हैं। दोनों आँखें नील कमल के समान सुन्दर हैं। दोनों पयोधर कुछ उन्नत हैं। दोनों हाथों में कमल हैं, जिन्हें वे घुमा रही हैं। शरीर में लाल रंग का अनुलेपन है और रक्त-वस्त्र पहने हैं। सुवर्ण प्राकार के मध्य में स्थित कल्पवृक्ष की जड़ पर विद्यमान रत्न-जटित सिंहासन पर वे बैठी हुई हैं। इस प्रकार धन-दायिनी देवी का ध्यान करना चाहिए।

ध्यान-पूर्वक मानस-पूजा कर बाह्य पूजन करे। धनदा देवी का पूजा-यन्त्र निम्न प्रकार बनाये। पहले नवयोन्यात्मक यन्त्र बनाए। फिर उसके बाहर अष्ट-दल-कमल बनाकर उसके बाहर चतुरस्र अङ्कित करे। चतुरस्र के चारों कोनों में वज्र जैसा चिह्न बनाकर कमल के मध्य विन्दु में 'धं' बीज लिखे।

फिर अर्घ्य-स्थापनादि कर पुनः ध्यान और आवाहनादि करते हुए पञ्चोपचारों से पूजा करे। अर्घ्य-स्थापन की विधि यह है कि 'फट्' मन्त्र से अर्घ्य-पात्र को धोकर 'नमः' से उसे जल से भरे। फिर उसमें 'ॐ' से गन्ध-पुष्प छोड़कर 'ॐ गङ्गे च यमुने' इत्यादि मन्त्र से उसमें तीर्थों का आवाहन करे। तदनन्तर धेनुमुद्रा दिखाकर अर्घ्यपात्र पर हाथ रख मूलमन्त्र का दश बार जप करे। फिर अर्घ्यपात्र का कुछ जल प्रोक्षणी-पात्र में डालकर उस जल से मूलमन्त्र द्वारा पूजा-सामग्री और अपने शरीर का तीन बार अभ्युक्षण करे।

इसके बाद 'ॐ आधार-शक्तये नमः' से लेकर 'ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः' तक पीठ-पूजा कर 'ॐ पद्मासनाय नमः' कहकर मध्य में पूजा करे और पुनः ध्यान और आवाहन कर पञ्चोपचारों से पूजा करे। फिर योनि-मुद्रा दिखाकर केशर में, अग्न्यादि कोणों में, मध्य में और चारों दिशाओं में 'ह्रां हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा, ह्रूं शिखायै वषट्, ह्रैं कवचाय हुं, ह्रौं नेत्र-त्रयाय वौषट्, ह्रः अस्त्राय फट्'—इन मन्त्रों से षडङ्ग-पूजा करे। तब पूर्व-दल से आरम्भ कर दस दलों में निम्न मन्त्रों से पूजा करे—

ॐ लक्ष्म्यै नमः, ॐ पद्मायै नमः, ॐ पद्मालयायै नमः, ॐ श्रियै नमः, ॐ हरि-प्रियायै नमः, ॐ तारायै नमः, ॐ कमलायै नमः, ॐ चञ्चलायै नमः, ॐ अब्जायै नमः, ॐ लोलायै नमः।

इस प्रकार पूजनकर मध्य में पुनः धनदा देवी की पूजा करे। फिर यथाशक्ति मूलमन्त्र का जपकर जप-समर्पण पूर्वक 'क्षमस्व' मन्त्र से विसर्जन करे।

इस मन्त्र का पुरश्चरण एक लाख जप से होता है। रत्नादि माला से एक लक्ष जप करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। एक सप्ताह तक प्रतिदिन रात्रि में एक हजार आठ जप करे तो पुरश्चरण सम्पन्न होता है। इस प्रकार पुरश्चरण करने से साधक को कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रहती। भोजन के बाद अथवा बिना भोजन किए पायसान्न की बलि प्रदान करे। जो पवित्र या अपवित्र किसी भी अवस्था में धनदा-मन्त्र को दश बार जपता है, उसका दारिद्रय-दोष नष्ट हो जाता है।

देवी के पार्श्व भाग में प्रतिदिन कामदेव की पूजा करने से धनदा देवी को बहुत ही प्रसन्नता होती है और वे साधक को अभीष्ट विषय प्रदान करती हैं।

उक्त प्रकार धनदा की पूजा की समाप्ति पर निशा-काल में धनेश्वरी साधक के पास आती हैं और अपने शरीर के आभूषण छोड़ कर वापस चली जाती हैं। देवी साधक को अपार धन देकर उसकी मनोकामना को पूर्ण करती हैं और उसके वश में रहती हैं।

हे महेशि! साधक को अपने दारिद्रय-निवारण के लिए प्रतिदिन भक्ति-पूर्वक चन्दनादि अनुलेपन देवी को अर्पित करने चाहिये। प्रतिदिन देवी के चन्दनादि लगाकर नैवेद्यादि से उनका पूजन करे।

सम्पादकीय

१—श्री कापालिक जी के आशीर्कटाक्ष

श्री कापालिक उद्बोधनानन्द जी ने इस अङ्क में प्रकाशित अपने उपयोगी लेख 'ग्रहण-पुरश्चरण' में हमें अयाचित से जो आशीर्वाद दिये हैं, उनके लिये हम आपके हृदय से आभारी हैं। आपने यह शुभ कामना की है कि 'चण्डी' प्रकाशन पुनः मासिक-रूप में होने लगे। हम भी ऐसा हृदय से चाहते हैं, किन्तु आज के कठिन मँहगाई के युग में तभी सम्भव है, जब कि 'चण्डी' की ग्राहक-संख्या कम से कम एक हजार हो जाय। यदि हमारे सभी प्रेमी पाठक परिचित बन्धु-बान्धवों को 'चण्डी' का ग्राहक बनने के लिये उत्साहित करें, तो ग्राहक-संख्या सहज ही बढ़ सकती और तब हम तुरन्त ही 'चण्डी' को पूर्ववत् मासिक-रूप में प्रकाशित करने लगेंगे। आशा है कि 'चण्डी' के प्रेमी पाठक ओर कृपया ध्यान देंगे।

कापालिक जी ने हम पर एक कटाक्ष भी किया है। वह यह कि हमने श्री पीताम्बरा-पीठ से जगद्गुरु राचार्य के प्रवचनादि का विवरण मँगाने का प्रयास न करके, समाचार एकत्र न होने का दोष पत्रकारों पर डाल या। इस सम्बन्ध में हमारा विनम्र निवेदन यह है कि जो कुछ विवरण हमें उपलब्ध हो सका, वह हम स्वयं श्री पीताम्बरा-पीठ से ले आये थे। तत्सम्बन्धी जो चित्र छपे हैं, वे भी हम ही वहाँ से माँगकर ले आये और ब्लाक नाकर छपवाने की व्यवस्था की। वास्तव में जब कहीं कोई धार्मिक आयोजन होते हैं, तब अन्य व्यवस्थाओं के साथ उस आयोजन की अवधि में किए जानेवाले उपदेशों, प्रवचनों आदि के लिखे जाने की भी व्यवस्था होनी चाहिये, न्तु तथ्य यह है कि ऐसी व्यवस्था कदाचित् ही कहीं की जाती है, विवरण को उपयोगी ढंग से लिखकर प्रकाशनार्थ

यक्षिणी देवी स्वयं कहती हैं कि जो व्यक्ति मेरी पूजा करता है, मैं उसके निकट दासी-वत् रहकर उसकी द्रता को दूर करती हूँ।

एक सप्ताह तक एक हजार आठ जप कर जप का दशांश-संख्यक होम घृत-शर्करा-मधु से करे। इससे पुरश्चरण द्ध होकर दारिद्रय-दोष शीघ्र शान्त होता है।

ताम्र-पात्र को चन्दन-लिप्त कर उसमें मनोहर मण्डल अङ्कित कर उस मण्डल में देवी की पूजा करें, तो रिद्रय की कभी शङ्का तक न हो और साधक कोटि धन का स्वामी होता है।

७८ श्मशान-काली—काली तन्त्र में लिखा है कि वाग्-वीज, माया वीज, श्री वीज, कामवीज, फिर लिके' और उसके बाद उक्त चारों वीज विलोम क्रम से उच्चारण करे अर्थात् 'ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं कालिके क्लीं श्रीं ऐं'—इस एकादशाक्षर मन्त्र से श्मशान-काली की उपासना करे। यह देवी साधक को चतुर्वर्ग का फल प्रदान करती । श्मशान काली देवी का पूजा-यन्त्र निम्न प्रकार है—

पहले अष्टदल-पद्म बनाये। उसके बाहर वृत्त, भूपुर और द्वार बनाए। पद्म के मध्य में देवी का मूलमन्त्र लिख अष्टदलों में कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग, शवर्ग और लवर्ग (ल क्ष)–इन अष्टवर्गों को क्रमशः लिखे। र के चारों कोणों में 'ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं' इन चार वीजों को लिखकर यन्त्र को पूर्ण करे। (क्रमशः)

भेजने की बात तो दूर रही। फलतः प्रयत्न करने पर भी वांछित विवरण मिल नहीं पाता। इस त्रुटि को दूर करने स्थानीय पत्रकार बहुत कुछ कर सकते हैं। आयोजक-कर्ता यदि पत्रकारों को या किन्हीं ऐसे बन्धु को, जो वक्ताओं के सारांश को लिख सकें। आयोजन में सादर बुलाया करें, तो वे निश्चय ही धार्मिक समाचारों के वर्तमान अभाव को दूर कर सकते हैं।

क्या ही अच्छा हो, आयोजन-कर्ता और स्थानीय पत्रकार बन्धु इस ओर ध्यान दें। इससे धार्मिक समाचारों का सङ्कलन उचित ढंग से हो सकेगा और बेचारा सम्पादक निराधार आरोपों से बच सकेगा।

पत्र लिखकर सम्पादक ही समाचार मँगावें, इस सुझाव को व्यवहार में लाना सरल नहीं है और न व्यावहारिक क्योंकि अधिकांश धर्माचार्य प्रचार से दूर भागते हैं। इसका एक प्रमाण स्वयं कापालिक जी ने ही अपने उक्त लेख में दिया है। हमने 'चण्डी' में एक विज्ञप्ति छापी थी कि शाक्त आचार्यों का परिचय यदि 'शाक्त-साधना-पीठ' में एकत्र हो जाय, तो जिज्ञासु बन्धुओं को उनके निकटस्थ आचार्य के सम्पर्क में लाया जा सके, किन्तु कापालिक जी ने इसका उपहास करते हुये इसे आचार्यों का आत्म-विज्ञापन निरूपित किया है! वस्तुतः यह बड़ी दुःखद परिस्थिति है। जिज्ञासु बन्धु विज्ञ मार्ग-दर्शकों की खोज में भटकते फिरें और ऐसे विज्ञ जनों का परिचय इस कारण प्रकाश में न आये कि यह उनका व्यावसायिक विज्ञापन जैसा होगा! विज्ञापनों से कितना लाभ लोग उठाते हैं, इसके प्रति ध्यान न देकर उनके प्रति ऐसा सङ्कीर्ण भाव रखना कितना हानिकर है, यह स्पष्ट ही है।

हमारी कामना केवल यही है कि कापालिक जी के चेले जैसे भ्रान्त लोगों की कटूक्तियों से विचलित न होकर विज्ञ जन लोकोपकार की दृष्टि से प्रकाश में आएँगे और 'शाक्त-साधना-पीठ' को अपना उपयोगी सहयोग देने की कृपा करेंगे।

२—'शाक्त-साधना-पीठ' से लाभ उठाएँ

'शाक्त-साधना-पीठ' से तुरन्त लाभ उठाना चाहते हैं, तो कृपया वार्षिक सदस्यता शुल्क भेजकर 'पीठ' के वार्षिक सदस्य बनें। जिज्ञासु सदस्यों हेतु वार्षिक शुल्क है रु० ५१-००। जो शाक्त-साधना की दीक्षा प्राप्त करना चाहते हैं, उनका वार्षिक शुल्क है रु० १०१-००। दीक्षा-प्राप्त जो साधक साधना में आगे बढ़ने हेतु मार्ग-दर्शन चाहते हैं, उनके लिए वार्षिक शुल्क है रु० ३०१-००। कृपया अपना शुल्क धनादेश (म० आ०) से निदेशक, शाक्त-साधना पीठ, चण्डी-कार्यालय, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६ को अविलंब भेजें और आध्यात्मिक लाभ उठाएँ।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि 'शक्ति-तत्व' का अर्थ है 'शक्ति का तत्व' अर्थात् शक्ति का 'ब्रह्मत्व' अथवा 'शक्ति' अर्थात् ऐश्वर्य—पराक्रम-स्वरूप तत्व अर्थात् ब्रह्मत्व। दूसरे शब्दों में 'शक्ति-तत्व' का अर्थ यह है कि शक्ति ही तत्व अर्थात् ब्रह्मत्व है अर्थात् शक्ति सत्य, सनातन अविनाशी परमात्मा वा ब्रह्म है इत्यादि। इसी तथ्य का निदर्शन करना इस छोटे से प्रवचन का लक्ष्य है।

वैष्णव और शैव दोनों दर्शनों में 'शक्ति' पदार्थ ब्रह्म-पदार्थ में अन्वित समझा जाता है। उसमें प्रधानता ब्रह्म की है, शक्ति-पदार्थ गौण है। परन्तु साधारणतया शाक्त-मत से 'शक्ति' मुख्यतया स्वतन्त्र है। प्रत्यभिज्ञा-सूत्र में कहा है–

यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्व-रूपिणी।
स्फुरत्तामात्मनः पश्यत्तदा चक्रस्य सम्भवः॥

अर्थात् जब वह विश्व-रूप धारण करनेवाली परा-शक्ति अपनी इच्छा से अपना स्फुरण करती है, तब संसार-चक्र की उत्पत्ति होती है। कार्य-कारण-भाव से सारे पदार्थों को एक परा-शक्ति ने ही व्याप्त कर रखा है। इसीलिये श्रुति कहती है——

ईशावास्य सिद्धं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

यजु ४०—१

अर्थात् जो कुछ नाम-रूपात्मक जगत् इस संसार में है, उसे उस ईशा परा-शक्ति (ईशाया-वास्यम्) ने व्याप्त कर रखा है। इसी के अनुसार सप्तशती में कहा गया है—'देव्या यया ततमिदं जगदात्म-शक्त्या' इत्यादि।

कार्य तथा कारण दोनों ही शक्त्यात्मक हैं। शक्ति के सहारे ही कारण कार्योत्पादन करता है। शक्ति-शून्य पदार्थ किसी भी कार्य का कारण नहीं बन सकता—

शक्तिश्च कारणस्य कार्य-नियमार्था नान्या कार्य-कारणाभ्याम्।

(शंकर-भाष्य)

इन प्रमाणों से शक्ति कारणवाद सिद्ध होता है। यही शक्ति पदार्थ शिव-शक्ति-रूप धारण कर जगत् का अभिन्न निमित्तोत्पादन कारण है। इसे ही परा-वाक् या सांविदी कला भी कहते हैं। इसका यह रूप मन-वाणी से अगोचर स्व-संवेद्य है। इसी से शाक्त तथा शैव मतों में माने जानेवाले छत्तीस तत्वों का आविर्भाव होता है।

षट्-त्रिंशत्तत्वात्मा तत्वातीता च केवला विद्या।

अर्थात् छत्तीस तत्वों का रूप धारण करनेवाली महाशक्ति तत्वों से केवल शुद्ध स्वरूपवाली भी है। श्रुति में कहा है—

या प्राणेन सम्भवति अदितिर्देवतामयी गुहां
प्रविश्य तिष्ठन्ती या भूतेभिर्व्यजायत एतद्‌ वैतत्।

(कठ २-४-७)

अर्थात् परमात्मा के साथ समस्त देव-मयी अदिति आदिशक्ति समस्त प्राणियों की बुद्धि-रूप गुहा में स्थित है। (यमराज-नचिकेता-सम्वाद)

वीज के भीतर जैसे वृक्षोत्पादिका शक्ति अन्तर्निहित रहती है, वैसे सृष्टि से पूर्व परमेश्वर में भी सृष्ट्युपयोगिनी शक्ति अव्यक्त भाव से वर्तमान थी। शक्ति के प्रकाश वा व्यक्तावस्था से भिन्न सृष्टि और कुछ भी नहीं है।

शक्ति-कारणवाद वेदान्त-सूत्रों में भी महर्षि व्यासदेव ने माना है——'अक्षराम्बरान्तं धृतेः' तथा 'सा च प्रशासनात्' (वे० अ० १, ३, १०, ११)। इन सूत्रों का भाष्य आचार्य भगवत्पाद श्री शङ्कराचार्य जी ने विशुद्ध रूप से शक्तिवाद के ही अनुकूल किया है। शक्तिवाद के प्रतिपादक चारों वेदों में अनेक प्रसङ्ग हैं। देवी-सूक्त, रात्रि-सूक्त आदि ऋग्वेद में; कृत्या, राष्ट्री, विद्युत्-सूक्त अथर्ववेद में और ताण्डक, ब्राह्मण, सामवेद-संहिता तथा यजुर्वेद (शुक्ल-कृष्ण) के अनेक मन्त्रों आदि में स्फुट रूप से शाक्त-सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है।

कितने ही दार्शनिक शक्ति-तत्व को कारण नहीं

मानते हैं। उनके मत से निरपेक्ष ब्रह्म-कारणवाद ही समस्त है। शक्ति के बिना ब्रह्म-कारणवाद असंगत है। इसलिए कहा है—

तत्वारूढः स भगवान् शिवः परम-कारणम्।
शिवः सर्वस्य कर्तेयं शक्ति-कारणमुच्यते॥

अर्थात् तत्वारूढ भगवान् शिव तथा शक्ति ही जगत् के कर्त्ता तथा कारण हैं। सृष्टि के लिये उन्मुख दोनों तत्वों के आदि समागम को ही महाविन्दु कहते हैं। इसी से नाद-तत्व व्यक्त होता है। वही परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी रूप धारण कर लेता है। 'एकोऽहम बहुस्याम'—ऐसा श्रुति में कहा गया है। आनन्द-रूप लीलार्थ ही यह शिव-शक्ति-मय सारा विश्व चेष्टा कर रहा है। कार्य-कारण का अभेद होने के कारण यह जगत् ब्रह्म-रूप ही है। 'एकोऽहम्' यह वाक्य शब्द-ब्रह्म एवं सामरस्य शिव-शक्ति-रूपात्मक अद्वैत का एक सा ही बोध कराता है। जिस पराशक्ति ने सारी सृष्टि-रचना की है, वही प्रत्येक शरीर-धारी के शरीर में कुण्डलिनी-रूप से विद्यमान है। आधार-चक्र में सोये हुए सर्प के समान साढ़े तीन फेरे में इसका स्वरूप है। जब तक वह सोयी रहती है, तब तक जीव की अज्ञानावस्था है। इसके जागने पर ही यथार्थ ज्ञान होता है। सद्गुरु की कृपा के द्वारा परा-शक्ति का मन्त्रात्मक स्वरूप दीक्षा-तत्व के साथ अनुग्रह-रूप आधार प्राप्त करना साधक को अविद्या की परिधि से निकालने के लिये प्रधान उपाय है।

संसार के प्रत्येक पदार्थ में तत्तत्कार्य-सम्पादन की शक्ति है, तभी उसका मूल्य है। अनन्तान्त कार्योत्पादिका शक्ति से सम्पन्न ही परमेश्वर होता है। न्यून-शक्ति-सम्पन्न ईश्वर होता है। जितना शक्ति-साहित्य होता है, उतना ही जीवत्व आता है। अधिकाधिक शक्ति-साहित्य में ईश्वरत्व आता है। निर्गुण, निराकार, निर्विकार कूटस्थ ब्रह्म अनन्त शक्तियों की केन्द्र-भूता महाशक्ति से संवलित होने पर ही विश्व की सृष्टि, पालन, संहार आदि में समर्थ होता है। यदि शक्ति-संवलन न हो, तो शिव भी सृष्टि आदि में असमर्थ, अशक्त, शव-मात्र रह जाता है, अतएव ईश्वर का ईश्वरत्व भी शक्ति-मूलक है, जिसके सम्बन्ध से ही कूटस्थ चेतन ईश्वर बनता है। उसके महत्त्व को कौन कहे!

शक्ति और शक्तिमान दोनों का यही अभेद सम्बन्ध रहता है। प्राणियों की वांछित वस्तुओं में रूप, जय, यश और शत्रु-पराभव अभीष्ट होते हैं। यह सब निश्छल-भाव से माता से ही माँगे जाते हैं—

रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।

इसलिये सुरासुर सभी अपने मुकुट-किरीट के रत्नों से माता के चरण-पीठ का वन्दन करते हैं। श्रीकृष्ण ने भी भक्ति-पूर्वक उनकी स्तुति की और श्रीरामचन्द्र ने भी उन्हीं की आराधना कर लङ्केश्वर रावण पर विजय पाई।

जिस प्रकार विष्णु और शिव एक हैं, उसी प्रकार शक्ति भी उनसे अभिन्न है। एक ही परम-तत्त्व के विभिन्न नाम हैं। जैसे शिव हैं, वैसी दुर्गा हैं और जो दुर्गा हैं, वही विष्णु हैं। जिस प्रकार विष्णु और शिव को विभिन्न शास्त्रों ने परब्रह्म, परमात्मा, सृष्टि-कर्त्ता, सर्व-व्यापी बतलाया है, उसी प्रकार शक्ति को भी बतलाया है।

देवताओं ने भगवती से पूछा—'हे महादेवि! आप कौन हैं?' भगवती ने उत्तर दिया, 'मैं ब्रह्म-रूपिणी हूं। प्रकृति-पुरुषात्मक जगत् मुझसे ही उत्पन्न हुआ है। मुझ और ब्रह्म दोनों में सदा एकत्व है, भेद कभी नहीं है। जो वह है, सो मैं हूँ और जो मैं हूँ, सो वह है। भेद भ्रान्ति से कल्पित है, वस्तुतः नहीं है।' (देवी भागवत)

इसी प्रकार असंख्य प्रमाण हैं, जिनसे भगवती का निर्गुण परब्रह्म-स्वरूप और उनका सगुण निराकार सृष्टि-कर्त्ता-स्वरूप सिद्ध है।

'सत्व-रजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः'—इन तीनों गुणों के द्वारा ही तीन देवताओं को अर्थात् सत्व से विष्णु को, रज से ब्रह्मा को और तम से रुद्र को उत्पन्न कर भगवती जगत् का पालन, सृजन और लय करती है।

स्रजसि जननि देवान् विष्णु-रुद्रान् मुख्यान्।
तौ स्थिति लय-जननं कारणस्येक-रूपा ॥

यही विषय बह्वृचोपनिषद् में इस प्रकार है—

देवी ह्येकाग्र आसीत्। सैव जगदण्डमसृजत् ....………तस्या एव ब्रह्मा अजीजनत्। विष्णुरजीजनत ………सर्वमजीज्जनत्। सैषा पराशक्तिः।

प्रकृति और पुरुष ही परमेश्वर और परमेश्वरी हैं। दोनों वास्तव में एक हैं और इनकी एकता का ज्ञान ही योग की परम सीमा है। प्रकृति देवी है और पुरुष शिव है। दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध वैसा ही है, जैसे वाणी और शब्द का। महाकवि कालिदास ने कहा है—

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थ-प्रतिपत्तये ।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती-परमेश्वरौ ॥

भक्त कवि-श्रेष्ठ गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है—

गिरा अर्थ जल वीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न ।
वन्दौं सीता-राम पद, जाहि परम प्रिय खिन्न ॥

दूसरे शब्दों में सगुण ब्रह्म धर्मी है और शक्ति उसका धर्म। जिस प्रकार अग्नि का धर्म अग्नित्व है। दाहिका शक्ति और प्रभा-रूप अग्नित्व धर्म ही अग्नि की शक्ति है। इसी प्रकार ब्रह्म में अवस्थित समष्टि-रूपा अनन्त शक्ति ही ब्रह्म का धर्म या शक्ति है। धर्म ही धर्मी का परिचायक है। वस्तुतः धर्मी अर्थात् सगुण-ब्रह्म या शिव अकर्त्ता है और धर्म अर्थात् शक्ति ही कर्त्ता है। ब्रह्म-रूप धर्मी में आश्रित धर्म या शक्ति जड़ नहीं है और न जीव है—परन्तु चिति अर्थात् चिद्रूपा है। शक्ति-सूत्र में इसी चिति शक्ति को ही स्वतन्त्र रूप में विश्व की उत्पत्ति का कारण बताया है—

चिति स्वतन्त्रा विश्व-सिद्धि-हेतुः ।

श्री श्री चण्डी में कहा है कि **'चिति-रूपेण या कृत्स्नमेतद्-व्याप्य स्थिता जगत्'** अर्थात् जो चिति-रूप में इस समग्र जगत् में व्याप्त होकर अवस्थान करती है।

निर्गुण ब्रह्म में शक्ति अप्रबुद्ध अवस्था में निहित रहती है। सृष्टि की उन्मुख अवस्था में शक्ति का विकास होना प्रारम्भ हुआ है, अतः शक्ति धर्म है और ब्रह्म है धर्मी। शक्ति और शक्तिमान में कोई भेद नहीं है। अतएव शक्ति ब्रह्म से भिन्न पदार्थ नहीं है।

योगवाशिष्ठ रामायण में कहा गया है कि श्री वशिष्ठ जी ने श्री रामचन्द्र जी से कहा—

'हे राम! मैंने जिसे चिदाकाश शिव कहा है, उस भैरव की मनोमयी स्पन्द-शक्ति को ही तुम 'माया' वा 'काली' जानो। यह माया शिव से अभिन्न है। पवन और पवन-स्पन्द जैसे एक पदार्थ हैं, उष्णता और अनल जैस एक पदार्थ हैं, उसी प्रकार चिन्मय शिव और उसकी स्पन्द-शक्ति माया भी सर्वदा एक हैं कदाच् पृथक् नहीं हैं। स्पन्द द्वारा जैसे वायु का अनुभव होता है, उसी प्रकार यह शिव नामक शान्त चिदात्मा भी यथोक्त माया द्वारा लक्षित होता है और किसी भी उपाय से वह लक्षित नहीं होता। इस शान्त चिन्मय शिव को ही तत्वज्ञ लोग वाङ्-मन का अगोचर 'ब्रह्म' जानते हैं। 'स्पन्द-शक्ति' शिव की इच्छा-शक्ति है। वह इच्छा-रूपिणी स्पन्द-शक्ति ही जीव के जीवन-रूप से परिणत होने के कारण—'जीवात्मा' नाम से, सृष्टि का मूल-कारण होने से 'प्रकृति' नाम से कही जाती है। यह प्रणव का सारांश शक्ति है। इस कारण इसका नाम 'उमा' है। जो लोग इसका गायन करते

हैं, इसका जप करते हैं, वे परमार्थ को प्राप्त करते हैं। इसलिये इसका नाम 'गायत्री' है; सर्व-जगत् को प्रसव करने के कारण इसका नाम 'सावित्री' है; सर्व-ज्ञान-दृष्टि-धारा इसी से प्रवाहित होने के कारण इसका नाम 'सरस्वती' है और गौराङ्ग होने के कारण 'गौरी' कही जाती है। महाकाली महा-प्रलय-काल से सम्बन्ध रखती है। अतएव वह कृष्ण वर्ण की है, वह शिव पर इसलिये आरूढ़ है कि शक्ति मृत विश्व के ऊपर विराजमान है। शत्रु-संहार की शक्ति भयावह होती है, इसीलिये काली की मूर्ति भयावह है। शत्रु-संहार के बाद योद्धा का अट्टहास भीषणता के लिये होता है। अतः महाकाली हँसती रहती है।'

वेद में शक्ति को ही कल्याण-रूप 'शिवा-तनु' कहा गया है—

'या ते रुद्र शिवा-तनूरघोरा पाप-काशिनी तया
तस्तन्वा शान्त-मया गिरिशं ताभिचाकशीहि।'
(य० १६-२)

अर्थात् हे रुद्र, आपकी कल्याणकारी शान्ति तथा ऐश्वर्य आदि को प्रदान करनेवाली जो शिवा (महाशक्ति) तनू है, उसके द्वारा आप हमें निरीक्षण करें। हम सब तेरे पुत्र हैं, हमारा कल्याण (मय) करें। 'अमृतस्य पुत्राः' इस श्रुति-वाक्य से सारा विश्व उसकी ही सन्तति है, यह सिद्ध होता है। 'यद् वै शिवं तन्मयः' (तैत्तरीय उपनिषद्) में भी कल्याणवाचक 'मय' शब्द का व्यवहार किया गया है।

वेदान्त-सूत्र में भगवान् वेदव्यास जी ने—'ईक्षते नो शब्दम्' इस सूत्र के प्रवचन में इसे 'ईक्षा' (ब्रह्म की ईक्षा) कहकर प्रकृति से परा चित् कहा है। यह आद्या शक्ति है। सभी देवियों और देवों की मूल है। सर्वप्रथम मूर्त्ति यही हुई है। यह गुण-संयोजिका शक्ति है। जड़ में चैतन्य ज्ञान की चाबी इसी के हाथ में है अर्थात् ब्रह्म-चैतन्य, जो प्रकाश मात्र है, इसके द्वारा व्यवहार्य होता है। यही इसकी साधिका है। काल का आविर्भाव इसी से होता है। रूप-कल्पना का मूलाधार ब्रह्म (परमात्मा) रूपवान होता है, तो प्रथम इसी रूप में आता है। यह बात तन्त्रों में तो अनेक जगह स्पष्ट रूप से पाई जाती ही है। मनु महाराज जी भी, जो स्मृति के मुख्य कर्त्ता हैं, यही कहते हैं—

आसीदिदं तमो-रूप सम्प्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥

परब्रह्म की यह प्रथम स्फुरण अथवा इच्छा ही महाशक्ति काली है। इसी तत्त्व को रक्षा, कामना और तप भी कहा गया है। इसको वैष्णव भी मानते हैं। श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध में श्री शुकदेव जी कहते हैं—

स्रोन्तः शरीरे अमिते भूत-सूक्ष्मः कालिकांश-
शक्ति-मुदिरयाग्रः।

अर्थात् यह ब्रह्म अपने में भूत और सूक्ष्म तन्मात्राओं को लिये हुए पहले कालिका शक्ति को उद्भावित करता है। इससे यह स्पष्ट हुआ कि काली शक्ति ही सर्व-प्रथम प्रकट हुई। इसी से इसे आद्या शक्ति कहते हैं। यह शक्ति ब्रह्म का रूप है, ब्रह्म से भिन्न नहीं है। सबका सार यही हुआ कि ब्रह्म का साक्षात्कार हो सकता है, तो भगवती के हीं स्वरूप में हो सकता है।

आब्रह्मस्तम्ब-पर्यन्त सभी शक्ति हैं। पराक्रम, तेज, वीज तथा सामर्थ्य शक्ति के जड़-रूप हैं और सर्व-व्यापक चैतन्य शक्ति का सूक्ष्म रूप है, चिन्मय रूप है। कालिकादि विद्या-समूह महाशक्ति की चिन्मयी मूर्त्ति हैं।

सर्व-चैतन्य-रूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि।

परमेश्वर की मलादि असंस्पृष्ट चिच्छक्ति ही चैतन्य नाम से अभिहित होती है—

चिच्छक्ति परमेश्वरस्य विमला चैतन्यमेवोच्यते।

यह सदा स्मरण रखना है कि परा शक्ति परमेश्वर से अभिन्न है।

वस्तु-मात्र ही शक्ति का उद्भूत रूप है। जगदीश्वरी निखिल वस्तुओं में शक्ति-रूप से विराजती है। शक्ति-रहित होने पर पदार्थ की सत्ता नहीं रह सकती। इसी कारण कहा गया है—

यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद् वाखिलात्मिके ।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं कि स्तूयसे तदा ॥
(कहीं कहीं 'तदा' के स्थान में 'मया' पाठ है)

वैदिक संहिताओं में उल्लिखित देवताओं में से प्रत्येक ही एक-एक शक्ति का आश्रय है। इस शक्ति के प्रभाव से ही उनका देवत्व है। शक्तिशाली होने के कारण ही देवता मनुष्य के पूज्य हैं। शक्ति के कारण ही अर्थात् शक्ति के विशेष प्रकाश के कारण ही विष्णु, सूर्य, अग्नि प्रभृति देवताओं की इतनी स्तव-स्तुति वैदिक ऋषियों ने की है। साधना-शक्ति वा योग-बल से मनुष्य भी देवत्व लाभ कर सकता है। जीव-जगत् में भी शक्ति के तारतम्य के अनुसार उत्कर्ष-अपकर्ष का विचार किया जाता है। जो जीव जितना शक्तिशाली है, उसका प्रभुत्व तथा उसकी प्रतिष्ठा भी उतनी ही अधिक है। पशुओं में सिंह की शारीरिक शक्ति सबसे अधिक होने के कारण उसको पशु-राज कहा जाता है। शारीरिक और मानसिक दोनों शक्तियों के अधिकारी होने से ही मनुष्य पशुओं के ऊपर प्रभुत्व कर सकता है।

पाश्चात्य वैज्ञानिक-गण भी इसी सत्य पर पहुँचते हैं कि संसार में कोई जड़ पदार्थ नहीं है, बल्कि सभी वस्तुएँ छोटे परमाणु से लेकर ब्रह्माण्ड तथा सूर्यलोक तक, वनस्पति से लेकर मनुष्य तक शक्ति के आगार हैं। एक क्षुद्र परमाणु में वह शक्ति निहित है, जो समूचे ब्रह्माण्ड को भस्म कर डाले। जब छोटे परमाणु में इतनी शक्ति निहित है, तो किसी भी एक व्यक्ति-विशेष में कितनी शक्ति भरी पड़ी है, इसको कौन जान सकता है वा कह सकता है। यह महती शक्ति सर्वत्र व्याप्त है तथा नित्या है। देवताओं के सहायतार्थ या भक्तों के आग्रह पर अथवा योगियों और महान् विभूतियों के अन्वेषण पर यही महती शक्ति कहीं कहीं केन्द्रीभूत होकर प्रकाशित हो जाती है।

तान्त्रिक लोग कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत् करके और उस महती शक्ति को केन्द्रीभूत करके यन्त्रों के ऊपर देखते हैं। शाक्त-गण उस महती शक्ति को जगज्जननी मातृ-रूप में प्रत्यक्ष देखते हैं और माता कह-कह स्तव और पूजा करते हैं। प्राचीन महर्षियों ने सारे ब्रह्माण्ड के प्रपञ्च को अपने में देखा और उसका नाम तथा शब्द सुना। उसी को उन्होंने तान्त्रिक यन्त्रों और मन्त्रों में अङ्कित कर दिया है। उन यन्त्रों और मन्त्रों को जागृत करने की प्रणाली भी लिपि-बद्ध कर दी गई है। प्रेम, श्रद्धा, विश्वास और भक्ति के साथ उन प्रणालियों द्वारा पूजा और स्तव करने से वे यन्त्र और मन्त्र जागृत हो जाते हैं और उन यन्त्रों में माता आविर्भूत होकर सेवक को इच्छानुसार वर देती है। जन-साधारण उनका दुरुपयोग न करें, इसलिये ये प्रणालियाँ गुप्त रखी गई हैं। योग्य गुरु शिष्य की योग्यता जाँच कर इन गुप्त रहस्यों को बतलाते हैं।

इस घोर कलि-काल में भी, जब चारों ओर पाप-वृत्ति फैली हुई है, संसार के कल्याणार्थ एक अद्भुत पुस्तक अब भी प्रचलित है। यह है 'चण्डी व दुर्गा।' इसके एक-एक मन्त्र (श्लोक) तेज और शक्ति के आगार हैं।

देव्यथर्वशीर्ष में देवी ने अपने को ब्रह्म-स्वरूपिणी कहा है और यह भी कहा है कि प्रकृति-पुरुषात्मक जगत् मुझसे आविर्भूत होता है। इसलिये जो कहते हैं कि प्रकृति ही देवी है, उनका यह कहना ठीक नहीं। अपनी सर्वात्मा को दिखलाती हुई अपने को ही आनन्द-अनानन्द, विज्ञान-अविज्ञान, ब्रह्म-अब्रह्म सब कुछ बतलाया है। अन्त में कहा है कि मैं ही सब जगत् हूँ। वेद-अवेद, विद्या-अविद्या, अजा-अनजा सब कुछ भगवती ही है।

कालरात्रिं ब्रह्म-संस्तुतां वैष्णवीं स्कन्द-मातरम् ।
सरस्वतीमदितिं दक्ष-दुहितरं नमामः पावनां शिवाम् ॥

इस मन्त्र से भगवती के प्रसिद्ध अनेक रूपों का वर्णन करके उसे ही 'यह आत्मा है, यह विश्व-मोहिनी है' इत्यादि वचनों से आत्म-शक्ति-रूप भी कहा है। यहाँ आत्म शक्ति का आत्म-रूपा शक्ति भी अर्थ किया जाता है ।

भगवती अज्ञेया, अनन्ता, एका अनेका सब कुछ हैं। आचार्य भगवान् शंकर ने भी भगवती के सगुण और निर्गुण दोनों ही रूपों को बड़े सुन्दर शब्दों में कहा है—

'हे देवि ! आपके निमेष-उन्मेष से जगत् की उत्पत्ति और प्रलय होती है । संत लोग कहते हैं कि आपके निमेष से जगत् की प्रलय हो जाती है । इसलिये मालूम पड़ता है कि आप जगत्-रक्षण के लिये निर्निमेष नयनों से भक्तों को देखती हैं ।'

सृष्टि की दृष्टि से भी देखा जाय, तो शक्ति बिना सारा प्रपञ्च शव-मात्र ठहरता है । अशक्त व्यक्ति, अशक्त समाज, अशक्त जाति, अशक्त देश भार-भूत ही होता है । अतः शक्ति की पूजा सर्वत्र स्वाभाविक है ।

वस्तुतः निर्गुणा सत्या सनातनी सर्व-स्वरूपा भगवती ही भक्तानुग्रहार्थं सगुण होकर प्रकट होती है । अगस्त्य-संहिता के अनुसार भगवान् शिव ने श्रीराम के प्रत्यक्ष साक्षात् करने के लिये बड़ी तपस्या और आराधना की । भगवान् राम ने प्रसन्न होकर कहा कि 'यदि मेरा तत्व जानना चाहते हो, तो मेरी आह्लादिनी परा-शक्ति की आराधना करो । उसके बिना मेरी स्थिति नहीं होती है ।' यह सुनकर श्री शिव जी ने भगवती महामाया की आराधना की । भगवती ने कृपाकर उन्हें दर्शन दिया । उनके अद्भुत रूप को देखकर उन्होंने अति भक्ति से दिव्य स्तुति की—

वन्दे विदेह-तनया-पद-पुण्डरीकं ।
कैशोर-सौरभं समाहृत-योगि-चित्तम् ॥
हन्तुं त्रितापमनिशं मुनि-हंस-सेव्यं ।
सम्मान-सालि-परिपीत-पराग-पुञ्जम् ॥

शाक्त वह उपासक है, जो अपने में विद्यमान महाशक्ति का अन्वेषण करता है । वह महाशक्ति प्राणि-मात्र में रहती है । यदि उसमें वह शक्ति न हो, तो कोई भी किञ्चिदपि कार्य करने को समर्थ न हो सकता । हम लोगों के भीतर जो शक्ति विद्यमान है, उसको हम यथार्थतः जानते नहीं हैं । उदाहरण के लिये जैसे एक मनुष्य में लिखने की शक्ति विद्यमान है, किन्तु जब तक उसको लिखने की रीति का बोध न होगा, तब तक वह लिख नहीं सकता । इसी प्रकार हम लोगों में भी जो शक्ति विद्यमान है, वह वही महती शक्ति है, जिसके द्वारा इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, पालन और प्रलय यथासमय होती चली आ रही है, किन्तु हम लोग अन्य विचारों में निमग्न होकर इस महाशक्ति का निश्चय नहीं कर पाते हैं ।

इस शक्ति के निश्चय करने का जो उपाय है, वही शाक्त-धर्म है । इस शक्ति को विदित करानेवाला गुरु है । अतः इस शाक्त-धर्म में सबसे प्रथम गुरु का ध्यान और चिन्तन करना पड़ता है । सूक्ष्म विचार से देखने पर यह विदित हो जाता है कि बोध-रूप गुरु और बुद्धि-रूपिणी शक्ति एक ही है । परन्तु दोनों के एक होने पर भी गुरु-रूप का सर्व-प्रथम स्मरण करना नितान्त आवश्यक है । एक बालक जन्म लेते ही अपनी माता का स्तन-पान करता है । यह स्तन-पान उसको किसने सिखाया है ? इससे स्पष्ट विदित होता है कि उसके स्तन-पान के तरीके का बोध-रूप गुरु ही स्तन-पान करने की शक्ति-रूप में परिणत होकर उसमें विद्यमान होने का यथार्थ प्रमाण-स्वरूप है । उसी प्रकार हम लोग भी गुरु-निर्दिष्ट मार्ग से शक्ति की उपासना करते-करते उस महती शक्ति को जानकर

महा-शक्तिशाली बन सकते हैं।

विचारने की बात है। हम लोगों का सनातन धर्म, समें ब्रह्म-तेज, क्षात्र-तेज और वेद द्वारा हम बलशाली न सकें आदि निर्दिष्ट हुआ है, वहाँ है? वह यहीं है र शास्त्र भी यहीं हैं। लुप्त नहीं हुए हैं, केवल उपासकों कमी है, प्रयत्न और संकेत का अभाव है। वह बिना नहीं मिल सकता। 'कुल-धर्म ही सनातन-धर्म है'— ह उक्ति तो सर्व-विदित है लेकिन कुल-धर्म किसको हते हैं, यह बात सब लोगों को मालूम नहीं है।

अद्वितीया महाशक्ति-स्वरूपिणी सच्चित् प्रेमानन्दमयी ही देवी देवताओं में भिन्न-भिन्न खण्डित रूप में प्रकट खण्ड-खण्ड शक्तियाँ जब स्वरूपतया अखण्ड महा-क्ति के साथ नित्य-योग-विस्मृत होकर अभिमान-वश वरूप-प्राधान्य स्थापन करती हैं, तभी वे क्रमशः निस्तेज पड़ती हैं। यह निस्तेज अवस्था भी उनके कल्याण के ये है। तब वे अपनी दुर्बलता और निस्तेज अवस्था का रण अनुसन्धान करती-करती फिर उसी महाशक्ति को ती हैं और उनके साथ युक्त हो जाती हैं।

आज हम लोग यदि अपना-अपना स्वतन्त्र अभिमान गकर शक्ति संहत करें और अपना-अपना तेज एकत्र र संघ-बद्ध होकर उसे प्रकट करें तथा उसके लिये रण करें, अनुभव करें कि हम सभी लोगों का बल-वीर्य, वयं एक ही महा-शक्ति के लीला-विलास में विचित्र प से अभिव्यक्त है, तब महिमामयी सनातनी महाशक्ति सौन्दर्य, माधुर्य, वीर्य, ऐश्वर्यमयी मातृ-मूर्ति परिग्रह-र्वक हमारे सम्मुख आविर्भूता होंगी।

> त्वमेका सर्व-देवानां शरणं भक्त-वत्सले।
> पीड़ितान् दानवेनाद्य त्राहि देवि नमोऽस्तुते॥

'दुर्गा सप्तशती' में यह स्पष्ट बतलाया गया है कि वती की कृपा से ही सम्यक् तत्व-ज्ञान प्राप्त होता है। न की प्रशंसा सर्वत्र है; ज्ञान के होने से अज्ञान-मोहादि मिट जाते हैं। ज्ञान-सम्पादन के लिये ही श्रवणादि किये जाते हैं। जप, तप, यज्ञादि सबका परम उपयोग ज्ञान में ही है। परन्तु वह ज्ञान साधारण ज्ञान नहीं है, क्योंकि शब्दादि विषयों का ज्ञान तो प्राणि मात्र को होता है। इससे संसार के मूल-भूत अज्ञान की निवृत्ति नहीं होती है। यही महामाया का प्रभाव है, जिससे सर्वाधिष्ठान, स्व-प्रकाश परब्रह्म का बोध नहीं होता। वही उपनिषज्ज्ञान-निष्ठ वशिष्ठ, भरत, विश्वामित्र आदि के चित्त को भी बलात् मोहित कर देती है। वही चराचर प्रपञ्च का निर्माण करती है; वही प्रसन्न होकर मुक्ति प्रदान करती है; विद्या-रूप होकर वही मुक्ति-प्रदा है; अविद्या-रूप से वही संसार-बन्धन का हेतु है; वही भगवान् विष्णु की योग-निद्रा कहलाती है और उनको विश्राम देती है। वही सृष्टि, स्थिति, संहार करती है। वही स्वाहा-रूप से देवताओं को, स्वधा-रूप से पितरों को और वषट्-कार-रूप से श्रौत देवताओं को तृप्त करती है। परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी के मध्य में परा-वाक्-स्वरूपा वही है। वस्तुतस्तु संसार में सत्-असत्, कार्य-कारण, चेतन-अचेतन जहाँ भी जो भी कोई वस्तु है, उस सबकी जो शक्ति है, वह भगवती ही है।

> यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके।
> तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे मया॥

अध्यात्म रामायण की 'रामगीता' में भगवान् श्री रामचन्द्रजी श्री लक्ष्मणजी को प्रबोध करते हुये कहते हैं—

> तस्मात् स्वतन्त्रतां न किमप्यपेक्षते विद्या विमोक्षाय
> विभाति केवला।

जिन्हें मुक्ति-दाता कहा जाता है, वे श्रीरामचन्द्र जी श्रीमुख से केवल विद्या–भगवती को ही मुक्ति का हेतु मानते हैं। विद्या श्री आद्यादि दश महा-शक्तियों का नाम है। ये दश ज्ञान की मूर्तियाँ हैं। जैसे—

विद्यासि सा भगवती परमा हि देवी' (सप्तशती) 'विद्याहमजाहमित्यादि' (अथर्वोपनिषद्)

शक्ति-उपासना का मूल तत्व अध्यात्म रामायण के प्रारम्भिक अध्याय 'राम-हृदय' में खूब सरलतया विशद भाव से दिया गया है। अध्यात्म रामायण वैष्णवों का परम प्रामाणिक तथा पवित्र ग्रन्थ है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने इसी के आधार पर अपने 'राम-चरित-मानस' की रचना की है। उन्होंने अध्यात्म-रामायण के प्रायः सभी विषयों को अपने 'राम-चरित-मानस' में रख दिया है, परन्तु 'राम-हृदय' के तत्वों को छांट दिया है। इस छांट के कारण तत्व से साधारण जनता अनभिज्ञ रही और शक्ति-विषयक बहुत सी भ्रमपूर्ण बातें फैल गईं। वैष्णवों का ग्रन्थ होते हुये भी 'अध्यात्म-रामायण' शाक्त ग्रन्थ है। इसकी कथा का सारांश निम्न प्रकार है—

जब श्रीरामचन्द्र जी रावण को मारकर अयोध्या लौट आये, तब एक दिन श्री रामचन्द्रजी ने जगदम्बा श्री सीता जी से कहा—'हनुमान हम दोनों के बड़े भक्त हैं, वे अब इस योग्य हो गये कि वे अब तत्व को सुन सकें। अतः उनको तत्व बताओ।' श्री सीता जी ने श्री हनुमान जी को समझाया कि 'श्री रामचन्द्र स्वयं कुछ काम नहीं करते हैं। वे निर्मल, निर्विकार, निरञ्जन हैं। मैं ही कुल काम करती हूँ। मैंने ही धनुष को तोड़ा, समुद्र में पुल बनवाया तथा रावण को मारा। रामचन्द्र ने जितने काम किये हैं, वे सब मैंने ही किये हैं' इत्यादि।

शाक्त-मतानुयायी शक्ति की ही उपासना करते हैं, परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं निकालना चाहिये कि 'शक्ति' और 'शक्ति-मान' भिन्न-भिन्न हैं। जहाँ शक्ति-मान है, वहाँ शक्ति है और जहाँ शक्ति है, वहाँ शक्ति-मान है। दोनों तत्व अभेद्य हैं।

शक्ति-तत्व की उपासना अनादि काल से संसार में होती आ रही है। लौकिक और पारमार्थिक दोनों विषयों की सिद्धि इससे होती है। इसीलिये आर्य जनता सनातन-काल से ही बल, ऐश्वर्य, ज्ञान, सौन्दर्य, निःश्रेयस आदि तत्वों को अपने धर्म तथा समाज के अङ्ग-रूप में मानती आ रही है। ये सारी वस्तुएँ शक्ति-तत्व के ही रूपान्तर हैं। उपनिषदों में जिन्हें ब्रह्म कहा गया है, वह भी शक्ति-पदार्थ का अभिन्न रूपान्तर ही है। आचार्य भगवत्पाद जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य ने सौन्दर्य-लहरीमें कहा है—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं।
न चेदेवं देवः खलु कुशलः स्पन्दितुमपि॥

अर्थात् ब्रह्म शक्ति-तत्व-युक्त ही कार्य करने में समर्थ है, अन्यथा वह कुछ भी नहीं कर सकता। अनुभव से भी यह बात प्रत्यक्ष है कि शक्ति-मान ही कोई भी कार्य करते देखा गया है। संसार के इतिहास से भी यह प्रकट है कि संसार में शक्तिशाली का ही सदैव बोलबाला रहा है। आर्य जाति ने अतीत में जो कुछ भी ऐश्वर्य, ज्ञान, तप आदि की उन्नति की थी, उसका मूल कारण शक्ति-तत्व की उन्नति की उपासना ही है, क्योंकि बिना शक्ति के ये सब असम्भव हैं।

शक्ति की उपासना भारत को शक्तिशाली, सर्व-सम्पत्-समृद्ध बना सकती है। सर्व भारतीय धर्म निगमागम-मूलक हैं। भारतीय सभ्यता भी निगम और आगम पर अवलम्बित है। वैदिक ग्रन्थों में निर्दिष्ट ज्ञान का क्रियात्मक रूप अथवा विधानात्मक आचार आगमों का मुख्य विषय है। किसी ने कहा है—'सर्व-शाक्तमिदम् जगत्' अर्थात् यह समस्त जगत् शाक्त है।

मनुष्य-जन्म का उद्देश्य है अपनी अवस्थाओं पर आधिपत्य और पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करना, न कि अपनी अवस्थाओं का दास बने रहना। प्रत्येक मनुष्य में इतनी अलौकिक और महती शक्तियाँ भरी हुई हैं कि वह जैसा चाहे, अपनी अवस्था में परिवर्त्तन कर डाले। विश्वामित्र आदि ऋषि इसके प्रमाण हैं।

शक्ति-उपासना का तात्पर्य यही है कि मनुष्य अपनी

शाक्तोपयोगी बाहरी प्रकाशन

[कृपया निम्न पुस्तकें मगांते समय पूरा मूल्य या कम-से-कम चौथाई मूल्य अग्रिम अवश्य भेजें। शेष मूल्य की वी० पी० कर दी जायेगी। प्राप्य पुस्तकें भेजते समय उनका जो मूल्य होगा, वही लिया जायेगा।]

श्री वेङ्कटेश्वर प्रकाशन

उच्छिष्ट-गणपत्युच्छिष्ट-चाण्डालिन्युपासने	२)७५
उड्डीश तन्त्र	१)३०
क्रियोड्डीश	२)००
कालिका सहस्रनाम	०)७५
गायत्री तन्त्र	१)५०
दत्तात्रेय तन्त्र	१)५०
दुर्गा सप्तशती—नागोजी भट्ट	५)००
दुर्गा सप्तशती (शान्तनवी टीका)	६)५०
प्रत्यङ्गिरा पंचांग	३)५५
पञ्चदशी तंत्र	०)३०
माहेश्वरी तन्त्र	०)७५
यन्त्र-चिन्तामणिः (भाषाटीका)	२)१५
योगिनी तन्त्र (अनुवाद सहित)	१०)५०
बृहत इन्द्रजाल	६)००
रुद्रयामल तन्त्र (हिन्दी टीका)	१)५०
सौभाग्य लक्ष्मी (हिन्दी टीका)	१)५०
शाक्त-प्रमोद	३०)००

चौखम्बा-प्रकाशन

कालिका पुराण	३५)००
गायत्री तन्त्र	३)००
तन्त्रसारः	४)००
तारा रहस्य	३)००
दुर्गा सप्तशती-मूल गुटका	२)५०
” ” -भाषाटीका	४)००
दुर्गापूजा-श्यामापूजा पद्धति	१)५०
दुर्गा पञ्चाङ्ग	१)२५
मन्त्र और मातृकाओं का रहस्य	१८)००
महामृत्युञ्जय पञ्चाङ्ग	१)२
स्त तन्त्र	४)००
सुलभ ज्योतिष ज्ञान	१०)००
हिन्दी प्रत्यभिज्ञा हृदय	१०)००
षट्चक्र-निरूपण	१)५०
श्री गायत्री पूजा पद्धति	०)२५
श्री महेश्वर तन्त्रं (अपौरुषेय)	१२)००
त्रिपुरा रहस्य (ज्ञान खण्ड)	१३)००
शाक्त दर्शनम्	२०)००
शारदातिलकं	[illegible])००
TRIPURA RAHASYA	20/00

श्री पीताम्बरा प्रकाशन

अथर्ववेदीय ज्यौतिष	१,००
आनन्द लहरी स्तोत्र (डिण्डिम भाष्य व श्री गोपाल सुन्दरी टीका)	२)२५
ईश्वर-गीता	१)२०
घेरण्ड संहिता	२)००
चिद्-विलास	१)००
नारदीय शिक्षा (संस्कृत टीका)	१)५०
प्रत्यभिज्ञाहृदयं (शाक्त-दर्शन-हिन्दी अनुवाद सहित)	१-५०
पञ्च-स्तवी	०)५०
पञ्चोपनिषद्	२)२५
परश्चरणम्	१)००
पुरश्चरण पद्धति	१)५०
प्रश्नोपनिषत् संस्कृत भाष्य सहित	१) ०
लेख-संग्रह	४)००
वेदान्त प्रबोधः (भाषानुवाद-सहित)	१)५०
वैदिक उपदेश (व्याख्या सहित)	३)२५
शिव-सूत्र भक्ति-सूत्रञ्च (संस्कृत टीका सहित)	०)५०
सिद्धान्त-रहस्य	२)००
श्री बगलामुखी रहस्यं (संस्कृत में)	४)५०
श्री महात्रिपुर सुन्दरी पूजा पद्धति	३)००
श्री वातुल नाथ सूत्र	१)००

वयं महा-शक्तिशाली बन सकते हैं।

विचारने की बात है। हम लोगों का सनातन धर्म, जिसमें ब्रह्म-तेज, क्षात्र-तेज और वेद द्वारा हम बलशाली बन सकें आदि निर्दिष्ट हुआ है, वहाँ है? वह यहीं है और शास्त्र भी यहीं हैं। लुप्त नहीं हुए हैं, केवल उपासकों की कमी है, प्रयत्न और संकेत का अभाव है। वह बिना गुरु नहीं मिल सकता। 'कुल-धर्म ही सनातन-धर्म है'—यह उक्ति तो सर्व-विदित है लेकिन कुल-धर्म किसको कहते हैं, यह बात सब लोगों को मालूम नहीं है।

अद्वितीया महाशक्ति-स्वरूपिणी सच्चित् प्रेमानन्दमयी वही देवी देवताओं में भिन्न-भिन्न खण्डित रूप में प्रकट है। खण्ड-खण्ड शक्तियाँ जब स्वरूपतया अखण्ड महाशक्ति के साथ नित्य-योग-विस्मृत होकर अभिमान-वश स्वरूप-प्राधान्य स्थापन करती हैं, तभी वे क्रमशः निस्तेज हो पड़ती हैं। यह निस्तेज अवस्था भी उनके कल्याण के लिये है। तब वे अपनी दुर्बलता और निस्तेज अवस्था का कारण अनुसन्धान करती-करती फिर उसी महाशक्ति को पाती हैं और उनके साथ युक्त हो जाती हैं।

आज हम लोग यदि अपना-अपना स्वतन्त्र अभिमान त्यागकर शक्ति संहत करें और अपना-अपना तेज एकत्र कर संघ-बद्ध होकर उसे प्रकट करें तथा उसके लिये स्मरण करें, अनुभव करें कि हम सभी लोगों का बल-वीर्य, ऐश्वर्य एक ही महा-शक्ति के लीला-विलास में विचित्र रूप से अभिव्यक्त है, तब महिमामयी सनातनी महाशक्ति सर्व-सौन्दर्य, माधुर्य, वीर्य, ऐश्वर्यमयी मातृ-मूर्ति परिग्रह-पूर्वक हमारे सम्मुख आविर्भूता होंगी।

त्वमेका सर्व-देवानां शरणं भक्त-वत्सले ।
पीड़ितान् दानवेनाद्य त्राहि देवि नमोऽस्तुते ॥

'दुर्गा सप्तशती' में यह स्पष्ट बतलाया गया है कि भगवती की कृपा से ही सम्यक् तत्व-ज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञान की प्रशंसा सर्वत्र है; ज्ञान के होने से अज्ञान-मोहादि मिट जाते हैं। ज्ञान-सम्पादन के लिये ही श्रवणादि किये जाते हैं। जप, तप, यज्ञादि सबका परम उपयोग ज्ञान में ही है। परन्तु वह ज्ञान साधारण ज्ञान नहीं है, क्योंकि शब्दादि विषयों का ज्ञान तो प्राणि मात्र को होता है। इससे संसार के मूल-भूत अज्ञान की निवृत्ति नहीं होती है। यही महामाया का प्रभाव है, जिससे सर्वाधिष्ठान, स्व-प्रकाश परब्रह्म का बोध नहीं होता। वही उपनिषज्ज्ञान-निष्ठ वशिष्ठ, भरत, विश्वामित्र आदि के चित्त को भी बलात् मोहित कर देती है। वही चराचर प्रपञ्च का निर्माण करती है; वही प्रसन्न होकर मुक्ति प्रदान करती है; विद्या-रूप होकर वही मुक्ति-प्रदा है; अविद्या-रूप से वही संसार-बन्धन का हेतु है; वही भगवान् विष्णु की योग-निद्रा कहलाती है और उनको विश्राम देती है। वही सृष्टि, स्थिति, संहार करती है। वही स्वाहा-रूप से देवताओं को, स्वधा-रूप से पितरों को और वषट्-कार-रूप से श्रौत देवताओं को तृप्त करती है। परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी के मध्य में परा-वाक्-स्वरूपा वही है। वस्तुतस्तु संसार में सत्-असत्, कार्य-कारण, चेतन-अचेतन जहाँ भी जो भी कोई वस्तु है, उस सबकी जो शक्ति है, वह भगवती ही है।

यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे मया ॥

अध्यात्म रामायण की 'रामगीता' में भगवान् श्री रामचन्द्रजी श्री लक्ष्मणजी को प्रबोध करते हुये कहते हैं—

तस्मात् स्वतन्त्रतां न किमप्यपेक्षते विद्या विमोक्षाय
विभाति केवला ।

जिन्हें मुक्ति-दाता कहा जाता है, वे श्रीरामचन्द्र जी श्रीमुख से केवल विद्या—भगवती को ही मुक्ति का हेतु मानते हैं। विद्या श्री आद्यादि दश महा-शक्तियों का नाम है। ये दश ज्ञान की मूर्तियाँ हैं। जैसे—

मास्टर खेलाड़ीलाल प्रकाशन

कनकधारा स्तोत्र	०)५०
कर्पूर स्तवः (हिन्दी टीका)	१)५०
ज्योतिष रत्नमाला	८)००
दुर्गा सप्तशती का आध्यात्मिक रहस्य	३)५०
माहेश्वरी तन्त्र	०)५०
तारा कर्पूर राज स्तोत्रम्	१)४८
ललिता सहस्रनाम स्तोत्रम	३)००
विपरीत प्रत्यंगिरा	०)२५
वनदुर्गा	२)००
शिला-देहली-न्यास-पद्धति	१)००
शिवपूजन पद्धति-मूल	०)५०
शुक्ल यजुर्वेदीयोपनयन पद्धति	१)२८
षटसूक्तानि-मूलमात्र	०)३२
स्तुति कुसुमांजलि	१२)००
सिद्ध सरस्वती स्तोत्र	०)४०
श्री महोग्रताराकवचम् मूल	१)००
प्रत्यङ्गिरा स्तोत्र	०)५०

भारतीय विद्या प्रकाशन

जप-सूत्रं	२०)००
साधु-दर्शन तथा सत्प्रसङ्ग	१५)००
श्री कृष्ण प्रसंग	१५)००
श्री शिव कवचं	०)५०
श्री दुर्गा कीलन का उद्घाटन	०)७५

मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन

भारतीय संस्कृति और साधना दो भाग	१८)५०
तांत्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि	७)५०
कर्मठ-गुरुः (संस्कृत में)	८)००

कायस्थ धर्म प्रचारक मण्डली प्रकाशन

प्रवृत्ति में निवृत्ति स्वा० दिव्यानन्द जी	५)००
यन्त्र तन्त्र सर्वत्र ,,	३)००
दिव्य दृष्टान्तावली ,,	४)००
शक्ति-सुयश ,,	३)००

विविध प्रकाशन

कौशिकी	२)००
गायत्री रहस्य	६)५०
दुर्गा सप्तशती (सजिल्द)	३)००
दुर्गा सप्तशती, रफ कागज	२)००
दुर्गा सप्तशती सादी जिल्द	१)७५
दुर्गा सप्तशती, पत्राकार	२)००
दुर्गा सप्तशती, गुटका ६४ पेजी	१)००
दुर्गा सप्तशती, गुटका ३२ पेजी	१)५०
नवरात्र महोत्सव एवं शक्ति उपासना	०)५०
माधव ग्रन्थावली	५)००
बगलाराध्य-सरणि	०)६०
महिषासुर वध	२)००
युग-सन्देश	२)००
रास पंचाध्यायी	१५)००
वांछा कल्पलता	५)५०
वशीकरण मन्त्र	४)००
बृहद् कौवा तन्त्र	५)००
हनुमद्-रहस्य	६)००
श्रीमद्देवी भागवत (भाषा टीका)	८)००
श्री दुर्गा परिचय	१)००
शक्ति-गीताञ्जलि	१)००

पुस्तक प्राप्ति का स्थान

पं० देवीदत्त शुक्ल स्मारक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

प्रयाग—६

कौल-कल्पतरु

चण्डी

शारदीय नवरात्रांक

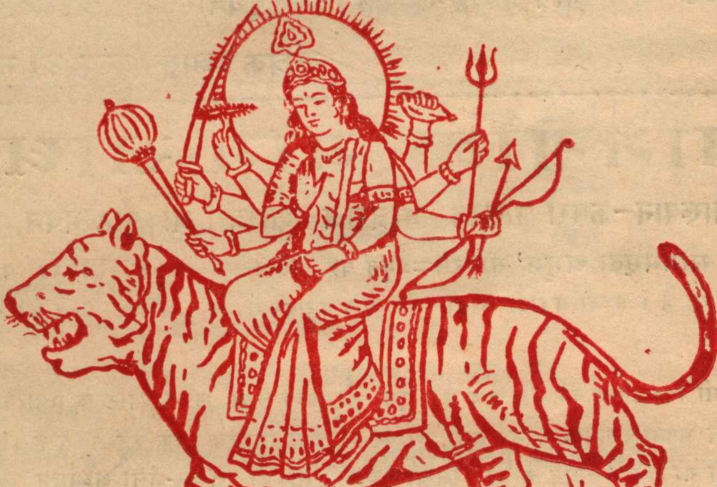

वार्षिक शुल्क : १२)

एक प्रति : २)

पर्व-दिन

१६ अक्टूबर ७४	आश्विन शुक्ल १	बुधवार	नवरात्रारंभ
२८ अक्टूबर ७४	आश्विन शुक्ल १३	सोमवार	श्री प्रदोष व्रत
११ नवम्बर ७४	कार्तिक कृष्ण १२	सोमवार	श्री प्रदोष व्रत
१४ नवम्बर ७४	कार्तिक शुक्ल १	गुरुवार	भगवती कमला जयन्ती
२७ नवम्बर ७४	कार्तिक शुक्ल १३	बुधवार	श्री प्रदोष व्रत
११ दिसम्बर ७४	मार्गशीर्ष कृष्ण १४	बुधवार	श्री प्रदोष व्रत

तांत्रिक पञ्चाङ्ग (मूल्य ४) रु० के अनुसार)

आगमोक्त 'योग-साधना'

व्याख्यान-केसरी पण्डित भोजराज शास्त्री, श्री पीठ भवन, जोधपुर

'अपाम सोमममृता अभूम' सोमरस=अमृत वह अलौकिक रस है, जिसका पान करके कई लोग तर गये और तरते जा रहे हैं। अध्यात्मवादी लोगों को ऐसे महापुरुषों के लिखित ग्रन्थ भी श्रेयोमार्ग प्राप्त करने में मार्गदर्शक बनते हैं।

श्री स्वामी दिव्यानन्द जी महाराज एक ऐसे ही दिव्य तथा उच्च कोटि के महात्मा हैं, जिनकी पुस्तकों के सहारे यदि मुमुक्षु जन अपना कल्याण करना चाहें, तो पढ़कर व अनुशीलन करके कर सकते हैं। आपकी 'योग साधना' नामक पुस्तक ऐसे ही गम्भीर अध्ययन के बाद लिखी गई है। आपकी लेखन-शैली अध्यात्म विषय--योग जैसे नीरस तत्वों को सरस बना कर समझाना, भाषा-माधुर्य तथा आगम-निगमोक्त सिद्धान्तों और तथ्यों से अनुस्यूत कुण्डलिनी-योग का प्रदर्शन, मुण्डमाला-रहस्य, जप-विधान तथा मन्त्र-जपादि सारे विषय अपनी अनुभूति के परमास्पद हैं। योगाभ्यास का महत्त्व व उसके लाभ तथा मोक्ष-स्वरूप को तो आपने इतना आश्चर्य का लिखा है कि साधारण-से-साधारण व्यक्ति भी अपना आत्म-लाभ करके जीवन्मुक्त हो सकता है।

परिशिष्ट में आपने वास्तव में गागर में सागर भर दिया है। शाक्त-सिद्धन्त के आप मर्मज्ञ है। आपके कई ग्रन्थ निकल चुके हैं। यह 'योग-साधना' पुस्तक कुण्डलिनी-योग-शिक्षा में अग्रणी है। संस्कृत ग्रन्थों का रहस्य साधारण बोल-चाल की भाषा में समझाना साधारण बात नहीं है। आधुनिक युग के लोग वैसे ही अध्यात्म मार्ग से शून्य हैं। फिर उनको कोई सन्त व ग्रन्थ भी ऐसे नहीं मिलते, जिनके द्वारा अपना हित-साधन कर सकें। आपकी पुस्तक सच्चा गुरु और मार्ग-दर्शक होगी, ऐसी मेरी दृढ़ धारणा है क्योंकि निःस्वार्थ भाव से लिखा और बतलाया हुआ मार्ग-(ग्रन्थ) सर्व साधारण के लिये उपयोगी होता है—'परोपकाराय सतां विभूतयः'।

प्रस्तुत पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ तथा अनुशीलन कर आध्यात्मिक स्फुरणा अवश्य होगी, यह नितान्त सत्य है। ऐसा साधक स्वयं अनुभव करेंगे। मैं 'योग-साधना' पुस्तक के प्रचार व प्रसार के लिये सच्ची शुभ कामना करता हूँ।

॥ सत्यं शिवं सुन्दरम ॥

दुर्गा-स्तुति-पञ्चकम्

ॐ दुर्गां शिवां शान्ति-करीं ब्रह्माणीं ब्रह्मणः प्रियां ।
सर्व-लोक-प्रणेत्रीं च प्रणमामि सदा शिवाम् ॥१॥
मङ्गलां शोभनां शुद्धां निष्कलां परमां कलां ।
विश्वेश्वरीं विश्व-मातां चण्डिकां प्रणमाम्यहम् ॥२॥
सर्व-देव-मयीं देवीं सर्व-रोग-भयापहां ।
ब्रह्मेश-विष्णु-नमितां प्रणमामि सदा उमाम् ॥३॥
विन्ध्यस्थां विन्ध्य-निलयां दिव्य-स्थान-निवासिनीं ।
योगिनीं योग-मातां च चण्डिकां प्रणमाम्यहम् ॥४॥
ईशान-मातरं देवीमीश्वर समीश्वर-प्रियां ।
प्रणतोऽस्मि सदा दुर्गां संसारार्णव-तारिणीम् ॥५॥
य इदं पठति स्तोत्रं शृणुयाद् वापि यो नरः ।
स मुक्तः सर्व-पापैस्तु मोदते दुर्गया सह ॥६॥

('पौराणिक नवरात्र-पूजा-पद्धति, से)'

'कौल-कल्पतरु' चण्डी

वर्ष ३३] आश्विन-कार्तिक शुक्लाष्टमी २०३१ वि० [संख्या ७-८

१ श्री दुर्गा-स्तुति-पञ्चकम् : सङ्कलित ६५
२ श्री देवी-स्तुति : स्वामी श्री अव्ययानन्द ६६
३ नव-पत्रिका पूजन : 'कुलभूषण' पं० रमादत्त शुक्ल, एम० ए० ६७
४ अद्वैत है एकत्व है : पं० लक्ष्मीकान्त मिश्र ६९
५ धार्मिक जगत् की हलचल—'अद्वैत शक्ति-साधना-सत्संग' का अधिवेशन ७०
६ महापूजा : राजगुरु स्व० पण्डित हरिदत्त जी शास्त्री ७१
७ श्री चण्डी नवाक्षर मालिका : श्री सी० वी० सामी शास्त्री ७३
८ NAVARATRA : SHRI T. V. KAPALI SHASTRI 75
९ MOTHER OF THE VEDAS : ARTHUR AVALON 76
१० चण्डी का एक सिद्ध प्रयोग : श्री नाथ नरंगुद ७७
११ शारदीय नवरात्र रहस्य : पण्डित-प्रवर श्री नथमल जी दाधीच कौलाचार्य ७९
१२ दुर्गा-पूजा : 'कौल-कल्पतरु' स्वर्गीय पण्डित देवीदत्त शुक्ल ८३
१३ शारदीय दुर्गा पूजा : स्वर्गीय पं० भूपेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय ८५
१४ सम्पादकीय ८८

शक्ति-तत्व

१५ शक्ति-तत्व या ब्रह्म-विद्या : श्री कृपानाथ सिंह, एडवोकेट ४१
१६ शक्ति-तत्व (ध्यान रहस्य) : ब्रह्मलीन श्री स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती ४३

भूल-सुधार : पृष्ठ ४९ से ५६ तक पृष्ठ-संख्या गलत छप गई है। कृपया उसे सुधार कर क्रमशः ७३ से ८० कर लें और फा० ७ को फा० १० बना लें।

देवी-स्तुति

स्वामी श्री अव्ययानन्द

जय मा शंकरि भगवति दुर्गे,
दैत्य-विदारिणि सदा सुख मार्गे ।
आओ मा पार्वति भवेश-गेहिनि,
वितरण करो कृपा मातर्भवानि ॥१॥
महिष-विमर्दिनि हिमाद्रि-कन्ये,
अशुभ-नाशिनि त्रिभुवन-धन्ये ।
वांछित वरदे नृमुंड-मालिनि,
वितरण करो कृपा मातर्भवानि ॥२॥
शङ्कर-हृदय-विलासिनि मातः,
तव रण-रंग से देव हैं प्रीत ।
शुम्भ-निशुम्भ नाश में रणरंगिनी,
वितरण करो कृपा मातर्भवानि ॥३॥
भीम-निनादिनि शत्रु-निहन्त्रि,
दशभुज-धारिणि त्वं शुभदात्रि ।
त्रिभुवन तारिणि विश्व जननि ,
वितरण करो कृपा मातर्भवानि ॥४॥
भगत-जीवन-जन-विघ्न-विनाश के,
दुर्गति-हारिणि सदा निज दास के ।
सृष्टि-स्थिति-लय प्रलय-कारिणि,
वितरण करो कृपा मातर्भवानि ॥५॥
मृत-पति-वाहिनि लोहित-नयने,
लक लक जिह्वा कराल-वदने ।
चण्ड-विघातिनि काल निवारिणि,
वितरण करो कृपा मातर्भवानि ॥६॥
तारा महेश्वरि विश्व-विधात्रि,
रिपु-कुल-नाशिनि महा-कालरात्रि ।
भ्रान्ति-विनाशिनि अभय दायिनि—
वितरण करो कृपा मातर्भवानि ॥७॥

नव-पत्रिका-पूजन

'कुलभूषण' पण्डित रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

आश्विन मास में शारदीय नवरात्र का जो महोत्सव सारे देश में मनाया जाता है, उसका पूजन-विधान वैदिक, पौराणिक एवं तान्त्रिक तीन रूपों में मिलता है। 'वैदिक नवरात्र-पूजा-पद्धति' नामक पुस्तिका (मूल्य रु० १-५०) के रूप में वैदिक पूजा-विधि तो उपलब्ध है, किन्तु पौराणिक विधान कहीं से प्रकाशित नहीं मिलता।

उल्लेखनीय है कि श्री मद्देवीभागवत, बृहन्नन्दिकेश्वर एवं कालिका पुराणों में उक्त महोत्सव की विधि विशेष रूप से दृष्टि-गत होती है। इन्हीं तीनों के आधार पर एक पूजा-पद्धति तैयार की गई है, जो अलग पुस्तक-रूप से प्रकाशित हो रही है।

उक्त महोत्सव की पूजा के दो कल्प मिलते हैं। एक के अनुसार आश्विन कृष्ण नवमी से आश्विन शुक्ल नवमी तक एक पक्ष तक महोत्सव मनाये जाने का विधान है। दूसरा आश्विन शुक्ल षष्ठी से नवमी तक की चार दिवसीय पूजा-विधि का निर्देश करता है।

महोत्सव के पूजा-विधान में मुख्यतः १ बोधन, २ आमन्त्रण, ३ अधिवास, ४ नव-पत्रिका-प्रवेश, ५ सन्धि-पूजा, ६ मुख्य दुर्गा-पूजन और ७ विसर्जन कर्म हैं। इन सभी कर्मों की अपनी-अपनी विशेषता है और इनमें से प्रत्येक की मन्त्रात्मक साधन-प्रक्रिया है। उदाहरण के लिये 'नव-पत्रिका-प्रवेश' को लें। इस कर्म की विलक्षणता स्वयं स्पष्ट है। शारदीय नवरात्र के महोत्सव में 'नव-पत्रिका-पूजन' का विधान कितना विस्तृत है, यह देखकर उसके महत्व का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। श्री दुर्गा की मृण्मयी प्रतिमा स्थापित करने में असमर्थ होने की दशा में केवल 'नव-पत्रिका' के ही पूजन से महोत्सव सम्पन्न किया जा सकता है। ऐसी हीं महत्वपूर्ण नव-पत्रिका का पूजन-विधान यहाँ "पौराणिक नवरात्र-पूजा-पद्धति" से उद्धृत किया जा रहा है—

आश्विन शुक्ला सप्तमी के दिन प्रातः बिल्व (बेल) के वृक्ष के पास जाये। वहाँ आचमन कर सङ्कल्पपूर्वक पंचोपचारों से बिल्व-वृक्ष की पूजा कर हाथ जोड़ निम्न प्रार्थना करे—

ॐ बिल्व-वृक्ष ! महाभाग ! सदा त्वं शङ्कर-प्रियः।
गृहीत्वा तव शाखां च दुर्गा-पूजां करोम्यहम्॥
ॐ शाखाच्छेदोद्भवं दुःखं न च कार्यं त्वया प्रभो !
देवैर्गृहीत्वा ते शाखां पूज्या दुर्गेति विश्रुतिः॥

अर्थात् हे महाभाग बिल्ववृक्ष ! आप सदा से शङ्कर के प्रिय हैं। आपकी शाखा को लेकर मैं दुर्गा की पूजा करता हूँ। हे प्रभो ! शाखा के तोड़ने से होनेवाले कष्ट का दुःख आप न करें क्योंकि देवता भी आपकी शाखा लेकर दुर्गा की पूजा करते हैं, ऐसी ख्याति है।

उक्त प्रार्थना कर खड्ग से एक ऐसी शाखा को, जिसमें दो फल लगे हों, निम्न मन्त्र से काटे—

ॐ छिन्दि छिन्दि फट् फट् स्वाहा

इस शाखा में नव-पत्रिकाओं को बाँधे। नव-पत्रिकाएँ ये हैं—१ रम्भा (केला), २ कच्ची (अरवी), ३ हरिद्रा (हल्दी), ४ जयन्ती (जैंता), ५ बिल्व (बेल), ६ दाडिम (अनार), ७ अशोक, ८ मानक (मानकच्चू), ९ धान—इनकी पत्तियां। सप्तमी के पहले ही अर्थात् षष्ठी के दिन सायंकाल एक छोटे केले के पौधे में अन्य आठ वस्तुओं की शाखाओं को लपेटकर बिल्व-वृक्ष के पास रख देना चाहिये।

नव-पत्रिका-युक्त बिल्व-शाखा को, सम्भव हो तो ले जाकर गङ्गाजी में विधिपूर्वक स्नान करावे अथवा पूजा-गृह के आँगन में ही स्नान करा कर उसका पूजन करे और साड़ी तथा सिन्दूर आदि से सुशोभित कर गणेशजी की मूर्ति के दाहिनी ओर स्थापित करे।

पूजा-गृह में नव-पत्रिका को ले जाने के पूर्व निम्न मन्त्रों को पढ़े—

ॐ पुत्रायुर्धन-वृद्ध्यर्थं नेष्यामि चण्डिकालयम् ।
बिल्व-शाखां समाश्रित्य लक्ष्मी-राज्यं प्रयच्छ मे ॥
ॐ आगच्छ चण्डिके देवि सर्व-कल्याण-हेतवे ।
पूजां गृहाण सुमुखि ! नमस्ते शङ्कर-प्रिये ॥

अब उसे स्नान कराने के पूर्व 'ॐ नव-पत्रिकार वासिन्यै दुर्गायै नमः' मन्त्र से उसकी पूजा करे । फि-निम्न नौ मन्त्रों से उसे स्नान करावे—

ॐ कदली-तरु-संस्थासि विष्णोर्वृक्षःस्थलाश्रये ।
नमस्ते नव-पत्रि ! त्वं नमस्ते चण्ड-नायिके ॥
ॐ कच्वि ! त्वं स्थावरस्थासि सदा सिद्धि-प्रदायिनी
दुर्गा-रूपेण सर्वत्र स्नानेन विजयं कुरु ॥
ॐ हरिद्रे ! हर-रूपासि शङ्करस्य सदा प्रिये ।
रुद्र-रूपेण देवि त्वं सर्व-शान्तिं प्रयच्छ मे ॥
ॐ जयन्ति जय-रूपासि जगतां जय-कारिणि ।
स्नापयामीह देवि त्वं जयं देहि गृहे मम ॥
ॐ श्रीफल श्री निकेतोऽसि सदा विजय-वर्धन ।
देहि मे हित-कामांश्च प्रसन्नो भव सर्वदा ॥
ॐ दाडिम्यघ विनाशाय क्षुन्नाशाय सदा भुविः ।
निर्मिता फल-कामाय प्रसीद त्वं हर-प्रिये ॥
ॐ स्थिरा भव सदा दुर्गे अशोके शोक-हारिणि ।
मया त्वं पूजिता दुर्गे मामशोक सदा कुरु ॥
ॐ मानो-मान्येषु वृक्षेषु माननीयः सुरासुरैः ।
स्नापयामि महादेवि मानं देहि नमोऽस्तु ते ॥
ॐलक्ष्मीस्त्वं धान्यरूपासि प्राणिनां प्राण-दायिनि
स्थिरात्यन्तं हि नो भूत्वा गृहे काम-प्रदा भव ॥

इसके बाद निम्न मन्त्रों से पंचोपचारों से प्रत्येक वृक्ष की अलग-अलग पूजा कर प्रणाम-मन्त्रों से प्रत्येक को नमस्कार करे—

१ ॐ रम्भाधिष्ठात्रि ब्रह्माणि ! इहागच्छ इहागच्छ इह तिष्ठ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि इह सन्निधेहि इह सन्निरुद्धस्व इह सन्निरुद्धस्व इह सम्मुखीकृता भव ॐ रम्भाधिष्ठात्र्यै ब्रह्माण्यै नमः गन्धं समर्पयामि इत्यादि ।

ॐ दुर्गा देवि ! समागच्छ सान्निध्यमिह कल्पय ।
रम्भा-रूपेण सर्वत्र शान्तिं कुरु नमोऽस्तु ते ॥

२ ॐ कच्वधिष्ठात्रि कालिके ! इहागच्छ…… इह सम्मुखीकृता भव ॐ कच्वधिष्ठात्र्यै कालिकायै नमः गन्धं समर्पयामि इत्यादि ।

ॐ महिषासुर-युद्धेषु कच्वी-भूतासि सुव्रते ।
मम चानुग्रहार्थाय आगतासि हरि-प्रिये ॥

३ ॐ हरिद्राधिष्ठात्रि दुर्गे ! इहागच्छ…… सम्मुखीकृता भव ॐ हरिद्राधिष्ठात्र्यै दुर्गायै नमः गन्धं समर्पयामि इत्यादि ।

ॐ हारिद्रे वरदे देवि उमा-रूपासि सुव्रते ।
मम विघ्न-विनाशाय पूजां गृह्ण प्रसीद मे ॥

४ ॐ जयन्त्यधिष्ठात्रि कार्तिकि इहागच्छ…… इह सम्मुखीकृता भव ॐ जयन्त्यधिष्ठात्र्यै कार्तिक्यै गन्धं समर्पयामि इत्यादि ।

ॐ निशुम्भ-शुम्भ-मथने इन्द्रैर्देवगणै सह ।
जयन्ति पूजितासि त्वमस्माकं वरदा भव ॥

५ ॐ बिल्वाधिष्ठात्रि शिवे इहागच्छ…… इह सम्मुखीकृता भव ॐ बिल्वाधिष्ठात्र्यै शिवायै गन्धं समर्पयामि इत्यादि ।

ॐ महादेव-प्रियकरो वासुदेव-प्रियः सदा ।
उमा-प्रीति-करो वृक्षो बिल्ववृक्ष नमोस्तु ते ॥

६ ॐ दाडिम्यधिष्ठात्रि रक्तदन्तिके इहागच्छ …… इह सम्मुखीकृता भव ॐ दाडिम्यधिष्ठात्र्यै रक्तदन्तिकायै गन्धं समर्पयामि इत्यादि

ॐ दाडिमि त्वं पुरा युद्धे रक्तबीजस्य सम्मुखे ।
उमा-कार्यं कृतं यस्मादस्माकं वरदा भव ॥

७ ॐ अशोकाधिष्ठात्रि शोक-रहिते इहागच्छ…… इह सम्मुखीकृता भव ॐ अशोकाधिष्ठात्र्यै शोक-रहितायै गन्धं समर्पयामि इत्यादि ।

ॐ हर-प्रीति-करो वृक्षो ह्यशोकः शोक-नाशनः ।
दुर्गा-प्रीति-कर यस्मादस्माकं वरदा भव ॥

८ ॐ मानाधिष्ठात्रि चामुण्डे इहागच्छ…… इह सम्मुखीकृता भव ॐ मानाधिष्ठात्र्यै चामुण्डायै गन्धं समर्पयामि नमः ।

ॐ यस्य पत्रे वसेद् देवी मान-वृक्षः शची-प्रियः ।
मम चानुग्रहार्थाय पूजां गृह्ण प्रसीद मे ॥

शेष पृष्ठ ६८ पर

अद्वैत है, एकत्व है

पण्डित लक्ष्मीकान्त मिश्र

(१)

चिन्मात्र तू भरपूर है, नहिं विश्व तुझसे भिन्न है ।
फिर त्याग क्या, कैसा ग्रहण, तुझसे न जब कुछ अन्य है ।।
है विश्व तेरी कल्पना, तू सिद्ध अक्षय तत्व है ।
नहिं भेद है, नहिं द्वैत है, अद्वैत है, एकत्व है ।।

(२)

तू एक अव्यय शान्त निर्मल स्वच्छ चिद् आकाश है ।
अज्ञान तुझमें है नहीं नहिं भ्रान्ति नहिं अध्यास है ।।
राजस नहीं तामस नहीं तुझमें न रञ्चक सत्य है ।
निर्गुण निरामय एक रस, अद्वैत है, एकत्व है ।।

(३)

कंकण कटक नूपुर रुचक नहिं कनक से कुछ भिन्न है ।
नहिं कार्य कारण से कभी तिहुं काल में भी अन्य है ।।
जो जो जहां कुछ देखता तेरा सभी भासत्व है ।
तुझसे नहीं है भिन्न कुछ, अद्वैत है एकत्व है ।।

(४)

मैं हूं यहीं, मैं वह नहीं यह भिन्नता मत मान रे ।
मैं सर्व हूँ' 'सर्वात्म हूँ' ऐसा निरन्तर जान रे ।।
तेरे बिना नहिं अन्य का किंचित कहीं अस्तित्व है ।
श्रुति सन्त सब ही कह रहे, अद्वैत है एकत्व है ।।

(५)

यह विश्व केवल भ्रान्ति है नहिं वस्तुतः कुछ सत्य है ।
नश्वर सभी तेरे सिवा तू एक शाश्वत नित्य है ।।
चिन्मात्र तू ही तत्व है यह दृश्य सब निस्तत्व है ।
निस्तत्व को सत्ता कहाँ, अद्वैत है एकत्व है ।।

(६)

संसार सागर मांहि तू ही एक पहले सत्य था ।
अब भी तुही है एक आगे भी रहेगा तू तथा ।।
नहिं बन्ध है नहिं मोक्ष नहिं कर्तृत्व नहिं भोक्तृत्व है ।
सर्वत्र तू ही पूर्ण है, अद्वैत है एकत्व है ।।

(७)

निज चित्त को मत क्षोभ दे संकल्प और विकल्प से ।
कूटत्व भूमा ठोस हो मत काम रख कुछ अल्प से ।।
अल्पत्व भासे भ्रान्ति में पर वस्तुतः पूर्णत्व है ।
निर्वासना हो जा सुखी, अद्वैत है एकत्व है ।।

(८)

मत ध्यान कर कुछ हृदय में सर्वत्र तज दे ध्यान तू ।
आत्मा सदा है मुक्त तू फिर क्या करे है ध्यान तू ।।
जब दूसरा है ही नहीं तो सर्वथा मौनत्व है ।
भोला सुखी हो, शान्त हो, अद्वैत है एकत्व है ।।

* * *

६ ॐ धान्याधिष्ठात्रि महालक्ष्मि इहागच्छ...... इह सम्मुखीकृता भव ॐ धान्याधिष्ठात्र्यै महालक्ष्म्यै र्घ्यं समर्पयामि इत्यादि ।

ॐ जगतः प्राण-रक्षार्थं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।
उमा-प्रीति-करं धान्यं तस्मात् त्वं रक्ष मां सदा ।।

अन्त में 'नव-पत्रिका-वासिन्यै दुर्गायै नमः' मन्त्र से षोडशोपचार-पूजन कर निम्न मन्त्र से प्रणाम करे—

ॐ पत्रिके नवदुर्गे त्वं महादेव-मनोरमे ।
पूजां समस्ता संगृह्य रक्ष मां त्रिदशेश्वरि ।।

धार्मिक जगत की हलचल

'अद्वैत शक्ति-साधना-सत्सङ्ग' का अधिवेशन

दिनांक २९-४-७४ एवं ३०-४-७४ को सहरसा के चित्रगुप्तनगर स्थित अद्वैत आश्रम के प्राङ्गण में सोत्साह 'अद्वैत शक्ति-साधना-सत्संग' का विशेष अधिवेशन सम्पन्न हुआ। प्रथम दिन मध्याह्न-काल के सत्संग का प्रारम्भ श्री रमाकान्त रमण एवं श्री धर्मेन्द्रकुमार के द्वारा 'सुधा-धारा स्तोत्र' के सम्मिलित गायन से हुआ। इस सम्मेलन की अध्यक्षता मधुबनी जिलान्तर्गत हरिनगर ग्राम-निवासी, तन्त्र-साधना की अलौकिक विभूति, मणिपुरवासी महाकौल, मैथिल-वंश-विभूषण श्री चण्डेश्वर झा, तांत्रिक नाम कालिकानन्द ठाकुर के सुपुत्र श्री दुर्गानन्द झा 'बटोही' ने की।

स्वागताध्यक्ष पं० श्री कमलाकान्त मिश्र ने सहरसा में तांत्रिक जगत् के विशिष्ट साधकों का मंगलमय स्वागत करते हुये कहा 'आज शक्ति-साधकों के संगठन की नितान्त आवश्यकता है। 'अद्वैत-शक्ति-साधना-सत्संग' उस दिशा का एक प्रयास है।'

इस अवसर पर श्री लक्ष्मीकान्त मिश्र ने 'अद्वैत है एकत्व है' ❋ भावपूर्ण पद का गायन किया। श्री राजेन्द्र झा अधिवक्ता ने मातृ-उपासना के महत्व पर प्रकाश डाला। परा-वाणी-निकेतन, पटना के अध्यक्ष डा० श्री दुर्गाचरण कर्ण ने जीव की जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय अवस्थाओं के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किये। इस अवसर पर विशेष अतिथि नेपाली बाबा श्री स्वामी त्र्यम्बकानन्द जी ने शाक्त-साधना के महत्व पर प्रकाश डालते हुये अपने गुरुप्रवर स्वामी श्री निगमानन्द जी के जीवन के कुछ उल्लेखनीय संस्मरण प्रस्तुत किये। इसके अतिरिक्त स्थानीय साधकों में सर्वश्री प्रो० कृष्णदत्त झा, अनिरुद्ध लाल दास, कालीप्रसाद ने साधना के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन किया।

रात्रि में आयोजित शुक्लाष्टमी के सामान्य सत्संग-कार्यक्रम में प्रथम गुरु-स्मरण, द्वितीय स्वेष्ट-चिन्तन, तृतीय कुण्डलिनी-उद्बोधन, चतुर्थ शक्रादि-स्तोत्र का सस्वर पाठ हुआ। उपस्थित साधिकाओं को संबोधित करते हुये नारी एवं पातिव्रत धर्म के सम्बन्ध में कौल-मार्तण्ड आचार्य पं० कमलाकान्त मिश्र ने प्रवचन किये।

दिनांक ३०-४-७४ को प्रातःकालीन आयोजित सत्संग में पुनः कौल-मार्तण्ड पं० श्री कमलाकान्त मिश्र जी ने कुण्डलिनी-योग पर अपने सार-गर्भित प्रवचन किये। इस गोष्ठी की अध्यक्षता स्वामी त्र्यम्बकानन्द जी महाराज ने की। साधकों की जिज्ञासा-निवृत्ति-हेतु आचार्य श्री कृष्णदत्त झा, स्वामी त्र्यम्बकानन्द जी महाराज ने कई महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डाला। विशेषतः पंचकन्या के सम्बन्ध में रहस्यपूर्ण उद्घाटन त्र्यम्बकानन्द जी महाराज ने किया।

सायंकालीन आयोजित सम्मेलन की अध्यक्षता कौल-मार्तण्ड श्री कमलाकान्त मिश्र जी ने की। इस अवसर पर गुरु-प्रार्थना श्री रामवृक्ष सिंह ने की। 'सुधा-धारा-स्तव' का पाठ श्री रमाकान्त रमण ने किया। सर्वश्री प्रो० कृष्णदत्त झा, पुरुषोत्तम सिंह, अश्विनीकुमार लाल दास, प्रधानाध्यापक ने साधना-संबंधी प्रवचन किये। अनिरुद्ध लाल दास, अवकाश-प्राप्त शिक्षक ने इष्टोपासना एवं एक-निष्ठता पर विशेष प्रकाश डाला। श्री बटोही झा जी ने **"यज्ञानां जप-यज्ञोऽस्मि"** के रहस्य पर प्रकाश डाला।

श्री अश्विनीकुमार लाल, मन्त्री, अद्वैत-शक्ति-साधना-सत्संग के **"जगदम्ब मेरी नैया उस पार लगा देना"** के पद-गायन के साथ सभा विसर्जित की गयी।

अन्त में कुलभूषण पं० श्री रमादत्त शुक्ल जी की अनुपस्थिति पर उपस्थित साधकों ने दुःख प्रकट किया।

❋ 'कौल-कल्पतरु' चण्डी के इसी अङ्क के आदि में प्रकाशित—सं०।

महापूजा

राजगुरु स्वर्गीय पण्डित हरिदत्त शास्त्री

महामाया का वरदान-रूपी आदेश—

"शरत्काले महा-पूजा क्रियते या च वार्षिकी।
तस्यां ममैतन् माहात्म्यं श्रुत्वा भक्ति-समन्वितः॥
सर्वा बाधा विनिर्मुक्तो धन-धान्य-सुतान्वितः।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः॥"

नित्य-पूजा, नैमित्तिक पूजा, काम्य-पूजा तो करते ही हैं, परन्तु शरत्काल में नवरात्र-व्रत-पूर्वक महापूजा जो करते हैं और सप्तशती-पाठ या श्रवण जो करते हैं, महामाया की कृपा से उनकी सब विघ्न-बाधा दूर हो जाती है और वह धन-धान्य-सन्तान-सम्पन्न सुखी रहते हैं।

भारतवर्ष में इस महापूजा का घर-घर में प्रचार था। तभी सर्वा-बाधा-रहित सुखी भारत था। जब से यह महापूजा कम होती गई, वैसे ही संकट बढ़ने लगा। महापूजा ही भोग-मोक्ष-दायिनी है। पूजा दो प्रकार की होतीं है—बाह्यपूजा और आभ्यन्तर अन्तर्पूजन।

शारदीय समय में रात-दिन की समानता बाह्य संसार की इडा-पिंगला का साम्य होने से सारे संसार की सुषुम्णा का स्वतः विकाश हो जाता है। समष्टि के सञ्चार के अनुसार व्यष्टि में भी संकल्प-मात्र से उस समय वह सञ्चार सुलभ हो जाता है। तन्त्रशास्त्रीय उपासना का उत्कर्ष षट्-चक्र-भेदन-पूर्वक सुषुम्णा के विकाश—कुल-कुण्डलिनी के विकाश पर है। भूत-शुद्धि तत्व-शुद्धि इसी के लिये की जाती है। इडा चन्द्र; पिङ्गला सूर्य—इन दोनों का साम्य भाव सुषुम्णा का विकाश है।

शरद्-काल में रात्रि-दिवस के बराबर होने से विश्व की सुषुम्णा का विकाश होने से इस समय में महापूजा होती है। यह महापूजा नवरात्र में होती है। इन नौ दिनों को नौ दिन न कहकर नवरात्र कहते हैं। यही महापूजा का संकेत है। दिन काल के उस विभाग को कहते हैं, जिसमें इन्द्रियाँ अपने अपने विषयों पर लगी रहती हैं। रात उस विभाग को कहते हैं, जिस समय इन्द्रियां अपने-अपने विषयों से निवृत्त होकर अन्तर्मुख हो जाती हैं। इसलिये इस काल को नवरात्र कहा है। इन नौ दिनों में मौन-व्रत-पूर्वक प्रत्येक इन्द्रिय को अन्तर्मुखी कर उस महाशक्ति का एकमात्र तन्त्र-शास्त्रानुसार "तज्जपस्तदर्थ-भावनम्"—उसके जप अर्थात् उस पराशक्ति में मन्त्र के द्वारा भावना कर नवरात्र-व्रत रखे। इसी की अष्टमी को 'महाष्टमी' कहते हैं।

महाष्टमी को षोडशोपचार से भक्ति-श्रद्धा-सम्पन्न होकर महामाया का पूजन करे। इस नवरात्र में अम्बा-मख—शत या सहस्र-चण्डी या नित्य एक पाठ चण्डी का करे। पहले दिन १ अध्याय, दूसरे दिन २ अध्याय, तीसरे दिन १ अध्याय, चौथे दिन ३, पांचवें दिन २, छठे दिन १, सातवें दिन २, आठवें दिन १ अध्याय, नवमी को नवाक्षर से मधु-क्षीर-रक्त पुष्प का हवन, कुमारी-पूजनादि करे। यह नवरात्र-पूजन और व्रत-महापूजा प्रवृत्ति तथा निवृत्ति दोनों मार्गों के लिए है। प्रवृत्ति मार्ग में सर्वा-बाधा-विनिर्मुक्ति तथा धन-धान्य-सुत-विजय होती है। निवृत्ति-मार्ग में "सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये"—मोक्ष-लक्ष्मी का विकाश होता है।

पूजा का संकेत मात्र लिखा है। अपने-अपने पूजोपचार-सम्प्रदाय के अनुसार करनी चाहिए। इस व्रत का बड़ा माहात्म्य है। कुण्डलनी के विकाश का यही काल है। व्रती को एकान्त मौन-व्रत, महामाया का पूजन, अनन्य चिन्तन करना चाहिये। कुलार्णव में—"पुष्पाञ्जलि–नमस्कारा-वष्ट-त्रिंशत्समीरितम्" अड़तीस उपचारों का वर्णन है, पर कम-से-कम अष्टादशोपचार से अवश्य पूजन करे।

फेत्कारिणी तन्त्र में लिखा है—

"आसनावाहनञ्चार्घ्यं पाद्यमाचमनं तथा।
स्नानं वासोपवीत्तिं च भूषणानि च सर्वशः।
गन्धं पुष्पं तथा दीपं धूपोऽन्नं चापि तर्पणम्।

माल्यानुलेपनं चैव नमस्कारो विसर्जनम् ।
अष्टादशोपचारैस्तु मातृ-पूजां समाचरेत् ॥"

ये अष्टादशोपचार हैं । इनसे पूजा करे । व्रत के दिनों में भूमि पर शय्या रखे । प्रातःकाल प्रातःस्मरण, गुरु-पादुका-स्वोत्र-पाठ, स्नानादि नित्य-कर्म करे । पूजा-स्थान में घट-स्थापन कर अखण्ड दीपक प्रज्वालनकर, शुद्ध रक्तवस्त्र चैलाजिन कुशोत्तर आसन पर बैठ कर प्राणायाम कर पूजन और जप, पाठ, हवन करे । पीछे पुष्पाञ्जलि, अपराध-क्षमापन स्तोत्र, दुर्गा-कीर्तन करे । सात्विक आहार, मिताहार या निराहार करे । प्रतिदिन भूतशुद्धि, बहिर्मातृका, अन्तः मातृका, षोढा न्यास से शरीर को देवता बनावे । यतः- "देवो भूत्वा देवं यजेत् ।" पहले अपने शरीर को न्यासादि से शुद्ध कर देवता बना ले । तब देवता के पूजन का अधिकार होता है ।

इस प्रकार नवरात्र-व्रत समाप्त कर दशमी को शमी-पूजन करे । ज्योतिर्निबन्ध में शमी-पूजन का समय इस तरह बताया है--

"ईषत् संध्यामतिक्रान्ते किञ्चिदुद्भिन्न-तारकाः ।
विजयो नाम कालोऽयं सर्व-कामार्थ-साधकः ।"

ग्राम के बाहर ईशान कोण में शमी-पूजन करे । पूर्व में गणेशादि का पूजन कर शमी का पूजन करे--"अमङ्गलानां शमनीं दुष्कृतस्य च दुःस्वप्न-नाशिनीं धन्यां प्रपद्येऽहं शमीं शुभाम् ।"

तब समयाचार के अनुसार चार दिशाओं का पूजन करे । पीछे नीलकण्ठ पक्षी का दर्शन कर—

नीलकण्ठो मणिग्रीव स्वस्तिश्चापराजितः ।
अशोकश्च विशोकश्च नन्दनः पुष्टि-वर्द्धनः ॥

इस मन्त्र से नमस्कार करे । प्रस्थान-पूजन—

या यात्रा शंकरस्य त्रिपुर-विदहने खाण्डवे चार्जुनस्य ।
या यात्रा राघवस्य जल-निधि-तरणे सेतु-बन्धे समुद्रे ।
या यात्रा वायु-सूनोरौषधि-गमने तु लक्ष्मणे शक्ति-भिन्ने ।
सा यात्रा सिद्धि-दात्री भवतु मम गृहे सिद्धि-सौख्य-प्रदात्री ॥

—इस मन्त्र से करे ।

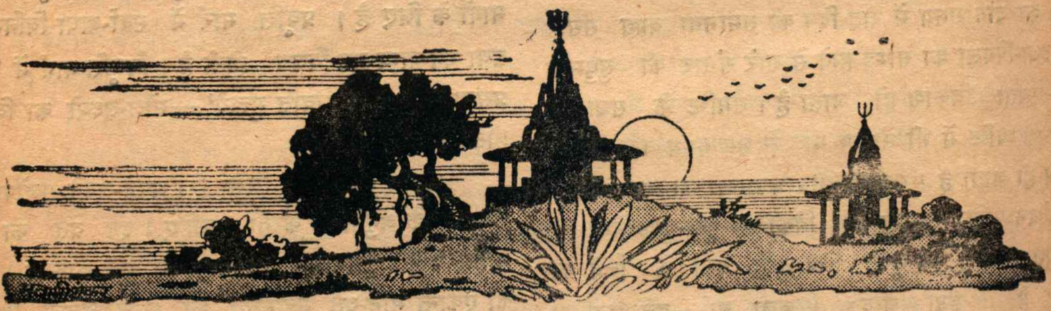

श्री चण्डी नवाक्षर मालिका

श्री सी० वी० सामी शास्त्री

ऐंबीजं परमात्म-निश्वसित भू-वेदादि वर्णात्मकं,
ये भक्त्या मनसा जपन्ति परमं तेषां सुवाक् ज्ञानदाम् ।
अम्बां मद्-धृदयांबरस्थ पर-चिद्रूपां अनन्तास्पदां,
चामुण्डामहमानतोऽस्मि वरदां सर्वार्थ-संसिद्धये ॥१॥

ह्रींकारांबर-रङ्ग-नर्तन-करीं ओंकार-लक्ष्यां परां,
ईङ्कारात्मक-वर्ण-लक्ष्य-विभवां आकार-हीनां शिवाम् ।
साकारां वरदाभयांकुश-महापाशान् करैर्बिभ्रतीं,
चामुण्डामहमानतोऽस्मि वरदां सर्वार्थ-संसिद्धये ॥२॥

क्लींकाराख्य-महामणिं रति-पतिः प्राप्याङ्ग-हीनः परं,
ग्रीवा-पाद-विहीनको मनसिजः यस्याः प्रसादान् मुदा ।
त्रीन् लोकान् कुसुमेषुभिः विजितवान् तां वेद-सारात्मिकां,
चामुण्डामहमानतोऽस्मि वरदां सर्वार्थ-संसिद्धये ॥३॥

चार्वङ्गीमति सुन्दरीमभयदामंभोज-मध्य-स्थितां
चार्वङ्गी-कृत-गान-वाद्य-रसिकां शास्त्राद्य-वाच्याकृतिम् ।
चार्वाकादि समस्त-शास्त्र-निवह-प्रोक्तादि-शक्त्याकृतिं,
चामुण्डामहमानतोऽस्मि वरदां सर्वार्थ-संसिद्धये ॥४॥

मुण्डाद्यैस्सुर-शत्रुभिः कृत-महा-कष्टापदां नाशिनीं,
मुण्ड-प्रोत-सुहार-शोभित-गलां मुक्ति-प्रदांघ्रि-द्वयाम् ।
मूढैः ज्ञान-विहीनकैः पशु-निभैः ज्ञातुं न शक्यां जनैः,
चामुण्डामहमानतोऽस्मि वरदां सर्वार्थ-संसिद्धये ॥५॥

ण्डामर्यादि-समस्त-भूत-निवहां सेव्यां सदानन्ददां,
डाकिन्यादि-सुयोगिनी-परिलसत्-षट्चक्र-संचारिणीम् ।

डंभोपेत-जनैः कृतार्चन-स्तुति-विधौ संतुष्टि-हीनान्तरां,
चामुण्डामहमानतोऽस्मि वरदां सर्वार्थ-संसिद्धये ॥६॥

यैर्लोभाद्विहितोऽन्न-दान-रहितः यज्ञस्स-गर्वं जनैः,
तेषामन्तक-रूपिणीमरि-भयानर्थ-प्रदात्रीं रुषा ।
यैर्भक्त्या स्तुति-पूजनादि-रचितं तेषामभीष्ट-प्रदां,
चामुण्डामहमानतोऽस्मि वरदां सर्वार्थ-संसिद्धये ॥७॥

विद्वद्-वृन्द-कृतार्चन-स्तुति-नुति-प्रीतां विधि-प्रार्थितां,
विद्वद्-वृन्द सुपूजनादि-करणे संतुष्ट-चित्तां सदा ।
विद्यां वीर-नुतांघ्रि-पङ्कज-युगां वीरापवर्ग-प्रदां,
चामुण्डामहमानतोऽस्मि वरदां सर्वार्थ-संसिद्धये ॥८॥

चेतोऽम्भोज-विहारिणीं मम मनः प्रोद्भूत-भी-हारिणीं,
चेतो-लीन पद-स्थितां वर-चिदानन्दाकृतिं शान्तिदाम् ।
चेतोवृत्यनुसारि कर्म-फलदां चिंतामणिं श्रीकरीं,
चामुण्डामहमानतोऽस्मि वरदां सर्वार्थ-संसिद्धये ॥९॥

श्री शांताचल-नायकांघ्रि कमलासक्त-स्व-चित्तैस्सदा,
श्रीशान्त्यादि-गुणान्वितैः वर-चिदानन्दाख्य-नाथात्मभिः ।
दत्तात्मामृत-पान-मत्त हृदयानन्तस्य वक्त्रोद्भवं,
शान्तिं शं शिवमातनोतु पठतां स्तोत्रं चिदानन्ददम् ॥१०॥

नित्यं सज्जन-मानिता बुध-वरैः भक्त्यादृता सर्वदा,
सत्य-ज्ञान-विधायिनी पशु-जनैः द्रष्टुं न शक्याऽजरा ।
विद्या-ज्ञान-सुपूर्ण-भक्त-जनता वाग्भूषिता संततं,
भूत्यै भूतल-वासिनां विजयते चण्डी शिवानुग्रहात् ॥

श्रीमद्-गुहानन्द-मण्डली-स्थापक तदध्यक्ष श्रीचिदानन्दनाथ-पाद-कमल-रेणुना ।
अनन्तानन्दनाथेन विरचिता श्री चण्डी-नवाक्षर-मालिका ॥

* * *

NAVARATRA

T. V. KAPALI SHASTRI

All agree that During Dashhara or *Navaratra* festival it is the Divine Mother to whom *Hindus* pay their homage and offer themselves to her, invoking Her blessings to shower upon Her children. To the Shaivite, she is *Shiva-Shakti* the consort of *Shiva* or the *ardhanga,* the inseparable half, of the very body of the great god, *Mahadeva*. To the Vaishnavite, she is *Sri,* the eternal Splendour abiding in the heart of *Vishnu,* the Supreme Being who maintains the manifestation of this cosmic existence. To the fullblown *Shakta* (the worshipper of *Shakti*) She is the great Goddess, the Mother of all creation, of all the gods and their worlds, who creates, preserves and dissolves, who constitutes and directs all the activities of the Universe. She veils Her own truth – the Absolute Truth beyond – from the vision of Her creatures, gods as well as men, and also by Her own Grace unveils Herself, Her transcendental Truth to their vision and experience for the final beatitude, for crossing the Ignorance, for their liberated and illumined life or for their absorption in Her own Blissful and Absolute Being.

Many are Her names, for many are Her aspects, many Her parts, and cosmic functionings, But the one Name by which India has recognised and worshipped for untold centuries is *Durga* – the Goddess whom it is difficult to approach with all the thought-vision, the devotional seeking and yogic efforts of man. She is the *Devi* whom *Arjuna* at the bidding of *Sri Krishna* worshipped on the eve of the *Mahabharata* war receiving Her belssing and the boon of victory, confirmed by the assurances of the Lord, as is mentioned in the *Bhishma-Parva* of the great Epic.

At this distance of time, it is difficult to fix the exact period when the *Durga-Puja*, the worship of the Divine Mother, began to be celebrated for the first nine nights, *navaratra*, or ten, *dashhara*, of the lunar month of *Ashwin*. But there is a tradition that *Arjuna* took back his *gandiva* and other weapons that were lying asleep during the life in cognito of the *Pandavas* on the tenth day, *dasami*, of *Ashwin* at the commencement of *Sharat*, the autumnal season which, as it progressed, witnessed the great battle of *Kurukshetra*. Hence, the tenth day that completes the Navaratra. Festival of our times is called Vijayadasami, Vijaya being an epithet of *Arjuna* the victorious.

MOTHER OF THE VEDAS

ARTHUR AVALON

The cause and Mother of the world,
She whose form is that of the shabdabrahman,
And whose substance is bliss,
Thou art the primordial One,
Mother of countless creatures,
Creatrix of the bodies of the lotus-born, Vishnu and Shiva,
Who creates, preserves and destroys the worlds.
Although Thou art the primordial cause of the world,
Yet art Thou ever youthfull.
Although Thou art the Daughter of the Mountain-King,
Yet art Thou full of tenderness.
Although Thou art the Mother of the Vedas,
Yet they cannot describe Thee,
Although men must meditate upon Thee.
Yet cannot their mind comprehend Thee. ❁

❁ The "opening is full of the supreme meaning of the great Devi symbol, its close is an entire self-abandonment to the adoration of the body of the Mother. This catholicity is typical of the whole tantric system, which is in its aspiration one of the greatest attempts yet made to embrace the whole of God manifested and unmanifested in the adoration, self-discipline and knowledge of a single soul."—(Sri Aurobindo)

चण्डी का सिद्ध प्रयोग

श्री नाथ नरंगुद

यथा-शीघ्रं सकल-कामना-सिद्धौ मैथिलोक्त-चण्डी-पाठ-घटित आपदुद्धारक बटुक स्तोत्र-पाठ-प्रकारः ॥

यामले—

मैथिलस्य मतेनायं प्रकाशे वांछिताप्तये ।
पठेत् पूर्वमेक-वारमापदुद्धारक स्तवं ॥
ततः शक्रादि-स्तुत्यं तां पठेच्चण्डीं च साधकः ।
आपदुद्धारक-स्तोत्रं पठेद्वै साधकस्ततः ॥
उर्वरीतान् नवाध्यायान् पठेद्वै साधकस्ततः ।
आपुद्धारक-स्तोत्रं पुनश्च प्रपठेत्सुधीः ॥
प्राप्नोति तेन सकलान् कामान् वै साधकोत्तमः ॥१॥
प्रथमान्ते मध्यमान्ते उत्तरान्ते च साधकाः ।
एकैकावर्तनं कुर्यात् स्तव-राजस्य साधकः ।
सकलान् मानसान् तेन कामानाप्नोति निश्चितं ॥२॥
अध्यायानेते पठेत् स्तोत्रं महदापन्निवृत्तये ॥३॥
उवाच मन्त्रा यावन्तः सप्त-पञ्चावसन्ति हि ।
तत्तदन्तं पठेत् स्तोत्रं महदापन्निवृत्तये ।
मैथिलानामुपायोऽयमापदुद्धारणे मतः ॥४॥

इति आपदुद्धारक-बटुक-भैरव-स्तोत्रावर्तन घटित-चण्डी पाठः शुभं ॥

अर्थात्—यथाशीघ्र सारी कामनाओं की सिद्धि के लिये मैथिल द्वारा कही हुई चण्डी-पाठ-घटित आपदुद्धारक-बटुक-स्तोत्र के पाठ की विधि--

यामल में कहा है कि श्रेष्ठ साधकों के लिए मैथिल के मत की यह पाठ-विधि वांछनीय है ।

१ पहले एक बार आपदुद्धारक बटुक स्तोत्र का पाठ करे । इसके बाद शक्रादि स्तुति अर्थात् पूरे चार अध्याय तक चण्डी का पाठ करे । तब आपदुद्धारक का फिर पाठ करे । इसके बाद शेष नौ अध्यायों का पाठ कर फिर आपदुद्धारक का पाठ करे । इस प्रकार पाठ करने से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है ।

२ प्रथम चरित के अन्त में, मध्यम चरित के अन्त में और उत्तम चरित के अन्त में आपदुद्धारक बटुक-स्तोत्र का एक-एक बार पाठ करे। ऐसा करने से सभी मानसिक कामनाएँ पूर्ण होती हैं, यह निश्चित है।

३ प्रत्येक अध्याय के अन्त में आपदुद्धारक स्तोत्र का पाठ महा आपत्ति की निवृत्ति के लिये करे।

४ चण्डी में 'उवाच'—मन्त्र सत्तावन हैं। प्रत्येक 'उवाच'—मन्त्र के अन्त में आपदुद्धारक स्तोत्र का पाठ महान् आपत्ति के निवारण के लिए करे।

आपद् के निवारण के लिए मैथिलों के मत में यह उपाय है। इति आपदुद्धारक बटुक भैरव स्तोत्र घटिता-चण्डी-पाठ विधि शुभम्।

इस प्रकार चार विधियों में से किसी भी प्रकार चण्डी-पाठ करने से कैसा भी दुस्तर संकट निवृत्त होता है तथा इच्छित फल भी प्राप्त होता है। आचमन, प्राणायाम, देश-काल-निर्देश के उपरान्त—

अमुक-प्रवरान्वित अमुक-गोत्रोत्पन्नामुक-शर्मणः अमुक-वेदान्तर्गत अमुक-शाखाध्यायी मम (यजमानस्य) शीघ्रं अमुक-दुस्तर-संकट-निवृत्यथं सप्तशती-माला-मन्त्रस्य क्रमेण प्रथमादि त्रयोदशाध्यायान्ते क्रियमाण आपदुद्धारक-बटुक-भैरवाष्टोत्तर-शतनाम मात्रावर्तन-घटित-अमुक-संख्यकावर्तनमहं करिष्ये।

इस प्रकार संकल्प में योजना करे। इसके बाद पहले विघ्नों के निवारण के लिये विघ्नेश, स्वामिकार्तिक, क्षेत्रपाल, दुर्गा, बटुकाद्यष्ट-भैरव, गौर्यादि षोडश मातृकाओं, ब्राह्म्यादि सप्त माताओं की पूजा कर उन्हें बलि दे सप्तशती का पाठ करे। उक्त संख्या-अनुपात से होम, मार्जन, तर्पण करे। इनमें से जो न हो सके, उसके लिए द्विगुणित जप करने से उस कर्म की पूर्ति हो जाती है। वह अनुष्ठान अङ्ग-हीन नहीं होता, ऐसा ग्रन्थों में स्पष्ट निर्दिष्ट है।

आपदुद्धारणे प्रोक्तं शिवेन परमात्मना।
अस्य पाठाद्विमुच्येत दुस्तरात् संकटा पुमान्॥
अस्य पाठाद्विमुच्येत संकटात् महतः पुमान्।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं त्रिरहं प्रवदामि ते॥

अर्थात्—आपत्ति के निवारण में परमात्मा शिव ने कहा है—इस स्तोत्र का पाठ करने से मनुष्य दुस्तर संकटों से पार हो जाता है। इसके पाठ करने से वह बड़े-बड़े सङ्कटों से मुक्त हो जाता है। सत्य है, सत्य है, सत्य है, यह मैं तीन बार कहता हूँ।

हमारे प्रकाशन

हमारे प्रकाशनों की विशेषता यह है कि यदि आप उन्हें ध्यान से पढ़ने की कृपा करेंगे, तो उनसे आपको 'धर्म' के व्यावहारिक पक्ष को समझने में बड़ी सरलता होगी।

'धर्म' केवल एक सिद्धान्त या दर्शन मात्र नहीं है। उसका क्रियात्मक पक्ष भी है और वही वास्तविक महत्व वाला है। 'धर्म' की बातें तो सभी जान सकते हैं और समझ भी सकते हैं; परन्तु 'धर्म' का पालन करना उतना सरल नहीं है।

हमारे प्रकाशन आपको अपने 'धर्म' का पालन करने में कितनी सहायता दे सकते हैं, यह तो आप उन्हें अपना कर स्वयं ही हृदयङ्गम कर सकते हैं। हम तो इतना ही कह सकते हैं कि जिसने भी हमारे एक भी प्रकाशन को ध्यान से जैसे ही देखा है, वह उसी समय से 'हमारे प्रकाशनों' का स्थायी ग्राहक बन गया है।

किमधिकं विज्ञेषु। सम्पूर्ण विस्तृत सूचीपत्र हेतु कृपया एक रुपया अथवा एक रु० के डाक टिकट भेजें।

व्यवस्थापक, कल्याण मन्दिर, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६

शारदीय नवरात्र रहस्य

पण्डित-प्रवर श्री नथमल जी दाधीच कौलाचार्य, श्री भुवनेश्वरी महाशक्ति-पीठ

शारदीय नवरात्र का पूजन कन्या-भाव से सम्पन्न होता है। ६ मास पूर्व चैत्र के वसन्तोत्सव में भगवती शक्ति का आविर्भाव साधक के समक्ष हुआ था। अब इस अवधि में उसका और भी वर्द्धन हुआ है। वर्द्धित भक्ति के निकट चिर-यौवना उमा कन्या-भाव धारण कर लेती है। सन्तान के वृद्ध होने पर जैसे माता कन्या-स्थानीया हो जाती है, इसी प्रकार वृद्धा भक्ति के निकट उमा भी कन्या-भाव धारण करती है। सन्तान द्वारा पालनीया माता सन्तान को जिस भाव से देखती है, आज उमा भी वृद्ध भक्त को उसी प्रकार देखती है। भक्त भी इसीलिये वात्सल्य-भाव से अपने घर में देवी का आगमन करता है। एक दिन मातृ-भक्ति से उद्बोधित होकर वह जिसका पूजन करता था, आज कन्या-वात्सल्य से उसका अपने हृदय-मन्दिर में आह्वान करता है। यह आह्वान अति मधुर है। इससे मधुरता की ध्वनि ध्वनित होती है। यह आगमन हृदय का आह्वान-गीत है। देवी भी भक्त के हृदय में आकृष्ट हो रही है। यही परस्पर आकर्षण की मिलन-ध्वनि भारत-वासियों का शारदीय दुर्गा-पूजनोत्सव है।

'आगमनी' आकर्षण-शक्ति है। बोधन-शक्ति का उदय है। प्रतिष्ठा-स्थापन हो मिलन का फल दश-भुजा दुर्गा है। श्री दुर्गा देवी की आराधना के प्रसंग में राम-रावण-युद्ध के व्यापार का विश्लेषण करने पर जिस प्रकार की साधन-प्रणाली दृष्टिगत होती है, उसको ज्ञान-वैराग्य-युक्त योग-पथ ही कहा जाता है। दशेन्द्रिय-धारी मन दशानन से कवलित आत्म-शक्ति का उद्धार महाशक्ति की कृपा से कर आत्म-स्वरूप की प्रतिष्ठा ही इस साधन-प्रणाली का लक्ष्य है।

दूसरी ओर उमा-मेनका के उपाख्यान से शुद्ध भक्ति का कोमल पथ प्रकट होता है। वसन्त के विमल सौन्दर्य को भक्त साधक ने जिस मातृ-भाव से अनुभव किया था, वही आज चरमोत्कर्ष को प्राप्त होकर वात्सल्य भाव में परिणत हो रहा है। इस वात्सल्य से पाषाण भी पिघल जाता है। इसी वात्सल्य से ऋषि-गण ईश्वर को हृदय में स्थापित करते हैं। पुराणों में यशोदा का वात्सल्य इसी प्रकार चित्रित है, किन्तु जो वात्सल्य कन्या में स्थापित है, उस वात्सल्य में निमग्न होकर ऋषिगण ईश्वर को और भी घनिष्ठ-भाव से देखते हैं। तब यशोदा-भाव तिरोहित होकर मेनका का भाव उदय होता है। माता जिस प्रकार पुत्र से छिपाकर कन्या के स्नेह-पाश में आबद्ध होकर उसकी तृप्ति-हेतु गोपनीय समस्त धनादि उसको प्रदान करती है, भक्त भी उसी प्रकार हृदय खोल कर सकल सुन्दर वस्तु मां को अर्पण करता है। शारदीय नवरात्र के दुर्गा-पूजन में भक्त का यही प्रगाढ़ अनुराग प्रकट होता है।

पुत्र की अपेक्षा कन्या के प्रति माता का स्नेह अधिक होता है क्योंकि कन्या-हृदय पुत्रापेक्षा कोमल होता है। फिर कन्या बड़ी होने पर पर-गृह ही अधिक रहती है। परोक्ष रहने के कारण माता कन्या के लिए अधिक व्याकुल रहती है। वह कन्या के हित-हेतु सतत अन्यमनस्का रहती है। अतः वह समय-समय पर कन्या को अपने पास लाने का अधिक प्रयत्न करती है। इस यत्न से प्रकट है कि कन्या कितनी आदरणीय है। कन्या के भी मन में माता के मिलन-हेतु उत्सुकता रहती है। कारण श्वसुर-गृह का समस्त दुःख और कष्ट वह माता से बताती है। दोनों एकत्र होकर नेत्रों से अश्रु-वर्षा कर वक्ष-स्थल आर्द्र कर लेती हैं। जब-कन्या ससुराल जाती है, तब मातृ-हृदय करुण क्रन्दन कर उठता है। कन्या की अवस्था भी माता से अधिक ही करुणामय हो जाती

है। कन्या यदि सुख-पूर्वक है, तो भी माता पूर्ण रूप से सुखी न होकर कुछ अंश में ही उसको शान्ति रहती है। किन्तु यदि कन्या भिखारिन हो गई है, तो मातृ-हृदय में घोर अशान्ति छा जाती है।

पुराणकार ने उमा और मेनका को इसी प्रकार चित्रित किया है। उमा के गृह नहीं है, अन्न-वस्त्र नहीं है, स्वामी पागल है, आदर करके सती को हर समय मस्तक पर रखते हैं। इसी कारण मेनका अशान्त एवं कातरता-परायण रहती है। क्षण मात्र भी शान्ति नहीं है। हर समय उमा के लिये चिंतित रहती है। मेनका राजरानी है, इसी कारण उसको अधिक कष्ट है। धनैश्वर्य का उसके पास अभाव नहीं है। ऐसे परिवार की एकमात्र कन्या भिखारी की भार्या है। उसकी माता सुखपूर्वक गृह में कैसे रह सकती है? अतः वह धन, रत्न, वसन, भूषण, आहार एवं निद्रा छोड़कर दिन व्यतीत करती है।

अपने इष्ट-देवता के लिये साधक को इसी प्रकार की व्याकुलता चाहिये। मेनका को आदर्श मानकर भारतीय गण इस शारदीय नवरात्र के उत्सव में अपने हृदय में 'आगमनी' अंकित करते हैं। आश्विन की इस 'आगमनी' में उक्त कातरता उद्‌बोधित होती है। मातृ-भक्ति में ऐसी व्याकुलता नहीं होती, जैसी माता के हृदय में कन्या के लिये रहती है। एक पल का विरह भी वह सह नहीं सकती है। भक्ति की यह एकान्तिकता प्रति वर्ष उद्‌बोधित करने के लिए 'आगमनी' का ज्ञान भारतवासी के हृदय में संगीत की तरह ध्वनित होता रहता है। जब भी 'आगमनी' का स्वर-संगीत भारतीयों के श्रवण-पथ में प्रवेश करता है, तभी वे लोग दुर्गोत्सव के लिए अधीर हो उठते हैं।

विरह से अधीर साधक भक्ति की तरफ उन्मुख हो दुर्गोत्सव की प्रतिष्ठा करता है। जब साधक देखता है कि चित्त सत्वगुण को प्राप्त होकर शरद् का शुभ्र सौन्दर्य प्रकट हो रहा है, आशा अनाहत स्वर से गान कर रही है, तव साधक का अन्तर आनन्द से नाच उठता है। क्रमशः दश-दिक् प्रकाश कर महाशक्ति की सकल मूर्ति ही दुर्गोत्सव-रूप से उदय हो जाती है। तब साधक स्वयं को भूल जाता है। उसके अन्तर

दुर्लभ तन्त्र साहित्य (संस्कृत) में

'गुप्तावतार दुर्लभ तन्त्रमाला' के अन्तर्गत अब तक निम्न तन्त्र प्रकाशित हो चुके हैं। ये बहुत ही कम संख्या में छपे हैं। फलतः पहला संस्करण समाप्त होने ही वाला है। दूसरा संस्करण पता नहीं कब छपे। अवः तन्त्र-साहित्य प्रेमियों को इनका मूल्य मनिआर्डर से भेजकर इन्हें तुरन्त मंगा लेना चाहिये।

महा-चीना-चार-सार तन्त्र	३-५०	निरुत्तर तन्त्र	यन्त्रस्थ
गुप्त-साधन तन्त्र	२-५०	तोडलत तन्त्र	२-००
कुलार्णव तन्त्र	४-००	मन्त्र-कोष	यन्त्रस्थ
काली-तन्त्र (भाषा टीका)	३-००	कामधेनु तन्त्र	२-५०
श्रीभुवनेश्वरी-रहस्य	३-५०	निर्वाण तन्त्र	२००
सांख्यायन तन्त्र	३-००	नील तन्त्र	३-००
परा-तन्त्र	३-००	परशुराम तन्त्र	१-००

पाँच रुपये से कम मूल्य की पुस्तकें मँगानेवाले बन्धु कृपया पुस्तक के मूल्य के साथ रजिस्ट्री डाक व्यय हेतु एक रुपया और भेजें। जो पुस्तकें चाहिए, उनके नाम म० आ० के कूपन पर लिख दें।

पता—कल्याण-मन्दिर, अलोपीबाग मार्ग प्रयाग—६

में भगवती मूर्ति से सात्विक सौन्दर्य-पूर्ण ऐश्वर्य और लक्ष्मी-मूर्ति से दिव्य ज्ञान एवं सरस्वती-भक्ति से अदम्य वीरत्व, जिससे समस्त पाप-शक्ति महिषासुर विजित होता है। उस वीरत्व से रिपु-कुल वशीभूत होता है। अनन्तर कार्तिकेय-मूर्ति और महाशक्ति-प्रसूत सिद्धि के गणेश्वर अग्नि-वत् उज्ज्वल प्रतिमा से प्रत्यक्ष होते हैं। साधक के चारों ओर शोभा—सौन्दर्य का भण्डार विकीर्ण हो जाता है। उसके हृदय में दृढ़ भक्ति एवं अहैतुक प्रेम उत्पन्न होता है।

दिव्य ज्ञान के प्रभाव से साधक को अब अनुभव होता है कि दारा, पुत्र, स्त्री, धनैश्वर्य कुछ भी नहीं है। यहाँ अपना कुछ नहीं है—सर्व ही महाशक्ति है। वह चराचर विश्व-व्यापिनी विश्वेश्वरी ही सत्य है। कैवल्य ज्ञान से असत्य दूर होकर साधक के अन्तर में प्रकाश-मण्डल की मध्यवर्तिनी उस नित्य लीलामयी की प्रेम-लीला-माधुर्य-मूर्ति में साधक अनन्त काल के लिये लीन हो जाता है। इस प्रकार शरदोत्सव का दुर्गा-पूजन एवं विजया की प्रतिष्ठा साधक-हृदय में स्थापित होती है।

साधन फल से भक्त के हृदय में ठीक इसी प्रकार घटित होता है। आर्य ऋषियों ने समाज के लिये साधना-सिद्धि का यह आदर्श नयन-छवि रूप से जागरूक करना आवश्यक समझकर प्रति वर्ष शरद् के शुभ्र सौन्दर्य में दुर्गा-पूजनोत्सव-रूप से प्रतिमा प्रतिष्ठित करके पूजन करने का निर्देश किया है। हृदय के उक्त आभ्यन्तरीय व्यापार का बाह्य विकाश ही दुर्गा पूजनोत्सव है।

जिस भाव से आर्य संतान मां का पूजन करती है, हम आज उस भाव को भूल गये हैं और बाह्य सौन्दर्य के उपासक हो रहे हैं। यह पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा का प्रभाव है। हम माँ के नाम से कामना-पूर्वक पूजन कर कुछ समय बाह्य आमोद आह्लाद पाकर उत्साहित होते हैं किन्तु दशमी के दिन सब कुछ विसर्जित कर 'विजया' की प्रतिष्ठा नहीं कर पाते। अतः शरद् के सुखमय सौन्दर्य में माँ का स्वरूप जानना; दूर प्रवास में जननी की कथा स्मरण होने पर सन्तान को जिस प्रकार आकुलता उत्पन्न होती है, उसी प्रकार की आकुलता से व्याकुल प्राण हो माँ-माँ स्वर से सुप्त माता को जगाकर उठाना होगा। माँ आप लोगों को गोद में लेकर स्वाधार-निद्रिता है। अतः सुप्ता माता को जगाने हेतु बोधन करें, तभी 'विजया' की प्रतिष्ठा होगी।

दुर्गा-पूजनोत्सव के दो प्रधान अंग हैं—एक 'आगमनी' अन्य 'विजया'। 'आगमनी' में कैलाश धाम से माँ का हिमालय-गृह में आगमन एवं सप्तमी, अष्टमी व नवमी इन तीन दिन पितृ-गृह में माँ की उपस्थिति, दशमी को 'बिजया' का विसर्जन अथवा माँ का स्वामी-गृह-गमन।

हम लोग शैशव-काल से ही माँ का यह आगमन उपस्थिति, गमन वा विसर्जन देखते आये हैं। धनी धन के प्रयोग से, विलासी विलास-व्यसन से, रूपवान रूप-साज से पूर्ण विधान करके पूजन के इन दिनों को खूब आमोद-आह्लाद सहित धूम-धाम से व्यतीत कर अपने मन में आनन्द का अनुभव करते हैं कि माँ का पूजन बड़े धूमधाम से सम्पन्न हुआ है; समय और अर्थ का यथेष्ट सदुपयोग हुआ है किन्तु प्रकृत पक्ष में हिन्दुओं के इस दुर्गा-पूजनोत्सव का उद्देश्य क्या है? क्या बाह्य आमोद-प्रमोद मात्र ही इसका उद्देश्य है?

जिन ऋषि-गण ने एक दिन अपनी ज्ञान-गरिमा से जगत् में शीर्ष स्थान ग्रहण कर रखा था, उनका मस्तिष्क क्या केवल इतना ही विवेक-युक्त था कि एक बालक की तरह क्रीड़ा-कौतुक-व्यवस्था समाज के लिये करें। ऐसा कभी भी सम्भव नहीं है। पुण्य-भूमि भारतवर्ष रत्नाकर है। उसके रत्न-गर्भ में बहु काल से प्रखर श्री-शक्ति-सम्पन्न महा मनीषीगण जन्म ग्रहण करते आये हैं। अतः उनका अनुष्ठेय कर्म अवैज्ञानिक तथ्य-हीन नहीं हो सकता। उनके द्वारा अनुष्ठित प्रत्येक कार्य में—क्रिया-कलाप में सत्य निहित है। वे लोग सत्य-स्वरूपा महाशक्ति को जानते थे और विमल सत्योपलब्धि भी की थी एवं त्रिकालज्ञ थे। अतः वे लोग अपने साधारण वंशधरों के लिये बाह्य आमोद-प्रमोद के भीतर सत्य का गोपन कर गये हैं। वे लोग यह जानते थे कि एक दिन हमारे वंशधर सत्य की अमल-धवल

विमल ज्योति को भूलकर तामसिक और राजसिक भाव से आत्म-सम्मिश्रण कर रूप के मोह में डूब जायेंगे; वे अपनी सत्ता भूल कर अपने को भूल जायेंगे। ऋषि-गण उदार थे। अतः बाह्य आमोद-प्रमोद के भीतर वे रहस्यमय 'सत्य' का गोपन कर गये हैं, जिससे आमोद-प्रमोद करते-करते स्वर्ण-प्राप्ति की तरह एक दिन किसी के हृदय में सत्य-प्राप्ति की पिपासा जागृत हो जाये और वह सत्य का अनुसन्धान कर सके।

'आगमनी' का तात्पर्य है माँ का पितृ-गृह में आगमन अर्थात् जब जीव त्रिताप ज्वाला से दग्ध होता है एवं उसका हृदय पाप-ताप की असह्य ताड़ना से अधीर हो उठता है; जब जीव समझ जाता है कि भोग-सुख से तृप्ति नहीं है, संतोष नहीं है, तभी उसके प्राणों में सत्य के अनुसन्धान की प्रबल इच्छा जागृत होती है। उसका हृदय सत्य की प्रतिष्ठा करने हेतु व्याकुल होगा। यही 'आगमनी' या माँ का आह्वान है एवं यही है कैलाश में गौरी को लाने हिमालय का गमन और मेनका का कर्तृक-बोधन।

सप्तमी-पूजा अर्थात् माँ की इस दिन प्रथम पूजा एवं सत्य का ईषत् आभास जैसे उषा के आगमनी समय पूर्व में ईषत् आलोक होता है और अन्धकार क्रमशः दूर होता है। सप्तमी पूजन से भी इसी प्रकार साधक के चिदाकाश में ज्ञान-रवि का ईषत् उन्मेष होकर तामसिक भाव विदूरित होता है।

अष्टमी अर्थात् पूर्व में रक्त वर्ण-रंजित हो रहा है और अन्धकार भी प्रायः दूर हो गया है। इस समय साधक भी जगत् में एक स्तर ऊर्ध्व में उठा है, तामसिक भाव दूर हुआ है एवं राजसिक भाव का पूर्ण विकास प्राप्त हुआ है। इस स्थान में साधक की अज्ञानता-वश आधार न होने से पतन की अत्यधिक संभावना रहती है। यह स्थान राजसिक सात्विक भावों का संगम स्थल है। अतः साधक की भीषण परीक्षा का यह स्थल है। इसीलिये अष्टमी-नवमी-पूजन के संयोग-स्थल को 'सन्धि-पूजन' कहते हैं।

नवमी में सम्पूर्ण रूप से सूर्य का उदय हो गया है, अन्धकार का भी पलायन हो गया है और समस्त बाधा-विघ्न दूर हो गये हैं। इस समय किसी भी विषय में द्विधा नहीं है। इसीलिये नवमी-पूजन का इतना समारोह है; साधक इस अवस्था में एक और स्तर ऊर्ध्व में उठ गया है। इस स्थल से साधक के पतन की आशंका नहीं है; कारण तामसिक और राजसिक भाव सब पूर्ण रूप से परिष्कृत हो गये हैं। साधक ने इस समय सत्य के विकास को उपलब्ध किया है। साधक माँ की मनोमयी मूर्ति को हृदय-मन्दिर में प्रत्यक्ष देखता है, अतः उसके आनन्द की सीमा नहीं है। इसीलिये नवमी-पूजन का इतना आडम्बर, इतना आयोजन और समारोह है।

दशमी में विजया वा विसर्जन की अवस्था में साधक ने सर्व-विषय में सफलता प्राप्त कर ली है और अपने अभीष्ट साधन में कृत-कार्य हो गया है। अथवा साधक ने बाह्य आडम्बर परित्याग कर प्रत्यक्ष सत्योपलब्धि कर ली है और हृदय में सत्य की प्रतिष्ठा स्थापित की है। इस स्थल में विजया वा 'विसर्जन' का अर्थ माँ का त्याग नहीं है। 'विसर्जन' का अर्थ है राजसिक, तामसिक भावों का मूलोच्छेदन अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा, कुटिलता, मिथ्या प्रतारणा, प्रवंचनादि, असत्य के उच्छेद का साधन करने पर साधक सत्व-गुण-सम्पन्न होकर सत्य (महाशक्ति) में प्रतिष्ठित हो गया है वा माँ को हृदय में प्रतिष्ठित कर लिया है। अब साधक ने माँ को प्राप्त कर लिया है। अतः बाह्य पूजन केवल लोक-संग्रह-हेतु ही आवश्यक है। वस्तुतः उसका प्रयोजन नहीं है। अतः दशमी के दिन प्रतिमा-विसर्जन कर विजया वा माँ की प्रतिष्ठा का अनुष्ठान सम्पन्न किया जाता है।

एक स्थान में एक समय में दो विरुद्ध वस्तुएँ नहीं रह सकतीं, यह स्वतः सिद्ध है। प्रत्येक कार्य में असत्य का विसर्जन न होने पर सत्य की प्राप्ति कैसे होगी एवं विजय-लाभ भी कैसे होगा? अतः प्रतिष्ठा ही विसर्जन वा विजया और विसर्जन ही प्रतिष्ठा है। विजया से हम लोग सत्य में प्रतिष्ठित होकर भेदाभेद, शत्रु-मित्र, अपने-पराये का विस्मरण कर समग्र समाज जगत् में माँ के ही स्वरूप की

दुर्गा-पूजा

'कौल-कल्पतरु' स्वर्गीय पण्डित देवीदत्त शुक्ल

दुर्गा-पूजा भारतीय धार्मिक भावना में अपना विशेष स्थान रखती है। वर्तमान धर्म-ग्लानि के युग में उसका आज भी बहुत कुछ प्रचार है। कन्या-कुमारी से काश्मीर तक और कामाख्या से हिङ्गलाज तक भगवती दुर्गा की नवरात्र के दिनों में बड़ी श्रद्धा के साथ पूजा होती रहती है।

और यह दुर्गा-पूजा इस देश के शाक्त-सम्प्रदाय की एक प्रमुख पूजा है। यद्यपि शाक्त-सम्प्रदाय का अब इस देश में पहले का सा प्रभाव नहीं रह गया है, तथापि दुर्गा-पूजा के रूप में उसका अस्तित्व अक्षुण्ण बना हुआ है।

भारतीय धर्मों के इतिहास का अवलोकन करने से प्रकट होता है कि किसी समय शाक्त-सम्प्रदाय की प्रतिपत्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। मोहन-जे-दारो के ध्वंसावशेषों में ऐसे स्पष्ट चिह्न प्राप्त हुये हैं, जिनसे प्रकट होता है कि उस प्राचीन काल में भी भारत में शाक्त-सम्प्रदाय का अस्तित्व था।

शक्ति-पूजा के प्रवर्तक भगवान् शिव माने गये हैं। इस बात का भी प्रमाण मिलता है कि नारायण के एक शिष्य शिव ने अपना अलग वैदिक सम्प्रदाय प्रवर्तित किया था। पुराणों में शिव और दक्ष प्रजापति के विरोध की कथा मिलती है, जिससे प्रकट होता है कि दक्ष ने शिव द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय का खण्डन किया था। और शिव द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय और कुछ नहीं, यही शाक्त सम्प्रदाय था।

यद्यपि शिव के उक्त सम्प्रदाय का दक्ष-नेतृत्व में घोर विरोध किया गया, तथापि अपनी लोक-प्रियता के कारण वह इस देश में जड़ पकड़ गया। यही नहीं, उसका भारत की सीमाओं के बाहर भी प्रचार हो गया।

तन्त्रों में रथ-क्रान्त, विष्णु-क्रान्त और अश्व-क्रान्त नाम के तीन क्रान्तों का उल्लेख है। एशिया के जिस विशाल-भू-भाग में तन्त्रों का अर्थात् शाक्त-सम्प्रदाय का प्रचलन हो गया था, वह इन क्रान्तों में विभक्त था और इन क्रान्तों के अन्तर्गत भारत के अतिरिक्त अफगानिस्तान, मध्य एशिया, तिब्बत, दक्षिणी चीन, इन्डोचीन, श्याम, ब्रह्मदेश और भारतीय द्वीप-पुञ्ज आदि देश शामिल थे। इस एक बात से शाक्त सम्प्रदाय के विशाल प्रभाव-क्षेत्र का भले प्रकार अनुमान किया जा सकता है।

शाक्त सम्प्रदाय की पूजा-पद्धति पर विचार करने से यह सिद्ध होता है कि उसके अनुयायी—क्या आध्यात्मिक दृष्टि से और क्या सांसारिक दृष्टि से—सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में बहुत आगे थे। सबसे महत्व की बात तो यह व्यक्त होती है कि वे मूर्ति-पूजक नहीं थे और उनके समाज में जाति-भेद का विचार नहीं था। यही नहीं, उनकी धार्मिक भावना बड़ी अनूठी थी। उनके देवता मणियों के देश और रत्नों के घरों में रहते थे। वे तरह-तरह के अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित रहते थे तथा सिंह जैसे पशु पर वे आरूढ़ होते थे। उनकी पूजा का ठाठ-बाट एकदम राजसी होता था। उनकी आराधना की इस भव्य कल्पना से देश के तत्कालीन वैभव और गौरव का ही प्रमाण मिलता है।

परन्तु शक्ति-पूजा की सबसे अधिक मार्के की बात तो यह प्रतीत होती है कि इस वर्णाश्रम के कट्टर देश में

[पृष्ठ ८२ का शेषांश]

अभिव्यक्ति समझ कर जगत् में अपने को मातृ-मय भावना करते हैं।

अतः आओ बन्धु! विजया के शुभ मिलन में भाई-भाई आलिंगन कर एक दूसरे के अपराध भूल कर पाशविक वृत्ति-समूह को सदा के लिये विदूरित कर 'जय माँ विजये' नाम से विजय-दुन्दुभी बजाते-बजाते हृदय में विजया की प्रतिष्ठा कर हम महा-शक्ति के पुत्र महा-शक्ति लाभ करें। ह्रीं श्रीरस्तु।

'कौल-कल्पतरु' चण्डी ❀

उसी ने सबसे पहले "विश्व-बन्धुत्व" और 'स्त्री-पूजा' के उदात्त सिद्धान्तों की घोषणा करके उन्हें कार्य का रूप दिया था। साथ ही यह पुनीत विचार भी लोगों में जागृत किया था कि सभी धर्मों में सत्य का ही प्रतिपादन किया गया है और परस्पर भिन्न होते हुये भी उन सबका अन्तिम लक्ष्य एक ही है। यह ऐसी ही धर्म-भावना के प्रचार का फल था कि बौद्ध धर्म अपने समय में भारत में तथा उसके बाहर समीपवर्ती देशों में सरलतापूर्वक फैल सका था।

परन्तु काल की कुटिल गति से शाक्त धर्म की प्रतिपत्ति कायम न रह सकी और वैदिक धर्म की तरह उसका भी पराभव हो गया। यहाँ तक कि अब साल में केवल दो बार चैत्र और आश्विन के नवरात्रों में शक्ति-पूजा का आभास दिखाई दे जाता है।

इसमें सन्देह नहीं है कि यह शक्ति-पूजा योद्धा जाति का धर्म था। शक्ति-पूजा की "दुर्गा सप्तशती" नाम की जो प्रमुख पुस्तक इस देश के धार्मिक क्षेत्र में आज भी अपनी महिमा बनाए हुये है, उसके दूसरे अध्याय में महाशक्ति के आविर्भाव का जो रूपक अङ्कित किया गया है, वह जितना रहस्य-पूर्ण है, उतना ही मनोमोहक भी है।

सप्तशती में लिखा है कि एक बार दैत्यों ने प्रबल होकर देवताओं को युद्ध में परास्त कर इन्द्र-लोक पर अधिकार कर लिया। अधिकार-च्युत देवता महादेव की शरण में गये। वहाँ विष्णु भी विद्यमान थे। जब उन्होंने देवताओं की करुण कथा सुनी, तब उनको क्रोध हो आया। फलतः उन सबके शरीर का तेज निकलकर एक अभिनव महाशक्ति के रूप में परिणत हो गया, जिसने दैत्यों का संहार कर देवों को फिर पहले की भाँति अधिकारारूढ़ कर दिया।

एकता के भाव तथा सङ्घ-शक्ति का यह एक अतीव दिव्य रूपक है। शक्ति-पूजा का वस्तुतः यही रहस्य है, परन्तु देश के दुर्भाग्य से शक्ति-पूजा का यह प्राञ्जल भाव हमारी दृष्टि से सर्वथा ओझल हो गया है। आज इस बात की आवश्यकता है कि हम इस भाव को हृदयङ्गम कर अपने सङ्घर्ष-मय जीवन की समस्याओं के सुलझाने हेतु शक्ति-सम्पन्न बनें। शारदीय शक्ति (दुर्गा) पूजा का यही मूल उद्देश्य है।

—(८/१९६६)

शारदीय दुर्गा-पूजा

स्व० पण्डित भूपेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय, एम० ए०

समस्त देशों में ही भिन्न-भिन्न धर्म-सम्प्रदाय हैं, परन्तु भारतवर्ष में साम्प्रदायिकों का आधिक्य है। कोई शैव है, कोई वैष्णव, कोई शाक्त, कोई जैन, कोई बौद्ध। इसी प्रकार बहुत से धर्म-मत व सम्प्रदाय हैं। इनमें से कुछ ऐसे हैं, जो अपना धर्म-पालन करते हैं और दूसरों के धर्म की निन्दा नहीं करते। परन्तु कुछ ऐसे हैं, जो अपने धर्म-मत के सामने दूसरों के धर्म को तुच्छ समझते हैं।

भारतवर्ष में एक सम्प्रदाय 'शाक्त' नाम से प्रसिद्ध है। जो देवी अर्थात् शक्ति के उपासक हैं, उनको 'शाक्त' कहते हैं--

"शक्तिर्देवता यस्य स शाक्तः।"

मुण्डमाला-तन्त्र में कहा गया है--

"शाक्तानामुत्तमो नास्ति स्वर्गे मर्त्ये रसातले।"

गन्धर्व-तन्त्र कहता है--

"शाक्ता एव द्विजाः सर्वे न शैवा न च वैष्णवाः।
उपासन्ते यतो देवीं गायत्रीं परमाक्षरीम्॥"

अस्तु, मुझे शाक्तों को श्रेष्ठता नहीं दिखलाना है। शारदीया दुर्गा-पूजा अर्थात् शरत्-काल में जो देवो जी की पूजा समग्र वंगदेश और बाहर भी कहीं-कहीं होती है, उसका उल्लेख ऋग्वेद में है या नहीं अथवा वह पूजा वेदोक्त है या नहीं, इसी ा यहाँ विचार करना है।

साधारणतः देवी-पूजा का प्रचार वंगदेश में जिस प्रकार है, वैसा अन्यान्य प्रान्तों में नहीं है। नेपाल-राज्य और राजपूताने में भी देवी के उपासक बहुत हैं, परन्तु पूजोत्सव वंगदेश का विलक्षण ही है। एक वर्ष में दो बार शरत् ऋतु और वसन्त-ऋतु में दुर्गा देवी का उत्सव मनाया जाता है और इसको क्रम से शारदीया तथा वासन्ती दुर्गोत्सव कहते हैं।

वर्तमान समय में शारदीय दुर्गा-पूजा का प्रचार अधिक है। शारदीया पूजा को 'अकाल पूजा' कहते हैं, क्योंकि वासन्ती पूजा ही मौलिक पूजा मानी जाती है। कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी को रावण-वधार्थ विशेष शक्ति का प्रयोजन हुआ। इस कारण शरत्-काल में देवी का बोधन करके देवी की आराधना से उनको रावण-वध की शक्ति प्राप्त हुई और उन्होंने रावण का वध किया। मन्त्र यह है--

रावणस्य वधार्थाय रामस्यानुग्रहाय च।
अकाले बोधयेद्देवीं दुर्गा-पूजां करोम्यहम्॥

रामचन्द्र जी ने ही अकाल में शारदीया पूजा का प्रारम्भ किया, इस कथन में कहाँ तक सत्यता है, यह मुझे नहीं मालूम है।

बहुत लोगों का यह मत है कि देवी के उपासक अथवा शक्ति-पूजक वाम-मार्गी होते हैं। वे वामाचारी और शक्त्युपासक में भेद नहीं देखते हैं—दोनों को मिला देते हैं। देवी अथवा शक्ति वेद से परे नहीं है। शक्ति-उपासक विशेष उच्चांग की साधना और उपासना करता है। शक्ति कहिये, देवी कहिये, वह ब्रह्म से भिन्न नहीं है--केवल उपासना में प्रकार-भेद मात्र है। वास्तव में दुर्गा, शक्ति और शारदीया दुर्गा-पूजा वेदान्तर्गत है। बहुत से विद्वान् इसको मानने के लिये तैयार न होंगे। उनसे मेरा यह अनुरोध है कि वे शास्त्रों का अध्ययन निरपेक्ष भाव से करके विचार करें--केवल संस्कार-गत विश्वास पर ही न चलें।

दुर्गा का अर्थ क्या है?

दैत्य-नाशार्थ-वचनो दकारः परिकीर्त्तितः।
उकारो विघ्न-नाशस्य वाचको वेद-सम्मतः॥
रेफो रोगघ्न-वचनो गश्च पापघ्न-वाचकः।
भय-शत्रुघ्न-वचनश्चाकारः परिकीर्तितः॥

'द' दैत्य-नाश का सूचक है—दैत्य अर्थात् दुष्ट अर्थात्-वाह्य और आन्तरिक कामना। 'उ' का अर्थ विघ्न का नाश करना। यह वेद-सम्मत है।

'रेफ' रोग का नाशक शब्द है और 'ग' पाप-नाशक है। 'आकार' भय और शत्रु का नाशक है और प्रत्येक मनुष्य को इन सभी के विनाश की आवश्यकता है। इस कारण

'दुर्गा'-शब्द का व्यवहार है। जो ऐसा विघ्न-नाशक, दुःख-नाशक, रोग-भय-शोक इत्यादि का नाशक शब्द है, उसकी देवी-रूप में शक्ति-भाव से उपासना में क्या दोष ? प्रत्येक बंगाली नर अथवा नारी, यदि उसे कहीं जाना होता है अथवा कोई कार्य प्रारम्भ करना होवा है, तो वह 'दुर्गा'-नाम का स्मरण करता है।

बहुत से मनुष्य, चाहे वेद पढ़े हों, या न पढ़े हों, उसका अर्थ समझें चाहे न समझें, कहते हैं कि दुर्गोपासना एक खेल है। परन्तु उनसे यदि पूछा जाय कि वेद में पूजा-उपासना है या नहीं, तो वे साकार-निराकार बकने लगते हैं। वेद में प्रत्येक मन्त्र उपासना है—धन की प्रार्थना है, शुभ कामना है। ऋग्वेद में प्रथम सूक्त ही अग्नि की उपासना है। 'अग्निमीडे' अर्थात् 'स्तौमि'। दुर्गा देवी ही अग्नि की शक्ति है। मनुष्य अपने इष्ट के लिये उपासना अथवा साधना करता है—भेद केवल प्रकार का है। हमारी दुर्गा देवी भी तेजोमयी हैं। वेदोक्त समस्त अग्नि-गुण-सम्पन्ना हैं। दुर्गा का एक नाम ज्वालामुखी भी है। अग्नि में जो दाहिका शक्ति है, वह जगज्जननी दुर्गा ही है, यथा—

सा वाणी सा च सावित्री विप्राधिष्ठातृ-देवता।
वह्नौ सा दाहिका शक्तिः प्रभा-शक्तिश्च भास्करे॥

ऋग्वेदोक्ता सभी शक्तियाँ दुर्गा ही हैं।

निम्नलिखित वेदोक्त मन्त्र की व्याख्या से श्री पञ्चानन तर्करत्न महाशय (वसुमती आश्विन—१३४५ में) यह प्रमाणित करते हैं कि ऋग्देव-काल में शारदीया दुर्गा-पूजा प्रचलित थी—

हंसः शुचिषद्-वसुरन्तरिक्ष
सद्धोतातिथिर्दुरोणसत्
नृषद्वर सदृत सद् व्योम सदब्जा
गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्॥

ऋग्देव ४ सं, ४० सू, ५ ऋ

पदच्छेदः

१ ११ १२ १३ १०
हंसः। शुचिषद्। वसुः। अन्तरिक्ष सत्। होता।
२ ९ ६ ७
अवेत्। इषदतिथिः। दुरोणसत्। नृषद्वर सत्।
८ १४ १५ १६ १७
ऋत सत्। व्योम सत्। अब्जा। गोजा। ऋतजा।
३ ४
अद्रिजा। ऋतम्।

पद-परिचयः

१ २
हंसः (सूर्यः) अवेत् (ज्ञातवान्) किं अवेतदाह
३ ४
अद्रिजा (पार्वती) ऋतम् (ब्रह्म)।

६ दुरोणसत्—दुर्गा नाम्नि स्थिता—दुरोणे दुर्गा नाम्नि सीदति निषीदति, दुरोणं दुर्गानाम सीदति प्राप्नोति इति वा (दुर् इतिमृत्यु-हीन देवता तद्ब्रह्मैव तद्वाचका दुर इति शब्दः ओणः अपनयन-कर्ता तद्वाचक 'गा' शब्दः तयोः समाहारः ओण् अपनयने इत्यस्मात् ओण् धातोः पचादित्वादच्। दुरोणम्। एवं च श्रुतिर्गा इत्यस्य यमर्थमाह ओणस्यापि स एवार्थः। तेन चार्थेन 'गा' इत्यस्योपस्थित्या दुरोण-शब्दः दुर्गानामपरः, श्रुतिश्च सा वा एषा देवता दूर्नाम एतासाम देवतानाम् पाप्मानां मृत्युमपहत्य यत्रासाम् दिशामन्तस्तद्-गमयाञ्चकार (बृह—१।३।९।१०)

श्रुतिस्थ गमयाञ्चकार उक्त मन्त्रस्थ ओण—इसका स्थलाभिषिक्त है। 'गा' शब्द उसी से प्रतिपाद्य है। इस श्रुति का यह अर्थ है कि प्राण देवता का नाम (इस जगह प्राण देवता ब्रह्म)। मृत्यु उनके निकट आने से असमर्थ है। इसलिये उनका नाम 'दुर'। सब देवताओं का अर्थात् समस्त इन्द्रियों का पाप दूर करके दिगन्त में अपसारित किया, इस कारण वह 'गा'। अपसरण और अपनयन एकार्थक

हैं। जो देवता अपने प्रवर्तित प्राणों द्वारा सब इन्द्रियों का पाप गत करती हैं; निवारण करती हैं; अपनीत करती हैं, उनका नाम दुर्गा—इसी कारण 'दुर्गा'-नाम से वह प्रतिष्ठिता हैं—इस कारण वे 'दुरोणसत्' हैं।

७ नृषद्वर सत्—नृण् पुरुषान् सीदति विशृ-णाति हिनस्ति पद्लृ—विशरण गत्यवसा-यानेषु इति सद्धातो रुपम्। नृषदाम् श्वाप-दानां वरः श्रेष्ठः मृग-राजः सिंहः। तेन सीदति गच्छति, सिंह-वाहना।

८ ऋत-सत्—ऋते पूजिते सीदति निषी-दति पूजित शब्देन महिषासुरो ग्राह्यः, यतः एतासु मूर्तिषु सदा पाद-लग्नो नृणां सदा। पूज्यो भविष्यसि त्वं वै इति देव्या वरो दत्तः।

९ इषदतिथि—इषम्—आश्विन-मासम् दायन्ति दक्षिणायनत्वेऽपि शुद्धं कुर्वन्ति इति इषदाः आश्विन-मासय-वन्यस्तिथयो यस्य दैव-शोधने इति धातोः सुवन्तोपपदात् क प्रत्ययेन इषदा इत्यस्य सिद्धेः। कृष्ण-नवम्यादि महा-नवमी-पर्यन्त तिथेस्तत् सम्बन्धित्वमुक्तम्।

१० तत्रापि "होता" हवन-निष्पादकः स्थाली पचतीविवत् हवनस्याश्रयः इति तात्पर्यम्।

११ शुचिषत—शुचौ शुद्ध-भावे सीदति निषीदति शुद्ध-भावं प्राप्नोतीति वा तेन मुनि-रुच्यते मुनि शब्दस्य सप्तमी तिथिः परत्वम् निगमे दृश्यते षण् मुन्योर्वसुरन्धयो इति।

१२ वसुः—वसु शब्देनाष्टमी लभ्यते। निगम-वचनादौ प्रसिद्धेः।

१३ अन्तरिक्ष सत्—ग्रह-गणाः तेन नवमी तिथेर्लाभः ग्रह-शब्दो नवत्व-संख्या-वाचकस्तस्य ज्योतिष-शास्त्र-प्रसिद्धेः होतृत्वं हवनाधारत्वं तस्यान्ते निवेशात् शुचिषिदिति पदार्थः त्रयार्थ सप्तम्यादि-तिथि-त्रयेण तदन्वयः, अन्तरिक्ष-सदित्येकेन वा।

१४ व्योम सत्—व्योम्नि दहराकाशे अन्तराकाशे सीदति निषीदति, होतेत्यनेन बाह्य-पूजा दर्शिता व्योम सदित्यनेन मानस-पूजा सूचिता।

१५ अब्जा—लक्ष्मीः क्षीरोदधि-जातत्वात् मम योनिरप्स्वान्तः समुद्रे इति देवी-सूक्त-मंत्रेण तथावगमाच्च।

१६ गोजा—गवि वाचि जायते प्रकाशते इति वाग्देवि।

१७ ऋतजौ—कार्तिकेय-गणेशौ, ऋतात् ब्रह्मणः पार्वती-स्वरूपात् शिव-स्वरूपाद्वा जायते ऋतजः तौ ऋतजौ, अद्रिजा वकार-लोपात् ऋतजा अद्रिजा।

इस मन्त्र का नाम हंसावती ऋचा है। इसका भावानुवाद निम्नलिखित है—

सूर्यदेव को यह ज्ञात हुआ कि पार्वती पर-ब्रह्म हैं, सिंह-वाहिनी और महिषासुर-निहित-पृष्ठ-चरणा दुर्गा-मूर्ति हैं। आश्विन मास और पावनी तिथि-समूह से उनका विशेष सम्बन्ध है। उनमें सप्तमी, महाष्टमी और महानवमी तिथि में होम करने की विधि है। असमर्थ होने से केवल महानवमी के दिन ही हवन करना चाहिये। स्नान, पूजा, बलिदान और होम इस चतुः-कर्म-मयी महा-पूजा में चारों कर्म क्रम से निर्वाह करना चाहिये।

इस चतुःकर्म-मयी पूजा से यह नहीं समझना चाहिये कि यह पूजा केवल बाह्यिक है। इस मन्त्र में 'व्योम सत्' शब्द उनके समूह को सूचित करता है। 'व्योम सत्' शब्द साधारण व्योम नहीं है। यह दहराकाश है, जिसका भावार्थ

सम्पादकीय

१—शारदीय नवरात्र का पूजा-विधान

शारदीय नवरात्र का पूजन वङ्ग-समाज द्वारा बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। महिष-मर्दिनी भगवती दुर्गा की विशाल साङ्गोपाङ्ग मृण्मयी मूर्ति गणेश-कार्तिकेय आदि परिवार-सहित विधिवत् प्रतिष्ठित की जाती है और जिस मनोरम उत्सव के साथ नवरात्र भर सोत्साह सारा आयोजन किया जाता है, वह दर्शनीय होने के साथ ही बड़ा उद्‌बोधक होता है। फलतः प्रायः सभी हिन्दू इस वङ्गीय महोत्सव में रुचि लेने लगे हैं किन्तु हिन्दी भाषा में इस महोत्सव की कोई साङ्गोपाङ्ग पूजा-पद्धति उपलब्ध न होने से लोग इसके महत्व को यथोचित रूप में हृदयङ्गम नहीं कर पाते।

अतः 'कौल-कल्पतरु' चण्डी का यह विशेषाङ्क इस दृष्टिकोण को सामने रखकर सम्पादित किया गया है कि उक्त महोत्सव का स्वरूप अधिकाधिक स्पष्ट हो सके। महोत्सव की पद्धति का प्रकाशन **'पौराणिक नवरात्र पूजा-पद्धति'** के नाम से अलग पुस्तक-रूप में किया जा रहा है।

२—'शाक्त-साधना-पीठ' का वार्षिक या मासिक सदस्यता शुल्क

गताङ्क में 'शाक्त-साधना-पीठ' के वार्षिक सदस्यता शुल्क के विषय में एक टिप्पणी दी गई है। उसमें कुछ त्रुटि रह गई है। वार्षिक शुल्क निम्न प्रकार है—

प्रथम श्रेणी—जिज्ञासु सदस्यों हेतु—	५१-००	वार्षिक	या	५-००	मासिक
द्वितीय श्रेणी—दीक्षाभिलाषी ”	१०१-००	”		११-००	”
तृतीय श्रेणी— ” ”	१०१-००	”		११-००	”

आशा है कि 'पीठ' से लाभ उठाने के इच्छुक बन्धु उक्त प्रकार शुल्क जमाकर शीघ्र ही अपना सहयोग प्रदान करने की कृपा करेंगे।

सूक्ष्म हृदयाकाश है। पार्वती वहीं ध्येया हैं—देवी व्यापिका होने पर भी वहीं स्थिता हैं—उनको वहीं खोजना चाहिये।

देवी की जैसी बाह्य पूजा है, उसी प्रकार मानस पूजा भी है। हृदयाकाश में देव्युपासना उनकी मानस पूजा है।

हृदयाकाश में उनकी अवस्थिति सूक्ष्म भी है, स्थूल भी है। स्थूल रूप में देवी लक्ष्मी और सरस्वती हैं, कार्तिकेय और गणेश हैं। स्थूल रूप उनकी इच्छा की महिमा है।

उपनिषद् में परब्रह्म देवी सर्वत्र विराजिता हैं। एकाग्र-चित्त सांसारिक मनुष्य श्रेष्ठ प्रतिमा-पूजक है। हृदय में जो 'व्योम-सत्' है, एकाग्र-चित्त साधक उसकी पूजा शारदीया दुर्गा की प्रतिमा में करता है।

उसके अनन्तर बाह्यपूजा है—इस पूजा में भी हृदयाकाश को विशाल रूप से अनुभव करता है।

एकाग्र-चित्त व्यक्ति यदि प्रतिमा में एकत्व-बोध से चिन्मयी और मृण्मयी देवी की साधना करे, तो उसके पश्चात् निरुद्ध अवस्था आती है। इस अवस्था में उसकी मातृ-साधना केवल हृदय में ही रहती है।

उपासकानां सिद्ध्यर्थं ब्रह्मणो रूप-कल्पना।

गुप्त अलौकिक शक्तियों को जगाकर और अपनी अवस्था र आधिपत्य प्राप्त कर ब्रह्म-ज्ञान द्वारा ब्रह्म-शक्ति के आनन्दार्णव में अपने को विलीन कर दे । हम लोगों में अज्ञान-वश यह गलत धारणा हो गई है कि संसार दुःख का कोष है । त्य यह है कि यह संसार आनन्द पर ही प्रतिष्ठित है । आनन्द ही संसार का तथा प्रत्येक मनुष्य का असली स्वरूप है । दासता, पर-तन्त्रता और दुःख उसका यथार्थ स्वरूप नहीं है । शक्ति-उपासना इसी बात को प्रत्यक्ष कर देती है ।

भगवान् शङ्कराचार्य कहते हैं कि ऐसे तो जहाँ भोग है, वहाँ मोक्ष नहीं मिल सकता और जहाँ मोक्ष है, वहाँ भोग की प्राप्ति नहीं होती है; परन्तु कुल-धर्मावलम्बी भगवती के भक्तों के हाथों में दोनों वस्तुएँ प्राप्त होती हैं ।

अतीत के किस युग से हमारी आर्य-भूमि में शक्ति-पूजा प्रचलित रही है, इसे ठीक-ठीक बता न सकने पर भी यह तो ध्रुव सत्य ही है कि वेदोक्त उपासना तथा शक्ति-उपासना दोनों ही सम-कालीन हैं । वैदिक संध्या की त्रय-कालीन मूर्तियाँ--ब्रह्माणी, वैष्णवी तथा रुद्राणी हैं। शक्ति-उपासना ही गायत्री का चरम तात्पर्य है ।

यद्यपि **'सर्वे शाक्ता द्विजा'** के अनुसार गायत्री की उपासना करनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सब लोग शाक्त-गणना में आ जाते हैं तथापि कोई अपने को वैष्णव, कोई शैव, कोई सौर, गाणपत्य आदि मानकर तत्तद्देवता की दीक्षा ग्रहण करते हैं । कुछ लोग वेदान्त-ग्रन्थावलोकन से ब्रह्म-ज्ञानी बनकर कर्म-काण्ड का त्याग कर देते हैं, और जनता में ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश देते हैं, जिसके फल-स्वरूप अनेक मत-मतान्तर निकल पड़े हैं । अतएव तीनों वर्णों में विविध मतावलम्बी लोग इस लोक में देखने में आते हैं ।

शक्ति-उपासना की खोज संसार के सब वैज्ञानिक अन्वेषणों में प्रधानता रखती है । इसकी तुलना आजकल प्रचलित किसी भी अन्वेषण के साथ नहीं हो सकती । यह भारतवर्ष की विशेषता है, परन्तु दुःख की बात है कि स्वयं भारतवासी इस अमूल्य वैज्ञानिक रहस्य से अनभिज्ञ हैं । इस अमूल्य रत्न का भण्डार भारतवर्ष में रहते हुये भी हम भारतवासी दीन, हीन, मलीन, दरिद्र और आलसी हो रहे हैं । इसी कारण भारतवासी भिक्षा की झोली लिये दर-दर भीख माँग रहे हैं ।

शाक्त धर्म की प्राचीनता की पुष्टि जन-श्रुति और परम्परा द्वारा तो निरन्तर होती ही रहती है और उसके प्रमाण में वेदों के सूक्त तथा स्मृति, पुराण, उपनिषदों के अवतरण भी विज्ञ पुरुषों के परिश्रम के फलस्वरूप जिज्ञासुओं के सम्मुख सदैव आते गये हैं । अब एक और भी महत्वपूर्ण प्रमाण आधुनिक खोज के फलस्वरूप विचारार्थ वर्तमान है । सिन्धु-स्थित मोहेन्जोदारो के नाम से प्रायः सभी भारतवासी परिचित हैं । यह वह स्थान है, जहाँ की खुदाई के फलस्वरूप निकले खँडहर के कारण भारतीय संस्कृति का अस्तित्व-काल अत्यन्त पुराने समय में स्वीकृत हो चुका है । इस खँडहर से प्रमाणों की सहायता से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि शाक्त-धर्म वैदिक काल के पूर्व से भारत में वर्त्तमान रहा है ।

तन्त्रशास्त्र की किसी-न-किसी रूप में सब धर्मों पर छाप पड़ी है । भारतीय बौद्ध, जैन, पाशुपत, सौर, शैव आदि सम्प्रदायों में तांत्रिक उपासना स्पष्ट दीख पड़ती है । कहा जाता है कि ईसाई, महम्मदीय, पारसी, यहूदी आदि धर्मों में भी तन्त्रों की छाप पड़ी है । बौद्ध भिक्षुओं ने तिब्बत, चीन, जापान, जावा, सुमात्रा आदि देशों में तन्त्र-मार्ग का ही विशेष रूप में प्रचार किया है । तिब्बत में अब भी तन्त्र-ग्रन्थों की सम्पत्ति प्रचुर परिमाण में पायी जाती है ।

तान्त्रिक तथा शक्ति-उपासना के ग्रन्थों का भण्डार अपार है । उसमें इतने ग्रन्थ हैं कि जिसकी थाह लगाना

असम्भव है। इन विषयों के ग्रन्थ अभी तक कम छपे हैं। इनके बहुसंख्यक हस्तलिखित ग्रन्थ भारतवर्ष से बाहर चले गये हैं। बहुत से तांत्रिक ग्रन्थ बर्लिन, लेनिनग्राड और लन्दन के पुस्तकालयों में बन्द पड़े हुए हैं। हिमालय के पहाड़ों में भी गुप्तरूप से हस्त-लिखित तान्त्रिक ग्रन्थों का विशाल पुस्तकालय अभी मौजूद है, जिनकी जानकारी कुछ महान् विभूतियों के अतिरिक्त किसी दूसरे को नही है। प्राचीन समय में एलेक्जेण्ड्रिया में तान्त्रिक ग्रन्थों का वृहद् आगार था, जो जला दिया गया। तदनन्तर तक्षशिला तथा नालन्दा के विश्वविद्यालयों में, जो तांत्रिक ग्रन्थों की मालायें थीं, वे भी जला दी गईं और नष्ट-भ्रष्ट हो गईं। आइने अकबरी के अनुसार बहुत प्राचीन अमूल्य तांत्रिक ग्रन्थों का आगार दिल्ली में पहुँच चुका था, जो दूसरे दिन अकबरशाह के दरबार में पहुँचनेवाला था, पर उसी रात में कुल पुस्तकें कहाँ गायब हो गईं या किसने गायब कीं, किसी को पता न चला और बादशाह अकबर हाथ मलते रह गये। फिर भी कुछ महान् विभूतियाँ भारतवर्ष में वर्त्तमान हैं, जो इस पद्धति को जीवित रखे हुए हैं, पर वर्त्तमान जड़वादी सभ्यता में इन महान् विभूतियों का पहचानना कठिन कार्य है।

इस लेख को समाप्त करने के पूर्व ऋषिकेश-स्थित आनन्दकुटीर-निवासी जगत्-विख्यात् परमपूज्य योगीराज श्रीस्वामी शिवानन्दजी महाराज के कतिपय शब्दों को उद्धृत करने के लोभ को मैं संवरण नहीं कर सकता। भक्त-प्रवर स्वामीजी का कहना है—

'शक्ति चिद्-रूपिणी है। वह सच्चिदानन्द-रूपिणी है। वह प्रकृति की विधात्री है। वह स्वयं ही प्रकृति है। वह भगवान् शिव या ब्रह्म की शक्ति है। वह इस संसार-नाटक की सूत्रधार है। वह जगज्जननी है। वह महिषमर्दिनी है। वह भ्रान्ति नाशिनी है। देवी भगवान् शिव की शक्ति है। वह जड़शक्ति और चिद्शक्ति है। शक्ति प्रकृति है, माया है, महामाया है, श्रीविद्या है। शक्ति ही ब्रह्म है। वह ललिता है, वह कुण्डलिनी है, वह राज-राजेश्वरी है। वह त्रिपुरसुन्दरी है। वही दश-महाविद्या है। काली, बगलामुखी, छिन्नमस्ता, भुवनेश्वरी, मातङ्गी, षोडशी, धूमावती, कमलात्मिका, तारा और भैरवी है।

❀ ❀ ❀

शुद्ध माया चिद्-शक्ति है। प्रकृति जड़ शक्ति है।

❀ ❀ ❀

शक्ति-वाद ईश्वर के शारीरिक (सगुण) और अशारीरिक (निर्गुण) रूपों का प्रतिपादन करता है। बिना प्रकृति के ब्रह्म निष्कल है और प्रकृति-सहित ब्रह्म सकल है।

निर्गुण ब्रह्म में शक्ति गुप्त (अप्रत्यक्ष) रहती है तथा सगुण ब्रह्म में वह प्रकट (प्रत्यक्ष) हो जाती है।

मातृश्री की कृपा प्राप्त करने के लिये उसकी उपासना, श्रद्धा, पूर्ण प्रेम तथा आत्म-समर्पण की आवश्यकता है। केवल उसकी अनुकम्पा के द्वारा ही आत्मा का ज्ञान प्राप्त हो सकता है।'

पूज्यपाद स्वामीजी के इन शब्दों को यदि मैं प्रस्तुत लेख का सारांश अथवा निचोड़ कह दूँ, तो अनर्गल नहीं होगा, ऐसा मेरा विचार है। इन शब्दों के साथ परब्रह्म-स्वरूप आनन्दमूर्त्ति श्रीगुरुदेव जी तथा शरणागत-दीनार्त्त-परित्राण-परायणी सर्वस्यार्त्ति-हरी जगदात्मिका करुणामयी मां के पावन पाद्-पद्मों में सविनय यह शब्दाञ्जलि अर्पण करता हूँ—

सर्व-रूप-मयी देवी सर्व-देवी-मयं जगत्।
अतोऽहं विश्व-रूपां तां नमामि परमेश्वरीम्॥

❀ शक्ति-तत्व या ब्रह्म-विद्या

शक्ति-तत्त्व (ध्यान-रहस्य)

शास्त्र में कहा है कि वह सच्चिदानन्द परब्रह्म 'रस-रूप' है- "**रसो वै सः**" या "**आनन्दं ब्रह्मेति व्यजानात्**" 'आनन्द-स्वरूप' है। रस वा आनन्द दोनों पर्यायवाची शब्द हैं, जो एक ही अर्थ को बताते हैं। शास्त्र में पुनः यह भी कहा गया है कि '**आनन्दाध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते**' अर्थात् उसी मूल आनन्द से ही इस विश्व की उत्पत्ति हुई है तथा उसी में इसकी स्थिति है और उसी में ही यह लय को प्राप्त होता है। सकल विश्व-मात्र जड़-चैतन्यमय है। भक्ति-मीमांसा-सूत्र में कहा गया है कि परमात्मा रस-रूप है तथा माया जड़-रूप है—'**रस-रूपः परमात्मा जड़-रूपा माया।**' सच्चिदानन्दमय परमात्मा अवाङ्-मनसा-गोचर—वाणी और मन से परे होकर भी मुमुक्षु-गणों के लिये सत्-चित् और आनन्द—इन तीन भावों के द्वारा उसके स्वरूप का निर्देश किया जाता है।

यद्यपि एक ही अद्वितीय वस्तु इन तीन भावों द्वारा प्रतिपादित की जाती है, तथापि साधक की अवस्था के अनुसार कर्म, उपासना और ज्ञान साधनानुकूल मीमांसाशास्त्र द्वारा तीनों भावों का प्रतिपादन किया जाता है। अर्थात् कर्म-मीमांसा द्वारा सद्-भाव, ब्रह्म-मीमांसा द्वारा चिद्-भाव, तथा भक्ति वा दैवी-मीमांसा द्वारा उसका सत्-चित् से युक्त आनन्द-भाव का प्रतिपादन होता है।

पूर्व-कथित सत्-चित्-जड़-चैतन्य-आनन्दमय ब्रह्म ही द्विधा भूत हो अर्थात् सत्, जो अविनश्वर अनादि अनन्त अपरिवर्तनशील या सदा विकार-विहीन समः सूक्ष्म दृष्टि से, वही मूल जड़-स्वरूप और चित् जो उस मूल जड़ के सहित ओत-प्रोत भाव से जड़ित एकमात्र चैतन्य-रूप या प्रकाश-रूप हो एकार्ध में सत् व जड़ या ब्रह्म-शक्ति या मूल प्रकृति के रूप में समझो तथा द्वितीयार्द्ध में चित् या प्रकाश चैतन्यमय अनादि पुरुष-रूप में द्वैत-भाव में होकर भी विश्व सृष्टि का कारण होता है। फिर उक्त उभय भाव की सम्मिलन-लीला में शुष्क आनन्द-भाव में विकसित होता है। यह आनन्द-शक्ति ही प्रकाश्य भाव से ज्योति के आवरण में कृष्ण-मण्डल या मध्य में रमणीय प्रकृति-मूर्ति है। यही तिमिर-वर्णा काली-स्वरूपा है। ब्रह्म के प्रत्यक्ष चैतन्य-रूप आदि मण्डल में यही विश्व की अन्तः शक्ति कृष्ण-वर्णा सदानंद-मयी महामाया-रूप में प्रकाशित है।

छान्दोग्य उपनिषद् में भी हिरण्मय-पुरुष की वर्णना-प्रसंग में उल्लेख है कि '**अथयं नीलं परं कृष्णं नन्दनः तन् श्यामः**' अर्थात् सूर्य-मंडल के मध्य में जो गाढ़ कृष्ण-वर्ण अयः विद्यमान है, वही श्याम व श्यामा है, वही आलोक के मध्य में अन्धकार या छाया-रूपिणी महामाया आनन्द-मयी है। फिर यजुर्वेद के मन्त्र में भी यही प्रसंग है कि—

"**तन्मित्रस्य वरुणस्याभि चक्षे सूर्यो रूपं कृणुते-द्वेधारूपस्थो अवन्ममन्यद्रुशदस्य याजः कृष्णमन्यद्ध-रितः संभरन्भिन**"—

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि ब्रह्म की स्थूल या प्रत्यक्ष विभूति सूर्य भी ब्रह्म-शक्ति-पुष्ट होकर निरंतर दो रूपों को धारण कर रहे हैं। उनका एक रूप 'रश्मि' है, जो शुभ्र प्रकाश ज्योतिः है तथा दूसरा 'कृष्ण' अर्थात् सकल वस्तु के आकर्षण-शक्ति-संपन्न हैं। सूर्य की किरण में सकल वस्तु के हरण या आकर्षण की शक्ति गुप्त भाव से वर्त्तमान है। सूर्य अपनी उस किरण-माला के सहित ओत-प्रोत भाव से जड़ित है तथा कृष्ण या श्याम-वर्ण आकर्षण-शक्ति के द्वारा विश्व-ब्रह्माण्ड को अपने से मिला-

कर आनन्दित कर देता है। उसी कारण सूर्य के उदय के साथ-साथ ही प्रकाश और छाया दोनों एकत्र ही दिखाई देते हैं। जहाँ पर आलोक है, वहाँ छाया भी उसकी अनुगता सह-धर्मिणी की भाँति दिखाई पड़ती है, तथा सकल-वस्तु ही आलोक या छाया-पात से ही ज्ञात होती है। चैतन्य-मय आलोक के अन्तर में यह ब्रह्मच्छाया ही साक्षात् आनन्द-मयी श्यामा है या महामाया ब्रह्म की आनन्द-स्वरूपा रूप से विराज रही है। उसके उसी अव्यक्त आनन्द-भाव के ज्ञात हो जाने पर 'ज्ञाना-रूप' साधक के सभी दुःख व भय दूर होकर उसे अक्षय शान्ति व आनन्द प्राप्त हो जाता है।

अनन्त शान्ति और अनन्त ज्ञान की मूल वही आनन्द-मयी महामाया है। त्रिकाल-दर्शी सर्वज्ञ महर्षि व्यास ने उसी अखंड ब्रह्म-विंदु को भेद कर, मंडलाकार उसकी परिधि को भेदकर ज्ञेय वस्तु वेद को भेदकर वेदव्यास-रूप में, विश्व के मूल-कारण ज्ञान तथा शक्ति हैं--इस तत्व को प्राप्त कर पाया था। उसी ज्ञेय वस्तु का प्रथम विकास 'चैतन्य पुरुष निमित्त कारण-रूप' में ज्ञान तथा द्वितीय विकास 'माया व प्रकृति उपादान कारण-रूप' में शक्ति जाननी चाहिये। दोनों में कोई भेद नहीं। दोनों नित्य हैं।

जिस प्रकार प्रकाश को छोड़कर छाया नहीं तथा छाया को छोड़कर प्रकाश नहीं, उसी प्रकार ज्ञान को छोड़कर शक्ति नहीं तथा शक्ति को छोड़कर ज्ञान नहीं। इसीलिये उक्त दोनों कारणों को अक्षुण्ण रखने के निमित्त ही उन्होंने उसी ज्ञेय वस्तु के नित्य संम्बन्ध-युक्त ज्ञान-शक्ति को प्रथम वेदान्त-वाक्य में क्लीवब ताया है—'तयोः साम्ये नपुसंकः' महाभारत में गीता में भी कहा गया है कि वह परम-पुरुष पुरुषोत्तम-रूप है, जो जगत्-पिता भक्त-वत्सल भगवान् है। अनन्तर महर्षि मार्कण्डेय के वाक्य में उन्हें करुणामयी जगज्जननी कहा गया है।

व्यास के वेद-सागर-मन्थन के अपूर्व उद्योग से ही इन त्रिविध मूर्तियों का विकास हुआ है, जैसे उसका क्लीव-रूप 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म', 'सर्वं खल्विदं-ब्रह्म', 'तदेव सौम्येदमग्र आसीत्'। उसका पुरुष-रूप 'सोऽकामयत बहु-स्याम्', 'स ऐक्षत', 'एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषो नार्याम्येष योनिः सर्वस्य' इत्यादि। उसका स्त्री-रूप 'ब्रह्म स्त्री, तस्य हवा एतस्य ब्रह्मणो नाम सत्यमिति तानि हवा एतानि त्रीण्यक्षराणि सतीयं (सती-इयं)' इत्यादि श्रुति-वाक्यों से प्रतिपादित हुआ। अतः भक्त साधक अपने साधन-बल से उसके भाव-त्रय या उसके अपूर्व स्वरूप को यथा-समय लक्ष्य कर परमानन्द प्राप्त करता है।

पहिले सगुण वा निर्गुण ब्रह्म के विचार में यह निर्दिष्ट है कि जिससे गुण निर्गत हो, वही निर्गुण और जिसमें गुणों का प्रकाश हो, वही सगुण ब्रह्म की वही सगुण अवस्था ही शक्ति या प्रकृति के नाम से पुकारी जाती है। जब गुणों की पूर्ण साम्यावस्था होती है, तब वही मूल प्रकृति तुरीया शक्ति के नाम से पुकारी जाती है। अनन्तर वही प्रकृति गुणों की वैषम्यावस्था में आद्या शक्ति के नाम से कही गई है। उसकी सगुण वैषम्यावस्था में प्रथम तमोगुण की विषमता या प्राधान्य होता है तथा उसके साथ-साथ सतोगुण आकृष्ट होकर उसके ऊपर आ पड़ता है। तब वह तमोगुण सत्वगुण द्वारा आवृत होकर उसको विश्व-सृष्टि की दक्षिण वा अनुकूल सुख-मय क्रिया-वश हो काल या महाकाल नाम से कहा जाता है। अर्थात् वही ब्रह्म-शक्ति या महामाया मूल प्रकृति की स्वरूप आद्या शक्ति से ही प्रथम तमोगुण प्रधान सत्य-युक्त चिद्रूप हो वह ब्रह्म काल या महाकाल के नाम से प्रकाशित होता है। इसी से परशिव सदाशिव-रूप से स्वयं उसी पर-प्रकृति की सृष्टि-लीला के अनुकूल दक्षिण पार्श्व में स्थित हो शुद्ध रज-गुणमयी आद्या की निम्न-रूप में स्तुति करते हैं—

त्वं परा प्रकृतिः साक्षात् ब्रह्मणः परमात्मनः।
त्वत्तो जातं जगत्सर्वं त्वं जगज्जननी शिवे॥
महदाद्यादणु-पर्यन्तं यदेतत् स-चराचरं।
त्वयैवोत्पादितं भद्रे त्वदधीनमिदं जगत॥

त्वमाद्या सर्व-विद्यानामस्माकमपि जन्म-भूः ।
त्वं जानासि जगत् सर्वं न त्वां जानाति कश्चन ॥

पुनः भक्तगणों पर अतीव कृपा कर माता स्वयं वाग्वादिनी-स्वरूप से देवी-सूक्त में स्वयं 'अहं रुद्रेभिः' इत्यादि वाक्यों में आत्म-प्रकाश कर रही हैं कि—

मैं ही एकादश रुद्र तथा द्वादश सूर्य, त्रयोदश विश्वेदेवों के रूप में जगत् में विचरण कर रही हूँ। मैं ही मित्रावरुण, इन्द्र, अग्नि अश्विनीकुमारादिकों को निज कार्य करने की शक्ति देती हूँ ॥ १ ॥

मैं ही विधाता और असुर-हन्ता चन्द्रदेव को तथा पूषा और भग नामक सूर्य-द्वय को सदा सामर्थ्य देती हूँ और जो याज्ञिक देवता के उद्देश्य से उत्तम द्रव्य और सोम-रस प्रदान करते हैं, उनको अभिलषित धन, रत्नादि मैं ही प्रदान करती हूँ ॥ २ ॥

मैं ही विश्व-ब्रह्माण्ड की अधीश्वरी हूँ, मैं ही भक्तगणों के सब मनोरथों को पूर्ण करनेवाली हूँ, मैं ही चैतन्य-रूपा महामाया हूँ, मैं ही उपासना-योग्य देवताओं की प्रधान हूँ। ऐसी गुण-शालिनी मैं ही सर्वरूप में सदा विराजमान हूँ। देवतागण सकल अवस्था में पूजादि जो कुछ भी करते हैं, वह मेरे लिये ही करते हैं। भक्तगण जो जिस समय जहाँ-जहाँ जो कुछ भी करते हैं, मेरे ही लिये करते हैं। मैं ही उसे ग्रहण करती हूँ ॥ ३ ॥

मैं ही प्राणियों की भोजन-शक्ति हूँ तथा दर्शन-शक्ति हूँ तथा स्पन्द-रूपा प्राण-शक्ति या जीवनी-शक्ति हूँ। मेरे द्वारा ही लोक भोजन व दर्शन आदि क्रिया-द्वारा जीवन धारण करता है। हे विद्वान्, यह सब श्रद्धा-द्वारा प्राप्य उपदेश तुम्हें देती हूँ। इसे सावधान हो सुनो ॥ ४ ॥

मैं स्वयं ही आत्म-तत्व-रूप हूँ। यह सब मुझमें ही है तथा सब वस्तुओं में मैं ही विद्यमान हूँ। यह सारी बातों की खान है। इसी तत्व की देवता तथा मनुष्य चिर-काल से सेवा व उपासन करते आ रहे हैं। मैं जिस समय जिसकी इच्छा करती हूँ, उसी को शक्ति-शाली बना देती हूँ। किसी को ब्रह्मा, किसी को तत्व-ज्ञानी नारदादि ऋषि तथा किसी को मन्वादिकों की भाँति मेधावी मानव बना देती हूँ ॥ ५ ॥

ब्रह्म-द्वेषी तथा स्वभाव से ही हिंसक त्रिपुरासुर के वध के निमित्त मैंने ही रुद्र के धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा दी है। मैं ही भक्तों की रक्षा के लिये युद्ध करती हूँ। मैं ही अन्तर्यामी हूँ तथा मैं ही सर्व-व्यापक-रूप से पृथिवी व स्वर्गादि में व्याप्त हो रही हूँ ॥ ६ ॥

मैंने अपनी इच्छा से ही विकार-जनित जगत् से ऊपर आकाश की सृष्टि की है तथा आकाश से भी उच्चतम प्रदेश में इन्द्रादिकों के भी बोध से अगम्य परमात्मा पर-ब्रह्म की इच्छा-शक्ति ही मेरे आविर्भाव का स्थान है। इसीलिये सभी की कारण-रूपा मैं ही हूँ। सभी कर्मों में अनुप्रविष्ट होकर ध्रुव-लोक-पर्यन्त मैं ही विराजमान हूँ ॥ ७ ॥

जब मैं अपनी इच्छा से जगत् की सृष्टि करती हूँ तब वायु की भाँति प्रवाहित होती हूँ। मैं पृथिवी और आकाश से भी ऊपर रहती हूँ अर्थात् पृथिवी और आकाश इन्द्रिय-गोचर है, उसका विनाश होता है, मैं अतीन्द्रिय हूँ और नित्य हूँ। मैं ही ब्रह्म-स्वरूपा हूँ। मैं अपने ही सामर्थ्य से इच्छा-पूर्वक असीम शक्ति-शालिनी हो रही हूँ ॥ ८ ॥

इस प्रकार पूर्व-कथित ज्ञान और शक्ति में भेद नहीं है। यह ब्रह्म-शक्ति स्वयं अनादि वेद में वाग्वादिनी होकर विज्ञापित कर रही है।

जैसे भी सही, ब्रह्म की वही सत् और चित् अर्थात् मूल जड़ व शक्ति अर्थात् परा प्रकृति व चित् या प्रकाश-

रूपी चैतन्य के समाहार से ही इस विश्व-संसार का सब व्यापार हो रहा है। फिर चित्-स्वरूप पुरुष ही सत्-स्वरूपा प्रकृति शक्ति की लीला को चैतन्य-मय करके प्रकाशित कर रहे हैं। इसी कारण वे बाहर से शव-रूप महाकाल होकर धूम्र-वर्ण (श्वेत और कृष्ण-वर्ण के मिश्रण से ही धूम्रवर्ण उत्पन्न होता है) या तमोप्रधान अर्थात् तमाच्छन्न होकर भी श्वेत शाश्वत रूप में सत्व-गुणावृत्त हो चिद्-भाव में चित होकर पड़े हुये हैं और उन्हीं के हृदय में या हृदय के ऊपर जो गुण प्रधान होकर उन्हीं की आद्या शक्ति सत्भाव में अपूर्व रूप में अतीव उल्लास-विह्वला व सदानंद-युक्ता हो विराज रही हैं, वे पुरुष हैं।

चैतन्य बीज-प्रदायक पिता-रूप में शुभ्रोज्ज्वल प्रकाश वीर्य ही के बल प्रदान करते हैं तथा लीला-मयी महाप्रकृति सदानन्द-मयी होकर उसे धारण करती हैं तथा ब्रह्माण्ड-सृष्टि-रूप में विचित्र भाव में विश्व का प्रसव, उसकी पुष्टि तथा उसका लय भी करती हैं। महाकाल के ऊपर विराजमान होकर सतत लीलामयी वे काली व महाकाली नाम से पुकारी जाती हैं।

वास्तव में शव-रूप महाकाल व आदि-शक्ति प्रथमा महाविद्या काली एक ही वस्तु हैं किन्तु साधक के ज्ञान-लाभ के निमित्त पहिले उन्हें द्विधा-भेद से ही जानना होगा। पुरुष निर्गुण व निष्क्रिय है किन्तु वह चित् या चैतन्य प्रकाश-स्वरूप है। इसी कारण वह शव-रूप श्वेत स्वच्छ स्फटिक के समान शिव-स्वरूप में चित् होकर पड़े हैं और प्रकृति उनसे अभिन्न हुई सत् या नित्य सत्ता-रूप में स्थित उन्हीं के अन्तर-स्थित प्रकाश-सत्ता की सहायता के बिना प्रकाशित नहीं हो सकती, या यों कहिये कि चैतन्य की सहायता से ही प्रकाशित होती है। प्रकृति तो चैतन्य कक्ष-स्थित अव्यक्त गुप्त वस्तु है। वह प्रकाश की ही विपरीत सत्ता है अर्थात् अप्रकाश्य है या अन्तर की वस्तु है। अतः पक्षान्तर में गंभीर छाया या घोर अन्धकार-मयी सर्व-वर्ण-विलोपकारी कृष्ण वर्णं या काला वर्ण है। इसी कारण काली कही गई है। ज्योति के अन्तः-स्थित अनिर्वचनीय कृष्ण विन्दु इसी कारण श्वेत-रूप शाश्वत शिव-हृदय में ही काली-रूप से विकास को प्राप्त हो फिर वे ज्योतिर्मयी-रूप से विराज रही हैं।

शिव-शक्ति का यह अनिर्वचनीय द्विधा भेद ही प्रथम दक्षिण या अनुकूल भाव-संपन्न का प्रथम साधन-लक्ष्य है। प्रथम यह कहा गया है कि दिव्य भाव में उन्नत साधक ही प्रकृति का स्वरूप है और वही एकमात्र पुरुष है अथवा वही पुरुष व प्रकृति का समाहार-भूत ओत-प्रोत भाव से जड़ित ज्ञाता और ज्ञेय रूप से जैसे द्विधा विभक्त है पर है एक ही।

उदाहरणार्थ तुम किसी वस्तु को देखते हो, सुनते हो और उसे गम्भीरता से अनुभव करते हो। तुम्हारा अन्तःकरण उसी भाव में सराबोर हो जैसे तुम उसी भाव में तन्मय हो डूब जाते हो। विचार कर देखो कि उस समय तुम्हारा स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है; तुम तदाकार हो रहे हो; तुम अपने को एक बार ही भूल गये हो। फिर कुछ देर बाद जब वह भाव दूर हो जावे, तो तुम नींद से जगने के बाद ऐसी स्थिति में होओ कि तुमसे कोई पूछे तो उसके उत्तर में जो कुछ तुम कहोगे, वह 'कुछ' तुमसे जैसे पृथक् हो गया होगा। तुम और वह 'कुछ' वस्तु दो होओगे। जब तुम तद्-गत थे, तब एक ही थे; जब पृथक् हुये, तो द्वैत भाव आ गया। ऐसे ही साधक और साध्य साधारणतः दो वस्तु होकर भी साधन के फल से फिर एक हो जाते हैं। तब साध्य-साधक एकाकार हो पुरुष-प्रकृति मिलकर एक अद्वितीय वस्तु में परिणत हो जाते हैं। साधक, यही ध्यान-कार्य तुम्हें एकाग्र भाव से तुम्हारे अभीष्ट देवता के साथ एकाकार बना देगा। किन्तु जब तक ऐसी स्थिति न आवे, तब तक उक्त शिव-शक्ति पुरुष व प्रकृति और भगवान् में सतत द्वैत भाव ही विद्यमान रहेगा। तब

ध्याता व उसके ध्यान की वस्तु में तथा ध्येय में अत्यन्त आनन्द-प्रद पार्थक्य स्वरूप से ही ध्यान-क्रिया विराजमान रहेगी ।

'काली कराल-वदना है,' यह कहते ही काली—कालई—वा काल-ई या काल ही समझिये अर्थात् अनादि अनन्त महाकाल ही—अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्तमान रूपी महाकाल ही काली, महाकाली वा दक्षिणा आदि अष्टकाली रूप से सर्वसाधारण साधक की ध्येया या उपास्या है । काल की गोद में सभी को लय होना होता है । महाकाल सृष्टि के प्रारम्भ से ही सभी का कलन या ग्रास करते चले आ रहे हैं । इसी कारण वे महाकाल जगत्-संहारक-रूप से कहे गये हैं । महा-प्रलय-काल में जिन महाकाल का भी जो कलन या निज अंग में लय कर लेती हैं, अतः वे ही कराल-वदना काली कहीं गई हैं । संसार के उसी अन्तिम दिन में वा अन्तिम लय-लीला के मध्य में भी जो काल को सदाई अर्थात् ईक्षण करती है, वही काल—ई काली है । महाकाल के अन्तर्गत खंड-काल के मध्य में भी जो संसार की नित्य की सृष्टि तथा स्थिति व लय-कार्य जो दिन-प्रतिदिन हो रहा है, इस सबको जो देख रही है तथा अनादि काल से ही काल-संहारिणी काली के कराल वदन में नित्य कितना क्या-क्या जो भी निक्षिप्त हो रहा है, उस सबका जो निरीक्षण कर रही है, वही काली है । संसार की नित्य ही होनेवाली सृष्टि तथा उसकी रक्षा की भाँति ही संहार का कार्य भी उसी के द्वारा ही सम्पन्न होता है । उसके कराल वदन का यही तात्पर्य है । संसारी जीवों का मुख ही स्थूल भाव से उसके कराल वदन की महिमा को प्रकट करता है । कारण कि उद्भिज, स्वदेज, अण्डज और जरायुज-रूप से एक प्राणी दूसरे का भक्षक बनकर उसके कराल वदन की महिमा को अक्षुण्ण रखे हुये है । तुम भी जन्म से लेकर भाव तक इस छोटे से मुख के द्वारा ही कितना क्या ग्रास कर चुके हो; अपने देह के परिमाण से उसकी तुलना तो करो, वह कितने बड़े परिमाण में होगा ! फिर कराल वदन उसकी कठोरता का भी परिचायक है, असुर-नाशिनी मां का मुख-मण्डल उसी आदि देवासुर-युद्ध के अनुरूप ही घोर समर-निष्ठुरता का प्रतीक है । पक्षान्तर में वे अपने प्रिय साधक-वृन्द-रूपी संतान के अतः में स्थित हेय तथा भीषण कामादि रूप आसुरी प्रवृत्तियों रूपी असद् भावनाओं से सदा समर-तत्परा हैं ।

किसी अतीत युग में मां दानव-दलों के दलनार्थ आविर्भूत हुई थीं! आज भी वह असुर-नाशिनी माँ की मूर्ति भक्तों के हृदय में देदीप्यमान हो रही है । उनका ध्यान करते ही साधक एकाग्र-चित्त हो अन्तर में एक भीषण कोलाहल का अनुभव करता है । उस कोलाहल का कारण अनुसंधान करते ही दूसरे ही क्षण वह मुमुक्षु साधक यह अनुभव करता है कि देवासुर-संग्राम का वह युग-युगान्तर का व्यवधान आज दूर हो गया है । देवता और दानव दोनों ही माता की संतान हैं, किन्तु देवता-गण ने शांत प्रकृति के सज्जन साधु-गणों की रक्षा के निमित्त ही असुर-गणों को सामरिक भाव से भीषण ताड़ना दे मृत-प्राय कर दिया था । किन्तु वे मरे नहीं, वे फिर मातृ-शक्ति से पुष्ट दैवी शक्ति-संपन्न असुर-गुरु की मृत-संजीवनी के मन्त्र-बल से फिर जीवित हो रिपु-रूप में नयी देह में नयी दानव-शक्ति लेकर मानव इन्द्रियों में पंच-भूतात्मक रूप से निवास कर रहे हैं । मनुष्य देवता और असुर दोनों का ही प्रतीक-स्वरूप है । उसके अन्तः में नियत रूप से देवासुर-संग्राम हो रहा है । भक्त-वत्सला माँ ने इसी कारण अपने प्रिय भक्त-गणों को श्री श्री चण्डी के एकादश अध्याय में ५४ वें श्लोक-रूपी मन्त्र में यह आश्वासन दिया है कि—

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ।
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरि-संक्षयम् ।।

भक्त के हृदय में इस दानवी कोलाहल के होते ही वे अविलम्ब वहाँ अवतीर्ण होंगी । महर्षि मार्कण्डेय ने इसी

प्रसंग को उक्त एकादश अध्याय के प्रारम्भ में ही उठाया है कि—

देव्या हते तत्र महासुरेन्द्रे
सेन्द्राः सुरा वह्नि-पुरोगमा-स्ताम्।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्ट-लाभाद्
विकाशि वक्त्राब्ज-विकाशिताशाः॥

अर्थात् युद्ध में जब माता ने दैत्यराज शुम्भ का निधन कर दिया, तब अग्नि को सम्मुख कर इन्द्रादिक देवतागण असुर-विनाश-रूपी अपने अभीष्ट के पूर्ण होने से प्रसन्न-वदन हो भक्ति-भाव से कात्यायनी महामाया की स्तुति करने लगे कि—'यह महामाया ही ब्रह्म-शक्ति है', यह प्रसङ्ग बराबर चण्डी में व अन्य माहात्म्यों में भी आ चुका है। उपनिषद् में भी इसकी सुन्दर वर्णना मिलती है। केनोपनिषद् में भी ब्रह्म-निर्णय-प्रसङ्ग में तृतीय खण्ड के प्रथम मन्त्र में उल्लेख है—

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्तत ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महियेति।

ब्रह्म ने एक बार ईश्वर के नियमों का उल्लंघन करनेवाले असुरों को परास्त किया था, किन्तु देवता-गण ब्रह्म-कृत उस विजय को अपनी की हुई मानकर अपने को गौरवान्वित मान रहे थे। देवताओं की इस प्रकार अज्ञता देखकर ब्रह्म उनके सामने यक्ष के रूप में प्रकट हुये, किन्तु देवता-गण उन्हें पहिचान न सके। तब अग्नि को ही उनके पास प्रथम भेजा, जैसा कि चण्डी में **'अग्नि-पुरोगमाः'** वर्णन आया है। अग्नि जब उनके सम्मुख गये, तब उन्होंने पूछा, 'आप कौन हैं?'

तब अग्नि ने कहा कि 'मैं अग्नि जात-वेदा के नाम से प्रसिद्ध हूँ।'

उन्होंने पूछा, 'तुम्हारी क्या शक्ति है?'

अग्नि ने कहा कि 'विश्व-ब्रह्माण्ड में जो भी कुछ है, सबको मैं भस्मसात् कर सकता हूँ।'

तब उस यक्ष-रूपी ब्रह्म ने एक तृण सामने रखकर कहा कि 'इसको भस्म करो।'

अग्निदेव अपनी सारी शक्ति लगाकर भी उसे भस्म नहीं कर पाये तथा देवताओं के पास वापस आकर बोले कि 'मैं यह निर्णय नहीं कर पाया कि वह कौन है।'

तब वायुदेव को परिचय लेने को भेजा गया। उनसे भी पूछा गया 'आप कौन हैं?'

उत्तर मिला 'प्रभंजन वायु। संसार में जो भी कुछ है, सबको धारण कर सकता हूँ, उड़ा सकता हूँ।'

उनके सामने भी तृण रखा गया पर सारी शक्ति लगाकर भी उन्होंने उसे न उड़ा पाया। तब विफल-मनोरथ हो वापस आ अपनी असमर्थता प्रकट की। तब देवराज इन्द्र को भेजा गया। इन्द्र जब उनके सम्मुख हुये, तब वे अन्तर्ध्यान हो गये और वहाँ पर आकाश-प्रांगण को अपनी प्रभा से प्रकाशित करती हुई स्त्री-रूपिणी हैमवती उमा प्रादुर्भूत हुईं। देवराज ने उनको वहाँ देखकर उल्लास-भरे वाक्यों से उन महापुरुष का परिचय पूछा। तब हैमवती उमा ने ही उन्हें बताया कि 'यह ब्रह्म हैं। इन्हीं की शक्ति से अर्थात् ब्रह्म-शक्ति से असुर-गण पराजित हुये हैं और उसी से तुम लोग गौरवान्वित हुये हो।'

देवराज इन्द्र ने ही प्रथम उन पुरुषोत्तम को 'ब्रह्म' जाना है। अग्नि, वायु व इन्द्र तीन देवता ही ब्रह्म के समीपवर्ती हुये। अतः ये अन्यान्य देव-गणों से श्रेष्ठ हैं। तथा इन्द्र ने ही सर्व-प्रथम ब्रह्म-शक्ति रूपा हैमवती उमा के वाक्य से ब्रह्म को सर्व-प्रथम जाना, अतः अन्य देवों से वे श्रेष्ठ हुये। इन सब मन्त्रों के आलंकारिक रूप में ब्रह्म के आविर्भाव और तिरोभाव होने का उपदेश जिस प्रकार बिजली की चमक की भाँति पल भर में हो गया, वह उच्च साधक ही अनुभव कर सकते हैं। इस देवता-विषयक उपदेश का नाम आधिदैवत है। इसके पश्चात् उपनिषद् में ब्रह्म-विषयक अध्यात्म या आत्म-तत्त्व-विषयक उपदेश का प्रसंग है। साधक का मन ब्रह्म को ज्ञान का

मातृ-पञ्चकम्

रचयिता : परमहस श्री सच्चिदानन्द तीर्थ स्वामी (भाष्य स्वामीगाल)—

अंग्रेजी टीका व भाष्यकार: श्री के० के० शङ्करन्, बी० ए० । मूल्य रु. ३) ।

प्रस्तुत पुस्तक में 'मातृ-देवो भव' के आय निर्देश का प्रतिपादन करनेवाले संस्कृत पद्यों की अंग्रेजी भाषा में हृदयग्राहिणी शैली में विस्तार से व्याख्या की गई है जिससे पाठक यह भले प्रकार हृदयंगम कर सकते हैं कि आदि-शक्ति की प्रतिनिधि-स्वरूपा अपनी जन्म-दायिनी माता की उपासना से आत्म-कल्याण का मार्ग किस प्रकार प्रशस्त किया जा सकता है। आदि जगद्गुरु भगवत्पाद श्री शंकराचार्य जी का चरित भी उनके चित्र के सहित उक्त तथ्य की पुष्टि में प्रकाशित किया गया है।

गणेश-पञ्चरत्न, शारदाष्टकम, पद्म-रत्नमाला-स्तोत्रं, गुरु-पञ्चकं, शंकर-शारदा-स्तोत्रं और मातृ-पंचकं तथा अन्त में सद्गुरु-मङ्गल-दश-श्लोकी इन सात संस्कृत रचनाओं से युक्त उक्त पुस्तक वास्तव में सभी आस्तिक बधुओं के लिये सग्रहणीय और मननीय पुस्तक है। चार अन्य महात्माओं के सुन्दर चित्रों से यह पुस्तक अलंकृत है। दुर्गा सप्तशती' के निम्न मन्त्र का पाठ सभी जगदम्बा-भक्त किया करते हैं—

या देवी सर्व-भूतेषु मातृ-रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

इसी मन्त्र का रहस्य प्रस्तुत पुस्तक में अंग्रेजी भाषा में विस्तार से स्पष्ट किया गया है। आत्म-कल्याणेच्छु पाठकों को इसे तुरन्त मंगाकर लाभ उठाना चाहिए।

उपयोगी प्रकाशन

शाक्त-प्रमोद	३०)	हिन्दी प्रत्यभिज्ञा हृदय	१०)
काली-कर्पूर स्तव (नया संस्करण)	१)५०	तांत्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि	७)५०
श्री बगला नित्यार्चन (नया संस्करण)	३)	भारतीय सस्कृति व साधना (दो खंड)	१८)५०
क्रम-दीक्षा-पूर्वक पूर्णाभिषेक-पद्धति	३)	वैदिक उपदेश	३)२५
श्री महात्रिपुरसुन्दरी पूजा कल्पः	६)	साधना रहस्य	१५)
माधव ग्रन्थावली	५)	क्या रामचरित मानस तन्त्र है ?	८)
सुलभ ज्योतिष ज्ञान	१२)	कालिका पुराण	३५)
सप्तशती का आध्यात्मिक रहस्य	३)५०	महाकाल सहिता	३०)

पुस्तक प्राप्ति का स्थान—

पं॰ देवीदत्त शुक्ल स्मारक
कल्याण मन्दिर प्रकाशन

आह्वान

मात : दुर्गे ! सिंहवाहिनी, त्रिशूल-धारिणी, वर्म-आवृत सुन्दर शरीर-धारिणी जयदायिनी मात : ! तेरी प्रतीक्षा में भारत है। तेरी उसी मंगलमयी मूर्ति को देखने के लिये उत्सुक। सुन हे मातः ! तू भारत में आविर्भूत हो, प्रकाशमान हो !

मात : दुर्गे। योग शक्ति का विस्तार कर। तेरे प्रिय आर्य संतान हम, हममें लुप्त शिक्षा, चरित्र, मेधा-शक्ति, श्रद्धाभक्ति, तपस्या, ब्रह्मचर्य, सत्यज्ञान का विकास कर जगत् में वितरण कर। हे दुर्गतिनाशिनी जगदम्ब। मनुष्य की सहायता के लिये प्रकाशमान हो।

—श्री अरविन्द

सम्पादक व प्रकाशक : श्री पुण्यशील शर्मा, 'शाक्त-साधना पीठ', प्रयाग—६
: श्री राजनारायण मिश्र, परावाणी प्रेस, प्रयाग—६

चण्डिका

तुही अष्ट सिद्धि नवोनिद्धि रिद्धि वृद्धि
तुही विधि रूप ह्वै कै सारी सृष्टि को करति है ॥
तुही विश्नुरूप धारि पालना करत अंब
विश्व के अशेष दुःख दारुण दरति है ॥
तुही है अनन्त याने धरिकै अनेक रूप
धारा को असह भार तृण सो धरति है ॥
भाखै 'शिवाधार' तेरो चरित न जानो जाय
अखिल भुवन शिव रूप ह्वै हरति है ॥

नए प्रकाशन

आगमोक्त योग-साधना

लेखक : 'कुलज्ञ' स्वामी दिव्यानन्द जी सरस्वती मूल्य २)

श्री स्वामी दिव्यानन्द जी महाराज एक ऐसे ही दिव्य तथा उच्च कोटि के महात्मा हैं, जिनकी पुस्तकों के सहारे यदि मुमुक्षु जन अपना कल्याण करना चाहें, तो पढ़कर व अनुशीलन करके कर सकते हैं। आपकी 'योग साधना' नामक पुस्तक ऐसे ही गम्भीर अध्ययन के बाद लिखी गई है। आपकी लेखन-शैली अध्यात्म विषय—योग जैसे नीरस तत्वों को सरस बना कर समझाना, भाषा-माधुर्य तथा आगम-निगमोक्त सिद्धान्तों और तथ्यों से अनुस्यूत कुण्डलिनं-योग का प्रदर्शन, मुण्डमाला-रहस्य, जप-विधान तथा मन्त्र-जपादि सारे विषय अपनी अनुभूति के परमास्पद हैं। योगाभ्यास का महत्व व उसके लाभ, एवं मोक्ष-स्वरूप को तो आपने इतना स्पष्ट लिखा है कि साधारण-से-साधारण व्यक्ति भी अपना आत्म-लाभ करके जीवन्मुक्त हो सकता है।

मातृ-पञ्चकम्

रचयिताः परमहंस श्री सच्चिदानन्द तीर्थ स्वामी भाष्य (स्वामीगाल)— मूल्य ३)

अंग्रेजी टीकाकार व भाष्यकार : श्री के० के० शङ्करन, बी० ए०।

प्रस्तुत पुस्तक में 'मातृ-देवो भव' के आर्य निर्देश का प्रतिपादन करनेवाले संस्कृत पद्यों की अंग्रेजी भाषा में हृदय-ग्राहिणी शैली में विस्तार से व्याख्या की गई है, जिससे पाठक यह भले प्रकार हृदयंगम कर सकते हैं कि आदि-शक्ति की प्रतिनिधि-स्वरूपा अपनी जन्म-दायिनी माता की उपासना से आत्म-कल्याण का मार्ग किस प्रकार प्रशस्त किया जा सकता है। आदि जगद्गुरु भगवत्पाद श्री शङ्कराचार्य जी का चरित भी उनके चित्र के सहित उक्त तथ्य की पुष्टि में प्रकाशित किया गया है। गणेश-पञ्चरत्न, शारदाष्टकम्, पञ्च-रत्नमाला-स्तोत्र, गुरु-पञ्चकं, शङ्कर-शारदा-स्तोत्र और मातृ-पञ्चक तथा अन्त में सदगुरु-मङ्गल-दश-श्लोकी इन सात संस्कृत रचनाओं से युक्त उक्त पुस्तक वास्तव में सभी आस्तिक बन्धुओं के लिये संग्रहणीय और मननीय पुस्तक है। चार अन्य महात्माओं के सुन्दर चित्रों से यह पुस्तक अलंकृत है। आत्मकल्याणेच्छु पाठकों को इसे तुरन्त मँगाकर लाभ उठाना चाहिये।

पौराणिक नवरात्र-पूजा-पद्धति

लेखक : 'कुलभूषण' पण्डित रमादत्त शुक्ल, एम० ए० मूल्य ३)

आश्विन मास में शारदीय नवरात्र का जो महोत्सव सारे देश में मनाया जाता है, उसका पूजन-विधान वैदिक, पौराणिक एवं तान्त्रिक तीन रूपों में मिलता है। 'वैदिक नवरात्र पूजा पद्धति' नामक पुस्तिका (मूल्य रु० १-५०) के रूप में वैदिक पूजा-विधि तो उपलब्ध है, किन्तु पौराणिक विधान कहीं से प्रकाशित नहीं मिलता। उल्लेखनीय है कि श्री मद्देवीभागवत एवं कालिका पुराणों में उक्त महोत्सव की विधि विशेष रूप से दृष्टि-गत होती है। इन्हीं दोनों पुराणों के आधार पर एक पूजा-पद्धति–'पौराणिक नवरात्र पूजा पद्धति' तैयार की गई है। आज ही अपनी प्रति मंगाकर सुरक्षित कर लें।

पुस्तक प्राप्ति-स्थान

कल्याण-मन्दिर, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६

जागो, ऐ आत्माओ ! जागो ।
शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ है,
अंधकार तिरोहित हो गया है,
ज्योति आविर्भूत हो रही है ।—(ऋग्वेद)

* * * * *

'कौल-कल्पतरु' चण्डी

वर्ष ३२] मार्गशीर्ष-पौष शुक्लाष्टमी २०३१ वि० [संख्या ९-१०

अनुक्रमणिका

१ मातृ-महिमा : श्री भुवनेश्वर सिंह 'भुवन' ९०
२ शाक्त-धर्म : श्री जरिबन्धन लाल ९१
३ तन्त्र-साधना की अनुभूत बातें : पण्डित श्री रमेशचन्द्र शर्मा, राजस्थान ९३
४ आरति : गुप्तावतार बाबा श्री ९६
५ तन्त्र का सन्देश : पूज्य स्वामी श्री दिव्यानन्द जी सरस्वती ९७
६ जगदम्बा-मन्त्र : श्री नाना जोशी ९८
७ मां तारा : पण्डित कपिलनारायण मिश्र, विहार ९७
८ देवी-पुराणोक्त दुर्गा-पूजा-विधिः 'कुलभूषण' पण्डित रमादत्त शुक्ल एम० ए० १००
९ सार्थ श्री काली-स्तव राज : श्री हरिहरानन्द नाथ १०३

शक्ति-तत्व (गताङ्क का शेषांश)

१० शक्ति-तत्व (ध्यान-रहस्य) : ब्रह्मलीन श्री स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती ४८
११ जगत्कारण-निर्णयः 'कवि-भूषण' पण्डित श्री हरि शास्त्री दाधीच ६१
१२ शक्ति-कथा : श्री पूज्य चरण परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी शङ्कर तीथ महाराज ६२
१३ आदि-शक्ति : श्री भुवनेश्वर सिंह, भुवन ६४

मातृ-महिमा

श्री भुवनेश्वर सिंह 'भुवन'

'शूली' ले त्रिशूल, गह 'चक्री' चक्र आगे चलें,
वज्र ले 'पुरन्दर' तुरन्त दौड़ पड़ते ।
जल उठते हैं 'अग्निदेव' 'भुवनेश', चट,
'जलदेवता' हैं स्वयमेव जल भरते ।
पीठ पर उनके सदैव अम्ब रहती है,
'यमराज' रिपुओं के मान-प्राण हरते ।
एक बार 'दुर्गा' को पुकारते सप्रेम जो हैं ,
उनसे सदैव 'काल' रहते हैं डरते ।
गङ्गा पास ही है फिर कूप जो खनाते मूढ़,
भटक रहे हैं 'भुवनेश' भ्रम-जाल में ।
त्याग ध्रुव को वे पीछे दौड़ते हैं संशयों के,
मोहवश ढूँढ़ते रसाल जड़ ताल में ।
चेत तू नादान मन ! व्यर्थ मत हठ ठान,
अन्यथा भरेगा अन्धकार अन्तराल में !
कौन दूसरा है भव-सिन्धु से जो पार करे,
'चण्डी' के बिना न गति और कलिकाल में ॥

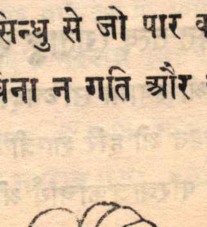

शाक्त-धर्म

श्री जरिबन्धन लाल

शाक्त-धर्म कर्म-प्रधान है। वह निष्काम कर्म का मार्ग प्रदर्शित करता है। इसीनिये उसे वीर-धर्म या वीर-मार्ग भी कहते हैं। शाक्त-सिद्धान्त कर्म-त्याग की शिक्षा नहीं देता, न वह सब कुछ को मिथ्या कहता है। वह तो ईशोपनिषद् के निम्न-लिखित मन्त्र के अनुसार यह उपदेश करता है कि संसार एक कर्म-भूमि है, यहाँ माया और ईर्ष्या-द्वेष का त्याग कर कर्तव्य का पालन करना चाहिये। भयभीत होकर त्यागी बनने की आवश्यकता यहाँ नहीं है।

कुर्व्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ॥

शाक्त-मत यह घोषणा करता है कि जगदम्बा की संतानों को घबराने या खिन्न होने का कुछ भी कारण नहीं है। वह कहता है--हे माता के अमर पुत्रों! भयभीत मत हो, संसार की कोई वस्तु तुम्हें डरा नहीं सकती। सर्वथा जगदम्बा के चरणों में अपने को अर्पण कर दो। अहं-रूपी पशु की बलि चढ़ा दो। तत्पश्चात् निर्भीक होकर स्थिर चित्त से यथारुचि सारे कार्य निर्लिप्त भाव से करो। भुक्ति और मुक्ति दोनों ही तुम्हारे चरणों पर लोटेंगी। कहा है—**श्री सुन्दरी-सेवन-तत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव।**

शाक्त-सिद्धान्त की यह विशेषता है कि वह प्रकृति-धर्मानुगामी है। एक ऐसे बच्चे को देखिये, जिस पर अभी संसार के संस्कार नहीं पड़े हैं—वर्ष दो वर्ष तक वह बच्चा 'मां' 'मां' इसी महामन्त्र का जप करता रहता है। मां के अतिरिक्त और किसी को जानता ही नहीं। माता ही जनन, पालन, शिक्षण, ताड़न आदि सब कुछ करती है। भगवती श्रुति भी कहती है—**मातृ-देवो भव।** सबसे प्रथम और श्रेष्ठ स्थान मां का ही है। मां का स्वरूप स्त्री-रूप ही है। सक्रिय ब्रह्म की (जो प्रकृति या माया से सम्मिलित है) दार्शनिक कल्पना स्त्री-रूप में ही हो सकती है। वास्तव में तो यह परा-शक्ति न स्त्री है, न पुरुष। लिङ्ग की कल्पना तो व्यवहार और उपासना के लिये ही की जाती है।

देवी भागवत में कहा है—'भूमण्डल में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो उसके लिये अदृष्ट हो, ऐसा कोई राजा नहीं है, जो उसका दास न हो; ऐसा कोई शास्त्र नहीं जो उसको अज्ञात हो। अधिक क्यों, यह संसार जिसका आकार है, वह पराशक्ति ही है।'

यह भगवती का दिक्कालातीत स्वरूप है। किन्तु उपासना के लिये साकार-स्वरूप ग्रहण किया जाता है। उपासना का मनुष्य-जीवन में बड़ा प्रभाव पड़ता है। जो जिसकी उपासना करता है, वह वही बन जाता है। यह एक सुनिश्चित सत्य है।

पाठकों से प्रार्थना है कि यदि उन्हें अपना व अपने समाज और अपने देश का कल्याण करना है तो वे वीर-मार्ग की उपासना कर शक्तिमान् बनें। शक्तिमान बन कर ही संसार के सभी भोग प्राप्त किये जा सकते हैं। अभेदत्व की प्राप्ति भी इसी से हो सकती है। स्व-स्वरूप का दर्शन और अखण्ड अद्वैतामृत का पान करते हुये जीवन-मरण के बन्धनों से छूटने का यही उपाय है। यही वाम-मार्ग के नाम से प्रसिद्ध है, शक्ति-अद्वैत-वाद भी इसे कहते हैं। इसका एकमात्र अधिकारी वह है, जो अपने को शिशुवत् बना ले और माता की शरण में पहुँच जाय। मेरु-तन्त्र में 'वाम-मार्ग' का अधिकारी वह बतलाया गया है, जो पर-द्रव्य के लिये अन्धा, पर-स्त्री के लिये नपुंसक और पर-निन्दा के लिये मूकवत् हो। ऐसा जितेन्द्रिय व्यक्ति ही 'वाम-मार्ग' का अधिकारी है। यह मार्ग सुगम नहीं है। ठीक ही कहा है–

वामो मार्गः परम गहनो योगिनामप्यगम्यः।

अन्त में महामाया भगवती परमा शक्ति से यही

प्रार्थना है कि हे माँ !—

सुधा-सिन्धोर्मध्ये सुर-विटपि-वाटी-परिवृते ।
मणिद्वीपे नीपो पवनवति चिन्तामणि-गृहे ।
शिवाकारे मञ्चे परम-शिव-पर्यङ्क-निलयाम् ।।
भजन्ति त्वां धन्याः कति च न चिदानन्द-लहरीम् ।।

सदा तुम्हारा यह स्वरूप आँखो के सामनेर हे, सर्वत्र तुम्हें ही देखूँ । हे माँ, मुझे केवल तुम्हारी आवश्यकता है। तुम्हारी ही इच्छा मेरे जीवन में पूरी हो । तुझमें और मुझमें कुछ भी भेद नही है । माँ, मुझे इन साकार-निराकार के झगड़ों में न पड़ने दे । हे दयामयि, अपना अभय वरद हस्त मेरे मस्तक पर रक्खो और मुझे पुत्र कह कर सान्दवना दो ! मैं सदा यह गान करता हूँ—

न मोक्षस्याकांक्षा भव-विभव-वांछापि च न मे ।
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः ।।
अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै ।
मृणानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः ।।

न तो मुझे मोक्ष की आकांक्षा है, न सांसारिक वैभव की वाञ्छा है, न तो मुझे विज्ञान की अपेक्षा है, न सुख की अभिलाषा । हे शशिमुखी, मैं तुझसे यही प्रार्थना करता हूँ कि प्रतिक्षण तेरा ही नाम जपते हये मेरा सारा जीवन व्यतीत हो ।

दई शक्ति ब्रह्मै भये विश्वकर्ता,
दई शक्ति विष्णु प्रजापाल जानी ।
दई शक्ति शेषे भये भूमि धर्ता,
दई शक्ति रुद्रै प्रलयघात धानी ।।
दई शक्ति चन्द्रै छपाजीति छाई,
दई शक्ति भानै प्रकाशैं भवानी ।
'अनन्नै' भनै देवता शक्ति जांचे,
तिहूँ लोक में एक दाता ,भवानी ।।

सुर मुनि नर गन्धर्व गण, याचक सबै बखानि।
तिहूँ काल तिहुँलोक में, दाता एक भवानि ।।

* * *

तन्त्र-साधना की अनुभूत बातें

पण्डित श्री रमेशचन्द्र शर्मा

जीव के उद्धार का क्रम

यह तो सकल विदित है कि पराम्बा की प्रेरणा से परम शिव ही अपने नाट्य द्वारा स्वयं को संस्कार-वश पाश-बद्ध होकर जीव का रूप धारण करते हैं। श्री महामाया पराम्बा ही उस जीव का उद्धार करने हेतु गुरु-रूप धारण कर शक्ति-पात द्वारा संस्कार (पाश-बद्ध) मुक्त करने हेतु संसार में पदार्पण करती हैं। शक्ति-पात क्या है ? कितने तरह का होता है। जीव भोग क्यों भोगता है ? यह आगे लिखेंगे।

जीव को अपने उद्धार-हेतु श्री सद्गुरु से दीक्षा प्राप्त कर अपने व उत्कट साधना-बल से आत्मोन्नति कर पाश-मुक्त होना पड़ता है। सद्गुरु भी संस्कार-वश, जब भाग्योदय का समय आता है, पूर्व-जन्म की साधना के अनुसार व पूर्व-योग के अनुसार उसी मार्ग के पथ-प्रदर्शन हेतु मिलते हैं।

बचपन से परिवार व अच्छे सत्संग के प्रभाव से अध्यात्म-भावना का अगर उदय हो जाय, तो जो भी पुस्तक मिलती है या जो भी कोई कहता है, उसी को सर्वोपरि इष्ट मानकर व्यक्ति पूजा करता चला जाता है। युवावस्था में साधन-प्रणाली को अच्छी तरह समझ लेने पर भी सही मार्ग-दिग्दर्शन नहीं होता। ऐसी अवस्था में अन्तःकरण सद्गुरु की कल्पना करता है। उसकी यह तरंग इस ब्रह्माण्ड की धार्मिक भावना में हलचल पैदा करती है। उसको समझनेवाले मानवौघ, सिद्धौघ, दिव्यौघ जो सूक्ष्म शरीर द्वारा इस ब्रह्माण्ड में विचरण करते हैं, उसकी भावना को समझते हैं और जैसे एक महान् कलाकार दूसरे कलाकार की भावना का आदर करते हैं और सहयोग करते हैं वैसे ही वे उसका पथ-प्रदर्शन करते हैं। कई बार ये सूक्ष्म शक्तियां, जो अपने मण्डल के प्रचार हेतु इन ब्रह्माण्डों व लोकों में विचरण करती हैं, प्रकट या अप्रकट रूप से पथ-प्रदर्शन हेतु सहायता करती हैं तथा कभी उसको स्वप्न में आकर आदेश देती हैं कि तुम अमुक व्यक्ति से दीक्षा प्राप्त करो। बहुत से लोगों को एक से अधिक के नाम बता देती हैं, उनमें से जो सुविधाजनक हो, उससे दीक्षा ले। परन्तु भगवती अगर आदेश देती हैं या गणेश बटुकादि आदेश देंगे तो अक्सर एक ही व्यक्ति का नाम बतायेंगे या किसी न किसी प्रकार उसकी दीक्षा के लिये सद्गुरु से सम्पर्क करा देंगे। अतः जीव फिर दीक्षा के लिये सद्गुरु के पास जाता है।

बहुत से व्यक्ति गुरु प्राप्त न होने पर शङ्कर को गुरु मान लेते हैं। जहां तक प्रश्न गुरु की क्षमता एवं योग्यता का है, भगवान् शङ्कर को गुरु मानने में कोई आपत्ति नहीं किन्तु यह आध्यात्मिक साधना के लिये ही अनुकूल हो सकता है, सांसारिक प्रयोजनों के लिये नहीं। प्रयोग चाहे मन्त्र का हो या तन्त्र का, यह तकनीकी व व्यावहारिक विषय है। उसकी सफलता के लिये अनुभवी एवं समर्थ मार्ग-दर्शक की आवश्यकता है। वैसे किसी गुह्य साधना के प्रसङ्ग में भौतिक सिद्धियां आड़े आती हैं।

यह स्थूल ब्रह्माण्ड वैखरी वृत्ति का एक विलास रूप है, जो पराम्बा की चित् शक्ति का स्थूल क्रीड़ा विलास रूप है। यहां वैखरी वृत्ति के इस विलास रूप संसार में गुरु और शिष्य का भेद प्रकट रहता है। पश्यन्ती के क्षेत्र में यह द्वित्व लुप्त हो जाता है। मध्यमा क्षेत्र में स्वयं शिव ही वक्ता और श्रोता के—गुरु और शिष्य के रूप में विभक्त होता है। परा में पश्यन्ति का किञ्चित् द्वित्व भी नष्ट हो जाता है। यह भेद की प्रतीति वैखरी में अधिक आभासित होती है और एक ही तत्व स्थान-भेद से भिन्न प्रतीत होता

है। अतः मानना चाहिये कि स्व से भिन्न गुरु का होना भी आवश्यक है । जहां तक गुरु नहीं मिले, साधक को भगवान् शङ्कर को या भगवती को अपने इष्ट गुरु-रूप में मान लेना चाहिये। बशर्ते कर्म पवित्र हो, दृढ़ श्रद्धा व विश्वास हो। शास्त्रीय वचनों के रूप में ऋषियों के आदेश और इस गुह्य यात्रा पर के पड़ावों का वर्णन साधक का मार्ग दर्शन करता रहता है। कालान्तर में नर-देह-धारी गुरु भी खिंचा चला आता है।

साधना और श्रद्धा व्यक्ति को सफलता देती है। गुरु भी व्यक्ति की श्रद्धा व पात्र देखकर ही उसी अनुसार मार्ग बताते हैं और अपने तीव्र शक्तिपात द्वारा व आप स्वयं माई-रूप होकर उस पर अनुग्रह कर इस संसार के पाश से निग्रह कर अपने अनुग्रह में समेट लेते हैं।

सद्गुरु के लक्षण

जिसको देखने से अन्तःस्थल में स्वतः आत्मानन्द अनूभूत हो। ऐसा लगे जैसे कहीं देखा हो। सुन्दर हो, जितेन्द्रिय हो, राग-द्वेषादि से रहित आज्ञा चक्र से सहस्रार पर्यन्त अपनी स्थिति सदैव रखता हो। संशय का निवारण करनेवाला, आगमादि सर्व शास्त्रों का विधान-सहित रहस्य जानता हो-वक वेदान्ती न हो। जो पास में आने पर प्रसन्न कर देता हो। देववत् प्रिय दर्शन हो। यह प्राप्ति अगर प्रथम दर्शन में ही हो तो अति उत्तम व उत्तम साधन के लक्षण होने के शिष्य के लिये होते हैं क्योंकि पूर्व-जन्म में या कहीं देखा, ऐसी स्थिति होने पर यह निश्चय है ही कि यह मेरा पूर्व जन्मों में गुरु रह चुका है। इसलिये उनके पुनर्मिलन पर यह धारा पुनः जाग्रत् होकर शिष्य का शीघ्र उद्धार करती है। कभी-कभी ऐसे समय शरीर में तीव्र कम्पन भी महसूस होता है।

गुरु अगर नजदीक रहता हो या गुरु-सम्पर्क करने में आसानी रहे तो साधना के समय जो भ्रम होते हैं, उनका निवारण जल्द हो जाता है, अन्यथा थोड़ी सी उन्नति होने पर शिष्य अपने को बहुत कुछ समझने लगता है, जिससे उसकी उन्नति का अवरोध होता है।

बहुत से अवधूत मस्त रहते हैं, जो संसार से दूर रहते हैं व पागल जैसे आचरण करते हैं। परन्तु कुछ आधे पके हुये भी इसी मस्ती को प्राप्त करते हैं और लोग उन्हें पूर्ण मानकर उनके पीछे दौड़ते हैं। उनका मैं यहां अन्तर लिखता हूँ।

जो आवेश (जब्ज) या मस्ती में अधिक रहते हैं याने सुरति का लय करते-करते कई साधक अपना होश गवाँ देते हैं। या तो कच्ची अवस्था में अधिक योग से कोई नाड़ी फट जाती है। या प्राण-वायु का अधिक दबाव आज्ञाचक्र से कुछ ही आगे रहता है, जिससे उन्हें गहरा नशा सा रहता है, उसमें उन्हें बोलने व करने का होश नहीं रहता। कोई उन्हें पागल या अवधूत कहने लग जाते हैं परन्तु उनकी मन की स्थिति तो रुकी हुई होती है। वे न तो नीचे उतर सकते हैं और न ऊपर अधिक जा सकते हैं इसलिये एक सांसारिक मनुष्य की स्थिति का अवलोकन अच्छी तरह नहीं कर सकते और न ही सही पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं।

मन के विराम की स्थिति तो सहस्रार से आगे महाविन्दु में ही है। यदि बीच में मन अटक जाता है, तो वह पूर्ण अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकता।

इनके इस जब्ज का दबाव आज्ञा चक्र के ऊपर रोधनी पर ही होता है। इसलिये आंखों में नशा व मस्तिष्क में मस्ती व कम्पन अधिक रहता है। कई बार रोधनी-भेदन के समय मस्तिष्क में गहरी पीड़ा होती है, जैसे सर फट जायेगा। विशेष विवरण तो षट्-चक्र भेदन के विषय में लिखेंगे। इन लोगों की मूर्च्छा-अवस्था भी अधिक रहती है। आज्ञा-चक्र पर अधिक दबाव पड़ने पर शक्ति-पात का प्रभाव अधिकतर आंखों से गहरा होता है। इसलिये इन लोगों के द्वारा दूसरे पर शक्तिपात जल्दी हो जाता है।

इनका प्राण सहस्रार में पहुँचा हुआ होता नहीं है। इसलिये इनकी प्राण-शक्ति पर सोम का प्रभाव कम रहता है और अग्नि व सूर्य का अधिक रहता

है। कारण को इस स्थिति में विन्दु पर ही दबाव अधिक पड़ता व अर्द्ध-चन्द्रादि से न होने पर सोम कम रहता है। मतलब आज्ञा-चक्र पूर्ण नहीं खुलता। अगर कहीं खुल भी जाय तो ऊपर अटक जाते हैं। ऐसे साधक को आवेश या जब्ज हमेशा रहता है। अग्नि प्रधान होने से इनके सामने बैठनेवाले व्यक्ति को शक्ति-पात के समय ऐसा लगेगा, जैसे मैं किसी गर्म जलती हुई आग के सामने बैठा हूँ। इनसे निकलनेवाली शक्ति-पात की धारायें गर्म होती हैं। इसलिये सामनेवाले व्यक्ति को ये लोग बहुत जल्दी ही जब्ज वाली स्थिति में पहुँचा देते हैं परन्तु ये अपने से आगे नहीं बढ़ा सकते हैं। जबकि पूर्ण सिद्ध पुरुष के सम्पर्क में आने पर ऐसा लगेगा कि जैसे मैंने कुछ पाया है। किसी कूलर के सामने बैठा है और आहलादित हो रहा है। इसलिये लोग को ऐसे मस्तों से बचना चाहिये। ये शिष्य का अर्थों भी कर सकते हैं और अनर्थ भी, कारण कि इनको खुद होश नहीं है और न ही पूर्ण पहुँचे हुये होते हैं जो अपने से ऊपर किसी को उठा सकें। इसलिये, व्यक्ति अपने प्राण को नीचे से ऊपर पूर्ण रूप से ले जा सकता है व उतार सकता है व कुल-मार्ग का पूर्ण ज्ञाता, विद्वान् व तपस्वी हो, ऐसे गुरु से दीक्षा लेनी चाहिये। स्त्री भी गुरु-रूप में कुलमार्ग में प्रशस्त है। अगस्त्य ऋषि ने हयग्रीव के कहने व उपदेश देने पर अपनी स्त्री लोपामुद्रा से दीक्षा ग्रहण की थी।

शिष्य को गुरु के प्रति अति प्रीति में अनुभव कम होते हैं क्योंकि शिष्य पर मल अधिक रहता है। अधिकतर गुरु ही शिष्य को पहचानता है कि अमुक आत्मा कौन से लोक से आयी है एवं भावी संस्कार क्या है। जैसे कि रामकृष्ण परमहंस को आत्मानन्द विवेकानन्द को देखते ही हुआ था।

क्रोधी, रागी, विषयानन्दी, घमण्डी, रोगी, कुष्ठी, झूठे प्रपंच से अपना जाल फैलाकर पैसा ठगनेवाले दम्भी गुरुओं से सावधान होकर दूर रहना ही श्रेयस्कर रहेगा। अगर पूर्ण गुरु हो, वहां दोष ढूढ़ना (शारीरिक) ठीक नहीं। भक्त नामदेव के गुरु भी कोढ़ी थे व अष्टवक्राचार्य भी शारीरिक बनावट में ऐसे ही कुछ थे। यह तो अपना अपना प्रारब्ध है।

सद्-शिष्य के लक्षण

दीक्षा-विधि के पहिले शिष्य की परीक्षा लेना अनिवार्य है क्योंकि किसी व्यक्ति को किस स्थिति में रखा जाय, अधिकारी उसको योग्यता से मूल्यांकन करके ही करता है। इसी तरह यहाँ पर भी पात्र-अपात्र का ध्यान रखकर ही यह काम करना पड़ता है। पूर्वकाल में ऋषि लोग कठिन परीक्षा लेते थे परन्तु वह समय तो नहीं है। फिर भी कुछ न कुछ तरीके से जांचना जवश्य पड़ता है।

जो पुरुष आस्तिक हो, गुण एवं शील आदि लक्षणों से युक्त हो, सुन्दर स्वस्थ, शुद्धि चित्तवाला हो, गम्भीर व उदार चित्त वाला हो। पाप से भय रखता हो, साधु-सज्जन के अनुकूल वर्तता हो, जो विश्वासी हो, संप्रदाय को गुप्त रख सकता हो, वीर हो, तपस्या में प्रमाद-रहित होकर लगा रहता हो। जो गुरु-सेवा में प्रीति रखता हो। गुरु आज्ञा का पालन करता हो। जाति, धन आदि का गर्व न करता हो। उसके संस्कार को देखने से आत्मानन्द हो, उसके देखने पर मन रोमांचित होता हो। उसके आने के पहिले शुभ लक्षण हुये हों, शुभ स्वप्न हुये हों व शुभ संकेत हों, स्वर-योग व ज्योतिष आदि से उससे योगायोग को जांच कर पूर्ण विश्वास होने पर उसी अनुसार दीक्षा दी जा सकती है।

परन्तु इस घोर कलि-काल में लोग किसी संप्रदाय की उन्नति देखना नहीं चाहते। कपटी शिष्य भी अच्छे शिष्य के लक्षण बड़ी सावधानी से दर्शाते हैं। फिर संप्रदाय आदि को बदनाम करते हैं तथा संप्रदाय को राजनीति आदि की तरफ मोड़ कर धर्म को अस्ताचल की ओर ले जाते हैं। एक सद्गुरु ऐसों को फौरन पहिचानता है।

जिस शिष्य को देखते ही मन के अन्तः करण में प्रीति महसूस हो। जिसके ऊपर कांति नजर

आती हो, जिसके ऊपर गौर करने से उसका तेज वैसा का वैसा रहता हो। अन्तः करण शुद्ध नजर आता हो, जिसके शरीर के किसी भाग को हाथ लगाने पर हल्का महसूस हो। ये अच्छे साधक के लक्षण हैं।

असद्-शिष्य के लक्षण

जिसको देखते ही घृणा हो। ऐसा लगता हो, जैसे हजारों मन का मैला लेकर आया हो। चित्त एकदम उदास हो जाय। गोरा व सुन्दर शिष्य भी हो, उसके ऊपर दृष्टि पड़ने पर ऐसा लगे कि इसका चेहरा बिलकुल फीका है या यह मुर्दा खड़ा है। या कोरा चित्र सा नजर आता है, या धुंधला सा दृश्य दिखे, तो उस शिष्य की उपेक्षा करे। परन्तु ऐसा शिष्य भी अगर बार-बार संपर्क रखता हो, तो वह अपनी श्रद्धा के कारण आपसे शक्ति ग्रहण करके शनैः शनैः शुद्ध होकर पवित्र होता जायेगा। अगर उसमें उन्नति दीखे, तो फिर से उसके योगा-योग देखकर उसी अनुसार दीक्षा दे दी जाय क्यों कि एकदम उपेक्षा करना भी ठीक नहीं है क्योंकि किसी-न-किसी रूप में उस पर भगवती का अनुग्रह हुआ है, जिससे उसको दीक्षा के लिये प्रेरणा मिली है। यह सब माई की सेवा मानकर गुरु उस पर अनुग्रह कर दीक्षा प्रदान करे। ह्रीं श्रीरस्तु ॥

* * *

आरती

गुप्तावतार बाबा श्री

त्रिपुरसुन्दरी मा, जय षोडशि विद्या मा,
जगकारिणि-पालनि, परब्रह्म, सनातनि मा,
त्रिपुरसुन्दरी मा, त्रिपुरसुन्दरी मा, जय षोडशि विद्या मा —जय० ॥१॥
कामाकर्षणि पडवे, बुद्धयाकर्षणि मा
बीजी नित्या बीजे, अमृतवर्षिणि मा—त्रिपुरसुन्दरी मा, जय० ॥२॥
अहंकार आकर्षिणि, त्रीजी नित्यात्मा
त्रीजे पूजन करता, त्रीजो पद्धति मा—त्रिपुर सुन्दरी मा—जय० ॥३॥
शब्दाकर्षिणि चौथे गणाय चतुर्थी मा
चन्द्रकला कमिनीया, पदपरदायिनि मा-त्रिपुर.—जय. सुन्दरी मा ॥४॥
रूपाकर्षिणि पंचमि, जग संचालिनि मा
दिव्य सुरासुर मानव, जन-मन-रंजिनि मा—त्रिपुर. सुन्दरी—जय. ॥५॥

तन्त्र का सन्देश

पूज्य श्री स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती

तन्त्र (आगम) शास्त्र में दश महाविद्याओं का वर्णन करते हुये कहा है—

तारा देवी नील-रूपा बगला कूर्म-मूर्तिका ।
धूमावती वराह स्यात् छिन्नमस्ता नृसिंहिका ॥
भुवनेश्वरी वामन स्यात् मातङ्गी राम-मूर्तिका ।
त्रिपुरा जामदग्न्य स्यात् बलभद्रस्तु भैरवी ॥
महालक्ष्मी भवेत् बुद्धा दुर्गा स्यात् कल्कि-रूपिणी ।
स्वयं भगवती काली कृष्ण-मूर्त्ति समुद्भवा ॥

अर्थात् भगवान विष्णु के जो दस अवतार हुए हैं, वे वास्तव में दस महाविद्याओं के ही अवतार हैं जैसा कि उपर्युक्त श्लोक में स्पष्ट है ।

तन्त्रोक्त शाक्त-साधना में संसार को वैसा ही स्वीकार किया गया है, जैसा कि वह है और न कि जैसा वह होना चाहिये । मनुष्य भी अपने प्रकृत रूप में स्वीकार किया गया है तथा उसके प्रत्येक अङ्ग का अपना महत्व है ।

तन्त्र-शास्त्र में मनुष्य की उत्पत्ति स्थूल व सूक्ष्म दोनों तत्वों से मानी गई है—स्थूल पृथ्वी और सूक्ष्म आकाश । दूसरे शब्दों में यों कहिये कि शक्ति और शिव व पुरुष और स्त्री ! भगवान् शङ्कराचार्य ने भी सौन्दर्य-लहरी में कहा है—'शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तुँ प्रभवितुम्' अर्थात् भगवान् शङ्कर यदि अपनी शक्ति के साथ होते हैं, तो संसार की उत्पत्ति, स्थिति और लय करने में समर्थ होते हैं, अकेले वे कुछ भी नहीं कर सकते । और भी कहा है—

शक्ति बिना महेशानि सदाहं शव-रूपकः ।
शक्ति-युक्तो सदा देवि, शिवोऽहं सर्व-कामदः ॥

अर्थात् शिव कहते हैं कि हे पार्वती ! बिना शक्ति के मैं सदा शव (मुर्दे) के समान हूं और शक्ति के सहित होकर ही मैं सब कामनाओं का देनेवाला हूं ।

केवल परलोक और परमात्मा की भावना को तन्त्र स्वीकार नहीं करता है । जीवन-यापन करते हुए जीवन-मुक्ति का आनन्द प्राप्त करना ही मानव मात्र का कर्त्तव्य है । भुक्ति और मुक्ति दोनों प्राप्त करना ही तन्त्र-साधना का ध्येय है । 'श्री सुन्दरी-शतक' में कहा है—

यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षः,
यत्रास्ति मोक्षः न च तत्र भोगः ।
श्री सुन्दरी-सेवन-तत्पराणाम्,
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ॥

अर्थात् भगवान् शङ्कर कहते हैं कि हे पार्वती ! वेदों के अनुसार भोग चाहनेवाले को मोक्ष नहीं मिलता और मोक्ष की इच्छा रखनेवाले को भोग नहीं मिलते । परन्तु कलियुग में जो तेरी उपासना आराधना करेगा, उसको भोग और मोक्ष दोनों साथ-साथ मिल सकते हैं ।

अतः इस मार्ग (शक्ति-उपासना) में किसी भी वस्तु का पूर्णतया त्याग व ग्रहण स्वीकार नहीं किया गया है । प्रत्येक वस्तु सविधि ग्रहण और अविधि त्याज्य समझी जाती है ।

मनुष्य अपनी अपूर्णता व असफलताओं के साथ स्वीकार किया जाता है । तन्त्र-साधना मानव को अपने दुर्गुणों का निराकरण करते हुए ही उसको ऊपर उठाने का दावा करती है ।

तन्त्रों के अनुसार सात्विक, राजसिक व तामसिक-किसी भी प्रकृति का मनुष्य क्यों न हो, उसको अपने अधिकार-भेद से साधना करने पर सफलता प्राप्त हो सकती है । उपर्युक्त दस महाविद्याओं में से किसी भी एक की साधना करने से सबकी साधना हो जाती है ।

शक्ति की साधना गुरु-गम्य है । अधिकार-भेद से शक्ति-साधना के तीन भाव कहे गये हैं—पशु भाव, वीर भाव और दिव्य भाव । इस सम्बन्ध में मेरी पुस्तक 'यत्र तत्र सर्वत्र' एवं 'आगमोक्त योग साधना' पठनीय है । 'यत्र तत्र सर्वत्र' तो सन् १९७२ में प्रकाशित हो चुकी है और 'योग-साधना' इसी मास छप कर प्रकाशित हुई है । आशा है कि इन दोनों पुस्तकों को 'चण्डी'—कार्यालय से मँगाकर जिज्ञासु पाठक तन्त्र के वास्तविक सन्देश को हृदयङ्गम करने का प्रयास करेंगे ।

जगदम्ब-मन्त्र

(भजन)

श्री नाना जोशी

जगदम्ब मन्त्र मुख से बोलते चलें ।
जीवन मरण के फेरे मिटाते चलें ॥
लोग कहते हैं मां छवि देती नहीं ।
स्वार्थ में पड़े हम, व्याकुलता से प्रार्थना करते नहीं ॥
निःस्वार्थ भाव से प्रार्थना करते चलें ॥
जीवन मरण के० ॥१॥

लोग कहते हैं क्षणभंगुर का पिण्ड छुटता नहीं ।
हम चिन्मय रूप का ध्यान करते नहीं ॥
सत्-चितानन्द रूप का ध्यान करते चलें ॥
जीवन मरण के० ॥२॥
लोग कहते हैं निष्काम भक्ति होती नहीं ।
हम सकाम कर्म छोड़ते नहीं ॥
उपासना से योग-भक्ती करते चलें ॥
जीवन मरण के० ॥३॥

मां तारा

पण्डित कपिलनारायण मिश्र

जय मां गंगे, जय मां तारा, दयामयि तू दया करो।
दयामयि तू दया करो; कृपामयी तू कृपा करो ॥१॥
तू अघनाशिनी पाप विमोचिनी, जय मां भगवति हे तारा।
दैत्यविदारिणी सत उद्धारिणी, आओ आओ मां तारा ॥२॥
अशुभविनाशिनी त्रिभुवनतारिणी, रिपुकुल नाशिनि तू सारा ॥
करुणामयि करुणा करती तू, दयासिन्धु की दे धारा ॥३॥
स्वच्छ शान्त निर्मल आकाश सा, है विशाल हिय मां तेरा।
द्वैतभाव जब तक है माता तू मैया सुत मैं तेरा ॥४॥
पावनतम नाता मिट जायेगा, द्वैतभाव जो नहीं रहे।
कहां मिलेगा मातृ प्रेम तब, कहां रहेंगे सुत सब हे ॥५॥
अभयदायिनी, भ्रान्तिनिवारिणी, जय मां तारा जय गंगे।
शरणागत मैं, सुतवत्सल तू; वरदायिनी वांछित वर दे ॥६॥
वांछित वर दे मां, भक्ति प्रेम दे, ना बिसरे छवि तव, हिय से।
नहिं भेद रहे; अद्वैत रहे, अज्ञान रहे, नहिं भ्रान्ति रहे ॥७॥

* * *

कृपादृष्टि चाहू

संकल्प औ विकल्प से, है भरा मम चित्त अभी।
भ्रान्तिवश अल्पज्ञ हूँ; अल्पत्व में हूँ मैं सुखी ॥१॥
मैं हूँ वही, नहीं भिन्न उससे, अन्यथा मानें नहीं।
कर्तृत्वशक्ति से रहित, असमर्थ अज्ञानी अभी ॥२॥
हूँ तत्पर मन से सदा, मैं प्राण पुष्प ले प्रेम से।
रखें कृपा की दृष्टि बस, चाहूँ यही मैं आप से ॥३॥

देवी-पुराणोक्त दुर्गा-पूजा-विधि

[कल्पारम्भ-विधि कालिका-पुराणोक्त ※ के समान ।]

बोधन—सायंकाल बिल्व-तरु के पास जाकर आचमन कर गन्धादि से पूजन कर स्वस्तिवाचन करे। '**ॐ कर्तव्येऽस्मिन श्री भगवद्दुर्गा-देवी-बोधन-कर्मणि ॐ पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु**' यह मन्त्र तीन बार कहे। '**स्वस्ति ऋद्धिश्च**' का पाठ करे। तब स्वस्ति-सूक्त '**सूर्यः सोम**' इत्यादि का पाठ कर सङ्कल्प करे। यथा—

विष्णुरों तत् सदद्याश्विने मासि शुक्ले पक्षे षष्ठ्यां तिथौ अमुक गोत्रः श्री अमुक देवशर्मा श्री दुर्गा-प्रीति-कामः वार्षिक-शरत्-कालीन दुर्गा-महापूजाङ्गभूत बिल्व-वृक्षाधिकरणक श्रीभगवद्-दुर्गा-देवी बोधन-कर्माहं करिष्ये।

फिर सङ्कल्प-सूक्त पढ़कर पाप-मुक्त होने के लिये निम्न मन्त्र पढ़े—

ॐ देवि त्वं प्राकृतं चित्तं पापाक्रान्तमभून्मम।
तन्निःसारय चित्तं मे पापं हुं फट् च ते नमः॥
ॐ सूर्यः सोमो यमः कालो महाभूतानि पञ्च वै।
एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नव-साक्षिणः॥

तब सामान्यार्घ्य-स्थापनादि सामान्य-पूजा-विधान के अनुसार न्यासादिक कर पञ्चगव्य शोधनपूर्वक घट स्थापित कर गणेशादि पञ्च देवों, आदित्यादि नवग्रहों, दशावतारों, गङ्गा-यमुना और मनसा-लक्ष्मी का पूजन कर हाथ में सिद्धार्थ लेकर निम्न मन्त्र से विघ्नोत्सारण करे—

ॐ वेतालाश्च पिशाचाश्च राक्षसाश्च सरीसृपाः।
अपसर्पन्तु ते सर्वे ये चान्ये विघ्न-कारकाः॥
विनायका विघ्न-करा महोग्रा यज्ञ-द्विषो ये पिशिताशनाश्च।
सिद्धार्थकैर्वज्र-समान-कल्पैर्मया निरस्ता विदिशः प्रयान्तु॥

यह पढ़कर सिद्धार्थ बिखरा दे। तदनन्तर '**ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः**' से कराङ्गन्यासादि कर '**ह्रीं**' वीज से-प्राणायाम कर '**जटा जूट०**' इत्यादि से देवी का ध्यान कर '**ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा ह्रीं दुर्गायै नमः**' से षोडशोपचार पूजन कर '**सर्व-मङ्गल०**' इत्यादि से प्रणाम करे।

फिर '**ॐ बिल्व-वृक्षाय नमः**' से पूजा कर माष-भक्त बलि-चतुष्टय सजाकर '**एते गन्ध पुष्पे ॐ क्षेत्र-पालादिभ्यो नमः**' से आवाहन पूजन कर '**एष माष-भक्त-बलिः ॐ क्षेत्रपालादयः सर्वे सर्व-शान्ति-फल-प्रदाः। पूजा-विघ्न-बिनाशाय मम गृह्णन्त्विमं बलिं॥ ॐ क्षेत्रपालादिभ्यो नमः।**' **से क्षेत्रपालादि को बलि प्रदान करे।**

इसी प्रकार भूतों को बलि निम्न मन्त्र से प्रदान करे—

'**ॐ भूत-दैत्य-पिशाचाश्च गन्धर्वा राक्षसां गणाः। सिद्धिं कुर्वन्तु ते सर्वे मम गृह्णन्त्विमं बलिं। एष माष-भक्त-बलिः ॐ भूतेभ्यो नमः।**'

इसी प्रकार डाकिनी आदि से निम्न मन्त्र से बलि प्रदान करे—

ॐ डाकिनी योगिनी चैव मातरो देव-योनयः।
नाना-रूप-धरा नित्यं मम गृह्णन्त्विमं बलिं॥

※ कालका-पुराणोक्त विधि हेतु कृपया 'पौराणिक नवरात्र पूजा पद्धति' मूल्य दो रुपये देखें।

एष माष-भक्त-बलिः ॐ डाकिन्यादिभ्यो नमः।

इसी प्रकार आदित्यादि को निम्न मन्त्र से बलि प्रदान करे—

आदित्यादि-ग्रहा ये च कूष्माण्डा राक्षसाश्च ये।
इन्द्राद्याश्चैव दिक्पाला मम गृहणन्त्विमं बलिं॥
एष माष-भक्त-बलिः ॐ आदित्यादिभ्यो नमः।

तब हाथ जोड़कर 'ऐं रावणस्य बधार्थाय' इत्यादि पढ़कर निम्न मन्त्र पढ़े—

तस्मात्तिष्ठ महाभागे यावत् पूजां करोम्यहम्।
मूले समागते शुक्ल-सप्तम्यामागमिष्यसि॥
देवि चण्डात्मिके चण्डि चण्ड-विग्रह-कारिणि।
बिल्व-शाखां समाश्रित्य तिष्ठ देवि यथा-सुखं॥

आमन्त्रण-अधिवास—सभी कर्म कालिका-पुराणोक्त के समान। केवल अधिवास के पहले निम्न मन्त्र कों पाठ का विशेष विधान मिलता है—

ॐ अद्य प्राप्तासि देवि त्वं नमस्ते शङ्कर-प्रिये।
दुर्गे देवि समुत्तिष्ठ अहं त्वामधिवासये॥

सप्तमी-कृत्य—पहले आचमन कर गन्धादि-पूजा करे। फिर स्वस्तिवाचन कर सङ्कल्प करे—विष्णुर तत् सदद्याश्विने-मासि कन्या-राशिस्थे भास्करे शुक्ले पक्षे सप्तम्यां तिथावारभ्य महा-नवमीं यावत अमुक-गोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा श्री दुर्गा-प्रीति-कामः यथोपकल्पितोपहारै देवी-पुराणोक्त विधिना सप्तम्यष्टमी-सन्धि महा-नवमी काल-विहित रम्भादि-नव-पत्रिका-स्नान-प्रवेश-मृन्मय श्री दुर्गा-प्रवेश महा-स्नान गणपत्यादि नाना-देवता पूजा-पूर्वक श्री दुर्गा देवी-पूजन बलिदानादि कर्माहं करिष्ये।

फिर बिल्व-तरु के पास जाकर उसकी पूजा कर 'ॐ बिल्व-वृक्ष महाभाग' इत्यादि से कालिकापुराणोक्त विधि से शाखाच्छेदनादि नवपत्रिका स्नानान्त कर्म करे। तैल-हरिद्राम्र-क्षण में विशेष मन्त्र—

ॐ नाना-रूप-धरे देवि दिव्य-वस्त्रावगुण्ठिते।
तवालेपन-मात्रेण सर्व-पापं प्रणश्यति॥

तण्डुल-चूर्ण से दर्पण का मार्जन निम्न मन्त्र से करे—

ॐ उद्वर्तयामि देवि त्वां मृन्मये श्रीफलेऽपि च।
स्थिरात्यन्तं हि नो भूत्वा गृहे काम-प्रदा भव॥

स्नान में स्वर्णोदक से—

ॐ पृथिव्यां स्वर्ण-रूपेण देवास्तिष्ठन्ति वै सदा।
सर्व-दोष-विनाशार्थं स्नापयामि महेश्वरीं॥

रजत-जल से—

ॐ अम्बिके त्वं महाभागे शारदे शत्रु-नाशिनि।
स्नानेनानेन देवि त्वं वरदा भव सुव्रते॥

सामान्य जल से—

ॐ या आपः सर्व-भूतानां प्राणिनां सिद्धि-हेतवे।
पावनी सर्व-भूतानां ताभिस्त्वां स्नापयाम्यहं॥

इस प्रकार स्नान कराकर भूतादि को माषभक्त बलि प्रदान करे। यथा—'ॐ भूतेभ्यो नमः, ॐ घोर-

रूपेभ्यः, घोरतरेभ्यः, सिद्धेभ्यः, साध्यादिभ्यो भूतेभ्यो नमः' से आवाहन कर **माष-भक्त बलि दे।**

तब प्रतिमा के आसन को पकड़कर **'ॐ चण्डिके चल चल'** से प्रतिमा को पीठ के ऊपर स्थापित करे। फिर सामान्य पूजा विधि के अनुसार सामान्यार्घ्य स्थापन, द्वार-देवता-पूजादि से पीठन्यास तक के कर्म कर **'ॐ ह्रां ह्रीं-हूँ फट्'** से दिव्य दृष्टि द्वारा दोषों का अपसारण करे।

फिर ऋष्यादि न्यास, घट-स्थापनादि से षोडशोपचार पूजन तक कर शिव, लक्ष्मी, सरस्वती और कार्तिकेय की षोडशोपचार-पूजा करे। तब सिंह की पूजा कर निम्न मन्त्र से उसे प्रणाम करे–

ॐ सिंह त्वं सर्व-जन्तूनामधियोऽसि महाबलः।
पार्वती-वाहन श्रीमन् वरं देहि नमोऽस्तु ते॥

तदनन्तर सर्प, मूषिक, मयूर, महिषासुर, जया और विजया की पूजा कर नवपत्रिका की पूजा करे। तब आवरण-पूजा कर दिक्पालों की पूजा करे। फिर बलिदान कर देवी को पुष्पांजलि-त्रय देकर मूलमन्त्र का यथा शक्ति जपकर **'गुह्याति०'** से जप-समर्पण कर नीराजन करे। तब कल्पारम्भ-घट और बोधन-घट में देवी की पूजा करे। किसी किसी मत से स्वशाखोक्त विधि से वह्नि-स्थापन कर साज्य बिल्व पत्रों से अष्टोत्तरशत आहुति मूल-मन्त्र से देने का विधान है।

महाष्टमी-कृत्य—सर्व कालिका पुराण के समान। विशेष यह है कि आवरण-पूजा के अन्त में देश-वासिनी की पूजा करे। यथा––ॐ **ह्रीं पूतिवासिन्यै नमः, विमलायै, महागौर्यै, काम-दायिन्यै, व्रजेश्वर्यै, वागीश्वर्यै, किरातरूपिण्यै, सर्व-मङ्गलायै,** कात्यायन्यै, कालरात्र्यै, वैष्णव्यै, दुर्गायै, **महाकाल्यै, वर्गभीमायै, योगाद्यायै, उत्तरवाहिन्यै, त्रिपुरायै, सर्व-मङ्गलायै'** इनमें से प्रत्येक देवी का आवाहन कर पूजन करे। तत्र पूर्ववत् होम करे।

सन्धि-पूजा—सामान्य न्यासादिक समाप्त कर **'ॐ काली करालवदना'** इत्यादि से चामुण्डा का ध्यानकर **'ॐ क्रीं ह्रीं चामुण्डा-रूपायै दुर्गायै नमः'** से पूजनकर दीपमाला तैजसाधार भोज्यादिक पूर्ववत् निवेदन करे।

महानवमी-पूजा—महाष्टमीवत् सब कृत्यकर होम समाप्त कर कालिका पुराणोक्त विधि से कुमारी पूजाकर दक्षिणा दे—**'अद्येत्यादि श्री दुर्गा-प्रीति-कामनया दुर्गा-पूजा कर्मणः साङ्गतार्थं दक्षिणामिदं यत्किञ्चित् काञ्चन-मूल्यं वह्नि-दैवतं श्रीभगवद्दुर्गायै तुभ्यमहं सम्प्रददे।'** तब अच्छिद्रावधारण करे।

विजयादशमी-कृत्य कालिका पुराण के समान। विसर्जन प्रार्थना-मन्त्र—

ॐ यन्मयोपहृतं किञ्चित् वस्त्र-गन्धानुलेपनं।
तत् सर्वमुपभुक्त्वा त्वं गच्छ देवि यथासुखं॥
राज्यं शून्यं गृहं शून्यं सर्व-शून्यं दरिद्रता।
त्वामृते भगवत्यम्ब किं करोमि वदस्व तत्॥

तब दर्पण में प्रतिबिम्बिता देवी को स्पर्श कर यह मन्त्र पढ़े––

ॐ दुर्गे देवि जगन्मातः स्वस्थानं गच्छ पूजिते।
प्रसीद भगवत्यम्ब त्राहि मां भव-सागरात्॥
यथाशक्त्या कृता पूजा समस्ता शङ्कर-प्रिये।
गच्छन्तु देवताः सर्वा दत्वा तु वांछितं वरं॥
कैलास-शिखरे रम्ये संस्थिता भव सन्निधौ।
पूजितासि मया भक्त्या नवदुर्गे सुरार्चिते॥
तां प्रगृह्य वरं दत्वा कुरु क्रीडां यथा सुखं।

इसके बाद शान्त्याशीर्वाद करे।

साथ

श्री काली-कस्तूरी स्तवराज

श्री हरिहरानन्द नाथ (स्व० पण्डित-प्रवर श्री हरिशास्त्र दाधीच, जयपुर)

(श्रावण-भाद्रपदांक पृष्ठ ४२ के आगे)

दंष्ट्रा दीप्ति-करालिके नर-हसन्मुण्डावली-मालिके !
वाम-श्रोत्र-गतेन शीर्ष-विधुनाऽनङ्ग-द्विषा दर्भितम्
त्वद्बीजं जपतां तथा प्रणमतां त्वत्पाद-पद्मद्वयं
सर्वे शत्रु-गणाः प्रयान्ति न चिराद्वैवस्वतं पट्टनम् ॥१०॥

हे डाढ़ों की चमक से कराल रूपवाली और हँसते हुये नरमुण्डों की माला धारण करनेवाली कालि ! उक्त आपके बीज मन्त्रों को दीर्घ ऊकार से मिले हुये अनुस्वार सहित हकार से अर्थात् हूँ बीज से पुटित कर जप करते हुये आपके चरण-कमलों को प्रणाम करनेवाले साधकों के सभी शत्रुगण शीघ्र ही यमराज के नगर को पहुँच जाते हैं। अर्थात् हूँ से पुटित क्रीं बीज जपने से साधकों के विरोध के लिये कोई शेष नहीं रहता है। हूँ बीज में संहार-सामर्थ्य है, ऐसा तन्त्रशास्त्र में कहा गया है। (यहाँ तक एकाक्षर बीज के प्रयोग भिन्न मन्त्र-रूप में बताये गये हैं।)।

बीजैः सप्तभिरञ्चिता त्वदभिधा-सम्बुद्धिराद्यन्तयोः
विद्यानां ठ-युगान्विता किल महाराज्ञीत्यभिख्यायते।
अस्याः सिद्धि-भृतो जना भव-भयाज्जीवद्विमुक्ता इव
वैकुण्ठन्ति च पद्मजन्ति गिरिजे! सर्वज्ञतां यान्ति च ॥११॥

हे गिरिजे अम्बिके कालि ! आपके नाम की सम्बुद्धि (सम्बोधन) का प्रथम वचन (दक्षिणे कालिके) सात बीजों से आदि और अन्त में संयुक्त हुआ तथा स्वाहा-पद-संयुक्त हुआ विद्याओं की राज्ञी इस नाम से प्रख्यात है—क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूँ हूँ दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूँ स्वाहा यह मन्त्र हुआ। इसे विद्याराज्ञी काली मन्त्र कहते हैं। इसके साधक सिद्धि प्राप्त हुये लोग संसार के भय से मुक्त हो जाते हैं। वे जीवनमुक्त हुये परमहंसों की तरह कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थ होते हैं। विष्णुवत् लीला करते हैं। कभी ब्रह्मा की तरह सृजन करते हैं, अद्भुत रचना कर दिखाते हैं तो कभी सर्वज्ञता का परिचय देते हुये त्रिकाल को भूत वर्तमान भविष्य की अदृष्ट बातें बता देते हैं। ऐसे वे विष्णु विरंचि और शिव के प्रतीक बनते हैं।

पञ्चार्णा च षडक्षरी सुरुचिरा सप्ताक्षराष्टाक्षरी,
नन्दार्णा च दशाक्षरी मदन-जिद्वर्णाऽपि विद्या परा।

मातस्त्वां निशि पञ्चमैः प्रयजतां नृणां जपं कुर्वतां,
सर्वेषामपि काम-कल्प-लतिकाः सिद्ध्यन्ति सिद्धान्ततः ॥१२॥

हे मातः ! हे अम्बिके ! पञ्चाक्षरी विद्या और आपकी सुतरां रुचिर षडक्षरी विद्या सर्व सात वर्णवाली, अष्ट वर्ण, ९ वर्ण की व दशाक्षरा तथा एकादश वर्णवाली उत्कृष्ट विद्या है। ये सभी पंचाक्षरादि विद्याएँ रात्रि में पंचमकारों के द्वारा आपके यजन-पूजन करनेवालों तथा आपकी उक्त विद्याओं का जप करनेवालों के लिये सिद्धान्ततः निश्चय ही काम-कल्पलतायें सिद्ध होती हैं। अर्थात् साधक इनमें से एक भी विद्या के द्वारा अपने सभी मनोरथ पूर्ण कर जगत् में यशस्वी विद्वान् प्रख्यात धनी और कविता-सम्पन्न बन सकता है।

क्रीं क्रीं क्रीं स्वाहा यह पंचाक्षरी है। ह्रीं क्रीं मे स्वाहा यह दूसरी पंचाक्षरी है। क्रीं हूँ ह्रीं स्वाहा यह तीसरी पंचाक्षरी है। क्रीं हूं ह्रीं हूं फट् यह चौथी पंचाक्षरी है क्रीं क्रीं क्रीं फट् स्वाहा यह षडक्षरी है। क्रीं कालिके स्वाहा यह दूसरी और क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं यह तीसरी षडक्षरी है। ॐ ह्रीं क्रीं मे स्वाहा यह चौथी षडक्षरी है। क्रीं कालिकायै स्वाहा यह सप्ताक्षरी है। क्रीं हूं ह्रीं हुँ फट् स्वाहा यह दूसरी सप्ताक्षरी है। यही स्वाहा छोड़कर नमः पद वाली तीसरी सप्ताक्षरी होती है। पर यह नमोन्ता विद्या नहीं, मन्त्र ही माना जायेगा। ऐं हूं ॐ ऐं ह्रीं फट् स्वाहा यह अष्टाक्षरी है। क्रीं हूं ह्रीं क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा यह द्वितीय अष्टाक्षरी है। क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं स्वाहा यह तृतीय अष्टाक्षरी है। ऐं ह्रीं हूं क्रीं कालिके स्वाहा यह नवाक्षरी है। क्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा यह दूसरी नवाक्षरी है। ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कलिके हूं हूं यह दशाक्षरी है। क्रीं दक्षिणे क्रीं स्वाहा यह दूसरी व ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा तीसरी दशाक्षरी है। क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा यह एकादशाक्षरी, ऐं नमः क्रीं क्रीं कालिकायै स्वाहा यह द्वितीय एकादशाक्षरी है। (क्रमशः)

दुर्लभ तन्त्र साहित्य (संस्कृत) में

'गुप्तावतार दुर्लभ तन्त्रमाला' के अन्तर्गत अब तक निम्न तन्त्र प्रकाशित हो चुके हैं। ये बहुत ही कम संख्या में छपे हैं। फलतः पहला संस्करण समाप्त होने ही वाला है। दूसरा संस्करण पता नहीं कब छपे। अतः तन्त्र-साहित्य प्रेमियों को इनका मूल्य मनिआर्डर से भेजकर इन्हें तुरन्त मंगा लेना चाहिये।

महा-चीनाचार-सार तन्त्र	३-५०	निरुत्तर तन्त्र	यन्त्रस्थ
गुप्त-साधन तन्त्र	२-५०	तोडल तन्त्र	२-००
कुलार्णव तन्त्र	४-००	मन्त्र-कोष	यन्त्रस्थ
काली-तन्त्र (भाषा टीका)	३-००	कामधेनु तन्त्र	२-५०
श्रीभुवनेश्वरी-रहस्य	३-५०	निर्वाण तन्त्र	२-००
सांख्यायन तन्त्र	३-००	नील तन्त्र	३-००
परा-तन्त्र	३-००	परशुराम तन्त्र	१-००

पुस्तकें मँगानेवाले बन्धु कृपया पुस्तक के मूल्य के साथ रजिस्ट्री

पता—कल्याण-मन्दिर, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६

डाकव्यय रूप में दो रुपए जोड़कर कुल धन मनिआर्डर से भेजें।

को पूर्वोक्त कोलाहल आसुरी-रूप में जब अनुभव होता है, उसी के साथ-साथ साधना-पथ में उच्च क्रम में प्रथम उसी ब्रह्म-शक्ति-स्वरूपिणी विद्या व महामाया का साक्षात्कार होता है तब वे ही पूर्व-कथित इन्द्रादि देवताओं की भाँति परम-पुरुष भगवान् शिव का प्रथम परिचय देकर साधन के उच्चतम सोपान पर चढ़ने में साधक को मदद करती हैं।

असुर-विनाशिनी वे ही हमारी माता असुर-दल के निमित्त ही जैसे कराल-वदना हैं, वैसे ही भक्तों के प्रति सदा करुणा-मयी हैं। इसी कारण ध्यान में उनके लिये **'हसन्मुखीं सुख-प्रसन्न-वदनां'** तथा **'स्नेहानन-सरोरुहां'** भी कहा गया है। वे एक तरफ कठोर होकर भी स्नेहमयी तथा कराल-वदना होकर भी करुणा-मयी व प्रसन्न-वदना हैं। यह एकीभूत कठोर-कोमलता ही उनका अपूर्व स्वरूप है, जैसा कि चण्डी में भी कहा गया है कि–

चित्ते कृपा समर-निष्ठुरता च दृष्टा।
त्वय्येव देवि ! वरदे ! भुवन-त्रयेऽपि ॥

हे देवि ! तुम्हारे चित्त में अनिर्वचनीय कोमलता-पूर्ण कृपा और बाहर समर-निष्ठुरता का भीषण प्रचण्ड भाव–यह अपूर्व स्वरूप केवल तुम्हीं में दिखाई देता है। तुम त्रिभुवन को वर देनेवाली हो। माता का मुख-मंडल जैसे अनिच्छा से ही केवल कठोर कर्तव्य-कर्म के प्रभाव-स्वरूप असुर-विनाश-कार्य में प्रदीप्त हो रहा है किन्तु उनके हृदय में अतीव स्नेह-पूर्ण वात्सल्य भाव भी उसके साथ-साथ उमड़ रहा है। पुत्र के प्रति भी माता का शासन भी इसी स्नेह-तिरस्कार से परिपूर्ण है।

अतः पहिले जैसा कहा गया है कि साधक ही वास्तव में प्रकृति माता का प्रकृत स्वरूप है या भक्त ही भगवान् का यथार्थ स्वरूप है, पक्षान्तर में भगवान् ही भक्त के प्रत्यक्ष भाव-स्वरूप हैं। अतः दोनों ही एक हैं। अभेद-भावापन्न अद्वैत वस्तु जैसे उपास्य-उपासक-भाव समता में उसका मिलन-सम्भूत अत्यन्त मधुर उपासक-भाव ही जैसे उपास्य मूर्ति में प्रस्फुटित होता है, इसी प्रकार माँ का मुख-कमल भी कैसा अद्भुत योग-युक्त किसी अव्यक्त भाव से परिपूर्ण है। साधक तन्मय होकर ही उस भाव को अन्तर में अनुभव कर सकेगा, वाक्यों द्वारा उसका बोध कराना सम्भव ही नहीं।

आर्यों की सगुण ब्रह्मोपासना के अंगीभूत शिव, शक्ति, विष्णु, गणपति, सूर्य—ये पाँच उपास्य देवता या इनके समस्त रूप व भेद हैं। समस्त देवताओं के हाथों में नाना आयुध व अस्त्र-शस्त्र विद्यमान हैं वा वराभय मुद्रा देखी जाती हैं। साधक अपने अपने इष्ट-देवता की उसी के रूप के ध्यानानुगत भाव से चिन्ता करता है। पहिले ही कहा जा चुका है कि भक्त ही भगवान् का यथार्थ स्वरूप है तथा भगवान् भक्त के ही अन्तः के प्रत्यक्ष भाव-स्वरूप हैं।

भक्त के प्रधान आदर्श भगवान् हैं। उनका ध्यान करते करते वह आत्मोन्नति करते हुये क्रम से देवत्व लाभ कर भगवानत्व भी लाभ करना चाहता है अर्थात् अन्त में सारूप्य व सायुज्य मुक्ति के समीपवर्ती होने की भी इच्छा करता है। इष्ट-देव के कर में स्थित यह आयुध ही भक्त साधक के पूर्व-जन्मार्जित प्रारब्धीभूत आसुरी वृत्तियों के विनाश के पश्चात् दैवी सम्पद् की ओर अग्रसर करा देते हैं।

साधक भूत-शुद्धि द्वारा स्थूल देहावयवों को लय कर चिद्रूप प्राप्त कर अङ्गन्यास, कर-न्यास कर क्रम से व्यापक न्यास कर अभीष्ट देवता के देहानुरूप ही अपनी देह की भावना करता हुआ इष्ट-देवता की प्राण-प्रतिष्ठा कर इष्ट-ध्यान-पूर्वक पूजा प्रारम्भ करता है। सदाशिव ने एक प्रसङ्ग में कहा भी है कि–

देव एव यजेद् देवं नादेवो देवमर्च्चयेत्।
प्राणायामैस्तथा ध्यानैर्न्यासैः देव-शरीरताः॥

ध्यान का अर्थ केवल संस्कृत का श्लोक पाठ करना ही मात्र नहीं है किन्तु उसके अर्थात् ध्यान-मन्त्रोक्त रूप का चिन्तन करना ही अनेक व्यक्ति ध्यान बतलाते हैं पर स्थूल दृष्टि से वह सत्य होने पर भी ध्यान का केवल इतना ही तात्पर्य नहीं है। पूर्व-कथित देव-देह का लाभ कर अन्तर में उसकी शक्ति की प्रतिष्टा कर अर्थात् उसकी शक्ति से शक्तिमान हो उक्त आयुधों का रीति से परिचालन करते हुये अपनी आसुरी वृत्तियों के विनाश के लिए बद्ध-परिकर होना होगा।

इष्ट-देवता की दैवी शक्ति आदर्श रूप में सम्मुख विराज रही है। उसी को देखते-देखते उसी के ध्यान में तन्मय होना होगा। केवल एकमात्र पूजा के समय ही उसका ध्यान कर निश्चिन्त होने से काम नहीं चलेगा। नित्य-प्रति अपने इष्ट-देवता के आयुध-समन्वित आदर्श-स्वरूप को सम्मुख रखकर स्वयं भी वैसे आयुध-धारी होकर तुम्हें भी अपनी अन्तः आसुरी प्रवृत्तियों से युद्ध करना होगा। शीघ्र ही तुम दैवी शक्ति की सहायता से समर-विजयी होकर आत्मोन्नति करोगे तथा आत्म-सत्ता या निज स्वरूप की उपलब्धि कर धन्य होओगे। उसी के आदर्श पर अपने को ढालना होगा तथा जब तक यथार्थ रूप में अपने को न जान सको, तब तक ध्यान-वर्णित इष्ट-देवता-रूप के आदर्श पर दृढ़ लक्ष्य रखते हुये साधन करना होगा। उसमें आत्म-नियोग कर उसकी शक्ति, कृपा व सहायता की प्राप्ति के निमित्त नितान्त शरणागत होकर कातर भाव से प्रार्थना करो। सम्पूर्ण रूप से उसी के चरणों में अपने को सौंप दो। निश्चय ही उसकी कृपा प्राप्त करोगे, जैसे कि साधक-प्रवर भक्त रामप्रसाद ने गाया है—

अब तो पार करे ही बनेगी, तारिणि !
तारैगी कैसे न मो कहँ आयो शरण तजैगी !

अपनी पाप-पूर्ण व पापानुष्ठान-पूर्ण आसुरी मूर्ति के प्रति लक्ष्य न करने पर तुम्हें दीनता का अनुभव नहीं होगा। तुममें आर्त-भाव नहीं आवेगा। तुममें भव-व्याधि-जनित भय तथा कातरता भी नहीं आवेगी। अतः तुम वास्तव में शरणागत नहीं हो पाओगे। तुम्हारे अन्तर के अन्तर में वह आवेग कभी स्फुरित नहीं होगा। वह ध्यानस्थ श्लोक केवल मुखस्थ ही रहेगा।

अतः हे मुक्ति-कामी साधक ! आत्म-प्रवञ्चना से बचो तथा सतत भावेन उसी के शरणागत हो उसी का अभय वरद हस्त धारण कर उठो। उसी में आत्म-लय कर सर्वत्र आत्म-सत्ता का अनुभव करो और विश्व के प्रति अणु-परमाणु में भी उसके अस्तित्व का अनुभव करो तथा उसको प्रत्यक्ष करो। उसी सच्चिदानन्द-मयी परमा शक्ति के गुण और विभूति की साधना करते हुए उससे अभिन्न परम शिव की अद्वैत सत्ता का अनुभव करते हुए ब्रह्मानन्द में आत्म-विभोर हो जाओ तथा तन्मय हो जाओ।

* * *

पहिले कहा जा चुका है कि—'काली' ही कालिका का सुस्पष्ट रूप है। सब वर्णों को या रंगों को अपने में लीन करनेवाला, सर्व वर्णों का अतीत या सबके ऊपर अधिकार करनेवाला, सभी को अपने रूप में मिलानेवाला कृष्ण वर्ण ही है। वही दूसरे अर्थ में सर्व वर्णों का अभाव हेतु घोर अंधकार है। माता ही मानो नित्य रात्रि के घनघोर अंधकार के रूप में जैसे अपने बिखरे काले-काले केशों को ही विस्तार करती हुई अपने काले वर्ण में समग्र विश्व को लीन कर रही है। संसार कुछ काल के लिये मानो महा-श्मशान के रूप में हो गया है। मालूम हो रहा है, मानो संसार के सभी प्राणी शव-रूप महाकाल की गोद में सुख से विश्राम कर रहे हैं। भगवान् शङ्कर एक जगह कहते भी हैं—

श्वेत-पीतादिको वर्णो यथा कृष्णे विलीयते।
प्रविशन्ति तथा काल्यां सर्व-भूतानि शैलजे॥

विषय बनाना चाहता है किन्तु मन की स्वाभाविक शक्ति ऐसी नहीं है। तो भी साधक गुरु-कृपा से उसके उपदेश के अनुसार ही ब्रह्म का बारंबार स्मरण करने का अभ्यास करे, यही ब्रह्म-विषयक आध्यात्मिक उपदेश है।

ब्रह्म-शक्ति के मार्ग से ही ब्रह्म को जानना होगा। यह अग्नि-प्रमुख देवताओं के द्वारा ही प्रथम आदि युग में स्थिर हो चुका है। वह ज्ञान विद्युत् की भाँति शक्ति-योग द्वारा ही साधक के हृदय में अपनी चमक दिखावेगा तथा विकाश होने से पूर्व ही वह असुर-विनाशिनी ब्रह्म-शक्ति महामाया-रूप से अज्ञात भाव से भक्त साधक को आसुरी विघ्न-राशि के विनाश के निमित्त ही आविर्भूत होती है, किन्तु अज्ञानता-वश जीव का चित्त इन्द्रादि देवताओं की भाँति उसे जान नहीं पाता। परन्तु साधन-शक्ति-परिपुष्ट ज्ञानवान् साधक प्रथम उसे उक्त आधिदैवत-भाव से पश्चात् अध्यात्म-भाव से उपलब्ध कर धन्य हो जाता है।

यहाँ पर इस विषय को जरा और स्पष्ट कर कहते हैं। सप्तशती चण्डी तथा केनोपनिषद् दोनों के ही प्रसङ्ग में देवताओं ने अग्नि को ही आगे कर ब्रह्म-शक्ति का साक्षात्कार किया था, इसका तात्पर्य यही है कि अग्नि वा तेज का गुण रूप है। अतः अग्नि—ज्योति की सहायता के बिना उस निर्गुण सत्ता के स्वरूप की उपलब्धि नहीं हो सकती क्योंकि नित्य आकाश में भी सगुण ब्रह्म-ज्योति के उदय होने पर ही विश्व के अन्तर्गत सकल सगुण वस्तुएँ दिखाई पड़ती हैं।

अतः रूप-गुणात्मक ब्रह्म-शक्ति का प्रत्यक्ष रूप भी अग्नि की सहायता के बिना अनुभव नहीं किया जा सकता। अग्नि ही विभिन्न रूपों में निज रश्मि-जाल-रूपी अखण्ड विन्दु की समष्टि में मण्डलाकार होकर विश्व का प्रकाश करनेवाला है। वायु उसका सहायक है, यद्यपि वह रूप-गुणात्मक नहीं है—स्पर्श-गुणात्मक है। उसे चक्षु से देखा नहीं जा सकता, पर स्पर्श होने मात्र से ही किसी भी वस्तु के परमाणु से संसर्ग होते ही वह उसके अस्तित्व का बोध करा देता है।

इन्द्र इनके राजा हैं। वायु और अग्नि निरन्तर उनके सहायक हैं। इसी कारण इन्द्र ने उपस्थित रहकर भी स्वयं कुछ किया नहीं। व्यष्टि-भाव में केवल कर्म-गुण-मय अग्नि और वायु जब ब्रह्म-वस्तु का परिचय वा ज्ञान-लाभ करने में सर्वथा असमर्थ रहे, तब जैसे समष्टि भाव में इन्द्र उसका परिचय लेने अग्रसर हुये।

साधन-राज्य में 'अग्नि' जैसे वेद या ज्ञान का प्रथम ब्राह्मण-काण्ड या 'जातवेदाः' (जो वेद ही के साथ उत्पन्न हुआ कहा गया है) तथा ब्रह्म-ज्ञानाभिलाषी साधक का चित्त परिशोधक विशिष्ट कर्म-काण्ड भी बतलाया गया है तथा अधिभूत यज्ञ-काण्ड-रूप में साधक के साधन-मार्ग का प्रदर्शक भी कहा गया है और अपनी शक्ति 'स्वाहा' की सहायता से जीव-भाव का भी परिशोधक व परिवर्तक बताया गया है। उसी प्रकार तेजो-रूप में विश्वात्मक स्थूल रूप का आधार आत्म-तत्व कुण्डलिनी-रूप में उसके दर्शन में सहायक भी होता है (अन्तर्भूत-शुद्धि की क्रिया करनेवाले साधक ही इस विषय को हृदयङ्गम कर सकते है)।

'वायु' उसके पश्चात् उस अग्नि के सहायतार्थ तैजसात्मक होकर प्राणायाम-योग से आकुञ्चन, आकर्षणादि क्रिया-रूप में उसका परिचालक हो यथार्थ विद्या-तत्त्व या विद्या-शक्ति का सूक्ष्म भाव में बोधक होता है, किन्तु इन दोनों की आंशिक सहायता होते हुये भी शिव-तत्व या ब्रह्म-तत्व तब भी सम्यक् परिस्फुट नहीं होता। अतः शिव-तत्व के बोधार्थ प्रथम शक्ति-तत्व को सुस्पष्ट रूप से हृदयङ्गम करना होगा।

तेजस्तत्व का आधार मणिपुर है और वायु या प्राण-तत्व का आधार है अनाहत। तेज और वायु की

क्रिया सर्वाङ्ग में सर्वत्र स्थूल भाव में परिलक्षित वा अनुभूत होती हुई भी वह पृथक्-पृथक् भाव से सहायता करती हुई भी सूक्ष्मातीत भावात्मक करणि अङ्ग में उसकी कुछ भी गति नहीं है। अतः उसके द्वारा उपलब्धि न होने पर मूलाधार-भूमि के अधीश्वर या पृथ्वी-चक्र के स्वामी इन्द्र ही की सहायता की आवश्यकता होती है। बिना उसके शक्ति-स्वरूपिणी हैमवती उमा का प्रत्यक्ष परिचय नहीं होता।

इसी कारण उपनिषद् में के पूर्व में वर्णित उपदेश के प्रसङ्ग में कहा गया है कि वह विद्युत् के विकाश-सम अग्नि-प्रमुख दैवी लीला है। उच्च साधक ही उसके मम को जान सकते हैं। पश्चात् पञ्चम मन्त्र में उच्चतम साधक को अध्यात्म-विषयक उपदेश का ही इङ्गित किया गया है। इसी विषय में हैमवती उमा शब्द के परिचय में दो-एक बात कही जाती है—

'स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहु-शोभमानामुमां हैमवतीं, तामोवाच किमेतद्-यक्षमिति।'

पूज्यपाद भगवान् शङ्कराचार्य अपने भाष्य में इसकी निम्न व्याख्या करते हैं कि—

'विद्या उमा-रूपिणी प्रादुर्भूत- स्त्री-रूपा स इन्द्रस्तामुमां बहु-शोभमानां विद्यां तदा बहु शोभमानेति विशेषेण सुसम्पन्नं भवति। हैमवतीं हेमकृताभरणवतोमिव बहुशोभमानामित्यर्थः। उमा एव हिमवत दुहिता हैमवती नित्यमेव सर्वज्ञेनेश्वरेण सह वर्तते इति ज्ञातुं समर्थेति कृत्वा तामुपजगाम। स्त्रियमनिरूपिणीं विद्यामाजगाम अभिप्रायोद्-बोध-हेतुत्वात् रुद्र-पत्नी उमा सा हैमवतीव शोभमाना विद्येव विरूपीवः विद्यावान् बहु-शोभते इति।'

यहाँ पर श्रद्धेय भाष्यकार ने 'हैमवती' शब्द का दो प्रकार अर्थ किया है। हैम या सुवर्ण-भूषण-परिहिता हैमवती स्त्री-रूपा ब्रह्म-विद्या वा अर्थाभाव में हिमालय पर्वत की कन्या हैमवती पार्वती, उमा या रुद्र-पत्नी शिवानी हैमवती व उमा शब्द परस्पर युक्त होने से उससे यहाँ पर पार्वती या महेश्वरी का ही अर्थ लेना पूर्ण सङ्गत है क्योंकि देवताओं की इच्छा से ही पूर्व काल में महाविद्या ब्रह्म-शक्ति ही हिमालय में उमा-रूप से आविर्भूत हुई थीं, यह पौराणिक आख्यान है। योगी साधक के निमित्त आधिदैविक और आध्यात्मिक राज्य में इसका सामञ्जस्य बड़ा ही गूढ़ है तथा गुरु-मुखैक-वेद्य है तथापि संक्षेप में दो-एक बात कही जाती है।

भूत-शुद्धि के प्रसङ्ग में स्थान-स्थान पर सुमेरु पर्वत की बात आती है। योग-शास्त्र में साधक के पृष्ठ-देश का मेरु-दण्ड ही सुमेरु पर्वत कहा गया है। पर्वत शब्द का अर्थ पर्व-वान् या अस्थि-पर्व-समूह से दण्डाकार में ग्रथित हुआ वह वास्तव में पर्वत ही है। जिस प्रकार हिमालय पर्वत सतत शुभ्रोज्ज्वलानुसार धवलित किरीट है, उसी प्रकार साधक योगी का भी मेरु-शीर्ष शुभ्र तुषार-वत् मस्तिष्क द्वारा परिपूर्ण है। इसी हिमालय पर्वत-रूपी मेरु-दण्ड की कन्या-रूपिणी जीवनी शक्ति साधक की हैमवती उमा पार्वती या कुण्डलिनी शक्ति है। वे ही मेरु के निम्न क्षेत्र में अर्थात् इस पर्वत के पाद में भू कैलास रूप पृथ्वी तत्वाधार मूलाधार भूमि में स्वयम्भू-लिङ्ग-वेष्ठिता होकर शिवानी-रूप में सदा वास करती हैं।

यही उमा-रूप में जीव की आत्म-शक्ति तथा ईश्वरी कह कर भी बताई गई हैं तथा इन्हें ही साधक की अवस्था-विशेष में अरुन्धती भी कहा गया है। कारण कि सप्त ऋषि या सप्त चक्र अर्थात् मेरु-दंडाश्रित सप्त-ज्ञान चक्रों के साथ साधन-पथ में यही योगी को अनुभूत होती हैं। अतः इसी रूप में प्रसिद्ध भी होती हैं। असली बात यह है कि साधक के अनुभव करने योग्य वही मूल ज्ञान-शक्ति ही आदि माया उमा आदि नामों से प्रसिद्ध हुई है। ब्रह्म-ज्ञान के पथ में देवताओं की भाँति ही साधक

का कार्य सुख है। अतः सत्वात्मिका क्रिया या उसका आधार या रसना वा वासना जिह्वा के नाम से पुकारी जाती है। वही जीव के संसार के बंधन का कार्य है। उसी को श्वेताभ शुद्ध या अचंचल अपेक्षाकृत स्थायी सत्वगुण से दमन करने का आदर्श प्रदान करने को ही मानो मा अपनी शुभोज्ज्वल दन्त-श्रेणी द्वारा जिह्वा का निपीडन कर रही है।

रजोगुण साधारणतया सत्वगुण से ही दबाया या वश किया जाता है। साधक संयम, साधना, योग से ही उसे प्राप्त कर सकता है। और एक रहस्य की बात है। मानव-देह में व्यक्त षट्-चक्रों के अतिरिक्त और भी गुप्त तीन चक्र हैं। उनमें ललना-चक्र भी एक है, जो मेरु-दंडान्तर्गत सुषुम्णा के मध्य में ही जीव के कंठ के ऊपर तालु-मूल की समीपवर्ती घंटिका या घाँटी या जीभ-तल के बिलकुल ठीक सामने ही है। वह किन्हीं-किन्हीं के मत से ६४ दल का, किसी के मत से द्वादश दल का है। इसी के मध्य में अमृत-स्थली है। इसी से जीव की रसना में सर्व-विध रस-ग्राहिकता की गूढ़ शक्ति संचारित होती है। उन्नत कोटि के साधक इस चक्र की युक्त साधना में सिद्ध होते ही माता की दन्त-निपीडित लोल-जिह्वा का गम्भीर नया-नया अनुभव कर धन्य हो जाते हैं।

नर-कर-कृत कांची—माता की कटि में नर-करों द्वारा निर्मित अपूर्व कांची वा मेखला विराज रही है। क्रिया-शक्ति का एकमात्र या प्रधान अवलम्बन यन्त्र नर का कर है। वह कटि-देश-स्थित तेज-केन्द्र-स्वरूप माता के मणिपुर-प्रदेश में दृढ़ भाव से आबद्ध है। विश्व की उद्दीपना, साहस और शक्ति सभी सदा से जीव के कटि-प्रदेश में ही विद्यमान रही है। उसके शिथिल या अनाबद्ध रहने पर समस्त शक्ति ही ह्रास या हीन हो जाती है। इसी कारण लौकिक समर के समय में भी वीर गणों को सदा कमर कसने या कमर-बन्दी करने की अनिवार्य आवश्यकता होती है। देवी माहात्म्य में भी वह देवासुर-संग्राम में समर-निष्ठुरता के भाव में माता की यह नर-कर-कांची का भाव पूर्णतः परिलक्षित होता है।

साधक-श्रेष्ठ! तुम नर हो; तुम्हें साधन-समर में गुरूपदिष्ट मणिपूर चक्र को ही प्रथम दृढ़ भाव से अवलम्बन करना होगा तथा कर अर्थात् क्रिया शक्ति की आधार साधन-क्रिया में कटि-बद्ध होना होगा। किन्तु वह साधन बड़ा ही गूढ़ है तथा निष्काम क्रिया सापेक्ष है। इसी कारण कर-समूह सब कटे हुये शव-कर के रूप में दिखाई पड़ रहे हैं। अनधिकारी सर्व-साधारण के सम्मुख अप्रकाश्य हैं। अतः साधक को अत्यन्त गोपन ही में साधना करनी होगी।

लौकिक रूप से छिन्न कर से कामना-विहीन-कर्म के ही द्वारा उसे सम्पन्न करना होगा, अर्थात् बाह्य पूजा-अर्चन, साधन-भजन तथा प्रारब्ध-कर्म-क्षय-रूप लौकिक सकल क्रियाओं के भीतर गुरु-निर्दिष्ट निज देह-स्थित मेरु-दण्ड के गम्भीरतर गुप्त स्थल की ओर निरन्तर लक्ष्य रखते हुये ही उसे पूरा करना होगा। मूलाधारादि साधन-चक्रों की प्रकृत क्रिया वास्तव में भीतर की गम्भीर साधना का गूढ़ विषय है। विश्व की प्रकृति या मातृ-शक्ति-स्वरूप जीव-पिण्ड में जो कुण्डलिनी के रूप में निरन्तर स्थित है; जो एकाधार में स्वयम्भू-लिङ्ग-वेष्टिता होकर जीव की जीवनी-शक्ति होकर ही अति गुप्त भाव से विराज रही है, उसको गुरूपदिष्ट गुप्त साधन-क्रिया द्वारा ही उत्थापन करना होगा।

वह समग्र प्राथमिक साधन-कार्य बाह्यानुष्ठान-रूप स्थूल पूजा-कर्मों के भीतर यत्न-पूर्वक गोपन करने के निमित्त ही मूलाधार से मणिपूर-पर्यन्त तीन चक्रों को मानो निष्काम कर्मों की इन्द्रिय या छिन्न नर-करों द्वारा आवृत रख कर माता मानों गूढ़ साधन-क्रिया की ओर हमें

इङ्गित कर रही है। इसके अतिरिक्त योगोपदेश में भी यह मणिपूर-क्षेत्र 'ब्रह्म-ग्रन्थि' के नाम से कहा गया है।

मूलाधार तथा स्वाधिष्ठान का कार्य पूरा कर साधक इस नर-कर-वेष्टित अर्थात् तमः और रजः गुण के कर्म के क्षेत्र या'कुरु-क्षेत्र वा धर्म-क्षेत्र को सन्धि-रूप भीषण ग्रन्थि या गाँठ-रूप ब्रह्म-ग्रन्थि को अतिक्रमण करने को बद्ध-परिकर हो। साधक को प्रथम मणिपुर की चिन्ता कर गम्भीर क्रिया की गम्भीरता का अनुभव कर सावधानी से चित्त-स्थिरता आदि का कार्य-सम्पादन कर साधन-समर में धीरता से अग्रसर होना होगा तथा क्रम से विष्णु-ग्रन्थि तथा रुद्र-ग्रन्थि को भेद कर चरमोन्नति को प्राप्त करना होगा।

विस्फुरिताननना—माता के मुखमण्डल का विस्फुरित भाव, घोर रव, महारुद्र भाव-यह सभी साधन-समर में अति विकट असाधारण प्रकृति-विरुद्ध दृश्य हैं। माया से पार पाने के निमित्त स्वभाव के इन विषम या विकट भावों की ओर मातृ-ध्यान में सदा लक्ष्य रखना होगा तथा स्वयं भी आत्मोन्नति में निम्न-मुखी प्रवाहों की ओर भीषण साहस-पूर्ण दृढ़ विकट भाव ही सदा अवलम्बन करना होगा। अवसाद-ग्रस्त होकर संसार-स्रोत में अपने को डुबो देने से क्या लाभ? अत्यन्त सावधानी से कार्य करना होगा। उसकी चिर अभ्यस्त आसुरी वृत्तियाँ कब उसे किस ओर ले जाकर कहाँ डुबो दें, इसके लिये विरोधी वृत्तियों को दृढ़ भाव से नष्ट करने को ही मा का संकेत है। बहिर्जगत् में जो सावधान होकर कर्म करने का अभ्यासी रहा है, वही अन्तर्जगत् में भी कुछ सफलता प्राप्त कर सकता है। जो सावधानी वा धैर्य से कार्य करने का अभ्यासी नहीं है, वह साधन-समर में कैसे अग्रसर हो सकता है? असावधानी से ही अत्यन्त उन्नत साधक भी साधन-विघ्न-रूप पदस्खलन से कभी-कभी आत्म-घात तक करते देखे गये हैं।

श्मशानालय-वासिनी-श्मशान शब्द का अर्थ है श्म=शव, उसका शान=शयन-स्थान, अर्थात् शव का अन्तिम स्थान वा यों कहिये कि प्रारब्ध-कर्म के भोगान्त में जीव या जीव-देह का अन्तिम विश्राम-क्षेत्र, विषय-वासना का विकार-विहीन स्थान, अविद्या-रूप माया की लीला-भूमि या संसार के अनित्य सुख-भोग की वासना से शून्य वैराग्य-भूमि श्मशान है। यहाँ पर आने से संसार के भोगों में मुग्ध हुये मनुष्यों के भी हृदय में क्षण भर के लिये तो वैराग्य का उदय हो ही जाता है।

यहाँ पर जीव की अभिमान-पुष्ट देह का परिणाम देखकर बहुतों को भी भय भी होता है तथा राजा-प्रजा, धनी-निर्धन, ब्राह्मण-चाण्डाल, उच्च-नीच सभी का निर्विकार समान आसन तथा समान अधिकार और एक ही परिमाण देखकर अपार शान्ति भी होती है तथा आत्म-विस्मृति की भ्रान्ति भी दूर होती है। इसी कारण श्मशान ही इस अनित्य संसार के लय या मुक्ति की स्वरूप-भूमि है। इसीलिये हमारी माता भक्त को मुक्ति देने के निमित्त ही इस नित्य श्मशान के आलय या गेह में आश्रय कर सत्-प्रधान या नित्य महाविद्या के रूप में साधक को अन्तिम लक्ष्य का निर्देश कर रही है। भक्त साधक को शान्ति और वैराग्य के मार्ग से उस नित्य भूमि में आने को सतत् आह्वान कर रही है।

महाभूत भी महाप्रलय-काल में शव-रूप से जिसका आश्रय लेते हैं, वही श्मशान कहो अर्थात् ब्रह्म, उसमें रहनेवाली या उसका आश्रय लिये हुये वही श्मशान-वासिनी हुई या ब्रह्म-मयी कहिये। उसी को सर्वदा सुर-गणों से अनुगता जान कर क्रम से उसकी साधना में तत्पर होना चाहिये।

त्रि-नयना—काली त्रि-नयना हैं, क्योंकि भूत, भविष्यत्, वर्तमान सभी उस त्रिगुण-मयी त्रिकाल-दर्शिनी मा के नयन-पथ में सदा प्रतिभात या प्रकट रहता है। ध्यानान्तर ऐसा भी है कि—'वह्न्यर्क-शशि-नेत्रां च रक्त-विस्फुरि-ताननाम्'—माता के नयन-त्रय में विश्व के वह्नि, सूर्य व चन्द्र-रूपी तीनों नयन या ज्योतियाँ सर्व क्षण प्रदीप्त

अतस्तस्याः काल-शक्तेः निर्गुणायाः निराकृतेः ।
हिताय प्राप्त-मूर्तेषु वर्णः कृष्णो निरूपितः ॥

'श्मशान' शब्द की उत्पत्ति भी ऐसी कही गई है--

समस्तानि च भूतानि प्रलये समुपस्थिते ।
शेरतेऽत्र शवी भूत्वा श्मशानं तु ततोऽभवत् ॥

महाप्रलय-काल में समस्त भूत ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं । इसी कारण 'श्मशान'-शब्द 'ब्रह्म'-पद-वाच्य है । महा-श्मशान के तुल्य ही अत्यन्त भय-कारी शिवा आदि श्वापद जन्तुओं का घोर रव चतुर्दिक् सुनाई पड़ रहा है । उसी भीषण निशीथ-काल में साधक अपने अष्ट-पाश के मोचन के निमित्त माता की साधना में नियुक्त है । साधक जन्म-जन्मान्तर के अर्जित अष्ट-पाशों से छुटकारा पाते ही शिवत्व या 'जीवन्मुक्ति-पद' लाभ करने में समर्थ हो सकता है । उसी 'जीवन्मुक्ति' का लक्ष्य ही उसकी आद्या माँ के मुक्त केश हैं । इसी से वह मुक्त-केशी कहलाई है ।

मुक्त-केशी--मुक्त अर्थात् विमुक्त, केशी का अभिप्राय क-ईश-ई है । 'क' व्यञ्जन वर्ण-माला का आदि वर्ण है, जिसका अर्थ मूल कारण वा मूल सृष्टि वा सृष्टि के मूल-कर्ता ब्रह्मा है; ईश—ईश्वर वा महेश्वर अथवा अंतिम लय-कर्ता रुद्र है और 'ई' अर्थात् महाशक्ति है । इसका अर्थ यह हुआ कि जो महाशक्ति ब्रह्मा और रुद्र की अविरत शक्ति सृष्टि और लय या पुनः पुनः होनेवाली जन्म और मृत्यु-रूप क्रिया से मुक्त करे, वही मुक्त-केशी या भक्ति-मान् साधक को जो जीवन्मुक्ति प्रदान करे, वही हुई मुक्त-केशी ।

काली मुण्डमाली--उसके कण्ठ में पचास मातृका-वर्ण-रूप मन्त्र ही सर्व-ज्ञानमयी धी-शक्ति के आधार-स्वरूप हैं । कण्ठ विशुद्ध-चक्र का आधार है । इस चक्र का स्थान मेरु-दण्ड के अन्तर्गत कण्ठ से मिला हुआ योग-मार्ग-गम्य गुप्त प्रदेश है । इस चक्र के कमल की १६ पँखुड़ियाँ हैं, जिसके एक-एक दल में अकार से ले अःकार तक १६ स्वर क्रम से विराज रहे हैं । यही मूल वर्ण षोडश-कला के रूप हैं । यही स्वर-वर्ण स्पर्श या व्यापक व्यञ्जन-समूहों के आदि वर्ण या इच्छा-शक्ति-रूपी मूल वर्ण हैं । इन्हीं के त्रिगुणात्मक सत्व-रज-तमो-गुणात्मक प्रभाव से परिपुष्ट हो प्रथम उक्त १६ वर्णों का द्वितीय षोडश-कलात्मक क्रिया-रूप में मध्य वर्ण 'क' से 'त' तक १६ प्रथम व्यञ्जन-वर्णों का विकाश होता है । अनन्तर तृतीय षोडश-कलात्मक ज्ञान-शक्ति के रूप में 'थ' से 'स' तक शेष १६ व्यंजन-वर्णों का विकाश होता है । इस चक्र का देवता 'ह'-बीजात्मक आकाश है । आकाश का ही गुण शब्द है । शब्द अक्षर-रूप वा अक्षर-समष्टि की सहायता से ही सतत प्रकाशित होता है ।

बीज मन्त्रार्थ में भी मन्त्रात्मक शब्द वा तदात्मक वर्ण-समूह चित्-शक्ति के सहयोग से ही सदा ध्वनित और प्रकाशित होता है । अतः शब्द-समूह या मातृका वर्ण सदा उस चित् शक्ति पर ही आरूढ़ रहते हैं । जीव चैतन्य की इच्छा से ही यह सहस्रार के अन्तर में प्रथम झंकृत हो फिर सुषुम्णा मार्ग से अनुलोम-भाव से उतर कर सूक्ष्म रूप से अनाहत क्षेत्र में सतत वास करती है और चित्-शक्ति-मयी कुण्डलिनी की इच्छा, क्रिया और ज्ञान-शक्ति के प्रभाव से प्राण की श्वास-प्रश्वास-रूप वायु के आकार में प्रवाहित होती हुई कण्ठ-स्थित इसी विशुद्ध चक्र के प्रभाव से स्पष्ट सा होती है और कण्ठ के मध्य में होकर जिह्वादि वाक्-यन्त्र के द्वारा बहिर्गत होती है या विकास को प्राप्त होती है । अतः कंठ-देश ही वर्ण-माला-समूह का प्रकाश-स्थान है ।

देवी के गल-देश में मुण्डाकार में वह वर्ण-माला-मयी ज्ञान-माला ही सदा सुशोभित है । उसी से संसार का वह ज्ञान-प्रवाह सदा अविरत गति से बहता हुआ मानो शक्ति-स्वरूपिणी रुधिर-धारा की भाँति सर्व-ज्ञान-मयी सर्वात्मिका माता के सर्वाङ्ग में या विश्व-ब्रह्माण्ड में चर्चित

या परिव्याप्त हो रहा है। अर्थात् निगमागमात्मक ज्ञान-वि भाव स्रसे जगत् में प्रवाहित हो रहा है।

काली के वर्ण-युगल में शव-युग्म होने का अपूर्व भाव है। ऊपर से देखने पर वह तीक्ष्ण और भयानक है, पर साधक के निमित्त वह बड़ी आशा-प्रद वस्तु है। यही कर्ण-वेध संस्कार या श्रुति-भेद समर्थ वास्तविक दीक्षाभिषेक या यथार्थ-रूपेण यम-नियम त्याग या वैराग्य-पूर्ण कठोर साधनोपदेश ही साधक के कर्ण में प्रथम प्रविष्ट होने पर, वह वास्तव में कर्ण-वेध ही की भाँति प्रथम भीषण ज्ञात होता है, किन्तु धैर्य व विश्वास व श्रद्धा-पूर्ण निष्ठाः के द्वारा साधन करते-करते वह कर्ण-भेद करनेवाली तीक्ष्ण विभीषिका क्रम से दूर हो जाती है तथा उससे आनन्दप्रद शान्ति भी प्राप्त होती है, जैसा कि गीता में भी प्रसंग है—

यत्तदग्ने विषमिव परिणामेऽमृतोपम तन्मुखं
सात्विकं प्रोक्तमात्म-बुद्धिप्रसादजम्॥

काली की दन्त-श्रेणी—काली के कराल वदन की घोर दन्त-श्रेणी उसकी अविश्रान्त लय-क्रिया का ही एक निदर्शन है। ध्यानान्तर में भी देखा जाता है—"**लोल-जिह्वां दिगम्बरीम।**" दन्त-समूह द्वारा उसकी लोल-जिह्वा सदा निपीड़ित या दबाई जा रही है। जिह्वा का ही दूसरा नाम रसना है। यही सकल रसों के ग्रहण करने का मुख्य यन्त्र है। जीव की रसना में ही समग्र रसों के ज्ञान-रूपी विन्दु च्युत होकर वासना व कामना-रूप से कार्य करते हैं।

जीव की सब इन्द्रियों में रसना और उपस्थ दो ही बड़ी भीषण हैं। ये दोनों इन्द्रियाँ दो-दो कार्य करती हैं। जिह्वा जैसे सब रसों के आस्वाद-सुख का उपभोग करती है, वैसे बातें करने के निमित्त भी वह एक अनिवार्य यन्त्र है। उपस्थ भी जिस प्रकार मूत्र-क्रिया का यन्त्र है, उसी प्रकार स्त्री-पुरुष को संभोग-क्रिया में सुख-भोग-रूप विन्दु-त्याग व विन्दु-ग्रहणात्मक सृष्टि-यन्त्र भी है। यहाँ पर विन्दु से वीर्य या जीव के चैतन्य विन्दु का ग्रहण समझिये। अतः ये दोनों इन्द्रियाँ जीव के काम-रस या वासना या भोग-लालसा के यन्त्र हैं। अष्टाङ्ग-योग-साधना की प्रथम क्रिया वा अभ्यास इन दोनों के ऊपर ही करना होता है। वह यम या संयम क्रिया है।

स्थूल देह की सार वस्तु विन्दु या वीर्य का धारण या वीर्य-रक्षा तथा सूक्ष्म देह के प्रथम स्तर प्राण-शरीर का सार धन "वाक्-संयम" वा पक्षान्तर में भोजन-संयम भी इसके अन्तर्गत आ जाता है। मन-संयम इन्हीं के अन्तर्गत सूक्ष्म क्रिया है। वह भी प्राणायाम व प्रत्याहार आदि योग की क्रिया के अंगों के अन्तर्गत है। मा उसी-लोल-जिह्वा-निपीडन के द्वारा साधक को सर्व-विध लालसाओं का संयम करने को ही इंगित कर रही है। रक्तबीज-विनाशिनी मा का यह तात्पर्य भी हृदयंगम करना चाहिये कि रक्त अर्थात् सृष्ट्यात्मक मातृ-रजः-वीज अर्थात् जीव-चैतन्य-मय विन्दु या पितृ-वीर्य इन दोनों के मिलने से ही सृष्टि होती है। मा उसी सृष्टि या पुनः पुनः जन्म के विधान की विनाशिनी है। उसके उपासना-फल से साधक जन्म-मृत्यु-रहित हो जाता है। जिसका फिर जन्म नहीं होगा, उसकी मृत्यु ही क्यों होगी? जन्म ही जीव का संसार-भोग के निमित्त भूलोक में आना है तथा मृत्यु प्रारब्ध-भोगान्तर नूतन देह धारण करने को जाना है। मा जीव के उसी आवागमन के पथ का नाश कर देती है।

रसना लाल वर्ण की रक्ताभा लिये होती है। घोर रक्तवर्ण ही यथार्थ रजो-वर्ण है, किन्तु रसना का वर्ण घोर लाल नहीं है। कुछ-कुछ गुलाबी लाली और सफेदी मिला हुआ यह लाल-वर्ण ही रजोगुण का तथा श्वेत सतोगुण का वर्ण है। अतः रजः-प्रधान ईषत् सत्व-मिश्रित भाव ही रसना है। रजोगुण का कार्य क्रिया है तथा सत्वगुण

रहती हैं। वहीं क्रम से विश्व की दीप्ति या तेज-स्वरूप प्रथम तथा ज्योति या प्रकाश-रूप द्वितीय तथा शान्ति-रूप में तृतीय भाव-प्रकट हो रहा है। रक्त ही जीव का शक्ति-स्वरूप है। इसी हेतु उसके नयन-त्रय शक्ति-सहयोग से रक्त-वर्ण प्रदीप्त हो रहे हैं। साधारणतया जीव के दो ही नेत्र होते हैं तथा दो नेत्र होते हुये कोई भी वस्तु दो नहीं दिखाई देती। दोनों नेत्रों से देखने पर भी प्रत्येक वस्तु एक ही दिखाई देती है। ब्रह्म का सद्-भाव तथा चिद्-भाव अभिन्न होते हुये भी साधक को जानने के लिये या समझने के लिये दो भिन्न भावों से समझना होगा।

विश्व में सर्वत्र ही सदंश व चिदंश एक ही स्थान में है। जङ्गम-रूप जीव लीजिये या स्थावर-रूप वृक्ष लीजिये; जो भी लीजिये, उसका बहिरावरण स्थूल रूप या सत्-शक्ति-प्रधान है। वह जड़ ही की भाँति है, किन्तु उसके अन्तर में चित्प्रधान जो अव्यक्त प्रकाश-शक्ति विद्यमान है, जिसके द्वारा उसकी पुष्टि या वृद्धि-रूप में क्रम से पत्र-पुष्प पल्लव-फल प्रकट होते हैं, जिससे उसे चैतन्य-युक्त मानना ही होगा। जिसके अभाव में वह मर जाता है, उस चैतन्य सत्ता का स्वतंत्र अस्तित्व उसके जड़ांश में पृथक् भाव से दिखाई नहीं देता, न जीव उसके पृथक् भाव में देखने की बात भी मन में लाता है। इसी हेतु वह दो आँखें रखते हुये भी दोनों से वही अभिन्न वस्तु देखता है। किन्तु साधक का जब इष्ट-गुरु की कृपा से उपनयन होता है—यहाँ उपनयन का अर्थ अतिरिक्त दृष्टि या ज्ञान-दृष्टि है—अर्थात् जब साधक का ज्ञान-चक्षु खुल जाता है, तभी वह ज्ञान-विचार-रूपी तृतीय नयन-द्वारा समग्र लौकिक वस्तुओं के मध्य में जड़-चैतन्य के विश्लेषण-युत सत्-चित् की मिलन सत्ता या विश्व का अलौकिक आनन्द-प्रवाह देखकर धन्य हो जाता है। इसके पश्चात् देही के स्थूल और सूक्ष्म तथा कारण देहों को भी प्रत्यक्ष कर मुक्ति के पथ में और अधिक अग्रसर होता है।

आत्म-साक्षात्कार में प्राथमिक दृष्टि-पथ से भी स्थूल देहाभिमानी आत्मा, विश्व सूक्ष्म देहाभिमानी आत्मा, तैजस तथा कारण देहाभिमानी आत्मा प्राज्ञ—इन तीनों के साक्षात्कार के निमित्त जिन नेत्रों का प्रयोजन होता है, वही साधक का उपनयन या तृतीय नयन या ज्ञान-चक्षु समझो। जीव का ज्ञानाधार मस्तिष्क है। उसका सामने का भाग बुद्धि या विचार का क्षेत्र-रूप विज्ञानमय यन्त्र है। उसी के मध्य में या भ्रूद्वय के पीछे आज्ञा-चक्र के ठीक सामने कूटस्थ विंदु विराजित है। वही विन्दु-स्थल उच्च साधक की दिव्य-दृष्टि का आधार, उपनयन या तृतीय नयन है।

मा दक्षिणा काली है—वह सदा ही साधक को दक्षिण या अनुकूल पथ की ओर अग्रसर होने को इङ्गित करती है। शिव-हृदय पर आरूढ़ हुई वह दक्षिण-पाद को अग्रसर करती है। दक्षिण हीं की ओर दन्त-श्रेणी का विकास है तथा उसका मुक्त केश-गुच्छ भी दक्षिणांश में ही झूल रहा है। इसी कारण उसका नाम दक्षिणा काली है। दक्षिण का अर्थ अनुकूल है, यह तो प्रथम ही बताया जा चुका है। अतः साधन के अनुकूल अनुष्ठान को माता का दक्षिण चरण ही प्रारम्भ करता है। इसी दक्षिण का अर्थ दान, त्याग, लय, मृत्यु और वैराग्य भी होता है। भोगाभिलाषी संसार में आसक्त जीव दक्षिण से बहुत डरता है। कारण यह है कि दक्षिण-दिशा ही उसके भोग या सुख का अन्तिम पथ है। उसका स्वामी यम है। उसे यम-द्वार भी कहते हैं।

यम भोगाभिलाषी संसारी जीव को भय का कारण है। तथापि धार्मिक व मोक्षाभिलाषी को उससे कुछ भी भय नहीं, क्योंकि वह धर्मराज भी है। अतः धार्मिक के लिये वह दक्षिण वा अनुकूल भी है। इसका साक्षी नचिकेता का उपाख्यान भी है। माता के दक्षिण चरणाभिलाषी श्री साधक को सर्व-प्रथम वही दक्षिणा देना है। अर्थात् मुक्ति-पथ के लिये परवाना वही देता है। भोग-वासना ही बन्धन का कारण है। वही मनुष्य के जन्म-मृत्यु के स्रोत को भी बराबर अविच्छिन्न रख रही है। त्याग या वासना-त्याग ही वैराग्य है। उसी से जीव संसार-बन्धन से मुक्त होता है। मा दक्षिणा काली के स्वरूप में आपाद-मस्तक आसन-भूषण सभी में एकमात्र दक्षिण अर्थात् त्याग-वैराग्य-आसक्ति-विरक्ति-रूप उपाय का अवलम्बन करने को ही इस अदम्य साधन की ओर इङ्गित कर रही है। साधक को चाहिये कि माता के दक्षिण-चरण का अनुसरण करे तथा माता की कृपा से जीवन्मुक्ति लाभ करे।

विपरीत रतातुरा—रति का अर्थ है आसक्ति या प्रवृत्ति और विपरीत का अर्थ हुआ विपरीत आसक्ति या निवृत्ति। गूढ़ भाव से इसके आशय या रहस्य को हृदयङ्गम करना चाहिये। विपरीत रति अर्थात् आसक्ति-वर्जित होकर चित्त-वृत्ति-निरोध-रूप निवृत्ति-मार्ग में धीरता से चलो। परम पूज्य गुरु-मण्डली का एक और भी रहस्य उन्नत कोटि के साधकों के मनोरंजनार्थं प्रकाशित किया जाता है। जीव प्रकृति की पौरुष गति सतत अनुलोम भाव से प्रवृत्ति मार्ग में निम्न-मुखी वा पतनोन्मुखी तेज या वीर्य-रूप में रहती है। उसे अदम्य साधना द्वारा प्रतिलोम या विपरीत भाव में उन्नत-मुखी या ऊर्ध्व-मुखी करना होगा।

यहाँ पर भी गीतोक्त उस प्रसिद्ध साधन की ओर इङ्गित किया गया है, जिसमें बीज-प्रद पिता या ऊर्ध्व-मुखी त्रिकोणाकार स्वयंभू-लिङ्ग के बीज-मुख या बीज-गह्वर-मय विन्दु के ऊपर ही उक्त कुण्डलिनी-शक्ति का एक प्रान्त रक्षित है तथा महद्योनि का या ब्रह्म-शक्ति का आधार-स्वरूप रजः वर्ण या रक्त वर्ण गर्भ-विशिष्ट निम्न-मुखी वा पश्चात् त्रिकोणाकार-पीठ से उत्थित हुई महत् प्रकृति ही पारदोपम अतीव शुभ्र सार्ध त्रिविन्दु ब्रह्म-बीज या चैतन्य बीज-युक्ता होकर ओज-रूप में अति सूक्ष्म रेखाकार विद्युतप्रभा-मयी-स्वरूप में सार्ध त्रिवलयाकार या साढ़े तीन लपेटों में उसी लिंगांग या शिवांग में परिवेष्टिता हो रही है, किन्तु उसका प्रान्त या मुख उसी त्रिकोण-मयी योनि-यन्त्र के निम्न या पिछले भाग में युक्त हुआ सुषुम्णा-पथ को रुद्ध किये हुये है। साधक-प्रवर! उसी चैतन्य तेजमयी कुण्डलिनी-शक्ति या जीव की आत्म-जीवनी-शक्ति को इसी विपरीत रति-रूप साधन की प्रतिलोम-क्रिया द्वारा ऊर्ध्व-पथ में उत्थापन कर सहस्रांतर्गत अकुल स्थान में ले जाने को समर्थ होओ। प्रकृत भूत-शुद्धि आदि उन्नत क्रिया द्वारा वह सिद्ध की जाती है। वैदिक सन्ध्या के रुद्रोपस्थान के अनुष्ठान में भी ऊर्ध्व लिंग-भू आदि शब्द गौण भाव से ऊर्ध्व रेखा होने के इसी भाव का इङ्गित कर रहे हैं।

जीव-लिंग स्वभावतः प्रवृत्ति-पथ में अधोमुख या अधोलिंग होकर लौकिक सुखात्मक सतत वीर्य-पान से ही आत्म-क्षय बराबर कर रहा है। इसी कारण मूलाधार-कमलान्तर्गत जीव-भाव-युक्त स्वयंभू-लिङ्ग अधोमुख कहा गया है। गृहस्थ साधक के षट्-चक्रान्तर्गत सभी कमल भी इसी कारण अधोमुख रहते हैं। उन्हें ब्रह्मचर्यात्मक निवृत्ति-मार्ग की अनुकूल साधना-द्वारा कुण्डलिनी-जागरण-रूप अपूर्व क्रिया के सहयोग से ऊर्ध्व-मुख करके जीव-भाव से परे शिव-भाव में प्रवेश कर ऊर्ध्व-लिंग-स्वरूप में परिणत करना होगा। इस भाव को क्रिया-ज्ञान-हीन वाक्य-विन्यास से ही यथार्थतः जानना सम्भव नहीं। हृदय में अविचल सत्य-प्रतिष्ठा ब्रह्मचर्य-पूर्ण योगावलम्बन-द्वारा ही वीर साधक इसे प्राप्त कर धन्य हो जाते हैं।

माता विश्व-प्रसविनी होकर भी एक ही समय में सृष्टि, स्थिति तथा लय करनेवाली है। उसके निम्न अङ्ग में प्रथम स्तर में महायोनि-पीठ में वह ब्राह्मी-शक्ति स्वरूपा सृजन-रता है; मध्य अङ्ग में या द्वितीय स्तर में पीनोन्नत-पयोधर में वह वैष्णवी-शक्ति-रूपा पालन-रता है। तृतीय ऊर्ध्व अङ्ग में या उच्च स्तर में कराल वदन में वह माहेश्वरी शक्ति-रूपा संहार-तत्परा है। वैसे ही यथा-क्रम से इच्छा, क्रिया तथा ज्ञान शक्ति-रूप में जीव के हृदय में प्रथम प्रवृत्ति, बाद को स्थिति, उसके पश्चात् निवृत्ति शक्ति-रूप में विराजमान है। देवी एक ही वेष में त्रिशक्ति-स्वरूपिणी या त्र्यक्षरी है। अर्थात् साक्षात् प्रणव या सन्ध्या गायत्री की मूलभूता सावित्री, गायत्री, सरस्वती की समाहार-रूपिणी ब्रह्म-शक्ति-स्वरूपिणी है। साधक-प्रवर! कैवल्य-दायिनी माता का 'दक्षिणा कालिका' स्वरूप तन्मय प्राण से ध्यान कर उसमें तन्मय हो तथा दृढ़ भक्ति से जीवन्मुक्ति के पथ पर अग्रसर होओ तथा श्री इष्टदेव-स्वरूप श्री गुरु की कृपा से माता का ध्यान-रहस्य अनुभव कर धन्य हो जाओ।

सच्चिन्मयी माता का स्वरूप जानने का क्रम—सच्चिन्मयी महामाया का यह रहस्य हृदयङ्गम करके इस बार मोक्षाभिलाषी साधकप्रवर! माता के इस सत् स्वरूप के स्थूल ध्यान में उसके चित्-स्वरूप का भी अनुभव करो। एकान्त भक्ति-भाव से चेष्टा करो। भले ही सहसा उसे हृदयङ्गम न कर पाओ, पर श्रद्धा-समेत अभ्यास करते-करते श्री गुरु-कृपा से स्वयं अनुभव कर सकोगे। यह बात शब्दों-द्वारा नहीं बताई जा सकती। एक उदाहरण-द्वारा उसके सम्बन्ध में कुछ कहा जाता है।

आशा है, वह इष्ट-साधना में सहायक होगा।

रात्रि के घन-घोर अंधकार में कहीं भी कुछ दिखाई नहीं पड़ता है। मुक्त-केशी मा ने मानो अपने अनन्त लम्बित आलुलायित कृष्ण-केशदाम को अनन्त के अंग में फैला रखा है तथा सारा विश्व-ब्रह्माण्ड उन्हीं से छाया हुआ है, प्रकृति निस्तब्ध है। घर के द्वार, गवाक्ष आदि रंध्र भी रुद्ध हैं तथा अपनी यह प्रपञ्चमय स्थूल देह भी मानो अन्धकार-रूप काले वर्ण में बिलकुल डूब गई है। ठीक स्थूल भूत-शुद्धि-क्रिया के अनुभव की भाँति अपनी देह भी अपने नयन-गोचर नहीं हो रही है। जैसे तुम्हारे एक हाथ में एक पंखा है तथा तुम उसे हाँक भी रहे हो। वह पङ्खा तथा उसका हिलाना पहिले तुम्हें यद्यपि दिखाई नहीं पड़ता है, तो भी उसकी क्रिया का तुम अपने अंग में भले प्रकार अनुभव कर रहे हो और यह भी जान रहे हो कि तुम जागे हुये हो तथा तुम्हारा पङ्खा भी चल रहा है।

घोर अन्धकार में स्थूल रूप से कुछ दिखाई न देने पर भी चैतन्य शक्ति की अदृश्य सूक्ष्म सत्ता की अनुभूति में जैसे कुछ भी बाधा नहीं होती। तुम्हारे प्राण का कार्य अर्थात् आकर्षण-विकर्षण तथा तुम्हारे अंग का सञ्चालन तथा तुम्हारे मन का कार्य इच्छा-शक्ति के विकास का कार्य ठीक चल रहा है। तुम्हारी स्थूल देह के स्वरूप की भाँति ही तुम्हारे प्राणादि सूक्ष्म देह के स्वरूप के अनुभव की भाँति माता का स्थूल ध्यान प्रतिपाद्य सत् वा जड़ भावात्मक आनन्दप्रद इस दैवी रूप के मध्य में भी ठीक उक्त न्याय से ही माता की चित् वा चैतन्य सत्ता वा उसके चिन्मय भाव की अपूर्व क्रिया का अनुभव करने की चेष्टा करो। उसके इसी नील कृष्ण विचित्र वर्ण स्थूल ध्यानात्मक अपूर्व रूप के आवरण में भी सर्वत्र दिव्य स्वच्छ आकाशमान दीप्तिमयी नील किरण प्रभा को प्राप्त करो। अपने आवरण-हीन मन के स्वरूप का भी उसके साथ साथ अनुभव करो तथा इसी पवित्र मातृ-भाव के मध्य में उसको एकदम डुबा दो।

वह सच्चिदानन्दमयी महामाया है। उसकी सत्, चित् और आनन्द-रूपिणी तीनों सत्ताओं के मध्य में भी जैसे उसकी प्रकाश-शक्ति का विकाश हो रहा है। उसकी सत्-सत्ता के मध्य में दिव्य देवी-रूप का विकास तथा उसकी चित् सत्ता के मध्य में दिव्य चेतना का विकास और उसकी आनन्द-सत्ता के मध्य में नित्य सुख या नित्य अलौकिक आनन्द का ही विकास हो रहा है।

साधक! वही अमा-निशा के घोर अन्धकार के बीच भी सकल रूप के विलोप करनेवाले उसके उसी घने कृष्ण स्वरूप के बीच भी पहिले चैतन्य-स्वरूपिणी मा की इच्छा, बाद को उसकी क्रिया, अन्त में उसके ज्ञान-चैतन्य का अनुभव कर धन्य होओ। रात्रि में तुम्हारा अंग तथा अंग के बीच में तुम्हारी इच्छा तथा इच्छा के सहित तुम्हारा अंग-सञ्चालन तथा पङ्खा हाँकना तथा अन्त में सबके अनुभव-स्वरूप त्रिविध शक्ति-बोध की नाई महामाया का स्थूल ध्यान, पश्चात् उसका चिन्मय ज्योतिः ध्यान, अनन्तर उसका आनन्दमय पूर्ण चैतन्य भाव अनुभव करने के निमित्त प्राण-प्रण से गंभीर-भाव से अपने साधन-पथ में धीर-स्थिर और विश्वास-पुष्ट अन्तःकरण से अग्रसर होओ। अवश्य ही समय पर उसकी कृपा प्राप्त कर धन्य-जीवन होओगे।

ध्यान-प्रसङ्ग में षट्-चकों की प्रतिलोम-क्रिया का आभास इसी प्रसङ्ग में क्रियावान् साधक की साधना की अनुभूति के अनुकूल गुप्त षट्-चक्र की प्रतिलोम-क्रिया-भाव का भी कुछ दिग्दर्शन कराया जाता है। भक्तिमान् साधक! एक बार एकाग्र-चित्त से महामाया की इस ध्यान-क्रिया का विलोम-भाव से अनुभव करो।

सर्वप्रथम मूलाधार-चक्र में उसी कुण्डलिनी-शक्ति-स्वरूपिणी माता की दिव्य ज्योतिर्मयी मूर्ति का, जो विपरीत-रतातुरा रहस्य-प्रसङ्ग में कही गई है, ध्यान करो तथा उसका गूढ़ रहस्य इस समय हृदयङ्गम करो। यही साधक की अनिर्वचनीय मूलाधार-चिन्ता है। अनन्तर उसी चैतन्य वीज-स्वरूपिणी दीप्त प्रभा-मयी की दिव्य सत्ता के उद्‌बोधन-सहयोग से स्वाधिष्ठान तथा मणिपुर चक्रों के भेद करने के साथ-साथ अपनी स्थूल देहात्म-बुद्धि के संक्रमण-पूर्वक अपनी ब्रह्म-ग्रन्थि का भेद करो, अर्थात् सूर्य-किरणों की फैली हुई ज्योति के समान जीव की स्थूल देह अभिमानी आत्मा, विश्व वा उसकी फैली हुई किरणें या प्रभाव, जो विश्व में या विराट् रूप में ब्रह्मा के सृष्टि-भाव में इस स्थूल जगत् में तथा व्यष्टि-रूप में तुम्हारी देह में तथा विषय-पंचक प्रत्येक अणु-परमाणु में जो प्रगट

हो रहा है, उसी का संक्रमण करना या हटाना होगा ।

यही साधक का नर का छिन्न कर है—अर्थात् प्राथमिक निष्काम कर्म के आवरण में अपने कटि-देश को असंख्य बाह्य क्रिया-मय करों से आवृत कर अति गुप्त-भाव से पूर्ण करना होगा या गुप्त रूप से सिद्धि प्राप्त करनी होगी ।

इसके पश्चात् मणिपुर से साधक उसी चैतन्य सत्ता के उद्‌बोधनपूर्वक अनाहत-चक्र रूप द्वादश दलात्मक आत्म-सूर्य मण्डल के मध्य में निर्वात स्थान में जलती दीप-कलिका की भाँति जीवात्मा-रूप जीव-पुरुष की शक्ति-स्वरूपिणी कुण्डलिनी को संयोग करा दोनों के युगल मिलन द्वारा जीव के अलौकिक प्राणों की प्रतिष्ठा करो । यही साधक-श्रेष्ठ का अति-गुप्त रासोत्सव है—पूर्व सिद्ध की हुई अपूर्व ब्रह्म-ग्रन्थि भेदन-रूप अपूर्व साधना-लब्ध रजोगुण-पुष्ट रं वीज वा रकार जीवनी-शक्ति या कुण्डलिनी देवी इस बार बाह्यात्मक नील धूम्र-समान आनन्द-रस-प्रद विष्णु-ग्रन्थि का आधार होकर साधक का या स्थूल ध्यान-भूमि में वा हृदय-रूपी रास-मन्दिर में अनाहत-चक्र में राधा-रूप से पधार कर विष्णु-माया-स्वरूपिणी माता की दिव्य सत्ता में या त्रिगुणों की साम्यावस्था में त्रिभंगाकार दिव्य रस-स्वरूप पुरुष-प्रवर के साथ मधुर मिलन की झाँकी दिखा रही है ।

फिर इसी दर्शन के फल-स्वरूप ओत-प्रोत भाव से जड़ित सत् और असत् प्रकृति भाव-मय दोनों प्रांतों से उस अपूर्व वैष्णवी माया का अनुभव करो । साधक-प्रवर ! इससे आदि की सुरासुर-समर की लीला के प्रत्यक्ष विकास-स्वरूप उस देव अंग के वाम-पार्श्व में मूर्तिमान आसुरी संपद्-सम दुष्टों के दमनात्मक सद्यश्छिन्न मुण्ड और उसकी क्रिया शस्त्र-रूप खड्ग और दक्षिण-पार्श्व में मूर्तिमान दैवी सम्पद्-सम शिष्टों के पालनात्मक वर और अभय-मुद्रा प्रत्यक्ष कर उस विचित्र वैष्णवी माया से पृथक् होओ या अपनी अव्यक्त विष्णु-ग्रन्थि का भेद करो ।

अब साधक-अपनी-रुद्रग्रन्थ विभेद करने की पूर्व-क्रिया-स्वरूप षोडश-कलात्मक विशुद्ध चक्र के आश्रय-रूप कंठ-देश मुण्डमाला का प्रत्यक्ष स्वरूप पचास-वर्ण-रूपी मुण्डमाला का मूल 'स्वर' तथा उससे उत्पन्न स्थूल नर-व्यञ्जनों के समावेश से पूर्ण पचास ज्ञान-विज्ञान के प्रकाशक मातृका वर्णों का अनुभव करो तथा उसके विकास ही में निगमागम-रूप नित्य ज्ञान की विचित्र माला तथा उसी से निकली हुई शक्ति-स्वरूपिणी रुधिर-धारा की भाँति अविरत ज्ञान-प्रवाह-द्वारा अपना सर्वांग सिक्त हो रहा है, यह प्रत्यक्ष करो । उसी के कुछ ही ऊपर गुप्त ललना-चक्र से उठी हुई रसना या ललज्जिह्वा-रूप वाक्-यन्त्र के गुप्त संयम-स्वरूप दशन-निपीडन द्वारा परिपुष्ट हो अपनी घोर अविद्या या चिर-काल-संचित अज्ञान-आवरण का भेद कर रुद्र-ग्रन्थि को सम्पूर्ण भाव से भेद करने की चेष्टा करो ।

यह कर चुकने पर इसके कुछ ही ऊपर आज्ञाचक्र के द्विदल में चन्द्राधार वाम दल से चन्द्र-विन्दु-समन्वित 'हं' वीज स्वरूप उसके नेत्र-कमल का तथा सूर्याधार दक्षिण-दल से सूर्य विन्दु-समन्वित 'क्षं वीज' स्वरूप उसके दक्षिण नयन-कमल का दर्शन करो और उन दोनों की ही पंखुरी-रूप अग्न्याधार वीज-कोष से अग्नि विन्दु समन्वित वा 'लं' वीजात्मक उसके तृतीय नयन-कमल का अवलोकन करते-करते उन तीनो के समन्वय भूत माता के वह्न्यर्क शशि-नेत्र रूप दिव्य नयन-त्रय का अवलोकन करो । साधक, इसी ज्ञान-वह्नि-रूप तृतीय नयन के स्वच्छतम सूक्ष्म विन्दु रूप मणि-मध्य में से अपने भी उपनयन या ज्ञान-चक्षु उन्मीलन के निमित्त उसी के चरणों में बारम्बार करुणा-भाव से प्रार्थना करो । तुम्हारा अज्ञान-अन्धकार दूर होकर दिव्य ज्ञान-ज्योति का शीघ्र ही उदय होगा । तब तुम उस विचित्र ज्योति प्रभा का अवलम्बन कर निरालम्बपुरी में अनायास प्रवेश करने को समर्थ होओगे, तब उसी के अन्तर्गत सोमचक्र के केन्द्र से ऊपर को फैली हुई बढ़ी हुई ज्योति मेरु शिखर की भाँति ज्योतिः मण्डल की अक्षर-रेखा का शृङ्ग या चूड़ा स्पर्श कर तदात्मक रूप हो भावतन्मयता प्राप्त कर सकोगे ।

यही तुम्हारे मन्त्र-योग की अन्तिम अवस्था है, यही तुम्हारी भाव-समाधि है । महर्षिपातंजलि ने इसकी ओर संकेत कर कहा है—'ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा' ऋत माने सत्य वस्तु का यथार्थ ज्ञान या यथार्थ स्वरूप । भृ अर्थात् धारण करना यहाँ प्रकाश करता है । जो प्रज्ञा योगी साधक को उसकी उसी चिर-काल वांछित वस्तु का यथार्थ या सत्य स्वरूप प्रकाशित कर दे, वही 'ऋतम्भरा' हुई । साधना की इस अपूर्व तथा अव्यक्त भाव-समाधि से परिपुष्ट होने पर मन्त्रयोगी को जो अध्यात्म-प्रसाद प्राप्त होता है, वह वही अनिर्वचनीय प्रज्ञा है । उसी को शास्त्र में अवाङ्-मनस-गोचर भी कहा

गया है । भगवान् सदाशिव ने भी कहा है—

> भावेन लभ्यते सर्वं भावेन देव-दर्शनम् ।
> भावेन परमं ज्ञानं तस्माद्भावालंबनम् ।।

अर्थात् तुम इस अपूर्व भाव का ही सदा अवलम्बन करो । इसी भाव में तुम्हारा सर्वस्व तुम्हें मिलेगा । इसी भाव में ही अभीष्ट देवता-मयी माता के प्रत्यक्ष स्वरूप का तुम दर्शन पाओगे । यही भाव तुम्हें परम ज्ञान के परमोच्च शिखर पर पहुँचा देगा, तुम धन्य होकर कृतार्थता प्राप्त करोगे । स्नेहास्पद ! इस बार माता के मुक्त-केश-गुच्छ-समन्वित रूप अपने इस विचित्र वर्ण के सहस्र-दल-कमल के मध्य में अपने इसी भाव में डूब जाओ । उस घोर अंधकार के मध्य में उसकी अपूर्व ज्योतिः-स्वरूपिणी 'कामकला' को प्रत्यक्ष कर तुम भी उसके अंग में लीन हो जाओ । अपना अहं भाव उसी करुणामयी जगज्जननी महामाया के श्री चरण-कमलों में लय कर दो ।

❦

जगत्कारण निर्णय

विश्व का शक्ति बिना और कोई निदान नहीं ।।
प्रकृति बिना और जगत् जीवों का निधान नहीं ।।विश्व०।।१।।
देख लो सूर्य शशी अग्नि मरुत् पृथ्वी जल ।।
जिसमें यह हो न, कहीं ऐसा कोई स्थान नहीं ।।
विश्व का शक्ति बिना० ।।२।।
लोक में यह भी उदाहरण समझ देखो ।।
बिना तलवार किसी काम का हो म्यान नहीं ।।
विश्व का शक्ति बिना० ।।३।।
सृष्टि परमाणु से विष्णु तथा ब्रह्मा तक ।।
देख लो शक्ति बिना कोई शक्तिमान नहीं ।।
विश्व का शक्ति बिना० ।।४।।
कहते यही सांख्य वेदान्त बनाने वाले ।।
तत्वदर्शन में बिना जिनके कोई प्रमाण नहीं ।।
विश्व का शक्ति बिना० ।।५।।
इसके बिना ब्रह्म नहीं, भिन्न न यह है उससे ।।
जैसे प्रभाशून्य कहीं भानु प्रभावान नहीं ।।
विश्व का शक्ति बिना० ।।६।।
लोग जो हठ से भरे और कई निदान कहैं ।।
हे हरि वे बाद करैं व्यर्थ, उन्हें ज्ञान नहीं ।।
विश्व का शक्ति बिना० ।।७।।

शक्ति-कथा

जड़ तथा चेतन सब ही शक्ति के रूप हैं। जड़ वस्तु अपनी शक्ति-प्रकाश के लिये किसी की अपेक्षा करती है, परन्तु चेतन स्वीय शक्ति-प्रकाश के लिये किसी की अपेक्षा नहीं रखती—यही दोनों में भेद है। आब्रह्म-स्तम्ब्र-पर्यन्त सब ही शक्ति हैं। पराक्रम, तेज, वीर्य तथा सामर्थ्य शक्ति के जड़-रूप हैं और सर्वव्यापक चैतन्य शक्ति का सूक्ष्म रूप है—चिन्मय रूप है। कालिकादि विद्या-समूह महाशक्ति की चिन्मयी मूर्ति है—

"सर्व-चैतन्य-रूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि"।

परमेश्वर की मलादि-असंस्पृष्ट चिच्छक्ति ही चैतन्य नाम से अभिहित होती है—

'चिच्छक्तिः परमेश्वरस्य विमला चैतन्यमेवोच्यते'। स्मरण रखना चाहिये, पराशक्ति परमेश्वर से अभिन्न है।

वस्तु-मात्र ही शक्ति का उद्भूत रूप है। जगदीश्वरी निखिल वस्तुओं में शक्ति-रूप से विराजती है। शक्ति-रहित होने पर पदार्थ की सत्ता नहीं रह सकती। इस कारण कहा गया—

"यच्च किंचित् क्वचिद्-वस्तु सदसद् वाखिलात्मिके। तस्य सर्वस्य या शक्तिः—।"

वैदिक संहिता में उल्लिखित देवताओं में प्रत्येक ही एक-एक शक्ति का आश्रय है। इस शक्ति के प्रभाव से ही उनका देवत्व है। शक्ति-शाली होने के कारण ही देवता मनुष्य के पूज्य हैं। शक्ति के कारण ही अर्थात् शक्ति के विशेष प्रकाश के कारण ही विष्णु, सूर्य, अग्नि प्रभृति देवताओं की इतनी स्तव-स्तुति वैदिक ऋषियों ने कीं है। साधना-शक्ति वा योग-बल से मानुष भी देवत्व लाभ कर सकता है। जीव-जगत् में भी शक्ति के तारतम्य के अनुसार उत्कर्ष-अपकर्ष का विचार किया जाता है। जो जीव जितना शक्ति-शाली है, उसका प्रभुत्व तथा प्रतिष्ठा भी उतनी ही अधिक है। पशुओं में सिंह की शारीरिक शक्ति सबसे अधिक होने के कारण वह 'पशुराज' आख्या को प्राप्त हुआ है। शारीरिक तथा मानसिक दोनों शक्तियों के अधिकारी होने से ही मनुष्य पशुओं के ऊपर प्रभुत्व कर सकता है।

परमेश्वर अपनी अचिन्तनीय इच्छा-शक्ति के प्रभाव से एक से बहु हुआ। वह अद्वय परमार्थ वस्तु होने पर भी अपने से अभिन्न शक्ति के साहाय्य से बहु रूपों से प्रकटित हुआ—"य एको वर्णो बहुधा शक्ति-योगात्"।

ब्रह्माण्ड के कारणानुसन्धान में प्रवृत्त होकर ऋषिगण कालवाद, स्वभाववाद, नियतिवाद तथा यदृच्छावाद का उल्लेख कर अन्त में शक्ति को ही विशेष चरम कारण रूप से निश्चय करने में बाध्य हुये थे। उन्होंने ध्यान-योग से "देवात्म-शक्ति" का दर्शन पाया था।

"ते ध्यान-योगानुगता अपश्यन् देवात्म-शक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्"। (श्वेताश्वतर)।

ब्रह्म की परा-शक्ति अनन्त तथा अपरिमित है। ज्ञान, क्रिया और इच्छा सब ही ब्रह्म की स्वाभाविक शक्ति हैं—

"परास्य शक्तिर्बहुधा च गीयते स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च।"

यहाँ स्मरण रखना चाहिये कि शक्ति ब्रह्म का स्वरूप है—'साब्रवीत् अहं ब्रह्म-स्वरूपिणी' (देव्युपनिषत्) अर्थात् शक्ति ब्रह्म से अभिन्न है—"सेयं परा-शक्तिः परमेश्वरादभिन्ना" (तत्त्व-प्रकाश)। भगवान् श्री शङ्कराचार्य ने भी ब्रह्म का 'परिपूर्ण शक्ति' रूप से निर्देश किया है। उनके मत से सर्वज्ञत्व तथा सर्व-शक्तिमत्व ही ब्रह्म का प्रकृष्ट लक्षण है। "सर्व-धर्मोपपत्तेश्च" सूत्र के भाष्य में उन्होंने इसका स्पष्टीकरण किया है। शक्ति-युक्त न होने पर निर्गुण ब्रह्म कुछ भी कर नहीं सकता। आचार्य-चरण श्री शङ्कर ने अपने 'सौन्दर्यलहरी' के प्रारम्भ में इस तत्व की अवतारणा करके कहा है—

"शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं।
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।"

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते"।

इत्यादि श्रुति तथा "जन्माद्यस्य यतः" इस वेदान्त-वचन में परिपूर्ण ब्रह्म से जगत् सृष्टि कही गयी है। अपरि-

मित शक्ति का आश्रय होने से ही ब्रह्म जगत की सृष्टि, स्थिति तथा लय का कारण है।

शक्ति को स्वीकार किये बिना हम सगुण वा सकल ब्रह्म की कल्पना नहीं कर सकते। जिस ब्रह्माण्ड की रचना-प्रणाली मनुष्य-बुद्धि के अगम्य है, उसकी उत्पत्ति-स्थिति लय किसी सर्वज्ञ तथा सर्व-शक्तिमान् पुरुष के भिन्न नहीं हो सकता। वह पुरुष ही ब्रह्म है—

अस्य जगतो मनसाप्यचिन्त्य-रचना-रूपस्य जन्म-स्थिति-भंगं यतः सर्वज्ञात् सर्व-शक्तेः कारणाद् भवति तद् ब्रह्मेति" (शङ्कर-भाष्ये)।

मूलतः पर-तत्व से अपृथक् होने पर भी ईश्वर की अव्याहत कला-समूह वा शक्ति-राशि हमारे पास भिन्न पदार्थ रूप से प्रतिभात होती है—

"एकमेव यदाम्नातं भिन्नं शक्ति व्यपाश्रयात्।
अपृथक्त्वेऽपि शक्तिभ्यः पृथक्त्वेनेव वर्त्तते॥

'केन' उपनिषद् में ब्रह्म-रूपिणी महाशक्ति उमा हैमवती की कथा पायी जाती है। ब्रह्म की परा-शक्ति ही घट-पटादि नाना भावों से प्रकटित होती है। सूर्य-चर्य से आरम्भ कर आकीट-पतंग सब ही परमेश्वर की शक्ति हैं। विशेषतः नित्य-ज्ञान तथा क्रिया उसकी स्वाभाविक शक्ति है। ब्रह्म-सूत्र तथा शंकर-भाष्य में एकाधिक बार शक्ति का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। "शक्ति-पर्यायात्" सूत्र में कर्त्तृ-शक्ति तथा कारण-शक्ति को कथा रही है। भगवान् श्री शङ्कराचार्य ने शारीरिक भाष्य में वस्तु-शक्ति तथा ब्रह्म-शक्ति इन दोनों शक्तियों की कथा कही है। वीज-शक्ति, दृक्-शक्ति, प्रवृत्ति-शक्ति प्रभृति का भी उल्लेख उन्होंने किया है। मणि-मन्त्र-औषधादि की अलौकिक शक्ति भी आचार्यपाद ने मुक्त-कण्ठ से स्वीकार की है। प्रत्यक्ष दृष्ट सादात्म पदार्थ-समूह यदि इतनी शक्ति के आश्रय हो सकते हैं, तो विश्व-नियन्ता कितना शक्ति-शाली है, इसकी मनुष्य कैसे कल्पना कर सकता है? इस कारण पुराण में भी परमेश्वर "अचिन्त्य-शक्ति" तथा "अलुप्त-शक्ति" कहा गया है—

सर्वज्ञतो तृप्तिरनादि-बोधः स्वतंत्रता नित्यमलुप्त-शक्तिः।
अचिंत्य-शक्तिश्च विभोर्विधिज्ञःषडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य॥

"तदैक्षत"—यह श्रुति भी ब्रह्म के सङ्कल्प वा इच्छा-शक्ति की अभिव्यंजक है। उसकी अव्याहत इच्छा-शक्ति के प्रभाव से तेज, जल, वायु प्रभृति महाभूत-समूह सृष्ट हुये हैं। परमेश्वर सत्य-संकल्प है और उसकी इच्छा अप्रतिहत है। उसकी सिसृक्षात्मिका शक्ति वा प्रवृत्ति ही सृष्टि का मूल-तत्त्व है। परम पुरुष की अचिन्तनीय शक्ति को स्वीकार किये बिना हम किसी भी रूप से सृष्टि का महा रहस्यावधारण नहीं कर पाते। सृष्टि तथा लय असल में शक्ति-विशेष का आविर्भाव और तिरोभाव मात्र हैं।

वीज के भीतर जैसे वृक्षोत्पादिका-शक्ति अन्तर्निहित रहती है, वैसे सृष्टि से पूर्व परमेश्वर में भी सृष्ट्युपयोगिनी शक्ति अव्यक्त-भाव से वर्तमान थी। सृष्टि शक्ति के प्रकाश वा व्यक्तावस्था से भिन्न और कुछ भी नहीं है। आचार्य-पाद ने इस वीज-शक्ति का दृष्टान्त दिया है।

सत्-कार्य-वाद तथा कार्य-कारण की एकात्मता में भी आचार्य-पाद श्रीशङ्कर ने शक्ति-वाद की व्याख्या की है। कारण तथा कार्य दोनों ही शक्त्यात्मक हैं। शक्ति के सहारे ही कारण कार्योत्पादन करता है। शक्ति-शून्य पदार्थ किसी भी कार्य का कारण नहीं बन सकता—"शक्तिश्च कारणस्य कार्य-नियमार्था नान्या कार्य-कारणाभ्याम्" (शङ्कर-भाष्ये)।

परमेश्वर निखिल शक्ति का केन्द्र है। विश्व के संपूर्ण पदार्थ एक मूल-शक्ति-केन्द्र से अपनी अपनी शक्ति का आहरण करते हैं। अनन्त भावों से अभिव्यक्त होने पर भी ईश्वर की शक्ति का ह्रास नहीं होता। ईश्वर सर्वदा ही परिपूर्ण है। इस कारण कहा गया—"पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।"

बलवान के बल तथा शक्तिमान् की शक्ति परमेश्वर अमित शक्ति के आधार हैं। भगवच्छक्त-द्वारा प्रेरित होकर ही सूर्य-चन्द्रादि अपने अपने कर्म समाधान करते हैं। चक्षुरादि इन्द्रियाँ भी ऐसी शक्ति के प्रभाव से हो दर्शनादि व्यापार कर सकते हैं—"ब्रह्म-शक्त्याधिष्ठितानां हि चक्षुरादीनां दर्शनादि-सामर्थ्यम्" (शङ्कर-भाष्य वृहदा० ४।४। १८)।

माया भी ब्रह्म की शक्ति ही है। ब्रह्म-शक्ति होने से माया अनिर्वाच्य है। माया-शक्ति को स्वीकार किये बिना ईश्वर को स्रष्टृत्व-सिद्धि नहीं होती–'न हि तया विना परमेश्वरस्य स्रष्टृत्वं सिध्यति, शक्ति-रहितस्य तस्य प्रवृत्त्यनुपपत्तेः" (शंकर-भाष्ये)। इस कारण माया सृष्टि-बीज कही गयी है। विद्या वा ब्रह्म-ज्ञान के उदय से यही

माया नष्ट हो जाती है।

कोई कोई आपत्ति उठाते हैं कि पर-देवता की स्त्री-मूर्ति की कल्पना अशास्त्रोय है, परन्तु ऐसी धारणा अत्यन्त भ्रम-पूर्ण है। यद्यपि साधारण मनुष्य परम-पुरुष को पुरुषाकृति ही जानते हैं, पर असल में पर-तत्व लिङ्ग-वर्जित ही है। अथवा पर-देवता के स्त्री-विग्रह को स्वीकार करने में किसी प्रकार दोष की सम्भावना नहीं हो सकती। नृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि परमात्मा ने अपने शरीर को द्विधा विभक्त करके पति तथा पत्नी-रूप धारण किया था—"स इयमेवात्मा द्वेधा पातयत् ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम" (१।४।३)। मनुस्मृति में भी इसी बात की प्रतिध्वनि पायी जाती है—"द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्। अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत् प्रभुः"। परमेश्वर में स्त्रीत्व वा पुंत्व-निबन्धन कुछ भी भेद नहीं होता। वह एकाधार में स्त्री तथा पुरुष दोनों ही है। "शाश्वती विश्व-योनि" परमेश्वर का लिङ्ग-विचार करने का कुछ प्रयोजन नहीं रहता।

अतीत के किस युग से हमारी आर्य-भूमि में शक्ति-पूजा प्रचलित रही है, उसे ठीक-ठीक बता न सकने पर भी, यह तो ध्रुव सत्य ही है कि वेदोक्त उपासना तथा शक्ति-पूजा दोनों ही सम-कालीन हैं। वैदिक सन्ध्या की त्रैकालीन-मूर्तियाँ ब्रह्माणी, वैष्णवी तथा रुद्राणी हैं। शक्ति की उपासना ही गायत्री का चरम तात्पर्य है।

॥ ॐ श्रीः ॥

* * *

आद्य शक्ति

'नेति-नेति' कह कर रह जाती 'श्रुति' मौन,
'श्री' समेत आठो याम गाती यश 'भारती'।
'शेष', 'चतुरानन' सराहते स्वभाग्य-योग,
आंखें हो निहाल छबि-माधुरी निहारती।
रहते 'पुरन्दर' हैं द्वार-देहली पै पड़े,
भुवनेश', 'ऋद्धि-सिद्धियां' हैं चौर ढारती।
'शिव' की विभूति है अनादि 'चित्‌शक्ति' तू ही,
तेरी 'रवि-रश्मियां' हैं आरती उतारती॥

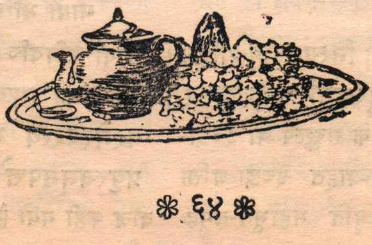

‘कौल-कल्पतरु’ चण्डी

वर्ष ३२] वार्षिक विषय-सूची : चैत्र-फाल्गुन शुक्लाष्टमी २०३१ [संख्या १—१२

१ अद्वैत है एकत्व है : पं० लक्ष्मीकान्त मिश्र ६९
२ अनमोल विचार : ‘शिव-शक्ति-योगी’ परम पूज्य श्रीकृष्ण ब्रह्मचारी जी, राजस्थान १७, ४९
३ आरति : गुप्तावतार बाबा श्री ९६
४ उद्‌गार : पं० कपिलनारायण मिश्र, बिहार ४५
५ कुण्डलिनी योग : ‘कुलज्ञ’ स्वामी दिव्यानन्द जी सरस्वती ३५
६ ग्रहण-पुरश्चरण : कापालिक उद्‌बोधनानन्द ५३
७ चण्डी का एक सिद्ध प्रयोग : श्री नाथ नरंगुद ७७
८ जगदम्बा-मन्त्र : श्री नाना जोशी ९८
९ जिज्ञासु के पत्र : १३
१० तन्त्र का सन्देश : ‘कुलज्ञ’ स्वामी दिव्यानन्द जी सरस्वती ९७
११ तन्त्र-साधना की अनुभूत बातें : पं० श्री रमेशचन्द्र शर्मा, राजस्थान ९३
१२ दुर्गा-पूजा : ‘कौल-कल्पतरु’ स्वर्गीय पण्डित देवीदत्त शुक्ल ८३
१३ देवी-पुराणोक्त दुर्गा-पूजा-विधि : ‘कुलभूषण’ पण्डित रमादत्त शुक्ल, एम० ए० १००
१४ धार्मिक जगत् की हलचल ११, ३०, ४८ ७०
१५ नमामि श्रीचक्र-मण्डलं : पं० रमेशचन्द्र शर्मा, राजस्थान ५१
१६ नव-पत्रिका पूजन : ‘कुलभूषण’ पं० रमादत्त शुक्ल, एम० ए० ६७
१७ पूजा की आवश्यकता : श्री प्रेमशङ्कर सिंह ‘प्राञ्जल’, एम० ए०, मध्यप्रदेश ४६
१८ प्रयोग-माला—अनुभूत मन्त्र : वेदाचार्य पं० लक्ष्मणदत्त शास्त्री चतुर्वेद, मथुरा ५
१९ भगवती दिगम्बरी दक्षिण काली की आरती : आयु० रत्न—कवि श्री धन्नराज, राजस्थान ८
२० महापूजा : राजगुरु स्व० पण्डित हरिदत्त जी शास्त्री ७१
२१ मातृ-महिमा : श्री भुवनेश्वरसिंह ‘भुवन’ ९०
२२ माँ तारा : पं० कपिलनारायण मिश्र ९७
२३ वासन्तिक-नवरात्र-रहस्य : पण्डित-प्रवर श्री नथमल जी दाधीच, राजस्थान ३
२४ शाक्त-साहित्य : श्री हरिहर शर्मा २०

२५ शारदीय नवरात्र रहस्य : पंडित प्रवर श्रीनथमल जी दाधीच, राजस्थान ७९
२६ शारदीय दुर्गा पूजा : स्वर्गीय पं० भूपेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय ८५
२७ शाक्त-धर्म : श्री जरिबन्धन लाल
२८ सदुपदेश-सुधा—पवित्र आत्मा : सङ्कलित १४
२९ सम्पादकीय १५, ३२, ६३, ८८, १०७
३० सार्थ काली-कस्तूरीं-स्तव-राज : श्री हरिहरानन्द नाथ १८, ४२, १०३
३१ सिद्धि-मार्ग के पथिक—वामाक्षेपा : श्री हरिहर भट्टाचार्य ९
३२ सिद्धि-मार्ग के पथिक—वीर-भूमि : श्रीहरिहर भट्टाचार्य २२
३३ श्री दुर्गा आपदुद्धाराष्टक स्तोत्रम् : सङ्कलित २
३४ श्री दुर्गा-स्तुति-पञ्चकम् : सङ्कलित ६५
३५ श्री दुर्गा-स्तुति : स्वामी अव्ययानन्द ६६
३६ श्री चण्डी नवाक्षर मालिका : श्री सी० वी० सामी शास्त्री ७३
३७ हिन्दी-तन्त्रसार [७० वीर-साधन-प्रक्रिया, ७१ चंडोग्र-शूलपाणि, ७२ मातङ्गी, ७३ उच्छिष्ट-चांडालिनी, ७४ धूमावती, ७५ भद्रकाली, ७६ उच्छिष्ट गणेश, ७७ धनदा देवी, ७८ श्मशान काली] कुलभूषण ३३,४० ५७
३८ Mother of the Vedas : Arthur Avalon. 76
३९ Navaratra : Shri T. V. Kapali Shastri. 75
४० Tantra Versus Vedas : Sir John Woodroffe. 44

विशेष : इस वर्ष 'चण्डी' के ग्राहकों को उक्त उद्बोधक साहित्य के साथ ही 'शक्ति-तत्व' शीर्षक से एक उपयोगी निबन्ध-संग्रह भी भेंट किया गया, जिसकी विषय सूची संग्रह की भूमिका के प्रारम्भ में दी गई है।

❧

खेद-प्रकाश

आर्थिक कठिनाइयों के कारण प्रस्तुत अङ्क अत्यधिक विलम्ब के साथ प्रकाशित हुआ है; साथ ही हमें और अधिक साहित्य देने में विशेष संयम के लिए बाध्य होना पड़ा है। हमें विश्वास है कि पाठक बन्धु हमारी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए क्षमा प्रदान करेंगे।…३४ वें नए वर्ष का प्रथमाङ्क चैत्र-वैशाखाङ्क 'भगवती काली विशेषाङ्क' के रूप में प्रकाशित होगा, जो कि २५ अप्रैल ७५ तक आपकी सेवा में पहुँच जायेगा।

—व्यवस्थापक

सम्पादकीय

१ 'कौल-कल्पतरु' चण्डी का ३४ वां वर्ष

श्री जगदम्बा की कृपा से और शाक्त-बन्धुओं के सहयोग के फलस्वरूप इस अङ्क से 'कौल-कल्पतरु' चण्डी के प्रकाशन का ३३ वां वर्ष पूर्ण हो रहा है।

इस वर्ष जितने पृष्ठों का साहित्य हम जिस प्रकार सचित्र रूप में देना चाहते थे, अर्थाभाव के कारण न दे सके। कागज आदि का मूल्य अचानक ही अत्यधिक बढ़ जाने के कारण हमें न केवल आवरण-पृष्ठों हेतु घटिया कागज प्रयुक्त करना पड़ा, अपितु अन्तिम अङ्क में विशेष रूप से संयम करना पड़ा। परन्तु फिर भी इस वर्ष हमने बारह रुपये वार्षिक शुल्क पर ही पिछले वर्ष के ३७ विषयों की अपेक्षा ४० विषय तथा अलग से चौंसठ पृष्ठीय 'शक्ति-तत्व' नामक निबन्ध संग्रह देने का प्रयास किया है। अस्तु!

अब चैत्र सम्वत् २०३२ से 'कौल-कल्पतरु' चण्डी का प्रकाशन हम पुनः द्वैमासिक रूप में करने जा रहे हैं। इस वर्ष प्रथम चैत्र-वैशाखाङ्क 'भगवती काली विशेषाङ्क' के रूप में प्रकाशित होगा। यह विशेषाङ्क लगभग सौ पृष्ठों का होगा। इसके अतिरिक्त इस वर्ष 'चण्डी' के पाठकों को अलग से 'गुप्तावतार बाबा श्रीं' का विलक्षण प्रसाद---'मन्त्रात्मक सप्तशती' भेंट किया जायेगा। साथ ही 'हिन्दी तन्त्रसार' एवं 'श्री श्री विद्यार्णव तन्त्र' का शेष साहित्य भी धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया जायेगा।

आवश्यकता केवल इस बात की है कि 'चण्डी' के सदस्य बन्धु अपना वार्षिक शुल्क पन्द्रह रुपये तो इस अङ्क के प्राप्त होते ही भेजने की कृपा करें; साथ ही कम-से-कम दो नये सदस्य बनाकर उनसे भी वार्षिक शुल्क शीघ्र भिजवाने की कृपा करें।

२ निवेदन

प्रिय पाठकों! उपर्युक्त सभी प्रकाशनों को सम्पन्न करने की हमारी उत्कट इच्छा है किन्तु एक मात्र 'आर्थिक कठिनाई' के कारण हम अपनी इस इच्छा को पूर्ण करने में समर्थ

नहीं हो पायेंगे । आपसे हमारा विशेष विनम्र निवेदन है कि आर्थिक कठिनाइयों की इस बाधा को दूर करने के लिये इस सम्बन्ध में हमें अपना सहयोग प्रदान करने की कृपा करें ।

आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने के लिये सरलता की दृष्टि से हमने एक छोटी-सी योजना भी तैयार की है । योजनानुसार हमने कुछ 'विशेष-सदस्य', 'मान्य-सदस्य', 'संरक्षक', और प्रतिपालक बनाने का निश्चय किया है । सदस्यता हेतु नियम इस प्रकार हैं—

नियम--उपर्युक्त सदस्यता हेतु कोई विशेष नियम नहीं है, केवल सदस्यता शुल्क के रूप में 'विशेष-सदस्य' बननेवाले महानुभाव को २५) रु० वार्षिक, 'मान्य-सदस्य' को ५१) या १०१) रु० वार्षिक, 'संरक्षक' को ५०१) रु० और 'प्रतिपालक' बननेवाले महानुभाव को १००१) रु० भेजना होगा । 'संरक्षक' एवं 'प्रतिपालक' हेतु सदस्यता शुल्क किस्तों में भी दिया जा सकता है । सभी ऐसे सदस्य बन्धुओं के शुभ नाम 'चण्डी' पत्रिका के आवरण-पृष्ठ पर वर्ष में कम-से कम दो बार सधन्यवाद प्रकाशित किये जायेंगे। 'संरक्षक' और 'प्रतिपालक' बननेवाले महानुभावों को निम्नलिखित सुविधाएँ और दी जायेंगी ।

१ प्रत्येक 'संरक्षक' और 'प्रतिपालक' महानुभाव को उपहार-स्वरूप 'चण्डी' के पिछले सभी उपलब्ध अङ्क की फाइलों की एक-एक प्रति दी जायेगी । ऐसी फाइलों की कम-से-कम संख्या १५ होगी, जिनका वर्तमान मूल्य प्रति रु० ३० है ।

२ प्रत्येक 'संरक्षक' और 'प्रतिपालक' महानुभाव को 'कल्याण-मन्दिर' व 'शाक्त-साधना-पीठ' के पिछले सभी प्रकाशनों पर २५ प्रतिशत की छूट दी जायेगी । इसके अतिरिक्त भविष्य के सभी प्रकाशनों की एक-एक प्रति उन्हें निःशुल्क उपहार-स्वरूप दी जायेगी ।

३ प्रत्येक संरक्षक और 'प्रतिपालक' महानुभाव को 'कौल-कल्पतरु' चण्डी का 'आजीवन सम्मानित सदस्य' माना जायगा । पत्रिका का वार्षिक शुल्क उन्हें प्रति वर्ष नहीं देना होगा और पत्रिका उनकी सेवा में जब तक प्रकाशित होगी निरन्तर निःशुल्क भेजी जायगी ।

हमें विश्वास है कि आप हमारी इस छोटी सी योजना में सम्मिलित होकर हमें अपनी विशेष कृपा का परिचय देंगे । आपकी इसी विशेष कृपा पर हमारे आगामी वर्ष के उपर्युक्त नवीन प्रयासों की सफलता निर्भर रहेगी । हमें आपके कृपापूर्ण सहयोग को प्रतीक्षा रहेगी ।

* * *

शक्ति-तत्व

('शक्ति' के दार्शनिक तत्व सम्बन्धी निबन्धों का संग्रह)

* * *

सम्पादक

'कुलभूषण' पण्डित रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

प्रकाशक

पं० देवीदत्त शुक्ल स्मारक
शाक्त साधना पीठ
प्रयाग-६

प्रथम संस्करण] फाल्गुन पूर्णिमा सम्वत् २०३१

अनुक्रमणिका

१—भूमिका : 'कौल-कल्पतरु' पण्डित देवीदत्त शुक्ल ... ३

२—माहात्म्य-निदर्शन : न्यायमूर्ति पण्डित शिवनाथ काटजू ... ५

३—मा : पूज्य-चरण परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १००८ स्वामी शङ्कर तीर्थ महाराज ९

४—जय मा : गुप्तावतार योगिराज बाबा श्री मोतीलाल महाराज ... १६

५—शक्ति-तत्व : विद्यावारिधि पण्डित शिवनाथ शास्त्री ... १७

६—श्री भवानी-स्तुति : श्री आद्य शङ्कराचार्य ... २०

७—वेद में शक्ति-तत्व : परम पूज्य 'राष्ट्र-गुरु' श्री १००८ स्वामी जी महाराज, ... २१

८—श्री भवानी-स्तुति : श्री आद्य शङ्कराचार्य ... २९

९—शक्ति-तत्व या ब्रह्म-विद्या : श्री कृपानाथ सिंह, एडवोकेट ... ३०

१०—शक्ति-तत्व (ध्यान-रहस्य) : ब्रह्मलीन श्री स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती ... ४३

११—जगत्कारण-निर्णय : 'कविभूषण' पण्डित श्री हरि शास्त्री दाधीच ... ६१

१२—शक्ति-कथा : पूज्य-चरण परमहंस श्री १००८ स्वामी शङ्कर तीर्थ महाराज ... ६२

१३—आदि शक्ति : श्री भुवनेश्वर सिंह 'भुवन' ... ६४

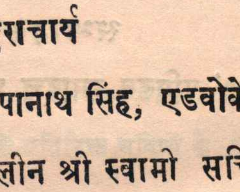

भूमिका

शक्ति-पूजा के प्रवर्त्तक भगवान् शिव माने गये हैं। इस बात का भी प्रमाण मिलता है कि नारायण के एक शिष्य शिव ने अपना अलग वैदिक सम्प्रदाय प्रवर्त्तित किया था। पुराणों में शिव और दक्ष प्रजापति के विरोध की कथा मिलती है, जिससे प्रकट होता है कि दक्ष ने शिव-द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय का खण्डन किया था। और शिव-द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय और कुछ नहीं, यही शाक्त-सम्प्रदाय था।

यद्यपि शिव के उक्त सम्प्रदाय का दक्ष के नेतृत्व में घोर विरोध किया गया, तथापि अपनी लोक-प्रियता के कारण वह इस देश में जड़ पकड़ गया। यहीं नहीं, उसका भारत की सीमाओं के बाहर भी प्रचार हो गया। तन्त्रों में रथक्रान्त, विष्णुक्रान्त और अश्वक्रान्त नाम के तीन क्रान्तों का उल्लेख है। एशिया के जिस विशाल भूभाग में तन्त्रों का अर्थात् शाक्त-सम्प्रदाय का प्रचलन हो गया था, वह इन क्रान्तों में विभक्त था और इन क्रान्तों के अन्तर्गत भारत के अतिरिक्त अफ़गानिस्तान, मध्य-एशिया, तिब्बत, दक्षिणी चीन, इण्डोचीन, स्याम, ब्रह्मदेश और भारतीय द्वीप-पुञ्ज आदि देश शामिल थे। इस एक बात से शाक्त-सम्प्रदाय के विशाल प्रभाव-क्षेत्र का भले प्रकार अनुमान किया जा सकता है।

शाक्त-सम्प्रदाय की पूजा-पद्धति पर विचार करने से यह सिद्ध होता है कि उसके अनुयायी—क्या आध्यात्मिक दृष्टि से और क्या सांसारिक दृष्टि से—सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में बहुत आगे थे। सबसे महत्व की बात तो यह व्यक्त होती है कि वे मूर्ति-पूजक नहीं थे और उनके समाज में जाति-भेद का विचार नहीं था। यही नहीं, उनकी धार्मिक भावना बड़ी अनूठी थी। उनके देवता मणियों के देश और रत्नों के घरों में रहते थे। वे तरह-तरह के अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित रहते थे तथा सिंह जैसे पशु पर वे आरूढ़ होते थे। उनकी पूजा का सारा ठाठ-बाट एकदम राजसी होता था। उनकी आराधना की इस भव्य कल्पना से देश के तत्कालीन वैभव और गौरव का ही प्रमाण मिलता है।

भारतीय धर्मों के इतिहास का अवलोकन करने से प्रकट होता है कि किसी समय शाक्त-सम्प्रदाय की प्रतिपत्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। मोहन-जे-दारो के ध्वंसावशेषों में ऐसे स्पष्ट चिन्ह प्राप्त हुये हैं, जिनसे प्रकट होता है कि उस प्राचीन काल में भी भारत में शाक्त-सम्प्रदाय का अस्तित्व था।

परन्तु शक्ति-पूजा की सबसे अधिक मार्के की बात तो यह प्रतीत होती है कि इस वर्णाश्रम के कट्टर देश में उसने सबसे पहले 'विश्व-बन्धुत्व' और 'स्त्री-पूजा' के उदात्त सिद्धान्तों की घोषणा करके उन्हें कार्य का रूप दिया था। साथ ही यह पुनीत विचार भी लोगों में जागृत किया था कि सभी धर्मों में सत्य का ही प्रतिपादन किया गया है और परस्पर भिन्न होते हुये भी उन सबका अन्तिम लक्ष्य एक ही है। यह ऐसी ही धर्म-भावना के प्रचार का फल था कि बौद्ध-धर्म अपने समय में भारत में तथा उसके बाहर के समीपवर्ती देशों में सरलतापूर्वक फैल सका था।

परन्तु काल की कुटिल गति से शाक्त-धर्म की प्रतिपत्ति कायम न रह सकी और वैदिक-धर्म की तरह उसका भी पराभव हो गया। यहाँ तक कि अब साल में केवल दो बार चैत्र और आश्विन के नवरात्रों में शक्ति-पूजा का आभास दिखाई दे जाता है।

इसमें सन्देह नहीं है कि यह शक्ति-पूजा योद्धा-जाति का धर्म था। शक्ति-पूजा की 'दुर्गा सप्तशती' नाम की जो प्रमुख पुस्तक इस देश के धार्मिक क्षेत्र में आज भी अपनी महिमा बनाये हुये है, उसके दूसरे अध्याय में महाशक्ति

के आविर्भाव का जो रूपक अंकित किया है, वह जितना रहस्यपूर्ण, है उतना ही मनमोहक भी है। उसमें लिखा है कि एक बार दैत्यों ने प्रबल होकर देवताओं को युद्ध में परास्त कर इन्द्रलोक पर अधिकार कर लिया। अधिकारच्युत देवता महादेव की शरण में गये। वहाँ विष्णु भी विद्यमान थे। जब उन्होंने देवताओं की करुण कथा सुनी तब उनको क्रोध हो आया। फलतः उन सबके शरीर का तेज निकल कर एक अभिनव महाशक्ति के रूप में परिणत हो गया, जिसने दैत्यों का संहार कर देवों को फिर पहले की भाँति अधिकारारूढ़ कर दिया। एकता के भाव तथा संघ-शक्ति का यह एक अतीव दिव्य रूपक है। शक्ति-पूजा का वस्तुतः यही रहस्य है। परन्तु देश के दुर्भाग्य से शक्ति-पूजा का यह प्राञ्जल भाव हमारी दृष्टि से सर्वथा ओझल हो गया है।

यह शक्ति-पूजा दुर्गापूजा के नाम से भारतीय धार्मिक-भावना में अपना विशेष स्थान रखती है। वर्तमान धर्म-ग्लानि के युग में उसका आज भी बहुत कुछ प्रचार है। कन्याकुमारी से काश्मीर तक और कामाख्या से हिंगलाज तक भगवती दुर्गा की नवरात्र के दिनों में बड़ी श्रद्धा के साथ पूजा होती रहती है।

और यह दुर्गा-पूजा इस देश के शाक्त-सम्प्रदाय की एक प्रमुख पूजा है। यद्यपि शाक्त-सम्प्रदाय का अब इस देश में पहले का सा प्रभाव नहीं रह गया है, तथापि दुर्गा-पूजा के रूप में उसका अस्तित्व अक्षुण्ण बना हुआ है।

शाक्त-सम्प्रदाय की उपास्य देवता 'शक्ति' का तात्विक रहस्य अति गूढ़ रहा है। उसे स्पष्ट करने की चेष्टा समय-समय पर विद्वज्जनों द्वारा की गई है। इस चेष्टा के फलस्वरूप अनेक शिक्षा-प्रद निबन्ध प्रकाश में आए हैं। प्रस्तुत संग्रह में ऐसे ही कुछ चुने हुये निबन्धों का संकलन किया गया है। आशा है कि इन्हें पढ़कर जिज्ञासु पाठक 'शक्ति' के दार्शनिक तत्व को हृदयङ्गम कर सकेंगे।

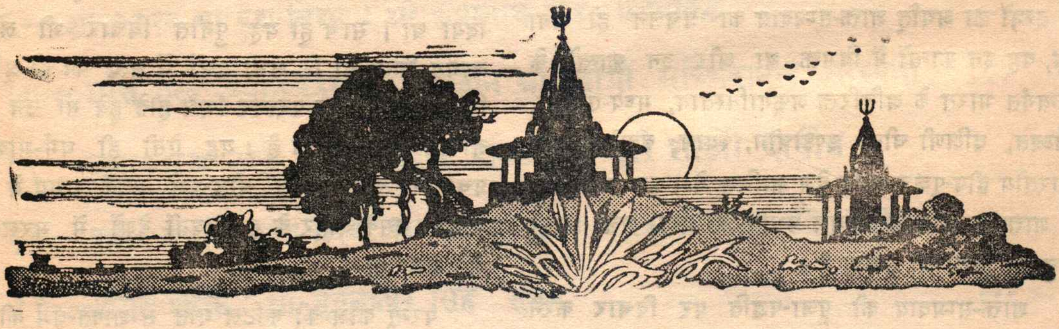

माहात्म्य-निदर्शन

सनातन धर्म के पाँच मुख्य देवताओं (विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य और गणेश) में 'शक्ति' का अपना विशेष महत्व है। 'शक्ति' का रहस्य उसकी विधिवत् साधना करने से ही समझ में आ सकता है। फिर भी विद्वज्जनों ने उसे समझने के लिये उसकी तरह-तरह से व्याख्या भी की है। इन व्याख्याओं को पढ़कर जिज्ञासु जनों को बड़ा उद्बोधन मिलता है और उन्हें वास्तविक साधना में तत्पर होने की प्रेरणा मिलती है। इसी उद्देश्य से 'शक्ति-तत्व' शीर्षक से निबन्धों का सङ्कलन अध्यात्म-विद्या के प्रेमियों के समक्ष उपस्थित किया गया है।

सर्वप्रथम निबन्ध मा' (पृष्ठ ९-१६) में यह तत्व दर्शाया गया है कि शक्ति की उपासना माता-रूप में करना कितना श्रेयस्कर है। शक्ति के जगन्माता-स्वरूप का सर्वाधिक स्पष्ट चित्रण श्री दुर्गा सप्तशती में किया गया है। उसी की सूक्तियों का आधार लेकर इस निबन्ध में जगदम्बा महामाया की महिमा को सरल शैली में इस प्रकार समझाया गया है कि आध्यात्मिक दर्शन की अनेक गूढ़ बातें पाठक की समझ में सहज ही आ जाती हैं। शक्ति का जगन्माता-स्वरूप वस्तुतः शक्ति का विराट् रूप है, जिसका आविर्भाव ब्रह्मा-विष्णु-महेश तथा अन्यान्य देव-गण के सम्मिलित तेज से होता है और जिसकी वे सभी वन्दना करते हैं। शक्ति का यह सर्व-व्यापक तत्व ऋषियों के काल से लेकर अब तक गम्भीर विवेचना का विषय रहा है।

वेदों में शक्ति का दर्शन किस प्रकार दर्शाया गया है, इसका परिचय 'वेद में शक्ति-तत्व' शीर्षक निबन्ध (पृष्ठ २१-२९) में दिया गया है। इस निबन्ध में अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के तेरहवें सूत्र के आधार पर 'शक्ति' की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। जैसा कि पहले उल्लेख किया है, यह विवरण 'शक्ति' के विराट् स्वरूप का है, जिसे 'परा-शक्ति' कहा जाता है। इस 'परा-शक्ति' के तत्व को समझना सरल बात नहीं है। इसी के स्थूल स्वरूप दश महा-विद्याएँ तथा अन्य देवी-रूप हैं, जिनका तत्व अलग गम्भीर अध्ययन का विषय है।

'परा-शक्ति' का तत्व वेदान्त के अद्वैत सिद्धान्त को समझने से ही भले प्रकार हृदयङ्गम हो सकता है। इसलिये 'शक्ति-तत्त्व या ब्रह्म-विद्या' शीर्षक निबन्ध (पृष्ठ ३०-४२) पाठकों के लिये बड़ा उपयोगी है। इस निबन्ध में वैदिक महावाक्यों और तान्त्रिक भाव-त्रय तथा सप्ताचारों का समन्वय दिखाते हुये शक्ति-उपासना के व्यावहारिक पक्ष को बड़ी सुन्दरता के साथ स्पष्ट किया गया है।

'शक्ति-तत्व' शीर्षक निबन्ध (पृष्ठ १७–२०) में विविध दर्शनों के आधार पर शक्ति के सर्व-सम्मत स्वरूप का स्पष्टीकरण किया गया है, जिससे भुक्ति-मुक्ति-दायक शाक्त-मत का महत्व पाठक के समक्ष सहज ही प्रस्तुत हो जाता है। इसी निबन्ध के 'ध्यान-रहस्य' भाग (पृष्ठ ४३-६१) में विस्तार से शक्ति के निर्गुणात्मक विराट् स्वरूप का वर्णन किया गया है, जिससे ब्रह्म-शक्ति, परा-शक्ति, आदि-शक्ति, माया, प्रकृति आदि नाम-पदों से जिस सूक्ष्म सत्-चिदानन्द-शक्ति को सम्बोधित किया जाता है, उसका आवश्यक ज्ञान पाठक को सरलता से मिल जाता है। साथ ही परा शक्ति के आदि रूप 'काली' के ध्यान की जो व्याख्या इस निबन्ध में की गई है, उससे शक्ति के सगुणात्मक स्वरूपों का स्पष्ट बोध होता है।

अन्तिम छठे निबन्ध 'शक्ति-कथा' (पृष्ठ ६२-६४) में पुनः ब्रह्म-स्वरूपिणी शक्ति का दिग्दर्शन कराया गया है, जिससे वैदिक संहिता और केन उपनिषद् आदि में विवेचित शक्ति-तत्व का ज्ञान पाठक को सुचारु रूप से मिलता है।

❁ ❁ ❁

'शक्ति' के माहात्म्य का बोध उक्त छः निबन्धों से

पाठकों को सहज ही हो जाता है। इसके साथ ही यहाँ उन्हें ऐसी महिमामयी शक्ति की उपासना के विषय में बोध कराना उचित ही होगा। इस सम्बन्ध में न्यायमूर्ति पण्डित शिवनाथ जी काटजू द्वारा लिखित निम्न निबन्ध ध्यान से पढ़ने योग्य है—

भारत में अनादिकाल से शक्ति की उपासना प्रचलित है। सनातन ब्रह्म निष्कल है। जब ब्रह्म सकलता को प्राप्त करता है तो उसकी इच्छाशक्ति ही प्रकृति और पुरुष का रूप धारण करती है और फिर सृष्टि का उद्भव होता है। प्रकृति और पुरुष ही परमेश्वर और परमेश्वरी हैं। दोनों वास्तव में एक हैं और इनकी एकता का ज्ञान ही योग की चरम सीमा है। प्रकृति देवी है, पुरुष शिव। दोनों की संयुक्त अवस्था ही अर्द्धनारीश्वर का रूप है। दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध वैसा ही है जैसे वाणी और शब्द का। महाकवि कालिदास ने कहा है—

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्था प्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती-परमेश्वरौ॥

जब शिव और देवी सन्मुखी होते हैं तो विश्व की रचना होती है और उसका पालन होता है। जब ये विमुखी हो जाते हैं तो सृष्टि लय हो जाती है। ब्रह्म की वह शक्ति, जो शिवाशिव का रूप धारण करती है और जिसके द्वारा विश्व की रचना, पालन और लय होता है, शाक्तों की उपास्य देवता है। शाक्त इसको माता के रूप में देखता है और इसी भाव से उसकी आराधना करता है। यही भुवनमोहिनी, जगद्जननी और महिमामयी महामाया है। इसके रूप अनेक हैं। इनमें काली, बगला, छिन्नमस्ता, भुवनेश्वरी, मातङ्गी, षोडशी, धूमावती, त्रिपुरसुन्दरी, तारा और भैरवी दश महाविद्यायें हैं। देवी के अनेक अवतार हैं। वह आज भी नाना रूपों में भारत के कोने-कोने और ग्राम-ग्राम में पूजी जाती है। परन्तु देवी के अनादि रूप को देवता भी नहीं जानते। यदि किसी ने जाना तो एक सदाशिव त्रिलोचन अनङ्गाङ्गहर शङ्कर ने। जब सृष्टि का कार्य आरम्भ हुआ तो इसके उद्भव का भार ब्रह्मा को मिला। परमेश्वरी ने अपने एक अंश से सावित्री की, ब्रह्मा की शक्ति के रूप में, उत्पत्ति की। फिर विष्णु का पालन का भार मिला और लक्ष्मी उनकी शक्ति बनी। लय के लिये शिव आये और स्वयं जगदम्बा शिव की शक्ति बनीं। परन्तु भुवनमोहिनी का अपना रूप क्या है, इसे किसी ने नहीं देखा। दुर्गा-सप्तशती में कहीं-कहीं संकेत मिलता है कि सम्भव है देवताओं ने उसकी झलक देखी हो। वेद, पुराण और तन्त्र महामाया परमेश्वरी की वन्दना और ध्यान से भरे हैं। देवताओं ने सदा परमेश्वरी की उपासना और वन्दना की है। यह कहीं नहीं मिलता कि जगदम्बा ने किसी देवता की आराधना की हो। जो समस्त ब्रह्माण्ड की वन्दनीय है, जिसकी शक्ति का न आदि है न अन्त, उसी महाशक्ति का शाक्त उपासक है।

शक्ति की उपासना भारत में प्राचीन काल से क्रमागत चली आ रही है। इसका क्रम वैदिक उपासना के साथ-साथ विशेष साधना के रूप में चल रहा है। सामान्य धर्म वैदिक रहा; पर इसके साथ ही शक्ति उपासना मन्त्रयोग के रूप में आदि काल से बराबर विद्यमान रही। वैदिक काल के ऋषियों की योगमयी तपस्या का जहाँ-जहाँ उल्लेख आया है, उससे स्पष्ट होता है कि वे ऋषि परम शाक्त थे। मन्त्रविद्या द्वारा ही शक्ति की उपासना होती है और यह साधना सनातन से गुप्त धारा के रूप में बहती आई है। महाभारतकाल के पश्चात् जब कलिकाल का आरम्भ हुआ और जनमेजय के यज्ञ में अग्नि के शाप से वैदिक क्रिया की सफलता ब्राह्मणों की शक्ति के परे हो गई, तो प्रकट रूप से तन्त्रों का प्रतिपादन हुआ और पञ्चदेव की उपासना प्रचलित हुई। आजकल के हिन्दू-धर्म पर तन्त्रों की पूरी छाप है। इन्हीं तन्त्रों का एक प्रमुख अङ्ग शक्ति-उपासना को निर्दिष्ट करता है।

शक्ति-उपासना का सामान्य रूप तो नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में प्रचलित है। भगवती की वन्दना कौन हिन्दू नहीं करता?

स्थान-स्थान पर देवी के मन्दिर हैं, परन्तु यह उपासना सामान्य उपासना है, इससे आगे की सीढ़ियाँ ही साधक को शाक्तों की प्रबल उपासना तक पहुंचाती हैं। शाक्त मन्त्रयोग द्वारा परमेश्वरी का साक्षात्कार करता है, मन्त्र ही देवी की सूक्ष्म देह है। इसे प्राप्त करना ही दुर्लभ है। ज्योति ही मन्त्र को जीवित और दीप्तिमान करती है और वह ज्योति गुरु ही से प्राप्त होती है, बिना गुरु के शक्ति-उपासना में अग्रसर होना और सफलता प्राप्त करना दुर्लभ ही नहीं असम्भव है। गुरु और शिष्य का सम्बन्ध ढकोसलों के रूप में प्रायः देखा जाता है, यह वास्तविक रूप कदापि नहीं है। गुरु पिता है और शिष्य पुत्र। दोनों की आत्मा

की एकता से ही यह सम्बन्ध स्थापित होता है। यह अति गहन विषय है और इसका रहस्य अनुभव ही से प्राप्त होता है। यह अवश्य है कि यह अति कोमल एवं दृढ़ बन्धन आज सामान्य गुरुओं और चेलों की लीलाओं से हास्यास्पद बन रहा है।

जहाँ शक्ति-उपासना का अधिकार प्राप्त करना कठिन है, वहां उसके साथ-साथ शक्ति-उपासना द्वारा प्राप्त की हुई शक्ति का पाचन भी टेढ़ी खीर है। इस आराधना से साधक में शक्ति का संचार होता है। उसे बहुत कुछ करने की क्षमता प्राप्त होती है। परन्तु शक्ति के दुरुपयोग से साधक की हानि होती है और उसका लोक-परलोक बिगड़ सकता है। शक्ति-उपासना शीघ्र फलदायक है। परन्तु इस पर चलना छत पर दौड़ना है। यदि गिरे तो हड्डी-पसली टूटने का भय है। शस्त्र पाकर उसका दुरुपयोग न करना, धन पाकर दुराचारी न बनना, ऐश्वर्य प्राप्त करके अधर्म की ओर अग्रसर न होना, बल पाकर अत्याचार न करना-यह सब संयमी ही कर सकते हैं, सब नहीं। इसी कारण से शक्ति-उपासना जोखम की वस्तु बन जाती है। इसीलिये गुरु यह देखता है कि शिष्य इस अति प्रबल उपासना का अधिकारी है या नहीं। यदि साधक शक्ति के उल्लास का पाचन कर गया और देवी के प्रसन्नार्थ उपासना करता गया तो वह शिव बन जाता है और पृथ्वी पर स्वयं देवता बन कर विचरता है। उपासना के और और मार्ग या तो भोग प्रदान करते हैं या मोक्ष की ओर ले जाते हैं। केवल शक्ति उपासना ही भोग और मोक्ष दोनों साथ-साथ देकर कैवल्य तक पहुंचा देती है। शक्ति की आराधना शीघ्र फल देती है। इसका अनुभव सरलता से हो सकता है। हाँ इसकी प्राप्ति का अधिकार कठिनाई से मिलता है। उसके लिये चेष्टा करनी पड़ती है और मन में भक्ति का भाव लाना पड़ता है। इसकी गोपनीयता का रहस्य ही यही है कि यदि यह प्रबल उपासना अनधिकारियों के हाथ में पड़ेगी तो जहां वे अपने आपको संकट में डाल लेंगे, वहां उसके साथ-साथ वे दूसरों को भी महान् कष्ट दे सकते हैं।

नवरात्रि हिन्दुओं का महान् पर्व माना जाता है। इन दिनों घर-घर में चण्डी पाठ होता है। सामान्य रूप से भारत के कोने-कोने में जगदम्बा की आराधना होती है। नवरात्रि का अवसर ऋतुओं के परस्पर संध्या का काल है। इस समय महाशक्ति के उस वेग की धारा, जो सृष्टि के उद्भव और लय का कारण है, अधिक तीव्र हो जाती है और आराधना में भुवनमोहनी का आवाहन अधिक सुगम होता है। योग में इसका अनुभव होता है। इस काल में इडा और पिंगला में वायु की गति समानता में रहती है और ऐसी अवस्था में कुण्डलिनी का जागरण और ऊर्ध्वगति सरल हो जाती है। इन्हीं कारणों से नवरात्रि के दिन महापर्व के हैं। प्रत्येक हिन्दू इन दिनों अपने आपको जगदम्बा के अधिक निकट समझता है और उसका स्मरण करता है।

यों चाहे व्यक्ति और समाज जगदम्बा को भूल जाये परन्तु जब-जब व्यक्ति और देश पर संकट पड़ा, तब सदैव शक्ति ही का आवाहन हुआ। भारत का इतिहास इसका साक्षी है। भारतीय स्वतन्त्रता का युद्ध भी 'वन्दे मातरम्' के गान से छिड़ा। 'वन्दे मातरम्' की 'माता' क्या महिमामयी महामाया से कोई भिन्न वस्तु है? 'आनन्दमठ' में संन्यासियों ने जिस 'माता' की वन्दना की है, वह जगदम्बा नहीं तो क्या है? आज जब भारत स्वतन्त्र हुआ तो इस परम शक्तिशाली राष्ट्रगान का तिरस्कार करना कहां की बुद्धिमानी है! यह वैसा ही है जैसे उसी सीढ़ी को फेंकना, जिसके सहारे कोई छत पर चढ़ा हो।

शास्त्र का संकेत है कि कलिकाल का युगधर्म शक्ति-उपासना ही है—'मौल चण्डी-विनायकौ।' तन्त्रग्रन्थों में स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है कि जब कलियुग प्रबल होगा तो एक मात्र शक्ति उपासना ही भवसागर के पार कराने का साधन होगी और उस समय शाक्त-धर्म की परम गोपनीय विद्या प्रकाश में आयेगी। क्या वह समय अब आ गया?

* * *

न्यायमूर्ति पण्डित शिवनाथ जी काटजू के उक्त महत्वपूर्ण निबन्ध के अन्त में जो प्रश्न उठाया गया है, उसका उत्तर स्पष्ट है। आज देश की हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में ही नहीं, अन्य भाषाओं की पत्रिकाओं में भी शाक्त-धर्म सम्बन्धी मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र आदि प्रमुख विद्याओं की चर्चा गम्भीरता के साथ हो रही है। साथ ही विदेशों में भी इस सम्बन्ध में जिज्ञासा अधिकाधिक बढ़ती ही जा रही है। ऐसी दशा में शक्ति-तत्व पर प्रकाश डालनेवाले साहित्य का महत्व स्पष्ट ही है।

कल्याण मन्दिर, अलोपीबाग प्रयाग द्वारा शक्ति के प्रमुख दस स्वरूपों—१ काली, २ तारा, ३ षोडशी, ४ भुवनेश्वरी, ५ बगला, ६ भैरवी, ७ छिन्नमस्ता, ८ धूमावती, ९ मातङ्गी और १० कमला महाविद्याओं की आराधना के सम्बन्ध में व्यावहारिक ज्ञान करानेवाली अनेक उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित की गई हैं, जिनसे शक्ति-साधना के कर्मकाण्ड-पक्ष का महत्व प्रकट होता है। इनके सिवा शक्ति-तत्व के दार्शनिक पक्ष को स्पष्ट करनेवाली कितनी ही पुस्तकें भी प्रकाशित की गई हैं। इन सबका परिचय कल्याण मन्दिर के प्रकाशनों के सूचीपत्र से पाठक सहज ही प्राप्त कर सकते हैं।

इधर 'शाक्त-साधना-पीठ', चण्डी-कार्यालय, अलोपीबाग, प्रयाग के द्वारा पत्र-व्यवहार के माध्यम से शक्ति-साधना की शिक्षा देने की अलग व्यवस्था की गई है। 'पीठ' की मुख्य-पत्रिका के रूप में 'कौल-कल्पतरु' चण्डी नामक पत्रिका उपयोगी साहित्य द्वारा नियमित रूप से शक्ति-तत्व के विविध पक्षों पर प्रामाणिक ढंग से प्रकाश डाल रही है।

प्रस्तुत संग्रह में प्रकाशित निबन्धों से जिज्ञासु पाठकों को निश्चय ही शक्ति-तत्व को हृदयङ्गम करने में सहायता मिलेगी और इसके प्रकाशन का यही मुख्य उद्देश्य है। हमें विश्वास है कि इस प्रकार के निबन्ध-संग्रहों से शक्ति की महिमा को समझने और समझाने में पाठकों तथा आचार्यों को पर्याप्त सुविधा होगी। यदि ऐसा हुआ, तो इसी प्रकार के अन्य उपयोगी संग्रह प्रकाशित करने का प्रयास किया जायगा।

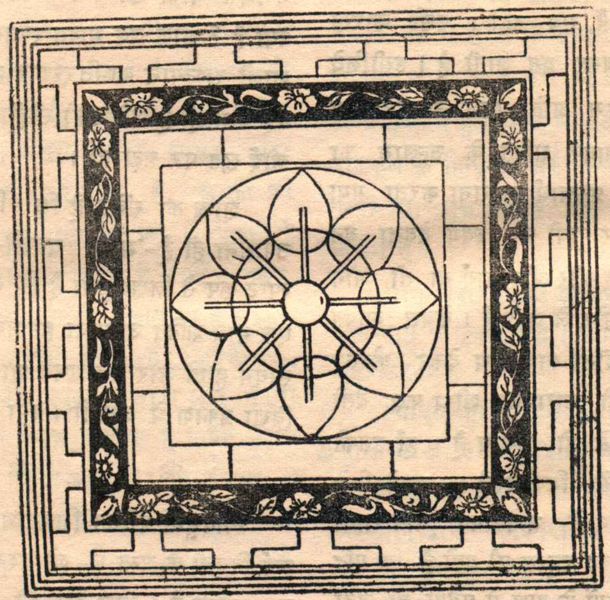

शाक्तोपयोगी प्रकाशन

साधना-रहस्य

(मूल्य १५) रुपये)

लेखक—'कुलमार्तण्ड' राजगुरु स्वर्गीय पण्डित योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति जी शास्त्री

दीक्षा, क्रमदीक्षा, गुरुमण्डल, श्री गुरुक्रम, गुरुमहिमा, दीक्षा के भेद, मन्त्र-रहस्य, पूजा के लिए आसन व पुष्प, जपमाला, माला-संस्कार विधि, माला प्रार्थना व विसर्जन, मन्त्रों के भेद, मन्त्रों की षट्चक्र-शुद्धि, दूषित मन्त्र का उपाय, मन्त्र-संस्कार, मन्त्र शक्ति व देवता, षोडशपात्र, तत्वों का रहस्य व शुद्धि, शाक्त-र्म, शाक्त-दर्शन, समयाचार अथवा समय-मत, हादि मत व कादि मत, पूर्णाभिषेक-विधान, कौल-श्राद्ध और अन्त्येष्टि, आम्नायों का रहस्य, सिद्धि के लक्षण आदि जैसे महत्वपूर्ण विषयों की सरल भाषा और सुबोध शैली में विस्तृत जानकारी के लिये उपर्युक्त ग्रन्थ को शीघ्र मँगाइये।

धर्ममार्ग पर—

लेखक—'कौल-कल्पतरु' स्व० पण्डित देवीदत्त जी शुक्ल

'साधक का संवाद' (मूल्य ४) रुपये)पढ़कर यह सहज ही अनुभव होता है कि कहानी की रोचक शैली में धर्म की गूढ़ बातों को यदि समझाया जाय, तो वे बड़ी सरलता से समझ में आ जाती हैं और उन्हें जानने-समझने में मन भी लगता है। इसी दृष्टिकोण से 'धर्ममार्ग पर' नामक उपन्यास लिखा गया है। उपन्यास इतना रोचक है और साथ ही धर्म की बातों का इतना सच्चा दिग्दर्शक है कि एक सांस में सारी पुस्तक पढ़ जाने को मन आतुर हो उठता है।

मूल्य ४)

सप्तशती विशेषाङ्क

आस्तिक हिन्दू समाज में दुर्गा सप्तशती का असीम आदर तथा प्रचार है, यह सर्व-विदित है।……ऐसे महान्, अमोघ स्तवराज के सम्बन्ध में 'चण्डी' ने सम्वत् २०१३ में जो विशेषाङ्क प्रकाशित किया है, वह अपने आप में अनूठा है। उक्त विशेषाङ्क के मुख्य विषयों की झांकी इस प्रकार है--

गुप्त सप्तशती, सप्तशती की उपासना का प्रकार, चण्डी नवार्ण, सप्तशती में बेदान्त, चण्डी (सप्तशती) रहस्य, सप्तशती में प्रपत्तिवाद, श्री सप्तशती की कुछ विशेष बातें, श्री दुर्गा सप्तशती और शाप-मोचन, सप्तशती में मोक्ष-साधन, नवार्ण मन्त्र में ॐ के संयोग का विमर्श, सप्तशती-साधना में यन्त्र का स्थान आदि।

कुल लगभग चार सौ पृष्ठों का यह विशेषाङ्क है। बहुत कम प्रतियां शेष हैं। 'चण्डी' के ग्राहकों के लिये मूल्य मात्र बीस रु० रक्खा गया है। अपने लिये शीघ्र एक प्रति मंगा लें।

महाकाल-संहिता

'महोकाल संहिता' तन्त्र का एक अति प्राचोन दुर्लभ वृहद् ग्रन्थ रहा है । इसकी प्राचोनता का अनुमान तक अभी विद्वना लोग नहीं कर पाए हैं । यह कितना वृहद है, इसका अनुमान इसी से किया जा सकता है कि इसके प्रकाशन के लिए भारत सरकार के समक्ष एक लाख बाइस हजार नौ सौ चौंसठ रुपये की योजना रखो गई, किन्तु केवल ५००० रु० इस बात के लिये स्वीकृत किये गये कि इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ को खोजकर पाण्डुलिपि तैयार की जाय । इस कार्य के फलस्वरूप इस ग्रन्थ के 'कामकला-काली-खण्ड' की पाण्डुलिपि तैयार हुई और यह हर्ष की बात है कि इसका प्रकाशन भी हो गया है । इस खण्ड की विशेषता इसकी विषय सूची से स्पष्ट है—

पहले पटल में देवो महाकाल से कहती हैं कि १ तारा, २ छिन्नमस्ता, ३ त्रिपुर-सुन्दरी, ४ बाला, ५ वगला, ६ त्रिपुर-भैरवी, ७ काली, ८ दक्षिण काली, ९ कुब्जिका, १० शरभेश्वरि, ११ अघोरा, १२ राजमातंगी, १३ सिद्धिलक्ष्मी, १४ अरुन्धती, १५ अश्वारूढ़ा, १६ भोगवती, १७ नित्यक्लिन्ना, १८ कुक्कुटी, १९ कौमारी, २० वाराही, २१ चामुण्डा, २२ चण्डिका, २३ भुवनेशी, २४ उच्छिष्ट-चाण्डाली, २५ चण्ड-घण्टिका, २६ काल-सङ्कर्षिणी और २७ गुह्यकाली आदि देवियों की पूजा और मन्त्र का रहस्य बताइये । साथ ही कामकला-काली का मन्त्र, ध्यान, रहस्य और कवच सुनाइये ।

दूसरे पटल में महाकाल अपने उत्तर में देवी के मन्त्रों का उद्धार देकर ध्यान, पूजा-क्रम, पूजा-यन्त्र का वर्णन करते हैं । तीसरे पटल में सप्त आवरण-पूजन बताकर पुरश्चरण-विधि और अनेक प्रयोग बताये गये हैं । चौथे पटल में कुछ अन्य गोपनीय प्रयोगों का वर्णन है । प्रसिद्ध शिवा-बलि की प्रयोग-विधि विस्तार से दी गई है और शिवा-स्तोत्र दिया गया है। पाँचवें पटल में कामकला का रहस्य स्पष्ट करते हुये पूजा-क्रम बताया है । छठे पटल में अन्य सिद्धिदायक प्रयोगों का वर्णन है । यथा-खेचरी प्रयोग, खड्ग-सिद्धि-प्रयोग, अंजन प्रयोग, गुटिका-सिद्धि, ताल-बेताल-सिद्धि । सातवें पटल में कामनानुसार होम करने की विधि तथा योग-विद्धि, नाड़ी-शोधन आदि का वर्णन है । आठवें पटल में षोढान्यास, नवें पटल में त्रैलोक्य, मोहन कवच और दसवें पटल में रावण-कृत देवी-स्तोत्र दिया गया है । ग्यारहवें-पटल में अमृत न्यास, बारहबें में सहस्रनाम स्तोत्र, तेरहवें में कामकला काली के एकाक्षर से लेकर सहस्राक्षर मन्त्रों का उद्धार, चौदहवें में मन्त्रों का रहस्य तथा अन्तिम पन्द्रहवें पटल में अयुताक्षर मन्त्र का उद्धार दिया है ।

लगभग २५० पृष्ठों में संस्कृत में उक्त १५ पटलों के विषय आये हैं । ग्रन्थ के प्रारम्भ में ४० पृष्ठों की महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज द्वारा लिखित हिन्दी में विस्तृत भूमिका है, जिससे शक्ति-साधना और कामकला रहस्य का अच्छा ज्ञान पाठक को मिलता है । ग्रन्थ के परिशिष्ट में बीज, उपवीज, कूट, उप-कूट सम्बन्धी कोष भी हैं ।

स्पष्ट है कि ग्रन्थ कितना अधिक महत्वपूर्ण है । सजिल्द उत्तम कागज पर छपा है । मूल्य तीस रुपये धनादेश से शीघ्र भेजकर अपनी प्रति मँगा लें, अन्यथा समाप्त हो जाने पर किसी भी मूल्य पर न पा सकेंगे ।

पुस्तक-प्राप्ति का स्थान

पं० देवीदत्त शुक्ल स्मारक
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
प्रयाग—६